रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा

[विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ कृष्णचन्द्र वर्मा, एम. ए., पी-एच डी.,
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल

कैलाश पुस्तक सदन
ग्वालियर · भोपाल आगरा

© डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा, १९६७

प्रकाशक:

कैलाश प्रसाद अग्रवाल,
संचालक,
कैलाश पुस्तक सदन,
पाटनकर बाजार, ग्वालियर
शाखायें : आगरा, भोपाल

मुद्रक:

जगदीशप्रसाद अग्रवाल,
दी एजुकेशनल प्रेस,
पाँडे विलास, सिटी स्टेशन रोड, आगरा

संस्करण

प्रथम फरवरी १४, १९६७

मूल्य

बाईस रुपये मात्र

समर्पण

पूज्य पिता
श्रीयुत् गौरीशंकर
एवं
माता
श्रीमती धनदेवी
को
पुण्य स्मृति में

प्रस्तावना

सन् १६२६ मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'इतिहास' में रीतिकाल के रीतिमुक्त अथवा प्रेम की उमग के कवियों के कृतित्व के सम्बन्ध मे दो बातें लिखी थीं—एक तो यह कि इन कवियो मे मार्मिक और मनोहर पद्यो की सख्या अपेक्षाकृत अधिक है, दूसरे यह कि इन्हें कुछ अधिक बन्धन नहीं था। जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए हैं (रसखान, घनआनद, आलम, ठाकुर आदि) उनमे किसी ने लक्षणबद्ध रचना नहीं की है। मुक्त हृदय और स्वच्छन्द भाव से प्रेम-काव्य की रचना करने वालो की एक स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण धारा है यह बात शुक्ल जी ने स्वीकार नहीं की थी, परन्तु फिर भी रीतिबन्धन से रहित कवियो पर विचार करते हुए उन्होने रीतिकालीन काव्य सम्बन्धी तीसरे प्रकरण मे यह दिखाया है कि कवियों का एक वर्ग निर्बंध रूप से या रीति-निरपेक्ष भाव से शृगार अथवा प्रेम की कविता कर रहा था। शुक्ल जी ने इस वर्ग के कवियो को पहचान तो लिया था क्योकि रसखान, घनआनद, आलम, ठाकुर, बोधा आदि को उन्होंने इसी वर्ग मे रखा था और घनआनद को इनमे सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया था तथा इन कवियो की पृथक्-पृथक् चर्चा मे भी उन्होंने इनके भावना-विषयक वैशिष्ट्य को स्वीकार किया था, परन्तु फिर भी इस स्वतन्त्र काव्यधारा के स्वरूप का उद्घाटन, उसके अक्षय महत्व की स्वीकृति तथा उसके प्रमुख कर्ताओ के कृतित्व का विशद विवेचन और उनकी प्रवृत्तियो की सूक्ष्म छानबीन का कार्य उनके द्वारा न हो सका। यह कार्य विद्वद्वर प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की सुदक्ष और तथ्यान्वेषिणी तीव्र एव सूक्ष्म अतर्दृष्टि द्वारा एक सीमा तक सम्पन्न हुआ। किसी समय मिश्र जी ने स्वय अपने शोध-विषय के रूप मे 'मध्यकालीन स्वच्छन्द काव्य-धारा' विषय स्वत मनोनीत किया था तथा इस सम्बन्ध मे स्वच्छदधारा के कवियो के ग्रथो का आलो-डन-विलोडन करते हुए उन्हें उनके ग्रथो के सपादन की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उसमे लग जाने से अतिकाल हो गया तथा उनके गुरुकल्प सभी मनीषी दिवगत हो गए और इस प्रकार रीतिमुक्त काव्यधारा के विशद और सूक्ष्म अध्ययन और विवेचन का कार्य वे भी अभीप्ट रूप मे न कर सके। परन्तु फिर भी इस दिशा मे उन्होंने जो कुछ कार्य किया है वह आज भी अद्वितीय है। इस दिशा के प्रत्येक अनुसधायक को उनका यह ऋण सदा स्वीकार करना होगा। सर्व प्रथम अपने 'वाङ्मय विमर्श' (सन् १६४०) मे उन्होंने बताया कि प्रेम के इन स्वच्छन्द गायकों का साहित्य के इतिहास में विशेष महत्व है क्योकि इनमे अपनी-अपनी ऐसी-ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस युग के दूसरे कवियो के बाँटे नहीं पड़ीं यहाँ तक कि बिहारी के भी नहीं। इस तथ्य का कुछ अधिक विस्तृत उद्घाटन उन्होने आगे चलकर अपने दो ग्रन्थों 'बिहारी' (सन् १६५०) और 'घनआनद ग्रन्थावली' (सन् १६५२) के समीक्षा-भाग मे किया तथा उसी सामग्री की आवृत्ति उनके अभिनव ग्रन्थ 'शृगारकाल' (सन् १६६०) मे मिलती है। इस धारा की प्रमुख प्रवृत्तियो के उद्घाटन के साथ-साथ उन्होंने रीतिकालीन काव्य के दीर्घ-कालीन आलोडन-विलोडन, अध्ययन और मथन के अनन्तर रीतिबन्धन से मुक्त स्वच्छन्द

प्रेमोमग के कर्त्ताओ का महत्व पहली बार स्थापित किया तथा रसखान और घनआनंद तथा आलम की कृतियो के सुन्दर और विश्वसनीय सम्पादन कार्य द्वारा उन्होंने इस धारा के अध्ययन के कार्य को अत्यन्त ठोस रूप मे अग्रसर किया है।

रीतिमुक्त काव्यधारा और विशेषकर प्रमोमग के इन विरह-प्रवण कवियो के काव्य के विशद अध्ययन तथा उनके भावलोक के सौन्दर्य के उद्घाटन का कार्य शेष रह गया था। इस दिशा मे दो-एक प्रयत्न अवश्य हुए, विशेष रूप से घनआनद और रसखान के काव्य को लेकर —श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा कृत 'घनआनद', श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय कृत 'रसखान और उनका काव्य' तथा श्री रामबाशिष्ठकृत 'महाकवि घनानद'—किन्तु ये प्रयास हल्के या लघुप्रयास ही रहे। इस धारा के अन्य महत्वपूर्ण कवियो जैसे आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि पर तो किसी की दृष्टि ही नहीं गई। इस दिशा मे पहला महत् प्रयास डा मनोहरलाल गौड ने किया। सन् १९५८ मे प्रकाशित उनका प्रबन्ध 'घनानद और स्वच्छन्द काव्य-धारा' मध्ययुग की स्वच्छन्द धारा से सम्बन्धित पहला प्रबन्ध-ग्रन्थ है, जिसमे धारा की सामान्य प्रवृत्तियो की व्याख्या के साथ-साथ उनके श्रेष्ठतम कर्त्ता के कृतित्व का विधिवत् एव सागोपाग अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। डा० गौड़ की थीसिस मे निश्चय ही पहली बार रीतिमुक्त काव्यधारा और उसके सर्वश्रेष्ठ कवि घनआनद की काव्य-समीक्षा-सम्बन्धी अपेक्षित कार्य विशदता से सम्पन्न हुआ। इससे रीतिमुक्त काव्यधारा का अध्ययन पर्याप्त रूप से अग्रसर हुआ फिर भी अनेक प्रेमोन्मत कवियो के जीवन और व्यापक काव्य-साहित्य का अपेक्षित अध्ययन, चितन और विवेचन न हो सका था। घनआनद के अतिरिक्त भी कितने ही महत्वपूर्ण स्वच्छन्द कर्त्ता रसखान, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि बच रहे थे।

प्रस्तुत प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति के निमित्त किया गया प्रयत्न है। प्रस्तुत अध्ययन मे रीतिमुक्त प्रवाह के इन्हीं पांच अनधीत और अविश्लेषित काव्यकारों का विस्तृत अध्ययन और विवेचन पहली बार हिन्दी जगत के समक्ष आ रहा है। इसमे घनआनद पर भी प्रासगिक रूप से किन्तु सर्वथा नवीन दृष्टि से विचार किया गया है, प्रथम बार मध्ययुग के रीतिनिरपेक्ष समस्त प्रमुख कवियो का एक साथ अध्ययन प्रस्तुत हो रहा है तथा समस्त कवियों के सम्यक् अध्ययन के आधार पर रीतमुक्त काव्यधारा की विशेषताओं का विशद् रूप मे उद्घाटन किया जा रहा है। मेरे प्रबन्ध की आधारभूमि अपेक्षाकृत कहीं अधिक विशद है इसी कारण इसमे एक ओर जहाँ आभ्यान्तरिक अध्ययन का घनत्व गोचर होगा वहीं उसका विस्तार भी लक्षित किया जा सकता है। घनत्व और विस्तार की एकत्र योजना के दुस्तर उद्देश्य की पूर्ति ने ही इन पंक्तियो के लेखक से इस कार्य की सपूर्ति मे आवश्यकता से अधिक श्रम और समय ले लिया है, जिसके बिना यह कार्य प्रस्तुत रूप मे उपस्थित नहीं किया जा सकता था। प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित मूलभूत विशिष्टताओ तथा महत्वपूर्ण दिशाओं की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ:—

१ इसमे युग की सर्वदिक् परिस्थितियो—राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक[1] और विशेषतः समसामयिक साहित्यिक पृष्ठभूमि को दृष्टि मे रखते हुए स्वच्छन्द-कर्ताओं के कृतित्व का आकलन किया गया है।

---

[1] यह सामग्री इस सस्करण मे नहीं दी जा सकी है।

२ स्वच्छन्दतावादिनी काव्य-प्रवृत्ति सबधिनी देशी एव विदेशी मान्यताओ के आधार पर स्वच्छन्दता की नैसर्गिक प्रवृत्ति का उद्घाटन किया गया है तथा क्लैसिक अथवा शास्त्रीय काव्य रचना की पद्धति से उसका स्पष्ट प्रस्थान-भेद सूचित एव निरूपित किया गया है।

३ रीतियुगीन स्वच्छन्द धारा की विशेषताओ का समस्त प्रमुख कर्ताओ के काव्य के आधार पर विशद् एव सोदाहरण निर्देश किया गया है।

४. परस्पर असबद्ध होते हुए भी केवल कौतूहल एव जिज्ञासावश रीतियुगीन एव अँग्रेजी काव्य की स्वच्छन्दतावादिनी (रोमाटिक) काव्य-प्रवृत्तियो के स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उभय देशीय काव्य-प्रवृत्तियो का यह सामजस्य सर्वथा निजी विचारणा का परिणाम है।

५ अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर मध्य युग के आधे दर्जन प्रमुख रीतिमुक्त कवियो के जीवन और कृतियो की प्रामाणिकता का सविस्तार अध्ययन किया गया है।[1] इस कार्य मे मैंने यत्र-तत्र बिखरी हुई समस्त उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया है तथा कुछ नवीन सामग्री भी प्रस्तुत की है और उनके आधार पर कतिपय निष्कर्षों पर पहुँचा जा सका है। इस दिशा मे स्वतन्त्र शोध नहीं किया गया है क्योकि एक तो वह मेरा मुख्य कार्य-क्षेत्र नहीं रहा है, दूसरे वह कुछ सीमित कार्य भी नहीं है।

६ रीति स्वच्छन्द धारा के कवियो के काव्य का अध्ययन सर्वथा निजी ढग से किया गया है जिसमे एक-एक छद पर हमने यथाशक्ति नाना दृष्टियो से विचार किया है। स्वच्छन्द कवियो के काव्य के भाव एव कला-सौन्दर्य के अध्ययन मे मेरा अपना अभिनिवेश रहा है। इनका अध्ययन करते हुए कवियो की प्रेरणा के मूल सूत्रों के अनुसधान की चेष्टा की गई है तथा भाव एव कला दोनों पक्षो के अध्ययन मे अधीत काव्य के अतस्तल मे पैठने की चेष्टा भी अवश्य आपको दिखाई देगी। कवियों के काव्य की विशेषताओ की उपलब्धि और उनका विश्लेषण सर्वथा अपना है और काव्य के अध्ययन पर ही आधारित होने के कारण एकान्तत अननुकृत है। इन कवियो के अध्ययन हुए भी तो नहीं थे। जहाँ-तहाँ तुलना या समानता और वैषम्य अथवा भिन्नता का उद्घाटन भी निजी अनुशीलन का ही परिणाम है। इसी प्रकार कवियो द्वारा व्यक्त नाना सूक्ष्म भावनाओ के मूल कारणों का भी मै जहाँ-तहाँ सधान करता चला हूँ जो उनके काव्य के अन्तर्दर्शन, स्वकीय अनुभव और मध्ययुगीन साहित्य के अनुशीलन और उनकी परपरा के यत्किचित बोध के कारण ही सभव हो सका है। इसी प्रकार स्वच्छन्द कवियो के प्रबध ग्रथो की प्रबध-योजना एव अन्यान्य विषयो से सबधित तात्विक व्याख्या भी सर्वथा मेरी है। सक्षेप मे यह कि प्रस्तुत प्रबध के चतुर्थ और पचम अध्यायों में मेरे अध्ययन

[1] यह सामग्री इस सस्करण मे नहीं दी जा सकी है।

का सर्वथा स्वतन्त्र और मौलिक रूप देखा जा सकता है। अन्य अध्यायों में जो मौलिकता है वह सामग्री के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से है तथा वैचारिक दृष्टि से जिसमें स्वतन्त्र रूप से निष्कर्ष निकाले गये हैं और किन्हीं परिणामों पर पहुँचा गया है। वहाँ 'प्रेज़ेन्टेशन' और निष्कर्ष-प्राप्ति की नूतनता और कितने ही स्थलों पर अधीत विषय की व्याख्याएँ आपको आकर्षक लग सकती हैं।

(७) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र से दिशा-संकेत प्राप्त कर मैंने फ़ारसी काव्य की फ़ारस की और भारत की परंपराओं का संक्षिप्त एवं ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत करते हुए स्वच्छन्द कवियों पर उनके प्रभाव एवं फ़ारसी तथा स्वच्छन्द काव्यधारा की समान भाव-भूमियों का संक्षिप्त किन्तु सर्वथा मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

संक्षेप में ये ही मेरे अध्ययन की नूतन एवं मौलिक दिशाएँ हैं जिन्हें यदि मैं अपनी उपलब्धियाँ कहूँ तो कोई अनौचित्य न होगा। इस प्रकार सभी प्रमुख कवियों के आधार पर रीतिमुक्त काव्य-धारा के विशद् एवं स्वतन्त्र अध्ययन का यह प्रथम प्रयत्न है तथा इसके द्वारा हिन्दी साहित्यानुसंधान के क्षेत्र में पहली बार आलम, रसखान, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव ऐसे महत्वपूर्ण किन्तु अनधीत कवियों का व्यापक अध्ययन सम्भव हो पा रहा है तथा इस धारा की प्रवृत्तियों के विशद् उद्घाटन के साथ-साथ अन्य देशीय फारसी एवं आंग्ल काव्यों की मिलती-जुलती प्रवृत्तियों के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन अथवा सामंजस्य भी प्रस्तुत किया जा रहा है। साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि पृष्ठभूमि को लेते हुए, फ़ारसी-अँग्रेज़ी आदि काव्यों की समानान्तर धाराओं से मेल बिठाते हुए आधे दर्जन कवियों की विशद् काव्यराशि का अध्ययन अपने आप में असाधारण रूप से विस्तृत कार्य है। यही कारण है कि यह प्रबंध आकार में आवश्यकता से अधिक बड़ा हो गया है। अपने प्रयत्न के इस महाकाय-दोष से मैं अनवगत नहीं, जिसके एक-दो और भी कारण हैं। लगभग डेढ़ दशाब्दी की अध्ययन-वृत्ति ने मुझसे 'गागर में सागर' भरने की क्षमता छीन ली है, फिर सरस अवतरणों को यथास्थान प्रस्तुत करने का लोभ भी मैं सब समय संवरण नहीं कर सका हूँ। इसका एक कारण तो यह है कि रीतिमुक्त काव्य का अधिकांश हिन्दी-साहित्य के अध्येताओं को सामान्यत: सुलभ नहीं है इसलिए प्रस्तुत अध्ययन के साथ-साथ बानगी के तौर पर यदि उन्हें थोड़ा सा मूल काव्य भी जब-तब देखने को मिलता रहे तो रुचिवर्धक ही होगा। दूसरे शोधपरक अध्ययन की शुष्क मरु-भूमि के बीच-बीच सरस छन्दों की हरियाली भी यदि अध्येता को मिलती चले तो वह इस अपेक्षाकृत नीरस एवं दुर्गम मार्ग को अधिक सरसता के साथ पार कर सकेगा। इतना कुछ कहने के बाद जब यही कहना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत प्रयत्न में यदि कोई 'शुक्लता' है तो स्वच्छन्द मति कर्ताओं की और जो कुछ 'कृष्णता' है सब की सब मेरी।

कुछ फुटकल बातें

ठाकुर, आलम और बोधा के अध्ययन से संबंधित पर्याप्त कार्य मैं उपाधि-निरपेक्ष रूप में रीवा में ही कर चुका था, किन्तु स्थानान्तरित हो महू (इन्दौर) चले जाने पर मुझे इन्हीं तथा कुछ अन्य रीति-स्वच्छन्द कवियों पर ही प्रबंध लिखने की प्रेरणा हुई जिसके फलस्वरूप

जनवरी सन् १९६१ मे प्रस्तुत विषय पर रजिस्ट्रेशन विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से हुआ। कार्य जब तीन-चौथाई हो चुका था उस समय मेरा स्थानान्तरण रायपुर हो गया। इस प्रकार रीवा, महू और रायपुर तीन स्थानो मे यह कार्य सम्पन्न हुआ है। इस शोध-कार्य की भी एक अपनी कहानी है जो पर्याप्त रोचक है, किन्तु वह फिर कभी। यहाँ एक अन्य तथ्य की ओर सकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है और वह यह कि प्रस्तुत प्रबध में पाद-टिप्पणी के रूप मे जिन ग्रथो के नाम और पृष्ठ सख्याएं दी गई हैं उनकी प्रकाशन तिथि वही है जो ग्रन्थात मे सदर्भ ग्रंथो की सूची मे दी गई है। किसी-किसी ग्रथ के एकाधिक सस्करणो का प्रयोग करना पडा है, एसी स्थिति मे उस ग्रथ की प्रकाशन तिथि पाद-टिप्पणी मे ही सुभीते के लिए दे दी गई है।

आभार

अब कृतज्ञता-ज्ञापन का पुनीत कार्य ही अवशिष्ट रह जाता है। इस अवसर पर सर्वप्रथम कृतज्ञता पूर्ण स्मृति आती है उन साहित्यान्वेषकों की जो हिन्दी के आधुनिक विकास के प्रारंभिक दिनो मे अपनी अवैज्ञानिक पद्धति पर ही सही हिन्दी की मूल्यवान मणियां सकेल रहे थे और उन्हें अपने ढग से संजो-संजो कर हिन्दी का भडार भर रहे थे। उनकी डाली हुई उस आधारशिला के अभाव मे आज हम बहुत कुछ अपग ही रहते। ऐसे साहित्यानुरागी एव अर्पित जीवनशील साहित्य के पुराने धुरधरों मे हम घनआनद के कवित्तों के प्रथम सग्रह-कर्ता और प्रशस्ति गायक व्रजनाथ, रसखान के कवित्तों का उद्धार करने वाले भारतेन्दु-कालीन पडित किशोरीलाल गोस्वामी, आलम और ठाकुर के कवित्तों को प्रकाश मे लाने वाले आचार्य-प्रवर लाला भगवानदीन, महाराज मानसिंह, 'द्विजदेव' के ग्रथो को पूरे साज-समार और विद्वत्तापूर्ण रीति से प्रस्तुत करने वाले अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायणसिंह और सपादक प० जवाहरलाल चतुर्वेदी का हम सादर स्मरण करते हैं। इनके साथ-साथ बोधा की कृतियों माधवानल-कामकदला और इश्कनामा को प्रकाशित करने वाले जबलपुर निवासी स्व० श्री गणेश प्रसाद और डुमराव निवासी श्री नकछेदी तिवारी हमारे सम्मान के पात्र हैं जिनके उक्त प्रारभिक प्रयत्नों के अभाव मे सरस कवि बोधा से हम अपरिचित ही बने रहते।

इसके पश्चात अपनी सर्वप्रथम प्रणति मे निवेदित करता हूँ आचार्य प विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के प्रति जिन्होने पत्र द्वारा एव व्यक्तिगत रूप से मेरे शोधकार्य से सबधित कतिपय उलझनो को सुलझाया है तथा आवश्यक सकेत देकर मेरा मार्गदर्शन किया है। रीतिस्वच्छन्दधारा के कवियो के काव्य की महत्ता की ओर ध्यान आकृष्ट करने का कार्य सर्वप्रथम आचार्य मिश्र ने ही किया। इतना ही नहीं रसखान, घनआनद, आलम आदि के ग्रथो के प्रामाणिक सपादन मे प्रवृत्त होकर सूक्ष्म साकेतिक भूमिकाओ द्वारा तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका एव शृगार काल आदि ग्रथो मे उक्त विषय तथा सबद्ध कवियो के वृत्त आदि पर शोध प्रधान विचारो तथा निष्कर्षों को प्रकाशित कर आपने इस दिशा के अनुसधाताओ का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

कृतज्ञ भाव से दूसरी प्रणति में डा भवानीशकर याज्ञिक (लखनऊ) को समर्पित करता हूँ जिन्होंने न केवल स्वच्छन्द धारा के सभी प्रमुख कवियो वरन् समस्त मध्ययुगीन ब्रज-भाषा काव्य के दर्जनो प्राचीन कवियो की पाडुलिपियो का विशद रूप से अध्ययन किया है तथा

पाठ-शोध के कार्य मे आज भी जो हमारे अयन्तृप्ट पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। उनकी महायता से तथा उनके निर्देशन मे आज भी दर्जनो शोधार्थी न केवल पी-एच डी की उपाधि से विभूषित हो सकते हैं वरन् हिन्दी साहित्य के भडार को पुष्कल प्रामाणिक पाठानुसंधान एव सुसंपादित ग्रथो से भर सकते हैं। माधवानल-कामकदला, श्याम-सनेही, सुदामा-चरित और शृंगार-लतिका-सौरभ जैसे दुर्लभ ग्रथों के अध्ययन के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ तथा इन सबसे भी अधिक मूल्यवान अपने अनुभव-प्राप्त विचारों द्वारा डॉ याज्ञिक ने मुझे जो सहायता प्रदान की है उसका मैं चिर ऋणी रहूँगा। यह देखकर मुझे असाधारण आश्चर्य हुआ कि उत्तर-प्रदेश-शासन के असिस्टेंट डाइरेक्टर आफ मेडिकल हेल्थ तथा मेडिकल कालेज, लखनऊ के प्रोफेसर ऑफ हेल्थ एेण्ड हाइजीन के पदो को सुशोभित करने वाले तथा एक सर्वथा भिन्न कार्य क्षेत्र के आचार्य होते हुए भी डॉ याज्ञिक हिन्दी-साहित्य के अध्ययन एव चिंतन मे इतनी प्रगाढ़ रुचि और विषय सबधी इतना प्रभूत ज्ञान रखते हैं। आप सन् १९२० से ही गवेषणात्मक निबध लिखते रहे हैं।

इसके पश्चात शृंगार-कालीन काव्य पर महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करने वाले कुछ अन्य विद्वानों का भी सहज स्मरण हो आता है जिन्होंने विशद् रूप से रीति-कालीन काव्य की नानाविध समस्याओ का समाधान किया है तथा जिन्होंने अपने पाण्डित्यपूर्ण शोध-ग्रन्थों और उपलब्धियों द्वारा उस उपेक्षित युग के साहित्य को अब पर्याप्त आलोकित और समृद्ध कर दिया है। ऐसे आचार्यो और विद्वानो मे डॉ रामशकर शुक्ल 'रसाल', डॉ नगेन्द्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय और डॉ मनोहरलाल गौड का मैं सादर स्मरण करता हूँ जिनकी कृतियों से मैंने पर्याप्त लाभ उठाया है और जिनमे से अनेक की व्यक्तिगत कृपा भी मुझे प्राप्त है।

अपने स्नेही मित्रो मे मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ डॉ पारसनाथ तिवारी (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रयाग वि वि) का जिन्होंने उदारतापूर्वक बोधा के दुर्लभ ग्रंथ दीर्घकाल के लिए मुझे सुलभ कर दिये थे, जिनके बिना बोधा का वैसा विशद् अध्ययन मेरे द्वारा सभव न हो पाता जैसा कि अब बन पडा है। अपने बाल्यकालीन सहचर और सहपाठी 'जगदीश' अब डॉ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, प्रयाग वि वि) के प्रति मेरी कृतज्ञता सबसे अधिक है जिन्होंने पर्याप्त रुचिपूर्वक जब तब मेरे शोध कार्य के अशो को देखा है और अनेकानेक दुर्लभ ग्रथों तथा अपने शोध संबधी अनुभवों से मुझे लाभान्वित किया है तथा अपनी सद्भावना एवं प्रेरणा का बल प्रदान किया है। मैं अपने स्नेही मित्र डा श्रीकृष्ण गुप्त (असिस्टेंट प्रोफेसर, सस्कृत, महाकोशल कला महाविद्यालय, जबलपुर) का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे प्रबध के विविध अंशो को समय-समय पर बड़े चाव से सुना और पढा है तथा मेरे महू से रायपुर आने के बाद भी जो बराबर इस कार्य की पूर्ति के लिए मुझे प्रेरित करते रहे हैं। अपने सहपाठी मित्र प्रो भगवती प्रसाद श्रीवास्तव (असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विभाग, राजस्थान वि वि, जयपुर) का मैं अतिशय आभार स्वीकार करता हूँ जो अनन्य सुहृद्भाव के साथ सतत दूर रहते हुए भी मेरे शोध कार्य में मुझे सतत प्रेरणा देते रहे हैं। स्थानान्तरित हो मेरे रायपुर आने पर मेरे शोध कार्य को असाधारण शक्ति और वेग प्राप्त हुआ। यहां भी मेरे पुराने और नये शुभेच्छु मित्रों की एक सुन्दर मण्डली मिली जिसकी

शुभ कामनाएँ सदा मेरे साथ रही हैं। ऐसे मित्रों में मैं बन्धुवर डा. गंगाचरण त्रिपाठी, प्रो रामनिहाल शर्मा (अब डाक्टर) एवं श्री हरिशंकर शुक्ल (अब डाक्टर) को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

अपनी धर्मपत्नी श्रीमती आशा वर्मा का उल्लेख भी इस स्थान पर आवश्यक है। अपनी साहित्य-सेवा के इस पुनीत पथ पर चलते हुए पद-पद पर जिसकी सहायता-संबल के बिना चार डग भी नहीं दिये जा सकते थे, उन्हें धन्यवाद देना और उनके प्रति आभार प्रकट करना भी सम्भव नहीं और न करना भी सम्भव नहीं।

प्रस्तुत शोध कार्य में यों तो मेरे विशाल मित्र-परिवार की स्नेह और सद्भावपूर्ण शुभकामनाएँ मुझे सदा सुलभ रही हैं, परन्तु उन सब के प्रति पृथक्-पृथक् धन्यवाद दे सकना यहाँ सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मेरे अनेकानेक छात्रों का भी एक वर्ग रहा है जो मेरे अन्य साहित्यिक कार्यों के होते हुए भी मुझे प्रस्तुत कार्य की संपूर्ति के लिए विशेष रूप से अपनी शुभकामनाएँ और प्रेरणाएँ भेजता रहा है। अपने ऐसे प्रिय छात्रों में श्री आदित्य प्रताप सिंह (प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, छतरपुर), श्री राम खेलावन वर्मा (प्राध्यापक, नागौद, सतना), श्री रेवा प्रसाद तिवारी (प्राध्यापक, ब्योहारी, शहडोल), कु० कुमुदिनी गोडबोले (प्राध्यापिका, गवर्नमेंट गर्ल्स डिग्री कालेज, इंदौर) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके आदर-भाव-संयुक्त प्रेरणा और शुभकामनाओं के प्रति मैं इन्हें अपना आशीर्वाद ही दे सकता हूँ और ज्ञानानुसंधान तथा साहित्य-सेवा की दिशा में इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य में मैंने सबसे अधिक उपयोग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-संग्रहालय, प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य-भाषा-पुस्तकालय, काशी और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी का किया है, एतदर्थ मैं इन पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं पुस्तक-सहायकों का विशेष कृतज्ञ हूँ। भारती-भवन पुस्तकालय इलाहाबाद, पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद, गवर्नमेंट सेंट्रल लाइब्रेरी इलाहाबाद, ठा. रणमतसिंह महाविद्यालय रीवां, शासकीय महाविद्यालय महू, तथा गवर्नमेंट संस्कृत कालेज रायपुर के संपन्न पुस्तकालयों से भी मैंने पर्याप्त लाभ उठाया है।

अब कृतज्ञता-ज्ञापन का पुनीत एवं अवभृथ-स्नान सा आनन्दप्रद कार्य भी समाप्ति पर आ गया। इस अवसर पर मैं प्रो० शिवनाथ जी उपाध्याय (हिन्दी विभागाध्यक्ष, एम एल बी कालेज, ग्वालियर) के प्रति अपनी विनम्र प्रणति निवेदित करता हूँ जिनके सुयोग्य निदेशन में प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। आपका मार्गदर्शन अपने शोध-कार्य के संपूर्ण काल में ही मेरा पाथेय रहा है। आपने प्रस्तुत शोध-कार्य के पथ में आने वाली हर बाधा को दूर किया है, अपने ज्ञान और अनुभव के प्रकाश से मेरे कार्य के संपूर्ण पथ को सदा प्रकाशित रखा है तथा मुझे यथेच्छ सहायता, सुझाव, शक्ति, और प्रेरणा प्रदान की है।

मुझे विश्वास है कि मेरे प्रस्तुत शोध कार्य ने साहित्यिक अनुसंधान और अध्ययन की जो लौ मुझमें उद्दीप्त की है वह भविष्य में भी निष्कम्प रह सकेगी।

लगभग ४ वर्ष पूर्व यह शोध प्रबंध रायपुर में प्रणीत हुआ था तथा १५ अगस्त १९६३ को इसकी यह प्रस्तावना लिखी गई थी।

इस महाकाय प्रबंध को अत्यन्त सद्भावपूर्वक प्रकाशित करने का दायित्व उठा लेने के लिए मैं लायल बुक डिपो, ग्वालियर के संचालक श्रीयुत रामप्रसाद जी अग्रवाल का तथा उसे अत्यन्त उत्साहपूर्वक प्रकाशित करने के लिए कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल के उत्साही और तरुण संचालक श्री शिवप्रसाद अग्रवाल का विशेष रूप से आभारी हूं।

रीति-काव्य के असाधारण मर्मज्ञ तथा रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य के अनन्य उद्धारक विद्वद्वर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस प्रबंध की भूमिका लिखने की कृपा की है। इसके लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

भोपाल
वसंत पंचमी
१४ फरवरी १९६७

—कृष्णचन्द्र वर्मा

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा

रीति-स्वच्छन्द काव्य-धारा

प्रथम अध्याय

साहित्यिक-पृष्ठभूमि

●

१. रीतिमुक्त शृंगार धारा के छ प्रमुख कवि तथा धारा का काल-निर्धारण

२. रीतिकाल की नई अभिधा . शृंगार काल

३. शृंगार-कालीन काव्य का वर्गीकरण : विविध काव्य-धाराओं का संक्षिप्त परिचय

★

१

रीतिमुक्त शृङ्गार धारा के छः प्रमुख कवि तथा धारा का काल निर्धारण

हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में और रीतियुगीन काव्य के समीक्षा-ग्रन्थों में यह बात निर्विवाद रूप से अब स्वीकृत हो चुकी है कि हिन्दी-साहित्य के शृंगार काल (रीति-काल) में रीति स्वच्छन्द शृंगार काव्य की एक स्वतन्त्र धारा भी अस्तित्व में थी जिसके प्रधान पुरस्कर्ताओं का योग हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में तत्कालीन अन्य काव्य धाराओं के कवियों से कम नहीं था। यह बताने के लिये कि हिन्दी में रीति स्वच्छन्द शृंगार काव्य-धारा का स्वतन्त्र अस्तित्व अब किसी से छिपा नहीं और वह हिन्दी के लगभग सभी विद्वानों को मान्य हो गया है कतिपय हिन्दी विद्वानों के मतों का उल्लेख आवश्यक है -

(१) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति के बन्धन से मुक्त होकर शृंगार रस की फुटकर रचना करने वालों को प्रेमोन्मत्त कवि कहा है। उन्होंने इनमें दो विशेषताएँ लक्षित की हैं एक तो यह कि इन कवियों ने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अन्तर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है, दूसरे इनके पद्यों में मार्मिकता और मनोहरता अपेक्षाकृत अधिक है और उसका कारण यही है कि लक्षणों को देखकर इन्हें काव्य रचना नहीं करनी पड़ती थी। इन प्रेमोन्मत्त कवियों में आचार्य शुक्ल ने रस-खान, घनआनन्द, आलम और ठाकुर की गणना विशेष रूप से की है और इनमें घनआनन्द को सर्वश्रेष्ठ कहा है।[1] आचार्य शुक्ल ने रचना शैली की दृष्टि से इन्हें रीतिबद्ध कवियों से भिन्न नहीं पाया किन्तु इनकी प्रेम-भावना के वैशिष्ट्य से प्रभावित हो वे इन्हें प्रेमोन्मत्त अवश्य कह गये हैं।

(२) कवि सम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" ने इन रीतिमुक्त कवियों की स्वच्छन्द प्रेम-भावना को स्पष्ट पहचान लिया था। रीतिकालीन काव्य का शताब्दी-क्रम से विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'रीति ग्रन्थकारों के बाद अब मैं उन प्रेम-

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६७।

मार्गी कवियों की चर्चा करूंगा जो प्रेम मे मत्त होकर अपने आन्तरिक अनुराग से ही कविता करते थे। उनका प्रेममय उल्लास उनकी पंक्तियों मे विलसित मिलता है और उनके हृदय का मधुर प्रवाह प्रत्येक सहृदय को विमुग्ध बना देता है।' ये रीति ग्रन्थकार और (मूलत) प्रबन्धकार कवि नही हैं वरन प्रेममार्गी शृंगारी कवि हैं। वे इनकी बहुत बडी सख्या मानते हैं किन्तु उनमे विशेषता प्राप्त निम्नलिखित हैं—घनआनन्द, नागरीदास, सीतल, बोधा, रसनिधि, ठाकुर, रामसहायदास, पजनेस और मानसिंह द्विजदेव"[1]। प्रस्तुत प्रबन्ध मे ग्रहीत, घनआनन्द, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव को हरिऔध जी ने भी स्वच्छन्द शृंगारी कवि माना है। रसखान और आलम पूर्ववर्ती शताब्दी के कवि होने के कारण यहाँ उल्लिखित नही हो सके हैं।

(३) प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बहुत पहले ही रीतिमुक्त शृंगारी कवियो का वैशिष्ट्य सूचित किया था तथा प्रेम के स्वच्छन्द गायकों का साहित्य के इतिहास मे विशेष महत्त्व बतलाया था। भक्तिकाल के रसखान और आलम तथा शृगार काल के घनआनन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव को इसी वर्ग मे परिगणित किया था और कहा था कि इन कवियो मे अपनी अलग-अलग ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस काल के दूसरे वर्ग के कवियो के बाँटे नही पडी यहाँ तक कि बिहारी के भी नही।[2] आगे चलकर अपनी पुस्तक बिहारी, घनआनन्द-ग्रन्थावली और डा० मनोहरलाल गौड के प्रबन्ध की भूमिका मे आचार्य मिश्र ने इस धारा की प्रवृत्तियों का मार्मिक विश्लेषण भी किया है। मिश्रजी ने 'शृगारकाल' नामक अपने ग्रन्थ मे 'रीतिमुक्त काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत स्वच्छन्द काव्यधारा के इन्ही छ कवियो का वर्णन-विवेचन किया है जो प्रस्तुत प्रबन्ध मे ग्रहीत हुए हैं।[3]

(४) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल की कविता मे एक प्रकार की स्वच्छन्द प्रेम-धारा का विकास स्वीकार किया है और इस धारा के कवियों मे उन्होंने घनआनन्द, आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव के साथ वेनी, सेनापति, बनवारी, मुबारक, रसनिधि और पद्माकर का भी उल्लेख किया है और बताया है कि इन कवियो की कविता मे इस सहज प्रवाहमय प्रेम-धारा का निखरा हुआ रूप मिलता है।[4] प्रस्तुत प्रबन्ध के रसखान को छोडकर शेष पाँच कवि द्विवेदीजी द्वारा स्वच्छन्द प्रेम-धारा के कवि स्वीकृत हुए हैं।

(५) डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित एव सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास के छठे भाग मे 'रीतिमुक्ति प्रवाह' शीर्षक के अन्तर्गत रसखान, घनआनन्द, आलम, ठाकुर और बोधा का उल्लेख किया है जिन्होंने लक्षणबद्ध रचना नही की बल्कि उससे स्वतन्त्र ढग की रचना करके जनता को प्रेम की पीर ही सुनाते रहे।[5]

(६) डा० भगीरथ मिश्र ने रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त या रीति-विरुद्ध कवियो को एक साथ ही रखा है यद्यपि उनके बीच की भेदक रेखा उन्हें दिखाई दे गई थी। स्वच्छन्द

---

[1] हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ०४२८ तथा ४६०।
[2] वाङ्मय विमर्श, पृ० ३०१-३०२।
[3] हिन्दी साहित्य का अतीत : भाग २, शृंगार काल।
[4] हिन्दी साहित्य, पृ० ३३८ और ३४१।
[5] हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० १६३।

शृंगार धारा के अन्तर्गत उन्होंने स्वच्छन्द कवियों घनआनन्द, आलम, ठाकुर, रसनिधि, सीतल, रामसहाय, विक्रमसाहि आदि के साथ-साथ सेनापति, बिहारी ऐसे रीतिसिद्ध या रीति-प्रभावित कवियों को भी बांध दिया है ।[1]

(७) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने शोध प्रबन्ध में सामान्य काव्य-रीति पर ग्रन्थ रचना न कर प्रेम-तत्व को अपनी रचना का प्रधान आधार बनाकर चलने वालों तथा शृंगार रस सम्बन्धी मुक्तक काव्य लिखने वालों में प्रस्तुत प्रबन्ध के कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य नाम भी गिनाए हैं । उनके द्वारा सकेतित कवियों मे बोधा, ठाकुर, द्विजदेव के अतिरिक्त रामसहायदास, पजनेश, सेवक तथा असनी के ठाकुर द्वितीय हैं ।[2]

(८) डा० मनोहरलाल गौड़ ने अपने प्रबन्ध ग्रन्थ मे इस धारा के स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा की है और निम्नलिखित सात कवियों को इस धारा से सम्बद्ध बतलाया है—रसखान, आलम, घनआनन्द, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव और बख्शी हसराज ।[3]

(९) डा० बच्चनसिंह ने अपने प्रबन्ध के अन्तर्गत स्वच्छन्द काव्य-धारा के कवियों की प्रेम व्यजना का विवेचन एक स्वतन्त्र अध्याय मे किया है और इस वर्ग के कवियों मे आलम, घनआनन्द, बोधा और ठाकुर का विशेष उल्लेख किया है तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति का वैशिष्ट्य दिखलाने के लिये द्विजदेव की रचना भी उद्धृत की है ।[4]

(१०) डा० जगदीश गुप्त ने अपने रीति-काव्य के सग्रह-ग्रन्थ मे स्वच्छन्द-शृंगार-धारा के इन कवियों का स्वतन्त्र और पृथक विवेचन न करते हुए भी 'रीति शैली के प्रेमी कवि' कहकर इनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है ।[5] हमारे प्रबन्ध के ५ कवि (रसखान, आलम, घनआनन्द, ठाकुर और बोधा) उनके द्वारा भी इसी स्वच्छन्द वृत्ति के ही कवि स्वीकृत हुए हैं ।

उपर्युक्त प्रमाणों से दो बातें निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती हैं ।

(१) एक तो यह कि हिन्दी साहित्य के रीति-काल मे रीतिमुक्त या रीति-स्वच्छन्द शृंगार काव्य की एक स्वतन्त्र धारा निश्चित रूप मे प्रवाहित हो रही थी, तथा उस धारा मे अनेकानेक भावुक और प्रेम भावना के मर्मी कवि हो गये हैं ।

(२) दूसरे यह कि आलम, रसखान, घनआनन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव का उसमे प्रधान और निश्चित स्थान था । रीतियुगीन काव्य के लगभग सभी विश्लेषकों ने प्रस्तुत प्रबन्ध मे ग्रहीत उक्त आधे दर्जन कवियों को रीतिमुक्त या रीति-स्वच्छन्द शृंगारी कवियों मे सर्वप्रमुख ठहराया है ।

यह काव्य-धारा या परम्परा इन्ही कवियों तक सीमित नही है । इस धारा के और भी कवि हो गये हैं जैसे—१ बेनी २ बनवारी ३ रसिक गोविन्द ४ मुबारक ५ रस-निधि ६ नागरीदास ७ बख्शीहसराज ८ भगवतरसिक ९ रामसहायदास १०. पजनेस

---

१ हिन्दी-साहित्य का उद्भव और विकास : द्वितीय खण्ड, पृ० १०३-४

२ आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भूमिका, पृ० २२७-२८ :

३ घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्य-धारा, पृ० २३७-२७८ ।

४ रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यजना, पृ० २२३ तथा २५५-५६ ।

५ रीति-काव्य संग्रह, पृ० ३२५ तथा आगे ।

११. अलीमुहिबखाँ 'प्रीतम' १२. नेवाज १३. सीतल १४. रसलीन १५. ताज १६ मचित १७. हठी १८. अलवेली अलि १९ सेवक २०. जमनी के ठाकुर द्वितीय २१. गोविन्दसिंह २२. रामचन्द्र २३. विक्रमसाहि २४ ध्रुवदास २५ ब्रजवासीदास २६. हितवृन्दावनदास २७. सुन्दरकुँवरि बाई २८. सहचरिसरण २९. रत्नकुवरिवीबी ३० कृष्णदास ३१. गुणमंजरीदास ३२ रघुनाथ वंदीजन ३३ बनीठनी ३४. गुमान मिश्र। लोगों ने बिहारी, सेनापति, पद्माकर, दीनदयालगिरि और गोकुलनाथ को भी इसी श्रेणी मे रखने का प्रस्ताव किया है। इन सभी कवियों के काव्य की स्वच्छन्द-वृत्ति की पडताल होनी बाकी है और *असम्भव नही कि इस सूची मे से अनेक उत्कृष्ट कवि इसी वर्ग के निकल आएँ।* इस सूची से अनेक नाम हटाये भी जा सकते हैं और इसमें अनेक नाम जोडे जाने की भी सम्भावना है। यह कार्य भविष्य के अनुसधायकों का होगा।

जहाँ तक धारा के काल-निर्धारण का प्रश्न है मोटे तौर से यह बात स्वीकार करनी पडेगी कि यह रीति स्वच्छन्द काव्य-धारा रीति-कालीन काव्य की ही एक महत्त्वपूर्ण धारा थी जिसका आरम्भ रीतिकाल के पूर्व ही हो गया था। धारा के प्रधान कवियों का काल-क्रम इस प्रकार है

	जन्म-काल	काव्य-काल	मृत्यु-काल
१ रसखान	स० १५९०	सं० १६४०-७१	स० १६७५ या स० १६८५
२. आलम		स० १६४०-८०	
३. घनआनन्द	स० १७४६	स० १७७७-१८१७	स० १८१७
४. बोधा		स० १८०४-२५	
५. ठाकुर	स० १८२३	स० १८५०-८०	स० १८८०
६. द्विजदेव	स० १८७७		स० १९२७

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीति स्वच्छन्द धारा का आरम्भ और विकास रीतिबद्ध काव्य-धारा के समानान्तर ही हुआ। उसमें रीतिबद्ध प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया का भाव था और इसी कारण वह साथ-साथ अपने अस्तित्व और महत्त्व का भी सूचन करती चली। उपर्युक्त तिथियाँ सर्वथा निश्चित और अन्तिम तो नहीं हैं किन्तु विद्वानों द्वारा किए गए शोध एव सूचना संग्रहों, अनुमानों और स्वीकृतियों के आधार पर ग्रहीत की गई हैं। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि यह धारा मोटे तौर से स० १६४० के आस-पास से शुरू होकर समग्र रीति-काल तक प्रवाहित होती रही और आधुनिक काल मे भी उसका प्रवेश हुआ है। सवत् १९२७ तक तो द्विजदेव जी ही इस काव्य प्रवाह को शक्ति देते रहे।[1] रसखान और आलम का सम्बन्ध पूर्ववर्ती भक्ति-काल से ही रहा है जैसा कि पहले दिए गए विवरण मे विदित होता है परन्तु ये लोग इस धारा के प्रमुख उन्नायकों मे रहे हैं तथा ये रीति-काल के रीति-स्वच्छन्द प्रेम के गायकों के अग्रदूत (Precursor) थे अतएव प्रतिपाद्य

---

[1] आधुनिक काल में भी यह स्वच्छन्द वृत्ति सक्रिय रही जिसका अध्ययन डॉ० रामचन्द्र मिश्र ने अपने 'श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य' शीर्षक प्रबन्ध में किया है।

की पूर्णता की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध में इनका भी अध्ययन किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान की गणना प्रेमी कवियों में की है। उन्होंने इनकी आत्यन्तिक प्रेमवृत्ति को देखकर कहा है कि रसखान का हृदगत प्रेम अत्यन्त गूढ़ भगवद्भक्ति में परिणत हो गया तथा प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृंगार सम्बन्धी कवित्त-सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे। इनकी प्रेम-भाव व्यंजक रचनाएँ परिमाण में अधिक न होने पर भी प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली हैं।[1] दूसरी बात यह है कि इनकी प्रेम-वर्णना घनआनन्दादिकों के समान स्वच्छन्द या रीति बन्धनमुक्त है। तीसरी बात यह है कि कवित्त-सवैयों की शैली अपनाकर इन्होंने रीतिकालीन प्रेमी कवियों से अपना निकट का सम्बन्ध स्थापित किया। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास' (षष्ठ भाग) में भी रसखान को रीति-मुक्त प्रवाह का कवि माना गया है।[2]

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७७।

२ हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० ३६३।

२

रीतिकाल की नई अभिधा : शृंगार-काल

नामकरण के सम्बन्ध में विभिन्न मत—हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्य युग (सं० १७००-१६००) के नामकरण के सम्बन्ध मे कोई विवाद नही चला, हाँ थोड़ा मतभेद अवश्य रहा है और वह अब भी बना हुआ है। यह मतभेद भी तात्विक न होकर दृष्टि-भेद के कारण है। सर्वप्रथम इस युग का नामकरण आज मे लगभग ५० वर्ष पहले सं० १६७० मे मिश्र-बन्धुओ ने किया, उन्होंने इस काल को 'अलङ्कृत काल' कहा। इसके १६ वर्ष बाद संवत् १६८६ मे अपने इतिहास मे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस युग का नाम 'रीतिकाल' रखा। दो वर्ष बाद सं० १६८८ मे अपने इतिहास मे डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने इस युग को 'काव्य-कला-काल' नाम दिया। सं० १६६६ मे 'वाङ्मय विमर्श' मे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उत्तर-मध्य काल को 'शृंगार-काल' नाम से अभिहित किया। वे अपने इस नाम के पक्ष मे उत्तरोत्तर अधिक दृढ़मत होते गये हैं तथा बिहारी, घनआनन्द-ग्रन्थावली और हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग २) नामक ग्रन्थो मे उन्होंने 'शृंगार-काल' नाम के औचित्य पर अपना अभिमत विस्तार के साथ व्यक्त किया है और कहा है कि अनेक दृष्टियो से 'शृंगार-काल' नाम ही अधिक उपयुक्त है अतएव 'रीतिकाल' की जगह इस नाम के प्रचलन की अपेक्षा है। उत्तर-मध्य-युग के काव्य मे अलंकरण या अलंकार-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की प्रचुरता के कारण तथा काव्य के कलापक्ष के प्रति कवियो के विशेषाग्रह के कारण ही मिश्र-बन्धुओं तथा डा० रसाल ने 'अलङ्कृत काल' या 'काव्य-कला-काल' नाम सुझाए थे। किन्तु इन आलोचको ने अपने दिए हुए नामो के प्रति किसी प्रकार का आग्रह नही प्रदर्शित किया है। साथ ही रीति और शृंगारिकता को इस युग की काव्य की प्रधान प्रवृत्ति ठहराते हुए 'रीति' शब्द का भी इस काल, कवि तथा काव्य के साथ प्रयोग किया है। उपर्युक्त सभी नामों मे 'रीतिकाल' नाम का प्रचलन सबसे अधिक हुआ। रीति-शास्त्र और काव्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ डा० नगेन्द्र ने भी 'रीतिकाल' नामक अभिधा के पक्ष मे ही अपना मत प्रकट किया है।

अब प्रश्न यह है कि औचित्य की दृष्टि से कौन-सा नाम उपयुक्त है और ग्राह्य होना

चाहिए। इस युग का नाम 'रीतिकाल' रखते हुए भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने नामकरण के कारणों की चर्चा नहीं की है किन्तु उनके इतिहास से आप नामकरण के कारणों तक पहुँच अवश्य सकते हैं। उन्होंने साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार उनका नामकरण किया है। उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहने का कारण यही जान पड़ता है कि इस काल में रीति ग्रंथों अर्थात् रस, अलंकार आदि काव्यांगों अथवा काव्य-रीति का निरूपण करने वाले ग्रन्थों की परम्परा सी चल पड़ी। यही उनकी दृष्टि में इस युग के काव्य की व्यापक प्रवृत्ति रही है। काव्यांग-निरूपक लक्षण ग्रन्थों को आचार्य शुक्ल ने 'रीतिग्रन्थ' की संज्ञा दी है। 'रीति' शब्द संस्कृत में एक काव्य-सम्प्रदाय विशेष का वाचक था जिसके प्रवर्तक आचार्य वामन थे। उन्होंने एक विशिष्ट प्रकार की पद-रचना को 'रीति' कहा और उसे ही काव्य की आत्मा करार दिया। हिन्दी में रीति शब्द कुछ स्वतन्त्र अर्थ रखता था। उसका आशय था पन्थ या मार्ग, शैली या पद्धति। इन अर्थों में यह शब्द रीति-काव्य में बराबर व्यवहृत होता रहा है।

(क) रीति सु भाषा कवित की बरनत बुधि अनुसार। (चिंतामणि)

(ख) छन्द रीति समुझै नहीं बिन पिंगल के ज्ञान। (सोमनाथ)

(ग) अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति। (देव)

(घ) सो विश्रब्धनवोढ यों बरनत कवि रस-रीति। (मतिराम)

(ङ) काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों देखी सुनी बहु-लोक की बातें।

(भिखारीदास)

(च) थोरे क्रम क्रम ते कही अलंकार की रीति। (दूलह)

(छ) कवित रीति कछु कहत हौं व्यंग अर्थ चित लाय। (प्रतापसाहि)

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य-पन्थ या काव्य-विधान के अर्थ में यह शब्द भाषा-काव्य-परम्परा में प्रयुक्त होता रहा है। आचार्य शुक्ल ने 'रीति' शब्द को एक काव्य-युग और काव्य-परम्परा का बोधक बनाकर इस शब्द को नई अर्थसत्ता प्रदान की।[1] 'रीति-शास्त्र' शब्द काव्य के किसी भी अंग को लेकर लिखे गए काव्य-शास्त्र या अलंकार-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ का वाचक हो गया। 'रीतिकाव्य' शब्द काव्य-शास्त्रीय नियमों से बद्ध काव्य-रचना का सूचक हो गया और 'रीतिकाल' उस युग विशेष का बोधक हो गया जिसमें 'रीति-ग्रन्थ' और 'रीति-काव्य' लिखा गया। 'रीति' शब्द में आचार्य वामन द्वारा निर्दिष्ट 'विशिष्ट पदरचना' तथा 'काव्य पन्थ' और 'काव्य-विधान' वाले प्रचलित अर्थ भी किसी न किसी रूप में निहित रहे। यह बात सभी को मान्य हुई कि रीति-काव्य में काव्य के साधन पक्ष या बाह्याकार पर ही विशेष जोर दिया जाता है और वह एक खास ढर्रे पर की गई रचना

---

१ संस्कृत में 'रीति' शब्द का व्यवहार ऐसे व्यापक अर्थ में नहीं होता, पर 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस, अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है जिसे हिन्दी काव्य-परम्परा का मान्य अर्थ समझना चाहिए। 'रीति' वस्तुतः 'काव्य रीति' का संक्षिप्त रूप है। (काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों देखी-सुनी बहु-लोक की बातें)

—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : शृंगार-काल, पृ० २२४।

होती है। इस प्रकार 'रीति' शब्द को एक विशेष काव्य-युग और काव्य-पद्धति का वाचक बनाकर शुक्ल जी ने अनोखी सूझ-बूझ का परिचय दिया इसमें सदेह नही। डॉ० नगेन्द्र ने शुक्ल जी द्वारा दिये गए नाम 'रीतिकाल' के अर्थ और अभिप्राय से पूर्ण सहमति प्रकट करते हुए इस नाम के प्रयोग का पूर्ण समर्थन किया है।[1]

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र औचित्य के विचार से 'उत्तर-मध्य युग' को 'रीतिकाल' की अपेक्षा 'शृंगार-काल' की अभिधा देने के पक्ष मे हैं। इस बात की घोषणा उन्होंने लगभग २० वर्ष पहले की थी[2] तथा इस विषय पर वे ज्यो-ज्यो उत्तरोत्तर विचार करते गए हैं उनका मत अधिकाधिक दृढतर होता गया है। अब तो वे अपने प्रस्तावित नाम के पक्ष मे अत्यन्त दृढमत हैं यहां तक कि लगभग तीन दशाब्दियों के बीच किये गए रीतियुगीन काव्य के अध्ययन के आधार पर उन्होंने जिस ग्रन्थ का प्रणयन 'हिन्दी-साहित्य का अतीत' (भाग २) नाम से किया है उसका अपर नाम 'शृंगार-काल' रखा है। 'शृंगार-काल' नाम की ग्राह्यता के पक्ष मे उनके कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनका मत है कि साहित्य के किसी काल के नामकरण के अनेक आधार हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कृति, कर्त्ता, विषय, पद्धति आदि किन्तु किसी साहित्य-काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्व प्रधान होंगे एक सर्व-सामान्य या व्यापक प्रवृत्ति की बोधकता, दूसरे अन्तर्विभाग का सुभीता। साहित्य के किसी काल विशेष की सर्व-सामान्य प्रवृत्ति का बोध उस काल विशेष मे प्रस्तुत ग्रथराशि के बाहुल्य से हो सकता है, उसकी समस्तता से नहीं। एक ही काल मे कुछ प्रवृत्तियां पूर्ववर्ती युग की चलती रहती हैं और कुछ आगत युग की भी सामने आती हैं इसलिए युग-विशेष की व्यापक प्रवृत्तियो का स्वरूप बाहुल्य के ही आधार पर निर्दिष्ट किया जा सकता है।

कृति, कर्ता और पद्धति की अपेक्षा किसी युग विशेष मे उस युग के साहित्य का प्रधान

---

[1] "हिन्दी मे रीति का प्रयोग साधारणतः लक्षण ग्रन्थों के लिए होता है—जिन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न अगो का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन होता है उन्हें रीति ग्रन्थ कहते हैं और जिस वैज्ञानिक पद्धति पर, जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं।—यहां काव्य-रचना सम्बन्धी नियमों के विधान को ही समग्रत रीति नाम दे दिया गया है। जिस ग्रन्थ में रचना सम्बन्धी नियमों का विवेचन हो वह रीति-ग्रन्थ और जिस काव्य की रचना इन नियमों से आबद्ध हो वही रीति-काव्य है। स्वभावतः इस काव्य में वस्तु की अपेक्षा रीति अथवा आकार की, आत्मा के उत्कर्ष की अपेक्षा शरीर के अलकरण की प्रधानता मिलती है। —उनसे (शुक्लजी से) पूर्व रीति शब्द का स्वरूप निश्चित और व्यवस्थित नहीं था। ऐसे लक्षण ग्रन्थों के लिए भी जिनमे रीति कथन तो नहीं है, परन्तु रीति-बन्धन निश्चित रूप से है, रीति सज्ञा शुक्लजी से पहले अकल्पनीय थी। उनके विधान में जिसने रीति-ग्रन्थ रचा हो, केवल वही रीति-कवि नहीं है वरन् जिसका काव्य के प्रति दृष्टिकोण रीतिबद्ध हो वह भी रीति-कवि है।"

—डॉ० नगेन्द्र (रीति-काव्य की भूमिका, सन् १९५३, पृ० १२९-३०)

[2] वाङ्मय विमर्श : पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० २८६-२८७।

वर्ण्य-विषय ही नामकरण का सर्वथोपयुक्त आधार होता है। वर्ण्य के भी दो पक्ष हो जाते हैं—एक बाह्य दूसरा आभ्यन्तर। भारतीय दृष्टि से साहित्य का आभ्यन्तर प्रतिपाद्य भाव या रस होता है। हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में रीति अर्थात् अलकार, नायिकाभेद, शब्दशक्ति, पिंगल आदि बाह्य वर्ण्य हैं तथा शृंगार आभ्यन्तर वर्ण्य। रीतिकाल में प्रणीत लगभग समस्त रचनाओं में न्यूनाधिक रूप में शृंगार सर्वत्र व्याप्त है इसी कारण इस काल का नाम 'शृंगार काल' होना चाहिए। रीति के कवियों के काव्यांग विवेचन के उदाहरण अधिकांशतः शृंगार के रहे। जिन्होंने रीति से बंधकर रचना नहीं की (उदाहरण के लिए बिहारी या घनआनन्द, बोधा, ठाकुर आदि) उनके काव्य का भी मुख्य वर्ण्य शृंगार ही रहा। रीति के रचयिता भी अधिकतर काव्यशास्त्र के समर्थ आचार्य नहीं थे। इससे भी पता चलता है कि इन्होंने रीति का पल्ला केवल सहारे के लिये ही पकड़ा था वैसे ये कहना शृंगार ही चाहते थे। इसी कारण रस, नायिकाभेद, नखशिख, षड्ऋतु, बारहमासा आदि सम्बन्धी ग्रन्थ ही विशेषत. प्रणीत हुए। शब्दशक्ति और ध्वनि ऐसे गम्भीर विषयों की ओर लोग कम गये। अलकारों से सम्बन्धित रीति ग्रन्थ पर्याप्त परिमाण में तैयार किये गये परन्तु उनका कथितव्य प्रधानतः शृंगार ही रहा। उस समय की परिस्थितियाँ अर्थात् दरबारी वातावरण और वह काव्य जिसकी प्रतिद्वंद्विता में भाषा कवियों को अपना करतब दिखलाना पड़ता था भी शृंगारमय ही था। इसके कारण भी काव्य शृंगारी ही हुआ करता था। रीतिकाल नाम देने से आलम, ठाकुर, घनआनन्द, बोधा, द्विजदेव ऐसे काव्योत्कर्ष में अद्वितीय शृंगारी कवियों को खींचकर फुटकल खाते में झोंकना पड़ा क्योंकि 'रीति' की सीमा में ये कवि न समा सके। 'रीति' नाम देने से लोगों को यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि इनके विभाजन का कोई मार्ग अभी मिल नहीं रहा। 'रीति' नाम देने से यदि उपविभाग का मार्ग मिला भी तो अत्यन्त सकीर्ण। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से विचार करने पर 'अलकृत-काल' या 'रीतिकाल' नामों में अपेक्षित व्याप्ति का अभाव है। ऐसी दशा में इन नामों के हटाने और 'शृंगार काल' नाम के स्वीकार करने की स्पष्ट अपेक्षा है। यह ध्यान देने की बात है कि 'शृंगार' शब्द में इस युग के काव्य की सजावट या अलकरण के व्यापक स्वरूप का भी सकेत मिलता है।

निष्कर्ष—हिन्दी साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में लगभग सभी पूर्ववर्तिनी काव्यधारायें प्रवाहित होती रहीं तथा निर्गुण और सगुण उपासना की संत और सूफी तथा राम और कृष्ण भक्ति धाराएँ और वीरगाथा काल की वीरकाव्यधारा तथा अभिनव नीतिकाव्यधाराओं में भी पर्याप्त परिमाण में कवि समाज ने योग दिया। मात्रा या परिमाण की दृष्टि से उक्त धाराओं के अन्तर्गत लिखित साहित्य कम नहीं है जैसा कि इसी अध्याय में अन्यत्र दिये गये विवरणों से विदित होगा फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि सबसे अधिक प्राणवान साहित्य शृंगारधारा का ही है। बड़े-बड़े काव्यशास्त्र के पण्डितों का शास्त्रचिंतन कच्चा, हलका और शिथिल है, हाँ, शृंगारी रचना में कवि अवश्य एक से एक बढ़कर हुए और इस दिशा में उन्होंने अपनी अच्छी गति का परिचय दिया है। शृंगार की प्रवृत्ति इस युग में इतनी प्रबल और व्यापक हुई कि रीति ग्रन्थ तो रीति ग्रन्थ, रामभक्ति और कृष्णभक्ति-प्रधान रचनाओं में भी शृंगारिकता का प्राधान्य हो चला। सूफी तो प्रेम भावना को लेकर चलते ही हैं, संतों में भी शृंगार की झलक जहाँ-तहाँ मिलती है। वीरकाव्य प्राचीन परम्परा का

अवशेष है तथा नीतिकाव्य समयुगीन सामाजिक चेतना का क्षीण प्रतिबिम्ब। जो हो, यह बात निर्विवाद है कि इस युग के काव्य की सर्वाधिक व्यापक और प्रबल प्रवृत्ति या सर्वप्रधान वर्ण्य शृंगार था। रीति की प्रचुरता थी किन्तु उसकी गुणात्मक शक्तिमत्ता पूर्णतः संदिग्ध है फिर 'रीति' संज्ञा के चलन से अनेक समर्थ कवियों को रीति की महत्त्वपूर्ण सीमा से बहिष्कृत करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में शृंगारकाल नाम का स्वीकरण ही बुद्धिसंगत है। 'शृंगार-काल' नाम स्वीकार कर लेने से रीतिमुक्त अनेक महत्त्वशाली कवि अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेंगे और काल के उपविभाग का मार्ग भी अनवरुद्ध हो जायगा। फिर वीरकाल, भक्तिकाल ऐसे आभ्यन्तर वर्ण्य सूचक नामों का मेल भी 'शृंगार काल' नाम से अच्छी तरह बैठ जायगा। 'रीतिकाल' नाम उक्त क्रम में बेमेल बैठता है। यह पहले ही कह चुके हैं कि 'शृंगार काल' नाम उत्तर मध्य-युगीन समस्त प्रवृत्तियों का बोधक नहीं फिर भी वह सर्वप्रधान और सर्वव्यापक प्रवृत्ति का निश्चय ही बोध कराता है। वर्ण्यगत प्रवृत्ति की समस्तता के आधार पर किसी साहित्य-युग का नामकरण असम्भव है इसलिए प्रवृत्ति विशेष की सशक्तता और व्यापकता ही वह आधार हो सकती है जिस पर किसी युग का नाम रक्खा जा सकता है। 'अलंकृत काल', 'कला-काल, 'रीतिकाल' ऐसे बाह्यार्थ या वर्णन-प्रणाली सूचक नामों में वह व्याप्ति, गरिमा और प्रवृत्ति द्योतन सामर्थ्य और काव्य के आभ्यन्तर प्रयोजन की व्यंजना नहीं है जो शृंगार काल' नामक नाम में है। इसलिये आग्रह-मुक्त होकर हिन्दी के विद्वानों को इस नाम को स्वीकार करना चाहिये।

३

शृङ्गार-कालीन काव्य का वर्गीकरण : विविध काव्यधाराओं का संक्षिप्त-परिचय

रीति या शृंगार काल (सं० १७००-१९००) मे लिखित समस्त उपलब्ध साहित्य का वर्ण्य अथवा विषय के अनुसार विभाजन पहली बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे चलते हुए ढग से कर दिया था। ३२ वर्ष बाद आज हिन्दी-साहित्य के वृहद इतिहास (षष्ठ भाग, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र) मे भी हम इस विभाजन को लगभग ज्यो का त्यो पाते हैं। उन्होंने रीति ग्रन्थो की रचना को इस युग के साहित्य की प्रधान एव रीति-निधि प्रवृत्ति मानकर इस काल का नामकरण भी 'रीतिकाल' किया था। इतर प्रवृत्तियो को गौण ठहराते हुए उन्होने उनका विवरण एक भिन्न प्रकरण मे दिया। शुक्लजी का वर्गीकरण इस प्रकार है

(१) रीति-ग्रन्थकार कवि—जिन्हे रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं।

(२) रीति-काल के अन्य कवि—जिन्होने रीति-ग्रन्थ न लिखकर दूसरे प्रकार की पुस्तकें लिखी।

इस दूसरे ढग के कवियो की कविता को उन्होने सात वर्गों मे विभक्त किया है[१] —

पहला वर्ग—शृंगारी कवियो अथवा शृंगार रस के फुटकल पद्य लिखने वालो का।

दूसरा वर्ग—प्रबन्ध काव्य या कथात्मक प्रबन्ध लिखने वालो का।

तीसरा वर्ग—वर्णनात्मक प्रबन्ध लिखने वालो का।

चौथा वर्ग—नीति के फुटकल पद्य कहने वालो का।

पांचवा वर्ग—ज्ञानोपदेशको का जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातें पद्य मे कहते थे।

छठा वर्ग—भक्त कवियो का जिन्होने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तो के ढग पर गाए हैं।

सातवाँ वर्ग—आश्रयदाताओ की प्रशसा मे वीर रस की फुटकल कविताएँ लिखने वालो का।

---

[१] हिन्दी-साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २९७-२९९।

रीति-ग्रन्थ रचना को आधार मानकर किया गया उपर्युक्त विभाजन ठीक होते हुए भी उप-विभागों की दृष्टि से सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि उपविभाजन के वर्ग २, ३ और ७ को मिलाकर एक ही वर्ग में रक्खा जा सकता है और इसी प्रकार वर्ग ५ और ६ को भी जैसा कि पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया भी है। उनके अनुसार ये उपविभाग इस प्रकार हैं—(१) कुछ तो रीति-मुक्त शृंगारी कविताएँ हैं। (२) कुछ पौराणिक और लौकिक प्रबन्ध काव्य हैं। (३) कुछ नीति और उपदेश विषयक रचनाएँ हैं, और (४) कुछ भक्ति और ज्ञान विषयक उपदेश के काव्य हैं।

आचार्य शुक्ल के पूर्व रीतियुगीन काव्य के वर्गीकरण की ओर किसी का ध्यान न गया था। मिश्र बन्धुओं ने रीतिकाल को 'अलंकृत काल' कहकर उसके दो भेद 'पूर्वालंकृत हिन्दी'[1] और 'उत्तरालंकृत हिन्दी' नाम से किये थे, वे निरर्थक थे।

डॉ० रसाल ने शुक्ल जी के इतिहास के एक ही वर्ष बाद प्रकाशित अपने इतिहास में रीतिकाल (उनके अनुसार 'काव्य-कला-काल') के समस्त काव्य पर व्यापक दृष्टि से विचार करते हुए उसके ११ विभाग किये तथा कुछ प्रमुख विभागों के उपविभाजन की आवश्यकता की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—१. लक्षण ग्रन्थकार, २. जयकाव्य (वीर-काव्य) ३. पौराणिक कथा या प्रबन्ध-काव्य, ४. कृष्णलीला-काव्य, ५. कृष्ण-काव्य, ६ राम-काव्य, ७. नीति और स्फुट-काव्य, ८. मुसलमान कवि, ९. प्रेमात्मक सूफी-काव्य, १०. स्त्री लेखिकाएँ, ११. सन्त-काव्य। प्रथम वर्ग के कवियों का वर्गीकरण उनकी उपलब्धि के आधार पर (आचार्य श्रेणी, अनुवादक श्रेणी, साधारण श्रेणी), काव्यांग-विवेचन के आधार प (सम्यक् काव्य-शास्त्रकार, केवल अलंकार लेखक और रस तथा नायिका-भेद लेखक) तथा रचना-शैली के आधार पर (दोहात्मक शैली, छन्द शैली और कवित्त-सवैया शैली) तथा पञ्चम वर्ग 'कृष्ण काव्य' का कवियों की भावना के आधार पर (भक्त-कवि और प्रेमी-कवि) विभाजन किया है।[2] इस विभाजन से रीति कालीन साहित्य की विशद भाव-भूमि प्रत्यक्ष होती है किन्तु इसमें भी विभाजन सुगठित और व्यवस्थित नहीं हैं। आज के विकसित युग में धर्म और जाति अथवा सेक्स के आधार पर मुसलमान कवि और स्त्री लेखिकाएँ आदि वर्गीकरण अर्थहीन हैं। वर्ग संख्या ४ और ५ को पृथक करने की आवश्यकता नहीं। इस वर्गीकरण में एक अन्य विशेषता यह है कि घनआनन्द, ठाकुर, बोधा, आलम आदि को पाँचवें वर्ग 'कृष्ण-काव्य' के अन्तर्गत द्वितीय उपवर्ग 'प्रेमी-कवि' में रक्खा गया है किन्तु ये कवि अपने कृतित्व के आधार पर जिस स्थान के अधिकारी हैं इस वर्गीकरण में उन्हें वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका है। हाँ, रसाल जी द्वारा लक्षण ग्रन्थकारों का काव्यांग-विवेचन के आधार पर जो वर्गीकरण है वह परवर्ती विद्वानों द्वारा स्वीकृत हुआ है।[3]

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने शृंगार कालीन काव्य का विभाजन रीति-ग्रहण के

---

[1] हिन्दी साहित्य : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३४० ।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० रसाल, पृ० ४००-५४७ ।

[3] हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास : डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० ३६-३७ तथा हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, पृ० २६८-६९ ।

आधार पर दो भागो मे किया है . १. रीतिबद्ध काव्य-धारा, २. रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्य-धारा । फिर प्रथम वर्ग के दो भेद किये हैं (लक्षणबद्ध काव्य और लक्ष्यमात्र काव्य) और द्वितीय वर्ग के भी दो भेद (रहस्योन्मुख काव्य और शुद्ध प्रेम काव्य)।[१] मिश्र जी का वर्गीकरण अत्यन्त व्यवस्थित एव साधार है किन्तु 'रहस्योन्मुख काव्य' की कोई विशिष्ट धारा नही जिसके आधार पर उसका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया जा सके अतएव उसका उल्लेख आवश्यक नही। दूसरी कमी इस वर्गीकरण मे यह है कि इसके अन्तर्गत रीतिकाल की शृंगारेतर काव्य प्रवृत्तियो का अतर्भाव नही हो सका है फलत यह वर्गीकरण श्लाघनीय होते हुए भी असम्पूर्ण है। इसी कारण मिश्रजी को 'इस काल के अन्य कवि' शीर्षक देकर वीर रस, नीति तथा भक्ति के कवियो की पृथक से विवेचना करनी पडी है।[२]

स्पष्ट ही रीतिकाल की प्रभूत काव्य राशि का विधिवत वर्गीकरण उपर्युक्त विद्वानों द्वारा नही हो सका है। मेरे मत से हिन्दी की रीति या शृंगारकालीन कविता का वर्गीकरण इस युग के कवियो की मूल आतर वृत्ति के आधार पर इस प्रकार किया जाना चाहिए :—
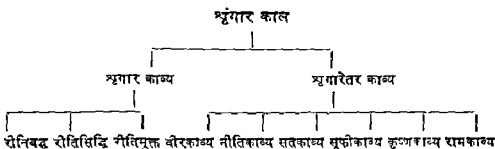
इसके अतिरिक्त भी यदि किसी भाव विशेष की रचना उपलब्ध हो तो उसे 'शृगारेतर वर्ग' के अन्तर्गत सातवें उपवर्ग के रूप मे लिया जा सकता है। अब इसी क्रम से हम सक्षेप में शृगारकाल की सर्वविध काव्यराशि का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे रीति-स्वच्छन्द शृगार काव्यधारा की साहित्यिक पृष्ठभूमि प्रत्यक्ष हो सके।

(क) शृंगार काव्य

शृगार-कालीन शृगार रस को कविता लिखने वाले कवि काव्य-वृत्ति और रचना-पद्धति के आधार पर तीन प्रकार के हो गए हैं १ रीतिबद्ध २. रीतिसिद्ध ३ रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवि वे थे जो रीति ग्रन्थ को रचना करते समय लक्षणानुधावन करते हुए शृगार रस की कविता किया करते थे। लक्षण के अनुसार शृगार काव्य की रचना करना इनकी मुख्य प्रवृत्ति थी, उससे ये इधर-उधर नही जा सकते थे। रीति-ग्रन्थ रचना के नियमों मे बंधे या जकडे रहने के कारण इन्हे रीतिबद्ध कहा जाता है। दूसरे प्रकार के कवि थे रीति-

---

[१] घनआनन्द ग्रथावली, वाङ्मुख, पृ० १६।
[२] वाङ्मय विमर्श, पृ० ३०६।

सिद्ध जो रीतिग्रन्थ तो नही लिखते थे किन्तु जिनकी रचना मे रीति का पूरा-पूरा प्रभाव था जैसे सेनापति, बिहारी, रसनिधि आदि। रीतिशास्त्र के ग्रन्थ इन्होने न लिखे हो पर रचना रीतिशास्त्र के नियमो के अनुकूल ही करते थे। ये लोग भी रीति शास्त्र के ज्ञाता थे परन्तु रीतिग्रन्थ रचयिता न थे। फलत मे रीति का बन्धन कुछ ढीला करके चलते थे। रीतिग्रन्थो की रचना मे प्रवृत्त न होने के कारण इनमे वैसी लक्षणानुगामिनी प्रवृत्ति न थी फिर भी रीति और लक्षणशास्त्र इन्हे सिद्ध था, रीति-रचना मे ये पारगत थे और इसी विचार से इन्हे रीतिसिद्ध कहा गया है। तीसरे प्रकार के कवि वे थे जो रीतिमुक्त या रीति-विरुद्ध थे। रीति से उन्हें नफरत थी, रीतिशास्त्र की उंगली पकड़ना तो दूर वे उसकी छाया से भी कतराते थे। प्रेम के स्वानुभूत और उमंगपूर्ण स्वरूप को वे सामने ले आते थे और स्वच्छद वृत्ति से शृगार की रचना किया करते थे इसी से वे रीतिमुक्त या रीति स्वच्छन्द कहलाए। रीतियुगीन शृगार काव्य की ये तीनो प्रधान एव महत्त्वपूर्ण धाराएँ थी।

रीतिबद्ध काव्य

साहित्य के इतिहास मे स्वीकृत रीतिकाल (स० १७००) के लगभग १०० वर्ष पहले से ही हिन्दी मे रीति ग्रन्थो की रचना आरम्भ होती है। कृपाराम की 'हित तरगिणी' (रचनाकाल स० १५६८) हिन्दी का प्रथम रीतिग्रन्थ है। इसके बाद चरखारी के मोहनलाल मिश्र का 'शृगार सागर' नामक नायिका-भेद का ग्रन्थ और करनेस बदीजन के 'कर्णाभरण श्रुतिभूषण और भूपभूषण' नामक अलकार-ग्रन्थ तथा गोप कवि कृत 'रामभूषण' एव 'अलंकार चन्द्रिका' तथा बलभद्र-मिश्र कृत 'नखशिख' एव 'रसविलास' नामक रीतिग्रन्थ इतिहास-क्रम से सामने आते हैं। आगे चलकर-सूरदास, नददास एव रहीम ने भी इस परम्परा मे थोडा योग दिया तथा कुछ अन्यान्य कवि भी आये। आचार्य केशवदास की 'रसिकप्रिया' (स० १६४८) से तो यह परम्परा अटूट रूप से चली चलती है। विक्रम की १७वी शती मे ही अर्थात् सर्व-स्वीकृत रीतियुग की पूर्ववर्तिनी शताब्दी मे ही लगभग २१ कवि रीतिग्रन्थो की रचना करने वाले हो गये हैं जिनका विवरण इतिहास ग्रन्थो मे मिलता है। इनके द्वारा लगभग २५ रीतिग्रन्थ लिखे गए। इसी समय सस्कृत मे काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन की परम्परा क्षीण पड चली थी और यही समय था जब हिन्दी के कवियों और आचार्यों ने उसे उठा लिया। यह एक रोचक सयोग है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तिम प्रकाण्ड आचार्य पडितराज जगन्नाथ और हिन्दी के प्रारम्भिक आचार्यो में अग्रगण्य चिन्तामणि जिनसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा का आरम्भ माना है सममामयिक थे और सम्राट् शाहजहां के दरबार मे सम्मान प्राप्त विद्वान् थे। विक्रम की उत्तरवर्ती १८वी और १९वी शताब्दियो मे रीति-ग्रन्थो की रचना का क्रम अटूट रूप मे चलता रहा और छोटे-बडे बहुसख्यक कवियो एव आचार्यो ने अपने रीतिग्रन्थों से हिन्दी काव्य और रीतिशास्त्र का भण्डार भर दिया। वर्ण्य-विषय अथवा काव्याग विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग मे ४ प्रकार के रीतिग्रन्थ प्रणीत हुए (१) अलंकार निरूपक ग्रन्थ, (२) रस एव नायिका भेद निरूपक ग्रन्थ, (३) काव्य-शास्त्र या विविधाग निरूपक ग्रन्थ (जिनमे काव्य शास्त्र के समस्त, अधिकाश या एकाधिक अगो का निरूपण हुआ), और (४) पिंगल निरूपक ग्रन्थ। इन ग्रन्थो की सख्या परिमाण मे

प्रचुर रही है। रीति के विविध विषयों पर रचना करने वाले १८३ रीति ग्रंथकारों का पता चलता है[1] जिनके द्वारा रचित समस्त लक्षण ग्रंथों की संख्या २२५ के आसपास है। यह संख्या संभव है और भी अधिक हो। इतने अधिक परिमाण में जब लक्षण ग्रंथ लिखे गये तब यह स्वाभाविक ही था कि गुण की दृष्टि से ये रीति कृतियाँ परमोत्कृष्ट कोटि की न होतीं। इस प्रभूत रीति-राशि के अध्येताओं का मत है कि इन रचनाओं का लक्षण अथवा निरूपण वाला अंश उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि औदाहरणिक भाग। बात यह है कि ये रचनाकार वस्तुतः कवि हृदय रखते थे किन्तु समय की मांग, आचार्यत्व की साध, आर्थिक लाभ की आकांक्षा आदि कारणों से ये रीतिग्रंथ रचना में प्रवृत्त हुए और काव्य भी इन्हें तदनुसार एक बँधे बँधाये ढर्रे पर लिखना पड़ा। फिर भी रीतिबद्ध कवियों का सच्चा कर्तृत्व लक्षणों के निर्माण की अपेक्षा उन्हें चरितार्थ करने वाले छन्दों में मूर्त हुआ है। उन्हें देखने से पता चलता है कि ये कर्त्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। आचार्य शुक्ल ने लिखा भी है कि इतने विपुल परिमाण में रीति ग्रंथों के लिखे जाने से एक शुभ परिणाम यह हुआ कि "रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रंथों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।"[2]

जहाँ तक रीति निरूपण का प्रश्न है संस्कृत में काव्यशास्त्र का ऐसा विशद, व्यापक और सूक्ष्म निरूपण और विवेचन हो चुका था कि केशव, श्रीपति, भिखारीदास ऐसे अनेक संस्कृतज्ञ हिन्दी कवियों के मन में यह लोभ जागृत हुआ कि संस्कृत की काव्यरीति की परंपरा को हिन्दी में अवतरित करें। ऐसा करने का उन्होंने उद्योग भी किया किंतु काव्य सिद्धांतों की जैसी समृद्ध विवेचना संस्कृत में उपलब्ध थी वैसी हिन्दी में प्रस्तुत नहीं की जा सकी। रीतिग्रंथों में जो कुछ भी विवेचित हुआ वह अधिकतर संस्कृत काव्य शास्त्र पर ही आधारित था फिर भी विषय वस्तु और प्रतिपादन शैली दोनों दृष्टियों से वह उतना प्रौढ़ और गंभीर नहीं है। देखा देखी हिन्दी में रीति ग्रंथों की बाढ़ तो बड़ी आई किन्तु विवेचन और निरूपण हल्का और सतही ही रहा। उसमें गंभीरता, नवीनता, मौलिकता और सूक्ष्मता का अभाव ही रहा। ये कवि अधिक से अधिक कवि-शिक्षा की पाठ्य-पुस्तकें ही प्रस्तुत कर सके। रस, अलंकार आदि का साधारण निरूपण मात्र हो पाया। कुछ आचार्यों ने अवश्य मौलिकता, जानकारी और आचार्यत्व का परिचय दिया[3] किन्तु दोष का तात्विक योगदान नगण्य ही रहा फिर प्राचीन स्थापनाओं का प्रत्याख्यान और अभिनव नियमों और सिद्धान्तों का अन्वेषण तो दूर की चीज थी। एक-दो साधारण रीति ग्रंथ लिखकर कवि जब आचार्य रूप में प्रसिद्धि पाने लगे तो उनके शिष्यों ने कालांतर में बिना प्रयास ही साधारण रीति ग्रंथों का प्रणयन कर डाला और चट आचार्य पद पर आसीन हो गये। कवि शिक्षा का यह

---

[1] हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० २७-८२ तथा हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २६६।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास शुक्ल, पृ० २३६।

[3] देखिये डा० सत्यदेव चौधरीकृत "रीति साहित्य के प्रमुख आचार्य" जिसमें आचार्यों के मौलिक शास्त्रचिंतन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

क्रम ऐसा चला कि शास्त्र और कवित्व दोनों आहत होने लगे। कविता रीतिबद्ध होकर ह्रासोन्मुख हुई और रीति या काव्यशास्त्र का चलता हुआ सा आरम्भिक ज्ञान गवेषणात्मक या विश्लेषणात्मक शास्त्र-सृष्टि कर सकने में सर्वथा असफल रहा। जिन्होंने रीति ग्रंथ न लिखे काव्य ही लिखा वे ही भले रहे। कवित्व का उनमें कुछ उत्कर्ष ही रहा परन्तु रीति का पल्ला जिन्होंने पकड़ा वे दीनों दीन से गये। केशव, मतिराम, देव, भूषण, पद्माकर, भिखारीदास आदि को अपवाद ही समझना चाहिए। वास्तविक बात यह थी कि हिन्दी के रीति-कवि सरस काव्य की रचना द्वारा अपने शौकीन मिजाज आश्रयदाता, राजा, रईसों, उमरावों और सम्भ्रान्त रसिक नागरिकों का मनोविनोद कर प्रतिष्ठा पाना चाहते थे। कभी-कभी उन्हें अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन की भी स्पृहा होती थी। रीतिग्रंथ की रचना तो उन्होंने आचार्यत्व की झूठी पदवी के प्रलोभन में आकर की या अपने-अपने आश्रयदाताओं, कतिपय काव्य-रसिकों या नवाभ्यासियों को काव्यांगों का साधारण ज्ञान करा देने के उद्देश्य से की। मौलिक सिद्धान्तों का निर्वाचन तो इनका लक्ष्य ही न था, इनमें उनकी क्षमता भी न थी। डॉ० नगेन्द्र ने अपने प्रबन्ध ग्रन्थ में इस तथ्य पर विस्तार से प्रकाश डाला है कि किस प्रकार हिन्दी रीति के आचार्य-पद-वासी कवियों की दृष्टि काव्य के मूल तत्वों की मार्मिक विवेचना की ओर न जाकर हल्के-फुल्के ढंग से कुछ मोटी बातों का विवरण प्रस्तुत करने तक ही सीमित रही।[1]

रीतिबद्ध कवि की दूसरी प्रधान विशेषता थी शृंगारिकता का आग्रह। उन्होंने अन्य रसों की उपेक्षा कर शृंगार का ही पल्ला पकड़ा। इसका कारण तत्कालीन युग की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में ढूँढा जा सकता है। सामंती जीवन पद्धति, आश्रयदाताओं का सब कुछ भूल कर कंचन, कामिनी और कादंब के सेवन में लिप्त रहना तथा प्रणय और आसक्ति की सुरापी-पीकर मदहोश रहना और इसी मनोवृत्ति तथा वातावरण के अनुकूल कविता-कामिनी का नृत्य करना ही वह कारण था जिससे प्रेरित हो रीतिबद्ध कवि ने शृंगारपरक साहित्य की सर्जना की है। इस धारा के अधिकांश कवियों का दृष्टिकोण मूलतः ऐहिक था, आध्यात्मिक नहीं। इस जीवनपरक या प्रवृत्तिपरक दृष्टिकोण के ही कारण रीतियुगीन काव्य में नर और नारी के संबंधों की विस्तृत चर्चा मिलती है। दोनों एक दूसरे के प्रति किस प्रकार आकृष्ट होते हैं, संकोच करते हैं, ललकते हैं, मिलते हैं, लोक बाधाओं के बावजूद अपने प्रणयपथ पर अग्रसर होते हैं, मिलन पर नाना प्रकार से प्रणय-केलि होती है और वियोग में चित्तवृत्तियों का नाना प्रकार से प्रसार दिखाया जाता है आदि आदि। मानव मन की प्रणयाकांक्षाओं का राशि-राशि मुक्तक रचनाओं के रूप में यह परम विशद चित्रण कितना ही परम्परागत, अलौकिक, स्थूल और अश्लील क्यों न हो, सौंदर्य-सृष्टि और मन की अकुण्ठ अभिव्यक्ति की दृष्टि से परम सराहनीय है। वह दमित मन और मानसिक घुटन से परिपूर्ण आधुनिक अभिव्यक्तियों से निश्चय ही श्रेष्ठतर है। रीति के बंधन में जकड़े हुए कवि के काव्य में उसकी लौकिक भौतिकतावादी या ऐहिकतापूर्ण जीवन-दृष्टि स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। प्रणय के संयोग-वियोग पक्षों में नाना मनोदशाओं का जैसा स्वाभाविक विधान किया गया है वह सामान्यतः दुर्लभ है। यौवनागम, रूपराशि का प्रभाव,

---

[1] रीति काव्य की भूमिका (सन् १९५३) पृ० १३४।

प्रगाढ़ अनुराग, प्रियतम का प्यार, रूप और प्रेम का गर्व, अभिलाषाएँ, ईर्ष्या, रोष, खीझ, प्रणय, आसक्ति आदि के चित्र इतने हृदयग्राही हैं क्योंकि उनमें जीवन के एक ही अंश की सही स्वाभाविकता पूर्णतया चित्रित है। और कुछ नहीं तो यही सही कि वे साधारण मानव के मन की साध का मूर्त करते हैं। कला की आयोजना ने इन चित्रों को अधिक मार्मिक और अनुरंजक बना दिया है। कला और जीवन दोनों ने मिलकर रीतिकाव्य को सौंदर्य से मढ़ दिया है। इन रचनाओं के माध्यम से हम तत्कालीन सामाजिक जीवन को समग्रत नहीं तो अंशत ही सही अच्छी तरह जान सकते हैं। इस दृष्टि से इस युग का साहित्य इतिहास को भी पर्याप्त सामग्री प्रदान कर सकता है। नायिकाओं के विवेचन में तो शृंगार का समावेश था ही अलंकारों के उदाहरण के रूप में भी शृंगारी रचनाएँ ही लिखी गईं। शृंगार के एक-एक अवयव को लेकर कवियों ने कितनी ही उद्भावनाएँ की हैं। शृंगार का वर्णन या निरूपण करते हुए उसके आलम्बन नायक-नायिका का वर्णन वर्गीकरण अत्यधिक विस्तार से किया गया। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि रस में एक अंग आलम्बन के एक अंग नायिका को तो छोड़िए नायिका के भी एक-एक अंग पर अलग अलग ग्रन्थ लिखे गये जिसके परिणामस्वरूप 'तिल शतक' और 'अलक शतक' जैसी रचनाएँ सामने आती हैं। यह शृंगारिकता की हद है। 'नखशिख वर्णन' तो अत्यन्त प्रिय विषय बन गया। इसी पर कितने काव्य ग्रन्थ लिखे गये। इसी प्रकार शृंगार के उद्दीपक ऋतुओं तथा वर्ष के द्वादश मासों को लेकर कितने ही षड्ऋतु वर्णनात्मक ग्रन्थ और 'बारहमासे' लिखे गये। यह सब शृंगारिकता और शृंगार रस का ग्रहण करने के परिणामस्वरूप हुआ। सारी युग की सारी शृंगार-वर्णना का केन्द्र हो गई। रस का निरूपण करते हुए शृंगार का ही अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया, शेष आठ रसों को उसके अन्तर्भुक्त कर दिया गया और एक-एक छन्द में उनका उल्लेख कर काम चलता किया गया। शृंगारिकता की प्रवृत्ति तो यहाँ तक प्रबल हुई कि वीर या रौद्र रस का उदाहरण देना हुआ तो भी शृंगार के प्रसंग के अन्दर से ही उदाहरण छाँटकर लाये और वीरों के युद्ध के बजाय प्रेमी-प्रेमिका के 'रतिरण' का दृश्य सामने रखने लगे। यह सब समसामयिक युग में शासक और सामंत-वर्ग की विलासिता और कवियों की दरबारदारी का तो परिणाम था ही, भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत प्राप्य शृंगारिकता के प्रभाव के कारण भी हुआ इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परम्परागत कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत शृंगार के सन्निवेश का पूरा अवसर देख रीति-कवि राधाकृष्ण के व्याज से युग की ओर अपनी भी शृंगारिक भावनाओं को व्यक्त करने लगे। फलस्वरूप राधा-कृष्ण का वह दिव्य, अलौकिक और भक्तिभावोत्तेजक रूप मंद पड़ गया और उनका विलासप्रिय कामुक रूप ही प्रधान रूप में सामने आया। रीति ग्रन्थों में कृष्ण-भक्ति का शृंगार-प्रधान रूप और शृंगारी कृष्ण-भक्ति काव्य में रीति ये दोनों समान रूप से प्रविष्ट हुए मिलते हैं। गोपी-कृष्ण के बहाने कवियों ने रूप सौन्दर्य, नाना अंग चेष्टाओं, मानसिक भाव व्यापारों तथा रीतिशास्त्र में गिनाए गये विषयों यथा अष्टयाम अथवा दिनचर्या, मान, ऋतु रूप उद्दीपन या षड्ऋतु, बारहमासा, नखशिख, हावभावों तथा संयोग शृंगार के अश्लील प्रसंगों का वर्णन प्रचुरता से किया।

रीतिबद्ध कवियों के काव्य की तीसरी प्रधान प्रवृत्ति थी कला-प्रधानता या आलंकारिकता। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि रचना रसशून्य हो सकती थी किन्तु अलंकार शून्य

नहीं। साधारण कथन इनकी दृष्टि मे काव्य न था, उक्ति चमत्कार रहित रचना मे काव्यत्व न माना जाता था। इस युग की रचना मे ऊपरी कारीगरी या अलंकृति पूरी पाई जायगी। इस युग के अधिकाश कवि उक्तिशूर हुआ करते थे। वचन-वक्रता, उक्ति वैलक्षण, कथन सौष्ठव आदि पर ही उनका ध्यान केन्द्रित रहना था। इसी कारण इन रीतिबद्ध कर्त्ताओं की कविताएँ सभा-समाजों मे विशेष आदृत हुआ करती थीं। ऐसी रचनाओं के पीछे सभा मे बाजी मार ले जाने का उद्देश्य भी रहा करता था। और तो और स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कवि ठाकुर तक ने एक जगह कहा है कि जो कवि राजसभा मे बड़प्पन पावे वही कवि बडा हुआ करता है और मुझे प्रिय लगता है :

ठाकुर सो कवि भावत मोंहि जो राजसभा मे बड़प्पन पावै।
पडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरं सो कवित्त कहावै ।। (ठाकुर)

सभा समाजों मे उक्ति का सौंदर्य दिखलाने वाले कवि किस प्रकार पद-पद पर प्रशसित और सम्मानित होते हैं यह हमसे आपसे छिपा नहीं है। बिहारी, केशव, सेनापति आदि की कविता का समादर राज्याश्रय के ही कारण हुआ और इसी राज्याश्रय मे काव्य के कलापक्ष को विशेष पुष्ट किया गया। रचना के अन्तिम चरण तक पहुँचते-पहुँचते रसिक समाज यदि झूम न जाय तो कविता कविता नहीं। इसी कारण रीतिकाल के अधिकाश कवित्त-सवैयों में अन्तिम चरण बहुत अच्छे और वक्रती बन पडे हैं। रचना अपने अन्तिम चरण तक आते आते अपने उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इतनी कलात्मक चेतना लेकर हिन्दी के किसी दूसरे काव्य युग के कवि न चले। शुद्ध काव्य की दृष्टि से काव्य रचना करने वाले जितने कवि इस युग मे हुए दूसरे किसी भी युग मे नहीं। दरबारी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त रची जाने के कारण रीतिबद्ध कर्त्ताओं की रचनाओं मे ऊपरी साज-सज्जा और चमत्कार प्रबलता आई। एक तो उसका स्वरूप मुक्तक ही रहा दूसरे उसमे कलात्मक अलकरण का वैशिष्ट्य या बाहुल्य रहा। समाज की रुचि को उत्तेजित और आकर्षित करने की क्षमता अलंकरण एव चमत्कार में हुआ करती है यह बात माननी पड़ेगी। इसी कारण इन कवियों ने छंदों को खूब परिष्कृत किया, उसमे सौंदर्य के विधान के जितने भी आयोजन हो सकते थे किये गये। इसी कारण सानुप्रासिकता, प्रवाह, नाद एव लय-सौंदर्य, वर्ण-विधान आदि की दृष्टि से शृगार युग के छन्द अधिक मनोग्राही बन सके हैं। मतिराम, बिहारी, पद्माकर आदि के प्रयत्न इस दिशा मे अतिशय श्लाघ्य हैं। इन कवियो का काव्य के बाहरी उपादानों पर विशेष ध्यान रहा। विभिन्न कलापरक काव्य-संप्रदायो का प्रभाव, अलंकार ग्रन्थो की रचना, काव्य के क्रमागत स्वरूप में भाव पक्ष के आधिक्य की प्रतिक्रिया और कवियों का इस प्रकार काव्य विषयक दृष्टिकोण :

(क) दूषन को करि के कवित्त बिन भूषन कौं,
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है। (सेनापति)

(ख) जदपि सुजानि सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त,
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त। (केशव)

(ग) कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखाति ।। (देव)

इस युग के काव्य को अधिकाधिक कलाप्रधान बनाने में सहायक रहा। फारसी काव्य की प्रतिद्वंदिता में खड़े होने के कारण, दरबार में बाजी मार ले जाने की उद्दाम स्पृहा के कारण और कला-कौशल प्रदर्शन की प्रवृत्ति रखने के कारण इस युग के काव्य में कारीगरी और सजावट की बारीकियों की ओर कवियों का ध्यान स्वभावत विशेष रहा। नाजुक खयालों ले आने में, उक्ति वैशिष्ट्य के विधान में और शब्द-विधान के सौंदर्य में अतिशयोक्ति, वक्रता वैचित्र्य एव नादसौंदर्य-मूलक अलकारों का विशेष व्यवहार हुआ परन्तु काव्यगत रस के आधार को छोडा नही गया। इस प्रकार लगभग २०० वर्षों तक कला-प्रधान काव्य रचना का क्रम स्थापित हो जाने के कारण इस सपूर्ण युग मे ही एक विशिष्ट कलात्मक दृष्टि का विकास हुआ। लोक मे काव्याभिरुचि और सौंदर्यादर्श जागृत हुए और कलानिर्णय की शक्ति निर्मित हुई। रीतिबद्ध धारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं—केशवदास, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति, देव, श्रीपति, भिखारीदास, महाराज जसवन्तसिंह, दूलह, पद्माकर, ग्वाल प्रतापसाहि आदि।

रीतिसिद्ध काव्य (लक्ष्यमात्र काव्य)

रीतियुग मे शृगार की रचना करने वाले रीतिबद्ध या रीतिग्रन्थकार कवियों के साथ-साथ कवियों का एक अन्य वर्ग भी था जो शृगार रस की रचनाएँ तो किया करता था और काव्यशास्त्र का सहारा भी लिया करता था किन्तु काव्यशास्त्रीय या रीतिग्रन्थों की रचना नही करता था। इन कवियों को रीतिसिद्ध कवि या काव्यकवि और इनकी रचना को रीति-सिद्ध काव्य या लक्ष्यमात्र काव्य कहा गया है। इन कवियों का वर्ग सख्या की दृष्टि से रीति-ग्रन्थकार कवियों की अपेक्षा छोटा है किन्तु इनकी प्रवृत्तियाँ बहुत स्पष्ट हैं। रीतिसिद्ध कवियों मे बिहारी, सेनापति, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नेवाज, पजनेस, नृपसभु, प्रीतम, रामसहायदास, हठी आदि का नाम लिया जाता है।[१] बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, रसनिधिकृत रतनहजारा, रामसहायदास कृत रामसतसई आदि ऐसे ग्रन्थ हैं जो लक्ष्यमात्र काव्य या रीतिसिद्ध काव्य की कोटि मे रखे जा सकते हैं, इसी प्रकार रीतियुग मे लिखी गई बारहमासा, नखसिख, षड्ऋतु सम्बन्धिनी रचनाएँ भी इसी कोटि मे आती हैं। इन कवियों की रचना रीति से बधी हुई है। उसमे रीति की ऐसी छाप मिलती है कि जो रीति की परम्परा से अपरिचित है वह इनकी कविता का पूरा-पूरा आनन्द नही ले सकता। इनकी रच-नाएँ ऐसी होती हैं जिन्हे रसों तथा उसके अवयवों, अलकारों एव नायिकाभेद में सरलता से विभक्त किया जा सकता है। लक्षणग्रन्थों की रचना से विरत रहकर भी रीति की पूरी-पूरी छाप रखने के कारण ये कवि रीति सिद्ध कवि या काव्य-कवि कहलाये और इनका काव्य रीति-सिद्ध काव्य अभिहित हुआ। रीतिबद्ध लक्षणकार कवियों (शास्त्र कवि या आचार्य कवियों) से ये भिन्न थे।

रीति-सिद्ध कवियों की रचनाओं मे शास्त्रीय सिद्धान्तों का निरूपण और लक्षण निर्माण तो नहीं हुआ फिर भी इनकी रचनाएँ ऐसी बन पडी हैं जो किसी न किसी काव्यांग के उदाहरण रूप मे अवश्य रखी जा सकती हैं। इन्हे रीति-सिद्ध या रीत्यनुसारी या लक्षणानुसारी कवि कहने का यही कारण है। लक्षणों का नियमत पूरा-पूरा पालन न करने

---

१ हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० ४०८-४९।

पर भी ये उनसे संपूर्णत मुक्त न थे जैसा कि स्वच्छन्द कवि थे परन्तु नियमानुसरण करते हुए भी ये स्वतत्रता लेते थे। लक्षण ग्रन्थों की रचना से ये विरत रहते थे पर रीति की पूरी छाप भी रखते थे। रीतिग्रथों के कर्त्ता कवियों मे ये अवश्य कुछ विशिष्टता रखते थे। इसी से इन्हें पृथक करने की आवश्यकता समझी गई। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दों मे '*इस प्रकार के कवियो को जो रीतिविरुद्ध नहीं और लक्षण ग्रन्थों से ऐसे बंधे भी नहीं कि तिल भर उससे हट न सकें, भले ही वे रीति को परम्परा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हों, रीति-सिद्ध कवि कहना चाहिये*।'[1] रीति की बंधी परिपाटी मे इनकी आस्था पूरी थी किन्तु ये उसके पूरे गुलाम होकर नही चलना चाहते थे। उससे अलग हटना भी इन्हें अभीष्ट न था, उसकी पूरी दासता भी इन्हे स्वीकार्य न थी। इस प्रकार से ये मध्यम पथी थे। रीति की सारी परम्परा का इन्हें अच्छा ज्ञान था, कह सकते हैं कि रीति का समूचा शास्त्र इन्हें सिद्ध था और इन्होने रचनाएँ भी तदनुरूप ही की है किन्तु उसकी बाध्यता इन्हे न थी। ये इच्छानुसार स्वतत्र भावों को भी सामने लाते थे और अभिनव सूक्तियों का भी विधान करते थे। लक्षण ग्रन्थों से बाहर जाने की इन्होंने पूरी छूट ले रखी थी इसी कारण बिहारी, रसनिधि, सेनापति आदि के छन्द रीत्यनुसारी होकर भी रीतिग्रस्त नही थे। रीतिकवियों की श्रेणी मे अगर इन्हे बिठा दिया जाय तो ये अपनी स्वतन्त्र चेतना के कारण पृथक दिखाई पड़ेंगे। काव्यरीति से ये पूर्णत अभिज्ञ थे किन्तु इनकी स्वतन्त्र चेतना रीति की वेदी पर पूरी तरह चढ़ा नही दी गई थी। ये रीति से हटकर जब-तब अपनी कल्पना या उद्भावना की करामात दिखा दिया करते थे। तात्पर्य यह कि रीति के बन्धन मे ये रीतिग्रन्थकार कवियों की तरह एकदम कसकर जकड़े नहीं जा सके थे, ये रीति का बन्धन ढीला करके चलते थे। फलत स्वतन्त्र काव्यशक्ति एव अभिनव उद्भावना के निदर्शन का इन्हें अधिक अवसर था और इन्होंने निदर्शित भी किया। रीति के नियमों से ये चालित तो होते थे किन्तु जब-तब ये उसका स्वतन्त्र प्रयोग भी करते थे इसी से इनकी रचना मे रीतिग्रन्थानुसारी कवियों की अपेक्षा कुछ उत्कर्ष दिखाई देता है। यह बात भी ध्यान मे रखने की है कि ये रीति-स्वच्छन्द धारा के कवियों की भांति रीति से सर्वथा मुक्त न थे। रीति की सारी परम्परा इन्होंने अवश्य सिद्ध कर रखी थी, उसकी छाप इन पर पूरी-पूरी थी, किन्तु ये आवश्यकता पड़ते पर, भाव अथवा कल्पना के आग्रह पर रीति से दायें-बायें होकर भी अपना करतब दिखाते थे। रीति-रानी के ये सदैव दास ही नहीं बने रहते थे इच्छा होने पर अपना स्वामित्व भी दिखा जाया करते थे।

लक्षणानुधावन से विरत रहने के कारण इनकी रचनाएँ कुछ स्वतन्त्रता लिए हुए हैं तथा इनमे व्यक्ति वैशिष्ट्य का भी थोड़ा विकास हुआ है, उनका निजी अस्तित्व बना रह सका है। जो लोग रीति-ग्रन्थ लिखते थे उन्हें लक्षणगत नियमों के पालन पर पूरा ध्यान रखना पड़ता था और सारी कल्पनाएँ तदनुकूल करनी पड़ती थीं। उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ, प्रसग, वर्ण्य सभी कुछ शास्त्रानुकूल और परम्परागत ढग से बिठाते चलते थे। लक्षणों से बाहर जाने की उन्हे गुञ्जाइश न थी। पर ये रीतिसिद्ध कवि रीति से केवल संकेत ग्रहण करते थे और भाव तथा कल्पना का विधान स्वतन्त्र ढग से भी करते थे। यही कारण है कि

---

1 शृ गारकाल, पृ० ५५०।

जहाँ ये लोग नवीन उद्भावनाएँ कर सके हैं रीतिग्रन्थकार कवि अपनी रचनाओं में प्राय नवीनता का वैशिष्ट्य नहीं ला सके हैं। बिहारी की रचनाओं के वैशिष्ट्य का यही कारण है। यदि वे रीति ग्रन्थों में दिये लक्षणों से बँधकर रचना करने में दत्तचित्त हुए होते तो उनकी रचनाओं में व्यक्त उनकी जो स्वतन्त्र सत्ता है वह लुप्त हो गई होती। कवित्त-सवैया जैसे अधिक प्रचलित छंदों की अपेक्षा बिहारी ने दोहे का जो ग्रहण किया वह भी इसी व्यक्ति-वैशिष्ट्य का सूचक है। उनके दोहों में जो सूक्ष्म कारीगरी है, वर्ण एवं नाद सौंदर्य का विधान है, गहरी अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता है वह कोरी रीति-प्रथा का अनुसरण नहीं। वह स्वतन्त्र कवि प्रतिभा के विकास का विशाल प्रयास द्योतित करती है। मात्र रीतिबद्धता में पूरा पड़ता न देख बिहारी, रसनिधि आदि कवियों ने अपने स्वतन्त्र कवि व्यक्तित्व की सूचना अपनी रीति से पृथक और विशिष्ट कलात्मक योजनाओं एवं साज सँभार द्वारा दी। बिहारी के दोहों को लक्षण-लक्ष्य लिखने वाले रीतिकारों के उन दोहों के साथ यदि रख दिया जाय जिनमें लक्षणों के उदाहरण दिये गये हैं तो रीति सिद्ध कवियों के वैशिष्ट्य का पता चल जायगा। रीतिग्रन्थों के ऐसे कर्त्ता कवि जो अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण पहचाने जा सकें देव, मतिराम, सरीखे कम ही हैं, जो पहचाने जा सकते हैं उनके पहचाने जाने का कारण यही है *कि उन्होंने जब तब या बार-बार अपनी स्वतन्त्र कवित्व शक्ति या* अपने वैशिष्ट्य का परिचय दिया है जो रीति में बँधी रहकर भी नवीनता का विधान करती रही है।

रीति की सुनिश्चित परिपाटी के अनुकूल रचना करते हुए भी रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की। ये कवि रीति या लक्षण ग्रंथों की रचना में इसलिये प्रवृत्त न हुए क्योंकि इन्हें कविगुरु, कविशिक्षक या आचार्य बनने का प्रचलित रोग न था। ये रीतिसिद्ध कवि ऐसे हैं जिनकी उक्तियों या अभिव्यक्तियों में रीति की पूरी परम्परा सिमटी हुई है साथ ही साथ ये उससे ऐसे चिपके भी नहीं गये हैं कि तिल भर हट न सकें। इसका कारण यही था कि ये कवि गौरव के अभिलाषी थे, कविगुरु, काव्य-शिक्षक या काव्याचार्य बनने के नहीं, इनकी दृष्टि में कवित्व शक्ति के निदर्शन द्वारा काव्यरचना के पुनीत क्षेत्र में वैशिष्ट्य लाभ करना अधिक श्रेयस्कर था इसके बजाय कि कवि शिक्षा की साधारण पाठ्य-पुस्तक लिखकर रीति का आचार्य कहलाना। इनमें कवित्व की स्पृहा थी। ये कवि होना अधिक सम्मान की बात समझते थे अपेक्षाकृत इसके कि छोटी-मोटी कवि-शिक्षा की पुस्तक लिखकर काव्याचार्य का बहुकांक्षित पद प्राप्त कर लें। गुरुत्व या कवि-शिक्षक होने की कामना इन्हें न थी। ये कवि अवश्य इस बात से भली-भाँति परिचित रहे होंगे कि संस्कृत काव्यशास्त्र की विकसित, सूक्ष्म विवेचना पूर्ण परम्परा के सामने भाषा में लिखे गये अलंकार-ग्रंथ कितने साधारण कोटि के हैं, ऐसे रीतिग्रन्थों के संग्रह अथवा अनुवाद में कोई विशेष लाभ या गौरव नहीं। इसी कारण इनका काव्य अधिक सरस और मार्मिक बन पड़ा है। उक्तियाँ चमत्कार से पूर्ण हैं रीति की पद्धति से संयुक्त भी; फिर भी रीति के लक्षणों से जहाँ-तहाँ स्वतन्त्र, लक्षण पीछे छूट गये हैं। रीति की सारी बातों को ग्रहण करते हुए चलने में इनका विश्राम न था। 'शास्त्रस्थितिसंपादन' मात्र से ये सन्तुष्ट न होते थे। कभी वे अपने काव्य में शाब्दिक एवं आर्थिक अलंकारों की नई चमत्कृति दिखलाते थे, तो कभी अभिनव कल्पना विधान एवं स्वतन्त्र भाव सृष्टि द्वारा नूतन ढंग का रस-

संवार भी करते थे। आँख मूँदकर काव्य-प्रौढ़ियों का अवतरण वे मात्र नहीं किया करते थे, कभी कविता में वे अपनी जिन्दगी के अनुभव भी उड़ेल दिया करते थे। इसी में इनकी रचना की विशिष्टता है। कोरे रीति ग्रन्थकारों में यह बात नहीं, वे तो लक्षण से इधर-उधर हटे नहीं कि सारा खेल बिगड़ा नहीं। शुद्ध रीतिकार लक्षणों से इधर-उधर नहीं जा सकते थे, रीतिसिद्ध कवि लक्षणों को दिशा निर्देशक मात्र समझते थे। इनमें रीति है, चमत्कार भी, किन्तु स्वानुभूति और रस की व्यंजना भी। रस-प्रचार के लिये ये काव्य-कवि स्वानुभूतियों के सहारे अभिनव कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं की सृष्टि कर काव्य में नवीनता और रमणीयता का प्रचार करते थे, केवल शास्त्रों की ही गिनी-गिनाई बातें सामने नहीं रखते थे वरन् संसार विषयक अपने अनुभव के भी सहारे भाव एवं सौन्दर्य-विधान की नई सामग्री पेश करते थे। यदि ये भी लक्षण-ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त होते तो ऐसे सरस और अभिनव उक्तियों से पूर्ण काव्य की रचना ये न कर पाते जिनके कारण इनका वैशिष्ट्य स्वीकार करना पड़ता है।

शृंगार की सुन्दर सरस रचना प्रस्तुत करने में ये रीतिसिद्ध कवि संस्कृत की शृंगार की मुक्तक परम्परा से अवश्य प्रभावित हैं। प्राकृत में लिखी हाल की 'गाथा सप्तशती', संस्कृत के अमरुक कवि के 'अमरुक शतक' तथा गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती', भर्तृहरि के 'शृंगार-शतक' आदि कवियों का प्रभाव रीतिसिद्धि कवियों पर पूरा-पूरा है। प० पद्मसिंह शर्मा ने अपने 'सप्तसई सहार' में बिहारी के अनेक दोहों पर आर्या सप्तशती के श्लोकों का प्रभाव दिखलाया है। संस्कृत और प्राकृत में होती हुई यह शृंगार-मुक्तक-परम्परा अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है—हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण तथा द्वयाश्रय काव्य, सोमप्रभाचार्य के कुमारपालप्रतिबोध, राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोष, प्राकृत पैंगलम् और पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह। संस्कृत के शृंगारतिलक, घटखर्परि, भर्तृहरि रचित शृंगार प्रधान मुक्तक ही हैं। बिहारी आदि काव्य-कवियों के शृंगारी मुक्तकों को इस परम्परा से थोड़ी बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई क्योंकि इन रचनाओं में एक तो लक्षणानुधावन का बन्धन नहीं और ये कवि बन्धन ढीला करके चलना चाहते भी थे, दूसरे इन मुक्तकों में जीवन के ऐहिक एवं भोगपरक पक्ष के चित्रण का आग्रह था जो इनकी और समसामयिक रुचि के अनुकूल भी था। इस परम्परा का उद्देश्य ही शृंगार के रसात्मक मुक्तकों द्वारा चित्त को उत्फुल्लता प्रदान करना था। यही कार्य हमारे रीतिसिद्ध कवियों ने भी अपने जमाने में किया।

रीतिबद्ध कवियों ने काव्यांग विवेचन तो किया किन्तु वह बहुत हल्के ढंग का रहा। संस्कृत में काव्यशास्त्र की जैसी मीमांसा हो चुकी थी वैसी व्याख्या-विवेचना, खण्डन-मण्डन की न तो रीतिबद्ध कवियों में वृत्ति ही थी और न क्षमता। कुछ कवि अवश्य आचार्य कोटि के हो गए हैं। केशव, भिखारीदास, कुलपति, प्रतापसाहि आदि किन्तु विशद मीमांसा आदि की ओर ये लोग भी न गए। अधिकांश आचार्य तो संस्कृत के उत्तरवर्ती अलंकार-ग्रन्थों का ही पल्ला पकड़कर रह गए जिनमें काव्यांगों का सरल और स्पष्ट विवेचन-मात्र हुआ था। उदाहरण के लिए चन्द्रालोक, कुवलयानन्द, रसतरंगिणी, रसमंजरी आदि। बहुत आगे गए तो साहित्य-दर्पण और काव्य-प्रकाश तक किन्तु स्वतन्त्र सिद्धान्तों की स्थापना करने वाले मौलिक ग्रन्थों जैसे ध्वन्यालोक, लोचन, वक्रोक्तिजीवितम्, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, काव्यादर्श,

काव्यात्मकार तक ये कवि प्राय नही गए। रसस्वरूप, काव्यस्वरूप काव्यात्मा, रसनिष्पत्ति आदि सूक्ष्म शास्त्रीय प्रसगो की ओर तो किसी ने जाने का साहस भी नही किया। शास्त्र-ज्ञता और आचार्यत्व के लोभ मे ये हिन्दी रीतिकार या रीतिबद्ध कवि संस्कृत काव्यशास्त्र के विशाल प्रासाद की बाहरी परिक्रमा या अधिक से अधिक आँगन भाँककर लौट आये और मोटे-मोटे काव्यांग-लक्षण निरूपण के ब्याज से शृंगार-रस के उदाहरण प्रस्तुत कर सके और इसी मे अपने कवि-कर्म की इन्होने इतिश्री समझ ली किन्तु रीतिसिद्ध कवियों ने इस सम्बन्ध मे अधिक विवेक से काम लिया। वे जानते थे कि काव्य शास्त्र के इस सिंधु का साधारण श्रम और मेधा से सतरण सम्भव नही अत ये लोग उस ओर गए ही नही। उसका ज्ञान इन्हे अवश्य था और काव्य रचना के समय भी वह सब इनके दिमाग मे रहता था। इनकी रचना मे रीति की जो पूरी छाप है उसका कारण भी यही है कि रीतिशास्त्र की विचारावली और उसमे निरूपित विषयो और बातो की इन्हे पूरी जानकारी थी किन्तु उसे ये सामने रखकर काव्य रचना मे प्रवृत्त न होते थे। वह पृष्ठभूमि मे ही रहती थी और उससे ये सकेत या प्रेरणा ग्रहण करते थे किन्तु संस्कृत काव्यशास्त्र के अतिरिक्त ये कवि संस्कृत के शृंगारी मुक्तको की परम्परा से विशेष प्रभावित हुए जिसका विकास पचा-शिका, शतक एव सप्तशती पद्धति के ग्रन्थो के माध्यम से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि में हो चुका था जिसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं।

रीतिसिद्ध कवियो की मानसिक पृष्ठभूमि की निर्मिति मे संस्कृत रीतिग्रन्थो का भी हाथ रहा है। जैसा हम पहले कह आये हैं ये रीतिसिद्ध कवि रीति की पूरी परम्परा से वाकिफ रहे हैं। रस, ध्वनि, अलकार आदि सम्प्रदायो की इन पर भी पूरी-पूरी छाप थी। नेवाज, बेनी, नृपसभु, रसनिधि, हठी, पजनेस आदि रसवादी कवि ही थे। बिहारी को लोग रसवादी कहते हैं किन्तु डा० रामसागर त्रिपाठी ने अपने प्रबन्ध मे उन्हें रीतिकाल का प्रधान ध्वनिवादी कवि सिद्ध किया है।[१] सेनापति अवश्य अलकारवादी थे। इतना तो स्पष्ट ही है कि कवित्व के प्रेमी ये रीतिसिद्ध कवि अलकार और वक्रोक्ति सम्प्रदायो से कम, रस, और ध्वनि-सम्प्रदायों से विशेष प्रभावित थे। इनकी काव्यवृत्ति देखते हुए यह बात ठीक ही जँचती है।

रीतिशास्त्रीय विषयो की ही मानसिक पृष्ठभूमि होने के कारण इन कवियो ने भी नायिका भेद, ऋतुवर्णन, बारहमासा, नखशिख आदि परम्परागत और शास्त्रकथित विषयों को काव्य के वर्ण्य के रूप मे प्रचुरता से ग्रहण किया परन्तु उसमे अपनी नूतन गति का परिचय दिया। ये विषय ऐसे थे जिन पर स्वतन्त्र ढग से निजी अनुभव के बल पर काफी कुछ कहने का अवकाश था। ये विषय रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध दोनो ही प्रकार के कवियों द्वारा उठाए गए किन्तु भावनाओं एव उद्भावनाओ की नूतनता रीतिसिद्ध कवियों मे ही अधिक मिलेगी।

इन काव्य कवियो ने काव्य के कलापक्ष के साथ साथ भावपक्ष पर भी पूरा ध्यान दिया है फलत दोनो का अच्छा समन्वय इनके काव्य की एक सर्वमान्य विशेषता है। ये कवि कर्म के प्रति अधिक स्वस्थ और सतुलित दृष्टि रखते थे फलस्वरूप काव्य के भाव और कला दोनो पक्षों को समान महत्त्व देते थे। एक ओर जहाँ इन काव्य-कवियो ने अपनी कविता के भाव

---

१ मुक्तक काव्यपरम्परा और बिहारी डा० रामसागर त्रिपाठी।

पक्ष या वर्ण्य को नवीनता और ताजगी देने की चेष्टा की, उसे चर्वित-चर्वण मात्र होने से बचाया, अपनी और अपने युग की सीमाओं से सीमित या बँधे रहने पर भी ऐहिकतापरक शृंगारी रचनाओं द्वारा रस संचार और आनन्द-सृष्टि का आयोजन किया वहाँ दूसरी ओर उन्होंने काव्य के कलापक्ष के वास्तविक संभार की ओर भी ध्यान दिया। रीतिकालीन आचार्य कवियों की अपेक्षा रीतिबद्ध काव्यकवियों ने भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता विहारी, रसनिधि आदि में रीतिबद्ध आचार्य कवियों की अपेक्षा अधिक है। इनमें भाषा का अधिक सामासिक रूप मिलता है। विहारी, रसनिधि, राससहाय आदि काव्यकवियों ने अपने दोहों को भावपूर्ण और सुगठित तथा सौन्दर्य-सम्पन्न करने के लिये काव्य की समास-पद्धति का पर्याप्त उत्कर्ष दिखलाया है। अलंकारों के प्रयोग में भी इनकी दृष्टि अधिक विकसित और पूर्ण थी। वक्रोक्तियों के माध्यम से भी इन्होंने पूर्ण रस संचार और काव्य को आनन्द-प्रदान-क्षम बनाने में सहायता पहुँचाई। भाषा को मृदुल, कोमल, नाद-सौन्दर्य से परिपूर्ण बनाने की इन्होंने चेष्टा की तथा प्रचलित कवित्त-सवैया के अतिरिक्त दोहों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया।

रीतिबद्ध काव्य कवियों की प्रवृत्तियों और विशेषताओं के उपर्युक्त निर्वचन के अनन्तर रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्यकर्ताओं के बीच की भेदक रेखा खींच देना भी अनिवार्य जान पड़ता है क्योंकि दोनों की काव्यरचना पद्धति और ध्येय में एक निश्चित भिन्नता थी। रीतिबद्ध कवि लक्षणग्रन्थों की रचना करते थे और लक्षणों को घटित करने वाले उदाहरण के रूप में अपनी कविता लिखते थे। रीतिसिद्ध कवि लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखते थे फिर भी रीति की पूरी-पूरी छाप लिये हुए थे। रीति का पीछा नहीं छूटा था किन्तु रीति की जकड़न से ये अवश्य मुक्त थे। पहली श्रेणी के कवि हैं केशव, देव, भूषण, मतिराम, दूलह, दास, पद्माकर आदि, दूसरी श्रेणी के कर्ता हैं विहारी, सेनापति, रसनिधि, पजनेस आदि। पहली श्रेणी के कवि रीतिबद्ध कवि, रीतिग्रन्थकार, लक्षणकार आदि कहलाते हैं और दूसरी श्रेणी के रीतिसिद्ध, लक्ष्यकार, काव्य कवि आदि। रीतिग्रन्थकार कवि रीति के बन्धनों से बेतरह जकड़े हुए थे। उन्हें लक्षण-लक्ष्य का समन्वय करते हुए चलना था, वे लक्षणों से बाहर नहीं जा सकते थे पर सतसई और हजारा लिखने वाले रीतिसिद्ध कवि रीति का बन्धन ढीला करके चलते थे तथा शास्त्रोक्त सामग्री अथवा नियम का उपयोग अपने ढंग से करते थे इसीलिये नायिकाओं, अलंकारों आदि का न तो इन्होंने क्रमिक रूप से वर्णन किया और न उनके समस्त भेदोपभेदों का सांगोपांग वर्णन ही, फलस्वरूप रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध कवि की अपेक्षा स्वतन्त्र थे। इस स्वतन्त्रता का उपयोग इन्होंने अपनी कवित्व शक्ति के प्रदर्शन और नई-नई उद्भावनाओं के निदर्शन में किया फलतः काव्यत्व का उत्कर्ष और रमणीयता इनमें रीतिग्रन्थकारों से अधिक ही मिलेगी। इनका मत यह था कि शास्त्र में कथित बातें मार्ग निर्देशन के लिए हैं, उनके सहारे नई कल्पनाएँ और बातें पैदा की जा सकती हैं पर रीतिग्रन्थकार कवि लक्षणों को ही सब कुछ समझते थे, वे उससे बाहर नहीं जा पाते थे। रीतिग्रन्थकार कवियों ने आचार्य पद पाने और कवि शिक्षक का गौरव प्राप्त करने के उद्देश्य से लक्षणों का बोझ ढोना पसन्द किया किन्तु कवि-गौरव के अभिलाषी लक्ष्यकार कवि रीति का प्रभार लेकर भी रीति के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। रीति के एक-एक नियम का अनुसरण

काव्य-सौंदर्य के लिए इनकी दृष्टि मे घातक था इसी मे ये रीति मे बँधे भी थे और उससे कुछ पृथक भी। हाँ, रीति मुक्तो की भाँति ये रीति से सर्वथा स्वतन्त्र भी न थे। रीति इन पर हावी न थी परन्तु ये रीति के विरुद्ध भी न थे। रीति इनके लिए सहारे का काम देती थी। रीति के सहारे ये काव्यकवि के गौरवपूर्ण पद तक पहुँच सके थे। गुरुत्वकामी रीतिकारों की प्रतिभा अपना वह उन्मेष न दिखा सकी जो कवित्वकामी कवियो की प्रतिभा द्वारा सभव हो सका। शास्त्रस्थिति सम्पादन और कवियो का प्रशिक्षण इनका लक्ष्य न था, कवित्वशक्ति का उत्कर्ष दिखलाना इनका चरम काम्य था। रीतिसिद्ध कवियो को स्वतन्त्र काव्योद्भावना का अवकाश लक्षणकार कवियो की अपेक्षा अधिक था फलत इनमे भावुकता मौलिकता, अभिनव कल्पना आदि लक्षणानुधावन करने वाले रीतिकर्त्ताओं मे अधिक थी और व्यक्ति वैशिष्ट्य के आधार पर भी इन्हे पहचाना जा सकता है। बिहारी अपनी नई सूझ बूझ वाली उक्तियो के बल पर ही रीतिबद्ध कवियों से पृथक किये जा सकते हैं जब कि रीति की उँगली पकडने वालो की बहुत सी रचना एक सी ही हो गई है। उन्हें व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर अलग कर सकना सम्भव नही है। वैयक्तिकता का यह विकास रीति मुक्त कवियो मे और भी अधिक मिलेगा। रीतिबद्ध कवियो मे पिष्टपेषण और चर्वितचर्वण सबसे अधिक है। रीतिबद्ध कवियो मे कलापक्ष प्रधान है और भावपक्ष गौण। रीतिसिद्ध कवियो मे कलापक्ष और भावपक्ष का समभाव है और रीतिविरुद्ध या रीतिमुक्त कवियो मे भावपक्ष प्रधान और कलापक्ष गौण है। कला और भावपक्ष का यह तारतम्य तीनो धाराओ की पृथकता का सबसे अच्छा आधार है।

रीतिमुक्त काव्य (रीति-स्वच्छन्द काव्य)

रीति या शृंगारकाल मे रीतिमुक्त काव्यधारा वह थी जिसके अग्रदूत थे रसखान और आलम तथा पुरस्कर्ता थे घनआनन्द, बोधा, ठाकुर आदि प्रेमोन्मत्त कवि। ये भी शृंगार की रचना करते थे परन्तु राजेच्छा की तुष्टि या युग के स्वर मे स्वर मिलाने के उद्देश्य से नही। ये अपनी उमग पर थिरकने वाले प्रेम के पपीहे थे जो किसी रीति या शास्त्र के बन्धन को नही मानते थे, काव्य की रूढ रीतियों के कगारो को तोडती हुई जिनकी काव्य-पयस्विनी प्रवाहित हुई थी। भाव और कला सभी क्षत्रो मे स्वतन्त्रता या स्वच्छन्दता जिनका नित्य गुण था और जो नायिका भेद, रस, अलकार आदि के ग्रन्थो से निरपेक्ष हो अनुभूति प्रेरित काव्य की रचना किया करते थे। य कवि नहीं प्रेम के चातक थे जिनका प्रेम विरह और पीडा मे अपनी सार्थकता मानता था, मिलन और भोग मे नही। इनके यहाँ तीव्र अनुभूति का ही दूसरा नाम काव्य था। इनकी चर्चा पूरे विस्तार के साथ आगे के अध्यायों मे की गई है।

[ख] शृंगारेतर काव्य

रीति या शृंगार काल मे शृंगार के अतिरिक्त भावो और विषयो की ६ निश्चित काव्यधाराएँ प्रवहशील थी जिनका सक्षिप्त विवेचन आगे किया जा रहा है।

वीरकाव्य धारा

वीरकाव्य की वीरगाथाकालीन धारा कालान्तर मे धर्म एवं भक्ति के प्रवेगपूर्ण प्रवाह मे विलीन हो गई किन्तु आगे चलकर धार्मिक आवेश के शिथिल पड जाने पर एव

मुगल साम्राज्य की सुदृढ स्थापना के अनन्तर पराधीनता की भावना से प्रेरित होने पर एवं हिन्दुत्व के पतन की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे वीरता की लहर फिर से आ गई और हिन्दी के कवि अपने आश्रयदाताओ को लक्ष्य कर वीररसात्मक काव्यों की रचना मे प्रवृत्त हुए। इसमे सन्देह नही कि सभी आश्रयदाताओ की वीरता के वर्णन लोकप्रिय नहीं हुए किन्तु लोकनायक आदर्श वीर पुरुषों को लेकर जो प्रशस्तियाँ अथवा वीरकाव्य लिखे गए वे सचमुच स्मरणीय रहे चाहे प्रबन्ध के रूप मे लिखे गए हों चाहे स्फुट रूप मे। ऐसे काव्यों मे नायक ईश्वरीय गुणो से युक्त, हिन्दुओ का रक्षक, गो-ब्राह्मण-पालक, धर्म-दया-दान और युद्ध आदि मे परम वीर दिखलाया गया है। इन काव्यो मे शिवाजी तथा छत्रसाल ऐसे देशप्रसिद्ध नायकों तथा समाज के पूज्य हितकारी वीरो के ही वीरतापूर्ण कार्यों का विवरण मिलेगा। उत्तर मध्यकाल मे मुगलशासन अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर ह्रासोन्मुख होने लगा था। उत्तरी भारत मे मुसलमानों का राज्य था और लगभग सम्पूर्ण भारत मे उनका दबदबा था फिर भी राजस्थान और बुन्देलखण्ड दो ऐसे भूभाग थे जहाँ स्वतन्त्रता की वह्नि उस काल मे भी अमन्द थी। औरंगजेब के समय मे लोक नायक शिवाजी ने हिन्दू स्वातन्त्र्य की रक्षा की। कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तर भारत मे राजस्थान के अन्तर्गत मेवाड़, मारवाड, चित्तौड, बूँदी, जयपुर, भरतपुर, नीमराणा तथा बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत महोबा, पन्ना, छत्रपुर आदि हिन्दू राज्यकेन्द्रों मे वीर-साहित्य निर्मित होता रहा। मात्र आश्रयदाता की प्रशसा म लिखे गये काव्य 'वीरस्तवन काव्य' न होकर मात्र 'स्तवन काव्य' ही रह गये। केवल स्तुति या प्रशस्ति रूप मे लिखी गयी विविध आश्रयदाताओं की प्रशस्तियां लुप्त या अप्रसिद्ध हो रहीं। सच्चे वीरों को लेकर लिखे गए आख्यानों मे ही सच्चा कवित्व अपनी प्रौढता और सुन्दरता के साथ देखा जा सकता है। इस युग मे लिखा गया वीर काव्य दो प्रकार का है—(१) *वीरदेवस्तवन काव्य—हनुमान, दुर्गा ऐसे वीर देवी देवताओं की प्रशंसा,* स्तुति तथा उनके कार्यों का वर्णन करते हुए वीर रसात्मक छद या काव्य लिखे गए। ऐसी रचनाओ मे वीरता के साथ साथ भक्ति का भाव भी मिला हुआ है। (२) वीरपुरुषस्तवन काव्य—जिसमे वीर नरेशों तथा उनके कार्यों का प्रशसात्मक वर्णन किया गया है। वीर पुरुषों का चयन दो प्रकार का है। कुछ कवियो ने तो अपने आश्रयदाताओ का 'विरुद' इसलिये गाया कि वे उनके दरबारी कवि थे जैसे सूदन और पद्माकर जिन्होंने 'सुजान सागर' और 'हिम्मत बहादुर विरदावली' लिखी पर कुछ कवि ऐसे दिखाई देते हैं जिन्होंने लोक मंगल मे प्रवृत होने वाले वीरों की प्रशस्ति की जैसे भूषण, लाल, जोधराज और चन्द्रशेखर जिन्होंने शिवाजी, छत्रसाल और हम्मीर देव का यशोगान किया है और क्रमश: शिवराजभूषण, छत्रप्रकाश, हम्मीर रासो तथा हम्मीरहठ ऐसे ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं।

वीरगाथाकाल की वीररसात्मक रचनाएँ जहाँ प्रेम का साहचर्य लिये हुए थी वहाँ रीतिकालीन वीर-काव्य प्रेम से असपृक्त अपने शुद्ध रूप मे ही लिखा गया। ये वीर काव्य प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों मे लिखे गये। प्रबन्ध रूप मे लिखित काव्य भी स्वरूप भेद से महाकाव्य एवं खण्डकाव्य दोनों रूपो मे लिखे मिलते हैं। महाकाव्यो मे केशवदास कृत वीरसिंहदेवचरित, मानकवि कृत राज-विलास, गोरेलाल कृत छत्रप्रकाश, सूदन कृत सुजान-चरित्र तथा जोधराज कृत हम्मीरासो प्रसिद्ध हैं। इन काव्यों मे अपभ्रंश-कालीन रचना-पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य के नायक के जीवन की अधिकाधिक घटनाओ का विव-

रण, नायक तथा उससे सम्बन्धित अन्य पात्रों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा, उनकी दानशीलता, शूरता आदि का अत्यधिक विस्तारपूर्ण वर्णन किया गया है जिससे कथानक तथा महाकाव्य के अन्य तत्वों को आघात भी पहुँचा है। विविध व्यक्तियों और वस्तुओं के वर्णन में जब वर्ण्य की लम्बी सूची पेश की जाती है तब पाठक के धैर्य की परीक्षा हो चलती है। अतिशयोक्तियों के कारण अनेक वर्णन ऊहा-प्रधान हो गए हैं। 'राजविलास' और 'हम्मीर रासो' में इस प्रकार के दोष विशेषतया दृष्टव्य हैं। अनेक ग्रन्थों में ऋतुवर्णन, प्रकृतिचित्रण, धार्मिक उपदेश, नदी वर्णन, अलौकिक घटनाओं तथा द्वन्द्व पैदा करने वाले विस्तृत राजनैतिक संवादों की इतनी प्रचुरता है कि कथा का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है। कथानक को निर्दोष एवं उसकी ऐतिहासिकता को सुरक्षित रखने की दृष्टि से 'वीरसिंहदेव चरित' एवं 'छत्रप्रकाश' उल्लेखनीय हैं। महाकाव्यों में मिलने वाली अनेक बातें खण्डकाव्यों में भी देखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए कथाघातक विस्तृत वर्णन, अस्वाभाविक आकस्मिक एवं विस्मयपूर्ण घटनावली का विधान, कोरी प्रशंसा या नामावली-परिगणन आदि के कारण कथानक नीरस हो गए हैं। 'गोरा बादल की कथा', श्रीधर कृत 'जगनामा', पद्माकर कृत 'हिम्मतबहादुर विरदावली' ऐसे ही दोषों से परिपूर्ण रचनाएँ हैं। 'जगनामा' में तो संयुक्ताक्षरों एवं नादात्मक वर्णों का विधान ऐसी अधिकता से किया गया है कि वह खलने लगता है। सफल कथानक-रचना की दृष्टि से कुछ रासो शैली के खण्डकाव्य महत्वपूर्ण हैं—'रासा भगवन्तसिंह' में युद्ध का और 'करहिया को रास' में वीरों की गर्वोक्तियों एवं युद्ध का सुन्दर चित्रण हुआ है।

रासो शैली के काव्य भी रीति युग में लिखे गए जिनका आविर्भाव हिन्दी साहित्य के आदिकाल में हो चुका था। रासो ग्रन्थों की दो अलग परम्पराएँ अपने साहित्य में अपभ्रंश काल से ही मिलती हैं—(१) नृत्यगीत परक रासो (२) छन्द-वैविध्य-परक रासो। पहली परम्परा का सम्बन्ध जैन धर्म से ही विशेष रहा है। इसमें अधिकतर जैन महात्माओं, सुधाधीशों, तीर्थोद्धारकों के चरित्रों का वर्णन तथा जैनों का धर्मोपदेश ही मिलता है। 'बीसलदेव रास' इसी परम्परा की चीज है। उसका वर्ण्य इस परम्परा के वर्ण्य से अपवाद रूप में ही भिन्न है। दूसरी परम्परा में विभिन्न विषयों का विविध छंदों में काव्यकौशल पूर्ण ढंग से वर्णन मिलता है। रीतिकाल में लिखे गए रासो ग्रन्थों को दूसरी परम्परा का ही कहा जायगा। चरित-काव्यों अथवा प्रबन्ध-काव्यों के ही समान हिन्दी साहित्य में रासा शैली की काव्यधारा भी पर्याप्त समृद्ध रही है जिसका पूर्ण अध्ययन अभी भी नहीं हो सका है।

मुक्तक रूप में भी प्रचुर मात्रा में वीर-काव्य लिखा गया। इस प्रकार की रचना करने वालों में भूषण का नाम प्रथम लिया जायगा जिन्होंने शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक आदि मुक्तक संग्रह ही बनाये। इस काल में मुक्तक वीर काव्यों में बुंदेला छत्रसाल, लोक नायक शिवाजी सरीखे वीरों की प्रशस्तियाँ की गई हैं, उनके वीरतापूर्ण कार्यों, जीवन के विविध उत्साहवर्द्धक प्रसंगों का विशद वर्णन किया गया है। वीररस का सुन्दर परिपाक उपस्थित करने वाले शौर्य, वीरत्व, साहस, प्रताप, युद्ध, आतंक, कृपाण आदि के ओजस्वी वर्णनों से यह काव्यधारा परिपूर्ण है। केशव की प्रसिद्ध 'रतन बावनी' भी इसी परम्परा की चीज है। इन वीर-कवियों के सामने चारणकाव्य की परम्परा तो थी ही, रीति की परम्परा से भी ये प्रभावित हुए। भूषण ऐसे हिन्दुत्व प्रेमी एवं वीरोपासक कवि को भी 'शिवराज भूषण' ऐसा अलंकार-ग्रंथ लिखना पड़ा। अनेक वीर काव्यों की रचना धन वैभव के लोभ

से भी हुई किन्तु ऐसी रचनाओं को विशेष स्थायित्व न प्राप्त हो सका। केवल रूढ़ि के अनुसार आश्रयदाता से धनप्राप्ति का उद्देश्य लेकर लिखी जाने वाली रचनाएँ लुप्त हो गईं। पौराणिक वीरों पर लिखे गए काव्य भी यथेष्ट लोकप्रिय हुए। आश्रयदाताओं की प्रशंसा में फुटकर रूप से लिखी जाने वाली रचनाओं में वीरता के अधिकतर दो ही रूप वर्णित हुए, युद्धवीरता और दान-वीरता। ये रचनाएँ तीन रूपों में प्राप्य हैं— (१) रस ग्रन्थों में वीर रस के उदाहरण स्वरूप (रसिकप्रिया) (२) अलकार ग्रन्थों में अलकारों के उदाहरण स्वरूप (शिवराजभूषण, कविप्रिया) (३) स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में (शिवाबावनी, रतन बावनी, छत्रसालदशक)।

वीर रसात्मक काव्य का जो उत्थान वीर गाथाकाल में हुआ उसकी धारा धार्मिक अथवा भक्तिमूलक काव्यधारा के प्रवेगपूर्ण प्रवाह के सामने क्षीण पड गई परन्तु भक्ति प्रवाह के क्षीणबल होते ही पुन वेगवान हो उठी। इसी कारण रीतियुग में वीर रसात्मक काव्य का द्वितीय उत्थान प्रारभ होता है जिसमें लगभग ६० कवियों ने १०० ग्रथों की रचना की। इतने अधिक परिमाण में वीर काव्यों के लिखे जाने का कारण सृजनकालीन राजनीतिक, धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियों में देखा जा सकता है। देश का छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होना, आपसी एकता का अभाव, उत्तेजित स्वाभिमान, पारस्परिक विग्रह, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के समक्ष समूचे राज्य को तुच्छ समझने की मनोवृत्ति आदि कारणों से ये राजे शात नहीं रह पाते थे। उन्हें लडने के लिए एक न एक उसग चाहिये ही था। राजपूतों और ठाकुरों में चली आती हुई वीरत्व की परपरा युद्ध मांगती थी। शक्ति के साथ उद्धत दर्प का नव सगम होता था तो खग खनखना उठती थी।

नीति काव्यधारा

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस बात को एक मत से स्वीकार किया है कि रीतिकाल में नीति सबधी काव्य की एक स्पष्ट धारा प्रवहमान थी तथा इस प्रकार का काव्य प्रचुर परिमाण में लिखा गया। शृ गारकाल में नीतिकाव्य की विशेष समृद्धि हुई। इस धारा के प्रमुख उन्नायक वृन्द, गिरिधर, दीनदयाल गिरि, घाघ, भड्डरी, बैताल, सम्मन आदि नीतिकार कवि हैं। रीतिकाल में ही लगभग ६० नीतिकाव्य के रचयिता कवि हो गये हैं जिनके छोटे-बडे मिलाकर लगभग १२५ ग्रंथ मिलते हैं। यह नीतिकाव्य अधिकतर फुटकल रूप में पाया जाता है। रहीम, वृन्द, गिरिधर, दीनदयाल आदि के नीतिकाव्य मुक्तक रूप में ही प्राप्य हैं। इसी प्रकार गंग, बीरबल, टोडरमल आदि के नीति-विषयक छंद भी मिलते हैं। कुछ मुक्तकों के सग्रह मिलते हैं जिनमें केवल नीति विषयक कविताएँ संग्रहीत हैं जैसे वृन्द सतसई, रहीम दोहावली, छत्रमाल की नीति-मजरी, मीर का अन्योक्ति शतक, अन्योक्ति कल्पद्रुम आदि। नीति के बहुत से छद अन्य विषयक कविताओं के साथ सग्रहीत मिलते हैं जैसे तुलसी, बिहारी, मतिराम आदि की सतसइयों या रतनहजारा ऐसे ग्रंथों में प्राप्य रचनाएँ। कुछ नीतिकाव्य प्रबंध-काव्यों के अंशरूप में भी प्राप्त हैं जैसे रामचन्द्रिका आदि में प्राप्त नीति विषयक रचनाएँ।

इस युग की नीति-कविता में धर्म और आचार, व्यवहार और समाज, राजनीति, नारी, स्वास्थ्य, खेती, व्यापार, शकुन आदि विषयों पर कवि ने अपने विचार व्यक्त किये

हैं। आचार्यों ने इस नीतिकाव्य को दो प्रकार का ठहराया है। १ पद्यमात्र जिसमें नीति की बातें सीधे-साधे शब्दों में छन्दबद्ध कर दी जाती हैं। इसमें सिर्फ पद्यात्मकता होती है जैसे गिरिधर की अधिकांश कुंडलियां, संतों की अधिकांश नीति साखियां, घाघ, बैताल तथा भड्डरी आदि का नीति-साहित्य। २ सूक्ति साहित्य जिसमें नीति कथनों के साथ-साथ उक्ति सौन्दर्य का वैशिष्ट्य होता है। उक्तिगत चमत्कार के कारण सूक्ति अधिक प्रभावशालिनी हो जाती है। इसमें काव्य के विधायक तत्व भी हुआ करते हैं। रहीम, वृन्द के कुछ नीति विषयक दोहे तथा दीनदयाल गिरि की कितनी ही अन्योक्तियां इसी श्रेणी की हैं। रीतिकालीन नीति-काव्य दोहा, सोरठा, बरवै, छप्पय, सवैया, कवित्त और कुंडलियां छन्दों में लिखा गया है। नीति-विषयक छन्दों की रचना वैसे तो अन्य विषयों पर रचना करने वाले कवि भी कर गए हैं किन्तु नीतिकार कवि हम उन्हीं को कहेंगे जो प्रमुख रूप से नीतिकाव्य लिखने वाले हैं। जैसे रहीम, वृन्द, घाघ, भड्डरी, बैताल, गिरिधर और दीनदयाल।

संत काव्यधारा

हिन्दी साहित्य के मध्ययुग के आरम्भ में कबीरदास द्वारा प्रचारित संतमत इस प्रकार बढ़ा, फला और फूला कि शताब्दियों तक उसकी परम्परा चलती रही। यह दूसरी बात है कि वह संतमत नाना मतों और सम्प्रदायों का रूप लेकर उत्तर भारत में प्रचलित हुआ किन्तु इतना निश्चित है कि संतों के सामान्य आदर्श लगभग एक से ही रहे। धर्म दर्शन और समाज के क्षेत्र में संतों ने जिस सहज और उदार दृष्टि तथा चेतना का परिचय दिया वह निश्चय ही वरेण्य और महान है। संत साहित्य का कलापक्ष भले ही साधारण अथवा नगण्य हो किन्तु उसका भाव-पक्ष धवल और पुनीत है। संतकाव्य निम्नवर्गीय पंक से खिला हुआ कमल है। संतकाव्य की इस धारा से समस्त मध्ययुग आप्लावित रहा है। यद्यपि कालान्तर में संतमत कुछ क्षीण पड़ गया तथा जिन बातों का इस मत में निषेध था बाद में किसी सीमा तक वे ही बातें ग्राह्य एवं मान्य हो गई फिर भी शताब्दियों तक उत्तर भारत के एक बृहद् जन-समाज पर प्रबल रूप से इस धारा का प्रभाव पड़ता ही रहा। रीति-शृंगार काल तक आते आते संत कबीर द्वारा प्रवर्तित संतधारा का प्रभाव शिथिल पड़ चला, उसमें पहले सा वेग, शक्ति और प्रवाह न रह गया। मूलवर्ती संत धारा अनेक पंथों और सम्प्रदायों में विभक्त हो गई तथा अनेक पंथों एवं सम्प्रदायों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद तथा रामकृष्णादि की भक्ति प्रतिष्ठित हो गई। हिन्दी के आदि सन्तों ने जिन बातों का कठोरता से प्रतिवाद किया था वे ही बातें सम-सामयिक साहित्य, जीवन और समाज के प्रभाव में परवर्ती संत-साहित्य का अंग बनकर आईं। कृष्ण-भक्ति या सगुणभक्ति के सम-सामयिक प्रबल प्रभाव के कारण अनेक संतों में सगुण भावना और पूजोपचार तथा समकालीन सूफी कवियों का प्रभाव दिखाई देने लगता है। इस शिथिलता का कारण संतसाहित्य में व्यक्तित्व का ह्रास कहा जा सकता है। छोटे-छोटे साधारण संतों ने भी अपना पंथ चलाया। व्यक्ति में महत्व प्राप्ति की स्पृहा जगी। कबीर ने जिस प्रकार अपना एक नया मार्ग चलाकर अपनी शिष्यपरंपरा के द्वारा कबीरपंथ की जड़ जमा दी थी, उसी प्रकार उनके शिष्यों ने भी अपने-अपने व्यक्तित्व को प्रधानता देकर अपने-अपने नामों से अपनी-अपनी शिष्य परंपराओं को प्रचलित करते हुए अपने-अपने स्वतन्त्र पंथ चला दिये और इस प्रकार बहुत से पंथ निम्न श्रेणी के लोगों में प्रचलित हो गये। संतधारा के सभी संत अच्छे ज्ञानी, अनुभव और विवेकवान न थे। अनेक

तो बहुत साधारण श्रेणी के थे किन्तु महत्त्वाकांक्षावश महात्मा बन गये। संत-साहित्य का एक बहुत बड़ा अंश थोथा, निष्प्रभ और पिष्टपेषण मात्र है, एक बड़ी सीमा तक चर्वित-चर्वण मात्र मिलता है। इसी कारण इनका प्रभाव कुलीन अथवा सम्भ्रान्त वर्ग पर, सपन्न एव विद्वत्समाज पर बिल्कुल नही पड़ा। हाँ निम्नश्रेणी के लोग इनसे बराबर प्रभावित होते रहे तथा किसी सीमा तक वे विदेशी धर्मावलबन से पराङ्मुख रह सके। उन्हे इनकी बानियो मे थोड़ी बहुत दिलासा और सान्त्वना मिलती रही। कबीरादि प्रधान संतों के अनुकरण पर शब्द, रमैनी, साखियाँ, उलटबासियाँ आदि लिखी जाती रही। जनसाधारण के धर्म का साहित्य होने के कारण सत साहित्य की भाषा सरल और सुगम रही, जन-भाषा ही मे यह साहित्य प्रणीत हुआ। संतो की पर्यटनशीलता ने संतसाहित्य की भाषा पर अवधी, भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी आदि का काफी रग चढाया। साहित्य के उत्कर्ष की दृष्टि से सत साहित्य मे हमे निराशा ही हाथ लगेगी किन्तु जन भाषा की प्रभविष्णुता की दृष्टि से सत साहित्य का महत्व सदा स्वीकार किया जायगा। वैसे भद्दापन, फूहड़पन, भदेसपन या शास्त्रीय भाषा मे 'ग्राम्यत्व' इस साहित्य का नित्य दोष है। इतना अवश्य है कि परवर्ती संतसाहित्य की भाषा कुछ परिष्कृत है, वह कबीर की सी 'सधुक्कड़ी' नही है। सुन्दरदास ऐसे अनेक संतो ने उसे परिमार्जित और व्यवस्थित किया तथा कुछ साहित्यिकता भी प्रदान की। अधिकांश कवियो की भाषा सधुक्कडी न होकर ब्रज हो गई।

कबीर, नानक, दादू जैसा व्यक्तित्व रखने वाले सर्वमान्य सत बाद मे न हुए। नाना पंथो का उदय हुआ। कुछ पंथो का उदय तो भक्तिकाल मे ही हो चुका था, अनेक नये सम्प्रदायों का आविर्भाव उत्तर-मध्यकाल मे हुआ। निरजनी सम्प्रदाय, बावरी पथ, मलूक पंथ आदि शृंगारकाल के आविर्भावकाल के आसपास स्थापित हुए। जो पथ या सम्प्रदाय विशेष रूप से रीतिकाल मे ही चलाये गये वे हैं— बाबालाली, प्राणनाथी, सतनामी, धरनीश्वरी, दरियादासी, शिवनारायणी, चरणदासी, राधास्वामी और साहेब पंथ। अनेक पंथों एव सप्रदायों की शाखाएँ प्रशाखाएँ भी स्थापित हुई। सामान्यत इन सभी संतो का कथ्य एक सा ही है जैसा कि आरम्भ मे ही हम कह आये हैं— गुरु महिमा, सत्यनाम, मायाछल, वैराग्य, परमात्मासक्ति, मन शुद्धि, साधना, उपदेश आदि से सम्बन्धित बातें न्यूनाधिक रूप मे सभी संतों द्वारा कही गई हैं। जहाँ अनुभूति-प्रेरित कथन है वही उनमे वैशिष्ट्य उपलब्ध होता है अन्यथा अधिकतर चर्वित-चर्वण ही हुआ है। रीतियुगीन संतों पर योग साधना, कबीर की साखियों, नाथ पथ, सूफी मत और सगुण भक्ति धारा का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। सत मत की प्रारम्भिक मान्यताएँ कालान्तर मे परिवर्तित हो चलीं। उदाहरण रूप मे मूर्तिपूजन को ही लिया जा सकता है। जहाँ कबीर आदि इसके घोर विरोधी थे वहीं हम देखते हैं कि समाधि, पोथी या ग्रन्थ, चित्र और मूर्ति की पूजा शुरू हो गई। पोथी पूजा तो सिक्खो का प्रभाव है तथा चित्र और मूर्तिपूजा वैष्णव भक्तो के प्रभावस्वरूप है। सतनामी सप्रदाय मे हनुमान की मूर्ति-पूजा तक का विधान है। इसे आप मतमत की शिथिलता अथवा ह्रासोन्मुखता कहें चाहे लोक प्रचलित इतर धर्मों के साथ समन्वय या सामजस्य की प्रवृत्ति। रीतियुग की संतधारा के प्रमुख संत हैं—रज्जबदास, मलूकदास, सुन्दरदास, प्राणनाथ, दरियासाहेब, अक्षरअनन्य, यारी साहेब, जगजीवनदास, धरनीदास, शिवनारायण, गुलाल, चरनदास, बुल्ला साहेब, भीखा साहेब गरीबदास, रामचरण, दूलनदास, सहजोबाई, दयाबाई, तुलसी साहब हाथरसवाले, बालकृष्ण

-नायक, पलटू साहेब, शिवदयाल आदि[1]। अनुभूतियों के आधार पर रीतिकाल के निर्गुण-शाखा के ज्ञानमार्गी संतो को डा० रामकुमार वर्मा ने चार कोटियों मे विभक्त किया है[2]—(१) तत्वदर्शी (२) भावनासम्पन्न (३) स्वच्छन्द, और (४) सूफी। पंथ अथवा सम्प्रदायानुसरण की दृष्टि से इस काल के संतो को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है—(१) निरजनी सम्प्रदाय (२) दादूपंथ (३) बावरीपन्थ (४) मलूकपन्थ (५) सतनामी सम्प्रदाय (६) साहेब पन्थ (७) राधास्वामी सत्संग।

सूफी काव्यधारा

भक्तिकाल की अन्यान्य काव्यधाराओ की भाँति सूफियों की प्रेमाख्यान-रचना-परपरा भी रीतिकाल तथा आधुनिक काल के प्रथम चरण तक चलती रही है। संतो, रामभक्तो और कृष्णभक्तो की काव्यधाराओ मे जिस प्रकार की शिथिलता अथवा प्रवृत्तिगत ह्रास या परिवर्तन दिखाई देता है वैसा सूफी प्रेमाख्यान धारा मे नही। सूफियो की मौलिक विशेषताएं लगभग ज्यों की त्यो परवर्ती काव्य परम्परा में देखी जा सकती है।

सूफियों ने जिस इश्क या प्रेम के प्रचार को अपना लक्ष्य निर्धारित किया, ये प्रेमाख्यान उसी की सिद्धि के साधन थे। सूफी प्रेमाख्यान एक प्रकार के 'कथा रूपक' हैं, वर्णित कथा किसी इतर गूढ रहस्य का सकेत देती है और वह सकेत है 'इश्क मजाजी' द्वारा 'इश्क हकीकी' की प्राप्ति। सूफी हिन्दी प्रेमाख्यान अधिकतर हिन्दू राजा-रानियो के प्रेमवृत्तान्त को लेकर चले हैं क्योंकि उनका उद्देश्य भारतीय जन-समाज को प्रभावित कर अपने मत को उन तक पहुँचाना रहा है, उदाहरणार्थ 'नल दमयन्ती' का प्रेमाख्यान, किन्तु इस्लामी परपरा की 'यूसुफ जुलेखा' जैसी प्रेम कहानियाँ भी उन्होने उठाईं। प्रेम का उद्रेक चित्रदर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न-दर्शन साक्षात दर्शन आदि मे से किसी एक माध्यम से दिखाया गया है। कुछ प्रेम-कथाओं मे आंशिक ऐतिहासिकता भी मिलेगी जैसे रत्नसेन और पद्मावती, देवलदेवी और खिज्रखाँ, छीता, नूरजहाँ आदि किन्तु ऐसी रचनाओ में भी कल्पना का पुट बहुत अधिक है। अधिकाश सूफी प्रेमाख्यान उत्पाद्य या काल्पनिक ही हैं—जैसे मधुमालती, चित्रावली, इन्द्रावती, अनुराग बाँसुरी, नूरजहाँ, हंस जवाहर, भाषा प्रेमरस, पुहुपावती, कुँवरावत, ज्ञानदीप आदि। समस्त प्रेमाख्यानो का ढाचा पात्र और परिस्थिति-भेद से लगभग एक सा ही रहता है—प्रिय और प्रेमी मे स्वप्न अथवा चित्रदर्शन या गुण श्रवणवश प्रणय-भाव का उद्रेक होता है। अप्राप्ति और अमिलन प्रणय को प्रगाढ बनाता है। प्रियप्राप्ति का मार्ग अत्यन्त दुर्गम और कंटकाकीर्ण है। प्रेमी की सहायतार्थ किसी पक्षी या परी या अन्य शक्ति का विधान किया गया है तथा प्रिय-मिलन मे ही कथा की समाप्ति होती है। कथान्त मे कवि कथारूपक का उद्घाटन करता है और कहानी के माध्यम से उस आध्यात्मिक सकेत को व्यक्त करता है जो कवि का मूल प्रतिपाद्य है। ऐसी प्रेम कहानियों द्वारा सूफी कवियों ने बड़े कौशल के साथ जनता की वृत्तियों को परमसत्ता की ओर मोडने का प्रयास किया है। इस दिशा में सूफी संतों की देन अविस्मरणीय है। जनमानस की वृत्तियों के परिशोधन मे ये प्रेमाख्यान असाधारण रूप से सहायक हुए हैं। नायिका या परमात्मसत्ता के रूप को अत्यन्त

---

[1] हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० २१८।

[2] हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास'- डा० भगीरथ मिश्र (द्वितीय खण्ड), पृ० ७०८।

सौन्दर्यशाली बनाने की चेष्टा की गई है। रचना-शैली की दृष्टि से सूफियों के काव्य मसनवी पद्धति पर लिखे गये हैं फलत: ग्रन्थारम्भ में ईश्वर वन्दना, सृष्टि रचनप्रक्रिया तथा ईश्वर-महिमा गायन, मुहम्मद साहब तथा तात्कालिक शासक 'शाहेवक्त' की प्रशंसा तथा आत्म-परिचय आदि दिया जाता है। प्रेम, विरह आदि के विस्तृत विवरण के साथ-साथ हाट, समुद्र, जलक्रीडा आदि प्रसंगों का वर्णन किया जाता है। नखशिख, बारहमासा, प्रकृति आदि का भी चित्रण होता है। सूफी काव्य दोहा-चौपाई छंदों तथा अवधी भाषा मे ही लिखे गए हैं। अन्य छंदों का प्रयोग अपवाद रूप में ही मिलेगा। कवियो ने अपनी बहुज्ञता का परिचय भी किसी न किसी रूप मे दिया है तथा ऐसा करते हुए उन्होंने संगीत-शास्त्र, नायिका-भेद, काम-शास्त्र, मानस-शास्त्र, राज्य-धर्म, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन आदि विषयों पर अपने सुविचारित मंतव्य प्रस्तुत किये हैं। इन काव्यों के माध्यम से हमे भारतीय वातावरण, रीति नीतियों, पर्व-त्योहार उत्सवों और सस्कारो का यथेष्ट परिचय प्राप्त होता है जिससे काव्य मार्मिक और सजीव हो उठे हैं।

प्रेम ही वह मूल-तत्त्व है जिसका सूफी काव्यो मे इतनी विशदता के साथ व्याख्यान हुआ है। यह प्रेम कोई ऐसा-वैसा प्रेम नही है जिसमे मात्र वासना या कामुकता हो। इस प्रेम का राग आतरिक हुआ करता है ऐसा जो मानव हृदय को परिष्कृत करता है, उदार और विशाल बनाता है। सूफियों का मत है कि प्रियतम परमात्मा से वियुक्त होकर हमारे जीवन का चरम उद्देश्य उसके साथ पुनर्मिलन ही है। उस ईश्वर से मिलन या प्रेम की वासना सासारिक प्रेम से बहुत भिन्न नही वरन् यह सासारिक प्रेम तो उसी ईश्वरीय प्रेम की सीढी है। सूफियो का प्रियतम अखिल सौन्दर्य की निधि है। विश्व मे जहां भी रूप और सौन्दर्य की छटा है उसी प्रियतम की आभा है इसीलिये हमारा मन उधर आप से आप आकृष्ट होता है। उस परमात्मा को पाने के लिये कोरी बौद्धिकता काम न देगी, हृदय का सम्पूर्ण राग जब हम उसे अर्पित करेंगे, स्वार्थ, वासना, अहंकारादि विकारों से हृदय हमारा जब मुक्त रहेगा तब वह दिव्य ज्योति हमें मिले बिना न रहेगी। जब हमारा प्रेम एकनिष्ठ और दृढ होगा, प्रिय के लिये सर्वस्व होम कर देने को जब हम प्रस्तुत होंगे, बाधाएँ हमारे साहस और सकल्प को क्षीण न कर सकेंगी, परम रूप निधान परमात्मरूप प्रिय हमें प्राप्त होकर ही रहेगा किन्तु इसके लिये प्रेम की अनन्यता आवश्यक है। प्रेमी को जायसी के रतनसेन की भांति यह कहने में समर्थ होना चाहिये—'बहुत रंग ग्रद्धरी तोर राता। मोहि दूसर सों भाव न बाता॥' सूफियों के अनुसार साधक बार-बार अग्नि में तपाए जाने वाले स्वर्ण की भांति होता है। संकट पर सकट पडते जाते हैं परन्तु साधक उन्हें अविचल भाव से झेलता चलता है। प्रत्येक अग्निपरीक्षा उसमें निखार ले आती है। इसीलिए सूफी प्रेमाख्यानो मे विरह का विस्तार देखा जा सकता है। सूफी प्रेम का मार्ग सरल नहीं। उसमे विषय करने वाले कितने अंतराय आ उपस्थित होते हैं, उन सबसे सच्चा प्रेमी बचता हुआ अपने लक्ष्य की ओर चला चलता है। अंत में 'वस्ल' या संयोग की अन्तिम स्थिति उसे प्राप्त होती है। हिन्दी में जो सूफी साहित्य उपलब्ध है वह प्रधानत: प्रबंध अथवा प्रेमाख्यान काव्य के रूप में उपलब्ध है किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ सूफी रचनाएँ मुक्तक रूप में भी लिखी गई हैं। रीतिकाल में उपलब्ध सूफी रचनाएं निम्नलिखित हैं—सूरदास कृत 'नलदमन', हुसैनअली कृत 'पुहुपावती', दुखहरनदासकृत 'पुहुपावती', कासिमशाह कृत 'हंसजवाहर',

नूरमुहम्मद कृत 'इन्द्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी', शेख निसार कृत 'यूसुफ जुलेखा', शाह नजफ अली सलोनी कृत 'प्रेम चिनगारी' आदि ।

कृष्ण-भक्ति धारा

भक्तिकाल की कृष्णभक्ति-काव्य-धारा रीतियुग मे भी चलती रही । रीतियुग मे लिखित काव्य का एक बहुत बडा अंश कृष्ण सम्बन्धी ही है । रीतिबद्ध कवियो का काव्य तो कृष्ण को नायक ही मानकर चला है, रीतिमुक्तो के काव्य मे भी कृष्ण को पर्याप्त महत्व प्राप्त हुआ है किन्तु उभय काव्यधाराओ मे कृष्ण भक्ति का स्वरूप उतने प्रबल रूप मे उभर नही सका है । रीतिबद्ध काव्य मे कृष्ण की भगवद्वत्ता की ओर जहाँ तहाँ संकेत हुआ है वह अपवाद रूप मे ही समझना चाहिये अन्यथा मूलत कृष्ण इन कवियों की दृष्टि मे रसिक शिरोमणि, राधारमण, गोपीरमण, भोग-विलास वृत्ति के प्रधान दैवत, कामुक, नायक, छैला और लगर आदि ही रहे हैं । रीतिमुक्त काव्य मे घनआनन्द ने कृष्ण के प्रति 'रीझ' या आसक्ति ही अधिक प्रदर्शित की है, भक्ति कम । हाँ अपने जीवन के अन्तिम काल मे वे कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव अवश्य हो गए थे । रसखान मे जरूर भक्ति का भाव प्रगाढ रूप मे प्राप्य है । प्रस्तुत प्रसग मे हमारा अभिप्राय उस काव्य से है जो कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध रखता है । भक्तिकाल के कृष्ण और राधा रीतिकाल मे मात्र भक्ति के आलबन न रह गए । परवर्तित राजनैतिक, धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियो मे भक्ति के आवेग के शिथिल पडते ही वे शृगार के प्रधान आलबन हुए तथा उनके आड मे कविजन अपनी शृगारी वृत्ति निदर्शित करते रहे । 'रीति' अथवा 'शृगारकाल' जिनके नाम से चरितार्थ है उन कवियो ने तो प्रधानत काव्य की रचना की थी, अपने अत करण को तथा राजा और सामत वर्ग, तथा अधीनस्थ कर्मचारियों की शृगारी वासना की तृप्ति के लिये । राधा और कृष्ण का नाम स्मरण तो उपलक्ष्य मात्र था । भिखारीदास मे इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकृति है—'आगे के सुकवि जो पै रीझि हैं तो कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।' (काव्य निर्णय) फिर भी इस काल मे कृष्ण भक्ति की धारा चलती ही रही, भले ही उसका रूप साम्प्रदायिक होकर रूढिगत ही रह गया हो । यह भी सच है इस काल मे कृष्ण भक्तो मे भक्तिकालीन कृष्ण भक्तो सा आवेश और उन्मेष नहीं मिलता फिर भी कृष्ण भक्ति की शिखा बराबर जलती रही, वह उतनी मद भी नहीं होने पाई तथा इस काल मे नागरीदास आदि अनेक उच्चकोटि के कृष्णभक्त और काव्यरचयिता हो गए हैं ।

यह अवश्य है कि इस काल मे आकर कृष्णभक्ति के विविध सम्प्रदाय बन गये । उदाहरण के लिये विष्णुस्वामी, टट्टी, राधावल्लभीय, वल्लभ आदि सम्प्रदायो को लिया जा सकता है । कृष्णभक्ति के सम्प्रदायगत हो जाने से रीतिकाल के कृष्णभक्त कवियो मे दृष्टि-कोण की सकीर्णता और सकुचितता तथा रूढिबद्धता आ गई । नियमानुसरण तथा सम्प्रदाय विशेष के विधि-विधानो से इन कवियो मे एक प्रकार की जकडन आ गई फलत काव्य दृष्टि से भी इन कवियो मे वह मौलिकता, प्रतिभा, स्वच्छन्द आवेश-शीलता या अनुभूति और अभिव्यक्ति की मार्मिकता दुर्लभ हो गई जो भक्तियुगीन कृष्णभक्तो का सर्वस्व थी । इस सबके स्थान पर कवियो मे साम्प्रदायिक भक्ति; काव्यशास्त्र ज्ञान;शृगारिकता आदि तत्व विशेष रूप से सन्निविष्ट मिलते हैं ।

इस काल मे कृष्ण-भक्ति के अनेक ग्रन्थ सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद रूप मे लिखे गए हैं अथवा उनमे पूर्ववर्ती कृष्णभक्तो की छाया है। भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, महाभारत और हरिवंश पुराण इस काल के कृष्णभक्तो के प्रमुख उपजीव्य थे। उपर्युक्त कथन का यह आशय नही है कि रीतिकाल के कृष्णभक्त कवियों का काव्य स्वतन्त्र उद्‌भावना या अनुभूति या अभिव्यजन क्षमता से एकदम शून्य है तथा इन कवियों मे भक्ति या कवित्व के नाम पर जो कुछ है उच्छिष्ट ही उच्छिष्ट है। उनमे भक्ति और काव्यत्व के उपकरण मिलेंगे तथा काव्य की दृष्टि से उत्कृष्टता भी किन्तु रीतिकाल की यह कृष्णभक्ति धारा अभी भी अनन्वेषित और अनधीत पडी हुई है।

रीतियुगीन कृष्णभक्ति धारा की सर्वोपरि विशेषता वह शृगारिकता और रसिकता है जो समूचे रीतियुगीन काव्य की प्रधान प्रवृत्ति है। इसका मूल कारण युग का प्रभाव अथवा उसकी माँग के अतिरिक्त और कुछ नही। शृगार भावना के विशेष समावेश मे शुद्धभक्ति का निर्मल रूप इनकी कविता मे झलमलाता नही मिलता। डा० भगीरथ मिश्र ने ठीक ही कहा है कि 'इस युग के भक्तिकाव्य मे भी शृ गारी भावना प्रधानतया मिलती है। शृंगारी काव्य मे भक्ति भावना का स्वरूप चलताऊ है, यह शृ गार का ही उद्दीपक है, भक्ति का नहीं। इस युग के कृष्ण काव्य मे शृ गार भावना का अधिक समावेश हो गया और शुद्ध भक्ति-भावना अपने प्रखर रूप में कम हो गई। कृष्णभक्ति के विभिन्न सम्प्रदाय बन गए। इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत भी कृष्ण की लीला, विलास और शृ गार सज्जा के क्रिया-कलाप अधिक प्रचलित हुए। सखी और दाम्पत्य भाव के उपासक कुछ सम्प्रदायों मे तो पुरुष अपने को राधा या सखियाँ समझते हुए नारी के समान ही आचरण करने लगे यहाँ तक कि इस प्रकार के उपासको ने अपने नाम भी इसी प्रकार के रक्खे जैसे अलबेली अलि, ललित किशोरी। ये स्त्रियो के नहीं पुरुषों के नाम हैं। रामोपासक सम्प्रदाय पर भी इसका प्रभाव पड़ा और मधुर-भाव की उपासना प्रारम्भ हुई। इस प्रकार इस युग को विलासिता और शृ गार ने समस्त क्षेत्रों को प्रभावित किया।'[1]

कृष्णभक्तो मे ऐसे भी अनेक कवि मिल जायँगे जिन्होंने राम अथवा अन्य देवी देवताओ का श्रद्धापूर्वक स्तवन किया है। इन कवियो का काव्य प्रबन्ध और मुक्तक दोनो रूपो मे प्राप्त है और किसी सीमा तक वर्णनात्मक विशेषताओ से युक्त भी—कही उसमे कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है कही प्रेम का तथा कही वृन्दावन और ब्रज-प्रदेश की प्राकृतिक छटा का। कृष्ण भक्ति धारा मे कथात्मक प्रबन्ध अथवा प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव का विविध छन्दात्मक शैली मे लिखा गया महाभारत तथा ब्रजवासीदास का दोहा-चौपाई शैली मे लिखित 'ब्रजविलास' विशेष उल्लेख्य है। एक अन्य प्रकार की प्रबन्ध रचना भी इस काल मे देखने को मिलती है जिसे 'वर्णनात्मक प्रबन्ध', तथा 'वर्णनात्मक लीला काव्य' कहा गया है। उदाहरण के लिए दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, मृगया, झूला, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मगल वर्णन, रामकलेवा आदि वर्णनात्मक प्रसग। सामान्यतया ऐसे प्रसग बडे-बडे प्रबन्ध काव्यो मे आते हैं। जिस प्रकार से रसनिरूपक ग्रन्थो से नखशिख षड्ऋतु, नायिका भेद आदि छोटे-छोटे रसागो को लेकर रीतिकाल मे,

[1] हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ, ३३-३४।

छोटी-छोटी किन्तु स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी गईं तथा उक्त विषयों को स्वतन्त्र विषय का सा महत्व प्रदान किया गया इसी प्रकार प्रबन्धात्मक रचना के क्षेत्र में कवियों ने कृष्ण लीला के नाना रसीले प्रसग उठाये और उनका स्वतन्त्र रूप मे वर्णन कर चले। इस प्रकार के वर्णनात्मक सम्बन्धों में कृष्ण लीला के वर्णन तो सरस और रोचक बन पड़े हैं। उदाहरण के लिये चाचा हितवृन्दावनदास, सचित कवि, कृष्णदास आदि के वर्णनात्मक लीला-काव्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है किन्तु जहाँ कहीं मात्र वस्तु-वर्णन की योजना की गई है वहाँ सारा काम बिगड गया है, काव्य पाठक की परिमार्जित साहित्यिक रुचि को गहरा धक्का लगे बिना नहीं रहता—'जहाँ कवि जी अपने वस्तु परिचय का भंडार खोलते हैं—जैसे बरात का वर्णन है तो घोड़ों की सैकड़ों जातियों के नाम, वस्त्रों का प्रसंग आया तो पचीसों प्रकार के कपड़ों के नाम और भोजन की बात आई तो सैकड़ों मिठाइयों, पकवानों और मेवों के नाम-वहाँ तो अच्छे-अच्छे धीरों का धैर्य छूट जाता है।'[1] प्रबन्धात्मक काव्य के अतिरिक्त मुक्तक रूप में लिखित कृष्णकाव्य तो प्रभूत परिमाण में उपलब्ध है ही। रीतिकाल में कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि इस प्रकार हैं—१ ध्रुवदास २ छत्रसाल ३ नागरीदास ४ चाचा हितवृन्दावनदास ५ सुन्दरिकुँवरिबाई ६ बरसी हमराज 'प्रेमसखी' ७ अलिबेली अलि ८ भगवतरसिक ९ श्री हठी जी १० व्रजवासीदास ११. गुमानमिश्र १२. मचित १३ गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव १४ सहचरिशरण १५ रत्नकुँवरि बीबी १६ कृष्णदास १७ गुणमंजरीदास आदि। इस प्रकार लगभग २० कवियों द्वारा १७५ छोटे-बड़े ग्रन्थ लिखे गए।

रामभक्ति धारा

हिन्दी में रामभक्ति के अन्य प्रतिष्ठाता तुलसीदास ही हैं। सूरदास तथा अग्रदास ने भी तुलसीदास से पहले रामभक्तिधारा मे अपना योग दिया था। तुलसीदास के बाद उत्तरवर्ती शृंगारकाल में केशवदास, नाभादास, सेनापति, पृथ्वीराज, प्राणचन्द चौहान, माधवदास चारण, हृदयराम और मलूकदास रामभक्तिधारा मे अपना योग देते रहे। रीतिकाल में लिखे गये रामकाव्य की अनेक प्रवृत्तियाँ अत्यन्त स्पष्ट हैं। पहली बात तो यह है कि तुलसीदास ऐसे महान प्रतिभाशाली व्यक्ति के रामकाव्य ने औरों की हिम्मत तोड दी, वे तो उस दिशा में गये ही नहीं या गये तो गोस्वामीजी के प्रभाव से अछूते न रहे। यह बात एक बड़ी सीमा तक सच है कि तुलसीकृत 'मानस' ने रामकाव्य का विकास रोक दिया। तुलसी की रचना-शैली और उनका प्रबन्ध विधान तो इतना उत्कृष्ट और आकर्षक बन पड़ा है कि स्वयं कृष्ण काव्य के अनेक रचयिताओं ने उनका अनुसरण किया है। सन्तोष की बात यह है कि तुलसी के बाद भी रामकाव्य की परम्परा चलती रही।

रीतिकालीन रामकाव्य में सीता और राम के प्रति कवियों और भक्तों का वह पवित्र भाव दुर्लभ हो गया जो भक्तिकालीन रामकाव्य मे गोस्वामी जी तथा अन्य कवियों में पाया जाता है। सीता और राम को छिछोरे नायक नायिका के रूप में चित्रित किया गया और इसकी परिपाटी सी चल पड़ी। राम के प्रति दास्यभाव की जिस भक्ति का उत्थान गो० तुलसीदास द्वारा हुआ वह माधुर्य अथवा सखा भाव की उपासना में परिणत हो गई। कहीं पर सीता को रस की राशि तथा राम को आह्लादिनी-शक्ति के रूप में चित्रित किया गया

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास शुक्लजी, पृ० २९८।

है तो कहीं 'अष्टयाम' का वर्णन करते हुए राम और सीता की विलासचेष्टा, रतिकेलि, विहार आदि का वर्णन किया गया है। सीता के नखशिख का वर्णन करते हुए कटि, नितंब और उरोजों तक का वर्णन हुआ है। रामकाव्य में यह शृंगार-प्रवणता पूर्ववर्ती तथा समसामयिक कृष्णकाव्य के प्रभाव के कारण ही निष्पन्न हुई है। मात्र प्रेम को लेकर चलने से भक्ति-पथ में विलासिता और इंद्रियासक्ति का प्रवेश स्वाभाविक है। कृष्णभक्ति में यही हुआ तथा उसी के अनुसरण से रामभक्ति साहित्य भी दूषित हुए बिना न रहा। रामभक्तिगत मर्यादावाद और दास्यभक्ति का स्थान कृष्णभक्ति वाली शृंगार और माधुर्य भावना ने लिया। रामभक्ति में प्रवेश करने वाली 'इस शृंगारी भावना के प्रवर्तक थे रामचरितमानस के प्रसिद्ध टीकाकार जानकीघाट (अयोध्या) के रामचरणदास जी, जिन्होंने पति-पत्नी भाव की उपासना चलाई। इन्होंने अपनी शाखा का नाम 'स्वसुखी' शाखा रक्खा। स्त्रीवेश धारण करके पति 'लालसाहब' (यह खिताब राम को दिया गया है) से मिलने के लिए सोलह शृङ्गार करना; सीता की भावना सपत्नी रूप में करना आदि इस शाखा के लक्षण हुए। रामचरणदास जी की इस शृंगारी उपासना में तिरान छपरा के जीवाराम जी ने थोड़ा हेर-फेर किया। उन्होंने पति-पत्नी भाव के स्थान पर 'सखीभाव' रखा और अपनी शाखा का नाम 'तत्सुखी शाखा' रखा। इस सखी भाव की उपासना का खूब प्रचार लक्ष्मणकिला (अयोध्या) वाले युगलानन्यशरण ने किया। रीवाँ के महाराज रघुराजसिंह इन्हें बहुत मानते थे और इन्हीं की सम्मति से उन्होंने चित्रकूट में 'प्रमोदवन' आदि कई स्थान बनवाये। चित्रकूट की भावना वृन्दावन के रूप में की गई और वहां के कुंज भी ब्रज के से क्रीडा-कुंज माने गये। इस रसिक पथ का आजकल अयोध्या में बहुत जोर है और वहाँ के बहुत से मन्दिरों में अब राम की 'तिरछी चितवन' और 'बांकी अदा' के गीत गाये जाने लगे हैं। ये लोग सीताराम को 'युगल सरकार' कहा करते हैं।"[1] रासलीला, विहार, विलासक्रीड़ा आदि में राम को कृष्ण से भी आगे बढाने की चेष्टा की गई। रीतियुगीन रामसाहित्य पर छाई हुई इस रसिकता का इधर अच्छा अध्ययन हुआ है।[2] संस्कृत के हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्नराघव' जैसे ग्रन्थों में शृंगारिकता पहले ही आ गई थी। रामकाव्य से इस प्रकार मर्यादा और लोक कल्याण के आदर्श धीरे-धीरे तिरोहित होते गए।

रीतियुगीन रामसाहित्य आंशिक रूप से वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, आदि के अनुवाद रूप में लिखा गया है। शेष में भक्तिकालीन रामकाव्य, परवर्ती कृष्णकाव्य, रीतिकाव्य और रसिक सम्प्रदाय आदि का प्रभाव है। जहाँ तहाँ कुछ स्वतन्त्र सृष्टि भी मिलेगी। कुछ कवियों ने तुलसीदास वाली मर्यादा भावना कायम रखी तथा भगवान राम के जीवन के विविध प्रसंगों को लेकर मुक्तक एवं प्रबन्ध रूप में रचनाएँ प्रस्तुत कीं। राम तथा हनुमानादि को लेकर थोड़ा बहुत वीरपूरक या देवस्तवन काव्य भी लिखा गया। किन्हीं-किन्हीं कवियों में वर्णनगत वैशिष्ट्य भी मिलेगा फिर भी साहित्यिक उत्कर्ष प्राप्त रचनाएँ कम हैं। शृंगारकाल में रामभक्ति काव्यधारा के उन्नायक कवि हैं—लालदास, नरहरिदास

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास : प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १४१-४२।

[2] डा० भगवतीप्रसाद सिंह कृत रामभक्ति में रसिक संप्रदाय तथा रामनिरंजन पाण्डेय कृत रामभक्तिशाखा।

चरण, रायचंद, बालकृष्णनायक, गुरुगोविन्दसिंह, रामप्रियाशरण, यमुनादास, जानकी रसिक शरण, रसिकअली, सरजूराम पंडित, भगवन्तराय खीची, मधुसूदनदास, सुमान, गोकुलनाथ, मनियार सिंह, ललकदास, नवलसिंह, जनकराज किशोरीशरण, गणेशबन्दीजन, प्रेमसखी, रामसखे, महाराज विश्वनाथसिंह, महाराज रघुराजसिंह, रसिक-बिहारी। इस धारा के इन २४ कवियों द्वारा लगभग ५५ ग्रन्थ प्रणीत हुए हैं।

द्वितीय अध्याय

रीति-स्वच्छंद काव्यधारा, प्रवृत्तियाँ तथा रीतिबद्ध काव्य से उसकी भिन्नता

●

१ स्वच्छंदतावादी काव्य की परिभाषा और उसके लक्षण

२ शास्त्रीय (रीतिबद्ध) और स्वच्छन्द (रीतिमुक्त) काव्य मे अन्तर

३ हिन्दी की रीतिस्वच्छन्द काव्यधारा की विशेषताएँ : सामान्य प्रवृत्तियो का अध्ययन

४ अंग्रेजी कविता में स्वच्छन्दतावाद (१७६८ ई० से १८३२ ई०) : इतिहास और स्वरूप विश्लेषण तथा रीतिस्वच्छन्द काव्य से उसका सामंजस्य

१

स्वच्छदतावादी काव्य की परिभाषा और उसके लक्षण

प्रत्येक भाषा के साहित्य मे निरन्तर सृजन होते रहने के कारण रूढियाँ और परम्पराएँ बनती हैं और समय आता है जब वे टूटती है। उन्हे तोडने वाले कवि स्वच्छन्द और उनकी कविता स्वच्छन्दतावादी होती है। पहले प्रकार का काव्य रीतिबद्ध कहा जा सकता है, दूसरे प्रकार का रीतिमुक्त या रीतिस्वच्छन्द। पाश्चात्य विद्वान् *Lafcadio* Hearn ने भी साहित्य सृजन की इस प्रवृत्ति को पहचान कर कहा है—Every alteration of the literary battle seems to result in making the romantic spirit more classic and the classic spirit more romantic. Each Learns from the other by opposing it वह काव्य जो क्रमागत रूढियो को तोडकर चलता है स्वच्छन्दतावादी या Romantic कहलाता है। हिन्दी साहित्य में दो काल ऐसे हैं जिनमे रची जाने वाली कविताएँ साहित्य के निष्णात विद्वानों द्वारा स्वच्छन्द कही गई हैं। एक तो वे कविताएँ जो रीतिकाल मे लिखी गईं किन्तु ऐसे कवियो द्वारा जो काव्यशास्त्र के विधि-विधानो से निरपेक्ष और स्वतन्त्र काव्य रचना के प्रेमी और अभिलाषी थे, जिन्होने कृत्रिम नही प्रेम की सहज उमग मे आकर काव्य-सृष्टि की जैसे आलम, बोधा, ठाकुर, घनानन्द आदि। दूसरी कविताएँ वे हैं जो आधुनिक काल के ऐसे कवियो द्वारा लिखी गईं हैं जिन्होने एक ओर तो रीतिकाल की परम्परागत वर्णन शैली का त्याग किया और दूसरी ओर द्विवेदीयुगीन नैतिकता, उपदेश-प्रधान एव इतिवृत्तात्मक काव्यशैली से मुँह मोडा और जीवन के कृत्रिम, पुरातन, परम्परागत रूपों और व्यापारो मे निस्सारता और नीरसता देखी तथा जो उसके सहज और अकृत्रिम रूप की ओर उन्मुख हुए। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियो में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, बच्चन, दिनकर, गुरुभक्तसिंह और उदयशकर भट्ट को मुख्य रूप से गिना है। डा० रामचन्द्र मिश्र ने इस विषय पर लिखे अपने शोध प्रबन्ध में ठाकुर जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मन्नन द्विवेदी, बदरीनाथ भट्ट, रामनरेश त्रिपाठी, जयशकर प्रसाद और मुकुटधर पाण्डेय को प्रधान पूर्ववर्ती स्वच्छन्दतावादी कवि कहा है तथा प० नन्ददुलारे वाजपेयी

ने इन्हीं कवियों को पंत और निराला जैसे स्वच्छन्दतावादियों (या छायावादियों) का प्रेरक अथवा पूर्व पुरुष कहा है। यहाँ हमें रीतिकाल के रीतिमुक्त कवियों के काव्य-प्रवाह का अध्ययन अभीष्ट है फिर भी हम थोड़ा-सा प्रसंग संवर्द्धन करते हुए स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं।

स्वच्छन्दतावादी काव्य की परिभाषा—स्वच्छन्दतावादी काव्य पर विद्वानों के मत इस प्रकार हैं :—

(1) *Victor Hugo* — Liberalism in Literature.

(2) *Watts Dunton* —The renaissance of the feeling of wonder in poetry and art.

(3) *Wordsworth* — Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings

(4) *Dr. Hedge* — The essence of romanticism is inspiration

(5) *Stoddard* — Romanticism in its noblest expression is a departure from law, from fact, from harmony, from perspective, in quest of new law, a new fact, a new harmony, a new perspective.

(६) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पंडितों की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य-धारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है। जब जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा। यह भावधारा अपने साथ हमारे चिर परिचित पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, जंगल-मैदानों आदि को भी समेटे चलती है। देश के स्वरूप के साथ यह सम्बद्ध चलती है। एक गीत में कोई ग्रामवधू अपने वियोगकाल की दीर्घता की व्यंजना अपने चिर परिचित प्रकृति व्यापार द्वारा इस भोले ढंग से करती है—"जो नीम का प्यारा पौधा प्रिय अपने हाथ से द्वार पर लगा गया वह बड़ा होकर फूला और उसके फूल झड़ भी गये, पर प्रिय न आया।"[1]

(७) आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र—स्वच्छन्द काव्य भावभावित होता है, बुद्धिबोधित नहीं, इसलिए आंतरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आंतरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छन्द काव्य की सारी साधन-सम्पत्ति शासित रहती है, यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है। बहुत आधुनिक ढंग से कहें तो कहेंगे कि स्वच्छन्द वृत्ति के कवियों की अनुभूति ही उनका मुख्य आधार है, उसी के सहारे उनकी सारी कृति की छान-बीन की जा सकती है। रीतिकाव्य के कर्ताओं का मूल आधारभूत तत्व है भंगिमा। स्वच्छन्द कर्त्ता में भंगिमा कहीं कदाचित् न भी हो, पर अनुभूतिशून्य उसकी रचना नहीं हो सकती। रीतिकर्ता में अनुभूति चाहे न भी हो, पर भंगिमा अवश्य रहेगी।[2]

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य शुक्ल, पृ० ५५२-५३।

२ घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : परिचय, पृष्ठ ५।

(८) डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—"रोमान्टिक साहित्य की वास्तविक उत्तभूमि वह मानसिक गठन है जिसमे कल्पना के अविरल प्रवाह से घनसंश्लिष्ट निविड आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड आवेग ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं।"[1]

(९) प० नन्ददुलारे वाजपेयी—"वह काव्यधारा जो काव्य और कला के व्यक्त सौन्दर्य-प्रमाधनों, सुन्दर शब्दों और आकृतियो आदि का आग्रह करके चलती है, क्लेसिसिज्म की प्रतिनिधि कही जाती है। इसी प्रकार जो काव्यधारा अत्यन्त अनियमित पद्धति, सयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमाटिक गति की सूचक है।"[2]

यहाँ पर स्वच्छन्दतावादी काव्य के सम्बन्ध मे विद्वान विचारको के जो अभिमत दिये गये हैं उनसे अलग-अलग स्वच्छन्द काव्यधारा के सम्यक रूप का बोध तो नही हो पाता किन्तु उन सबको मिलाकर स्वच्छन्द काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे हम अनेक महत्त्वपूर्ण सकेत अवश्य पा जाते हैं। इन परिभाषाओ अथवा साकेतिक कथनों द्वारा यह पता चलता है कि स्वच्छन्द काव्यधारा उदार, नवस्फूर्तिमती रूढि विद्रोहिनी, नवीन दृष्टिमती, अभिनव सौन्दर्य विधायिनी, प्रकृति साहचर्य अथवा प्रकृति-प्रेम से परिपूर्ण, कल्पनारजित, भावावेगमयी और सयमहीन होती है।

स्वच्छन्द काव्यधारा के मूल मे पूर्ववर्तिनी काव्य प्रवृत्ति के प्रति असतोष का भाव प्रधान हुआ करता है। इस असतोष का मूल कारण होता है पूर्ववर्ती या कभी-कभी समसामयिक काव्य का रूढियो या सकीर्णताओ मे आबद्ध हो जाना। ये रूढियाँ काव्य के भावपक्ष या वस्तुविषय को लेकर हो सकती हैं और शैली, शिल्प, भाषा, अलकृति, व्यजनाविधान आदि को लेकर भी अथवा दोनो को लेकर। काव्य मे जब आवृत्ति और पिष्टपेषण की अति हो जाती है, उसका रस-तत्व समाप्त होने लगता है, अभिनव भावावेश की कमी होने लगती है, कवि समाज जब जीवन से अपने काव्य की प्रेरणा न लेकर काव्य और साहित्य मे ही स्फूर्ति प्राप्त करने लगता है तब साहित्य मे जकडन आ जाती है। भावपक्ष के कवि की दृष्टि से ओझल होने लगता है और शब्द-सज्जा या उक्ति-वैलक्षण पर ही उसकी दृष्टि निबद्ध होने लगती है। विश्व के व्यापक-क्षेत्र से कवि की प्रतिभा को जब किसी नवीन सौन्दर्य की उपलब्धि नही होती, उसके रवि-शशि, साय-प्रात, आकाश की प्रतिक्षण परिवर्तनशील वर्णच्छटा, मेघो की घुमडन, विद्युत-विलास, तारको की स्मिति, चन्द्र ज्योत्सना का खिलखिलाना, कलियो का चटकना, किसलयो का अरुणिम सौन्दर्य, पक्षियो का नानाविध आचरण, पशुओ की चपल क्रीडा जब कवि को रिझाने में असमर्थ रहते हैं, चपल बालक के मृदु हास मे, भोली बालिका के नेत्रो की आभा में, युवक की तरुण उत्कठा मे, विरहिणी के श्वासोच्छ्वास मे, उन्मदयौवना के मदिर अपागो मे, विधवा की गीली आँखो मे, भिक्षुक के जर्जर तन-वसन मे, दीन की दुर्बल आहो मे जब कवि को सवेदना नही मिलती तब कविता वस्तुत कविता नहीं रह जाती। वह दलदल मे धँसे हुए उस सुन्दर और चमकीले रथ की तरह हो जाती है जिसकी साज-सज्जा मे तो कोई कमी नही किन्तु जिसमे गति का अभाव है, जिसका चालक तो है परन्तु अशक्त है। रूढियो मे जब कविता उलझ जाती है तब उसकी तडक-भडक और ऊपरी शोभा के

---

1 देखिये डा० देवराज उपाध्याय कृत 'रोमांटिक साहित्य शास्त्र' की भूमिका।

2 आधुनिक साहित्य, पृ० ३८८।

बावजूद भी सहृदय उसमें मूल संवेदना का अभाव पाता है और कष्ट के साथ यह अनुभव करता है कि कविता के रथ को रूढ़ि के दलदल से निकालने की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता की अनुभूति जब तीव्र से तीव्रतर होने लगती है तभी स्वच्छन्द कविता का जन्म होता है। ऐसी ही आवश्यकता की अनुभूति पोप और ड्राइडन शास्त्रबद्ध (Classical) काव्यरचना को देखकर वर्ड्सवर्थ, शैली और कॉलरिज को हुई थी। ऐसी ही स्वच्छन्दता की अभिलाषा हिंदी के रीतिबद्ध काव्य को देखकर घनानन्द और ठाकुर में जगी थी और ऐसी ही मुक्ति की कामना आधुनिक हिन्दी काव्य में श्रीधर पाठक तथा उनके अनुयायियों को हुई थी। यही कारण है कि इंगलैंड में रोमान्टिक कविता तथा हिन्दी साहित्य के रीतियुग में रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा और आधुनिक युग में स्वच्छन्दतावादी धाराओं का आविर्भाव हुआ। इन स्वच्छन्दतामूलक काव्यों के उदय की साहित्यिक परिस्थितियाँ प्राय समान थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि हमारा काव्य जब किन्ही प्रणालियो में बँधकर रूढ़ हो जाता है और उसकी धारा सकीर्ण हो जाती है तथा उसकी आनन्दोत्तेजकता क्षीण हो जाती है तब उसमें प्राणो की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए जन-जीवन की भावधारा का सहारा लेना पड़ता है—'हमारी भावप्रवर्तिनी शक्ति का असली भंडार इसी स्वाभाविक भावधारा के भीतर निहित समझना चाहिए। जब पडितों की काव्यधारा इस स्वाभाविक भावधारा से विच्छिन्न पड़कर रूढ़ हो जाती है तब वह कृत्रिम होने लगती है और उसकी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। ऐसी परिस्थिति में इसी भावधारा की ओर दृष्टि ले जाने की आवश्यकता होती है। दृष्टि ले जाने का अभिप्राय है उस स्वाभाविक भावधारा के ढलाव की नाना अन्तर्भूमियों को परखकर शिष्ट काव्य के स्वरूप का पुनर्विचार करना। यह पुनर्विचार सामजस्य के रूप में हो, अब प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, जो विपरीतता की हद तक जा पहुँचती है। इस प्रकार के परिवर्तन को ही अनुभूति की सच्ची नैसर्गिक स्वच्छन्दता (True Romanticism) कहना चाहिये, क्योंकि यह मूल प्राकृतिक आधार पर होता है।'[1]

स्वच्छन्दतावादी काव्य के लक्षण—स्वच्छन्दतावादी काव्य की सर्वमान्य परिभाषा स्थिर करना भले ही कठिन हो किन्तु उसके अनेकानेक लक्षणो का निर्भ्रान्त रूप से विधान सर्वथा संभव है। जिन लक्षणो का उल्लेख नीचे किया जा रहा है वे स्वच्छन्द काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक होंगे—

(१) रोमान्टिक या स्वच्छन्दतावादी साहित्य में हृदय का वेग ही काव्य के रूप में फूटता है, प्राणो की आकुलता ही कविता बनती है। यह भाववेग और उसका उच्छल प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उस काव्य पयस्विनी की धार में शास्त्रीय-काव्य-नियमो के कगारे टूटे बिना नहीं रहते। स्वच्छन्दतावादी काव्य आन्तरिक अनुभूति की उपज है और विश्व-साहित्य में तीव्रतम आन्तरिक अनुभूति से ही महत्तम काव्यो की सृष्टि हुई है।

(२) स्वच्छन्दतावादी काव्य मूलतः आत्मपरक होता है फलत वह व्यक्तिवादी अधिक होता है। उसमें सामाजिकता अथवा लोक-भावना का अभाव होता है। ऐसे काव्य में कवि का निजी लोक ही गोचर हुआ करता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में विषय, प्रवृत्ति अभिव्यंजना सभी कुछ व्यक्तिनिष्ठ हुआ करती है। निर्बन्धता उसकी मूल प्रवृत्ति होती है।

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य शुक्ल, पृ० ५५३।

(३) बन्धनहीनता के कारण स्वच्छन्द काव्य शैली के क्षेत्र मे शास्त्रीय नियमो की पूर्ण अवहेलना करता है। वह अभिव्यजना का अभिनव मार्ग अपने आप निर्मित करता है। निजी अनुभूतियो और भावनाओ के आधार पर वह अपना स्वच्छन्द मार्ग स्वतः निर्धारित करता है। वह काव्य की रूप और रचनागत पद्धतियो का तिरस्कार करता है। बने बनाए मार्गों पर चलना और काव्य-पद्धतियो का अनुसरण करना उसके लिए इष्ट नही। उसके छन्द, लय, अलकार आदि सभी मुक्त वायुमडल मे साँस लेते हैं। वाच्यार्थ का अभिप्रेयार्थ मात्र मे इस काव्य का पूरा नही पडता। साकेतिकता और प्रतीकात्मकता की इस काव्य मे विशेष अपेक्षा हुआ करती है। व्यक्ति प्रधान अनुभूतियो की अभिव्यजना के लिए जो शब्द-विधान उपयुक्त हुआ करता है वे कवि उसे ही अपनाते हैं। स्वच्छन्द कवि की शैली उसके अन्त करण से फूटने वाले भावो के आलोक से आलोकित होती है।

(४) स्वच्छन्दतावादी काव्य रूढियो का विरोधी होता है। पुरानी रूढियो और परम्पराओ का उच्छेद करते हुए चलना उसका मूल कर्म होता है। प्राचीन शिल्प शैली और विचारधारा सभी के प्रति इस काव्य मे विद्रोह और क्रान्ति के भाव होते हैं। चली आती हुई काव्य परम्परा मे परिवर्तन, जडता और कृत्रिमता के स्थान पर स्पन्दनशीलता और स्वाभाविकता का विन्यास इस काव्य का मूल लक्ष्य होता है। कुछ पाश्चात्य विवेचको लेटर हेज (Later hedge) आदि ने स्वच्छन्द काव्य को महत्त्वाकाक्षा की अभिव्यक्ति माना है। इसका तात्पर्य यही है कि यह काव्य ऐसे व्यक्तियो द्वारा ऐसे समाज के लिए सृष्ट होता है जो अपनी वर्तमान परिस्थिति से सतुष्ट नहीं, जिनकी कितनी ही इच्छाएँ अपूर्ण हैं और जो उन इच्छाओ को पूर्त करने की कामना रखते हैं। यह कहने की आवश्यकता नही कि ऐसा काव्य सजग और सप्राण व्यक्तियो की सृष्टि हुआ करता है।

(५) रोमाण्टिक कवि लोक-सामान्य विषयो से इतर विषयो को ग्रहण करता है। उसकी वृत्ति असाधारण की ओर उन्मुख होती है। वह काल्पनिक और असम्भव की ओर भी दौडता है।

(६) स्वच्छन्द कवि द्वारा चित्रित चरित्र भी स्वच्छन्द वृत्ति के हुआ करते हैं। बनाव-सिंगार, कृत्रिमता, आडम्बरप्रियता आदि उनके लक्षण नही होते।

(७) स्वच्छन्द काव्यधारा मे प्रकृति-प्रेम की भावना प्रधान होती है क्योकि प्रकृति की उन्मुक्तता और स्वच्छन्दता मे कवि अपने हृदय की प्रतिकृति देखता है। प्रकृति-चित्रण में तन्मय कवि आत्मविभोर हो जाता है। उसके लिए प्रकृति की स्थूल रूप छटा ही आकर्षक नही होती, वह उसके अन्तस्तल मे भी प्रवेश करता है और उसे किसी निहित सत्ता की ज्योति से ज्योतित भी देखता है। कवि को प्रकृति मे आत्मीयता के दर्शन होते हैं। प्रकृति की नैसर्गिक छटा का कवि की वृत्ति से मेल पडने के कारण कवि अपने काव्य मे प्रकृति की विराटता, विचित्रता, स्वच्छन्दता, सुन्दरता आदि सब कुछ अकित करता चलता है। ऐसे काव्य की प्रभविष्णुता का तो पूछना ही क्या!

२

शास्त्रीय (रीतिबद्ध) और स्वच्छन्द (रीतिमुक्त) काव्य में अंतर

शास्त्रीय और स्वच्छन्द काव्यकृतियों का अनुशीलन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों प्रकार के काव्यों मे पर्याप्त अन्तर है। शास्त्रीय (Classical) और स्वच्छन्दतावादी (Romantic) काव्य के बीच सबसे बड़ा और प्रधान अन्तर यह है कि उभय प्रकार के काव्यों की प्रेरणाएँ भिन्न हुआ करती हैं तथा काव्य के प्रति उनका मूलवर्ती दृष्टिकोण भिन्न हुआ करता है। क्लैसिकल कवि बंधनों का क़ायल है, वह शास्त्रीय काव्य की परिपाटियों के बंधन मे बँधकर ही काव्य रचना करने की बात सोचता है, नियमादि के बंधनों की परतंत्रता उस पर हावी होती है। स्वानुभूत सत्यों की अभिव्यक्ति की स्फूर्ति उसमें नही जगती। उसकी प्रेरणा और चेतना की दिशाएँ और मार्ग सुनिश्चित रहते हैं और वह अपनी लीक को छोड़ नहीं सकता। निश्चित आदर्शों और मर्यादाओं के पालन में ही उसका कवि-कर्म अपनी चरम सार्थकता लाभ करता है। डा० देवराज उपाध्याय ने ठीक ही कहा है कि 'क्लासिकल कवियों के मस्तिष्क में कहीं काठिन्य होता है। प्रकृत वस्तु के प्रति उसमें प्रतिक्रियाशीलता का इतना तत्परत्व नहीं होता कि वह हमारे मस्तिष्क की सारी तहों को खोलकर उन्हें उद्भासित कर दे, अन्दर से ज्योति फूटती सी दिखलाई पड़े।'[1] इसके विपरीत स्वच्छन्द कवि अपनी आँख से देखता है और काव्य में अपनी अनुभूतियों की ताज़गी ले आता है। लीक, परम्परा और रूढ़ि उसे नहीं भाती, उन्हीं के विरुद्ध उसका अभियान होता है। वह काव्य मे सहजता, स्फूर्तिमत्ता या निर्बंधता का क़ायल है, भाव और अभिव्यंजना दोनों ही क्षेत्रों मे। वह बनी हुई लीक पर नहीं चलता, सिंह और सपूत के समान लीक छोड़कर चलता है। उसकी यह प्रवृत्ति, जीवन के प्रति उसका यह उन्मुक्त और निर्बंध दृष्टिकोण उसकी स्वच्छन्दता या रोमांटिक गति का सूचक है। यह तो है ही कि काव्य जब रूढ़िबद्ध हो चलता है तो रूढ़िभंजन करने वाले कवि अवतरित हुआ करते हैं किन्तु साथ ही यह भी देखने की चीज़ है कि ये दो प्रकार के कवि मानसिक संस्थान या संगठन की दृष्टि से भी

---

[1] रोमांटिक साहित्यशास्त्र की भूमिका · हजारीप्रसाद द्विवेदी।

एकदम भिन्न हुआ करते हैं। एक मे प्राचीन के प्रति ममता और नवीन के प्रति निष्ठुरता होती है और दूसरे मे ठीक इसके विपरीत नवीन के प्रति ममता और प्राचीन के प्रति निष्ठुरता होती है। इस तरह से दोनों प्रकार की कविताओं मे मूल अन्तर 'स्पिरिट' या आतरिक प्रेरणा का है। वाह्य उपकरणो, भाषा, अलकार, छद आदि का नही यद्यपि यह सच है कि काव्य प्रेरणा या काव्यदृष्टि भिन्न होने पर काव्य के बाहरी उपकरणो मे भी अतर आ जाया करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शास्त्रीय और स्वच्छन्द काव्यधाराओ के पारस्परिक अतर को स्पष्ट करते हुए यह बतलाया है कि जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार की 'दृष्टिभगी के ही कारण उभयविध कवियों मे एक भारी अतर आ उपस्थित होता है—क्लैसिकल या परम्परा समर्थित साहित्य मे परिपाटी-विहित रसज्ञता या रस-निष्पत्ति पर जोर दिया गया होता है इसलिए उसमें उस अनासक्त सौन्दय-ग्राहिणी दृष्टि का प्राधान्य रहता है जो अधिकाधिक मात्रा मे सामान्य होती है, विशेष नहीं। जब कोई सहृदय सौन्दर्य और रसबोध के सामान्य मान को स्वीकार कर लेता है तो उसका ध्यान सामान्य भाव से निर्धारित सौन्दर्य के टाइप और नीति तथा सदाचार के परिपाटी विहित नियमों को ही अगीकार करता है। व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुभूति तो कल्पना और आवेग के माध्यम से ही प्रकट होती है और जब वह प्रकट होती है तो नीति और सदाचार के परिपाटी विहित मानो से सब समय उसका सामजस्य हो नहीं होता। कई बार उसे ऊपरी सतह के सदाचार के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ता है परन्तु यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि यह विद्रोह केवल विशेष प्रकार की दृष्टिभगी के साथ परिपाटी-विहित रसास्वादन का सामजस्य न हो सकने का बाह्यरूप मात्र है। यदि यही अन्त तक कवि का मुख्य वक्तव्य बनी रह जाय तो कवि सफल नहीं होता।"[1]

कुछ लोगो का विचार है कि शास्त्रीय साहित्य काव्य के शैली पक्ष या रूप तत्व पर अधिक बल देता है। उसका सम्बन्ध काव्य के बाह्याग से ही विशेष रहता है जब कि स्वच्छन्दतावादी साहित्य भावुकता-प्रधान होने के कारण काव्य के अन्तस्तत्व से सबध रखता है, उसमे काव्य का वस्तु या विषय तत्व प्रधान हुआ करता है। शास्त्रीय काव्य मे विषय तत्व शैली तत्व के आश्रित रहता है और स्वच्छन्द काव्य मे शैली तत्व विषय तत्व के किन्तु वास्तव में दोनो प्रकार के काव्यो मे जो अन्तर है वह इतना स्थूल नही है। डा० मनोहरलाल गौड ने लिखा है कि जीवन के प्रति दो प्रकार का दृष्टिकोण लोगो मे पाया जाता है, एक वैज्ञानिक और दूसरा भावुकतापूर्ण—"कलाकार वस्तु के प्रतिपादन मे चमत्कार का योग करता है। उसका ध्यान यह रहता है कि सर्वविदित सत्य को ही ऐसे ढग से प्रकाशित किया जाय कि वह नवीन सा-प्रतीत हो। यही बाह्याकार की सँवार-सज्जा है, इस दृष्टिकोण मे महत्व अभिव्यग्य का नहीं होता अभिव्यक्ति का होता है। कविता कवि के पसीने का फल होती है, हृदय-रक्त से लिखी हुई नहीं। दूसरी दृष्टि भावुकता की होती है। भावुक व्यक्ति जब प्रकृति के रूप व्यापारों को देखता है तो उसके हृदय पटल की तह की तह खुलने लगती है। नए नए भाव जागने लगते हैं। वह उन भावों मे ही विभोर हो जाता है। उसे नियमों उपनियमों का ध्यान नहीं रहता। भावो के उद्गार अपने अनुकूल भाषा का निर्माण कर लेते

---

[1] देखिये 'रोमान्टिक साहित्यशास्त्र' की 'भूमिका' : हजारीप्रसाद द्विवेदी।

हैं, इसलिए इन लोगो की भाषा भी कुछ नवीनतायुक्त होती है। यही स्वतः प्रसूत भावों का प्रवाह अपने अनुकूल शब्द जाल मे अभिव्यक्त होकर रोमांटिक काव्य कहलाता है।"[१]

शास्त्रीय कवि के लिये परम्परा-पोषित और नियमानुशासित काव्य ही महनीय हुआ करता है जिसमे काव्य-रीति के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विषय ही काव्य के विषय हो सकते है जब कि स्वच्छन्द चेतना वाला कवि उक्त रूढ़ियों के विध्वंस का शख फूंकता हुआ चलता है। अंग्रेजी के क्लैसिकल कवि उद्यानों, व्यक्तियों, भवनों या वस्तुओं का वर्णन करते हुए एक निश्चित प्रथा का अनुसरण करते थे। वर्ण्य-वस्तु या व्यक्ति का सहज रूप उन्हें आकृष्ट नही करता था वरन् उसका कटा-छँटा परम्परानुमोदित रूप ही उनके द्वारा वर्णित होता था। रीतिकाल के शास्त्रीय (रीतिबद्ध) रचनाकारो ने भी लगभग इसी परिपाटी का अनुसरण करते हुए वर्ण्य-विषय का पूर्व-निर्धारण कर लिया था। केशवदास ने तो उनकी सीमा ही बाँध दी थी कि काव्य मे अमुक-अमुक वस्तुओं का वर्णन होना चाहिये। इतना ही नही उन्होंने तो यहाँ तक सुनिश्चित कर दिया था कि किसी वस्तु का वर्णन करते हुए किन-किन बातो का उल्लेख करना चाहिये। उदाहरण के लिये कवियों को वर्ण अर्थात् रगो का वर्णन करते हुए इन-इन रगो का सौन्दर्य दिखलाना चाहिये—

सेत, पीत, कारे, करुण, धूमर, नीले वर्ण।
मिश्रित केशवदास कहि सात भाँति शुभ कर्ण॥
(कविप्रिया - पाँचवा प्रभाव)

इसके बाद उन्होंने यह भी बतलाना आवश्यक समझा कि एक-एक रग का वर्णन करते समय किन-किन वस्तुओं को उपमान के रूप मे लाना चाहिये। अगर सफेद रग का वर्णन करना हो तो उपमावली इस प्रकार होनी चाहिये—

कीरत, हरि हय, शरद घन, जोन्ह, जरा, मदार।
हरि, हर, हर गिरि, सुर, शशि, सुधा, सौध, घनसार॥

इस प्रकार उन्होंने आगे के कवियों को उँगली पकड़कर चलना सिखाया। इस पद्धति पर चलकर भला कवि-प्रतिभा का क्या विकास हो सकता है? हिन्दी के अनेक शास्त्रानुयायी कवि इसी पद्धति पर चलते रहे। हिन्दी ही क्यो सस्कृत के अनेक काव्यशास्त्रियों दण्डी, केशव मिश्र, अमरचन्द आदि ने अपने ग्रन्थो काव्यादर्श, अलंकार शेखर और काव्यकल्पलतावृत्ति मे इसी पथ को कवि और काव्य का प्रकृति पंथ बतलाया। स्वच्छन्द कवि को ये सारे बन्धन असह्य थे। वह इन सबका मूलोच्छेद करता हुआ चला।

पाश्चात्य विवेचक स्टॉडर्ड भी रूढ़ियों के अनुसरण और उसके विद्रोह मे ही क्लैसिक और रोमांटिक कवि की मूल विशेषता देखता है, उसके अनुसार शास्त्रीय काव्य नियमो से अनुशासित काव्य है जिसके रूप, प्रेरणा, शैली आदि नियत हुआ करते हैं। उसका क्रम, व्यवस्था आदि पूर्वनिर्धारित हुआ करती हैं। ऐसे काव्यों को शास्त्रो से पोषण प्राप्त होता है, उनके आदर्श सुविज्ञात होते हैं। साहित्य के क्षेत्र मे शास्त्रबद्ध कवि रूढ़िवादी माना जाता है। इसके विपरीत स्वच्छन्दतावादी काव्य का मूलमत्र पूर्ववर्ती काव्य-तत्वों की अस्वीकृति है। उसमे अभिधेयार्थ की अपेक्षा व्यग्यार्थ प्रधान होता है, हृदय की अपेक्षा अहृदय की खोज होती है, प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष का महत्त्व होता है। स्वच्छन्दतावाद मे शास्त्रपोषित रूढ़ि

[१] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २१६-१७।

नियमों के प्रति घोर असंतोष का भाव होता है, वह सर्वथा नवीन नियमों या तत्वों को स्वीकार करके चलता है। शास्त्रीय कवि की दृष्टि में स्वच्छन्द काव्य रूप, लय और सौन्दर्य से रहित होता है।[1] स्काट जेम्स नामक एक अन्य विद्वान् इस सम्बन्ध में बहुत कुछ इसी से मिलता-जुलता आशय व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार शास्त्रीय काव्य सदा मार्ग का अनुसरण करता है जब कि स्वच्छन्द काव्य अतिवादी होता है। शास्त्रीय कवि को शान्ति प्रिय है, स्वच्छन्द कवि को नव्यानुभव और खतरों का मार्ग। एक को रूढ़ियाँ प्रिय हैं दूसरे को नवीनताएँ। शास्त्रीय काव्य में पूर्णता, औचित्य, नाप-तोल, संयम, पुराणता, प्रामाणिकता, शान्ति, अनुभव और अनुकूलता से सम्बन्धित गुण और दोष हुआ करते हैं जब कि स्वच्छन्द काव्य में जोश, स्फूर्ति, बेचैनी, आध्यात्मिकता, कौतूहल, अशांति, प्रगति, स्वतन्त्रता, प्रयोग और उत्तेजना आदि से सम्बन्धित।[2]

'क्लेसिकल' शब्द का प्रयोग प्रायः उस साहित्य के लिये किया जाता है जो अपनी उत्कृष्टता और गम्भीरता के कारण अद्वितीय और साधारणतया असाध्य हुआ करता है। ऐसा साहित्य अपने महत्व और गौरव एवं उच्चता के कारण संसार में एक श्रेणी (क्लास) विशेष का कहलाने लगता है। प्रायः वर्तमान से असन्तुष्ट हो मनुष्य अपने अतीत का स्मरण कर गौरव का अनुभव करता है। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित हो मनुष्य अपने प्राचीन साहित्य के उन्नत और उत्तम अंशों को 'क्लेसिकल' कहा करता है। किसी साहित्य के 'क्लैसिकल' कहे जाने का यही मनोवैज्ञानिक कारण है। १५वीं और १६वीं शती में इंगलैण्ड में ग्रीक और लैटिन भाषाओं का समृद्ध साहित्य 'क्लैसिक' कहा जाता था। सन्

---

[1] A purely classical work is a portrayal strictly in consonance with a law of form, motive or relation A classical attitude of mind is an attitude of acceptance of laws of form, motive or relation. Behind the classical work seems to stand a fixed ideal, a recognised ideal of proportion, grace, fitness, harmony The acceptance of such an ideal as a guide indicates a classical harmony, spirit, of it the outer indication is *order, harmony, system, light Classicism is* born of law, it is nourished by authority, its ideals are known The classicist is the conservative in literature The cardinal notion of romanticism is not acceptance, but rejection Romanticism rejects the literal and seeks the allegorical, it leaves the seen and searches the unseen, it casts aside the evident and seeks a symbol of the deeper thought Romanticism is born of dissatisfaction with the cannons af authority, it constantly and cansciously searches for a new law in place of that which has ruled So to the classicist the romantic work lacks proportion, harmony, finish Classicism is cultured acceptance romanticism is unschooled desire. —*Stoddard*

The one seeks always a mean, the other an extremety Repose sati sfies the classic Adventure attracts the romantic The one appeals to tradition, the other demands the novel On one side we may find the virtues and defects which go with the notion of fitness, propriety, measure, restraint, conservatism, authority, calm, experience, comeliness, on the other those which are suggested by excitement, energy, restlessness, spirituality, curiosity, troublousness, progress, liberty, experiment, provocativeness

—*Scott James : The Making of Literature, p. 167.*

१६६० से १७६८ तक प्रचलित आंग्ल काव्य प्रवृत्ति भी 'क्लेसिकल' ही कहलाई। बहुत से लोग इस प्रकार की प्राचीन प्रवृत्तियो के अनुकरण मे ही साहित्य की श्रेष्ठता समझा करते थे। इसके विपरीत 'रोमान्टिक' प्रवृत्ति कवि मन की एक विशेष इच्छा का नाम है जो अपरिवर्तनशीलता की अति से प्रादुर्भूत हो काव्य में निर्बन्धता की ओर धावित होती है। जो लोग काव्य के जड और अर्थहीन बन्धनों से चिपके होते हैं उन्हीं के विरुद्ध क्रान्ति स्वच्छन्दतावाद का प्रथम कर्म होता है।

शास्त्रीय कवि के लिये बाह्य उपकरण, भाषा, अलङ्कृति, वर्णन-शैली, नाद सौन्दर्य, लय और छन्द आदि का अधिक महत्त्व होता है जब कि स्वच्छन्द कवि के लिये आन्तरिकता का, हृदय की सच्ची अनुभूतियों का। और कवि तो कविता गढा करते हैं किन्तु रीति-स्वच्छन्द कवि स्वत अपनी कविता द्वारा निर्मित होते हैं जैसा कि घनआनन्द ने कहा है—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत।' दूसरे शब्दो में कहें तो वह सकते हैं कि शास्त्रीय कवियो के लिये कविता ही साध्य हुआ करती थी किन्तु स्वच्छन्द कवियो के लिये वह साधन मात्र थी। उनकी कविता उनके हृदय-देश को उदात्त बनाती थी, उनके अन्तर्जगत को परिशुद्ध करती थी और उनका हृदय जिस चरम काम्य के लिये आकुल रहता था उसकी प्राप्ति कराया करती थी। रसखान, बोधा, आलम और घन आनन्द सभी को उनकी कविताओ मे उनकी चरम अभिलाषाओं की पूर्ति मे सहायता दी थी। स्वच्छन्दतावादी अँग्रेज कवि शैली अपने विद्रोहपूर्ण जीवन के आदर्शो को अपने काव्य के माध्यय से ही साक्षात्कृत कर सका था। वर्ड्सवर्थ ने भी प्रकृति के प्रति अपने असाधारण प्रेम को अपनी रचना के ताजमहल द्वारा अमर कर दिया। इन स्वच्छन्दतावादियों के लिये कविता किसी इतर एव महत्तर लक्ष्य की सिद्धि का साधन थी।

साथ ही साथ शास्त्रीय काव्य में औपचारिकता का प्राधान्य और आभ्यन्तरिकता की कमी हुआ करती है जब कि स्वच्छन्द काव्य मे आभ्यतरिकता या वैयक्तिकता का तत्व प्रधान हुआ करता है। पहले प्रकार के कवि की दृष्टि बाह्योन्मुखी या वस्तुनिष्ठ होती है और दूसरे प्रकार के कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी और व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ हुआ करती है। क्लासिकल कवि गोचर अथवा चाक्षुष सौन्दर्य से प्रभावित होता है किन्तु रोमान्टिक कवि गोतीत अथवा काल्पनिक सौन्दर्य से तृप्ति पाता है।

शास्त्रीय (classical) कवि कोई नई बात नहीं कहता। वह मनुष्य या ससार के सम्बन्ध मे किसी पूर्व परिचित या सर्वविदित बात को ही प्रस्तुत करता है किन्तु ऐसा करते हुए वह उस बात को ऐसी कलात्मकता के साथ, ऐसी वचन-विदग्धता के साथ कहता है कि हम चमत्कृत हो जाते हैं तथा वह पहले से जानी हुई बात भी हमें नई और ताजी लगने लगती है (Truth known before but not so well expressed)। इस तरह की कविता कला साध्य होगी, परिश्रम सापेक्ष होगी। बड़े-बड़े महलो में मनोरजन के लिये बनाई वाटिका की कल्पना सामने लाएगी जो पग-पग पर माली की कैंची की खूबियों की याद दिलाती रहती है। इस तरह की कविता कवि के स्वेदबिन्दु में लेखनी डुबोकर लिखी जायेगी उसके हृदय के रस मे नहीं। यह कविता क्लासिकल श्रेणी की कविता होगी जिसके प्रतिनिधि होंगे होरेस (Horace) और पोप (Pope) और इसके मूल्यांकन की विधि बतलाने वाली पुस्तकें Aristotle की *Poetics*, Horace की *Epistle on Poetry*, Borlean

की *Poetic Art* और Pope की *Essay on Criticism* की तरह की पुस्तकें होंगी।[1] किन्तु दूसरे प्रकार के कवि होते हैं स्वच्छन्दतावादी जिनकी कविता मे प्रकृत-वस्तु का सौन्दर्य आवेग के साथ फूट पड़ता है—अनायास, सहज, बिना किसी परिश्रम के। इस मनोवृत्ति से प्रसून कविता रोमांटिक कविता होगी। इसमे उमड़न होगी, वेग होगा, प्राणों की आकुलता होगी, पर्वतों को गिरा देने की शक्ति होगी, स्वच्छन्दता होगी और सबसे बड़ी चीज होगी कवि की आन्तरिक प्रेरणा जो प्रत्येक महान कविता का मूल तत्व है। इस कविता मे बोधातीत सत्य के प्रति संकेत होगा। इसमे दार्शनिकता का पुट होगा, इसमे नाम-रूपात्मक जगत की विविध लीलाओं के पीछे छिपकर बैठे हुए डोर हिलाने वाले सूत्रधार की खोज होगी, यह कविता रहस्यवाद लिये हुए होगी, प्रत्येक आश्चर्यजनक और साहसिक कार्य के प्रति इसमे आग्रह होगा। इस प्रकार की कविता के नियम और कानूनों को बतलाने वाली पुस्तकें होंगी—Sir Philip Sydney की *An Apology for Poetry*, Shelley की *Defence of Poesy* और Coleridge की *Biographia Literaria*[2]

लेटरहेज (Laterbedge) नामक विद्वान ने शास्त्रीय और स्वच्छन्द काव्य की तुलना प्लैस्टिक कला (Plastic Art) और संगीत से की है। प्लैस्टिक कला मे बुद्धि तत्व प्रधान होता है और संगीत मे मानव भावों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति ही मुख्य हुआ करती है। शास्त्रीय काव्य मे बुद्धि द्वारा सुविचारित तथ्यों की सायास वर्णना हुआ करती है जब कि स्वच्छन्द काव्यकृति अनुभूति जनित सहज कवि-व्यापार हुआ करती है। क्लैसिक या रीतिबद्ध कवि का ध्यान काव्य के बहिरंगपक्ष पर ही विशेष होता है। रीतिधारा का अर्थ ही है काव्य के बहिरंग पक्ष पर बल देने वाली कविता। काव्य का बहिरंग पक्ष भाषा, शब्द-योजना, अलंकृति आदि साधनपक्ष ही है। काव्य का साध्यपक्ष उसका अंतरंग हुआ करता है जिसमे कवि की तीव्र भावानुभूति और काव्य का रसतत्व निहित रहता है। रीतिबद्ध या शास्त्रीय कवि का ध्यान इस अन्तर्पक्ष पर कम और बाह्यपक्ष पर अधिक रहता है। आशय यह है कि वे साधन पक्ष को ही साधने मे विशेष रुचि लेते हैं। काव्य के बहिर्पक्ष के सभार मे ही वे कवि का सच्चा पुरुषार्थ समझते हैं और उसमे जरा सी भी चूक वे बर्दाश्त नहीं कर सकते। भाषा शैली की चमत्कृति पर ही उनकी सारी बौद्धिक शक्तियाँ निबद्ध रहती हैं। ये सब बातें शास्त्रज्ञान एवं अभ्यास साध्य हैं और इस साधन-पक्ष की साधना ही क्लैसिक कवियों की मूल विशेषता है। इसके विपरीत स्वच्छन्दधारा के कवि साधन पक्ष, काव्य की रूप-सज्जा, उसके बाहरी ऐश्वर्य विलास को कुछ समझते ही नहीं। वह तो साधन है उसे साध्य मान लेने की चूक वे नहीं करते। साध्य उनका आत्मोपलब्धि है, साधन उनका काव्य है। वे आत्म-विस्मृति की दशा मे काव्य रचना किया करते हैं। वे एक प्रकार से कर्मी है जो भावविभोर स्थिति मे ही काव्य का उच्चार करते रहते हैं। एक अन्य ढंग से भी इस बात को कहा जा सकता है। रीतिबद्ध या शास्त्रीयकाव्य मे बहुत कुछ बुद्धि की प्रेरणा भी हुआ करती है। इसी से वहाँ काव्य का भाव पक्ष कुछ दबा दबा सा रहता है जैसा कि आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी कहा है।[3] उनकी रचना बुद्धिबोधित होती है

१ रोमान्टिक साहित्य शास्त्र : डा० देवराज उपाध्याय।

२ वही, पृ० १९।

3 घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, देखिये परिचय पृ० ३ से ५।

भावभावित नहीं। रीतिबद्ध काव्य मे बुद्धि रानी है, भाव किंकर, पर स्वच्छन्द काव्य में अनुभूति रानी है, बुद्धि उसकी दासी है—घनआनन्द ने इस भाव को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—'रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।' यह मूलवर्ती दृष्टि भेद रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य को समझने मे बहुत सहायक होगा। रीति कर्त्ता की कृति मे भंगिमा प्राणतत्व है, स्वच्छन्द कर्त्ता की कृति मे अनुभूति—"स्वच्छन्द कर्त्ता में भंगिमा कहीं कदाचित् न भी हो, पर अनुभूतिशून्य उसकी रचना नहीं हो सकती। रीतिकर्त्ता मे अनुभूति चाहे न भी हो पर भंगिमा अवश्य रहेगी। अनुभूति में बाहरी आकर्षण न भी हो तो भी वह हृदय खींच लेती है। अनुभूति हृदय से उठती है, हृदय को आकृष्ट करती है। उसके लिये किसी अन्य माध्यम की अपेक्षा नहीं। भंगिमा हृदय से ईरित भी हो सकती है और बुद्धि से प्रेरित भी। हृदय से ईरित भंगिमा आकर्षक होती है, पर वह सीधे हृदय मे नहीं पहुँचती उसके लिये माध्यम की अपेक्षा होती है। वह बुद्धि के, नियमविधि के, शास्त्र के माध्यम से हृदय मे पहुँचती है। उसके लिये जैसे कर्त्ता को शास्त्रविधि निष्णात होना चाहिये वैसे ही ग्राहक को भी शास्त्रचिंतन नदीष्ण होना चाहिये। अनुभूति के लिये न कर्त्ता को उसकी (शास्त्रविधि की) विशेष आवश्यकता है और न ग्राहक को।[1]

परिपाटियों के बन्धन मे आबद्ध शास्त्रीय काव्य किन्हीं आदर्शों और मर्यादाओं की पिटी-पिटाई लीक पकड़कर चलता है। स्वच्छन्द काव्य मुक्त पक्षी के समान वायुमंडल में उड़ता है और सांस लेता है, बन्धन एव मर्यादा मे उसकी सांस घुटने लगती है।[2] इस प्रकार शास्त्रीय और स्वच्छन्दतावादी काव्यो का विभेद केवल भाव या विषय पक्ष तक ही सीमित नही साधन और शैली पक्ष तक भी व्याप्त है। क्लैसिक कवि परिचित सौन्दर्य का निरूपण इस शैली मे करता है कि वह पूर्ण ज्ञात वस्तु और उसका सौन्दर्य और भी प्रभावशाली प्रतीत होता है। उसको बार-बार पढने और सुनने की इच्छा इसलिये होती है कि वह इतने सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया होता है। रोमांटिक कवि द्वारा चित्रित सौन्दर्य में असाधारणता और अपूर्व-परिचय का भाव रहता है। शास्त्रीय कवि की शैली परम्परा पोषित होती है। उसमे काव्य के स्वीकृत सौन्दर्य का प्रसाधनों के प्रति आग्रह होता है। काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य की अपेक्षा बाह्य सौन्दर्य और रूप सँभार पर विशेष ध्यान होता है। ऐसा करते हुए वह नियमानुसरण भी अधिक करता है, स्वतंत्र सौन्दर्य विधान के लिये गुंजाइश अधिक नहीं रहती। फलत इस प्रकार के काव्य में एकरूपता और एकरसता अधिक मिलेगी परन्तु इसके विपरीत स्वच्छन्दतावादी काव्य मे स्वच्छन्द भावावेश होता है जिसके कारण एक-रूपता और एकरसता आने ही नहीं पाती। स्वच्छन्द कवि की प्रेरणा आन्तरिक होती है इसलिये उसके काव्य की परिपूर्णता की सम्भावनाएँ भी अछोर होती हैं क्लैसिकल कवि की तरह नहीं जो काव्यशास्त्र-विहित नियमो के अनुसरण मे ही अपने कवि-कर्म की इतिश्री समझता है। स्वच्छन्द कवि अपनी तीव्र अनुभूतियों और कोमल सूक्ष्म कल्पनाओं को जिस

---

[1] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, परिचय पृ० ३ से ५।

[2] श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य : डा० रामचन्द्र मिश्र, पृ० ३७-३८।

भाषा-भगिमा मे प्रस्तुत करता है वही उसकी शैली होती है जो पूर्व निर्धारित नहीं हुआ करती। स्वच्छन्द कवि भाषा अलकृति, छद आदि के कोई बन्धन नहीं मानता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह देखते हैं कि एक बडी सीमा तक शास्त्रीय एव स्वच्छन्द काव्य धाराएँ एक दूसरे से विरोध रखती हैं। जो तत्व अथवा बातें एक को स्वीकार और ग्राह्य हैं वे ही दूसरे को अस्वीकार और अग्राह्य हैं। विभिन्न दृष्टिकोणो से उभय प्रकार के काव्यो पर दृष्टिपात करने पर सर्वदिक विरोध वृत्ति का ही प्राधान्य दृष्टिगत होता है। वास्तव मे शास्त्रीयता की अति काव्येतिहास मे स्वच्छन्दता की जन्मदात्री मानी गई है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर शास्त्रीय और स्वच्छन्द काव्य की भेदक रेखा इन बिन्दुओं को जोडकर बनती है—

(१) शास्त्रीय और स्वच्छन्द काव्य मे मूल अन्तर दृष्टिकोण का है। शास्त्रीय कवि की दृष्टि वस्तुनिष्ठ और बाह्योन्मुख होती है, स्वच्छन्द कवि की दृष्टि व्यक्तिनिष्ठ और अन्तर्मुखी होती है। इसी दृष्टि भेद को किसी किसी ने इस प्रकार कहकर भी स्पष्ट किया है कि शास्त्रीय कवि की दृष्टि जीवन के प्रति वैज्ञानिक की सी हुआ करती है जिसमें नियमो-पनियमो पर न केवल ध्यान ही नही दिया जाता वरन् उसकी सचेतन अवहेलना भी की जाती है। शास्त्रीय कवि की दृष्टि पुरातन-प्रेमी होती है स्वच्छन्द कवि नवीनता प्रिय हुआ करता है, पुरातन की अस्वीकृति से ही उसका कार्यारभ होता है।

(२) शास्त्रीय काव्य का परम्परा से प्रगाढ मोह होता है। उसमे रूढिप्रियता अथवा रूढिवादिता होती है। काव्य नियमो और जीवनादर्शों की उसमे सस्कृत स्वीकृति होती है। उनके काव्यो मे सुनिश्चित विषय और शैली के प्रति आग्रह होता है। प्राचीनता प्रिय होने के साथ उनकी रचना मे उत्कृष्टता, गम्भीरता, अद्वितीयता और असाध्यता भी होती है। अपनी इन्हीं विशेषताओ के कारण उनका साहित्य एक क्लास या कोटि विशेष का हो जाता है और क्लैसिकल कहलाने लगता है। इसके विपरीत स्वच्छन्दतावादी काव्य का परम्परा से द्रोह होता है। उसमे रूढियो के प्रति गहरा विक्षोभ होता है। उसमे नवीन काव्यविधि और जीवनादर्श के प्रति असयत अभिलाष होता है। उनमे नवीन काव्यवस्तु और विधि (शैली) से मुक्ति की कामना होती है, अपरिवर्तनशीलता की अति से विचलित हो वे निर्बन्धता की ओर दौडते है इसी से उनका साहित्य स्वच्छन्दतावादी (Romantic) कहलाता है।

(३) काव्यास्वाद की दृष्टि से यदि विचार करें तो कहना पडेगा कि परम्परा-समर्थित साहित्य मे परिपाटी विहित रसज्ञता या रसनिष्पत्ति पर जोर दिया गया होता है फलत उसमे अनासक्त सौन्दर्यग्राहिणी दृष्टि का प्राधान्य होता है जब कि स्वच्छन्द काव्य मे कल्पना और आवेग के माध्यम से व्यक्ति की स्वतन्त्र अनुभूति प्रकट होती है और काव्य, नीति और सदाचार के परिपाटी विहित मानो का विरोध किया गया होता है।

(४) शास्त्रीय कवि के लिए कवित्व अथवा कला ही साध्य वस्तु है, वह बडे परिश्रम और पसीने से विसृष्ट होती है। उसमे काव्य के बहिरग अर्थात् साधन पक्ष पर विशेष ध्यान दिया गया होता है। उसमे बुद्धि तत्व की प्रधानता होती है और वह 'बुद्धि बोधित' होती है 'भाव भावित' नही। स्वच्छन्द कवि के लिए कवित्व अथवा कला साधनमात्र है। उनकी कविता अनायास वेग के साथ फूटती है और हृदय के रक्त से लिखी गई होती है। बौद्धिक व्यायाम के बजाय उसमे हृदय की तत्परता-पूर्ण प्रतिक्रियाशीलता और प्राणो की बेचैनी के

दर्शन होते हैं। उसमे काव्य के अंतरंग अर्थात् भाव्य पक्ष पर दृष्टि रक्खी गई होती है। वह भावभावित होता है।

(५) शास्त्रीय काव्य का स्वरूप शास्त्र निर्धारित होता है। उसके आदर्श निर्दिष्ट होते हैं सुनिश्चित और सुविज्ञात। पूरा का पूरा काव्य वस्तु और शैली दोनों की दृष्टि से शास्त्र-सम्मत, काव्य रीति के नियमों से उत्पन्न और उन्ही से पूर्णतः अनुशासित होता है। शास्त्रीय काव्य मे जो अनुपात, गरिमा, उपयुक्तता और सौंदर्य होता है वह काव्यशास्त्रगत स्वीकृत आदर्शों के अनुरूप ही होता है। शास्त्रीय काव्य शान्तिप्रिय होता है। इसके विपरीत स्वच्छन्द काव्य आतरिक प्रेरणा से उत्पन्न होता है, अनुभूति-जनित सहजता उसका मूल सौन्दर्य होती है। स्वच्छन्द काव्य शब्दार्थ से अधिक व्यग्यार्थ-कामी होता है, दृश्य को छोड अदृश्य की खोज करने वाला, प्रस्तुत को छोड अप्रस्तुत की गहराई मे जाने वाला होता है। वह शास्त्रीय नियमो के प्रति असतोष से उत्पन्न होता है तथा प्राचीन की अपेक्षा नवीन नियमो की खोज करने वाला होता है। स्वच्छन्द काव्य नवानुभव और खतरों का मार्ग पसद करता है।

(६) शास्त्रीय काव्य में शैली या बाह्योपकरण महत्त्वपूर्ण हुआ करते हैं। शास्त्रीय काव्य मे विषय तत्व शैली तत्व के आश्रित रहता है अर्थात् कवि उसमे भाषा, अलकरण आदि पर विशेष महत्त्व देता है। उसमे प्रकाशित सत्य ज्ञात ही रहता है किन्तु उसका प्रकाशन चमत्कार-पूर्ण हुआ करता है। काव्य वस्तु मे कोई नवीनता या विशेषता नहीं होती अभिव्यक्ति मे ही विनिष्टता होती है। उसमें परिचित वस्तु या सौन्दर्य को ही प्रभावशाली बनाकर सामने रक्खा जाता है। वक्तव्य-वस्तु स्पष्ट अतः पूर्ण हुआ करती है। शास्त्रीय काव्य में आधारभूत तत्व भगिमा हुआ करती है। उधर स्वच्छन्द काव्य में अनुभूति और आंतरिकता का महत्व सर्वोपरि है, उसमे नए-नए सत्यों और तथ्यों का प्रकाशन होता है। ये भावरत्न हृदय के समुद्र में ज्वार आने पर ऊपर आते हैं। भावगत सत्यो और तथ्यो की नवीनता मे ही स्वच्छन्द काव्य का सच्चा आनन्द निहित है, शैली को चमत्कारिकता या विशिष्टता में नहीं। उनकी भाषा भावानुकूल होती है और उनके द्वारा अभिव्यक्त सत्य गहरी और सकुल अनुभूति से प्रेरित होने के कारण कभी-कभी अव्यक्त और रहस्यमय भी रह जाता है। स्वच्छन्द कवि का वक्तव्य पूर्व-परिचित नहीं होता। आतरिकता या अनुभूति-प्रवणता उसका सर्वप्रधान गुण हुआ करता है। स्वच्छन्द काव्य मे शैली-तत्व विषय-तत्व के आश्रित होता है।

(७) रोमान्टिक स्पिरिट (स्वच्छन्दतावादी वृत्ति) गीत या मुक्तक रचना के अधिक अनुकूल है कथाबद्ध या प्रबन्ध रचना के कम, यही कारण है कि हिन्दी और अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्यो मे मुक्तक रचनाओं की ही राशि दिखाई देती है।

कुछ नगण्य समानताएँ—हिन्दी के रीतिकाल के रीतिबद्ध और रीतिमुक्त शृङ्गारी काव्यो मे वैसे कुछ नगण्य समानताएँ भी पाई जाती हैं उदाहरण के लिये पहिली बात तो यही है कि रीतिस्वच्छन्द कवियो का काव्य भी किसी सीमा तक राज्याश्रय और सामती वातावरण के बीच की ही उपज या सृष्टि है। घनआनंद, बोधा, ठाकुर आदि कवि राज्याश्रय में रहकर काव्य रचना करते रहे। दूसरे रीतिबद्ध शैली का प्रभाव रीतिमुक्त कवियों से एकदम छूट नहीं सका था। किसी सीमा तक इनके कार्य का बाहरी ढांचा भी बिलकुल

वही है जो रीतिबद्ध कवियो का था। वे ही छद कवित्त-सवैया, वे ही कृष्ण, राधा और गोपियां इनके काव्यो के भी प्रमुख वर्ण्य हैं। थोडा बहुत चमत्कार, वक्रता और अभिव्यक्ति वैचित्र्य का आग्रह घनआनन्द सरीखे अनुभूति प्रधान कवियो मे विद्यमान है ही। तीसरे जहाँ तहाँ धीराधीरा, मानवती, खडितादि नायिकाओ के चित्र इनमे भी देखे जा सकते हैं विशेषत आलम और द्विजदेव मे। मुक्तक के साथ-साथ थोडी बहुत प्रबध रचना की प्रवृत्ति भी दोनो प्रकार के कवियो मे पायी जाती है। एक अन्य समानता इस बात मे भी है कि दोनो प्रकार के क.टो की दृष्टि सर्वसाधारण अथवा लोक-सामान्य जीवन पर कम गई है। ये बातें इस लिये पाई जाती हैं क्योकि ये कवि एक ही युग, वातावरण और परिस्थितियो के बीच पैदा हुए थे और समानान्तर काव्य-परम्परा और रूढियों मे एकदम पृथक हो सकना कदाचित सभव न था फिर भी ये समानताएँ बहुत ऊपरी और नगण्य हैं। रीतिबद्ध और रीतिस्वच्छन्द काव्यो मे भेदक तत्व इतने प्रचुर परिमाण मे है कि उनका अन्तर बहुत साफ लक्षित होता है। काव्य रचना की दृष्टि और भाव-विधान की समस्त योजना ही भिन्न आधारों पर आधारित है जिसका अध्ययन हम अगले प्रकरण मे करेंगे।

३

हिन्दी की रीतिस्वच्छन्द काव्यधारा की विशेषताएँ : सामान्य प्रवृत्तियो का अध्ययन

प्रेम के जिन उन्मुक्त गायको का काव्य-लोचन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है वे हैं रसखान, आलम, घनआनन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव। इसमें संदेह नही कि हिन्दी काव्य मे स्वच्छन्द प्रेम भावना को जैसा पोषण इन कवियो से प्राप्त हुआ दूसरो से नहीं। प्रणय भावना तो सभी देशो के काव्यो मे सभी समय मिलेगी। हिन्दी काव्य साहित्य मे इन रीति का निरपेक्ष कवियो की प्रेम भावना विशिष्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि प्रेम के ही बने थे, इनमे अपर तत्व कुछ था ही नही। इन कवियो का प्रेम निर्बन्ध है—वह लोक लाज नही मानता, लोक-रीति का अनुसरण नही करता, मान-अपमान की परवाह नही करता, कुलधर्म की अवहेलना करता है और स्वच्छन्द वायुमण्डल मे जीता है। इनका प्रेम-काव्य शास्त्रीय आधारों और मर्यादाओ मे भी बद्ध नही है। इनके प्रेम का निवेदन सखी, सखा या दूतियाँ नही करती और न ही वे इन कवियो तक रूप-सौन्दर्य, विरह-वेदना आदि के संदेश लाकर इनमे किसी के प्रति रुचि या करुणा ही जाग्रत करती हैं। इनमें रुचि आप जगती है, ये प्रेम का निवेदन आप करते हैं। इसी से इनके प्रणय भाव का रीतिकार या रीतिबद्ध कवियो के प्रणयभाव से विभेद देखा जा सकता है। ये किसी आरोपित प्रेम भावना को लेकर नही चला करते। ये गोपियो के प्रेम का काव्य, परम्परा, रूढि अथवा कल्पना के आधार पर अनुभव करते हुए काव्य-रचना नही करते। प्रेम इनके जीवन मे आया हुआ होता है। वह इनके हृदय मे होकर गुजरी हुई चीज होती है। लगभग सभी रीति-स्वच्छन्द कवियो की प्रेम कहानी हिन्दी संसार में प्रसिद्ध है। आलम और सेख का प्रेम, घनआनन्द और सुजान का, बोधा और सुभान का, इसी प्रकार ठाकुर का भी वैयक्तिक प्रेमाख्यान अविदित नही। रसखान भी किसी से दिल लगाने के बाद ही भगवदोन्मुख हुए थे। जाहिर है कि इनके प्रेम में तीव्रता होगी, सच्चाई होगी जो इनके काव्य मे भी यथावत प्रतिफलित है। इनके काव्य मे जो तीव्र स्वानुभूति और व्यक्ति-निष्ठता है वह भी इसी कारण। साराश यह कि इनका जीवन और व्यक्तित्व ही प्रणय-विनिर्मित था जो अत्यन्त जीवित रूप मे इनके काव्यो मे प्रतिच्छायित मिलेगा।

ये कवि काव्य की समसामयिक प्रवृत्तियों और पूर्ववर्तिनी परम्पराओं से अनभिज्ञ रहे हों सो बात भी नहीं। सभी किसी न किसी सीमा तक तत्सम्बन्धी संस्कारों से सपृक्त हैं किन्तु ये प्रभाव इतने जबरदस्त नहीं रहे हैं कि वे इन कवियों को अपने नियम और रूढ़ियों के शिकंजों में बाँध सकते जैसा कि रीतिबद्ध कवियों के साथ हुआ। इन कवियों का निजी व्यक्तित्व अत्यंत प्रबल था। वे काव्य रूढ़ियों को छोड़कर स्वनिर्मित मार्ग पर चलने के अभिलाषी थे। उन्होंने काव्यक्षेत्र नवपथ का निर्माण किया। भाषा और शैली शिल्प में उन्होंने अनेक नवीनताओं का विधान किया। ये कवि यह अच्छी तरह समझते थे कि काव्य में भाव रस तत्व ही मुख्य होता है। शैली शिल्प तो आश्रित वस्तु है। वह साधन ही हो सकती है, साध्य नहीं। इसलिए साधन को ही साध्य मान लेने की भूल उन्होंने नहीं की जैसा कि आचार्य केशव सरीखे कई रीतिकार कर चुके थे। इसीलिये आप देखेंगे कि भाषा-अलंकरण आदि का आग्रह रीति-स्वच्छन्द प्रेमी कवियों में नहीं मिलेगा। रसखान और ठाकुर की भाषा की सादगी अपनी उपमा आप है। घनआनन्द में व्यंजना की जो वक्रता है वह उनके द्वारा अनुसरित काव्यवस्तु या प्रेम वैषम्य के कारण। इन कवियों में शैलीगत जो सौन्दर्य और भंगिमा है वह इनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के कारण।

काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

काव्य के सम्बन्ध में रीतिस्वच्छन्द कवियों का दृष्टिकोण रीतिबद्धों से भिन्न था। वे रीति के सँकरे पथों पर नहीं चलना चाहते थे, वे काव्यमंदाकिनी का मार्ग प्रशस्त करने के अभिलाषी थे। वे काव्य को स्वानुभूति-प्रेरित मानते थे आयास-प्रसूत नहीं, इसी से वे रीतिबद्ध काव्य की उपेक्षा ही नहीं निश्चित विगर्हणा की दृष्टि से देखते थे। पिटे पिटाए ढंग पर छन्द रचना कर चलना उनकी दृष्टि में निंद्य था। परम्परागत उपमानों के विधान मात्र में जो उस काल की कविता की प्रधान प्रवृत्ति थी कवि और काव्य की कोई सार्थकता न थी इसी से ठाकुर कवि ने काफी खीझ के साथ उस युग के रीतिबद्ध कवि को फटकारा है—

> सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
> सीख लीन्हों यश औ प्रताप को कहलानो है।
> सीख लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि,
> सीख लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है॥
> ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
> याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
> डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
> लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है॥ (ठाकुर)

काव्य के महत्तर लक्ष्य से अनवगत उसके साथ खिलवाड़ करने वाले कवियों और आने वाली पीढ़ियों पर इस फटकार का अच्छा प्रभाव पड़ा। रीतिकाल में तो यह अभिनव पथानुधावन हुआ ही आधुनिक काल में आकर रीति से ऊबे हुए कवियों ने काव्यक्षेत्र में सर्वथा नवीन पथ का अनुसरण किया। कविवर घनआनन्द ने भी अपनी काव्य प्रवृत्ति का क्रमागत एवं समसामयिक काव्य प्रवृत्ति से पार्थक्य इन शब्दों में घोषित किया है—

> तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दशाहि लै सान चढ़ावत।
> प्रानिन प्यास भरे अति पानिप मायल घायल चोंप चढ़ावत।

हैं घनआनन्द छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत ।। (घनआनन्द)

उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि कवित्त-रचना मेरा साध्य नहीं, वह साधन मात्र है। साध्य तो महत्तर है। इसी प्रकार मेरे काव्य की प्रेरणा भी सघन और तीव्र है। सुजान के प्रति मेरा उत्कट प्रेम और तीव्र व्यामोह उसके लिए मेरे प्राणों की जो तृषा है वही मेरे काव्य में क्रान्ति का सृजन करती है। जाहिर है कि ये कवि काव्य किसे कहते हैं। उनकी काव्य विषयक धारणा कितनी उन्नत है। इसके विपरीत इसी युग के रीतिबद्ध शीर्षस्थ कवियों ने कितनी तुच्छतर सिद्धियों में ही काव्य की सिद्धि मान ली थी—

(क) जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता वनिता मित्त ।। (केशवदास)

(ख) सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की। (सेनापति)

(ग) दूषन को करिकें कवित्त बिन भूषन कों
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है। (सेनापति)

(घ) बानी सों सहित सुबरन मुँह रहैं जहां
धरति बहुत भांति अरथ समाज कों।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
राखै मति ऊपर सरस ऐसे साज कों ।। (सेनापति)

स्वच्छन्द कवियों ने साधन को साध्य समझ बैठने की भूल न की। अलङ्कृति में ही काव्य की सफलता है ऐसा उन्होंने न कभी कहा न कभी माना जैसा कि सेनापति, केशव आदि ने स्वीकार किया है। काव्य की चित्तहारिणी शक्ति में ही उन्होंने कवित्व का अधिवास माना और काव्यगत यह चित्तहरण-शक्ति यमक, अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा के विधान द्वारा प्राप्य नहीं, इसका उद्गम तो तीव्र अनुभूतियों का कोष उनका अन्तस्तल ही था। स्वच्छन्द काव्य की इसी विशिष्टता को लक्ष्य करके पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कहा है— 'स्वच्छन्द काव्य भावभावित होता है, बुद्धि बोधित नहीं, इसीलिए आन्तरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आन्तरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छन्द काव्य की सारी साधन सम्पत्ति शासित रहती है और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।' इस हृदय, भाव या अनुभूति तत्व को ही रीतिमुक्त काव्य में प्रधान स्थान प्राप्त हुआ है, अलंकरण या भंगिमा को जो बुद्धि एवं कल्पना की उपज है गौण स्थान दिया है। ऐसा नहीं होने पाया है कि भंगिमा या अलङ्कृत (बुद्धितत्व) को स्वच्छन्द काव्यक्षेत्र से खदेड़ दिया गया हो, उसे रहने दिया गया है किन्तु भाव या अनुभूति (हृदयतत्व) के आधीन बनाकर। रीतिकाव्य में तो बुद्धि (भंगिमा या अलङ्कृति) को पट्ट महिषी का पद प्राप्त हुआ था हृदय (भावानुभूति) को अधीनस्थ दासी का पद किन्तु रीति-स्वच्छन्द काव्य में क्रम उलट गया है। चेरी (हृदय) रानी हो गई और रानी (बुद्धि) चेरी—

रीति सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

ये कवि भावावेग में रचना किया करते थे, भाव के ऐसे आवेग में जिसके सामने

काव्यरीति, कुलमर्यादा, लोकलाज सभी के बन्धन टूट जाया करते थे। उनका तो कहना था कि बन्धन और मर्यादा के चक्कर मे पड़ना हो तो इस पथ पर पाँव मत रखो—

लोक की भीत धरा धरो मीत तो प्रीति के पैंडे परो जनि कोऊ। (बोधा)

सच बात है काव्य और प्रेम-जगत के इस अभिनव पथ पर बहुतो ने पाँव नही दिया, इस पथ पर आने वाले थोड़े ही थे चुने हुए किन्तु सच्चे जवाँ मर्द। प्रेम की पीर मरकर नही जीवित रहकर झेलने वाले, जीते जी मृत्यु को वरण कर लेने वाले जैसे घनआनन्द, कुल और धर्म को तिलाजलि दे देने वाले रसखान और बोधा! ये कवि काव्य-रीति को पकड़कर भला क्या चलते। इन स्वच्छन्द कवियो के काव्य का क्या आदर्श था, उसके परखने की कसौटी क्या है इसे घनआनन्द के कवित्तों के संग्रहकर्त्ता ने बहुत मर्मज्ञता से व्यक्त किया है। उन्होने कहा है कि घनआनन्द सरीखे निर्बन्ध प्रेमी के गूढ प्रेम-भाव-भरित काव्य को समझने मे साधारण व्यक्ति समर्थ नही। उसे तो प्रेम की तरगिणी मे भली भाँति डूबा हुआ व्यक्ति ही समझ सकता है। फिर उस व्यक्ति को ब्रजभाषा का भी अच्छा जानकर होना चाहिये और नाना प्रकार के सौन्दर्य-भेदो से अभिज्ञ भी। उसे सयोग और वियोग की स्थितियो एव असख्य अन्तर्वृत्तियो को समझने की शक्ति-सम्पन्नता भी अपेक्षित है। किन्तु इन सारी विशेषताओ से भी विशेष जो विशेषता उसमे होनी चाहिये वह यह कि उस काव्य रसास्वादक का हृदय अहर्निशि प्रेम के तरल रग मे सराबोर होना चाहिए तथा वियोग और सयोग दोनो स्थितियो मे अतृप्त, अशात रहने वाला होना चाहिये और चित्त का स्वच्छन्द, निर्बन्ध होना चाहिए। तभी वह घनआनन्द के काव्य के मर्म तक पहुँच सकता है। जिसने चर्म चक्षुओ से नही अतश्चक्षुओ से, हृदय की आँखो से प्रेम की पीडा देखी हो, सही हो, वही घनआनन्द की कृतियो मे अतर्व्याप्त वेदना का मर्म समझ सकता है मात्र शास्त्रज्ञान-प्रवीणता से काम चलने वाला नही। जिसके हृदय की आँखें नही खुली हैं वह घनआनन्द की रचना को अन्य साधारण अथवा रीतिबद्ध कवियो की रचना मात्र समझकर रह जायगा—

जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनन्द की हिय-आँखिन नेह को पीर तकी॥ (ब्रजनाथ)

भावावेग या भावप्रवणता

स्वच्छन्द धारा के कवियो की पहली विशेषता जहाँ काव्यगत दृष्टिकोण मे देखी जा सकती है वही इनकी दूसरी प्रमुख विशेषता उनके काव्य मे प्राप्य भावावेग अथवा भाव-प्रवणता मे देखी जा सकती है। कवित्व उनका साध्य न था, अत करण को भावराशि को मुक्त भाव से उड़ेल देने मे ही उनकी तृप्ति थी। ये ही कवि ऐसे थे जो हृदय की मुक्तावस्था प्राप्त कर रसदशा को पहुँचा करते थे। काव्य रचना करते हुए ये आत्म-विभोर हो जाया करते थे। इस रसदशा को प्राप्त कर उनकी वाणी स्वत भगिमामयी हो जाती थी। अत-श्चेतना की ऐसी द्रवीभूत स्थिति की व्यजना सीधी भाषा मे सम्भव भी न थी इसलिए इन स्वच्छन्द कवियो की भाषा शैली मे जो बाँकपन है वह सहज और अनायास है उसके लिए इन्हें माथापच्ची नही करनी पड़ी है। इसीलिए उसमे नव्यता है पिष्टपेषण अथवा चर्वित-चर्वण नही। उनकी काव्यविभूति की सुषमा नैसर्गिक है आभ्यान्तरिकता से सपृक्त। इन कवियो की इसी विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य मिश्र ने लिखा है—"ये वासना से पकिल

राजाओं के मनन का रंजन करने वाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकने वाले थे। जग के कवि काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गए, उसके अंतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से 'स्वच्छन्द कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की सँकरी गली में धक्कम-धक्का करना नहीं। ये कविता की नपी तुली नाली खोदने वाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करने वाले या मानव-रस का उन्मुक्त दान देने वाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (conscious state) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अन्तःसंज्ञा (subconscious state या unconscious state) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्भूत होती थी। रीतिमुक्त कवि का काव्यस्रोत स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, पर रीतिमुक्त या स्वच्छन्द कवि अपनी भावधारा में स्वतः बह जाता था। इस प्रकार दोनों का अंतर स्पष्ट है।"[1] अनुभूत वस्तु या विषय ये कवि सामने नहीं लाया करते थे। जो सांसारिक सत्य, जीवनगत तथ्य, भावगत अनुभूतियाँ इनकी अपनी हुआ करती थीं इनका काव्य उसी से निर्मित होता था। पराई अनुभूतियाँ, पराए भाव व पराई उक्तियाँ इनमें नहीं। रीति से लगे लिपटे कवियों में जहाँ तहाँ चोरी की बान बहुत थी। भाव का अपहरण, भाषा की चोरी ये सब चलती थी। संस्कृत कवियों की कितनी ही उक्तियाँ, कल्पनाएँ, भाव हिन्दी कवियों ने चुराए, विशेषकर रीतिबद्धों ने। बिहारी, देव, केशव सरीखे प्रतिभावान कवियों तक ने ऐसा किया फिर औरों की तो बात ही क्या। ये चोरी छोटे कवि आपस में भी कर लिया करते थे। सेनापति सदृश मेधावी और प्रतिभासम्पन्न कवि को तो इस साहित्यिक चोरी का ऐसा भय था कि उन्हें हर छंद में अपना नाम रखना पड़ा और बार-बार कहना पड़ा कि हे महाराज! आजकल तो ऐसे कवि हो गये हैं जो एक चरण तो क्या छन्द के चारों चरण चुरा लिया करते हैं, मेरे कवित्तों की उनसे आप रक्षा करें इसीलिये अपने कवित्तों की यह थाती मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ, किन्तु रीति-स्वच्छन्द धारा के किसी भी कवि को इस प्रकार डरने की आवश्यकता न थी। उन्हें कविता लिखकर कुछ धन या कीर्ति कमाना न था, कोई उनका ऐहिक लक्ष्य न था। उनकी कविता उनके हृदय का भार हल्का करने वाली थी, उनका दुख दर्द मिटाने वाली थी, उनकी तड़प और टीस को राहत देने वाली थी। वह स्वानुभूति-निरूपिणी थी। औरों से उन्हें क्या लेना देना इसलिए उनकी कविता भी औरों के लिए न थी। औरों को उनकी अनुभूति से राहत मिलती हो, रसोपलब्धि हो जाती हो यह बात अलग पर वह उनका लक्ष्य न था। अपनी कविता से वे अपना आस्वाद कर लिया करते थे, उनकी प्यास बुझा लिया करते थे—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

व्यक्ति-वैशिष्ट्य

भावावेगमयी कविता लिखने के कारण रीतिमुक्त कवियों के काव्य में जो व्यक्ति वैशिष्ट्य आ गया है वह भी इन कवियों की एक प्रमुख विशेषता है। ठाकुर, बोधा, रसखान, घनआनन्द आदि की कविता सहज ही पहचानी जा सकती है। इनकी रचनाओं से यदि इनके नाम निकाल भी दिये जायें तो भी काव्य-पाठक इनकी वृत्ति, भावानुभूति और अभिव्यक्ति

---

[1] घनआनन्द ग्रंथावली : वाङ्मुख, पृ० १३-१४।

पद्धति के वैशिष्ट्य के कारण इनको पहचानने में भूल नहीं करेगा। इसके विपरीत रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध काव्यकारों की सैकड़ों की संख्या के बीच बिहारी, भूषण, मतिराम, पद्माकर आदि कुछ ही कवि ऐसे मिलेंगे जिन्हें उनकी व्यक्तिगत विशेषता के कारण पहचाना जा सकता है। शेष सैकड़ों कवि ऐसे मिलेंगे जिनकी रचना को नाम निकाल देने पर, पृथक करना असंभव ही है क्योंकि उनमें वृत्ति और शैली-भेद जन्य विशेषता है ही नहीं। उनका व्यक्तित्व और उनकी रचना शैली इतनी आवेगमयी न थी जिससे काव्य-पटल पर उनकी निजी लीक खिंच सकती। एक दूसरा भी कारण था। ये कवि सुनिश्चित लीकों पर चले फलत नवीनता-विधान की गुंजाइश ही कहाँ। कवि-शिक्षा के ग्रन्थ पढ़ पढ़कर उन्हें नये मार्गों पर चलना तो दूर सोचने की शक्ति भी शेष न रही थी। अधिकांश तो अलंकार और-भेद विषयों पर लक्षणोदाहरण प्रस्तुत कर देने में ही कविकर्म की इयत्ता समझने लगे थे। फलत एक सी उक्तियाँ, एक से वर्णन, एक सी विशेषताएं अधिकांश कृतियों में उत्पन्न हुई। किसी ऋतु अथवा नायिका विशेष के वर्णन से सम्बन्धित २५ भिन्न कवियों के छन्द एकत्र कर लीजिये और उपर्युक्त कथन बिना विशेष श्रम के सिद्ध हो जायगा। ऋतुगत वे ही वर्ण्य अथवा उपकरण, नायिका विशेषगत वे ही बातें थोड़े हेर-फेर से लगभग सभी छन्दों में मिलेंगी। कहीं-कहीं तो उक्ति, शब्दावली और अलंकृति तक का साम्य मिल जायगा। इसका कारण यह नहीं कि सभी कवियों ने अनिवार्य रूप से भाव अथवा उक्ति का अपहरण किया वरन् यह कि उनके सोचने की दिशाएँ इतनी निर्दिष्ट हो चली थी, विचार या कल्पना जगत इतना संकुचित हो चला था कि वे उस काव्य-परम्परा से इतर दिशाओं में अपनी दृष्टि और कल्पना को दौड़ा सकने में असमर्थ थे जिसका पठन-पाठन वे नियमित रूप से करते आते थे। विशद साहित्यिक अध्ययन-अनुशीलन की न तो, वर्तमान युग सी उस युग में क्षुधा थी और न सुविधा। प्रतिभाएं थीं किन्तु 'गाडर की जाति' की भाँति एक ही पथ पर अंधानुसरण करने वाली। रीतिमुक्त कवियों में यह अंधानुकरण न था। उनका अपना जीवन था, अपना जगत था। प्रेम की अपनी अनुभूति थी और वृत्ति का अपनापन था। इसीलिए उनके काव्य का वस्तुजगत, कल्पनाजगत और शिल्प-जगत विशद और विस्तृत है, रीति से मुक्त और निरपेक्ष है। और इसी कारण उनमें व्यक्ति वैशिष्ट्य का विशेष विकास भी लक्षित होता है। दो टूक बात कहने में बोधा अपना सानी नहीं रखते, लोकोक्ति गर्भित प्रवाह-पूर्ण भाषा लिखने में ठाकुर अपनी मिसाल नहीं रखते, प्रीति विषमता का अनुभूति-प्रवण-चित्रण और विरोधाश्रित भाषा शैली का चमत्कार दिखाने में घनआनंद की समता कहाँ और उन्मादिनी परानुरक्ति का रसखान सा सरस सरल चितेरा दूसरा कहाँ। अपनी इसी निजता के कारण ये कवि हिन्दी की काव्य-सम्पदा के संवर्धक और रीतिबद्ध काव्य-काल में एक अभिनव प्रेमधारा के प्रवाहक हो गए हैं।

काव्य-सम्प्रदाय के अनुसरण से विरत

रीतिमुक्त कवियों ने किसी काव्य सम्प्रदाय का अनुसरण नहीं किया। ठाकुर, बोधा, घनआनंद आदि काव्य रीतियों से अनभिज्ञ नहीं थे। इसके पर्याप्त संकेत उनके काव्यों में मिलते हैं। इन्होंने काव्य को किसी परिपाटी विशेष पर नहीं चलाया। संस्कृत साहित्य में प्राप्य विविध काव्यदर्शनों—अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि का विवेचन, निरूपण

या अनुसरण इन्हे इष्ट न था। रस, अलकार, छन्द, दोष, वृत्ति आदि काव्यागो और नायिकाभेद आदि विषयो पर ग्रथ रचना करना रीतिबद्धो के लिए जरूरी था परन्तु इनके लिए सर्वथा त्याज्य था। ऐसी वृत्ति वालो की तो इन लोगो ने भर्त्सना की है। ये कवि लीक छोडकर चलने वाले सपूतो मे थे। रीतिशास्त्र के ग्रथ लिखकर राजाओ को कवि शिक्षा देना या आचार्य की पदवी प्राप्त करना या कविता के दगल मे अपनी प्रतिष्ठा जमाना इनका लक्ष्य न था। ऐसे उद्देश्यो से ये कोसो दूर थे। चित्तहारिणी काव्यसृष्टि द्वारा अपने मन के भार को हल्का करना, आत्माभिव्यक्ति करना और आत्मविकास करना यही इनका लक्ष्य था।

दरबारदारी से दूर

यश, पद और धन की लिप्सा इन्हे न थी। इन्होने इसीलिये दरबारो की सेवा न की जिन्होने की भी वे अधिक दिन तक वहाँ टिक न सके बस अपनी इसी वृत्ति के कारण। रीतिमुक्त कवियो को दरबारी कवि नही कहा जा सकता। वे अपने आश्रयदाता के यहाँ टुकडे तोडने वाले और उनकी प्रशस्ति मे अपनी प्रतिभा का अपव्यय करने वाले कवि न थे। ठाकुर, घनआनद, बोधा ने तो राज्याश्रय को ठोकर मारकर अपने चित्त की स्वच्छन्दता का परिचय दिया था। बोधा तो यह कहकर कि—'**जौ धन है तो गुनी बहुतै अरु जौ गुन है तो अनेक हैं गाहक**' अपने आश्रयदाता महाराज क्षेत्रसिंह की राजसभा छोडकर चले गए थे। इन स्वच्छन्द वृत्ति के कवियो का स्वाभिमान अछोर था, बोधा तो अपनी ऐंठ मे यहाँ तक कह गये—

> होय मगरूर तासो दूनो मगरूरी कीजै
> लघुता ह्वै चलै तासौ लघुता निबाहियै।
> दाता कहा सूर कहा सुन्दर प्रवीन कहा
> आपको न चाहै ताके बाप को न चाहियै॥

यही हाल घनआनद का था। मुहम्मदशाह रँगीले के मीरमुशी थे परन्तु उनका काव्य और सगीत, शाह की इच्छा का गुलाम न था। वह उनकी अपनी मर्जी की चीज थी। अपनी इसी वृत्ति के कारण वे उनके राज्य मे अधिक दिन ठहर न सके। मन की यह मर्जी और ठसक रीतिबद्ध काव्यकारो मे विरल थी। वे अपने आश्रयदाता से विरोध ठानते या उनकी मरजी के खिलाफ चलते बहुत कम देखे गए। रसखान तो बादशाहवश के ही थे पर अपनी वृत्ति की स्वच्छन्दता के ही कारण वे सारी वशानुगत ठसक छोडकर वृन्दावन चले आए थे और वहाँ के गोपाल बन गए थे। द्विजदेव तो अयोध्याधिपति ही थे, उनका भी यही हाल था। स्वच्छन्द प्रेमी बनने मे जो आनन्द था वह राजभोग मे कहाँ, उन्हे राधा और कृष्ण तथा उनके प्रेम ने असाधारण रूप से मुग्ध किया था। नागरीदास ऐसे भक्त और स्वच्छन्द प्रेमी इसी कोटि के कवि हो गये हैं। जैसा कह आये हैं ये कवि अपने हृदय की उमग पर थिरकने वालो मे थे। आश्रयदाता के आदेश पर नृत्य करने वाले नही। ये प्रेम पर मर मिटने वाले थे, स्वाभिमान को रौंदकर जीने वाले नही। यही कारण है कि किसी रीतिमुक्त कवि ने अपने आश्रयदाता की प्रशस्ति मे कोई काव्य नही लिखा है। परिस्थिति के सघात से उन्हें दरबार मे भले ही शरण लेनी पडी हो परन्तु अपनी स्वच्छन्द वृत्ति के कारण वे वहाँ ठहर नही सके हैं।

प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति

रीतिमुक्त काव्यकारों में एक अन्य विशेषता यह भी लक्षित होती है कि उनकी प्रवृत्ति प्रबन्ध रचना की ओर भी थी। ऐसा तो नहीं था कि सूफी आख्यानक काव्यकारों की भाँति इन कवियों ने अनिवार्य रूप से प्रबंध रचना की हो परन्तु इतना अवश्य है कि अपने भाव में निमग्न हो ये विशद प्रबंध भी लिखने में समर्थ होते थे। आलम के लिखे दो प्रबन्ध काव्य बताये जाते हैं—१ माधवानल कामकदला, २ श्यामसनेही। श्यामसनेही में रुक्मिणी के विवाह की सुप्रसिद्ध कथा है तथा माधवानल कामकदला प्राकृतकालीन प्रसिद्ध कथा को लेकर लिखी गई है। इसी कथा को और भी अधिक विस्तार के साथ आगे चलकर बोधा ने 'विरहवारीश' नाम से लिखा। घनआनन्द ने कोई विस्तृत प्रबंध नहीं लिखा किन्तु उनकी कुछ कृतियाँ प्रबन्ध नहीं तो निबन्ध-काव्य की कोटि में आ जायेंगी जैसे गिरिपूजन, यमुनायश, वृषभानुपुरसुषमा वर्णन, गोकुल गीत आदि। व्रजव्यवहार में प्रबंधात्मकता का भी थोड़ा विकास देखा जा सकता है। यद्यपि इन कवियों की भी मूल-वृत्ति मुक्तक अथवा स्फुट रचना की ओर ही विशेष थी फिर भी प्रबन्ध की दिशा में इनके उपर्युक्त प्रयत्न नजरन्दाज नहीं किये जा सकते। रीतिबद्ध कवियों की रचनाएँ तो अधिकांशतः लक्षणों को चरितार्थ करने वाले उदाहरण के रूप में लिखित हैं फलतः उन्होंने मुक्तकों के ही ढेर लगाये। प्रबंध-रचना की ओर वे न बढ़े। प्रबंध की रचना उन्होंने यदि की भी तो अधिकांशतः वीरगाथाओं की शैली पर आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते हुए जैसे वीरसिंह देवचरित, हिम्मतबहादुर-विरदावली आदि। यदि रीतिबद्ध कवि लक्षणानुधावन और रूढ़ि का पथ छोड़कर काव्य रचना में लगे होते तो सम्भव है कुछ शक्तिशाली प्रबन्ध भी लिखे जाते। केशवदास ने कुछ प्रयत्न किया भी पर रीति में उनका मस्तिष्क इतना बोझिल था कि रामचन्द्रिका स्वतः काव्यरीति के नाना अंगों छन्द, ऋतु वर्णन आदि के उदाहरणों का विशाल संग्रह जान पड़ने लगती है। प्रबंध तत्व तो उसमें शिथिल है ही। रीतिमुक्तों के दो-चार प्रयत्न इस दिशा में हैं वे रीति का मार्ग छोड़कर चलने के ही कारण। एक दूसरा भी कारण था जिससे प्रबन्ध काव्य की ओर रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि किसी सीमा तक गई वह था कृष्ण-चरित्र के उत्तरवर्ती अंश का ग्रहण जैसे श्यामसनेही, में या आलम के नाम पर चढ़ी हुई रचना सुदामा-चरित्र में। कृष्ण का प्रारम्भिक जीवन, उनकी बाल लीला, शैशव-क्रीड़ा, किशोर-जीवन, गोकुल, ब्रज और वृन्दावन का माधुर्यपूर्ण वृतान्त प्रबन्ध की धारा के लिए उपर्युक्त नहीं पड़ता इसी से हिन्दी साहित्य के समूचे मध्ययुग, लगभग ४५० वर्षों के साहित्य में कृष्ण के प्रारम्भिक-जीवन से सम्बन्धित प्रबन्ध-ग्रंथों का नितान्त अभाव है। नंददास कृत रूपमंजरी, भँवरगीत और रासपंचाध्यायी अपवाद स्वरूप ही हैं। इस अंश के सविस्तार किन्तु स्फुट वर्णनों से तो समूचा रीतिकालीन काव्य भरा पड़ा है। स्वच्छन्द कवियों के प्रबन्ध ग्रन्थ सूफी आख्यानक काव्यों से स्वतन्त्र और भिन्न शैली में लिखे गए हैं। इनके काव्य शुद्ध भारतीय प्रेम-काव्यों की परम्परा में दिखाई पड़ते हैं। बोधा ने अपने माधवानल कामकदला चरित्र या विरह-वारीश में सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति रहस्यदर्शी पक्ष का समावेश नहीं किया है। उसमें कोई समासोक्ति, अन्योक्ति व अन्यापदेश (Allegory) नहीं है सूफी इश्कमजाजी और इश्कहकीकी की चर्चा भले ही हो परन्तु काव्य की कथावस्तु किसी रूपक में अध्यवसित नहीं हुई है। इस प्रकार स्वच्छन्द कवियों के कथानक-काव्यों में

प्रबन्ध की प्रवृत्ति जहां तहाँ लक्षित होती है जो रीतिबद्ध कवियों में नहीं मिलती। लाल के जो ग्रन्थ पौराणिक या प्रख्यात कथानकों को लेकर लिखे गए हैं उनमें भी प्रेम के स्वच्छन्द रूप का ही ग्रहण हुआ है।

देश के पर्वों एवं त्यौहारों का उल्लासपूर्ण वर्णन

रीतिमुक्त शृंगार काव्य की एक अन्य विशेषता है देश के पर्वों एवं त्यौहारों का उल्लासपूर्ण वर्णन। रीति में बँधे कवियों की दृष्टि उधर न जा सकी। शास्त्रबद्ध विषयों से बाहर उन्होंने कदम नहीं बढ़ाया फलतः लोकजीवन में हर्ष और आनन्द का जो स्रोत विभिन्न पर्वों एवं त्यौहारों पर ग्राम निवासियों की मनोभूमि में उच्छलित एवं प्रवाहित होता था उसका स्वरूप वे कवि सामने न ला पाए। यह कार्य ठाकुर और बोधा सरीखे सहृदयों के लिए ही शेष रह गया था। ठाकुर के काव्य में तो बुन्देलखण्ड में प्रचलित त्यौहारों का वर्णन विशेष मनोयोग से हुआ है जैसे गनगौर, अखती, हरियाली तीज, बरगदाई (वट-सावित्री), होली, झूला आदि। रीति-स्वच्छन्द कवि देश के ऐसे आनंदोल्लास पूर्ण पर्वों और अवसरों पर अपने हृद्‌गत उत्साह और उल्लास को व्यक्त करते देखे जाते हैं। इन पर्वों और त्यौहारों पर जन-जीवन में जो हर्ष और उछाह आज भी थोड़ा बहुत देखा जा सकता है उसकी अभिव्यक्ति इन्होंने की है, केवल परम्परा-पोषक रचनाकारों की भाँति वसन्त ऋतु और होली के पिटे पिटाये वर्णन करके ही ये नहीं रह गए हैं। 'गुलाल की गरद' और 'केसर की कीच' से आगे भी इन्होंने अपनी दृष्टि का प्रसार दिखलाया है। हमारी नागरि-रिकता का अहंकार, बौद्धिकता का विकास तथा व्यस्त एवं संघर्षमय स्वार्थी जीवन क्रमशः हमें अपने प्राचीन संस्कारों से विलग करता जा रहा है, हम अपने देश की सांस्कृतिक परम्पराओं को भूलते जा रहे हैं और ग्रामीण जीवन में पर्वों और त्यौहारों के प्रति जो श्रद्धाभक्तिमयी आनन्द-वासना है उससे रीतिबद्ध कवि दूर ही रहे हैं परन्तु ठाकुर ऐसे स्वच्छन्द रीतिमुक्त कवियों ने बुन्देलखण्ड के जनजीवन के बीच के अखती, गनगौर, वट-सावित्री (बरगदाई), होली आदि व्रत-पूजन, पर्व एवं त्यौहार आदि का चित्रण कर अपनी हार्दिकता के व्यापक प्रसार का परिचय दिया है। रीतिबद्ध कवि भला ऐसे हृदयग्राही जीवन प्रसंगों का ग्रहण कैसे करते। शास्त्र में इनके वर्णन का न तो विधान ही है और न कहीं कोई उल्लेख ही। ठाकुर कवि द्वारा अखती (अक्षय तृतीया, वैशाख शुक्ल तीज) का वर्णन देखिए। यह हिन्दू स्त्रियों के लिए व्रत एवं पूजन का महत्वपूर्ण पर्व है। इस दिन बुन्देलखण्ड में तथा उत्तर भारत के अन्य भू-भागों में भी किसी वटवृक्ष के नीचे स्त्रियाँ पुत्तलिका पूजन करती हैं। पुरुष भी सज-धजकर पूजन देखने जाते हैं। पूजनोपरांत पुरुष स्त्रियों से उनके प्रेमियों और स्त्रियाँ पुरुषों से उनकी प्रेमिकाओं का नाम पूछती हैं। लज्जा और स्नेह के कारण जब नाम लेने में संकोच और विलंब होने लगता है तो वे एक दूसरे को गुलाब या चमेली की सुकोमल छड़ियों से मारते हैं। इस प्रसंग का ठाकुर कृत वर्णन देखिए—

> गाँठ गठीली चमेली की कोंदर घालो न कोऊ अनूतरो रैहै।
> ऊनई नाम लेवाओ तो लैहैं पै घाले ते लाल कहा रस रैहै॥
> ठाकुर कंज कली सी लली बलि या छड़ चोट सरीर न सैहै।
> ख्याल कहै कर जोर हहा यह कोंदर लाल हमैं लगि जैहै॥

इसी प्रकार बोधा ने वैवाहिक सस्कारो का कैसा हृदयग्राही चित्र माधवानल काम-कदला मे अकित किया है। उन्होने आँगन लिपाने, दीवालो के पुतवाने, घरों के छवाने आदि का वर्णन किया है और बताया है कि विवाह के अवसर पर किस प्रकार कलश सजाए जाते हैं, हरे बाँस को केन्द्र मे गाडकर मडप सजाया जाता है, उसे जामुन के पल्लवों से छाया जाता है, गौरि की स्थापना होती है स्त्रियाँ वस्त्राभूषणों से सज-धजकर मगलगीत गाती हैं। कोई स्त्री तेल चढ़ाती है, कोई रसोई तैयार करती है, सब जगह 'हरबर-हरबर' हो रही है। सारे कुटुम्बीजन बुलाए जाते हैं, मँडवा मे भोजन कराया जाता है, सवेरे मिलमायन होती है, स्त्रियाँ होने वाली वधू को हल्दी-तेल चढाती हैं, सारे नगर मे नाऊ नेवता बाँटता है, सभी पुरवासियों की देवसभा सी पगत लगती है। प्रत्येक वर्ण के लोग अपनी-अपनी पगत मे बैठकर 'खोवा, पुरी, सुहारी' का जेंवनार करते हैं। दूसरे दिन केवल कुटुम्ब के ही लोग होते हैं और मँडवा के तले 'वरामात' (कच्ची रसोई) खाते हैं आदि आदि। हिन्दू जीवन का परम व्यामोहक यह विवाह सस्कार बड़ी मनोहरता से बोधा के काव्य मे सचित्र हुआ है। जन-जीवन के ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसगों पर इन रीति निरपेक्ष कवियों की ही दृष्टि जा सकती थी। भला स्वकीया, परकीया और गणिका, मुग्धा, मध्या और प्रौढा तथा खडिता और अभिसारिका के भेद प्रभेदो मे फँसी रीतिबद्ध दृष्टि इन रीति बाह्य विषयों पर कैसे जा सकती थी? प्रकृति चित्रण के क्षेत्र मे थोडी स्वच्छन्दता के दर्शन द्विज-देव और बोधा मे होते हैं। आलम के प्रबन्ध मे विशद प्राकृतिक रमणीयता का जहाँ तहाँ चित्रण हुआ है पर अतत वह भी विरही माधवानल के विरह की या तो पृष्ठभूमि बना है या उद्दीपक। द्विजदेव का प्रकृति प्रेम प्रसिद्ध है। वे किसी सीमा तक उसे आलम्बन रूप मे ग्रहण कर सके हैं। अन्य कवियों ने उसे परम्परागत रूप मे ही ग्रहण किया है।

मूल वक्तव्य · प्रेम

स्वच्छन्द कवियो का मूल वक्तव्य प्रेम है। इसी मूलवर्ती सवेदना से उनका सम्पूर्ण काव्य स्पन्दित है चाहे वह मुक्तको के रूप मे लिखा गया हो चाहे आख्यान के रूप मे। आख्यान रूप मे सवेदित किये जाने पर भी प्रेम ही समूची कथा का मूल-तत्व, सूत्र और वर्ण्य मिलेगा। मुक्तकों मे तो वक्तव्य विषय से इधर उधर जाने की गुजाइश नही परन्तु प्रेम की सुरा पीकर छके हुए ये कवि प्रबन्धों मे भी लक्ष्य से इधर उधर नही हुए हैं। जो कुछ प्रेम का पोषक और विकासक नहीं वह इनके काव्यों से बहिगत कर दिया गया है। इस प्रेम वर्णन का वैशिष्ट्य इस बात मे है कि वह स्वानुभूति-प्रेरित है। इनकी प्रेम-व्यजना इनकी निजी प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति है उसमे स्वानुभूत हर्ष-विषाद व्यक्त हुआ है, आरोपित या कल्पित प्रणय-निवेदन नही है। इसी से इनकी प्रेमभाव पूर्ण रचनाएँ हृदयस्पर्शी और मार्मिक बन पडी हैं। उसमे उनके व्यक्तित्व का ही सस्पर्श है जो उनके काव्य को जीवतता प्रदान करता है। यहाँ अनुभूतियों का ही दूसरा नाम काव्य है, इनके काव्य मे हृदय के स्पदनों का लेखा जोखा है। मात्र स्थूल प्रणय-केलियो और व्यापारो का चित्रण नही जैसा नायिकाभेद के ग्रन्थों मे वर्णित हुआ करता है। इनके द्वारा वर्णित प्रेम इनके जीवन से छनकर आया है, उसमे ताजगी है, तीव्रता है। इन्होंने औरों से प्रेम का वर्णन नही किया है यदि किया भी है तो वह स्वानुभूति के प्रसार रूप मे हो। इसके विपरीत

रीतिबद्ध कवियों का प्रेम गोपी-गोपिकाओं का प्रेम है अथवा साधारण नायक-नायिकाओं का प्रेम है जिसकी उन्होंने या तो कल्पना की है या साहित्य-परम्परा से उपलब्धि। ऐसा नहीं है कि रीतिबद्ध कर्त्ताओं में प्रेम की अनुभूति ही न थी। कहने का तात्पर्य यह है कि औरों का प्रेम देख, सुन और कल्पित कर इनमें काव्य-सृजन की स्फूर्ति हुआ करती थी जब कि रीतिमुक्त कर्त्ताओं की निजी प्रेमानुभूति ही काव्यसृजन का कारण हुआ करती थी। लगभग सभी रीतिमुक्त कवियों की अपनी-अपनी प्रेम कथा है। घनआनंद और सुजान, बोधा और सुभान, आलम और शेख या कोई अन्य यवनी आदि की प्रेम कथाएं प्रसिद्ध ही हैं। रसखान भी किसी के रूप पर आसक्त थे, 'प्रेम-वाटिका' के साक्ष्य से स्पष्ट पता चलता है—

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रेमदेव की छबिहिं लखि, भए मियाँ रसखान॥ (प्रेम-वाटिका)

और इस दिशा में ठाकुर की प्रसिद्धि भी कुछ कम नहीं। उनका किसी सुनारिन से प्रेम हो गया था। बुन्देलखण्ड के बिजावर राज्य की बात है वह सुनारिन विवाहिता थी पर ठाकुर उसी के रूप पर रीझे हुए थे। उसकी रूप-विभा का वर्णन करते और उसे सुनाते। एक बार वह सुनारिन बीमार पड़ी और चार-पांच दिन तक घर के बाहर दिखाई न पड़ी। बेचैन ठाकुर एक दिन रात्रि के समय उसकी गली से यह छन्द जोर जोर से पढ़ते हुए निकले—'गति मेरी यही निसि बासर है चित तेरी गलीन के गाहने हैं।' कहते हैं इस छन्द ने औषधि का काम किया और उस सुनारिन की अस्वस्थता जाती रही। ठाकुर के छन्दों से पता चलता है कि दूसरी ओर से उन्हें कोई प्रेम न प्राप्त हो सका था परन्तु ठाकुर को इस बात का कोई खेद न था। वे इतने ही से सन्तुष्ट थे कि उन्होंने किसी को चाहा। यह बात उनके इस प्रसिद्ध छन्द से भी अवगत होती है—'वा निरमोहिनी रूप की रासि जऊ उर हेत न ठानति ह्वै है.......' इस प्रकार प्रेम के रंग में रंगे इन प्रेमोमंग के कवियों की प्रेम-व्यंजना ही विलक्षण है। इनकी प्रेमानुभूति ही विशिष्ट है। इन कवियों के काव्य की प्रेरणा केन्द्र इनकी वे प्रेमिकाएँ हैं जिन्हें ये पा न सके, जो इनके जीवन में आ न सकीं। घनआनन्द, ठाकुर, बोधा, रसखान, आलम प्रायः सभी के साथ न्यूनाधिक रूप में यह बात लागू होती है। इस अप्राप्ति ने ही उन्हें आत्म-पीड़ा निवेदन की प्रेरणा दी और उनके अंतर्तम के भाव अभिलाषा, चिन्ता आदि काव्य रूप में व्यक्त हो सके। यही कारण है कि अनुभूतियों की जो सचाई इनमें मिलती है वह किन्हीं पूर्ववर्ती या परवर्ती कवियों को प्राप्त नहीं हो सकी है, समसामयिक रीतिकारों को तो बिल्कुल ही नहीं। ये कवि ही सच्चे प्रेमी थे, प्रेम ही जिनका इष्ट था जिसे पाकर फिर और किसी वस्तु की चाह न रहा करती थी—

जेहि पाएँ बैकुण्ठ अरु हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥ (रसखान)

प्रेम जिस पथ पर इन्हें दौड़ाता वही इनका निर्दिष्ट मार्ग था, वह मार्ग लोक और शास्त्र की मर्यादाओं को मानकर नहीं, तिरस्कार कर आगे बढ़ता था। इस मार्ग में प्रेम ही रास्ता था, प्रेम ही मंजिल थी। प्रेम से महत्तर कुछ नहीं था इसलिए प्रेम ही साध्य था।

इस मार्ग में प्रेम साधन रूप में कभी भी स्वीकृति नहीं हुआ जैसा कि सूफी सम्प्रदाय के सतों में दृष्टिगत होता है। जहाँ तक इनके प्रेम काव्य पर पड़ने वाले प्रभावों का प्रश्न है दो प्रभाव बिलकुल स्पष्ट हैं—सूर आदि कृष्णभक्तों तथा बिहारी, मतिराम, देव, दास, पद्माकर आदि समसामयिक रीतिकवियों का प्रभाव तथा सूफी प्रेमाख्यान काव्यकारों का प्रभाव। सूर तथा अष्टछाप के अन्य कृष्णभक्तों का प्रभाव रसखान पर स्पष्ट है तथा रीतिकारों का प्रभाव औरों की अपेक्षा आलम और द्विजदेव पर अधिक है। बोधा और घनआनन्द पर सूफी प्रभाव विशेष है। स्वच्छन्द कवियों के काव्य का अध्ययन करते हुए उनकी प्रेम-भावना की जिन प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टि जाती है उन पर विचार करना यहाँ आवश्यक है।

प्रेम का स्वच्छन्द और परम्परागत रूप

यह पहले ही कहा जा चुका है कि स्वच्छन्द कवियों की मूल संवेदना प्रेम है। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रेम का परम्परागत रूप न प्राप्त होकर उसका निर्बन्ध और स्वच्छन्द रूप देखने को मिलता है। क्रमागत अथवा समसामयिक साहित्य परम्परा में जिस प्रेम का वर्णन मिलता है वह कुटुम्ब और समाज की मर्यादाओं से बँधे हुए प्रेम का वर्णन है। उस प्रेम के मार्ग में कितनी बाधाएँ हैं, कितने बंधन हैं, गुरुजनों का संकोच है, लोक की लज्जा है। इतने दिनों के बाद नायक परदेश से वापस आया है, उसकी विवाहिता लोक और परिजनों के भय से उसे भर आँख देख भी नहीं सकती। दर्शनोत्कंठा अलग मारे डालती है। उससे रहते नहीं बना। वह खम्भ से आती है खम्भ से चली जाती है—

नायक सर से लाइ कैं तिलक तरनि इत ताकि।
पावक झर सी झमकि कैं, गई झरोखा झाँकि॥ (बिहारी)

एक दूसरा नायक है जो परदेश जाने को उद्यत है। सारे कुटुम्बियों के बीच से अन्तिम विदा लेने के लिए लौटकर नायिका के पास नहीं जा सकता। बेचारे को ऊपर से झाँकती हुई प्रियतमा से इशारों-इशारों में विदा लेना पड़ता है। एक तीसरा प्रेमी युगल है, वे मिलते हैं पर बहुतों की भीड़ के बीच। भीड़ किसी काम से इकट्ठी है। ये उस भीड़ में भी अपनी बातें आँखों-आँखों में कर ही लेते हैं—

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे मौन में करत हैं नैनन ही सों बात॥ (बिहारी)

उधर निन्दा हो रही है, चवाइयाँ चल रही हैं, चुगलियाँ हो रही हैं इधर प्रेम चल रहा है। डर भी है, उद्वेग भी—

चलत घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराय।
समुझि वहीं घर को चलै, भूलि वही घर जाय॥ (बिहारी)

इस प्रकार के बन्धनमय प्रेम से ये अपरिचित हैं। इतने बन्धनों के बीच होकर चलने वाला प्रेम व्यापार न तो इन कवियों को प्रिय हो सकता था और न इष्ट। लोक की लज्जा और परलोक की चिन्ता जो छोड़ सकता हो वही स्वच्छन्द प्रेम मार्ग का पथिक हो सकता है। यह बात स्वच्छन्द कवियों ने पुकार-पुकार कर कही है—

लोक की लाज औ सोच प्रलोक को वारिए प्रीति के ऊपर दोई।
गाँव को गेह को देह को नातो सो नेह पै हातो करै पुनि सोई॥
'बोधा' सो प्रीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होई।
लोक की भीत डरात जो मीत तौ प्रीति के पैंडे परौ जिन कोई॥ (बोधा)

लोक वेद मरजाद सब लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि विधि निषेध को नेह॥ (रसखान)

उनके प्रेम में वही स्वच्छन्दता है जो राधा और कृष्ण या गोपियों और कृष्ण के बीच थी। इन कवियों को घर-बार, लोक-परलोक किसी की चिन्ता न थी, जीवन और जगत के ये झूठे बन्धन इन्हें सर्वथा अस्वीकार थे। इसलिये ये कवि शृंगार-रस तथा नायिका भेद के ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रेम की सुनिश्चित लीकों पर नहीं चल सके हैं—स्वकीया, परकीया और गणिका के अलग-अलग प्रकार के प्रेम, फिर मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा की 'काम' वृत्ति पर आधारित भिन्न-भिन्न वृत्तियाँ फिर अवस्थादि पर निर्भर आगतपतिका, प्रोषितपतिका, उत्कंठिता, अभिसारिका, खंडिता आदि के प्रेम, प्रेम की लुका छिपी, चोरी-चोरी संदेश भेजना, मान और मनावन, बीच में सखियों और दूतियों का इधर से उधर सन्देश निवेदन, कुलीन, शठ, धृष्ट आदि नायकों के विभिन्न प्रकार के आचरण, सखियों या दूतियों का नायक से रमण-संभोग, सपत्नीक ईर्ष्या आदि जो अधिकांश रीतिबद्ध नायिका भेद के ग्रन्थकारों द्वारा निर्दिष्ट प्रेम वर्णन के विषय हैं उन पर ये रीतिमुक्त कवि काव्य रचना करने में एकान्त असमर्थ रहे हैं। ये रीतिग्रस्त प्रेम वर्णन की सँकरी गलियाँ हैं इनमें इन स्वच्छन्द कवियों की साँस घुटती थी। ये प्रेम की इन गलियों से निकलकर प्रेम के खुले मैदान में आये जो उनका सच्चा क्षेत्र था, जहाँ कोई किसी को बुरा भला कहने वाला नहीं था। इनके प्रेम वर्णन को नायिका-भेद के चौखटे में फिट नहीं किया जा सकता। ये अपने प्रेम का निवेदन आप करते थे; सखियों, दूतियों या संदेशवाहकों के माध्यम से नहीं। इसी कारण इन रीतिमुक्त कवियों के काव्य में हृदय की, अन्तःकरण की जैसी मनोहर झलक मिलेगी रीतिबद्ध कवियों में वैसी दुष्प्राप्य है। देव, बिहारी, पद्माकर, दास, मतिराम आदि कवियों ने जहाँ अनुभूति के साथ प्रेम की व्यंजना की है वे भी प्रेम के सुन्दर उद्‌गार और अन्तःकरण की मनोरम अभिव्यक्तियाँ दे गए हैं पर ऐसा रीति के बन्धन से हृदय को मुक्त करने पर ही हो सका है।

प्रेम-भावना की उदात्तता

प्रेम के स्वच्छन्द रूप का ग्रहण करने से रीतिमुक्त कवियों की प्रेम भावना में एक प्रकार की उदात्तता (Sublimation) आ गई है। उनमें गहराई है, व्यापकता है; संकीर्णता और ओछापन नहीं। उनका प्रेम शुद्ध वासनात्मक स्तर से ऊपर भी उठ सका है। रीतिबद्धों की दृष्टि अतिशय शरीरी और स्थूल न थी। रसखान, घनआनन्द, ठाकुर आदि में उनका पर्याप्त उन्नत उदात्त स्वरूप गोचर होता है। इन कवियों का प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण मुख्यतः मांसल और शरीरी न होकर सूक्ष्म और भावनात्मक था। बोधा को उपर्युक्त कथन का अपवाद कहा जा सकता है। वे कायिक प्रेम के पुजारी थे। परन्तु प्रेम के कुछ महत्वपूर्ण आदर्श उनके मन में भी प्रतिष्ठित थे। उदाहरण के लिये यह कि अपने प्रेम का वृत्तान्त अपने तक ही सीमित रखना चाहिये, अपना दर्द आप ही झेलना चाहिए, दूसरा कोई उसे

क्या समझेगा। अपने दुख पर तरस खाने वाला कोई न मिलेगा, मजाक उड़ाने वाले पचासों मिलेंगे—

(क) काहू सों का कहिबो सुनिबो कवि बोधा कहे मे कहा गुन पावन।

(ख) बोधा किसू सों कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कैं।
यातें भले मुख मौन धरे उपचार करे कहूँ औसर पाइ कैं॥
ऐसो न कोऊ मिल्यौ कबहूँ जो कहे कछु रंच दया उर लाइ कैं।
आनंतु है मुख लौं बढ़ि कै फिरि पीर रहै या सरीर समाइ कैं॥

प्रेम के पथ पर चलकर डिगना नही होता, प्रेम एक से होता है अनेक से नहीं—

(क) कवि बोधा अनी घनी नेजहूँ तें चढ़ि तापै न चित्त डरावनों है।

(ख) लगनि वहै थल एक लगि, दूजे ठौर बढ़ै न।

(ग) जो न मिलो दिलमाहिर एक अनेक मिले तो कहा करिये लै।

प्रेम मे अनन्यता आवश्यक है, लोक लाज छोड़ना पड़ता है तकलीफ सहनी पड़ती है। अहकार, अभिमान और मग़रूरी के लिए प्रेम के साम्राज्य में कोई स्थान नही। प्रेम त्याग का ही दूसरा नाम है, प्रेम करना सरल है पर उसका निर्वाह मुश्किल है इसलिए बोधा प्रेम के निर्वाह पर बार-बार बल देते पाये जाते हैं। प्रेम के इन ऊँचे आदर्शों पर बोधा का अटल विश्वास था—

(क) प्रीति करै पुनि और निबाहे। सो आशिक सब जगत सराहे॥

(ख) एकहि ठौर अनेक मुसक्किल यारी कै प्यारी सों प्रीति निबाहिबो।

(ग) नेहा सब कोऊ करै कहा करै मैं जात।
करिबो और निबाहिबो बड़ो कठिन यह बात॥

जब बोधा ने प्रेम के सम्बन्ध मे इतने ऊँचे मानदण्ड स्थिर किये हैं तब रसखान, घनआनन्द आदि प्रेम के पपीहों का तो कहना ही क्या। उनकी प्रेमवृत्ति की ऊंचाई तो सहज ही अनुमित की जा सकती है। रसखान के लिए यह प्रेम कुछ साधारण वस्तु या लौकिक व्यापार मात्र न था। उन्होने तो प्रेम को हरि का दूसरा रूप ही मान लिया था—

प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं ज्यो सूरज अरु धूप॥

इसकी दिव्यता का तो कहना ही क्या। प्रेम को पा लेने के बाद सारी स्पृहाएँ दोष हो जाती हैं—

जेहि पाए बैकुण्ठ अरु हरिहू को नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

इसीलिए बार-बार रसखान पुकार कर कहते हैं 'प्रेम करो, प्रेम करो! जिसने प्रेम नही किया उसने इस ससार में आकर कुछ नही किया'—

(क) जप बार-बार तप सजम अपार व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।

कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार, चित्त
चाह्यो न निहारयो जो पै नंद के कुमार को ॥
(ख) शास्त्रन पढ़ि पंडित भए कै मौलवी कुरान ।
जु पै प्रेम जान्यों नहीं, कहा कियो रसखान ॥

रसखान के मत में प्रेम से महत्तर कोई धर्म नहीं, कोई तत्व नहीं। ज्ञान, कर्म और उपासना ये सब अहंकार को जन्म देने वाले हैं, प्रेम इन सबसे श्रेष्ठ है। वह श्रुति, पुराण, आगम, स्मृति सभी का सार है। जैसी पवित्रता, दिव्यता और महत्ता इन रीतिमुक्त कवियों की प्रेम भावना में लक्षित होती है वैसी रीति में बँधे कवियों में नहीं। घनआनन्द की प्रेम-वृत्ति भी ऐसी ही उदात्त और मनोहारिणी है, आसुष्मिकता, वासना और ऐहिकता का जहाँ लेश भी नहीं, प्रेम क्या है मानो शुद्ध अन्तःकरण ही फूट पड़ा है। इस प्रेम में सचाई है, एक-निष्ठता है, समर्पण है, त्याग है। इनके प्रेम की एकनिष्ठता ने इनके प्रेम को वह उच्चता प्रदान की है जिसमें प्रेमी प्रिय को चाहता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है इसकी उसे परवाह नहीं रहती। ये प्रेमोन्मत्त कवि इस बात की चिन्ता नहीं करते कि उनका प्रिय उन्हें चाहता है या नहीं। इनके मत में सच्चा प्रेम त्याग और दान में है भोग और उपलब्धि में नहीं। स्वच्छन्द प्रेमी प्रेम-भाव की उच्च भूमिका पर पहुँचकर कुछ चाहता या माँगता नहीं वह तो सिर्फ देता ही देता है। वहाँ प्रदान का ही क्रम चलता है आदान का नहीं। घनआनन्द के शब्दों में—

(क) चाहौ अन चाहौ जान प्यारे पै अनंद घन
प्रीति रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।

(ख) हमको वह चाहै कि चाहै नहीं हम चाहिए चाहि विया हर है।

प्रेम का यह आदर्श *प्रमागत प्रेम-भावना से भिन्न है तथा इसमें प्रिय के इस अभि-*नव और उन्मेषपूर्ण आदर्श की पवित्रता और ताजगी भी है। प्रेम के इस उदात्त स्वरूप के समक्ष समसामयिक रीतिबद्ध एवं रीतिकार कवियों का प्रेम ओछा और निकम्मा जान पड़ने लगता है क्योंकि उसमें रसिकता है, ऐन्द्रिकता है, पार्थिव तृषा है, उपभोग की कामुकता है, वासना-तुष्टि की प्रबल ईहा है तथा वहाँ त्याग नहीं, तड़प नहीं, आत्म-समर्पण और बलिदान नहीं और सबसे बड़ी बात तो यह कि अन्तर्तम की पीर और पुकार नहीं। किन्तु रीतिमुक्त रचयिताओं में प्रेमगत भोग पर नहीं त्याग पर विशेष बल दिया गया है, प्राप्ति से अधिक पीड़ा और व्यथा को महत्व बताया गया है।

प्रेम-विषमता का चित्रण

रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रेम-विषमता का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, उसके लिए जितना तड़पता है प्रिय प्रेमी के लिये उतना नहीं। स्वच्छन्द प्रेमधारा के कवियों ने प्रेमगत इस वैशिष्ट्य को सविशेष रूप से अपने काव्य में चित्रित किया है। प्रेमी के प्रेम की तीव्रता, अनन्यता, निरन्तरता आदि दिखाना ही इनका लक्ष्य है, प्रिय को क्रूर और दुष्कर्मी दिखाना नहीं। प्रिय को निठुर, उपेक्षापूर्ण, दुःख और पीड़ा से अनभिज्ञ, सहानुभूति-शून्य कहा और दिखाया गया है पर वह सब प्रेमी की प्रेम-

पिपासा को तीव्रतर करने के ही उद्देश्य से । इन प्रेमियों ने प्रिय को दुष्ट और दुराचारी कहकर अपने प्रेम को उपहासास्पद नहीं बनने दिया है । प्रिय भूलता है, परवाह नहीं करता, उनके दुख को नहीं समझता इस पर स्वच्छन्द कवियों ने उसे उपालम्भ दिया है. प्रिय के इस प्रकार के आचरण में अपना दोष देखा है, भाग्य को कारण ठहराया है पर प्रिय को छोड़ने या भूलने की धमकी नहीं दी है । इस प्रकार स्वच्छन्द कवियों ने प्रेमी की उदात्त मनोवृत्तियों का परिचय दिया है, हृदय की किसी तुच्छता या ओछेपन का नहीं । यह प्रेम-विषमता लगभग सभी कवियों के काव्य में आई है तथा नाना प्रकार की अतवृत्तियों की अभिव्यंजक हुई है । आलम की गोपिका की शिकायत है कि कृष्ण नाता तो आसानी से जोड़ लेते हैं पर निभाने की चिन्ता नहीं करते । दूसरे कवियों की शिकायतें भी यही या ऐसी ही रही हैं कि एक ही गाँव में बस कर हमें दर्शन के लिये तरसाया करते हैं आदि आदि । देखिए आलम की गोपिका क्या कहती है—

भली कीनी भावते जु पाँव धारे याहि खोरि
अनत सिधारे कि बसत याही पुर हौ ।
निकट रहत तुम एती निठुराई गही
अब हम जाने तुम निपट निठुर हौ ॥ (आलम)

प्रिय की यह निठुरता प्रेमी को कैसी दीनता की स्थिति में ला पटकती है । उसकी स्थिति वास्तव में कितनी करुण हो उठी है—

(क) नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय
पायन की धूरि हमें दूरि कै न जानियै । (आलम)
(ख) जा दिन तें तुम चाहे लोग कहैं पीरो काहे
पीरो न जनैयै पल-पल जिय जरियै ।
घूँघट की ओट आँसु घूँटिबौ करत नैना
उमगि उसाँस कौ लौं धीरज यों धरियै ॥ (आलम)
(ग) देखे टक लागै अनदेखे पलकौ न लागै
देखे अनदेखे नैना निमिष रहित हैं ।
सुखी तुम कान्ह हौ जु जान कौ न चिन्ता, हम
देखेहु दुखित अनदेखेहु दुखित हैं ॥ (आलम)

गोपिका की प्रिय विषयक चिन्ता का वार-पार नहीं, उधर प्रिय के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती । ठाकुर की गोपियों का भी अनुभव कुछ कुछ ऐसा ही है । कृष्ण जैसा कुछ कहा करते थे आचरण में वैसे नहीं निकले—

हरि लावो औ चोरो बजानत ते गाढ़े परे गुण और कढ़े जू । (ठाकुर)

गोपियाँ उन्हें क्या समझा करती थीं पर वे निकले कुछ और ही । उन्होंने प्रम का नाता जोड़कर गोपियों को अपने कुटुम्ब से नाता तोड़ने को पहले तो बाध्य कर दिया, अब उनकी परवाह भी नहीं करते, गुलाम की गाजरों का सा हाल कर रक्खा है—

खाई कछू बगराई कछू हरि गोपी गुलाम की गाजरें कीन्हीं । (ठाकुर)

कृष्ण ऐसे निर्मोही और कठोर-हृदय व्यक्ति से प्रेम कर जीवन में जो असफलता

गोपियों को प्राप्त हुई है उसकी पश्चात्ताप से परिपूर्ण कितनी तीव्र व्यंजना इन पंक्तियों में हुई है—

(क) ऊधौ जू दोष तुम्हें न उन्हें हम आपु ही पाँव पै पाथर मारे। (ठाकुर)
(ख) ऊधौ जू दोष तुम्हें न उन्हें हम लीनी है आपने हाथ ही बीछी। (ठाकुर)

कृष्ण से प्रेम क्या किया अपने हाथ से बीछी पकड़ ली है, परिणाम कितना तीक्ष्ण होगा ज़ाहिर ही है। यहाँ प्रेम वैषम्य की कितनी तीव्र व्यंजना है। रसखान के काव्य में आसक्ति और रीझ का प्राधान्य होने के कारण प्रेम की विषमता के लिये अवकाश ही नहीं रहा है फिर भी दो चार छंद ऐसे मिल सकते हैं जिनमें कृष्ण से प्रेम करने का दुष्परिणाम दिखाया गया है—

(क) कान्ह भए बस बाँसुरी के, अब कौन सखी हमको चहिहै।
(ख) काह कहूँ सजनी संग की, रजनी नित बीतें मुकुन्द को हेरी॥
आवन रोज कहैं मन भावन, आवन की न कबौं करी फेरी॥
(ग) लाल जे बाल बिहाल करी, ते बिहाल करी न निहाल करी री। (रसखानि)

और यह प्रेम-विषमता घनआनन्द के काव्य में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। वैषम्य ही घनआनन्द के प्रेम में निखार और रंग लाता है, विविध भावना-भेदों का उद्घाटन करता है तथा चाह में भीगे हुए हृदय का निदर्शन करता है। घनआनन्द के सम्बन्ध में यह तो निर्द्वन्द-भाव से कहा जा सकता है कि विषमता उनके प्रेम भावना की अनन्य विशेषता है। प्रेमी जितना ही आसक्त है और प्रिय के लिये तड़पता है प्रिय उतना ही उपेक्षापूर्ण है। एक तरफ सम्पूर्ण समर्पण है दूसरी तरफ़ छल और धोखा। एक का स्वभाव स्मरण करने का है दूसरे का विस्मरण करने का—'इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि'। एक तड़प रहा है दूसरा इठला रहा है, इस प्रकार प्रेमी और प्रिय की प्रकृति में बड़ा अन्तर है। एक 'निष्काम' है दूसरा 'सकाम', एक 'निरचित' है दूसरा 'सचित'। एक सहर्ष सोता है दूसरा सविषाद जगता है। एक की नींद हराम है दूसरा पैर पसार कर सोता है। एक चैन की चद्रिका का अमृत पीता है दूसरा विषाद के आतप से प्रतप्त रहता है। इस प्रकार प्रिय और प्रेमी का जीवन, उनकी प्रकृति, उनके मनोभाव, आपादतः भिन्न और विषम हैं। यह वैषम्य उनके समग्र जीवन को अनुप्राणित किये हुए है फलतः घनआनन्द ने अपने काव्य में सर्वत्र शत-शत रूपों में इस वैषम्य का चित्रण किया है। यह वैषम्य-भाव घनआनन्द में इतना प्रबल है कि वह उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग हो गया है और उनकी शैली में भी अनायास उतर आया है। घनआनन्द में सघटित यह वैषम्य 'स्टाइल इज़ दि मैन' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। कुछ लोगों ने इसे फारसी शायरी के प्रभाव के रूप में भी देखा है। घनआनन्द स्वच्छन्दधारा में प्रेम की विषमता के प्रबलतम पोषक हैं। यहाँ से भी उनकी पंक्तियाँ उदाहरण के रूप में ली जा सकती हैं—

(क) दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ, चित के करषें हम चित लहौ।
(ख) पहिलें घनआनन्द सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार पगी।
अब लाय वियोग की लाय, बलाय बढ़ाय, बिसास दगानि दगी॥
(ग) क्यों हँसि हेरि हर्यौ हियरा अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
(घ) तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचनि लोचन जात जरे।

(ङ) पहिलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार मझार, दई गहि बाँहि न बोरियै जू ॥

(च) चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनन्दघन
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है ।

इस प्रकार घनआनन्द मे यह प्रीति की विषमता पद पद पर मिलेगी । इनके कवित्त सवैयो का तो सारा वधान प्रेम वैषम्य पर ही आधारित है । प्रिय का आचरण, उसका स्वभाव, उसकी बोली, उसके कर्म, उसकी हँसी, उसका प्रेम, उसका आश्रय, उसका आदान-प्रदान सभी कुछ कुटिलता और विपरीतता से भरा हुआ है । भला ऐसे प्रिय का प्रेमी सुख कैसे पा सकता है । यही कारण है कि घनआनन्द और उनके सहयोगी रीतिमुक्त कवियो मे विरह, पीडा और वेदना का प्राधान्य है । इस व्यापक रूप से प्राप्य गुण प्रेम-वैषम्य के रीतिमुक्त काव्य मे आविर्भाव के कारण की भी सक्षेप मे टोह हो जानी अप्रासगिक न होगी ।

प्रेम उभयपक्षीय होने पर सम तथा एकपक्षीय होने पर विषम कहलाता है । प्राचीन सस्कृत काव्यों मे समप्रेम का विधान है । दृश्य और श्रव्य उभय प्रकार की काव्य परम्परा मे यही बात मिलेगी । वाल्मीकीय रामायण के राम और सीता, कालिदासकृत अभिज्ञान शाकुन्तल के दुष्यत और शकुन्तला तथा बाण विरचित कादम्बरी के कपिजल और कादम्बरी मे सम प्रेम का ही विधान है । वहाँ ऐसा नही है कि एक प्रेम करता है दूसरा उपेक्षा । यह उभयपक्षीय प्रेम विद्यापति के राधा और कृष्ण मे बहुत कुछ अक्षुण्ण है किन्तु सूरदास तक आते-आते उसमे वैषम्य का विधान हो गया । कृष्ण भ्रमर के समान स्वार्थी और कृतघ्नी हो गये, वियोग का इतना बडा पारावार लहराने लगा और भ्रमरगीत जैसे विशद प्रेम-वैषम्य-व्यजक काव्य की सृष्टि हुई । फिर भी सूर तथा सहयोगी कृष्णभक्त कवियो के कृष्ण के हृदय मे राधा और गोपियो के प्रति प्रेमभाव का एकदम तिरोभाव न होने पाया था । रीतिकाल मे आकर रीतिबद्ध काव्य मे यह प्रेम-वैषम्य नायिका के विरह निवेदनो मे और भी बढ-चढ गया तथा रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जैसा ठाकुर, घनआनन्द की रचनाओ के पहले लिए गये उद्धरणो से प्रमाणित होता है । इस प्रकार से रीतिमुक्त कवियों मे पाई जानी वाली इस प्रेम-विषमता के दो स्रोत हो सकते हैं—१ भागवत, २ सूफी तथा फारसी साहित्य । महाभारत मे कृष्ण प्रेम मे वैषम्य नही आने पाया है पर श्रीमद्भागवत मे वर्णित गोपियों और कृष्ण के प्रेम मे विषमता का विधान है । भागवत मे यह वैषम्य प्रेम-लक्षण भक्ति के निदर्शन के कारण आया है । भक्ति मे इस प्रकार की विषमता के लिये अवकाश नही । किन्तु भक्ति मे माधुर्य भाव के सचार के कारण प्रीति-विषमता का विधान अनिवार्य हो जाता है । भागवतकार ने श्रीकृष्ण के मुँह से कहलाया है कि मैं प्रेम करने वालो को भी प्रेम नहीं करता । यह गोपियो के प्रेम मे दृढता लाने के लिये है । गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासलीला का आनन्द लेती रहती हैं, बीच-बीच मे वे अन्तर्धान हो जाते हैं । प्रेमिकाओ की आँखो मे प्रेम की सरिता उमड चलती है । भागवत मे श्रीकृष्ण को आप्तकाम बताया है । उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हैं उन्हे कोई इच्छा नही । सूरदास के भ्रमरगीत मे कृष्ण को निष्ठुर, छली आदि कहे गये हैं वे इन्हीं दोनो कारणो से—एक तो वे भगवान हैं, आप्तकाम और दूसरे

उनके प्रति की जाने वाली भक्ति माधुर्य अथवा कान्ता-भाव की है। यही कारण है कि भागवत मे सम्बन्धित साहित्य मे कृष्ण प्रेम के प्रसग मे प्रेम-वैषम्य का विधान हुआ। सूर तथा उनके समसामयिक कवियों से यह प्रभाव परवर्ती कवियो पर पडता चला गया। विवेचको ने घन-आनन्द आदि स्वच्छन्द प्रेमियों की ऐसी उक्तियों मे —'तुम तो निहकाम, सकाम हमैं। घनआनंद, काम सो काम परयो॥ भागवत के कृष्ण की आप्तकामता और उनके प्रति की गई माधुर्य भक्ति का प्रभाव देखा है'[1]। जो हो, यह तो निर्विवाद ही है कि सूर आदि द्वारा चित्रित गोपीकृष्ण प्रेम-प्रसग ही रीतिकाल के अन्त तो क्या आधुनिक काल के आरम्भ तक इस अपरिहार्य प्रभाव का मूल कारण रहा है। प्रेम-वैषम्य की जो स्वीकृति वहाँ भागवत के प्रभाववश थी वह परम्परित रूप मे घनानन्दादि स्वच्छन्द प्रेमियों द्वारा गृहीत हुई[2]। किन्तु साथ ही साथ एक दूसरा और सम्भवत तीव्रतर प्रभाव इन स्वच्छन्द-प्रेम की तरग वाले कवियो पर और पड रहा था—वह था सूफी कवियो का, फारसी कविता का प्रभाव जहाँ इश्क की व्यजना वैषम्य के बिना सभव ही न थी। बोधा, आलम, रसखान, घनआनन्द सभी कवि फारसी की शायरी तथा उसकी परम्परा से वाकिफ थे, इनकी भाषा और जगह इनकी शैली सबूत के रूप मे पेश की जा सकती है। भाषा शैली तो अलग छोडिए इनके अनेकानेक ग्रन्थों के नाम ही इनकी फारसी की खासी जानकारी के प्रमाण हैं उदाहरण के लिए बोधा कृत 'इश्कनामा', घनआनन्द कृत 'इश्कलता' आदि। ब्रजभाषा के साथ ही साथ मध्यकाल मे उर्दू फारसी की शायरी की परम्परा मुगल दरबारो मे राव-उमरावो मे तथा देहली और अवध ऐसे केन्द्रो मे चल रही थी। उनकी नाजुक खयालो और अतिशयोक्तिपरायणता रीतिकालीन काव्य पर अपना अमिट छाप छोड गई है। बिहारी, रसलीन, रसनिधि, 'इश्कचमन' के रचयिता नागरीदास आदि पर यह प्रभाव अचूक रूप से देखा जा सकता है। यही बात आलम, बोधा, घनआनन्द, रसखान आदि के विषय मे भी समझनी चाहिए। इन कवियो पर सूफी प्रभाव पडा यह निर्विवाद है। इश्क मजाजी से इश्क हकीकी की प्राप्ति के आदर्श, माधवानल कामकदला आदि आख्यान तथा स्वच्छन्द प्रेमियों की प्रेम-पीर सूफी प्रभाव के प्रमाण हैं। उधर फारसी-उर्दू शायरी मे जो प्रेम-विषमता दिखाई जाती है उसकी बडी ही लम्बी परम्परा है जो आज भी चली चल रही है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है कि स्वच्छन्द काव्य मे प्राप्य प्रेम-विषमता श्रीमद्भागवत तथा कृष्ण भक्तो के काव्य के प्रभावस्वरूप उतनी नहीं जितनी समसामयिक फारसी और उर्दू की शायरी के प्रभाव के कारण। कृष्ण-भक्ति मे प्रेम की विषमता का विधान कृष्णभक्ति या कृष्ण प्रेम को विरह और अप्राप्ति की विषमता की आंच मे परिपक्व करने के विचार से किया गया है, कृष्ण की कठोरता दिखलाना वहाँ उसका उद्देश्य नहीं किन्तु स्वच्छन्द कवियो ने प्रेम-वैषम्य को सिद्धान्त रूप मे ही स्वीकार कर लिया जान पडता है जो प्रेम-वर्णन की फारसी पद्धति के अनुसरण का परिणाम है जहाँ प्रेम एक ही ओर जोर मारता है। आशिक प्रेम मे विकल होता है, तडपता है, माशूक खामोशी धारण किए रहता है, एक बडी सीमा तक लापरवाही या उपेक्षाभाव भी दिखलाता है। यह

---

[1] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : डा० मनोहरलाल गौड, पृ० ३४६-३४७।

[2] घनआनन्द ग्रन्थावली : स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : वाङ्मुख, पृ० ३६-३७।

प्रेम विषमता मध्यकाल के कितने ही कवियों मे देखी जा सकती है।

वियोग की प्रधानता

वियोग का प्राधान्य इन स्वच्छन्द कवियों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रेम का निखार विरह मे ही होता है। विरह मे ही प्रेम रग लाता है। विरही ही अनन्य प्रेम का पुजारी होता है। प्रेम विरह मे ही अपनी पराकाष्ठा को पहुँचता है। इस सिद्धान्त को स्वच्छन्द धारा के कवियों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। इन कवियों के लिए प्रेम ही जीवन था फलत विरह उनका अविच्छेद्य अग और इसलिए विरह का चित्रण उन्होंने विशेष अभिनिवेश से किया है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों मे यह विरह असाधारण विस्तार मे वर्णित है। रसखान और द्विजदेव म यह अपेक्षाकृत कम है, आलम और ठाकुर मे विशेष तथा बोधा और घनआनन्द मे तो असाधारण रूप से अधिक। अन्तिम दो कवियों के काव्य से यदि विरह बहिर्गत कर दिया जाय तो फिर उसके काव्य मे देखने लायक कुछ रह जायगा इसमे सन्देह है। हमारे कहने का आशय यह है कि स्वच्छन्द कवियो मे वियोग भावना की प्रधानता या अतिशयता है। यह अतिशयता दो कारणो से है। एक तो यह कि इनका प्रेम इनके अन्त करण से निकला हुआ आवेग है, रीतिबद्धों की तरह आरोपित नही। दूसरे इनमे से प्रत्येक ने स्वानुभव द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त कर लिया था कि विरह ही सच्चा प्रेम है। जिसने विरह-व्यथा का अनुभव नही किया वह प्रेम पथ का सच्चा पथिक नही। हृदय और बुद्धि दोनो से वे इसी निश्चय पर पहुँचे थे। इनमे से प्रत्येक के निजी जीवन मे जिस प्रेम का दीपक जला वह कालान्तर मे बुझ गया। आगत अन्धकार मे पुराना प्रकाश फिर मिला या नही और यदि मिला तो किस रूप मे यह तो हर एक के जीवन की व्यक्तिगत बात है और इसी कारण उपलब्धि के भिन्न-भिन्न रूप मिलेंगे पर इतना सच है कि विरह सबने झेला, उसकी आँच मे सब तपे और इसीलिए शृगारकाल म इन वियोग-भोक्ताओं और अनुभावकों का काव्य प्रेम की सच्ची कांति से दीप्त है। विरह का तपन जिसने जितना सहा है उसका काव्य उतना ही उन्नत हुआ है। इस काल के कवियों की परखने के लिए मैं साहसपूर्वक यह कसौटी आपके सामने रखना चाहता हूँ और मुझे इस दृष्टि से घनआनन्द और बोधा श्रेष्ठतर लगते हैं। विरह की तडप उनमे जितनी है औरो मे नही इसीलिए उनके काव्यों मे जो भगिमा और प्रभाव की तीव्रता है वह औरो मे उतनी नही। मैं रसखान, आलम, ठाकुर और द्विजदेव के महत्व को कम नही कर रहा। लक्ष्य मात्र इतना ही दिखाना है कि इस दृष्टि विशेष से देखने पर इनकी अपेक्षा बोधा और घनआनन्द मे अधिक रमणीयता है।

यह कोई सयोग की बात नही कि इन कवियों मे लगभग समान रूप से विरह का आधिक्य मिलता है। यह उनकी जीवनार्जित धारणा है, सच्चे प्रेम स उत्पन्न निष्ठा है जो विश्व के महाकवियो द्वारा स्वीकृत निष्ठा के मेल मे है। कविवर शेली ने कहा था कि हमारे मधुरतम गीत वे हैं जिनमे करुणतम भावनाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं, और महाकवि भवभूति ने भी दु खोद्रेक-मूलक वृत्ति को काव्य की मूल वृत्ति माना था। ये कवि भी मानते थे कि सच्चे प्रेमी की मूल स्थिति सयोग नही अपितु वियोग ही है। सयोग समस्त कामनाओं की परिसमाप्ति है। वियोग ही चिरन्तन कामना है। जीवन का आनन्द तृप्ति मे नही, तृषा मे है। जितनी तृषातुरता होगी प्रेम उतना ही दिव्य, भव्य और परिपक्व होगा। प्रेम के इसी

आदर्श को गोस्वामी तुलसीदास ने भी स्वीकार किया था। उनका मत तो यह था कि चातक जो वर्ष भर में सिर्फ एक बार स्वाति नक्षत्र का एक बूंद जल पीकर तृप्त हो जाता है उसे वह भी न पीना चाहिए क्योंकि प्रेम की तृषा का बढना ही भला, तृप्ति पाकर तृषा के कम होने मे प्रेमी की मान मर्यादा कम होती है—

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियें न पानि।
प्रेम-तृषा बाढति भली घटें घटैगी कानि॥ (तुलसी)

सिद्धान्त रूप मे रीतिमुक्त बहुत कुछ इसी ढग से सोचा करते थे। अपने जीवन के विचारशील क्षणो मे जब उद्वेग का ज्वार शात हो जाया करता था वे अपनी विरह को उद्विग्न कर देने वाली स्थिति से समझौता कर सके थे—

जाहि जो जाके हितू ने दई वह छोड़े बनें नहिं ओडने ग्रावत। (बोधा)

प्रिय का दिया हुआ विरह उन्हे शिरोधार्य था। महद् सुख प्राप्त करने के लिए महद् दुख झेलना ही पडता है। यह ससार का नियम है—

चहिये सुख तो लहिये दुख को इग बार पयोनिधि मे बहिये। (बोधा)

घनआनन्द की विरहिणी भी अपनी विरह व्यथा-व्यग्र स्थिति मे पूर्णत सतुष्ट है जिस विरह मे पडकर *सोना ऐसा सोना नही और न जागने ऐसा जागना*। ससार का कौन सा सन्ताप है जो विरह को नही झेलना पडता फिर भी वह विरहिणी अपने मन को समझती है —

तेरे बॉटे ग्रायो है ग्रंगारनि पै लोटिवो। (घनग्रानन्द)

अपनी दुरवस्था का दोष वह अपने प्रिय के मत्थे नही मढती, यह तो भाग्य की बात है—

इत बांट परी सुधि, रावरे भूलनि, कैसे उराहनो दीजियै जू। (घनग्रानन्द)

प्रेम के लिए ये लोग बडे से बडा त्याग करने को तैयार हैं—

जो बिशेष जग माहि एक वेर मरने परै।
तो हित तजिये नाहिं इश्क सहित मरिबो भलो॥ (बोधा)

व्यथा और पीडा अपनी निरन्तरता के कारण इन प्रेमियों के जीवन का एक स्थायी तत्व हो गई है। सुख की कामना मे जिधर चलते हैं उधर सुख चाहे न मिले दुःख को इनसे इतना लगाव हो गया है कि वह अवश्य मिलेगा—

दिशि जेहि चल्यो सुख चित्त चाय।
तित दरद सनेही मिलत आय॥ (बोधा)

पीडा को इनसे स्नेह हो गया है, इन्हें पीडा से। ऐसी प्यारी पीडा को भला ये क्योंकर छोडने लगे। यह वियोग, यह व्यथा इनके जीवन मे इस कदर घुल मिल गई थी कि वह इन्हे छोडती न थी। ये भी उसे छोडकर सुखी न रह सकते थे। इसीलिए इन्हें अपनी व्यथा और तडपन पर बहुत गर्व भी है। ससार के प्रसिद्ध प्रेमियो मीन और शलभ के प्रेम का ये तिरस्कार करते हैं क्योंकि इन प्रेमियो मे वह साहस और सहिष्णुता कहाँ जो सच्चे प्रेमी मे होनी चाहिए। ये प्रेम की रीति नही समझते, प्रेम मे जलना होता है

और तड़पना होता है और जलते-तड़पते जीना होता है। ये प्रेमी तो कायर हैं और असहनीय हैं जो ज्वाला और तड़पन से भयभीत हो अपने प्राण ही विसर्जित कर देते हैं—

(क) हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानें।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानें॥
(ख) मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै॥ (घनआनन्द)

मृत्यु का अर्थ है दुखों की समाप्ति। तात्पर्य यह हुआ कि मीन और पतंग बिछुड़न की व्यथा न सह सकने के कारण मृत्यु का वरण कर लेते हैं पर घनआनन्द और बोधा सरीखे प्रेमी साहसपूर्वक जीवित रहते हैं और प्रणय की पीड़ा सहते हैं। ऐसी पीड़ा को बरदाश्त करते हैं, ऐसी वेदना और तड़प सहते हैं जिसे देखकर प्रिय का कठोर हृदय भी पिघल उठता है। अपनी वेदना सहने की इस शक्ति पर इन्हें नाज भी कम नहीं—

आसा गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे घन-सिंधु में न बूड़त सकायहौं।
दुख दव हिय जारि अंतर उदेग आँच,
रोम रोम त्रासनि निरन्तर तचायहौं॥
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसे घनआनन्द गही है टेक मन माँहि,
एरे निरदई! तोहि दया उपजायहौं॥ (घनआनन्द)

प्रेम और पीर की महत्ता व्यथा से सहन करने में है उससे डरकर मृत्यु का वरण करने में नहीं।

सूफी शायरी के प्रेम की पीर तथा फारसी कवियों की वेदना विवृति का प्रभाव

इन कवियों का दृष्टिकोण ऐसा पीड़ा-परक था यही कारण है कि प्रेम की पीर इनके काव्यों में उमड़ पड़ी है। पहले भी कहा जा चुका है कि स्वच्छन्द कवियों की प्रेम-व्यथा सूफियों के 'प्रेम की पीर' का प्रभाव है तथा फारसी शायरी की उस परम्परा का भी जो समसामयिक रूप से उर्दू भाषा की शायरी में भी चल रही थी। बोधा पर तो यह प्रभाव बहुत ही स्पष्ट है, घनआनन्द पर भी है इसमें सन्देह नहीं। इन प्रभावों की चर्चा भी पहले की जा चुकी है कि घनआनन्द और साथ ही साथ रसखान ने इस प्रभाव को बड़े निजी ढंग से अपनाया है, हाँ बोधा ने उसे जरूर बिना आत्मसात किये हुए ले लिया है। उन्होंने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की बात का ढिंढोरा तो बार बार पीटा है—

(क) इश्क मजाजी में जहाँ इश्क हकीकी खूब।
(ख) इश्क हकीकी है फुर माया। बिना मजाजी किसी न पाया॥
(ग) सुन सुमान यह इश्क मजाजी। जो हद एक इश्क दिलराजी॥ (बोधा)

परन्तु प्रेम पथ की जो गम्भीरता है उसे बोधा सँभाल नहीं पाये हैं। उनकी प्रेम वर्णना शुद्ध लौकिक है। वासना-प्रवणता भी उनके समान औरों में नहीं। वे तो मजाजी

इश्क (लौकिक प्रेम) में ही अटक कर रह गये, हकीकी इश्क तक पहुँच नहीं सके। रसखान और घनआनन्द जरूर उस उच्चतर सोपान पर पहुँच गये थे जिसे अलौकिक प्रेम या इश्क हकीकी कहा जा सकता है पर उन्होंने इसकी डुग्गी न पीटी थी। इतनी स्पष्टता से इस सूफी आदर्श का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। उनका यह भाव कृष्ण प्रेम या कृष्णभक्ति के आवरण में छिप गया है, बाहरी या विदेशी प्रभाव आत्मसात होकर काव्य में आया है। बोधा सूफी प्रेमादर्शों को अपना निजी रंग न दे सके। स्वच्छन्द काव्यधारा के प्रतिष्ठित समीक्षकों पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र और डाक्टर मनोहरलाल गौड़ ने भी स्वच्छन्द कवियों में वियोग की प्रधानता का कारण सूफी काव्यधारा और समसामयिक फारसी काव्यधारा का प्रभाव माना है। मिश्रजी कहते हैं कि स्वच्छन्द कवियों में सामान्यतः तो लौकिक प्रेम का वर्णन हुआ है जो फारसी काव्य की वेदना-विवृति से प्रभावित है तथा जहां अलौकिक प्रणय भावना का वर्णन हुआ है वहाँ वह सूफियों के प्रेम की पीर से। प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। स्वच्छन्द कवियों ने भी प्रेम की पीर को सिद्धान्त रूप में ग्रहण किया है फलतः यह 'प्रेम की पीर' सूफियों से ही आई है। सूफियों का विरह वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी के पदमावत में यह प्रेम की पीर प्रतिपादित हुई है। सूफी सिद्धान्त के अनुसार सन्त या साधक या प्रेमी सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, समग्र सृष्टि को विरह के बाणों से विद्ध मानता है, समूची सृष्टि परमात्मा के विरह में उसे पीड़ित प्रतीत होती है। सूफियों की यही विरह भावना और प्रेम की पीर स्वच्छन्द कवियों ने फारसी काव्य की वेदना की विवृत्ति के साथ ग्रहण किया है। यही कारण है कि उनके काव्य में भी वियोग का आधिक्य आ गया है[१]। डा० मनोहरलाल गौड़ ने भी स्वच्छद कवियों पर सूफी प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है कि सूफियों का विरह मानवमात्र के चित्त में ही सीमित न रहकर समस्त प्रकृति में व्याप्त हो जाता है। दूसरे उस विरह में रहस्य भावना का अंश रहता है। घनआनन्द के विरह में वह व्याप्ति तो नहीं है पर रहस्य भावना की झलक कहीं-कहीं अवश्य आ गई है जो सूफियों से मिलती जुलती है। 'सूफी और फारसी कवि दोनों ही वियोग को प्रमुखता देते हैं। सूफियों का वियोग तो उनकी निष्ठा है। यह विरह शाश्वत है। कभी-कभी चेतनावस्था में क्षण भर के लिये संयोग सुख मिलता है। फारसी के कवि भी प्रेम की एकनिष्ठता और अनन्यता दिखाने के लिए प्रिय को कठोर तथा निर्मोह दिखाते हैं। इसलिये विरह की प्रधानता आ जाती है। स्वच्छन्द धारा के कवियों ने विशेषतः घनआनंद ने फारसी काव्य पद्धति से प्रिय की कठोरता और सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली है। फलतः उनकी रचनाओं में वियोग का प्राधान्य स्वाभाविक है।'[२] इस प्रकार स्वच्छन्द कवियों का प्रेम वर्णन निश्चय ही एक सीमा तक सूफी कवियों की प्रेम भावना से प्रभावित है। सूफी कवियों द्वारा वर्णित प्रेम की पीर का प्रभाव बड़ा व्यापक था। वह कबीर आदि निर्गुण ज्ञानमार्गियों और कृष्णभक्त कवियों तक पर पड़ा। नागरीदास (सावंतसिंह), कुन्दनशाह आदि में तो यह प्रेम की पीर इस रूप में आई है कि उसका विदेशीपन साफ झलकता है।[३]

---

१ घनआनन्द ग्रन्थावली, वाङ्मुख, पृ० ४०-४१।

२ घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : डा० मनोहरलाल गौड़, पृ० २६१।

३ घनआनन्द ग्रंथावली . सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाङ्मुख, पृ० १४।

सूफियों की प्रेम भावना की मूल विशेषता है लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुँचना, इश्क मजाजी द्वारा इश्क हकीकी की उपलब्धि। प्रेमगत यह सूफी सिद्धान्त घनआनन्द, रसखान और बोधा में विशेष मिलेगा। घनआनन्द और रसखान का जीवन-गत लौकिक प्रेम उत्कर्ष प्राप्त कर अलौकिक प्रेम में पर्यवसित हो गया था। सूफियों का यह प्रेम सिद्धान्त बोधा के जीवन में तो घटित नहीं हुआ किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित अवश्य हुआ है—'इश्क मजाजी में जहाँ इश्क हकीकी खूब।' बोधा की भाषा शैली और भावना पर अवश्य यह प्रभाव एक सीमा तक स्पष्ट है। प्रेम के उक्त सिद्धान्त को रसखान और घनआनन्द ने बहुत ही निजी ढंग से कहा है। रसखान ने कहा है—यह बात गाँठ बाँध लेने की है कि संसार में प्रेम के बिना आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता, प्रेम चाहे लौकिक हो चाहे अलौकिक—

आनन्द अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै ब्रह्मानन्द बखान॥

इसी आशय को घनानंद यों व्यक्त करते हैं—

प्रेम को महोदधि अपार हेरिकै, बिचार, बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस है बिबस अवगाहैं दोऊ, नेहि हरि राधा जिन्हें देखें सरसायौ है॥
ताकी कोऊ तरल तरंग संग छूट्यौ कन, पूरि लोकलोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत, ऐसे मथि मन पै सरस ठहरायौ है॥

प्रेम के अपार महासागर में राधा और कृष्ण अहर्निश एक रस क्रीडा करते हैं। उनके प्रेमानन्द की एक चंचल लहर से समग्र विश्व प्रेम से परिपूर्ण हो रहा है और उसी प्रेम तरंग के एक कण से घनानन्द के हृदय में सुजान के प्रति इतना प्रगाढ अनुराग आ गया है। इस प्रकार घनआनन्द और सुजान का लौकिक या मजाजी प्रेम राधा और कृष्ण के अलौकिक या हकीकी प्रेम का एक कण मात्र है। वही सूफी प्रेम तत्त्व है पर कितने आत्मसात रूप में अभिव्यक्त हुआ है।[1]

दूसरा प्रभाव फारसी काव्य की वेदनाविवृति का है। घनआनन्द ने 'इश्कलता', 'वियोग बेलि' आदि फारसी की शैली पर ही लिखी है। उपर्युक्त विवेचन से अब यह बात निश्चित हो जाती है कि स्वच्छन्द कवि सूफी प्रेम-पीर और फारसी कवियों की विरह व्यंजना प्रणाली से प्रभावित थे। इन कवियों पर फारसी भाषा शैली का प्रभाव दिखाने के लिये सम्प्रति दो उदाहरण काफी हैं—

(क) नशा कभी न खाते हैं। अयें हम इश्क मद माते हैं॥
गये थे बाग के ताईं। उतै वे छोकरी आईं॥
उन्हीं जादू कछू कीन्हा। हमारा दिल कैद कर लीन्हा॥
अचानक भया भटभेरा। उन्होंने चश्मतुक फेरा॥
कलेजा छेद कर ज्यादा। भया मन मारू मे मादा॥
इश्क दिलदार सों लागा। हमने दिलदर्द अनुरागा॥

(बोधा : विरहवारीश)

---

[1] घनआनन्द ग्रंथावली : वाङ्मुख पृ० १४-१५

(ख) यारां गोकुलचन्द सलोने दिया चस्मदा धक्का है।
तोरि दिया घनआनन्द जानी हुस्न शराबी चसका है॥
सैन-कटारी आशिक-उर पर तें यारां मुझ मारी है।
लहर-लहर ब्रजचन्द यार दी जिद मसताई प्यारी है॥

(घनआनन्द : इश्कलता)

विरह-वर्णन रीतिबद्ध कवियों से भिन्न

प्रेम के क्षेत्र में वियोग सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणा के कारण स्वच्छन्द कवियों का विरह वर्णन रीतिबद्ध कवियो से भिन्न है। इस भिन्नता का पहला कारण तो आन्तरिकता या अनुभूति-प्रवणता ही है। रीतिमुक्त कवि जहाँ अपनी व्यथा का निवेदन करते हैं वहाँ रीतिबद्ध कवि पराई (गोपी की, नायिका की, कृष्ण की, राधा आदि की) व्यथा का निवेदन करते हैं। वह पीड़ा जिसे कवि अपने ही हृदय में अनुभव करता है उस पीड़ा से कहीं तीव्र हुआ करती है जिसका उदय दूसरे के हृदय में होता है किन्तु कल्पना और सहानुभूति द्वारा कवि जिसे अपने मन मे उतारता है। यही अन्तर इन दोनों प्रकार की व्यथाओं की अभिव्यक्ति मे भी मिलेगा। रीतिबद्ध कवियों की व्यथा आरोपित हुआ करती थी, रीतिमुक्तों की स्वानुभूत। दूसरी बात यह है कि रीतिमुक्त कवि अपनी व्यथा का निवेदन स्वयं किया करते थे जब कि रीतिबद्ध कवि की कल्पित व्यथा का निवेदन अधिकतर सखी, सखा या दूती आदि किया करते थे। इसके कारण भी अभिव्यक्ति अथवा काव्य की तीव्रता में बड़ा अन्तर आ जाया करता है। विरह व्यथा के पारस्परिक अथवा परम्परा मुक्त निवेदनो को आमने-सामने रखकर यह अन्तर सहज ही देखा जा सकता है। बोधा और घनआनन्द के विरह के उद्‌गारो की आन्तरिक टीस और व्यथा की ममस्पर्शिता बिहारी, देव, मतिराम और पद्‌माकर के दूतियो के वचनो मे नही ढूँढी जा सकती। मन, प्राण और आत्मा की वह बेचैनी जो घनआनन्द के इस सवैये में व्यक्त हुई है रीतिबद्ध कलाकारों के बस की बात नही—

अन्तर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।

रीतिबद्ध कवियो के नायक नायिका कुटुम्ब और गांव की मर्यादाओं में बँधे थे इसलिए उनके हर्ष और विषाद लुका-छिपी करते रहते थे। स्वच्छन्द कवियों ने खुद प्रेम किया था और विरह की वेदना सही थी। उन्हें किन्हीं मर्यादाओं की परवाह न थी। उनका जीवन ही प्रेम के लिए उत्सर्ग किया जा चुका था फलतः मनोवेगो का अकुण्ठ प्रवाह उनकी लेखनी से सम्भव हुआ है इसी कारण उनके विरह की तीव्रता और कवि नहीं पा सके हैं। बोधा और घनआनन्द की विरह व्यंजना में जितनी और जैसी व्यथा है उनके लिए उनका काव्य ही प्रमाण है—

(क) अन्तर सँदेसो मिलै मेल मानि लीजत हौ,
ताहू को अँदेसो अब रहयौ उर पूरि कै।
उठी है उदेग आगि जीजै कौन ध्यान लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी बिना चूरि कै।
निपट कठोर कियौ हियौ मोह मेटि दियौ,

जान प्यारे नेरे जाय मारी कित दूरि कै।
तरफौ बिसूरि कै विया न टरै मूरि कै,
उडायहौं सरीरै घनआनन्द यों धूरि कै॥

(ख) तपति बुझावन आनदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हिये लगियै रहति है।

(ग) अंतर आंच उसांस तचै अति अग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूं कहूं सुधरै नहिं थ्यावस॥

(घ) रोवत बाल विरह मदमाती। ताके रोवन विरह न छाती॥
अब कहु सखी करौ मैं कैसी। भई दशा माधौ की ऐसी॥
गिरि ते गिरौं भरौं विष खाई। तनु तजि मिलौं माधवै जाई॥
मरौं मिटै दुख मेरो प्यारी। कैसुहु प्राण कढ़ैं इहि बारी॥

(विरहवारीश : बोधा)

(ङ) बोधा कवि भवन में कैसेहू रह्यौ न जाय,
बिरह दवागि ते न जायो जाय बन को।
शरद निशा मे चद निश्चर ऐसो ताको,
चांदनी चुरैल सो चबाए लेत तन को॥ (बोधा)

(च) बरुनीन में नैन झुकै उझकै मनो खजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे॥
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिए निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे॥ (ठाकुर)

विरह वर्णन सम्बन्धी तीसरी विशेषता जो इन कवियों मे जगह-जगह पाई जाती है वह यह कि अनेक बार इन्होने अपनी व्यथा को मौन मे छिपा रखा है। कभी-कभी खामोशी भी बडी व्यंजक हुआ करती है। इन कवियों ने भी अनेक बार कुछ न कहकर बहुत कुछ कह दिया है। उस मौन मे भी इनकी पीडा फूटकर ही रही है। इनके हृदय मे बार-बार यह बात आई है कि अपने मन की व्यथा मन मे ही रखी जाय। बार-बार व्यथा इनके मन ही मन घुटती रही है और ये व्यथा मे घुटते रहे हैं—

(क) गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करी काहू सो का कहिए। (बोधा)
(ख) आवत है मुख लौं बढि कै पुनि पीर रहै हिय ही में समाइ कै। (बोधा)
(ग) मुंदते ही बनै कहते न बनै तन में यह पीर पिरैवो करै। (बोधा)
(घ) पहिचानै हरि कौन मो से अनपहचान कौं।
त्यौं पुकार मधि मौन, कृपा-कान मधि नैन ज्यौं॥ (घनआनन्द)

चौथी विशेषता इनके वियोग वर्णन मे ऊहात्मकता या दूरारूढ कल्पना का अभाव है। इनकी अभिव्यक्ति अत प्रेरित रही है इसी कारण भावुकता से असपृक्त उक्तियों का विधान इनमे बहुत कम मिलता है। रीतिकारों की सी विरह सम्बन्धिनी उपहासास्पद उक्तियाँ इन कवियों मे अपवादस्वरूप ही मिलेंगी। स्वच्छन्द काव्य के विरहियों के गाँव मे माघ महीने की रात्रि मे विरह ताप-जन्य ऐसी लुवें नही चलतीं जिसमे सखियों को गीले कपड़े

ओढकर नायिका के पास जाना पड़ता हो। ये विरही ऐसी आहें नहीं भरते जिससे इनका विरह-दुर्बल गात्र सांस लेने और छोड़ने में छः-सात हाथ पीछे या आगे हट-बढ़ जाय। इनका देह विरह में ऐसी भट्ठी नहीं बनने पाया है जिनके ऊपर गुलाल की भरी शीशी उलट दी जाने पर भी मात्र भाप के ही रूप में दिखाई देती है तथा जुगनुओं को देखकर इन विरहियों को अग्नि वर्षा का भ्रम नहीं होता। विरह ताप की ऐसी नाप-जोख ये कवि नहीं कर सके क्योंकि इनका विरह सच्चा था, निजी था, मुक्ति भोगी का वचन था। आलम की निम्न-लिखित युक्ति अथवा ऐसी कुछ उक्तियाँ स्वच्छन्द धारा की वियोग-मूलक काव्य-राशि में अप-वाद स्वरूप ही मिलेंगी—

> अब घन घर घर आंगन है जाति आगि,
> आंगन मे चांदु चिनगारी चारि भारि लै।
> सांझ भई मौन संझवाती क्यों न देति है री,
> छाती सों छुवाय दिया बाती आनि बारि लै॥

आलम की यह युक्ति कि सांझ हो गई है दिया जलाने के लिये आग नहीं मिलती इस पर विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि देख मेरा ये हृदय विरह के कारण जल रहा है, दिया बत्ती ले आ और मेरी छाती से इसे छुआकर जला ले। उक्ति चमत्कार की यह कल्पना समसामयिक रीतिबद्ध काव्य और फारसी उर्दू की अतिशयोक्ति प्रधान शैली के प्रभावस्वरूप की गई जान पड़ती है। स्वच्छन्द कवियों में ऐसी भाव-विच्छिन्न कल्पना बहुत कम मिलेगी। उसका कारण यही है कि इन कवियों ने हृदय की सच्ची व्यथा को मुखर किया है।

आभ्यान्तरिक और हृदय प्रसूत होने के कारण इनके विरह में रीतिग्रन्थों में वर्णित विरहिणियों का सा शास्त्रीय विरह वर्णन नहीं है अर्थात् उसमें विरह के नाना भेदोपभेदों (अभि-लाषा हेतुक, ईर्ष्या हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक, शाप हेतुक और मान हेतुक) तथा विभिन्न स्थितियों और कामदशाओं (अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृति) का बंधा बंधाया स्वरूप निदर्शन नहीं है। ये भेद और कामदशाएँ इनके काव्य में ढूंढकर निकाली जा सकती हैं किन्तु शास्त्रोक्त योजनानुसार ये स्वच्छन्द कवि चले नहीं हैं, चल सकते नहीं हैं, चल सकते नहीं थे। ऐसा हो भी कैसे सकता था जब ये अतर्व्यथा के आवेग में रचना किया करते थे।

इनकी वियोग व्यथा की व्याप्ति और आन्तरिकता का तो पूछना ही क्या। जीवन का कोई क्षण ऐसा न होता था जब बेचैनी दूर होती हो। स्वच्छन्द धारा के श्रेष्ठतम प्रति-निधि घनआनन्द की तो कम से कम यही स्थिति थी, बोधा का विरह भी बहुत कुछ इसी कोटि का था। विरही घनआनन्द को तो रात-दिन चैन न थी—

> रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये, भाग
> आपने ही ऐसे दोष काहि धौं लगाइयै।

प्रिय की मनमोहिनी मूर्ति अपनी नाना छवियों के साथ रात-दिन सामने खड़ी रहती है—'निसि द्यौस खरी उर मांझ अरी छवि रंग भरी मुरि चाहनि की।' वह छवि मन की आँखों के सामने तो सतत विद्यमान रहती थी पर तन की आँखें उसके लिए सदा तरसती

रहती थी, उसकी एक झलक भी नसीब न होती थी—'घनआनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनि हू न कहूँ दरसैं।' इस प्रकार इनकी वियोग व्यथा विरह में तो सताती ही रहती थी संयोग में भी पीछा न छोड़ती थी—

भोर तें सांझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारन ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति॥
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आंसुनि औसर गारति।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आंखिन के उर आरति॥

वियोग तो वियोग ही था उसका खटका संयोग में भी लगा रहता था कि कहीं वियोग न हो जाय—

अनोखी हिलग दैया बिछुर्‌यो पै मिल्यौ चाहै,
मिले हू पै मारै जारै खरक बिछोह की।

औरों के लिए भले ही अचरज की बात हो पर सच तो यह था कि इनका हृदय वियोग सहते-सहते विरह का इतना अभ्यस्त हो चला था कि संयोग की सुखद स्थिति में भी चैन नहीं मिलने पाता था—

(क) कहा कहिए सजनी रजनीगति, चंद कढ़ै कि जियै गहि काढ़ै।
अमीनिधि पैं विष-सार स्रवैं, हिम जोति जगाय कै अगनि डाढ़ै॥
सु या पति संग न जानति है घनआनन्द जानि वियोग की गाढ़ै।
वियोग में बैरिनि बाढनि जैसी, कछून घटै, जु सजोग हू बाढ़ै॥

(ख) यह कै सजोग जानि परै जु वियोग न क्यो हू बिछोहत है।

ऐसी दारुण स्थिति थी कि संयोग में भी वियोग से वियोग नहीं होने पाता था—

दिशि जेहि चर्‌यौ सुख चित्त चाय। तित दरद सनेही मिलत आय॥ (बोधा)

विरह की आंच में तपकर इन प्रेमियों का प्रेम पवित्र हो गया था। इनकी वृत्तियाँ उदात्त हो गई थीं, अनेक कवि तो भगवदोन्मुख भी हो चले थे। मन की वासनाओं का संस्कार हो चला था। वियोग इन्हें प्रेम के उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठापना में सहायक हो सका था। वासना और कामुकता के निर्बन्ध उद्गार केवल बोधा में मिलेंगे, कहीं कहीं आलम में, शेष कवियों की कृतियाँ तो पवित्र प्रेम की व्यंजनाएँ हैं। उन्होंने शरीर सुख की कामना नहीं की। मात्र मिलन और सान्निध्य का अभिलाष व्यक्त किया है, विघट घटनाओं की स्मृति की है प्रिय के लाख-लाख गुणों का स्मरण और उसकी साम्प्रतिक अवहेलना पर उपालम्भ तथा लक्षविध आत्म निवेदन किया है। प्रणय की ऐसी दिव्य और तीव्र अनुभूतियों को उन्होंने वासना से पंकिल नहीं होने दिया है। प्रेम की व्यथा जरूर व्यक्त की है पर वासना से मुक्त और दिव्य प्रेम की आभा से मंडित—

(क) जब ते सुजान प्रान प्यारे पुतरीनि तारे,
आंखिन बसे हो सब सूनो जग जोहिये।

(ख) जब तें निहारे इन आंखिन सुजान प्यारे,
तब तें गहो है उर आन देखिबे की आन।

रस भीजे बैननि सुनाय कै रचे हैं तहाँ,
मधु-मकरंद-सुधा नावो न सुनत कान ॥
प्रानप्यारो घनआनद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिवासर करत गान ।
अंग अंग मेरे उनही के संग रंग रँगे,
मन सिंघासन पै विराजै तिन ही को ध्यान ॥

इनके विरह वर्णनो मे आसक्ति की तीव्रता है इसी से इनका प्रणय इतना प्रगाढ है। एक ओर तो वासना का तिरस्कार दूसरी ओर रीझ या आसक्ति का आतिशय्य। इसी रीझ के हाथ ये बिके हुए हैं—'दौरी फिरै न रहै घनआनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै।' आसक्ति जितनी तीव्र होगी अप्राप्ति मे प्रिय प्राप्ति की लालसा उतनी ही बलवती। यही कारण है कि ये कवि विरह का आत्यंतिक चित्रण कर सके हैं। इनकी आसक्ति और तज्जन्य विरह कोरी बुद्धि की उपज न थी, वह सब इनके हृदय द्वारा अनुभूत थी। इसी से इनकी अभिव्यक्तियाँ भी इतनी मार्मिक हो सकी हैं, उनमे जो सदलता है वह इसी हार्दिकता की लपेट के कारण। इन कवियो की व्यजना शैली मे भी जो वैशिष्ट्य है वह इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण, प्रणय भावना की आन्तरिकता के कारण। इसी विरह प्रसग में दो एक और बातें भी प्रासगिक रूप से निवेदनीय हैं। एक तो यह कि इन कवियों ने मात्र नारी के विरह का ही चित्रण नही किया है, पुरुष के विरह का भी वर्णन किया है जैसा रीतिबद्ध काव्य मे कम मिलता है, संभव है यह सूफी प्रभाव हो। बोधा ने माधवानल कामकन्दला में माधव का विरह स्थान-स्थान पर विस्तारपूर्वक दिखलाया है। यही बात आलम के भी आख्यान में है और गोपी-घनश्याम के व्याज से वर्णित सारा गोपी-विरह मूलतः तो घनानन्द की स्वीय प्रीति-व्यथा की अभिव्यक्ति है। इसका कारण एक बडी हद तक स्वानुभूति का प्रकाशन भी है। दूसरी बात यह है कि प्रबन्ध की धारा मे कथा की आवश्यकता के अनुसार जगह-जगह भिन्न-भिन्न स्थितियो मे विरह का जो वर्णन किया गया है विशेषत. अपने आख्यानो मे बोधा और आलम के द्वारा उसका स्वरूप भी पर्याप्त गम्भीर है। मैं समझता हूँ कथाकाव्यों मे परिस्थिति के सघात मे विरह की वर्णना विशेष चमत्कार पूर्ण और प्रभावोत्पादक हो जाती है। विरह चित्रण की यह गम्भीरता और सुन्दरता बोधा के काव्य में सर्वोत्कृष्ट रूप मे सुलभ है। मुक्तको में भाव की वह गम्भीरता इतनी सरलता से नहीं लाई जा सकती जो पूर्वा-पर संबंधो से युक्त प्रबन्धकाव्यों मे सहज विन्यस्त हो सकती है। तीसरी उल्लेख्य बात यह है कि जगह-जगह विरह का चित्रण करते हुए इन कवियों ने उस विरहोन्माद का भी चित्रण किया है जो हमें परम्परा से प्राप्त रहा है जिसमे पड़कर ये विरही जड़-चेतन का भेद भूल जाते हैं तथा कभी वृक्षों से, कभी लताओ से, कभी पक्षियो से अपने प्रिय का समाचार पूछते हैं और कभी वायु से अथवा मेघ से अपनी व्यथा का निवेदन करते हैं और उसे प्रिय तक पहुँचाने का आग्रह भी। चौथी बात यह है कि ये कवि भी आवश्यकतानुसार ऋतुओं और प्रकृति की परिवर्तनशीलता से विरह के उत्तेजित स्वरूप का चित्रण परम्परानुमोदित रूप मे कर गए हैं। नियमित रूप से रीतिकारों की भाँति तो षड्ऋतु वर्णन किसी ने नही किया है पर वर्षा और वसत ऐसी ऋतुओं में विरह की स्थिति का चित्रण अवश्य हुआ है। बारहमासा तो बोधा ने ही लिखा है।

रहस्यदर्शिता का अभाव

स्वच्छन्द कवियो के काव्य मे यह बात लक्ष्य करने की है कि उनका काव्य मूलत रहस्यमूलक नही है। उसमे वर्णित प्रेम मूलत लौकिक है, कभी-कभी ऐसा अवश्य हुआ है कि लोक मे प्रेम की असफलता प्राप्त होने पर वही वृत्ति भगवदोन्मुख हो गई है। वह 'प्रेम वृत्ति ईश्वर के सगुण रूप श्रीकृष्ण मे समा गई है। यदि निर्गुण निराकार के प्रति वह आसक्ति निवेदित की गई होती तो रहस्यमयता के लिये गु जाइश भी होती। सूफियों का रहस्यवाद प्रसिद्ध है। इन पर सूफियो का प्रभाव था फिर भी ये रहस्यवादी न बन सके। घनआनन्द आदि मे कहीं-कहीं रहस्यात्मकता की झलक मिलती है। उदाहरण के लिये इस प्रकार के दो दो-चार कथनो मे—

(क) मन जैसें कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानिये कैसें सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गनि रावरें, बावरे लौं लगियै नित लौं॥
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरन्तर अन्तर गौ।
उधरौ जग छाय रहे घन आनन्द चातिक त्यौं तकियै अब तौ॥

(ख) अन्तर हौ किधौं अन्त रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं आदि।

परन्तु वह इन कवियो की स्थायी वृत्ति कभी नही रही। काव्य के क्षेत्र मे रहस्य-भावना का प्रसार और विस्तार निर्गुण को स्वीकार करके चलने मे सभव होता है किन्तु स्वच्छन्द कवियो ने विरह वर्णन के लिये गोपीकृष्ण के प्रेम-वृत्त का सहारा लिया, कृष्ण को यदि ईश्वर के रूप मे स्वीकार किया तो भी उनकी व्यक्त सत्ता के चिंतन और ध्यान मे रहस्य-भावना, गुह्य या गोप्य का ध्यान और चिन्तन के लिये अवकाश न था फलस्वरूप उनका प्रेम या विरह वर्णन रहस्यात्मक नही होने पाया है। गोपियों का विरह निवेदन उन्होंने अत्यत विशद रूप मे किया है परन्तु सगुण स्वरूप वाले श्रीकृष्ण के सन्दर्भ मे रहस्य दर्शन और गुह्य चिन्तन के लिये गु जाइश न थी। बात यह है कि रहस्यात्मक प्रवृत्ति का मेल जितना अधिक निर्गुण-साधना से बैठता है उतना अधिक सगुण-साधना से नही। कहीं-कहीं जैसा कि उपर्युक्त अवतरणो मे तथा अन्यत्र की गयी विवेचनाओ एव उदाहरणो से पता चलेगा रहस्य झलक भर आ गई है। भारतीय भक्ति मे यो भी रहस्यात्मकता का समावेश कभी नही रहा।[1] रहस्य की जो झलक यत्रतत्र प्राप्त है उसे प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने फारसी साहित्य और सूफी साधना प्रवाह के सम्बद्ध रूप मे देखा है।[2] यह झलक घन-आनन्द, रसखान और बोधा तथा आलम मे तो मिल सकती है क्योंकि इन पर थोड़ा बहुत सूफी प्रभाव था फिर भी यह झलक है बहुत ही कम। ठाकुर और द्विजदेव मे तो रहस्य की झलक बिलकुल ही न मिलेगी क्योंकि ये कवि शुद्ध भारतीय प्रेम पद्धति को लेकर चले हैं। इनकी प्रेम भावना बिलकुल भारतीय ढग की है।

स्वच्छन्द कवि मूलत भक्त नहीं प्रेमी थे

स्वच्छन्द धारा के कवियो की गणना भक्त कवियो मे न की जाकर प्रेमी कवियों मे

---

१ घनआनन्द ग्रंथावली : वाङ्मुख, पृ० ४१।
२ घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, परिचय, पृ० ६।

की जायगी क्योंकि ये प्रेम की उमंग के कवि थे। घनआनन्द ने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी। संप्रदाय विशेष की भक्ति अंगीकार करने तथा भक्ति परक साहित्य की सर्जना करने के अनन्तर भी वे प्रेमियों की ही मंडली की शोभा बने, साहित्य में 'प्रेम की पीर' के ही कवि रूप में बहुश्रुत हुए। आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव शृंगार के ही कवि माने गये। कुछ छन्दों में किन्हीं देवी देवताओं की स्तुति लिखने के कारण इन्हें भक्त नहीं कहा जा सकता। सूर, तुलसी और मीरा की श्रेणी में इन्हें नहीं बिठाया जा सकता। रसखान उत्कट कृष्णानुराग के कारण अवश्य भक्तों में गिने जाते हैं परन्तु उनका भी चरम लक्ष्य प्रेम ही रहा है। वे प्रेम की निर्दोष महिमा के गायक रहे हैं—

(क) प्रेम अयनि श्री राधिका, प्रेम बरन नंदनंद।
प्रेम बाटिका के दोऊ माली मालिन द्वन्द॥

(ख) प्रेम अगम अनुपम अमित सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नहीं रसखान॥

(ग) शास्त्रनि पढ़ि पंडित भए कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं कहा कियौ रसखान॥

(घ) जेहि पाये बैकुंठ अरु हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

इस प्रकार रसखान भी प्रेम की महिमा का अखंड संकीर्तन करते हुए प्रेमियों के सिरमौर हो गये हैं। आचार्य मिश्र लिखते हैं कि 'जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्ति मार्गी, कृष्ण भक्त, प्रेम मार्गी सूफियों रीतिमार्गी कवियों—सबसे पृथक् स्वच्छन्दमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्ति-विषयक रचना के कारण भक्त कहना हो तो कहे, पर इतने व्यतिरेक के साथ कहे कि ये स्वच्छन्द प्रेममार्गी भक्त थे तो कोई बाधा नहीं है। स्वच्छन्दता इनका नित्य लक्षण है। यही कारण है कि इन्होंने काव्य शैली की दृष्टि से भी भक्तों से अस्थान-भेद सूचित किया'[1]। रसखान के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है कि 'ये आरंभ से ही बड़े प्रेमी जीव थे। प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्गार इनके सवैयों में निकले कि जन साधारण प्रेम या शृङ्गार सम्बन्धी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे। इनकी कृति परिमाण में तो बहुत अधिक नहीं है पर जो है वह प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली है। दूसरे रसखान ने कृष्णभक्तों के समान गीतिकाव्य का आश्रय न लेकर कवित्त सवैयों में अपने सच्चे प्रेम की व्यंजना की है'[2]। ये कवि कृष्ण के साथ अन्यान्य देवी देवताओं का नामोल्लेख, भजन या कीर्तन करते थे। कृष्ण का ही प्रधान रूप से उल्लेख इनके काव्यों में कृष्ण भक्ति के कारण नहीं वरन इसलिये कि उनसे अधिक प्रेमोपयुक्त पात्र अथवा प्रेम का देवता कोई दूसरा न था। रीतिमुक्त तथा रीतिबद्ध कवियों देव, दास, पद्माकर, बिहारी, सेनापति आदि ने भी विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति में छन्द रचना की है पर वह इनकी भक्ति का लक्षण नहीं। भगवद्भक्ति में सूर, तुलसी और मीरा की सी निमग्नता इनके काव्यों

---

[1] घनआनन्द ग्रंथावली, वाङ्मुख, पृ० ४३।

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १७७।

मे नही । ये स्वच्छन्द कवि लौकिक प्रेम के पुजारी थे पर यह लौकिक प्रेम स्थूल भोग-वासना प्रधान न होकर मानसिक और आतरिक अधिक था । जहाँ तहाँ स्थूल ऐन्द्रिकता भी थी, इसका निषेध नही किया जा सकता । कृष्णलीला इनकी उस प्रेम व्यजना के साधन रूप मे स्वीकृत है, इनकी भक्ति का आधार नही । यह पहले ही बता चुके हैं कि इन कवियों का निजी जीवन ऐहिक प्रीति-रस से सिक्त था । सरल सादा प्रेम मार्ग जिसमें बुद्धि की चतुराई और वक्रता के लिये कोई गु जाइश न थी इनका प्रिय मार्ग था—

> अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
> तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं ।।

ये उसी 'सायानप रहित' और 'अवक्र' मार्ग पर चलने वाले पथिक थे, हृदय का अर्पण ये जानते थे । बुद्धि की चतुरता से भरी कतर-ब्योंत से इनका वास्ता न था । ये हृदय को आगे करने वाले थे, रीझ पर मरने वाले थे । बुद्धि की चातुरी इनकी सादगी पर पानी भरा करती थी—

> 'रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ।' (घनआनन्द)

स्वच्छन्द कवियो की रचनाओ के तीन स्थूल विभाग

स्वच्छन्द कवियों की समस्त रचनाओ के मोटे तौर से तीन खड किये जा सकते हैं । ये खड या विभाग रचनागत प्रवृत्ति की दृष्टि से हैं । पहले प्रकार की रचनाएँ वे हैं जो रीति से प्रभावित हैं, जिसमे रीतिबद्ध रचना पद्धति की छाप है । यह छाप आलमऔर द्विजदेव की काव्य शैली पर विशेष है । इनकी वर्णन शैली, उपनाम योजनाएं किसी सीमा तक रीतिबद्ध अथवा रीति सिद्ध कर्ताओ के मेल मे हैं । नेत्रों को लेकर बाँधी गई उक्तियाँ, खडिता के कथन आदि जो इन तथा अन्य स्वच्छन्द कवियो मे समान रूप से मिलते हैं रीति के प्रभाव के ही सूचक हैं । हाँ विपरीत रति और सुरतान्त के चित्र बोधा को छोड किसी ने नही प्रस्तुत किये । बोधा पर यह बाजारी प्रभाव विशेष था । नायिका भेद किसी ने नहीं लिखा । खडिता आदि के जो वर्णन हैं उनमे प्रिय के अपर-प्रिया के ससर्ग अथवा रमण-चिन्हों का सविस्तार वर्णन कम हृदय की भावनाओ का चित्रण विशेष है । नीचे एकाध उदाहरण देकर यह दिखाने का यत्न किया जा रहा है कि ये रचनाए किस प्रकार रीतिबद्ध कर्त्ताओं की कृतियों के मेल मे हैं—

> (क) कैधौं मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
> कैधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई ।
> कैधौं पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
> कैधौं बकपाँति उत अन्तगति है गई ।।
> आलम कहै हो आली अजहूँ न आए प्यारे,
> कैधौं उत रीति विपरीति विधि ने ठई ।
> मदन महीप की दोहाई फिरबे तें रही,
> जूझि गये मेघ कैधौं दामिनी सती भई ।।
> (ख) तेरोई मुखारविन्द निदे अरविन्द प्यारी,
> उपमा को कहै ऐसी कौन जिय मे लगै ।

चपि गई चन्द्रिकाऊ छपि गई छवि देखि,
भोर को सो चांद भयो फीको चांदनी लगै ॥

(ग) आलम कहे हो रूप आगरो समातु नाहीं,
छवि छलकति इहां कौन की समाई है ।
भूषन को भारु है किसोरी वैस गोरी बाल,
तेरे तन प्यारी कोटि भूषन गोराई है ॥
—(आलम)

(घ) जावक के भार पग परत धरा पं मद,
गध भार कुचन परी है छुटि अलकें ।
द्विजदेव तैसियै विचित्र बरुनी के भार,
आधे आधे दृगनि परी है अध पलकें ॥
ऐसी छवि देखि अग अग की अपार,
बार बार लोचन सु कौन न के ललकें ।
पानिप के भारन संभारत न गात लक,
लचि लचि जात कच भारन के हलकें ॥
—(द्विजदेव)

हो सकता है किसी किसी कवि मे इस प्रकार की रचनाएँ काव्यारम्भकाल की हों। स्वच्छन्द कवियो पर समसामयिक काव्य पद्धति का बिलकुल ही प्रभाव न होता यह बहुत ही कठिन बात थी। वस्तु और भावतत्व पर कम, शैली पर यह प्रभाव अवश्य है। दूसरे प्रकार की रचनाएँ वे हैं जिनमे भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। ये प्रभाव रसखान और घनआनन्द पर विशेष हैं। इस प्रकार की पक्तिया—

(क) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
(ख) काग के भाग कहा कहिये हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी।
(ग) सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावें। आदि

लिखकर जहाँ रसखान ने अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है वहाँ घनआनन्द ने भी 'नाम माधुरी', 'ब्रज स्वरूप', 'गोकुल विनोद', 'ब्रज प्रसाद', 'पदावली', आदि कृतियों द्वारा अपनी भक्ति-परायणता का परिचय दिया। यह भी पूर्ववर्त्तिनी और समसामयिक भक्ति प्रवाह का ही परिणाम था जो इस प्रकार की रचनाओं से स्पष्ट है—

(क) गोपाल तुम्हारेई गुन गाऊँ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ।
टरत न मोहनि मूरति हियतें देखि देखि सुख पाऊँ।
आनन्दघन हो बरसौ सरसो प्रान पपीहा ज्याऊँ ॥
—(घनआनन्द)

(ख) कौन पै गावत गनत बनै हो।
गुन अनत महिमा अनत नित निगमौ अगम भनै हो।

जो जाको अनुमान जामगनि, मानन मोद मनै हो।
चातक चोप चटक त्यों चितैबो उचित आनदघनै हो॥
—(घनआनन्द)

तीसरी प्रकार की और सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाएँ वे हैं जिन्हें हम स्वच्छन्द या रीति-मुक्त कहते हैं, जिनकी विशेषताओं का हम सविस्तार विश्लेषण कर आये हैं, जो प्रस्तुत ग्रन्थ का मुख्य विवेच्य है तथा जिसकी परम्परा निरपेक्षता ने उसे मध्ययुग की इतनी प्रधान काव्यधारा का रूप दिया है।

शैली-शिल्प या कला-पक्ष

अन्तिम महत्वपूर्ण विशेषता है रीति स्वच्छन्द कवियो की शैली। ये कवि शैली के क्षेत्र में भी एक सीमा तक रीति परम्परा से मुक्त रहे हैं। ये मुक्ति एक तो इस बात मे है कि सभी स्वच्छन्द कवि अपनी भाषा शैली के बल पर पहचाने जा सकते हैं चाहे उनकी कृतियो से उनके नाम निकाल दिये जायें। रसखान, घनआनन्द, बोधा और ठाकुर तो अपनी शैली वैशिष्ट्य के कारण छिपाए नही छिप सकते। यह शैली-गत वैशिष्ट्य इस बात का द्योतक है कि ये कवि रचना पद्धति के क्षेत्र मे भी किसी निर्दिष्ट पथ पर नही चले बल्कि सभी ने अपनी लीक अलग बनाई। इन कवियो की शैली, अलकृति, छन्द और भाषा सम्बन्धिनी जो स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं उनका सविस्तार व्याख्यान इन कवियो की कला-विवेचना के प्रसग मे किया गया है। रसखान की सादगी और भावुकता, घनआनन्द का विरोधाश्रित भाषाशिल्प, ठाकुर की लोकोक्ति प्रधान तथ्यगर्भित शब्दावली, बोधा की विरहोन्मत्त वाणी सभी अलग हैं। आलम का भाव और शैली विषयक सतुलन और द्विजदेव की धारा शैली भी विशिष्ट है। दूसरी जो महत्त्वपूर्ण बात लगभग सभी कवियो मे समान रूप से पाई जाती है वह है रीतिकारो की अतिशय अलकारप्रियता के प्रति उदासीनता। अलकारिक चमत्कार के निदर्शन का लक्ष्य लेकर कोई भी काव्य रचना मे प्रवृत्त न हुआ। बोधा, ठाकुर और द्विजदेव के लिये अलकार बहुत कुछ अनपेक्षित ही था। इनकी कृतियो मे सहजता और अयासहीनता का वैशिष्ट्य है। किन्ही किन्ही की कृतियो मे तो अलकार खोजने पड़ते हैं। तीसरी बात जो लगभग समान रूप से सबमे प्राप्य है वह है अत प्रेरित भाषा और अभिव्यजना। इनकी भाषा और शैली स्वत प्रसूत है, भाव प्रेरित है अत आयास रहित और निजत्व सम्पन्न। चौथी विशेषता यह है कि भाषा की शक्ति को इन सभी कवियो ने समृद्ध किया है। इनमे भाषा के प्रति दृष्टि की सकीर्णता न थी। सस्कृत, अरबी, फारसी के साथ बुन्देली, पजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी, अवधी, आदि के देशज शब्द स्वतन्त्रता पूर्वक इन्होंने ग्रहण किये हैं। किसी भी भाषा के शैलीकारो की यह विशेषता सदा से रही है। भाषागत किसी कट्टरता या अनुदारता की नीति इन्होंने कभी नही अपनाई। प्रयोगो द्वारा प्रचलित शब्दो मे नया अर्थ भरने का काम भी इन्होंने सफलतापूर्वक किया है। लक्षणा और व्यजना की शक्तियो को इन्होने असाधारण रूप से सम्पन्न किया है। भाषा को लचीली बनाकर उसमें प्रयोग-सौन्दर्य के साथ साथ अर्थ की सम्पदा भरने का भी इनका प्रयत्न श्लाघनीय है। मुहावरे और लोकोक्तियो से इनकी शैली सजीव बनी है। छन्द के क्षेत्र मे इन्होंने कोई नया माध्यम नही स्वीकार किया। युग के सर्वप्रिय छन्दों कवित्त-सवैया मे ही इन्होने अपनी

वाणी का विलास निर्दशित किया है पर छन्दगत वैशिष्ट्य का विधान शास्त्रबद्ध दृष्टि द्वारा ही सम्भव है। शास्त्र मुक्त दृष्टि लेकर चलने वाले ये कवि भला ऐसी दिशा में क्यों कर जाते। घनआनन्द ने अनेक अतिरिक्त छन्दों का प्रयोग किया है तथा भारी संख्या में पदों की रचना भी की है। बोधा में छन्दों की प्रचुरता है क्योंकि वे प्रमुख रूप में प्रबन्ध रचना में लीन हुए। उर्दू के छन्द और रेखते आदि भी इन कवियों ने प्रयुक्त किये हैं। अभिव्यंजना या वर्णन शैली के क्षेत्र में कोरी अतिशयोक्तियों से ये दूर रहे हैं। अतिशयोक्तियाँ इन्होंने की हैं पर भाव से सपृक्त।

इस प्रकार ये कवि प्रकृत्या स्वच्छन्द थे। न तो कृष्णभक्तों की इनमें साम्प्रदायिक भक्ति थी न सूफियों सी रहस्यमयी ब्रह्म साधना और न रीतिबद्ध काव्याचार्यों सा रीति और शास्त्र का आग्रह। प्रेम की दिव्य मदाकिनी में निमग्नामग्न रहने वाले ये स्वच्छन्द कवि अपनी शैली में भी स्वच्छन्द थे। इनका हृदय जहां लौकिक प्रेम से आपूर था वहीं इनकी अभिव्यंजना भी आन्तरिकता की ज्योति से कात थी। इन स्वच्छन्दमार्गी प्रेमोन्मत्त गायकों के लिये भक्ति तुच्छ नहीं थी, साम्प्रदायिकता त्याज्य थी और रीतिमार्ग व्यर्थ। लीकों से अलग हटकर चलना—स्वच्छन्दता इनकी मूलवृत्ति थी जो और तो और वर्णन शैली में भी प्रत्यक्ष है। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण समूचे मध्ययुग में इन प्रेमी गायकों की स्वच्छन्द काव्यधारा का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। रीतिकाल में रचना-बाहुल्य और आग्रह पूर्वक रीति को पकडकर चलने के कारण जो महत्व रीतिबद्ध काव्य का है उससे अधिक महत्व रीति के आग्रह से मुक्त हो अपनी प्रेम की उमग पर थिरकने के कारण इन प्रेमोन्मत्त गायकों के काव्य का है। परिमाण की दृष्टि से, कोरी कला और चमत्कार की दृष्टि से, आग्रहों में बद्ध रहने की दृष्टि से नहीं, गुण की दृष्टि से, भावुकता की दृष्टि से और निबन्ध शैली में काव्य रचना करने की दृष्टि से इनका स्थान रीतिकारों से निश्चय ही श्रेष्ठतर है।

४

अँग्रेजी कविता में स्वच्छंदतावाद (१७९८ ई० से १८३२ ई०): इतिहास और स्वरूप-विश्लेषण तथा रीतिस्वच्छन्द काव्य से उसका सामंजस्य

अँग्रेजो के राजनीतिक इतिहास मे जिसे हम क्रांति का युग कहते हैं वही उनके साहित्य के इतिहास मे स्वच्छंदता-वाद के विजय का भी युग है। यह बात ध्यान देने की है कि साहित्य के इतिहास मे जो स्वच्छन्दतावादी क्राति या आन्दोलन है वह वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक क्राति का ही एक पहलू है क्योंकि दोनों आन्दोलनो की तह मे नियमो, रूढ़ियों और अन्धपरम्पराओ के प्रति घोर क्षोभ असन्तोष विद्यमान था। विगत और मृत युग का प्राणातक भार दोनो को असह्य हो उठा था। उभय प्रकार के आन्दोलनो के सचालको का चित्त व्यक्ति स्वातन्त्र्य और जीवन मात्र की स्वच्छन्दता का अभिलाषी हो उठा था, यही कारण है कि इस युग के रोमाटिक या स्वच्छन्दतावादी कवियो ने प्राचीन काव्य की रूढियो पर आक्रमण किया और उनकी मान्यताओं को चुनौती दी। ड्राइडेन, पोप आदि क्लैसिक या आगस्टन सम्प्रदाय के कवियो के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हुई और सहजता, भावोन्मेष और अनुभूति-प्रवणता को काव्य मे प्रमुखता दी गई। रूढ़िवादी समालोचकों ने जहाँ तहाँ स्वच्छंद भावुकता और अदम्य भावोन्मेष के ज्वार को रोकना चाहा परन्तु अब यह सब उनके बस के बाहर हो गया था।

स्वच्छन्दतावाद से पूर्व . क्लैसिक या आगस्टन सम्प्रदाय की कविता, ड्राइडेन और पोप का युग

अँग्रेजी साहित्य के इतिहास मे रोमान्टिक कविता-काल के पूर्व का युग क्लैसिक कविता-काल कहलाता है जिसे उसके प्रधान पुरस्कर्ताओं के नाम पर ड्राइडेन और पोप का जमाना भी कहा जाता है। ड्राइडेन का जमाना सामाजिक दृष्टि से ह्रास का जमाना था। परम्परा की धार्मिक रूढ़िवाद-प्यूरिटनिज्म की प्रतिक्रिया इतनी तीव्र हुई कि शिष्टता और सतुलन को बहुधा तिलाजलि दे दी गई। चार्ल्स द्वितीय का राजदरबार तो इस देश के इतिहास मे बेहद बेशर्मी के लिए प्रख्यात है—ईसाइयत मे अविश्वास, सच्चे धर्म के प्रति अनास्था आदि मे वृद्धि हो रही थी। प्यूरिटनिज्म का मजाक उडाया जा रहा था तथा कौटुम्बिक जीवन की पवित्रता म विश्वास रखने वालो को ढोंगी और बगुला भगत कहा जाने लगा था।

राजदरबारो और रईसो की सकीर्ण सीमा के बाहर भी स्थिति अच्छी न थी। भ्रष्टाचार का सर्वत्र साम्राज्य था। व्यक्तियो के बीच अवश्य सच्चाई, पवित्रता और ईमानदारी ऐसी चीजो का आदर था किन्तु सामान्यत सर्वत्र नैतिक अधोगति लक्षित होती थी। इस सब का प्रभाव समसामयिक साहित्य पर पडना स्वाभाविक था। ड्राइडेन के समय की कविता मे भ्रष्टाचार की बातें खुले-आम की गई हैं। यद्यपि इस युग के काव्य मे अनेक महत्वपूर्ण काव्यगुण भी उपलब्ध है फिर भी उसमे नैतिक शक्ति और आध्यात्मिक आवेश की कमी है। अपने उद्देश्य के प्रति कवि मे अपेक्षित ईमानदारी और उद्दाम भावावेग के दर्शन नही होते। काव्यगत कल्पनाशक्ति का ह्रास हो चला और कविता स्फूर्तिहीन, अगतिक और सामान्य हो गई। इस प्रकार अँग्रेजी साहित्य के इतिहास मे एक ऐसा युग आ गया जब कि कविता बुद्धि-प्रधान हो गई तथा उसमे भावुकता एव कल्पनाशीलता का अभाव हो चला। उसमे आभा अवश्य थी किन्तु सब मिल कर आशय या अभिप्राय की दृष्टि से वह खोखली और सवेदनाशून्य थी। कवि लोग अपनी कविता मे तर्क, वाद-विवाद तथा व्यक्तिपरक अथवा राजनीतिक विषयो पर व्यग लिखा करते थे। यह जमाना छद-बद्ध प्रचारात्मक पुस्तिकाओ के लेखन का जमाना था। इस युग के साहित्य पर एक और भी प्रभाव हावी था, वह था फ्रास का। इटली के सास्कृतिक आदर्शों का युग बीत चुका था, अब ससार मे परिष्कृत रुचि का मानदण्ड फ्रास था। फ्रास की चीजें, फ्रास की अभिरुचि, फ्रास के कला-विषयक आदर्श इगलैण्ड मे ग्रहण किये जाने लगे। इस युग के फ्रेंच साहित्य मे काव्य के रूप-आकार आदि के प्रति विशेष ध्यान दिया जाता था फलत उसमे परिपूर्णतया ओर चमक दमक थी, साथ ही उसमे स्पष्टता और जीवन-शक्ति भी थी। एक प्रकार से यह सभ्य और सुसस्कृत समाज का साहित्य था। इसी सहज सुलभ फ्रेंच साहित्य की ओर अंग्रेज कवि प्रेरणा और निर्देश-प्राप्ति के लिये उन्मुख हुए। फल यह हुआ कि अंग्रेजी कविता मे शब्द, भाषा, छन्द विधान आदि मे व्यवस्था, क्रम, नियम, कलात्मक अभिरुचि आदि पर विशेष ध्यान दिया गया। सहजता और भावोन्मेष की उपेक्षा कर दी गई जिसके परिणाम-स्वरूप एक कृत्रिम ढग की कविता लिखी जाने लगी। इस युग और प्रवृत्ति के अग्रदूतो मे एडमण्ड वालर और सर जान डेनहम का नाम लिया जाता है। इसके बाद ड्राइडेन आते हैं जो क्लैसिकल काव्य-प्रवृत्ति के सच्चे और पूर्ण प्रतिनिधि थे। ड्राइडेन मे कल्पना शक्ति, भावना की गहराई और आध्यात्मिक आवेश की कमी है। अच्छे गीत काव्यों में प्राप्य ऊँची काव्य और भावनाशक्ति का अभाव है। इसके विपरीत उनमे आश्चर्यजनक बौद्धिकता है तथा शैली मे आवेग और एक प्रकार की परुष शक्ति है। जहाँ ड्राइडेन मे *सच्ची या काव्योचित भावुकता का अभाव है वही उसके काव्य मे ऐसे भी अनेकानेक अश हैं* जिनमे असाधारण सामर्थ्य और वक्तृत्व-शक्ति के दर्शन होते हैं इसीलिए ड्राइडेन एक व्यगकार और छन्दबद्ध रचना के अन्तर्गत प्रभावशाली तार्किक के रूप मे अपना विशेष स्थान रखता है। ड्राइडेन में छन्द-रचना शक्ति भी असाधारण थी। गम्भीर ढग की काव्य रचना लोगो ने ड्राइडेन से सीखी। सैमुएल बटलर प्यूरिटनो पर व्यग्य लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके बाद प्रसिद्ध क्लैसिक कवि पोप का समय आता है। समाज मे फूहडपन और क्रूरता थी, राजनीति मे अतिशय भ्रष्टाचार व्याप्त था। स्टुअर्ट राजाओं के आगमन से सम्पन्न और फैशन परस्त समाज मे स्वेच्छाचारिता का बोलबाला था। इस युग की कविता मे एक सीमा तक उपदेशात्मकता मिलती है परन्तु कवियो ने समाज की आत्मा तथा भावनाओ को आन्दोलित करने

के बजाय उनकी बुद्धि से अपील की है। वे धर्म आदि विषयों पर कविता करते थे। धर्म को वे समाज के हित के लिए उसी प्रकार उपादेय समझते थे जैसे समाज के लिये पुलिस की व्यवस्था। वे उसे व्यक्ति की आत्मा को जागृत और उद्बुद्ध करने वाली शक्ति के रूप में नहीं देखते थे। धर्म सम्बन्धिनी सारी रचनाएँ बौद्धिकता, तर्कबुद्धि और उपयोगितावाद से परिपूर्ण मिलती हैं। इस प्रकार पोप के युग की कविता मे एक प्रकार ठडापन है, भावना की ऊष्मा नहीं, विचारो का छिछलापन है और अभिव्यक्ति की कृत्रिमता या औपचारिकता। कवि लोग समस्याओ की तह मे जाना पसन्द नही करते थे, उसे ऊपरी या सतही दृष्टि से ही देखते थे। इस प्रकार के साहित्य मे बुद्धि की चतुराई जरूर दिखाई देती थी किन्तु वह सच्ची सहृदयता और भावावेग का साहित्य न था। उसमे रचनात्मक शक्ति न थी। अलकृति और छदात्मक पूर्णता के लिये सहजता, सरलता और निश्चल अभिव्यजना की बलि चढा दी गई थी। लोग कविता को नगर के जीवन की सकीर्ण दुनियां तक ही सीमित रखने के पक्ष मे थे। काफी हाऊस, ड्राइग रूम, समसामयिक राजनीति पर बहस आदि उनके प्रधान विषय थे। ये विषय अल्पकालिक महत्व के थे जिनमे गहराई न थी और जीवन की मूल समस्याओं का आकलन न हो सका था फलत उसमें शाश्वतता न आ सकी। शैली के मस्कार और परिष्कार की आतिशयिक प्रवृत्ति के कारण उनकी अभिव्यक्तियों मे प्रदर्शन की प्रवृत्ति के साथ-साथ फीकी, अनुत्तेजक और नि स्वाद रूढिप्रियता दिखाई देती है।

संधिकाल : जानसन का जमाना

ईसा की १८वी सदी का उत्तरार्ध स्थूल रूप से प्राचीन और नवीन के सघर्ष का इतिहास है जिसमें नवीन की क्रमश. विजय होती है। एक ओर तो ऐसे लेखक थे जो पोप आदि के सम्प्रदाय की विशेषताओ को लेकर चलते थे और उसी प्रकार की छन्द रचना करते थे जिन्हे पोप ने निखारा था और पूर्णता प्रदान की थी। इन रचनाओ मे आगस्टन परम्पराएँ चल रही थीं। दूसरी तरफ नई या उगती हुई पीढी के लेखक थे जो भिन्न प्रभावों के परिणाम स्वरूप नये विषयो, नये काव्य रूपों, नई शैलियो और अभिव्यजनाओ को खोज रहे थे। इनकी रचनाओ मे आगस्टन परम्पराएँ टूटती नजर आती थी। कविता की अधिकृत और शासन करने वाली शैली के विरुद्ध विद्रोह के स्वर सुनाई दे रहे थे, इस प्रकार कविता के क्षेत्र मे जानसन का जमाना निश्चय ही सक्रमण का जमाना था, काव्यगत नव्यता की शोध की जा रही थी और विविध प्रकार के प्रयोग किये जा रहे थे। क्लैसिकल कविता की जितनी विशेषताएँ थी उन सबके विरुद्ध प्रतिक्रिया शुरू हो गई थी।

इस सन्धि-काल के दो महान स्तम्भ जानसन और गोल्डस्मिथ साहित्यादर्शों के मामले में पुरातनवादी थे। परिवर्तन के इस युग मे वे निकट अतीत की मान्यताओं को दृढता पूर्वक पकडे रहे। जानसन तो क्लैसिक आदर्शों को न केवल ऊँचा किए हुए चल रहे थे वरन् उसका पक्ष लेकर उसके प्रसार मे भी यत्नशील हुए तथा विद्रोही साहित्यिक प्रवृत्तियों और प्रयोगों का उन्होने विरोध भी किया। गोल्डस्मिथ का भी विश्वास था कि आगस्टन युग के रचनाकार ही भावी साहित्यकारो के सच्चे दिशा निर्देशक हैं। वे पोप मे क्लैसिक साहित्य की पूर्णता के दर्शन करते थे और किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरोधी थे। इनमें जगह-जगह भावो और विचारो का प्रवाह अतिशय अलकृत भाषा और कृत्रिम

पदावली के कारण अवरुद्ध हो गया है। अतिशय आलंकारिक भाषा और बड़े-बड़े, कठिन-कठिन शब्दों का प्रयोग उस युग मे बहुत प्रभावशाली चीज मानी जाती थी। गोल्डस्मिथ की कृतियो विशेषत 'दि ट्रैवेलर' और 'दि डेजर्टेड विलेज' मे एक ओर जहाँ आगस्टन परम्परा का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है वही दूसरी ओर अनेक दृष्टियों से उससे विच्छेद के लक्षण भी लक्षित होने हैं। उनकी उपदेश-प्रवणता और दार्शनिकता के साथ साथ उनमे सुकुमार भावावलियाँ भी यहाँ से वहाँ तक लक्षित होती हैं। अतिशय भावुकता गोल्डस्मिथ को पसन्द न थी पर वे स्वत उसकी बढती हुई शक्ति के शिकार थे। उन कविताओ में प्रकृति और ग्राम्य जीवन का जैसा मार्मिक चित्रण हुआ है वह देखने योग्य है—इन्ही की अनुकृति पर 'एकान्तवासी योगी' आदि रचनाएँ कराने वाले श्रीधर पाठक आधुनिक हिन्दी कविता मे स्वच्छन्दतावाद के जनक कहे जाते हैं। गोल्डस्मिथ मे प्राचीन अनुभूतियो की मधुर स्मृति है, उनके काव्य मे उसकी मादक छाया है उनके प्रकृति-चित्र रूढिबद्ध होते हुए भी एक वैयक्तिक सस्पर्श से ओत-प्रोत है। फलत गोल्डस्मिथ अपने आपको जितना पुरातनवादी समझते थे वे उतने अधिक पुरातनवादी सचमुच मे न थे। समसामयिक प्रवृत्तियाँ उन्हें प्रभावित कर रही थी। जहाँ तक जानसन का सवाल है वे अपने युग के साहित्य जगत के एक मात्र शक्तिशाली व्यक्ति थे परन्तु नवीन काव्य प्रवृत्तियो को वे भी रोकने मे असमर्थ रहे चाहे उसके प्रति उनके हृदय मे कितनी ही घृणा क्यो न रही हो।

पुरातन की प्रतिक्रिया परिवर्तन के लक्षण—एक परिवर्तन तो छन्द के क्षेत्र मे हुआ। क्लोज्ड कप्लेट के साथ साथ ब्लैंक वर्स का प्रयोग हो चला। स्पेंसर और मिल्टन के प्रति लोगों मे अधिक आदर-भाव जागृत हुआ फलस्वरूप उनके द्वारा व्यवहृत ब्लैंक वर्स और स्पेंसेरियन स्टेंजा का अधिक व्यवहार हुआ। इन छन्दो मे कवि की भावनाएँ स्वच्छन्दतापूर्वक और निर्बंध रूप से अभिव्यक्त हो सकती थी। इन छन्दों मे लचीलापन बहुत था, बन्धन की कड़ाई कम थी।

परिवर्तन की दिशा मे दूसरी महत्वपूर्ण बात जो १८ वी शती मे लक्षित होती है वह है प्रकृति के प्रति अनुराग। प्रकृति का मुक्त और वन्य सौंदर्य आगस्टन-स्कूल की कविता में नहीं चित्रित किया जाता था क्योकि वह उनकी नागर और तथाकथित परिष्कृत अभिरुचि के मेल में नही बैठता था। वे तो कृत्रिम और सजीली पहाडियो और सजाई हुई कटी-छँटी वाटिकाओ मे ही प्रकृति का सौन्दर्य निहारा करते थे। उनकी दृष्टि मे कोई भी वस्तु यहाँ तक कि प्रकृति भी तभी रमणीय हो सकती थी जब वह मनुष्य के हाथो से सज-सँवर कर सामने आती थी, जब उसे मानवीय हाथों से किसी अनुपात, आकृति, रेखा अथवा सुन्दर आकार-प्रकार मे सजा दिया जाता था। इस युग मे आकर कुछ स्वच्छन्द वृत्ति के कवियो मे हम प्रकृति का सच्चा अनुराग पाते हैं। एलन रैमसे मे पहले पहल प्रकृति प्रेम का भाव मिलता है, उसे अपनी कविता की प्रेरणा अधिकतर अपने ग्रामवासी भाइयो से सुने हुए लोक-गीतों और लोक-गाथाओं से मिली। उसके द्वारा लिखी 'दि जेंटिल शेपर्ड' एक सच्चा पशुचारण काव्य है, इसमे वर्णित पात्र सच्चे गड़रिये हैं, भेंड़ें चराने वाले वास्तविक स्त्री-पुरुष, कोई कृत्रिम प्राणी या छाया-जीव नही। प्रकृति प्रेम की जो धारा रैमसे ने बहाई वह एक स्कॉटलैंड निवासी जेम्स टामसन की रचनाओ के माध्यम से लंदन की जनता तक पहुँची और वह धीरे-धीरे अँग्रेजी साहित्य की एक शक्ति बन गई। इन प्रकृति प्रेमी कवियो

की रचनाओ मे प्राकृतिक दृश्यावली (Landscape) का सच्चा और निजी जानकारी पर आधारित वर्णन हुआ है। बहुत से वर्णन बडी बारीकी और सचाई से किये गये हैं और पूरी सवेदना के साथ। इस रचना मे प्रकृति के प्रति सच्ची सहानुभूति भी लक्षित की जा सकती है। इन रचनाओ की भी अपनी सीमाएँ हैं फिर भी इन कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योकि इनमे प्रकृति मनुष्य के हाथो की कठपुतली के रूप मे नही वरन् स्वतन्त्र और प्रधान वर्ण्य-विषय के रूप मे स्वीकृत हुई है। जान डायर की प्रकृति-प्रेम-परक 'ग्रोगर हिल' जैसी कविताओं मे भी यही बात मिलती है। अंग्रेजी कविता मे प्रकृति प्रेम-परक रचनाओ की प्रधानता हो चली तथा इस प्रकार की कविता लिखने वालो मे विलियम कालिन्स, विलियम ब्लेक, गोल्डस्मिथ, ग्रे, बर्न्स, कूपर आदि का नाम सादर लिया जाता है।

अंग्रेजी कविता की इसी प्रवृत्ति को 'प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन' (Return to Nature) कहा गया है। इस प्रवृत्ति ने १८ वीं शती उत्तरार्ध की कविता को बेतरह प्रभावित किया फलत काव्य के विषय, स्वर और शैली मे परिवर्तन हुआ। इसका अर्थ इतना ही न था कि लोग मधुर प्राकृतिक सौन्दर्य और ग्राम-जीवन के प्रति आकृष्ट हुए बल्कि इसका अर्थ यह भी था कि तथाकथित सभ्यता और प्राकृतिक जीवन मे मूलवर्ती अन्तर है और इस अतर की ओर भी लोगो का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। लोगो को इस बात का अनुभव हुआ कि हमारी सामाजिक व्यवस्था की कृत्रिम रूढियाँ हमारी प्रगति को किस प्रकार रोकती हैं और मनुष्य का व्यक्तित्व अविकसित होकर ही रह जाता है। इसके अतिरिक्त जीवन मे कितनी बुराइयाँ और कुरीतियाँ समा जाती हैं। उद्धार का एकमात्र मार्ग है जीवन का सरलीकरण। फलस्वरूप लोग अधिक साधारण और सामान्य विषयो को काव्य मे उतारने लगे। स्वभावत. ये काव्य-विषय साधारण ग्राम्य-जन के जीवन से लिए गए और वर्णन शैली भी बहुत कुछ स्वाभाविक हो गई। नई पीढी के कवियों द्वारा गृहीत काव्यविषय, अनुभूतियाँ, भाषा आदि अधिकाधिक सरल और स्वाभाविक भी रहे और कवियो की यही चेष्टा रही कि कविता को प्रकृति और यथार्थ जीवन के अधिक से अधिक निकट ले आयें। इस प्रकार की काव्य प्रवृत्ति का प्रभाव बडा व्यापक रहा। जहाँ भाव और भाषा में सरलता लाई गई वही पुराने लोक-गीतो और लोक-गाथाओं (Ballad Literatures) की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इनके प्रति उनकी रुचि जागृत हुई। जानसन प्राचीन लोक-गाथाओ की हँसी उडाया करते थे, इसके बावजूद भी लोग यह अनुभव करने लगे थे कि यह सरल काव्य-शैली 'अनुवादात्मक काव्य' की अपेक्षा अधिक अच्छी और काव्यात्मक है। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि काव्य को चमकीला, भडकीला और प्रभावशाली बनाने की पद्धति को गहरा आघात पहुँचे बिना न रहा। लोग स्वाभाविक और स्वत प्रसूत कविता की रूढिबद्ध, प्रदर्शन-प्रधान, कृत्रिम एव परम्परागत कविता की अपेक्षा उत्कृष्टता स्वीकार करने लगे। इस प्राकृतवादी काव्यधारा (Naturalism) के उन्नायको मे विलियम ब्लेक और जार्ज क्रैब आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वच्छन्दतावादी पुनर्जागरण अथवा स्वच्छन्दतावादी काव्य (The romantic Revival)

इस प्राकृतवाद से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात थी वह सामान्य विद्रोह की प्रवृत्ति जो कठोर प्रकृति और शुष्क बौद्धिकता के विरुद्ध चल रही थी। यह विद्रोह या आगरदन

सम्प्रदाय के काव्य के प्रति जिसे स्वच्छन्दतावादी आदोलन (Romantic Movement) कहा जाता है। स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का व्यवहार समीक्षकों द्वारा भी निश्चित अर्थों मे नही किया गया है। प्राकृतवाद (Naturalism) भी स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) के समानान्तर चलने वाली काव्यप्रवृत्ति थी और स्वच्छन्दतावाद के ही समान आगस्टन काव्यादर्शों के विरुद्ध उसमे भी प्रतिक्रिया का भाव अथवा आन्दोलन की प्रवृत्ति थी परन्तु उसका आधार दूसरा था। स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) का अर्थ यह था कि साहित्य स्वत प्रसूत हुआ करता है, उसमे स्वय-स्फूर्ति का सिद्धान्त (Principle of Spontaneity) ही मुख्य होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि काव्य में व्यक्तित्व पक्ष का प्राधान्य होना चाहिए तथा काव्य-सम्प्रदाय की रूढ़ियों, काव्य के शास्त्रीय बन्धनों और कला के नियमों को स्वीकार नही किया जाना चाहिए जो कविता को जकड़कर अधोगति प्रदान किया करते हैं। इसका आशय यह हुआ कि काव्य-प्रतिभा स्वत प्रेरित या चालित हुआ करती है और वह स्वय ही अपना नियम है—दूसरे द्वारा चलाये गए नियमो पर वह नही चल सकती। १८वी शती उत्तरार्ध मे व्यक्ति के उद्धार के लिए जो सामान्य आन्दोलन चला उसी का एक साहित्यिक रूप था यह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन। स्वच्छन्दतावाद मन की एक विशेष स्थिति या प्रवृत्ति का नाम है जिसमे उद्दाम भावावेग, सवेदनशीलता, आकाक्षा और करुणा का प्राधान्य हुआ करता है। इसी कारण फ्रासीसी लेखक विक्टर ह्यूगो ने इसे 'साहित्य मे औदार्यवाद' (Liberalism in Literature) तथा वाट्स डन्टन ने 'विस्मय और रहस्य का पुनरुत्थान' (Renaissance of wonder and mystery in art) कहा है। इसमें उन्मुक्तता या स्वच्छन्दता, कल्पनाशीलता, असाधारण और अतिप्राकृतिक के प्रति अनुराग होता है तथा उपर्युक्त कारणो से इसमे एक विशेष प्रकार के काव्य-विषय के प्रति रुचि होती है, ऐसे विषय के प्रति जो एकदम नवीन हुआ करता है और जिसे लेकर व्यक्ति की प्रतिभा स्वतन्त्र रूप से चल सकती है। नूतन एव जागृत अभिरुचि को इस प्रकार की कविता विशेष प्रभावित करती थी। कुछ उदाहरणो से यह बात कदाचित अधिक स्पष्ट हो सके हम कीट्स की कविताओ को (उदाहरण के लिए Endymion) को रोमान्टिक कहते हैं क्योकि उनमे आगस्टन कविता की सी बाह्य या रूप-विषयक औपचारिकता नहीं है, हम ग्रे की शोकपूर्ण गीतियों (Elegies) को स्वच्छन्दतावादी करुणा (Romantic Melancholy) कहते हैं और बायरन की ईस्टर्न टेल्स जैसी तीव्र भावावेश पूर्ण कविताओ को स्वच्छन्दतावादी आकाक्षा या (Romantic passion) कहते हैं, इसी शब्द का प्रयोग हम स्काट के 'ले आफ दी लास्ट मिन्सट्रेल' और कोलरिज के 'एनशेंण्ट मेरिनर' की अतिप्राकृतिकता (Supernaturalism) के लिए भी करते हैं।

रोमाटिक कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति थी 'मध्यकालीन पुनर्जागरण' (Mediaval या Gothic Revival) जिसकी प्रेरणा स्पेंसर आदि की रचनाओ से हुई। लोक-गाथा-काव्यो (Ballad Literature) की ओर भी स्वच्छन्दतावादियों की विशेष रुझान थी तथा लोक-गाथा और लोक-गीत-परक रचनाएँ बडी लोकप्रिय हुई। इनके द्वारा स्वच्छन्दतावादी रुचि के प्रसार मे विशेष सहायता मिली। टामस चैटरटन नामक एक तरुण कवि का नाम सदर्भ मे विशेष उल्लेखनीय है जिसकी रचना मे मध्यकालीन काव्य के वर्ण्यवस्तु तथा शैली-शिल्प के प्रति विशेष आग्रह मिलता है। ऐसे कवियो के कारण लोगो की रुचि स्वच्छन्दतावादी

अतीत (Romantic past) की ओर विशेष आकृष्ट हुई और विशेषत इंगलैण्ड के उत्तरी भू-भाग की दुनिया के चित्रण मे लोगो को अधिकाधिक आनन्द आने लगा। विलियम कालिन्स, जेम्स मैकफर्सन आदि इसी प्रवृत्ति के कवि थे। कुछ कवि तो नवीन काव्य सामग्री की खोज मे स्काटलैण्ड की यात्रा के लिए भी निकल पड़े थे। ये कवि काव्य के वर्ण्य और शैली पक्ष दोनो ही क्षेत्रो में सर्वथा स्वच्छन्द वृत्ति रखते थे। इनकी रचनाएँ अतिप्राकृतिकता (Supernaturalism) से ओतप्रोत हैं, उनमे एक गहरी करुणा और अतिशय भावुकता है। उनके द्वारा वर्णित संसार मे सादगी थी, कुहरों और पर्वतों का चित्रण था। प्रकृति चित्रण मे जहाँ वे निश्चित रूप से विकास की दिशा मे अग्रसर हो रहे थे उन्होने उन लोगो के मस्तिष्क को प्रभावित किया जो अपने आपको सामाजिक जीवन की रूढ़ियो से कुचला हुआ अनुभव कर रहे थे और जो दीर्घकाल से प्रचलित 'ड्राइंग रूम पोइट्री' के स्वरो से ऊब चुके थे। 'प्रकृति की ओर लौटने' (Return to nature) की प्रवृत्ति इन रचनाओ मे विशेष है, उस युग मे तो ये कविताएँ अत्यन्त सबल और अतीत की सच्ची आवाज सी प्रतीत हुई। इन कविताओं मे प्राप्त जोश सारे फ्रांस और यूरोप मे फैला, इसे सभी वर्ग के पाठको की सहानुभूति मिली और इन कविताओ ने लोगो के दिलो मे आग या जोश पैदा कर दी क्योकि इन रचनाओ के कारण काव्य-शैली मात्र मे ही परिवर्तन नही आया बल्कि ये रचनाएँ एक कृत्रिम समाज और सड़ी-गली सभ्यता के दोषो के विरुद्ध भी थीं। स्पष्ट ही ऐसी रचनाओ के सृजन का कारण सम-सामयिक समाज और साहित्य मे ढूँढा जा सकता है। टामस ग्रे, राबर्ट बर्न्स, विलियम कूपर आदि कवि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जिन्होंने इस काव्य प्रवृत्ति को अत्यधिक उत्कर्ष प्रदान किया है।

वर्ड्सवर्थ का युग—वर्ड्सवर्थ का युग साहित्य में स्वच्छन्दतावाद की विजय का युग है। इस युग की नई कविता और तत्कालीन क्रांतिकारियो के सिद्धान्त एक से थे। वे पुरातन काव्य और जीवन-नियमन या शासन के क्रमागत सिद्धान्तो को चुनौती देते थे और उन पर आघात करते थे, उन्हें वे घृणा की दृष्टि से देखते थे और कविता मे सहजता तथा स्वयस्फूर्ति के सिद्धान्त को मानते थे। प्राचीन विचारधारा के लोग कविता को धर्म के ही समान प्राचीनो द्वारा निर्धारित नियमो से शासित समझते थे और उसके प्रति तर्क करना अपराध समझते थे जब कि नये काव्य चिन्तक यह कहने लगे थे कि कविता किसी के नियम और अनुशासन की दासी नही है। भावना और जीवन-अनुभव ही उसका पथ-प्रदर्शक हो सकता है, शक्तिशाली काव्य स्वत सृजित होता है। यह अभिनव काव्य-दृष्टि पोप आदि के नियमानुशासन विषयक सिद्धान्तों से आमूल भिन्न थी। यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि काव्य-क्षेत्र की यह क्रान्ति समूचे युरोपीय युग-जीवन की व्यापक क्रान्ति का एक अंग ही थी। इस युग की अँग्रेजी कविता फ्रान्स की राज्यक्रान्ति से विशेष रूप से प्रभावित थी। स्वयं वर्ड्सवर्थ की विचारधारा समसामयिक घटनाओं से बराबर प्रभावित होती रही।

रोमान्टिक स्कूल के दो महत्वपूर्ण कवियों वर्ड्सवर्थ और कोलरीज द्वारा संपादित 'लिरिकल बैलड्स' का प्रकाशन एक युग-प्रवर्तक साहित्यिक घटना कही गई है क्योंकि इस कृति मे स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) और प्रकृतवाद (Naturalism) का पूर्ण विकास देखा जा सकता है। स्वय इसके संपादको ने इसमे अतिप्राकृतिक और सर्वसामान्य जीवन की घटनाओ का वर्णन करने वाली कविताओ का चयन किया था। इन कविताओं को ऐसी

भाषा मे लिखने की चेष्टा की गई थी जो सचमुच जन-साधारण के व्यवहार की भाषा थी और साथ ही उस पर थोडा-सा कल्पना का रगोन और झीना आवरण चढा दिया गया था जिससे साधारण वस्तुएँ कुछ असाधारण ढग से कही गई प्रतीत हो। निम्न वर्ग और ग्रामीण जीवन को इस उद्देश्य से अपनाया गया था जिससे मनुष्य की मूलभूत वासनाएँ अविकृत रूप मे चित्रित की जा सकें। ऐसे विषयो को ग्रहण करने मे किसी प्रकार का शास्त्रीय बन्धन न था तथा भाषा भी अधिक सादी (अकृत्रिम) और प्रभावशालिनी रक्खी जा सकती थी। वर्ड्सवर्थ ने अपने 'लिरिकल बैलड्ज़' की भूमिका मे स्वत इन बातो की ओर ध्यान आकर्षित किया था। प्राकृतवादी काव्य के पुरस्कर्त्ताओ की भाँति वर्ड्सवर्थ कोरे यथार्थवाद (Absolute Realism) के पक्षपाती न थे, जीवन के कठोर, यथार्थवादी, शुष्क, कल्पनाशून्य चित्रण से 'रोमान्टिसिज्म' की 'स्पिरिट' पृथक है जैसा कि क्रैब आदि मे देखी जाती है। वर्ड्सवर्थ के अपरिलिखित समस्त काव्यादर्श उस क्रान्तियुगीन प्रवृत्तियो के मेल मे थे। उनमे प्रजातन्त्रवादी आदर्शों, मनुष्य की सहज भावनाओ, जीवन के सरल, निर्व्याज स्वरूप की जो प्रतिष्ठा थी वह सम-सामयिक राजनीतिक क्रान्ति की भावना के मेल मे थी। काव्यशैली-विषयक उनका आदर्श भी कृत्रिमता और रूढि के विपरीत स्वाभाविकता और यथार्थ के पक्ष मे था।

पोप जिस प्रकार कृत्रिम और नागरिक जीवन के श्रेष्ठतम कवि हैं उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ भी ग्राम्य एवं प्राकृतिक जीवन के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हैं और प्रकृति के चित्रणकर्ता के रूप मे आज भी उनका स्थान अप्रतिम है। उनमे प्रकृति के प्रति असीम अनुराग था और उनका प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान भी अछोर था। वर्णित वस्तु पर उनकी दृष्टि सदा केन्द्रित रहती थी और छोटी से छोटी चीज भी उनकी दृष्टि से छूटने नही पाती थी, इसके पीछे उनका उद्देश्य यह था कि वे अपने दृश्य जगत को पूर्णतम रूप मे साक्षात् कराना चाहते थे। उनकी कविता और उनके वर्णन उनके निजी निरीक्षण के परिणाम हैं, किसी साहित्यिक उक्ति की नकल नही किन्तु ये बातें वर्ड्सवर्थ की प्रकृति-सम्बन्धिनी-कविता की प्रधान विशेषताएँ नहीं हैं। सबसे प्रधान बात है एक प्रकार की धार्मिकता जो उनके समूचे प्रकृति-काव्य मे अनुस्यूत है उदाहरण के लिए 'लाइन्स रिटन एवव टिंटर्न अबे' और 'ओड आन दि इन्टिमेशन्स आफ इम्पॉरटैलिटी' मे हम देख सकते हैं कि किस प्रकार कवि के लिए प्रकृति दिव्यात्मा का निवास स्थान है। वर्ड्सवर्थ का कहना है कि प्रकृति मनुष्य का सर्वोत्तम शिक्षक है। ऐसा कहने से उनका अभिप्राय यह है कि इस व्यापक सृष्टि मे जो अन्तर्निहित सत्ता है उसमे और मनुष्य की आत्मा मे आध्यात्मिक आदान-प्रदान होता रहता है और उससे हम सदा शाति, प्रसन्नता और बल पा सकते हैं। मानवता के कवि के रूप मे भी वर्ड्सवर्थ का महत्व कुछ कम नही है। आचरण, कर्त्तव्य और नैतिकता को वे सृष्टि के समस्त नियमो के ऊपर मानते हैं।

कोलरिज पर फ्रास की राज्यक्राति का बडा प्रभाव पडा तथा उसने अपनी राजनीतिक आकाक्षाओं को अनेकानेक रचनाओ मे व्यक्त किया है। उसका उत्तरवर्ती जीवन निरुद्देश्य भटकने का जीवन था, वह भाँग बहुत खाता था और ऊँची इच्छाएँ रखता था जिन्हें पूर्ण न कर सकता था, इसी से वह बडे ग्रन्थ अथवा काव्य न लिख सका। उसकी रचनाएँ खडित अथवा टुकडो मे विभक्त हैं फिर भी वह एक अत्यन्त मौलिक विचारक था—धर्मशास्त्र, दर्शन और साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी उसके आदर्शों को लोगो ने बडा महत्त्वपूर्ण बतलाया है। कोलरिज की कविता मे उत्तम अश थोडा ही है पर जो है वह असाधारण महत्त्व का है।

उसकी 'डिजेक्शन ओड' तथा 'वर्क विदाउट होप' नामक रचनाओं मे एक करुण भावना है जो आपको अपनी तरफ खींच लेती। 'दि एन्शेण्ट मैरिनर' और 'क्रिस्टाबेले' नामक रचनाएँ उसकी स्वच्छन्द प्रकृति का द्योतन करती हैं। वाल्टरस्काट ने अपना अधिकाश बचपन सीमा प्रदेश के गांवो मे बिताया जहाँ उसे जगली और ऊबड-खाबड धरती से प्रेम हो गया था और जहाँ सीमाप्रदेश की लडाइयो की कथाओ से उसकी बाल-भावनाएँ आन्दोलित हो उठी थी जिनमे उसके पितामहो ने भी भाग लिया था। बचपन से ही उसे प्राचीन लोकगाथाओ से प्रगाढ प्रेम हो गया था और वह स्वेच्छा से ही उनका सग्रह करने लगा था। बडे होने पर भी समय निकालकर वह पहाडो पर घूमने के लिए जाया करता था तथा उसने भविष्य मे प्रयोग करने के लिए भी काफी सामग्री एकत्र की थी। जर्मनी के रोमान्टिक साहित्य के प्रति भी वह आकृष्ट हुआ था जिसके फलस्वरूप उसने कुछ जर्मन लोकगाथाओ का अनुवाद किया था और कुछ उसी प्रकार की चीजें लिखने लगा था। 'दि मिन्सट्रेल्सी आफ दि स्काटिश बार्डर' उसकी प्रसिद्ध पुस्तक है जिसकी अनेक कविताएँ बहुत सुन्दर और मार्मिक हैं, उनमे अनेक लोक गाथाएँ सकलित है जो सीमावर्ती प्रदेश की घटनाओ और लडाइयो का आकर्षक चित्र प्रस्तुत करती हैं। उसकी अन्य प्रसिद्ध स्वच्छन्दतावादी कविताएँ हैं मेर-मिआन, दि लेडी आफ दि लेक, राक्बी आदि। उसकी छदबद्ध रोमान्टिक कहानियो मे लोक गाथाओं और मध्यकालीन रोमान्स का ही नया विकास देखने मे आता है। उसकी शैली मे वेग है, शक्ति है और स्वच्छन्दता है। वह कहीं-कहीं उखडी अस्पष्ट और साधारण है किन्तु स्काट कथा कहने मे बडा दक्ष है विशेषत आवेगपूर्ण घटनाओ और लडाइयो के चित्रण मे। विशाल भूखण्डो के चित्र प्रस्तुत करने मे भी वह बडा प्रवीण है। इस धारा के अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं विलियम लिसले बोल्स, सैमुएल रोजर्स, जेम्स हाग, राबर्ट साउदे, टामस कैम्पबेल, टामस मुअर आदि।

तरुण कवि—फ्रान्स की राज्य क्रान्ति के उत्तरवर्ती काल मे जो तरुण कवि इगलैण्ड मे हुए उनमे एक प्रकार की उन्मत्तता, विक्षिप्तता और उद्देश्यहीन बेचैनी लक्षित होती है, इसका कारण यही है कि प्रजातन्त्र के अभिलषित आदर्शों को गहरा धक्का लगा था और आदर्श जीवन और भविष्य की कल्पना ध्वस्त हो गई थी। क्रांतिकारी मन की इच्छाएँ ज्यो की त्यों पूरी न हो पाई थी। पुराना जोश, पुरानी आशाएँ टूट चुकी थी जिसके कारण तरुण कवियो मे एक पागलपन और एक विचित्र मनस्थिति के दर्शन होते हैं। तरुण क्रांति-कारी कवियो मे तीन प्रमुख थे—बायरन, शैली और कीट्स—जो इस वातावरण में सांस ले रहे थे किन्तु इस अनिश्चित वातावरण के ही कारण उनकी कविताओ मे गुण और भावना की दृष्टि से पर्याप्त भेद लक्षित होता है।

बायरन—यह इस युग का सर्वाधिक प्रतिनिधि कवि था। उसकी रचना मे क्रान्ति की उद्दाम किन्तु अशक्त भावना के दर्शन होते हैं जो उस युग की ही एक प्रमुख विशेषता थी। बचपन से ही वह स्वच्छन्द और ज्वालामुखी के समान उष्ण प्रकृति का था। वह जिस तिस से झगड पडता था, उसने यूरोप का भ्रमण किया और देखे हुए स्थानों का ऐतिहासिक परिपार्श्व मे मार्मिक वर्णन किया। मनुष्य की शक्ति तथा ज्ञान और जीवन की अस्थिरता को देखकर लिखी गई उसकी रचनाओ मे एक करुण भावना व्याप्त मिलती है। अपने समय मे ही वह बडा लोकप्रिय हो गया था, उसकी रचनाओ मे उद्दाम भावावेग और रोमास के हृदय

मिलते हैं। बायरन ने बहुत लिखा और विविध प्रकार का साहित्य लिखा। वह बडा अहवादी लेखक था। यद्यपि आगस्टन स्कूल के प्रति उसकी थोडी आस्था थी फिर भी रचना की दृष्टि से वह रोमाटिक ही है। उसकी रचना मे आश्चर्यजनक शक्ति और स्फूर्ति है और भावावेग की दशा मे उसकी रचना समुद्र की लहरो की तरह जोरदार और पुर असर मालूम पडती है। प्रकृति के उग्र रूप उसे अधिक प्रिय हैं—पहाड, आँधी, तूफान आदि क्योकि वे मनुष्य की पर्वाह नही करते। वह श्रेष्ठतम व्यगकारो मे भी है। पुरानी राजनीतिक व्यवस्था मे उसका विश्वास न था परन्तु इसके स्थान पर उसके पास कोई नए राजनीतिक आदर्श न थे। वह वैयक्तिक स्वतन्त्रता का पुजारी था। समाज के विरुद्ध विद्रोह करने वाले चरित्रों का उसने गुण गान किया है। समाज की अधरूढियो और प्रवचनाओ को लेकर उसने करारे व्यग लिखे हैं। शैली भी क्रातिकारी आदर्शों वाला था। वह आशा और विश्वास का मसीहा था ऐसे ससार मे जहाँ से ये दोनो चीजें नदारद हो चुकी थी। उसका पारिवारिक जीवन कलह से भरा हुआ था। उसकी रचनाएँ दो प्रकार की है (१) व्यक्तिपरक (२) वस्तुपरक। शैली की प्रतिभा मूलत गीतात्मक थी और उसकी ऐसी रचनाएँ इच्छाओ, विचारो, प्रवृत्तियों, भावनाओ और प्रभावो से ओत प्रोत हैं। गीतिकार कवि के रूप मे वह अग्रेजी के श्रेष्ठतम कवियो मे है—अनुभूतियो की आह्लादकारिणी शक्ति और गरिमा, सहज पद-विन्यास और शब्दो के जादू की दृष्टि से ये कविताएँ देखने योग्य है—स्काईलार्क, दि क्लाउड, दि सेन्सिटिव प्लान्ट, ओड टु वेस्ट विंड, ए लेमेन्ट। अपनी वस्तुपरक रचनाओं मे उसने अपनी आकाक्षाओ को व्यक्त किया है—स्वप्नदृष्टा शैली सोचता था कि कवि होने के नाते मनुष्य का प्रेरक और दिशा-निर्देशक होना भी उसी का काम था। उसमे ससार को सुधारने की बलवती कामना थी। अपने युग की शकाओ और निराशाओं के विपरीत प्रकाश की किरण दूर नही। इसी विश्वास से उसकी सारी मानवतावादी कविताएँ स्पदित हैं। 'पोलिटिकल जस्टिस' नामक कविता मे उसकी अत्यन्त व्यक्तिवादी फिलासफी मिलती है—राजा, शासन, चर्च, वैयक्तिक सम्पदा, विवाह और ईसाइयत सभी की उसने भर्त्सना की है। 'दि रिवोल्ट आफ इस्लाम' म ससार के पुनरुद्धार की आशा व्यक्त की गई है। शैली की आशा और विश्वास का श्रेष्ठतम उदाहरण उसके महान गीतिनाट्य 'प्रामीथियस अनबाउण्ड' मे मिलता है। कीट्स न तो विद्रोही था और न ऊँची कल्पनाएँ करता था और न बडे-बडे सपने देखा करता था। वह एक शुद्ध कलाजीव के समान था, अपने युग के आन्दोलनो और सघर्षो से तटस्थ। उसमे न तो बायरन की तरह वर्तमान का उग्र विरोध करने की भावना थी और न शैली जैसी ससार को सुधारने का मानवतावादी जोश ही था, उसके अनुसार कविता को दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्तों का वाहन होने के बजाय सौदर्य की प्रतिमूर्ति होना चाहिए। उसकी कविताओ की मूल भावना ऐसे वाक्यो मे देखी जा सकती है—'सौन्दर्य चिरतन आह्लाद है' 'सृष्टि के समस्त पदार्थों मे मुझे सौदर्य का सिद्धान्त ही सर्वप्रिय है'। अपने समय की दुनिया उसे कठोर और बर्फ की तरह ठडी तथा गद्यात्मक लगती थी। वह उससे बचना चाहता था। उसके प्रकृति चित्रण मे भी स्थूल और गोचर सौन्दर्य की ही भावना प्रधान मिलती है, प्रकृति से वह इसलिए प्रेम करता था क्योकि उसमे उसे एक प्रकार की गरिमा और सुन्दरता के दर्शन होते थे। उसका प्रकृतिप्रेम प्रकृतिप्रेम के ही

लिए था। उसमे किसी प्रकार की रहस्यवादिता न थी, प्रकृति उसे कोई आध्यात्मिक संदेश न देती थी और न कोई आध्यात्मिक अर्थ ही रखती थी जैसा कि वर्ड्सवर्थ और शैली में देखा जा सकता है। उसकी प्रतिभा अपरिपक्व और विकासशील थी फिर भी उसकी जो रचनाएँ अल्पायु मे ही लिखी जा चुकी थीं उनसे हम उसकी असाधारण प्रतिभा का अंदाजा लगा सकते हैं। उसके संबोधन-गीत जैसे ओड टु आटम, ओड टु ए नाइटिंगेल, आन ए ग्रीशियन अर्न आदि बडे प्रसिद्ध हैं। कीट्स का महत्व तीन कारणों से है, एक तो काव्य के रूप और शैली की दृष्टि मे क्योंकि उसके वर्णनो मे बडी सूक्ष्मता और बारीकी है तथा उसने 'क्लैसिक कपलेट' को छोड़कर शिथिल और स्वच्छन्द शैली के 'कपलेट' का प्रयोग किया। दूसरे उसकी रचनाओ से साफ पता चलता है कि फ्रान्स की राज्यक्रान्ति जनित सामाजिक क्रान्ति और मानवतावादी उत्साह ठंडे पड गए थे—इस स्थिति का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व कीट्स कर सके हैं। उनकी कविता मे समसामयिक जीवन के प्रति किसी प्रकार की रुचि के दर्शन नहीं होते। वे अतीत की ओर लौटते हैं और अपने को सौन्दर्य की सेवा में रत कर देते हैं, आने वाले कवियो पर भी कीट्स का प्रभाव कम नहीं था। ले हुन्ट, टामहुड, विन्थ्राप मैकवर्थ प्रेड, रिचार्ड हैरिस बरहम, टामस लावेल बेडोस तथा फेलीशिया डोरोथा हेमन्स और लेटीशिया एलीजाबेथ भी इसी धारा के उल्लेखनीय कवि और कवियित्रियाँ हैं।

अंग्रेजी की रोमान्टिक कविता का रीति-कालीन स्वच्छन्द-काव्य से सामंजस्य

यह एक आश्चर्यजनक संयोग है कि अंग्रेजी की रोमाण्टिक कविता और रीतिकालीन स्वच्छन्दतावादी काव्य की धाराएँ इंगलैंड और भारत मे समानान्तर चल रही थीं। यों तो अंग्रेजी की रोमान्टिक कविता का उत्कर्षकाल सं० १८५५-१८८९ (सन् १७९८-१८३२) तक माना गया है किन्तु इसके आगे पीछे भी रोमान्टिक ढंग की रचनाएँ लिखी गई थी और इस दृष्टि से हम लगभग सं० १८०७ से १९०७ अर्थात् एक शताब्दी तक इस धारा का अस्तित्व मान सकते हैं।* हमने रीतिस्वच्छन्दधारा का समय स्थूल रूप से सं० १७००-१९०० तक स्वीकार किया है। इस प्रकार शृंगारकाल के उत्तरार्ध की लगभग एक शताब्दी तक हम इंगलैण्ड और भारत मे स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्ति का विकास या प्रवाह देखते हैं। जैसे हम प्रारम्भ मे कह चुके हैं हमारा यह आशय तो है ही नहीं कि उनमे से कोई भी एक काव्यधारा दूसरे से प्रभावित हुई है, उसका तो प्रश्न ही नहीं उठता किन्तु एक सी परिस्थिति और वातावरण के बीच साहित्य के क्षेत्र मे एक सी प्रतिक्रियाओं का होना कोई अनहोनी बात नहीं और यही मूल कारण है जिससे हम अंग्रेजी की रोमाण्टिक पोइट्री और रीतिकाल की

---

* सं० १८०७ के आसपास रोमान्टिक काव्य का प्रारम्भ इसलिए मानते हैं क्योंकि यही समय है अंग्रेजी कविता मे जानसन के युग के प्रारम्भ का और जानसन के समय मे ही स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी या प्राकृतवादी (Romanticism और Naturalism) प्रवृत्तियाँ अंग्रेजी कविता मे आने लगी थीं। इसी प्रकार संवत् १९०७ के आसपास इस धारा की समाप्ति मानने का कारण यह है कि यद्यपि सभी महत्वपूर्ण कवि सं० १८८९ (सन् १८३२) तक रोमान्टिक ढंग की कविता लिख चुके थे फिर भी इसी शैली के अन्य अल्पमहत्वपूर्ण कवि सं० १९०७ तक इसी तरह की काव्य रचना कर रहे थे।

स्वच्छन्द शृंगारधारा में एक सीमा तक सामंजस्य पाते हैं। यहाँ हम संक्षेप में इसी सामंजस्य के स्वरूप को प्रस्तुत करना चाहते हैं।

रीतिस्वच्छन्द कविता रीतिबद्ध कविता के ही समान सामंतवादी जीवन और समाज की उपज है, उनके सृजन का वातावरण राजदरबार ही था परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध के लगभग प्रत्येक कवि ने दम घोंट देने वाले दरबारी वातावरण से मुक्ति प्राप्त करके ही काव्य रचना की है। रसखान, बोधा, घनआनन्द इसके प्रमाण हैं, आलम और ठाकुर राजप्रशस्ति से विरत ही रहे और अपने मन की मौज में कविता लिखा करते थे कुछ चाटुकारिता के लिए नहीं। द्विजदेव स्वयं अयोध्याधिपति थे पर सुरम्य प्राकृतिक वातावरण से ही वे प्रकृति-प्रेम के काव्य की प्रेरणा और गोपीकृष्ण-प्रेम परक काव्य-रचना की स्फूर्ति प्राप्त कर सके थे। अँग्रेजी की रोमान्टिक कविता भी समसामयिक पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ता के विरुद्ध विद्रोह के रूप में थी परन्तु जिस प्रकार वह समूचे जीवन को रूढ़ि और बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाले एक व्यापक राष्ट्रीय अथवा राजनैतिक आन्दोलन का अंग थी उस प्रकार रीतिकाल की स्वच्छन्द कविता न थी। कारण यह कि इस देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति अतिशय विषम थी और लोक में उनके विरुद्ध कुछ कर सकने की न तो क्षमता ही थी और न चेतना ही। जीवन और साहित्य की रूढ़ियों के प्रति विद्रोह जिस प्रकार अँग्रेजी के रोमान्टिक कवियों ने किया उसी प्रकार रीतिकाल के स्वच्छन्द कवियों ने भी। बोधा, घनआनन्द, ठाकुर आदि की अनेक उक्तियाँ प्रमाण-रूप में उपस्थित की जा सकती हैं।

दूसरी मुख्य बात यह है कि अँग्रेजी साहित्य में क्लैसिक युग की समाप्ति पर रोमाण्टिक युग का अभ्युदय होता है। कुछ समय तक अवश्य दोनों प्रवृत्तियाँ साथ-साथ चली चलती हैं जिसे हम सन्धिकाल या जानसन का युग कह आए हैं परन्तु बाद में रोमाण्टिक काव्य प्रवृत्ति विजयिनी होती है और क्लैसिक शैली के काव्य का युग समाप्त हो जाता है। हिन्दी के रीतिमुक्त कवि रीतिबद्ध कवियों के समानान्तर ही चल रहे थे, यह अवश्य है कि अधिकांश रीतिमुक्त कवि रीतिबद्ध काव्यकाल के उत्तरार्ध में ही पनपे जिससे इतना तो सूचित ही होता है कि रीति से बद्ध शास्त्रीय शैली का काव्य जब पर्याप्त विकसित और समृद्ध हो चला था तभी उसकी प्रतिक्रिया अधिक सघन रूप में हुई परन्तु ये रीतिमुक्त कवि ऐसे प्रबल प्रवाह का रूप न धारण कर सके जिसके आवेग में पुरानी रूढ़ि-रीतियाँ छिन्न-भिन्न हो समाप्त हो जातीं। यह कार्य तो विक्रम की बीसवीं शती में सम्भव हो सका जब भारतेन्दुकालीन श्रीधर पाठक, ठा० जगमोहनसिंह राय, देवीप्रसाद पूर्ण, मन्नन द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय, प्रसाद आदि कवियों ने कुछ तो समसामयिक जीवन की जागृति से, कुछ सामन्ती जीवन-क्रम की विकृतियों से, कुछ पाश्चात्य विशेषकर अँग्रेजी काव्य की स्वच्छन्द भावधारा से और कुछ अपनी प्रेरणा से अधिक सजीव, जीवन्त और सामाजिक जागृति का काव्य लिखा। हिन्दी की इस स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति का पूर्ण उत्कर्ष सुमित्रानन्दन पन्त आदि छायावादी कविता द्वारा छायावाद काल में दिखाई देता है। रीतिकाल के स्वच्छन्दमति कवि इन्हीं आधुनिकों के अग्रदूत और पूर्वज हैं इसमें सन्देह नहीं।

अँग्रेजी साहित्य में क्लैसिक कविता का युग, धार्मिक रूढ़िवादिता और सामाजिक अधःपतन का युग था जिसमें कविता रईसों के मनोविनोद का साधन होकर रह गई थी। राजदरबारों और रईसों के जीवन में भ्रष्टाचार, अपवित्रता, बेईमानी, कलाप्रियता, प्रदर्शन

प्रियता, कृत्रिमता और औपचारिकता का बोलबाला था। रीतियुग भी सामन्ती भोग-विलास और तज्जन्य सर्वत्रिक अध पतन का युग था। कला और साहित्य में कृत्रिमता तथा राजाओं-रईसों और नवाबों के ही ऐश्वर्य और भोगविलासपूर्ण जीवन का चित्र अंकित हुआ करता था। इस दृष्टि से हिन्दी के रीतिबद्ध कवि क्लैसिक कवियों के बहुत समीप थे। अँग्रेजी की क्लैसिकल कविता में लैटिन और फ्रेंच भाषाओं के साहित्यादर्शों का पालन हुआ करता था, फ्रांस के कला-विषयक आदर्श इंगलैंड में विशेष मान्य थे, उससे इन लोगों ने औपचारिक परिपूर्णता और चमक दमक तथा काव्य की सजावट सम्बन्धिनी बारीकियाँ ग्रहण की जिसके फलस्वरूप अँग्रेजी की क्लैसिक कविता में भी भाषा छंदादि सम्बन्धी कलात्मक अभिरुचि को ही विशेष महत्व दिया गया तथा सहजता और भावोन्मेष की उपेक्षा सी कर दी गई, कविता किसी आशय और अभिप्राय से रिक्त संवेदनाशून्य और खोखली हो चली थी, वह रईसों और राजदरबारों की ही चीज होकर सीमित भी रह गई थी, लोक अथवा सर्व साधारण से न उसका लगाव ही था और न उनके लिये वह लिखी ही जाती थी। वह 'टाउन पोइट्री' थी जिसके पाठक ड्राइंगरूम में बैठकर उसका आनन्द लिया करते थे। उनका साहित्य कॉफी हाउस, ड्राइंग रूम और राजनीतिक विषयों पर तर्क वितर्क का साहित्य था। कट-छँटकर सजी सँवरी प्रकृति का, नगरों के बड़े-बड़े भवनों और उनके खूबसूरत मनुष्य के कारनामों से भरे-पूरे उद्यानों और वाटिकाओं आदि का भी चित्रण हुआ करता था। उसमें कोई नैतिक शक्ति या आध्यात्मिक आवेश न था। इस प्रकार की उपचार-प्रधान और कृत्रिम कविता ही उस युग की कविता थी। समाज, धर्म आदि पर वे लोग लिखा करते थे पर उनकी कविता हृदय को स्पंदित करने के बजाय बुद्धि को ही थोड़ा सा कुरेद कर रह जाती थी। इसीसे जीवन को आपादचूड़ प्रभावित करने की क्षमता से वह शून्य थी। वस्तुओं के प्रति क्लैसिक कवियों का दृष्टिकोण भी सतही था, वे समस्याओं की तह में नहीं जाना चाहते थे, राजनैतिक विषयों पर वादविवादपूर्ण पैम्फलेट्स लिखे जाते थे और उपदेशात्मक कविता लिखने वाले लोग भी थे पर रचनात्मक शक्ति से सम्पन्न सच्ची सहृदयता और भावावेग का साहित्य वे लोग नहीं लिख रहे थे। काव्य के शैली पक्ष पर ही उनका मुख्य ध्यान था। ये लोग प्राचीन ग्रीक और लैटिन भाषा के काव्यादर्शों के अनुकरण को ही उच्च कोटि की काव्य-रचना माना करते थे। अंग्रेजी की क्लैसिकल कविता का जो स्वरूप ईसा की १८वीं शती के प्रथमार्ध में था वह लैटिन साहित्य के वर्जिल और होरेस के जमाने के साहित्य से बहुत मिलता-जुलता था। कवि और विद्वान शक्तिशाली संरक्षकों या आश्रयदाताओं पर आश्रित रहते थे। कविता में आलोचना-बुद्धि प्रधान हो गई थी तथा कवि और उनका काव्य एक कृत्रिम समाज की उपज थे और उनकी कविता स्वच्छन्द प्रेरणा और रचनात्मक प्रयत्न की निष्पत्ति न थी वरन् सचेतन भाव से लिखी गई एक कृत्रिम और आयास साध्य कलात्मक कृति थी। उसका भावना पक्ष दुर्बल था और उसमें कृत्रिमता की प्रधानता थी। रीतिस्वच्छन्द कवियों के पहले और उनके अपने जमाने में भी क्लैसिकल, शास्त्रीय या रीतिबद्ध शैली पर जो कवि कविता कर चुके थे या लिखते आ रहे थे उनकी भी प्रवृत्तियाँ बहुत कुछ इसी प्रकार की थीं। राजनैतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों से हिन्दी कविता के रीतियुग और अंग्रेजी कविता के क्लैसिक युग में जो अन्तर था वह तो था किन्तु बाह्य परिस्थितियों और तज्जन्य कवि-मनोभाव में भी मौलिक साम्य था। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि हिन्दी

के रीतिमुक्त शृंगारी कवियों पर अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों का या उन पर यहाँ के कवियों के प्रभाव की बात नहीं की जा रही है, उसकी तो सम्भावना भी विचारणीय नहीं परन्तु हम यह दिखाने की चेष्टा कर रहे हैं कि विविध भाषाओं के काव्येतिहास में एक सी परिस्थितियों में एक सी प्रवृत्तियों का उदय देखा जाता है जिसका कारण है समग्र विश्व में मानव मन की एकरूपता और इसी वृत्ति या मनोभाव-साम्य की दृष्टि से यहाँ पर दो देशों की एक सी काव्य प्रवृत्तियों का सामजस्य स्थापित किया जा रहा है। हिन्दी के रीतिबद्ध कवियों का युग भी अंग्रेजी के क्लैसिक कवियों के युग की ही भाँति रूढ़िबद्ध और सामाजिक, नैतिक आदि दृष्टियों से अध पतित हो रहा था, यहाँ का सामाजिक और नैतिक अध पतन वहाँ से किसी भी बात में कम न था जैसा कि हम प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ही विस्तार से दिखा चुके हैं। कविता भोगविलास-कामी रईसों और राजाओं के आमोद-प्रमोद का साधन थी, उसमें भी शब्दक्रीडा, शृंगारिकता और कृत्रिमता की प्रधानता थी, जीवन को आन्दोलित कर देने वाली ऊँचे आदर्शों से सपृक्त कोई बात उसमें नहीं कही जाती थी। नायक नायिकाओं की प्रेम केलियों का नानाविध चित्रण करके छिछली कामुकता या वासना का काव्य प्रभूत परिमाण में रचा गया। रीतिबद्ध कवियों में भी क्लैसिक कवियों की ही भाँति सस्कृत के प्राचीन रीतिग्रन्थों के अनुसरण पर रस, अलकार, पिंगल, नायिकाभेद आदि के ग्रन्थ लिखे। क्लैसिक कवियों ने फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक भाषाओं के क्लैसिक साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की, भारत एक बड़ा देश था जिसकी अपनी ही प्राचीन परम्पराएँ ग्रीक और लैटिन के समान समृद्ध और विशाल थीं फलत ये कवि दूर कहीं न जाकर अपने ही अतीत से प्रेरणा ले रहे थे, समसामयिक अन्यदेशीय काव्यादर्शों के ग्रहण की दृष्टि से यहाँ के रीतिकवि समीपस्थ देश फारस की फारसी शायरी से प्रेरणा ले रहे थे और अपने ही देश के मुगल राजदरबारों में प्रतिष्ठा प्राप्त फारसी शायरी का भी थोड़ा बहुत प्रभाव ग्रहण कर रहे थे। यह प्रभाव भाषा, अलकरण, शैली और भाव सभी पर न्यूनाधिक रूप में पड़ा जिस पर हमने छठे अध्याय में कुछ विस्तार से विचार किया है। फारसी प्रभाव और सस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुकरण करने के फलस्वरूप चमक दमक और सजावट से सम्बन्धित बारीकियों पर विशेष ध्यान दिया गया। रीतिबद्ध काव्य भी लोक जीवन से असम्बद्ध हो रईसों और शाहों के राज दरबार की ही चीज हो कर रह गया था। राजनीति से सम्बन्धित विषयों और सजी तथा कटी छँटी वाटिकाओं का वर्णन भले ही ये कवि न करते रहे हों पर नगर, सूर्य, चन्द्र, ऋतु, प्रकृति आदि का अननुभूत सौन्दर्य ही वे प्रत्यक्ष कराया करते थे और एक कृत्रिम तथा कल्पित दुनियाँ सामने खड़ी कर दिया करते थे। किसी प्रकार के हृदयस्पर्शी भाव को संवेदित न कर वे केवल आलकारिक कौशल द्वारा चमत्कार पैदा करने मात्र में ही वस्तु वर्णन या प्रकृति चित्रण की सफलता मान लिया करते थे। ये कवि भी पोप के समान मनुष्य द्वारा सँवारी गई प्रकृति 'नेचर मेथडाइज्ड' के चित्रण में ही उच्च कोटि की कला का अधिवास मानते थे। ऐसा दृष्टिकोण रखने के कारण स्वभावत इनकी कविता में भी किसी प्रकार की नैतिक शक्ति न थी तथा आध्यात्मिक आवेश से वह साधारणतया शून्य थी। नीरस ज्ञान चर्चा और शुष्क तत्वज्ञान की बातें ये कवि भी 'विज्ञानगीता' और 'देव-माया प्रपंच' ऐसे ग्रन्थों में कर लिया करते थे। पोप के 'ऐसे आन क्रिटिसिज्म' की तरह ये कवि भी काव्य के नियमों और विधि-विधानों पर ग्रन्थ लिखे गये हैं परन्तु अंग्रेजी के क्लैसिक कवियों में जहाँ एकाध

ने यह काम किया, शास्त्रज्ञता और आचार्यत्व के नाम पर हिन्दी मे शत शत कवियो ने समालोचना का आदर्श प्रस्तुत करने वाले ग्रथ लिखे जिन्हे रीतिग्रथ कहा गया है। अंग्रेजी के क्लैसिकल स्कूल के कवियों के ही समान हिन्दी मे रीतिबद्ध कवि भी काव्य रूढियो के ही परिपालन मे उच्चकोटि का कविकर्म समझा करते थे तथा बहुत से क्लैसिक कवि जिस प्रकार सरक्षको पर आश्रित रहते थे वैसे ही रीतिकाल मे रीतिबद्ध रचना करने वाले अधिकतर कवि राजदरबारो मे आश्रित कवि के रूप मे रहा करते थे। दोनो की रचनाएँ स्वच्छन्द प्रेरणा और रचनात्मक प्रयत्न की उपज न होकर एक कृत्रिम समाज की निष्पत्ति होकर रह गई थी।

जिस प्रकार अंग्रेजी मे ड्राइडेन और पोप तथा वर्ड्सवर्थ के युगो के बीच एक सन्धि युग उपस्थित हुआ जिसमे पुरातन और नूतन दोनो चले चल रहे थे और जो जानसन के युग के नाम से भी अभिहित किया गया है उस प्रकार का कोई सधियुग शृगार काल मे न आया, हाँ, आगे चलकर अवश्य हिन्दी काव्येतिहास मे भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग आये जिन्हे हम सक्रमण काल कह सकते हैं। उत्तर मध्ययुगीन हिन्दी काव्य मे तो रीतिबद्ध और रीति-स्वच्छन्द काव्य-धाराएँ एक साथ चलती रही। स्वच्छन्द कवि रीतिबद्ध कवियो को न तो पछाड ही सके और न उन्हे उखाड ही सके जिसका एक कारण यह था कि रीतिबद्ध कवि राजदरबारो मे जमे हुए थे और राजदरबारो मे उस प्रकार की रचना का सम्मान था। उधर स्वच्छन्द काव्य राजदरबारो से पृथक हटकर रचा जाता था, राजदरबारो की ओर से स्वच्छन्द वायुमण्डल मे आने की चेष्टा स्वच्छन्द कवियो मे प्रधान रूप से गोचर होती है, वह भी उनकी स्वच्छन्दता और प्रस्थान-भेद का ही द्योतन करता है। फलस्वरूप रीतिबद्ध काव्य का बिरवा अपनी भूमि पर अनवरुद्ध और अकटकित रूप से बढता रहा, वह ठडा तो तब पडता जब उसकी जमीन पर उसे पछाडा जाता। उसे ठडा करने वाले जब स्थान ही छोड चले तो उसके विकास मे बाधा ही क्या थी। यह कार्य तो समय और परिस्थितियो के फेर से आगे सम्पन्न हुआ पर इस काय की नीव रीतिमुक्त कवि अवश्य डाल गये थे। इनके काव्य को इनके जमाने मे पर्याप्त सम्मान हुआ परन्तु जन चेतना का प्रतिनिधित्व जिस प्रकार रीतिबद्ध कवि नही करते थे उसी प्रकार रीतिमुक्त कवि भी। रीतिमुक्तो की कविताएँ अधिकाश मे व्यक्तिनिष्ठ थी। लोक-परलोक की परवाह इनके कर्त्ताओ को न थी। पद-प्रतिष्ठा धन की भी इन्हें चिन्ता न थी। उधर अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवि जन-चेतना को लेकर चल रहे थे। उनके काव्यादर्शों और विचारो मे समसामयिक आन्दोलनो एव क्रान्तियो का प्रतिबिंब मिलता है, वे लोक के प्रति आँखें खोलकर चलने वाले प्राणी थे और उन्होने स्वच्छन्दता का अधिक प्रशस्त पथ चुना था। रीति युगीन स्वच्छन्द कवियो ने मुख्य रूप से प्रेम की दिशा ही चुनी और उसी मे अपनी स्वच्छन्द वृत्ति का अमन्द शक्ति के साथ परिचय भी दिया, थोडी बहुत स्वच्छन्दता उन्होंने भारतीय ग्राम्य अथवा जन-जीवन के चित्रो मे और सस्कारो को प्रस्तुत कर प्रदर्शित की और कुछ प्रकृति की मुक्त छटा के चित्रण द्वारा भी जैसा कि द्विजदेव, ठाकुर, बोधा, घनआनन्द आदि के काव्यो से प्रमाणित होता है परन्तु जनजीवन या चेतना अपने यहाँ इतनी प्रसुप्त थी अथवा जडीभूत हो चुकी थी कि उसकी जागृति का कोई प्रश्न ही न था। आश्रय-दाता और सामतवर्ग की प्रसन्नता के लिये रीतिबद्ध कवि काव्य लिखा करते थे, अपनी प्रसन्नता और सतुष्टि के लिये रीतिमुक्त 'लोग है लागि कवित्त बनावत मोहि

तो मेरे कवित्त बनावत'। इस प्रकार देशगत, राजनीतिक, सामाजिक आदि भिन्नताओं के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्यों में कुछ विभिन्नताएँ भी गोचर होती हैं। इसी प्रकार काव्य-क्षेत्र में इंगलैंड में जिस प्रकार प्राकृतवादी काव्य की धारा चल डगरी थी उसी तरह की कोई आन्दोलनकारिणी स्वच्छन्दवृत्तिधारिणी अन्य प्रवृत्ति यहाँ न थी। धर्मप्राण देश होने के कारण परम्परागत उपासना-पद्धति, भक्ति आदि का विरोध करने वाली संत काव्य की नाना धाराएँ अवश्य वही परन्तु उनका विरोध रीतिबद्ध या क्लैसिक कविता से न था। प्रकृति के प्रति और लोकजीवन तथा लोकगाथाओं के प्रति जैसा प्रगाढ अनुराग एलन रैमसे, स्काटलैंड निवासी जेम्स टामसन, कालिन्स, ब्लेक, गोल्डस्मिथ, ग्रे, बर्न्स, कूपर, टामस चैटरटन, मैक-फरसन, वर्ड्सवर्थ, वाल्टर स्काट, वायरन, शैली, कीट्स आदि में तथा काव्य रचना की जैसी घोर यथार्थवादिनी प्रवृत्ति जार्ज क्रैब आदि में मिलती है, हमारे रीति मुक्त कवियों में नहीं मिलती; ये अधिक भावनाजीवी थे और इन्हें अपने प्रेम से ही फुरसत न थी। प्रेम के चित्रण के सन्दर्भ में ही ये प्रकृति का चित्रण करते या अधिक से अधिक भावावेश में व्रज की वन्य शोभा का चित्रण करते पाये जाते हैं जैसा कि बोधा और घनआनन्द में देखा जा सकता है। खुली हुई प्रकृति को सानन्द अतृप्ति के साथ देखने की वासना द्विजदेव में अवश्य थी परन्तु उनको राजकीय व्यवस्थाओं में इस वृत्ति के विकास के लिये गुन्जाइश न थी फिर भी उनमें प्रकृति की स्वच्छन्द वर्णना पर्याप्त है। वन्य प्रदेशों, ग्राम जीवन, सीमांत प्रदेशों की लड़ाइयों, गड़रियों आदि के जीवन तथा समसामयिक विचारधाराओं का आकलन जहाँ अँग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों में मिलता है वहाँ रीतियुगीन स्वच्छन्द कवियों में इन बातों की ओर रुझान था परन्तु ये यहाँ प्रेम के उन्मत्तचालक और चकोर बने हुए थे और तड़प में ही जीवन का सार मानते थे तथा अपने अन्तर के एक से एक सुषमापूर्ण भावों और वृत्तियों का प्रसार दिखा रहे थे वहाँ अँग्रेज स्वच्छन्दतावादी बाह्य जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म, नगण्य से नगण्य और त्यक्त से त्यक्त वस्तु के प्रति अपनी दृष्टि का प्रसार कर रहे थे और उसके प्रति अपना अनुराग व्यक्त कर रहे थे। काव्य के वर्ण्य के सम्बन्ध में दोनों में नाना कारणों से पर्याप्त भेद था परन्तु वृत्ति की स्वच्छन्दता दोनों में समान थी। शैली की दृष्टि से जिस प्रकार 'क्लोज्ड कपलेट' को छोड़कर अंग्रेज कवि स्पेंसेरियन शैली के छन्द या नवीन शिथिल रोमाण्टिक टाइप के कपलेटों का व्यवहार कर रहे थे, बोधा, घनआनन्द, द्विजदेव आदि कवि भी दोहा-कवित्त-सवैया के संकीर्ण क्षेत्र से बाहर जा-जाकर अपना कौशल दिखला रहे थे। सड़े गले समाज के आदर्शों के प्रति लौकिक बाधाबन्धनों और मर्यादाओं के प्रति हिन्दी के स्वच्छन्द कवि भी तीव्र, कठोर और भर्त्सनापूर्ण दृष्टि रखते थे। भाषा-शैली आदि के क्षेत्र में भी नये प्रयोगों, नई व्यंजनाओं, अभिनव लाक्षणिकताओं तथा नई नई उपमाओं और कल्पनाओं का विधान जिस प्रकार इंगलैण्ड के स्वच्छन्द कवियों ने किया उसी प्रकार हिन्दी के रीतिमुक्त काव्यकारों ने भी। नई भावानुभूतियाँ, नये शिल्पविधान की ओर स्वयमेव ले जाया करती हैं। स्वानुभूति को काव्य में प्राधान्य मिलते ही भाषा-शैली विषयक रूढ़ियों से काव्य मुक्त हो जाता है। यह बात दोनों ही जगह देखने को मिलती है। स्वच्छन्दता की मूलवृत्तियाँ दोनों जगह समान थी— परम्परा में दोनों का विरोध था, स्वानुभूति काव्य की पहली शर्त के रूप में दोनों को मान्य थी, शैली-शिल्प पर दोनों ने कम ध्यान दिया था और कृत्रिमता से दोनों के कवि विरत रहने के लिये कृतसंकल्प थे, छोटी-छोटी रोमांचक कथाएँ जहाँ

रोमाण्टिक कवि लिख गये हैं वही स्वच्छन्द कवियो ने भी प्रेम के बड़े प्रबन्ध लिखे, रोमाटिक कवि जहां सौंदर्य को ही चिरतन जीवन समझते थे रीतमुक्ति कवि प्रेम को ही जीवन का सार मानते थे। इस प्रकार की और भी कितनी ही समानताएँ थी जिनकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं।

तृतीय अध्याय

रीति स्वच्छन्द काव्य का अध्ययन : भावपक्ष

•

*

१

रीति-स्वच्छन्द काव्य का अध्ययन : भाव-पक्ष

स्वच्छन्द कवियों का मूल वक्तव्य—प्रेम . प्रेमनिरूपण तथा प्रेमविषयक दृष्टिकोण

अपने देश मे जीवन के नाना विषयो यहाँ तक कि मानवी भावनाओ को भी शास्त्र का रूप देने की परम्परा रही है। हमारे देश के तत्त्व-चिंतक दार्शनिक सूक्ष्मताओं और अतल गहराइयो तक जाने के लिए प्रसिद्ध हैं। जहाँ वे अलौकिक तत्त्वो की गूढतम मीमासा मे प्रवृत्त हुए हैं वही वे लौकिक विषयो की सूक्ष्म विवेचना मे भी दत्त-चित्त हुए हैं। लौकिक एव उपयोगी विषयो को लेकर कितने शास्त्र बन चुके हैं परन्तु कर्म या कर्त्तव्य तथा योग आदि विषय भी अपने यहाँ शास्त्रीय चिंता के आधार बने हैं। ऐसा करते हुए विषय या भाव का निरूपण, उदाहरण, वर्गीकरण–सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद-प्रभेदो का निर्धारण करने की पद्धति रही है। साहित्य के क्षेत्र मे रस, अलकार, ध्वनि, शब्द-शक्ति, छन्द आदि के पृथक्-पृथक् शास्त्र बने हुए हैं जो इसी तथ्य के प्रमाण उपस्थित करते हैं, धर्म और भक्ति ऐसी भावनाओ ने भी इन तत्त्व-मीमासकों के हाथ 'शास्त्र' का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार हमारे जीवन मे सर्वत्र परिव्याप्त प्रेम तत्त्व भी शास्त्र या दर्शन की कोटि तक पहुँचा दिया गया है। नाना धर्म-सम्प्रदायो मे रति या प्रेम भाव की बहुविध विवेचना मिलेगी। रति को धर्म से सपृक्त कर लौकिक अलौकिक रतियो के कितने ही भेदोपभेदो (शान्ति, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा, आसक्ता आदि) का निरूपण किया गया है। नारदीय भक्ति-सूत्र (जिसे प्रेम दर्शन भी कहा गया है), श्रीमद् गोस्वामी रूप विरचित उज्ज्वल नीलमणि एव श्री हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु आदिक ग्रन्थो मे तथा उपनिषदो मे यह प्रेम नाना प्रकार से विस्तारपूर्वक विवेचित हुआ है। देशी विदेशी कितने ही अन्यान्य विद्वानो एव मनोवैज्ञानिको ने अलौकिक एव पार्थिव प्रेम की बहुविध विवेचना की है। हमे इस समस्त प्रेम निरूपण की चर्चा नहीं करनी है क्योकि रीति स्वच्छन्द कवियो ने जैसे काव्यक्षेत्र मे किसी के द्वारा निर्दिष्ट पथ या रूढ़ि का अन्धानुधावन हीन समझकर छोड दिया था वैसे ही प्रेम के क्षेत्र मे भी औरो की वाणियो को महत्त्व न देते हुए अपने अन्त करण की आवाज को ही प्रमाण ठहराया। रसखान ने तो स्पष्ट कह भी दिया है कि नारदादि विचारकों ने इस विषय को बडा तूल दे दिया है

तथा इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह उनके बौद्धिक ऊहा-पोह का ही परिणाम अधिक है, हृदयगत अनुभूति का प्रकाश कम। ऐसी बुद्धिबोधित विचारणा तात्विक होते हुए भी उन्हें पसन्द न थी—

'स्वारथ मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल॥ (प्रेमवाटिका)

इसी कारण रीति स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम का निरूपण अनुभूति के मार्ग पर चलकर किया है, उनका प्रेम-निरूपण भाव-भावित है।

रीति स्वच्छन्द-धारा के कवियों ने किसी प्रेम-सम्बन्धी दर्शन का निर्माण नहीं किया, इस धारा का प्रत्येक कवि स्वतः प्रेमी था, प्रेम उसके जीवन से होकर गुजरी हुई चीज थी, अनेक कवियों के लिये प्रेम ही सर्वस्व था, उनका दीन और ईमान था। उन्होंने अपने जीवन में प्रेम किया था और उसके लिये सब कुछ उत्सर्ग करना सीखा था। जिस प्रेम के प्रति उनकी इतनी निष्ठा थी, जिस प्रेम-भावना के प्रकाशन में उन्होंने अपनी पूरी सामर्थ्य से काव्य लिखा उसी प्रेम के अनुभवों को निचोड़ रूप में उन्होंने जब तब यत्र-तत्र लिख दिया है। रसखान ही अपवाद हैं जिन्होंने क्रमिक रूप से प्रेम-तत्व पर कुछ विचार किया है अपनी प्रेम-वाटिका में अन्यथा सभी कवियों ने स्फुट रूप से यथावसर अपनी प्रेमानुभूतियों से उत्पन्न विचारों को छन्दबद्ध किया है। किसी गहरी अनुभूति से प्रेरित हो जब तब वे ऐसी पंक्तियाँ लिख गये हैं जिनमें प्रेम-सम्बन्धी कतिपय तात्विक बातें आ गई हैं। ऐसे ही स्फुट कथनों के आधार पर हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि में प्रेम क्या है। स्फुट रूप में और अव्यवस्थित कथनों तथा अनायास कही गई उक्तियों से ही सही उनके प्रेम-सम्बन्धी विचारों से अवगत हो लेना सर्वथा हितावह है क्योंकि उनकी ये धारणाएँ, उनके दृष्टिकोण और उनकी प्रेम-भावना के आख्यान में अतिशय सहायक होंगी।

रसखान का प्रेम-निरूपण

'प्रेम-वाटिका' में प्राप्य प्रेम-तत्व का निरूपण किसी शास्त्रीय पद्धति पर नहीं हुआ है। उनके कथन भी उनके अनुभवों के ही सार-रूप हैं। रसखान की दृष्टि में प्रेम की परम निधि राधा और कृष्ण ही हैं तथा वे ही प्रेम की वाटिका को हरी-भरी रखने वाले माली-मालिन हैं। वे कहते हैं कि प्रेम का नाम लेने वाले तो बहुत हैं पर उसे जानने वाला कोई नहीं, यदि मनुष्य प्रेम को जान ले तो संसार में दुःख क्यों पाये।

प्रेम का स्वरूप—प्रेम परमात्मा के ही समान है, जिस प्रकार 'जगदीश' अकथनीय और अनिर्वचनीय हैं उसी प्रकार प्रेम भी। अनिर्वचनीयता के कारण प्रेम और हरि को एक बतलाना ऊपरी दृष्टि से देखना हुआ परन्तु रसखान तात्विक दृष्टि से भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रेम हरि से ही उत्पन्न उन्हीं का रूप है जैसे सूर्य और धूप। परमात्मतत्व के ही समान प्रेम भी सूक्ष्म और इन्द्रियों से परे है। प्रेम कमल-नाल के रेशों से भी अधिक सूक्ष्म है तथा कृपाण की धार से भी अधिक कठोर और निर्मम है, वह सीधा भी है और टेढ़ा भी है और दूर भी है। ये ही गुण ईश्वर के भी हैं इसीलिये प्रेम 'हरिरूप' है। रसखान ने सच्चे प्रेम को सांसारिक विकारों से ऊपर बतलाया है। शुद्ध प्रेम मानवीय अन्तःकरण

के काम-क्रोध-मद मोह आदि विकारो से रहित तो होता ही है वह साथ ही साथ गुण, रूप, धन, यौवन, स्वार्थ, काम, लाभ-सापेक्ष भी नही होता । सच्चा प्रेम निरीह और निर्विकार होता है, इससे भी उसकी ईश्वरीयता ध्वनित होती है । इसी प्रकार दाम्पत्य-सुख, विषयानन्द, पूजा, ध्यान, निष्ठा आदि से भी शुद्ध प्रेम पृथक है । मित्र, स्त्री, भ्राता, पुत्र आदि के प्रति मनुष्य का जो सहज स्नेह सम्बन्ध होता है उससे भी शुद्ध प्रेम भिन्न है क्योंकि ससार के ये स्नेह-सम्बन्ध भी सप्रयोजन होते हैं । जो बिना कारण के *(निष्प्रयोजन)* हुआ करता है, जिसमे प्रिय को ही सर्वस्व मानने की प्रवृत्ति हुआ करती है, जो सदा समान और एकरस होता है, जिसमे इच्छा या वासना का लेश नही होता तथा जो सबकुछ सहने को तत्पर होता है वही सच्चा प्रेम है—

इक अगी बिनु कारनहि, इकरस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ।।
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एकरस चाहि कै, प्रेम बखानौ सोय ।।

ऐसा प्रेम कोई आसान चीज नहीं, उसकी साधना बडी कठिन होती है, उसमे प्राण बेचैनी से तडपते है परन्तु निकलते नहीं, केवल उलटी साँस चलती है—'प्रान तरफि निकरै नहीं केवल चलत उसाँस'—प्रेम की इसी कठोरता को लक्ष्य करके लोगो ने इसे नेजा, भाला, तीर, तलवार, फासी आदि क्या कुछ नहीं कह डाला है फिर भी प्रेम पर रीझने वाले और मर मिटने वाले प्रेम से महत्तर भी कुछ है ऐसा मानने को तैयार नहीं होते । प्रेम ऐसा दिव्य और अनुपम पदार्थ है जिसे पाकर स्वय हरि की भी चाह नही रह जाती । रसखान कहते हैं कि प्रेम मे दो मन एक होते सुने गए हैं परन्तु जब दो तन भी मिलकर एक हो जायँ तभी सच्चा प्रेम समझना चाहिये । तात्पर्य यह है कि प्रिय और प्रेमी मे ऐक्य—मन का ही नही तन का भी—भेदवृत्ति का लोप, मैं-तू की भावना का मन के ही नहीं वे तन के धरातल पर भी तिरोभाव प्रेम कहलाता है । प्रेम की ऐसी सूक्ष्म भावना रसखान के ही बूते की बात थी । मानना पडेगा कि स्वच्छन्दवृत्ति वाले प्रेमी कवियो मे रसखान की सी स्वच्छ, पुनीत और भव्य प्रेम-भावना को लेकर चलने वाला दूसरा कोई नही । प्रिय का गुण सुनने, उसका कीर्तन करने तथा दर्शन पाने आदि से हृदय मे जिस वृत्ति का उदय होता है उसे प्रेम कहते हैं । इसके दो भेद हैं—अशुद्ध और शुद्ध । अशुद्ध प्रेम स्वार्थ मूलक होता है, शुद्ध प्रेम निस्स्वार्थ और सहज । शुद्ध प्रेम जैसा पहले बता चुके हैं सरस, स्वाभाविक, स्वार्थरहित, स्थिर, एकरस और महान हुआ करता है, उसमे किसी प्रकार की हीनता या तुच्छता अकल्पनीय है ।

प्रेम की विशेषता—रसखान ने *प्रेम की सबसे बडी विशेषता उसकी कठिनता या* कठोरता को माना है । प्रेम का पथ सीधा सरल नहीं होता । उसमे जान की बाजी लगानी पडती है तभी दिल का दिल से मेल होता है—'जा बाजी बाजी जहाँ दिल का दिल से मेल ।' अपना सिर काटकर प्रेम मे चढा देना पडता है—

सिर काटौ छेदौ हियो, टूक टूक करि देहु ।
पै याके बदले बिहँसि, वाह वाह ही लेहु ।।

प्रेम की कठोरता का ही स्मरण कर अनेक प्रेमी कवियो ने प्रेम को नेजा, भाला, तीर, तलवार और फाँसी तक कह डाला है, इसे खड्ग की धार के समान घातक भी बतलाया है परन्तु सच तो यह है कि प्रेममार्ग की यह करालता ही प्रेमी को अमरता प्रदान करती है। सब कुछ समर्पित कर देने के बाद जो कुछ मिलता है उसमे जीवन का चरम आनन्द होता है। प्रेम मे जो मरता है वही सदा जीता है—

प्रेम फांस मे फँसि मरै, सोई जियै सदाहि।
प्रेम-मरन जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहि॥

इसलिए भले ही इस पन्थ मे चलने वाले पथिक के प्राण तडपते हो, विसर्जन न होते हो, साँसे उल्टी चलती हो फिर भी इस मार्ग के श्रेयस्कर होने मे सन्देह नही क्योकि प्रेम को पा लेने के बाद लोक तो क्या परलोक की भी चिन्ता छूट जाती है—'जेहि पाये बैकुण्ठ अरु हरिहू की नहि चाहि।' प्रेम की दूसरी विशेषता यह है कि सच्चा प्रेम लोकशास्त्र की मर्यादाओ का अतिक्रमण करता हुआ चलता है, विधि-निषेध के बन्धनो से मुक्त हुआ करता है। भारतीय वाङ्मय मे शुद्ध प्रेम का चूडान्त दृष्टान्त व्रज की गोपियाँ हैं जिन्होने असह्य सकटो के होते हुए भी प्रेम का मार्ग प्रशस्त किया है और यही कारण है कि स्वच्छन्द कवियों ने अपनी प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति के लिए गोपियो के प्रेम को सबसे प्रभावशाली माध्यम स्वीकार किया है। ससार के किसी भी प्रेमी ने विधि निषेधो एवं लोक-वेद आदि की मर्यादाओ का कभी पालन नही किया। लोक लाज को ढोते रहकर प्रेम नही किया जा सकता। तीसरी बात यह है कि प्रेममार्ग को जो पकड लेता है उसकी दिशा निर्दिष्ट हो जाती है, उसका मन किसी प्रकार के भ्रम मे धूमिल नही होता और उसका प्रणय भाव दिन-दिन रग ही पकडता है, उसमे किसी प्रकार का फीकापन नही आने पाता—

कबहूँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहूँ नहि मद॥

प्रेम की महिमा—प्रेम का माहात्म्य-वर्णन करते हुए रसखान लिखते हैं कि वह सागर के समान अतल और अपार होता है, उसकी किसी से उपमा नही दी जा सकती। जो उसके समीप आ जाता है वह उसे छोडकर नही जाता। प्रे. का क्षेत्र ही ऐसा है कि वह किसी प्रकार के ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता, प्रेम के साम्राज्य मे ज्ञान चल ही नही सकता। प्रेम का अथाह सागर ज्ञान के बोहित के लिए मरुभूमि सिद्ध होता है। ज्ञानार्जन में किया गया सारा श्रम व्यर्थ होता है क्योंकि बिना प्रेमास्वाद के समस्त ससार फीका लगता है। कबीर के ही स्वर मे रसखान ने भी कहा है कि शास्त्रज्ञान द्वारा पडित हो जाने और कुरान पढकर मौलवी बन जाने से क्या होता है, यदि ससार मे आकर मनुष्य ने प्रेम नहीं जाना तो उसने जाना ही क्या? प्रेम-तत्त्व को जो नहीं समझता, समझना चाहिये कि उसने ससार मे कोई विशेष चीज समझा ही नही। प्रेम तो ऐसी वस्तु है जिसे समझ लेने पर संसार मे कुछ जानना शेष नही रह जाता। प्रेम के ऐसे अखण्ड महत्त्व की कल्पना रसखान सरीखे प्रेम-प्रवण कवि ही कर सकते थे—

शास्त्रन पढि पडित भए, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यो नहीं, कहा कियो रसखान॥

जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं जान्यो जात बिसेस ।
सोई प्रेम जेहि जानि कै, रहि न जात कछु सेस ।।

रसखान ने 'प्रेम' को वेदों, पुराणों, शास्त्रों और स्मृतियों का सार कहा है। उनके मत मे प्राचीन भारतीय वाङ्मय की सारी महत्ता प्रेम की ही पुष्ट नीव पर आधारित है। ईश्वरोपलब्धि के तीन प्रसिद्ध मार्गों—ज्ञान, कर्म और उपासना को रसखान अच्छा नही समझते। ये तीनों मार्ग ऐसे हैं जिसके पथिक अहभाव से ग्रस्त होते हैं, एक प्रेम ही ऐसा मार्ग है जिसका पथिक अहभाव का तिरोभाव करके चलता है। वह अहम् का परम् मे लय करके चलता है। उसका अहम् और परम् एक होता है—

ज्ञान कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल ।
दृढ़ निश्चय नहिं होत बिन, किये प्रेम अनुकूल ।।

वेदों को सब धर्मों का मूल बतलाया गया है इसलिये समस्त धार्मिक आचार-विचारो में मूल नियामक वेद ठहरते हैं फलत वेद ही प्रमाण हैं और वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है किन्तु प्रेमी रसखान इस मत से सहमत नही—

वेद मूल सब धर्म यह कहैं सबै श्रुतिसार ।
परम धर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार ।।

प्रेम के इस परम धर्म को अगीकार करने के कारण ही तो रसखान प्रेमियो मे शिरोमणि माने गये, ऐसे एक प्रेमी मुसलमान पर भारतेन्दु जी तो करोड़ो हिन्दू निछावर करने को तैयार थे। प्रेम की महिमा के गायक रसखान ने कहा है कि प्रेम के सामने ससार मे और सब तुच्छ है, जो प्रेम के लिए मरता है वही सदा जीवित रहता है। प्रेम को उन्होंने मुक्ति से महत्तर कहा है। प्रेम के उदित हो जाने पर ससार के समस्त नियम टूट जाते हैं। पूरी की पूरी सृष्टि हरि के आधीन है किन्तु हरि ऐसे अधिनायक भी प्रेम की अधीनता स्वीकार कर उसे महिमा प्रदान करते हैं। प्रेम की महिमा का इससे अधिक ऊँचा व्याख्यान क्या हो सकता है। प्रेम को पाने पर स्वर्ग-अपवर्ग कुछ भी अभिलषित नही रह जाता, स्वय हरि की प्राप्ति की आकाक्षा भी शेष हो जाती है—

(क) ज्ञान, ध्यान, विद्या, मती, मत, विश्वास, विवेक ।
बिना प्रेम सब धूर है, अग जग एक अनेक ।।

(ख) हरि के सब आधीन पै हरी प्रेम आधीन ।
याही तें हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन ।।

(ग) जेहि पाये बैकुठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि ।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि ।।

इसी प्रेम ने कितनो को ऊँचा उठा दिया है कितनो को अमर कर दिया है। लैला ने इस प्रेम को जाना था, यशोदा, नन्द ग्वाल-बाल ने भी इस प्रेम का दिव्य स्वाद पाया था। गोपियो को प्रेम के कारण जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका तो कहना ही क्या। वे तो प्रेम की अनन्य आराधिकाएँ हो गई हैं। उस प्रेम रस की माधुरी कुछ-कुछ उद्धव को भी मिली पर अब ससार मे दूसरा कौन है जिसे वह दिव्य माधुर्य प्राप्त हो सके। प्रेम की

महिमा अपार है, उसका रस अनिर्वचनीय है। इस प्रकार से प्रेम-तत्व का असाधारण निर्वचन रसखान ने अपनी प्रेम-वाटिका में किया है। सच पूछिये तो प्रेम-वाटिका का एक-एक दोहा प्रेम का एक एक मधुर वृक्ष है।

आलम का प्रेम-विषयक दृष्टिकोण

मुक्तक रचनाओं के संग्रह 'आलमकेलि' से आलम के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण का कुछ पता नहीं चलता परन्तु उनके प्रबन्ध ग्रन्थ 'माधवानल कामकंदला' तथा 'श्याममनेही' अवश्य इस सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण को मुखर करते हैं।

माधवानल प्रबन्ध के चौथे खण्ड में राजा विक्रम माधव के प्रेम की परीक्षा लेते हैं उस समय माधव प्रेम सम्बन्धी जो विचार प्रस्तुत करता है उनमें हम आलम के ही प्रेम सम्बन्धी आदर्शों की झाँकी देख सकते हैं। उन्होंने माधव के द्वारा इस प्रकार के विचार व्यक्त कराये हैं—जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम नहीं वह मूर्ख और मतिहीन है, वज्र-हृदय है। पूर्व जन्म में जो पुण्य कर चुका होता है वही इस जन्म में प्रेम के पथ पर पाव देता है। प्रेम ही मनुष्य और पशु के बीच की भेदक रेखा है। जिसके शरीर में प्रेम का तेज होता, वही ब्रह्मज्ञानी भी हो सकता है। यह शरीर अंधकूप की तरह है, उसमें क्या कुछ अच्छा बुराई है यह पता नहीं चलता किन्तु जब उसमें नेह का दीपक जलता है तब उसके रूप और गुण का वास्तविक बोध होता है। इस प्रकार प्रेम में ही मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों का अधिवास है। रीतिबद्ध कवि इस विषय पर ऐसी गम्भीरता और मर्मज्ञता से कहता नहीं पाया जाता—

> सो मतिहीन वज्र तनु होई। सग्रह नेहु न जोवै कोई।
> पूरब जन्म कोटि जो करई। तब सो नेकु पथ पगु धरई॥
> मानुस पसु अंतर यह अहई। माधव सोइ नेहु जो बहई।
> ब्रह्मज्ञान पावै पुनि सोई। जिहि तन तेज नेह की होई।
> अंध कूप मैं देहु गुप्त प्रकट कोई नहि लखहि।
> जानै दीपक नेहु, तब सब देखै रूपगुन॥

इन कथनों के बीच जो चौथी अर्धाली है वह प्रेम सम्बन्धी सूफी आदर्श की झलक लिये हुए है। लौकिक प्रेम में डूबे हुए प्राणी को अलौकिक सत्ता का भी भान होता है और एक दिन उसका प्रेम अलौकिक सत्ता की ओर मुड़ भी पड़ता है। परन्तु जैसे रसखान और घनआनन्द ने बड़ी सफाई से आत्मसात रूप में यह सूफी प्रेम सिद्धान्त सामने रक्खा है वैसे ही आलम ने भी परन्तु प्रेम के भारतीय स्वरूप का रंग ही उनमें सर्वोपरि है। प्रेम-विषयक एक समसामयिक आदर्श होने के नाते सूफी विचारधारा की यह थोड़ी सी झलक अनायास उनकी रचना में आ गई है, यह झलक ऐसी है कि बाज बाज इसे न भी पहचानें तो आश्चर्य नहीं, यह झलक देशी लिबास में जो आई है। दूसरी बात जो आलम कहते हैं वह यह है कि प्रेम संसार में दुःख का कारण होता है। प्रेम में स्थिरता नहीं रहती। प्रेम चंचल मन का व्यापार होने के कारण स्थिर और निष्ठापूर्ण होने में समय लेता है। यदि उसमें स्थिरता आ भी जाय तो वियुक्ति का खतरा रहता है। दिलों में प्रेम जग जाने के बाद यदि वियोग होता है तो उसकी पीड़ा मर्मान्तक ही समझिये। बस इसी कारण उसे विदग्ध और अनुभव

लोगो ने कृपाण की धारा कहा है। प्रेम पथानुधावन के जो दुःख हैं उन्ही के कारण प्रेम-पथ के सच्चे पथिक कम ही होते हैं पर एक बार जो इस प्रेम के रस या आसव को पी लेता है उसके पैर फिर डगमग नही होते। माधवानल ऐसा ही प्रेमी था, जब तक उसमे ज्ञान आदि से उत्पन्न वैराग्य था तभी तक था, एक बार वह लौकिक प्रेम का अनुगामी हुआ कि फिर हुआ। फिर वह ईश्वर, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य सब कुछ भूल जाता है। आलम प्रेम के सम्बन्ध मे धर्म, जाति, कुल, पेशे आदि ऊपरी बातो को बाधक समझते थे। प्रेमी को इन सबमे विश्वास नही करना चाहिये। आलम मन की रीझ को ही मुख्य समझते थे और 'जो जिसके मन मे बस जाय' के सिद्धान्त को मानने वाले थे। विक्रम ने माधव से जब वेश्या-प्रेम को निषिद्ध बतलाया तब माधव का जो उत्तर होता है वह मानो आलम कवि की ही प्रेम-विषयक मान्यता का उद्घोष है—

जो जेहि राता सो तेहि भावहि। तेहि बिनु सून दृस्टि जगु आवहि ॥
सप्त समुद्र सलिता जलु बहई। चातक स्वाति बूंद कौ चहई ॥
तारा गगन भरे दुति मदा। दुखित चकोर रहै बिनु चन्दा ॥
जो जिहि राता होइ, निसि वासर सो मन बसहि ॥
ता बिनु जियै न कोइ, बिछुरत हर जल मीन ज्यौं ॥

इस प्रकार माधवानल प्रबन्ध के आधार पर निष्कर्ष रूप मे आलम के प्रेम सम्बन्धी विचार इस प्रकार है—प्रेम कुल और जाति के बन्धनो से परे होता है, वेश्या से एक ब्राह्मण का प्रगाढ प्रेम दिखलाकर आलम ने प्रेम की इसी जाति, कुल, व्यवसाय निरपेक्ष स्थिति का परिचय दिया है। वे बाधा-बन्धन रहित स्वच्छन्द प्रेम के पक्षधर थे। प्रेम के बन्धन को ससार की कोई भी शक्ति नही तोड सकती। प्रेम अत्यन्त कठिन होता है क्योकि उसमे प्राणान्तक वेदना सहनी पडती है, जो इसे झेलने को तैयार हो वही जाँबाज इस पथ का असली पथिक है। निष्ठा के बिना प्रेम एक मजाक है, छिछली रसिकता है।

स्यामसनेही के आधार पर यह ध्वनित होता है कि सच्चा प्रेम प्रेम-पात्र के हृदय मे अवश्य पीडा जाग्रत करता है। दोनो ही प्रबन्धो मे आलम ने प्रिय और प्रेमी को एक दूसरे के प्रति अनुरक्त दिखलाया है, प्रेम के इस समरूप को दिखाते हुए आलम ने प्रेम की अपेक्षाकृत स्वस्थ पद्धति को अपने काव्य मे प्रस्तुत किया है। रुक्मिणी ने अपने छोटे से पत्र मे जो थोडे से अक्षर लिखे कृष्ण ने उसे बहुत करके माना और समझा। आलम के कृष्ण तो प्रेम को ससार के सभी तत्वो से उच्चतर तत्व समझा करते थे—

पूरन ब्रह्म प्रेम मय जानहु। सब ऊपर प्रेमहि पहिचानहु ॥ (स्यामसनेही)

घनआनन्द की प्रेम-सम्बन्धिनी दृष्टि

घनआनन्द ने प्रासगिक रूप से कुछ छन्द ऐसे अवश्य लिख दिए हैं जिनमे उनकी प्रेमविषयक धारणा स्पष्ट रूप से कथित हुई है पर विधिवत प्रेम-तत्व का व्याख्यान-विवेचन *कवि ने किसी भी कृति मे नही किया है* जैसे रसखान ने अपनी *प्रेम-वाटिका* मे किया है। घनआनन्द की 'प्रेम-पद्धति' नामक रचना इस दृष्टि से भ्रम मे डालने वाली है।

प्रेम सम्बन्धी कतिपय सैद्धान्तिक कथन घनआनन्द के 'सुजानहित,' नामक सुजान-प्रेम के काव्य मे अनायास आ गए हैं। प्रेम की ही विशद विवृत्ति जिस कृति के ५०७ कवित्तो मे

आद्योपान्त हुई हो उनमें छ-आठ प्रेम सम्बन्धी तात्त्विक कथनों का आ जाना कोई अनहोनी बात नहीं। प्रेम-तत्त्व का निरूपण करने वाले ऐसे छन्दों में घनआनन्द ने इस प्रकार की बातें कही हैं—संसार में जो प्रेम है उसका मूल-उत्स स्नेही हरि और राधा में देखा जा सकता है। संसार में सच्चा स्नेही दुर्लभ है, यदि सच्चा स्नेही हो भी तो उसका जीवन भीषण संकटों से आपन्न हुआ करता है। स्नेह का मार्ग अत्यन्त सीधा होता है उसमें चातुर्य का लेश भी अपेक्षित नहीं। प्रेम में वासना का तिरोभाव ही हुआ रहता है और निष्ठा या अनन्यता आ चुकी रहती है, इसमें सर्वात्मभाव से आत्म-समर्पण करना पड़ता है। इसी कारण प्रेम का मार्ग कठिन भी है। लोगों से अहंभाव छोड़ते नहीं बनता, सर्वात्म भाव से समर्पण करते नहीं बनता और छल आदि विद्यमान रहता है किन्तु प्रेम में कपट के लिये गुंजाइश नहीं। इसमें बहुत वेदना सहनी पड़ती है। प्रेमी की चाह (प्रीति) रहनि और गति आदि सभी कुछ अटपटी होती है, व्यथा ही उसका जीवन होता है और संयोग भी उसे अधीर करता है। प्रेम रहित व्यक्ति का संसर्ग नहीं करना चाहिए क्योंकि वह संसर्ग के योग्य नहीं होता, वह दोष ही देखता है, गुण नहीं। उसका हृदय मलिन होता है। प्रेम का पन्थ बहुत ऊंचा है, ज्ञानपन्थ से भी ऊँचा और अतिशय महत्त्वपूर्ण।[1]

प्रेम का महत्व—घनआनन्द प्रेम को संसार का और जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं, इसके बिना उनकी दृष्टि में जीवन व्यर्थ है। इसी से संसार सार्थक है और इसी के बिना अर्थहीन। प्रेम के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं, प्रेमहीन व्यक्ति का हृदय मलिन होता है और मलिन बातों या कामों में ही वह लगा रहता है, अच्छाई को वह देख नहीं सकता—

> नेह-रस-हीन दीन अन्तर मलीन-लीन,
> दोष ही में रहैं गहैं कौन भाँति दै गुनै।

ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिये क्योंकि वे सदसद्-विवेक से शून्य होते हैं—

> मही-दूध सम गनैं, हंस-बग भेद न जानैं।
> कोकिल-काक न ज्ञान, काच मनि एक प्रमानैं॥
> चन्दन-ढाक समान, रांग-रूपौ सम तोलैं।
> बिन बिवेक गुन-दोष, मूढ़-कवि ब्यौरि न बोलैं॥
> प्रेम नेम हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
> सपने हूं न बिलम्बियें, छिन तिन ढिग आनन्दघन॥

इस प्रेम का महत्व इसी एक बात से प्रत्यक्ष है कि संसार में जो बहुत सारा प्रेम उमड़ता और उफनता गोचर हो रहा है वह हरि-राधा के अलौकिक प्रेम का ही लौकिक प्रकाश है। उन्हीं के अविकल प्रेम का एक कण है जो किसी प्रकार इस सृष्टि में आ गया और जिसके कारण इस संसार में प्रेम का ज्वार आ गया है—

> प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार,
> बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।

[1] सुजानहित : छन्द ११६, ४१४, २६७, २६६, २१५, ८०, २८५।

ताकी कोऊ तरल तरग संग छूट्यो कन,
पूरि लोक लोकनि उमंगि उफनायो है।
सोई घनानन्द सुजान लागि हेत होत,
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायो है।
ताहि एक रस ह्वै विबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हें हेरें सरसायो है॥

वहाँ तो (कदाचित उस लोक में) प्रेम का अपार पारावार लहराता हुआ गरज रहा है जिसके विचार मात्र से बेचारा हृदय द्वार तक जाकर लौट आया है। उसी की तरल तरंगों से छूटा हुआ प्रेम का एक कण इस सृष्टि में आ गिरा है जिससे लोक-लोक पूर्ण हो उठे हैं, उमड़ और उफन उठे हैं। वही प्रेम-कण है जो प्रेम का महोदधि होकर लोक-लोकों को आप्लावित किये हुए हैं। इस लोक में जितना भी प्रेम गोचर हो रहा है उसी अनन्त प्रेम के कनूके का प्रसार समझना चाहिए। सुजान के प्रति घनआनन्द में जो इतना उत्कट अनुराग रहा है वह भी अन्ततः उसी प्रेम का ही प्रसार है। यहाँ थोड़ा सा रहस्यवाद की झलक है, हल्की सी सूफी भावना का बिम्ब है, लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम से सम्बद्ध जाकर दिया गया है फिर भी थोड़ा सा अन्तर सूफी प्रेम भावना में और घनआनन्द की इस भावना में देखा जा सकता है। घनआनन्द लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर जाने की बात नहीं करते, लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम के प्रकाश रूप में ही देखने और समझने की बात कहते हैं। घनआनन्द आगे चलकर जो सुजान-प्रेमी से कृष्ण-प्रेमी हो गये उसे सूफी प्रभाव मानने की भूल न करनी चाहिए। घनआनन्द की दृष्टि में प्रेम का पथ महामान्य ज्ञान पथ से भी ऊँचा है। इसमें प्रेमी और प्रिय देखने को ही दो हुआ करते हैं पर वस्तुतः वे एक होते हैं। राधा जिस प्रकार कृष्ण को रटते-रटते कृष्ण-रूप हो गई थी। प्रियमयता प्रेमी को प्रिय-रूप में ही परिणत कर देती है। प्रेम अपने आप में एक शुद्ध और निर्मल वृत्ति है, इस वृत्ति का धारणकर्ता होने पर वासनाएँ विलुप्त हो जाती है, अन्तःकरण ऐसी रसवृष्टि में आप्लावित हो उठता है—

चदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू रर, एक देखिवे कौ रहै द्वै।
ज्ञान हू तें आगें जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै॥

प्रेम का मार्ग सीधा तो है परन्तु कठिन भी है—प्रेम का मार्ग अत्यन्त सीधा है, सीधा इस दृष्टि से है कि उसमें ज्ञान और कर्म मार्गों के समान भीषण बौद्धिकश्रम और खटराग नहीं, वह हृदय का निश्छल व्यापार है, सबहिम भाव से प्रिय को आत्म-समर्पण कर दो और प्रिय तुम्हारा हो जायगा। इसमें अनन्यता पहली शर्त है, छल-छद के लिए प्रेम-पथ नहीं है, निर्विकार भाव से पूरी निष्ठा के साथ अशेष रूप में बिना कुछ चाहे हुए अपने आपको अपने सर्वस्व को अर्पित कर देने का ही नाम प्रेम है। इन बातों में यदि कमी आई तो प्रेमी की तैयारी में खोट मान ली जायेगी। इसलिए यह मार्ग निश्चलप्राणियों के लिये ही है, जो कपटी लोग हैं वे इस मार्ग पर नहीं चल सकते। सूर की गोपियों ने भी अनन प्रेम मार्ग को 'राजपथ'

और तुलसीदास ने 'राज-डगर' कहकर पुकारा था। घनआनन्द ने भी 'अति सूधो सनेह को मारग है' वाले छन्द में यही बात कही है। परन्तु घनआनन्द इस मार्ग की कठिनाइयों से अनवगत नहीं, उनकी वेदना-परक रचनाओं को पढ़कर तो यही लगता है कि यह आद्यन्त यातनाओं का ही मार्ग है और पीड़ा या व्यथा का ही दूसरा नाम प्रेम है। सच तो यह है कि घनआनन्द से अधिक कौन इस मार्ग की यातनाओं को जान सकता है। घनआनन्द के काव्य को पढ़कर आप इस बात का अनुभव किये बिना न रहेंगे कि यह पथ महा आग्नेय है। उन्होंने बड़ी आत्मीयता से और दुनिया वालों की कान में जैसे चुपके से कह दिया है—

> बुरी जिन मानौ जो न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
> रसना के छाले परें प्यारे नेह-नाँव छ्वैं ॥

यह बात प्रेम के सिद्धान्त ग्रंथ रस या नाट्य ग्रन्थ पढ़ने वाले रीति-शास्त्री न कभी लिख सकते हैं न इतनी तड़प के साथ कह ही सकते हैं। प्रेमी की गति बड़ी विलक्षण हुआ करती है, उसकी 'रहनि' से आप प्रेम मार्ग की अनन्त और अकथ्य भीषणता का अनुमान कर सकते हैं—

> उठि न सकत, ससकत नैन-बान बिधे,
> इते हू पै विषम विषादखुर खू करें।
> पूरे पनपूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
> प्रीति बोझ बापुरे भए हैं दवि कूबरे।
> संकट समूह में बिचारे घिरे घुटैं सदा,
> जानौ न परत जान! कैसें प्रान ऊबरें।
> नेही दुखियानि की यहै गति घनआनन्द,
> चिंता मुरझनि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥

प्रेम पन्थ की इन्हीं कठिनाइयों के कारण यह मार्ग वैसे रायज तो बहुत है परन्तु सच्चे प्रेमी बहुत ही कम मिलते हैं। सच तो यह है कि सच्चा स्नेही संसार में दुर्लभ है, यदि सच्चा स्नेही मिले भी तो विधाता उसके जीवन को कष्टमय बनाये बिना नहीं रहता। इस कष्ट का मूल कारण वियोग है, प्रेम में वियोग अनिवार्य है और यह वियोग ही जीवन को विषाक्त कर देता है। वियोग की वेदना संयोग में भी पीड़ा नहीं छोड़ती और अधीर करती रहती है, जो इस मार्ग का पथिक हो उसे विरह की अनन्त ज्वालामयी यातनाएँ सहने के लिए तैयार रहना चाहिए—

> इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बात लिलै।
> तिहि देखि सकै न बड़ो विधि कूर, वियोग-समाजहि साजि पिलै।
> घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तो कहौ मन काहि मिलै।
> अमिले रहिबो तें मिले तें महा, यह पीर मिलाप में धीर गिलै।

प्रेम पन्थ को पार करने का उपाय—जो इतने कष्टों को झेल सकता है वही इस पन्थ को पार कर सकता है। जो इस पन्थ पर आना चाहता है वह दो-चार बातें गिरह बाँध ले—उसे सब कुछ अर्पण करना होगा, कुछ भी पाने की इच्छा न रखनी होगी, परम दुर्गति के लिए तैयार रहना होगा, धीरज-प्रेम और निष्ठा में कभी न आने देनी होगी, अन-

DAMAGED BOOK
न्यता रखनी होगी, निष्कपट रहना होगा क्योंकि 'तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।' इस मार्ग के पथिक को सर्वथा आत्म-समर्पण करना होगा, अपना सब कुछ भूल जाना होगा। इसमे जो बेसुध हो जाता है, सब कुछ भूल जाता है वही चलता है, जो सब कुछ की याद रखता चलता है वह थक कर बैठ जाता है। अपनी अमोघ विरोधाभासात्मक शैली मे घनआनन्द ने असाधारण सुन्दरता मे इस तथ्य का प्रतिपादन किया है—

'जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पन्थ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै ॥'

प्रेम मे सब कुछ भूल जाना होगा, चेतना विलुप्त कर देनी होगी तभी कुछ पाया जा सकता है पर पाने की आशा भी न की जाय यही प्रेम का उच्चतम आदर्श है। इसी कारण कालांतर मे प्रेम मार्ग के अनन्य पथिक घनआनन्द की कृति में हम ऐसी ही पाते हैं। वे प्रिय का हित चाहते हैं अपना नही, उन्हे कष्ट मिले यह उन्हें मंजूर है पर प्रिय को मिले यह उन्हे असह्य है।

बोधा का प्रेम-निरूपण

बोधा ने अपने 'इश्कनामा' मे प्रेम-तत्व के निरूपण की चेष्टा की है। अन्य कवियों की अपेक्षा बोधा इस तत्व को समझाने में विशेष प्रवृत्त हुए हैं कि प्रेम क्या होता है, उसका पन्थ कैसा है, उसका महत्त्व क्या है आदि आदि। यद्यपि उनका यह प्रेम-विवेचन शास्त्रीय, सम्पूर्ण और सांगोपांग नही परन्तु फिर भी प्रेम के सम्बन्ध मे दिये गये उनके निष्कर्ष पर्याप्त प्रौढ हैं, उनसे असहमत नही हुआ जा सकता। प्रेम की नाना अवस्थाओं को पार करने के पश्चात् उसके तात्विक निरूपण की ओर प्रवृत्ति बोधा के कवि स्वरूप का एक विशिष्ट पक्ष कहा जा सकता है।

'प्रेम को पन्थ कराल महा'—प्रेम की करालता के सम्बन्ध मे तो बोधा की यह उक्ति हिन्दी जगत मे अत्यन्त प्रसिद्ध है—

अति छीन मृनाल के तारहु ते तहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाँडो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहुँ ते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पन्थ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है।

बोधा ने अन्यत्र कहा है कि प्रेम की कोठरी मे ताला लगा हुआ है, इसमे सब नहीं जा सकते—'प्रेम कोठरी कुलुफ लख, बोधा कठिन अपार।' प्रेम पथ की कठिनता सिद्ध करने के लिए बोधा ने अनेक पौराणिक उदाहरण दिये हैं—

यह प्रेम को पथ हलाहल है सु तो वेद पुरानन गावत है।
पुनि आँखिन देखो सरोजन लै नर संभु के सीस चढ़ावत हैं ॥

आगे बोधा ने बताया है कि प्रेम मे जो त्याग और बलिदान करता है उसी को उसका यथोचित परिणाम भी मिलता है, इस सन्दर्भ मे उन्होंने प्रह्लाद का उदाहरण दिया है। एक जगह बोधा ने प्रेम को ऐसा सौदा कहा है जिसमें आदमी बिक या लुट भी जाता है। [illegible] मे बहुत तकलीफ सहनी पड़ती है, शारीरिक व्यथा के अलावा मानसिक दुख भी सहना

पड़ता है। 'विरह-बारीश' मे भी बोधा ने इसी तथ्य की आवृत्ति करते हुए कहा है कि प्रेम मे 'विरह' सबसे कठिन हुआ करता है। विरह की व्यथा कैसी दु:सह हुआ करती है इसकी व्यजना करते हुए वे लिखते हैं—

जो नरदेह देह दे स्वामी। तौ सनेह जिन देय विरानी।
जो सनेह करनी बस देही। तौ जिन बिछुरै मीत सनेही॥
जौ कदापि बिछुरै मन भावन। तौ जिय जाय चला तेहि दावन॥
छाती फटि दो टूक न होई। तौ किमि जानब बिछुरा कोई॥

इसीलिये बोधा बार-बार मनाते हैं कि हे भगवान जिससे नेह का नाता हो वह न बिछुड़े क्योंकि उसमे बिछुड़ने पर तो राम ही नजर आता है। शरीर छूट जाय तो छूट जाय पर प्रेम नही छूटता और उसकी पीडा कहते नही बनती।

अपनी व्यथा कहो मत—बोधा की राय मे प्रेम को अपनी व्यथा अपने तक ही सीमित रखनी चाहिये, उसे यथासम्भव गुप्त रखना चाहिये क्योंकि दूसरे लोग उसे नही समझ सकते। ससारी जन विरह व्यथा से एकान्त अनभिज्ञ रहते हैं तथा वे उस दुख को बांट नही सकते। विरह की पीडा को तीन व्यक्ति ही समझ सकते हैं—स्वय विरही, वह जिसने विरह झेला है और प्रिय जिससे प्रेम किया जाता है, और कोई इस पीडा को नही समझ सकता। इस बात को अन्योक्ति-पद्धति के सहारे भी बोधा ने बड़े सुन्दर ढग से कहा है—'**मालती एक बिना भ्रमरी इतै कोऊ न जानत पीर हमारी।**' बोधा ने बार बार अपनी पीडा को अपने तक ही रखने की सलाह दी है—

(क) काहू सो का कहिबो सुनिबो कवि बोधा कहे मे कहा गुन पावत।
जोई हैं सोई है नेकी बदी मुख से निकसे उपहास बढावत॥
(ख) बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहैं अरगाइ कै।
यातें भले मुख मौन धरे उपचार करे कहूँ औसर पाइ कै॥
(ग) कवि बोधा कहै मैं सवाद कहा को हमारी कही पुनि मानतु है।
(घ) कवि बोधा इतै पै हितू न मिलै मन की मन ही मैं पचै रहिये।
गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करि काहू सों का कहिये॥

कोई हमारी पीडा सुनकर हमसे सहानुभूति करने वाला नही है। उलटे मजाक सभी बनायेंगे या सुनकर दूर हट जायेंगे। हमे जो पीड़ा होती है वह तो हमारा जीव ही जानता है। यह सलाह बड़े सीधे और स्वाभाविक ढग से दी गई है—अच्छा हो यदि हम अपनी विपत्ति खुद झेलें, सहे और समझें, उसे किसी से न कहे। अपनी पीडा को मन ही मन पचा लेने की सलाह बड़ी पक्की है इसमे सदेह नहीं—

(क) बोधा कहे को परेखो कहा दुनियां सब भास की जीभ चलावत।
(ख) मुंदते ही बनै कहते न बनै तन मैं यह पीर पिरैबो करै।

विरह मे प्रेम परिपक्व होता है—बोधा ने कहा है कि प्रेम का वास्तविक आनन्द विरह मे ही है, विरह से ही प्रेम निखार पाता है, प्रेम का सार विरह मे है। बोधा स्वत वियोग की अग्नि मे तपे थे और उन्होंने अनुभव किया था कि विरह मे ही प्रेम का असली रग चढता है।

अनन्यता—सच्चा प्रेम एक के ही प्रति होता है—'लगनि वहै थल एक लगि दूजे ठौर बहै न'—अनन्यता प्रेम का मूल मन्त्र है। प्रेम जिसके प्रति हो जाता है उससे फिर विमुख नहीं होता—'जाहि को जाके हिये ते दई वह छोडे बनै नहि छोडते आवत।' इसी मे प्रेम और प्रेमी दोनो की विशिष्टता और महत्ता है। प्रेम मे दो को छोड तीसरे की अपेक्षा नही। प्रेम एक ही के प्रति होता है दूसरे के लिये वहाँ जगह नही, दूसरे अगर दस-बीस-पचास मिलें तो उनसे क्या लेना देना—'जो न मिलो दिलभाहिर एक अनेक मिले तो कहा करियें लै।'

प्रेमी लोक की परवाह नही करता—प्रेमी उसी को पाना चाहता है जिससे उसका दिल लगता है और जिससे जिसका दिल लग जाता है वह उसे छोडता नही, दुनिया भले ही कुछ कहती रहे, उसे दुनियाँ की परवाह ही क्या ? जो प्रेम करता है उसे लोक की लाज नही हुआ करती। लोक, परलोक, गाँव, घर और शरीर की चिन्ता करने वाला कोई जड या मूसक ही हो सकता है प्रेमी हृदय नहीं। बोधा का स्पष्ट मत है कि जिसे लोक का भय हो वह भूलकर भी प्रेम के रास्ते पर न चले—

> लोक की लाज औ सोच प्रलोक को वारियें प्रीति के ऊपर दोऊ।
> गाँव को गेह को देह को नातो सनेह मैं हातो करै पुनि सोऊ।
> बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
> लोक की भीति डेरात जो भीत सौ प्रीति के पैंडे परै जनि कोऊ॥

प्रेम सदा से नियमो और बन्धनो को तोडता आया है, नियम और सयम की शृखलाओ और लोक लाज की अर्गलाओ को तोडने मे ही प्रेम का मुख उज्ज्वल और महत्वमय होता है। यह बात प्रेमियो के जीवन दृष्टान्तों और काव्य-परम्परा मे प्राप्त वर्णनो से स्वत. सिद्ध है। जिस समाज मे ये बन्धन जितने जटिल और दृढ हैं उस समाज मे प्रेम ने उतनी ही उच्छृखलता से आचरण किया है और सहृदय समाज मे प्रेम की यह मुक्तिकामिता कभी भी हेय दृष्टि से नही देखी गई है। बोधा की गोपिका का यह सकल्प भी इस बन्धन की शृखला को विशृखल करने के ही उद्देश्य से प्रेरित है—'लाज सो काज कहा अनिहै व्रजराज सों काज बनाइबे ही है।' बोधा के प्रबन्ध मे भी हम देखते हैं कि लीलावती को लोक की लज्जा नही और परलोक की चिंता नही, उसने माधवानल तक को लोक भय की अवहेलना करने की सीख दी थी और अपार दुखो को झेलने का साहस सकलित करने की सलाह दी थी। प्रेमी निडर होता है, प्रेम की डगर पकड लेने पर भले बुरे कुछ की चिंता नही करता।

प्रेम मे निर्वाह ही मुख्य है—प्रेम कर लेना तो बोधा के मत मे सरल है पर करके उसे निभाना कठिन है, बडे-बडे कठिन काम सरलता से किये जा सकते हैं परन्तु प्रेम का निर्वाह बहुत कठिनता से होता है—

> (क) नेहा सब कोऊ करै कहा करै मैं जात।
> करिबो और निबाहिबो, बडी कठिन यह बात॥
> (ख) मतिल बाहिबो सिह सिर, बोधा कवि किरवान।
> प्रीति रीति निरबाहिबो, महिर मसविकल जान॥

प्रेम किसी का भी हो किसी से भी हो सार वस्तु यह है कि प्रेम ऐसा करना चाहिए

जो निभ सकें, ऐसे ही प्रेमी की ससार सराहना करता है। दुनियाँ मे बहुत सी बडी कही जाने वाली बाते सरल है किन्तु प्रेम करके निभा ले जाना बहुत कठिन है—

(क) है न मुसक्किल एक रती नरसिंह के सीस पै साग उबाहिबो।
दैबे को कोटिक दान अनेक महेश लौं जोग हिये अवगाहिबो।
बोधा मुसक्किल सोऊ नहीं जो सती ह्वै सँभारै सखीन को दाहिबो।
एकहि ठौर अनेक मुमक्किल यारी कै प्यारी सों प्रीति निवाहिबो॥

(ख) याते सुन यारी दिलदायक। कीजै प्रीति निवहिबे लायक॥
प्रीति करै पुनि ओर निबाहे। सो आशिक सब जगत सराहै॥

प्रेम के चार प्रकार—'विरह-वारीश' मे प्रेम सम्बन्धी सुभान के नाना प्रश्नो के उत्तर देते हुए बोधा ने चार प्रकार के प्रेम का होना बतलाया है—आँख, कान, बुद्धि और ज्ञान का प्रेम। इस आधार पर विरही-जन क्रमश चार प्रकार के होते हैं—पतग, कुरग, माधवानल और भृगीकीट। प्रेम के अनेक आधार हुआ करते हैं, कोई रूप के वश होकर प्रेम करता है, कोई गुण के वश होकर, कोई धन के वश। यह तो मन की लगन और रीझ की बात है। सूरज और कमल, चद्रमा और चकोर, दीपक और पतग की प्रीति आँख लगने की प्रीति है। चुम्बक और लोह जैसी जड वस्तुओ मे भी प्रीति देखी जाती है। एक प्रकार का प्रेम श्रुति (कान) के माध्यम से भी होता है जैसे नाद को सुनकर कुरग का प्रेम जो तत्क्षण अपने आपको अर्पित कर देता है। प्रेम के ये सभी प्रकार सरस और श्रेष्ठ हैं, कोई किसी से कम नही। जिसका मन जिस प्रकार के प्रेम मे उलझा है वह उसी मे सुखी रहता है।

प्रेम मे विश्वास आवश्यक है—विश्वास या प्रतीति से ही प्रेम पल्लवित होता है उसी प्रकार जैसे यज्ञ मे मनुष्य इन्द्रपद पाता है, योग से जीवन, दान से दौलत और तप से राज्य।

प्रेम मे अभिमान नहीं हुआ करता—बोधा का कहना है कि प्रेम मे अभिमान या गुमान के लिए कोई स्थान नही, प्रेम तो त्याग का ही दूसरा नाम है। जब तक अहकार होता है तब तक प्रेम का सच्चा स्वरूप प्रकट नही होता। प्रेम के बाण से आहत हुआ व्यक्ति निरभिमान हो जाता है। यह बात उन्होंने दो मानवती और मगरूर नायिकाओ को सम्बोधित करते हुए असाधारण खूबसूरती से कही है—

(क) बोधा सुहाग औ सोभा सबै उडि जैबे के पथ पै पाँउ न दीजै।
मानि लै मेरो कही तू लली अँहै नाह के नेह मथाह न कीजै।

(ख) बोधा गुमान भरी तब लौं फिरिबो करौ जौ लौं लगी नहिं पूरी।
पूरी लगे लघु सूरन की चकचूर ह्वै जात सबै मगरूरी॥

प्रेम का महत्त्व—प्रेमी प्रेम से श्रेष्ठतर कुछ नही समझता, मुक्ति भी उसके लिए प्रेम के समक्ष हेय और नगण्य है इसीलिए उसकी दृष्टि मे प्रेम की महिमा चरम है, वह कहता है—

'दिलदार पै जौ लौं न भेट भई तब लौं तरिबो का कहावतु है।'

अर्थात प्रेमी को प्रिय से भेंट करने मे जो सुख है वह मुक्ति लाभ मे नही।

कुछ अन्य बातें—बोधा ने कुछ स्थलों पर अत्यन्त कामुकतापूर्ण बातें लिखी हैं। उदाहरण के लिये उन्होंने एक छंद में गुप्त रूप से की जाने वाली रति और कामकेलि की उत्कृष्टता घोषित की है—

> काँपत गात सकात बतात है साँकरी खोरि निसा अँधियारी।
> पातहू के खरके छरकै धरकै उर लाय रहै सुकुमारी।
> बोध मैं बोधा रचै रसरीति मनो अग जोति चुवाई तिह बारी।
> यौं दुरि केलि करै जग में भर धन्य वहै धनि है वह नारी॥

ऐसी अनैतिक और कामुकतापूर्ण उक्तियाँ और उनकी प्रेम भावना को दाग लगाने वाली सिद्ध हुई हैं। उनकी यह अति ऐन्द्रिक वृत्ति एक अन्य स्थल पर इस प्रकार परिस्फुट हुई है—

> जित बाल तितै सुखी हाल सबै जित बाल नहीं तित हाल दुखी।
> दुख ठौर सबै विधि ग्रौर रचे सुख ठौर अकेलो सरोजमुखी॥

स्पष्ट ही ये छंद नैतिक दृष्टि से बोधा के पक्ष में नहीं जा सकते परन्तु एक स्त्री कामी हृदय से ये उद्गार किस अकुंठ भाव से निकले हैं यह अवश्य देखने योग्य हैं। विरह वारीस में इसी प्रकार के भाव अथवा विचार और भी देखे जा सकते हैं, उदाहरण के लिए उनका यह कहना कि ससार मे और जिस अमृत की बात लोग करते हैं वह सब झूठी है, असली अमृत तो तरुणी की रति मे है। इसी प्रकार 'अमृत कहाँ है ?' का उत्तर देते हुए उनकी यह उक्ति भी उनकी मनोभावना पर खासा प्रकाश डालती है—

> उन्नत उरोजन मे दृगन सरोजन मे,
> भौंहन के चोजन मे मन्द मुस्कान मे।
> रसना दसन हू मे कचुकी कसन हू मे,
> अजन रसन हू मे बेनी सुखदान मे।
> बेंदी के मसक्के मे नाहीं के कसक्के मे,
> रोम के ससक्के मे रस की रिसाल मे।
> भूले कोऊ ग्रत ही बतावत हैं बुद्धिसेन,
> अमृत बसत है विशेष नवलान मे॥

इस प्रकार बोधा की कामिनी सम्बन्धिनी यह कामुकतापूर्ण दृष्टि इस बात का द्योतन करती है कि उनकी निगाह मे तरुणी का क्या महत्त्व था, कदाचित वह कामतृप्ति के साधन से अधिक महत्त्व न रखती थी। बोधा के प्रबन्ध ग्रन्थ 'विरह वारीश' को देखने से पता चलता है कि उन पर सूफी प्रभाव भी थोड़ा अवश्य था। दो एक जगह उन्होंने इश्क-मजाजी और इश्कहकीकी की चर्चा करते हुए सूफी प्रभावापन्न कुछ बातें लिखी हैं। सूफी मत मे सासारिक प्रेम से आगे बढ़कर ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचा जाता है, लौकिक प्रेम एक प्रकार से अलौकिक प्रेम का सोपान है, इस प्रसिद्ध सूफी विचारधारा को उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से लिख दिया है—

> (क) इश्क हकीकी है फुरमाया। बिना मजाजी किसी न पाया॥
> (ख) सुन सुभान यह इश्क मजाजी। जो हूंढ एक इश्क दिलराजी॥

इस सम्बन्ध मे एक बात समझ रखने की है कि बोधा ने इश्क मजाजी और इश्क-हकीकी मे से पहले प्रकार के इश्क को अर्थात् सासारिक प्रेम को पकड लिया था, इश्क-हकीकी का तो उन्होने नामोल्लेख मात्र किया है। अलौकिक प्रेम का तो उनके काव्य मे दर्शन तक नही होता, वे शुद्ध सासारिक जीव थे और लौकिक तथा वासनामय प्रेम ही कदाचित उनके जीवन का सर्वस्व था इसलिये मात्र इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी की चर्चा कर देने से उन्हें सूफी मत का पोषक मान लेना भारी भूल होगी।

ठाकुर के प्रेम सम्बन्धी विचार

ठाकुर कवि ने अपने प्रेम सम्बन्धी विचारो को रसखान या बोधा की भाँति स्पष्ट रूप मे छन्दबद्ध नही किया है। उनकी रचना मे वर्णित प्रेम-भावना के ही आधार पर हम उनकी मान्यताओं के सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्ष निकाल सकते है। बोधा के ही समान ठाकुर की दृष्टि मे भी प्रेम के लिए निर्वाह परम आवश्यक तथा सबसे महत्वपूर्ण बात है क्योंकि प्रेम कर लेने मे कोई कठिनाई नही, कठिनाई तो उसके निर्वाह् मे हुआ करती है—

(क) प्रीति करं मे लगं है कहा करि कै इक ओर निबाहिबो बांको।

(ख) यह प्रीति की रीति सुनो हम पं करि प्रीति नहीं फिरि तोरतु है।

प्रेम करने जाकर दुनियाँ मे कितने ही लोगो ने धोखा खाया है, वे प्रेम का निर्वाह् नही कर सके हैं। प्राय प्रिय निस्नेह और उपेक्षापूर्ण देखे गए हैं, स्वय कृष्ण का ही प्रेम इसका प्रमाण है, देखिए ठाकुर की गोपिका कृष्ण के प्रेम के सम्बन्ध मे क्या कह रही है—

हरि लावी औ चोरी बखानत ते अब गाढे परे गुन और कढे जू।

उनके इसी आचरण के कारण कितनी ही गोपियाँ न घर की रह गईं और न घाट की—

छोडि पतिव्रत प्रीति करी निबही नहि भौन सुनी हम सोऊ।
माया मिली नहि राम मिले दुविधा मे गये सजनी सुन दोऊ॥

इसी प्रेम सम्बन्धी वैषम्य के कटु अनुभव के आधार पर ठाकुर प्रेम के क्षेत्र मे निर्वाह को सर्वोपरि महत्व देते पाये जाते है, इस प्रकार उन्होने उसे मूल समस्या पर ही प्रहार किया है। दूसरी बात उन्होंने यह कही है कि प्रेम की पीडा वही जानता है जिसने स्वय वियोग सहा है—'पर और मिले-बिछुरे की बिथा मिलि कै बिछुरं सोइ जानतु है।' तीसरी बात यह है कि प्रेमी को आस्था रखनी चाहिए, अपने प्रेम पर अवश्य विश्वास रखना चाहिए। अधीर चित्त से प्रेम के पथ पर नही चला जा सकता। ठाकुर के मत मे चौथी बात यह है कि मानवीय चरित्र की महत्ता उसकी दृढता मे है, मधुप वृत्ति अथवा चचलता मे नही। देखिए इस तथ्य को ठाकुर की गोपियाँ कितनी प्रभावशालिनी भाषा मे कह रही हैं—

पिगरो न लागे ऊधो चित्त से चदोवा फटे,
बिगरो न सुधरं सनेह सरदन को।
वैर प्रीति रीति जासों जैसी जहाँ मानि लियो,
एक सी निबाहिबो है काम मरदन को॥

गोपियों में यह दृढ़ता थी तभी वे इस प्रकार की बातें कह सकी हैं—

> धिक काम जो दूसरी बात सुनै अब एक ही रंग रहो मिलि डोरो ।
> ऊधो जू वे अँखियाँ जरि जाँय जो सांवरो छाडि तकैं तन गोरो ।।

पाँचवी और अन्तिम बात ठाकुर की यह है कि प्रेम में परिणाम की चिन्ता नहीं की जानी चाहिए, न बदनामी का भय होना चाहिए और न अन्य किसी आपदा की परवाह—

> (क) मुमर चोट की भाँति कहा बजि के अब मूँड दियो ओखरी में ।
> (ख) कवि ठाकुर नेह के नेजन की उर में अनी आनि लगी सो लगी ।
> अब गाँवरे नाँवरे कोई धरौ हम साँवरे रंग रँगी सो रँगी ।।

द्विजदेव की प्रेम विषयक धारणा

द्विजदेव एक सरस हृदय कवि थे, उनका काव्य निजी जीवन की किसी प्रेम सम्बन्धिनी सबल प्रेरणा से प्रणोदित न था फिर भी उन्हें रीझने वाला हृदय प्राप्त था । प्रेम सम्बन्धी कोई सिद्धान्त वाक्य उनकी रचना में नहीं पाये जाते, उनके काव्य के आधार पर यही कहा जा सकता है कि उनके मतानुसार प्रेम में प्रेमीजन क्या नहीं दे डालते ? गोपियाँ थीं जो मनमोहन का थोड़ा सा रूप लेकर हृदय ऐसा हीरा दे डाला करती थीं—

> लैं लैं कछु रूप मनमोहन सौं बोर ।
> वै अहीरिनैं गँवारी देति हीरन बटाई मैं ।।

प्रेम में वैषम्य प्राय होता है जो प्रेमी के लिए असह्य हो जाता है । गोपियों को कभी कभी आपस में एक दूसरे के प्रति और कभी मुरली के प्रति वैर-भावना से अभिभूत दिखलाया गया है । तीसरी बात यह है कि प्रेम प्रेमी को असाधारण मनःस्थिति में ला पटकता है, प्रेमी को बेहोशी आ जकड़ती है, वह जड़वत् या चित्रवत् हो जाता है, लोक-लाज की बाधा उसे घेर लेती है, अजीब सी प्रसन्नता छाई रहती है, संयोग और वियोग दोनों स्थितियों में विरह की दुर्दशाएँ नाना प्रकार के आघात कर-कर के प्रेमी चित्त को मग्न किये बिना नहीं रहती । लेकिन वही प्रेम प्रेमी चित्त में साहस का भी संचार करता है, उसके मनोरथ, उसकी उमंगें, उसका प्रेमोन्माद उसे अतुल शक्ति से भर देता है । बेचैनी होती है तो व्यथाओं को सहने की शक्ति भी हाथ लगती है । सच्चा प्रेमी वही है जो विरहजन्य उद्विग्नता और क्षोभ की चरम मनोदशा में पहुँचकर भी अपनी प्रेम-निष्ठा में फर्क नहीं आने देता । प्रेम में सर्वस्व समर्पण करना पड़ता है, प्राप्ति या भोग की सारी आकांक्षाएँ समाप्त कर देनी पड़ती हैं, सर्वात्मभाव से आत्मदान के लिए उसे सतत तैयार रहना पड़ता है । इसके बिना इस मार्ग का पथिक सच्चा पथिक नहीं ।

२

प्रेम और शृंगार के आलंबन तथा उनका वर्णन : रूप एवं सौन्दर्य वर्णन

काव्य में आलम्बन विभाव को ही वास्तविक रसभूमि कहा गया है क्योंकि यदि आलम्बन न हो तो रस की सारी चर्चा ही व्यर्थ है। रस-व्यंजना के लिए आलम्बन की उपयुक्तता परम आवश्यक है। ये आलम्बन विविध रूप और अनन्त हो सकते हैं, विविध रसों के लिए विविध आलम्बन स्वीकार भी किए गये हैं, परन्तु शृंगार का ही 'रसराजत्व' अथवा प्राधान्य मान लेने के कारण हिन्दी में 'आलम्बन' शब्द नायक-नायिका अथवा प्रेमी-प्रेमिका के लिए रूढ़-सा हो गया है। स्वच्छन्द शृंगार धारा के कवियों के आलम्बन दो प्रकार के हैं, एक तो उनके निजी या व्यक्तिगत प्रेम के आलम्बन जैसे कृष्ण, गोपियाँ, राधा, सुजान, सुभान, ठाकुर की सुनारिन आदि। दूसरे प्रकार के आलम्बन हैं पर-प्रेम के आलम्बन जैसे माधवानल, कामकंदला, लीलावती, रुक्मिणी आदि। कृष्ण, राधा, गोपियाँ आदि का स्वच्छन्द कर्त्ताओं ने जब तटस्थ भाव से वर्णन किया है, उनके पारस्परिक प्रेम की झाँकियाँ दिखाई हैं। उस अवसर पर उनके जो वर्णन किए गये हैं वे भी इसी दूसरी कोटि में आयेंगे। यहाँ पर इन प्रेमालम्बनों के रूप, सौंदर्य और उनके प्रभाव की चर्चा की जायगी जो स्वच्छन्द कवियों द्वारा पर्याप्त विशद रूप में वर्णित हुई है। प्रेमी कवि सदा से प्रेम-पात्र के रूप-सौन्दर्य का अत्यन्त उत्कर्षपूर्ण एवं आसक्ति-समन्वित वर्णन करते आये हैं। जिसके प्रति सर्वस्व निछावर कर दिया जाता है वह तीनों लोकों की रमणीयता से भी परे होता है, उसके समान सौन्दर्य संसार में नहीं होता, कम से कम प्रेमी को तो नहीं दिखाई देता। शृंगारी कवि इसी भावना से प्रेरित हो आलम्बन या प्रिय अथवा प्रिया के रूप का अत्यन्त उत्कर्ष-पूर्ण, आह्लादक और मनमोहक वर्णन करते आये हैं। प्रेम जब कृष्ण, राधा और गोपियों जैसे दिव्य और पौराणिक आलम्बनों के प्रति होता है तब तो आसक्ति के उन्मेष का कहना ही क्या! उसमें कुछ पूज्य भावना का समावेश हो जाता है और रूप तथा सुन्दरता पर कवि पग-पग पर आत्मोत्सर्ग करता चलता है।

रसखान कृत रूप-सौन्दर्य वर्णन

रसखान के काव्य में प्रेम अथवा शृंगार के आलम्बन हैं—कृष्ण, राधा और गोपियाँ।

कृष्ण—

प्रधान आलम्बन कृष्ण है, उन्हीं की सर्वत्र चर्चा है, उन्हीं के रूप और गुणों पर व्रज-गोपियाँ मुग्ध हैं। जड़ और चेतन सभी पर कृष्ण की रूप-छटा हावी है। कृष्ण के रूप का, सौन्दर्य का, वेषभूषा का सीधा वर्णन कम है। प्रभाव बतलाकर उनकी सुन्दरता, मनोहरता आदि की व्यंजना अधिक की गई है। कृष्ण का यह रूप रसखान का भी सर्वस्व है। कृष्ण के रूप सौन्दर्य की वर्णना रसखान ने चार प्रकार से की है—(१) कृष्ण के नेत्रों का वर्णन अथवा उनकी दृष्टि या चितवन का प्रभाव दिखलाकर (२) कृष्ण की स्मिति या मुसकान का वर्णन करते हुए तथा उसका प्रभाव बतलाते हुए (३) कृष्ण के वेश-विन्यास का वर्णन करते हुए, तथा (४) कृष्ण की छवि या मूर्ति का अंकन करते हुए। स्पष्ट है कि रसिक रसखान ने अपने और गोपियों के प्रेम-भाव के आलम्बन रूप श्रीकृष्ण के समस्त अंग-सौन्दर्य का निदर्शन नहीं किया है और न ही उनकी सम्पूर्ण वेश-भूषा या छवि को ही अंकित करने की चेष्टा की है। छन्द विशेष में अवसर या परिस्थिति के अनुसार अंग सज्जा, अंगाभरण, वेष भूषा, मूर्तिछटा आदि का चलता हुआ चित्रण किया है, ब्यौरेवार और सम्पूर्ण चित्रण नहीं, इसी प्रकार मुख-छवि का भी सांकेतिक निदर्शन हुआ है। नेत्रों के सौन्दर्य का या दृष्टि की तीक्ष्णता का या स्मिति का ही उल्लेख कर कृष्ण की छवि-छटा का साक्षात्कार कराया गया है। अपवाद रूप में ही अन्य अंगों का पृथक से उल्लेख मिलेगा। रूप का सम्पूर्ण चित्रण या अंग-प्रत्यंग वर्णन या वेश-विन्यास का ब्यौरेवार वर्णन रसखान द्वारा इस कारण नहीं हो सका है क्योंकि वे रीतिशास्त्री या रीतिबद्ध कवि न थे। वे स्वच्छन्द धारा के कृती थे, उनकी दृष्टि रूप या मुद्रा या चितवन या स्मिति या अन्य जिस किसी अंग पर पड़ी है उसी का वे वर्णन करते हैं।

आँख और चितवन—रसखान ने नेत्रों का या चितवन का वर्णन स्वतन्त्र या पृथक रूप से नहीं किया है (यह शैली रीतिबद्ध कवियों की रही है) वरन उन्होंने कृष्ण के विशाल नेत्रों का, उन नेत्रों की मुस्कान या हँसी का, कृष्ण के निहारने के ढंग का, आँखों को नचाने का, तिरछे देखने का, दृष्टि द्वारा चोट करने या कटाक्षों आदि का वर्णन किसी प्रसंग के ही अन्तर्गत किया है इसलिए नेत्र या चितवन से सम्बन्धित जो उक्तियाँ हैं उनका पूरा रस उस छन्द या सम्पूर्ण प्रसंग के ही अन्तर्गत प्राप्त किया जा सकता है, तद्विषयक उक्तियों का प्रसंग से बाहर करके नहीं।[1] कृष्ण के नेत्रों तथा उनकी चितवन के सम्बन्ध में कवि लिखता है कि उनकी मार या चोट बहुत पैनी होती है, तीक्ष्णता में वे बरछी या तीर के समान हैं। उनमें घायल करने, चित्त अपहरण करने, उन्मत्त करने, हृदय को बेधने और बेधकर अचेत करने, दूसरों के नेत्रों को अनुरक्त करने और अपनी ओर आकृष्ट करने की असाधारण शक्ति है। कृष्ण की आँखें आँखों को जोड़ती भी हैं, चित्त को मोहती भी हैं तथा गृह-सम्बन्धों का विच्छेद भी करती हैं। ये नेत्र कभी मुस्कराते, कभी हँसते और कभी खुशी के मारे कुछ नाचते भी हैं। उनके नेत्रों की 'जोहन', 'बिलोकन' और 'अवलोकन' गोपियों की सारी 'सम्हाल या होश' को गायब कर देने वाली है। उनमें मारण, मोहन, वशीकरण और

[1] रसखान ग्रंथावली - सुजान रसखानि - छन्द ६५, १३४, १४२, १४३, १७०, १७१, १७८।

उच्चाटन आदि सभी शक्तियाँ हैं। संक्षेप में ये गुण हैं, शक्तियाँ और विशेषताएँ हैं रूप-निधान श्रीकृष्ण के नेत्रों की जो गोपियों को मोहित किए हुए हैं। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें चितवन और स्मिति, 'बंक विलोकन' एवं 'मुस्कान' का एक साथ वर्णन हुआ है जिनके कारण गोपियों का हृदय विद्ध है और शरीर बेसम्हाल हुआ जा रहा है, उन्होंने लाज छोड़ दी है और सारे व्रज मण्डल में इस बात की दुहाई मची हुई है।[1] चित्त और चित्त का चैन दोनों कृष्ण ने चुरा लिया है—

(क) दीरघ बंक विलोकनि की अवलोकनि चोरति चित्त को चैना।
मो रसखान हर्‌यौ चित्त री मुसकाइ कहे अधरामृत बैना॥

(ख) जा दिन तें निरख्यौ नंदनंदन कानि तजी घरबंधन छूट्‌यौ।
चारु विलोकनि कीनो सुमार सम्हार गई मन मारने लूट्‌यौ॥

मुस्कान—श्रीकृष्ण की मुस्कान देखकर व्रज की अहीरनों की क्या दशा हो जाती है—

अब हीं खरिक गइ गाइ के दुहाइवे कौ,
बावरी ह्वै आई डारि दोहनीयौ पानि की।
कोऊ कहै छरी, कोऊ मौन परी, डरी कोऊ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अँखियानि की॥

उनकी मुसकान का ही यह कमाल है कि गोपिका की अनिर्वचनीय मुग्धता का लोग नाना प्रकार से निर्वचन कर रहे हैं फिर भी उसकी दशा का ठीक ज्ञान लोगों को नहीं हो पाता। अब मूल व्यंग पर आइये, कवि का कथ्य यह है कि जिसकी मुसकान में यह जादू है उसके समस्त रूप की सुषमा कितनी पुरअसर होगी, उसका समग्र रूप-सौन्दर्य कितना व्यामोहक होगा। क्या वह शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार स्मिति या मुसकान का जिन-जिन छन्दों में वर्णन हुआ है उसका प्रभाव ही कवि का मूल संवेद्य रहा है।[2] प्रभाव का वर्णन हर छन्द में है—कहीं गोपियां कृष्ण के ईषद् हास के वशीभूत हैं, कभी कृष्ण की मुसकान उनके कुल-बन्धन को तोड़ती है, कभी उसके वश हो वे बेसुध हो जाती हैं आदि आदि। एक छन्द तो ऐसा है जिसमें कृष्ण की मुसकान का वर्णन का बेजोड़ हुआ है—

कातिग क्वार के प्रात ही प्रात सरोज किते बिकसात निहारे।
डीठि परे रतनागर के दरके बहु दाड़िम बिम्ब विचारे।
लाल सुजीव जिते रसखानि तरयनि तोलनि मोलनि भारे।
राधिका श्री मुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर वारे॥

श्रीकृष्ण की मुसकान के ऊपर शरदकालीन विकसित सरोज, दाड़िम, बिम्बाफल तथा नाना मणियों के अनूठे उपमान निछावर हैं—वह माधुर्य और प्रसन्नता उनमें कहाँ जो कृष्ण के प्रसन्न भाव से खुले अधरोष्ठों में है। मुस्कान का वर्णन यों भी काव्य में सामान्यतया कम पाया जाता है।

---

[1] सुजान रसखानि : छन्द १३०, १५१, १५६।
[2] वही : छन्द १३०, १७२, १७३, १५५, १७६, १४८।

छवि या मूर्ति—किन्हीं-किन्हीं छन्दों में कवि ने श्रीकृष्ण की छवि या मूर्ति, उनका समग्र रूप, चाल या लटक आदि दो ही चार शब्दों में मूर्तित करने की चेष्टा की है। सम्पूर्ण छन्द में कृष्ण की मूर्ति या मुद्रा विशेष का वर्णन नहीं मिलता क्योंकि कवि का प्रधान लक्ष्य प्रभाव दिखलाना रहा है। ऐसे छन्दों में भी चित्रात्मकता या बिम्ब बोध का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है।[1] कृष्ण की बड़ी बड़ी आँखों, प्रसन्न कपोल, मधुर वाणी, आनन पर लटकी लटों, अलबेली चितवन और चाल, कुल की डाल पकड़ कृष्ण के खड़े होने तथा उनके अनुरक्त नेत्रों और झूमती हुई चाल आदि का वर्णन हुआ है, ये चित्र अनलंकृत हैं। अलंकृत शैली पर भी कृष्ण की छवि देखी जा सकती है।[2] कहीं कहीं कवि ने मूर्ति की मोहकता का या कृष्ण की सम्पूर्ण वेशभूषा और चालढाल का एकाध शब्द में ही कथन अथवा अभिव्यंजन कर दिया है।[3] ये पंक्तियाँ रूप-चित्रण में लेशमात्र भी प्रवृत्त नहीं हुई हैं फिर भी रूप-छटा का पूरा-पूरा आभास कराती हैं। यह शक्ति कवि की भावना की प्रगाढ़ता से ही आती है जो स्वच्छन्द कर्त्ता का मूल गुण है। कृष्ण की छवि या रूप-छटा का पूरा साक्षात्कार करना हो तो देखिए गोचारण करते हुए कृष्ण का यह चित्र—

> गोरज बिराजै भाल लहलही बन माल,
> आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावैं मृदु बानि री।
> तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर,
> जैसी बंक चितवनि मन्द-मन्द मुसकानि री।
> कदम बिटप के निकट तटनी के तट,
> अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री।
> रस बरसावै तन-तपनि बुझावै नैन,
> प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री॥

लेकिन कृष्ण की वास्तविक छवि तो वह है जिस पर रसखान बेतरह लट्टू हैं और वह भी गायों के चराने के ही समय की है—

> वह घेरनि धेनु अबेर सबेरनि फेरनि लाल लकुट्टनि की।
> वह तीछन चच्छु कटाछन की छवि मोरनि भौंह भृकुट्टनि की।
> वह लाल की चाल चुभी चित मैं रसखानि संगीत उघट्टनि की।
> वह पीत पटक्कनि की चटकानि लटक्कनि मोर मुकुट्टनि की॥

कृष्ण की यह छवि जितनी गोपिका के चित्त में चुभी हुई है उतनी ही रसखान के भी।

वेश विन्यास—सम्पूर्ण ब्रजभाषा काव्य में कृष्ण की जो विश्व चर्चा है उसमें कृष्ण की वेशभूषा बहुत कुछ समान देखी जा सकती है, कवियों ने उसका वर्णन अलग-अलग ढंग से किया है वह अलग बात है। रसखान ने भी कृष्ण को उसी वेशभूषा में ही चित्रित

---

[1] सुजान रसखानि- छन्द १३३, १३५, १५४, १५५, १७६।
[2] वही छन्द ६४।
[3] वही : छन्द १४६, १४७, १८०।

किया है—सिर पर मोरपखा या मयूरचन्द्रिका, बाँकी कलँगी या कसी हुई पाग (पगड़ी), भाल पर गोरज या केसर का तिलक, कानों में सूर्य के समान देदीप्यमान छवि-कुण्डल जो लटकते हुए गडस्थल की शोभा की अभिवृद्धि करते हैं या मकराकृत कुण्डल, स्कंध देश पर नया चटकीला दुकूल, फहराता हुआ पीतपट, पीला उपरना या केसरिया दुपट्टा, हृदयस्थल पर लहलही वनमाल या गुंजों की माला, अधर पर या हाथों में मुरली, कटि प्रदेश पर बैजन्ती कछनी और कटिबंध (फेंटा), पैरों में पैंजनी और लाल पाँवरी यही कृष्ण की रसखान कवि द्वारा भावित वेश-भूषा है।[1] विशेष अवसरों पर कृष्ण अधिक कीमती वस्त्राभूषणों से भूषित हुआ करते थे और उस समय मोतियों की माला, मणिहार, रत्नहार और किरीट, अंग-अंग में जड़ाऊ गहने और जरी या सोने के तार के काम या सजावट की पगड़ी पहना करते थे।[2] रसखान ने कृष्ण की वेशभूषा का वर्णन बार-बार किया है। कभी एकाध पंक्ति में[3] और कभी किंचित विस्तार के साथ।[4] संक्षिप्त रूप में एकाध पंक्तियों में किए गए वर्णन में कृष्ण की परम्परागत और प्रसिद्ध वेशभूषा का ही वर्णन प्रस्तुत किया गया है—मकराकृत कुंडल, गुंजमाल या वनमाल, मयूर चन्द्रिका, वेणु, गोरज, आदि के संसर्ग से हम बिना बताये ही कृष्ण की मूर्ति मनोगत कर लेते हैं। ऐसे छन्दों में केवल वेष-भूषा विषयक दो ही चार बातों का उल्लेख किया जा सका है, किन्तु ये पंक्तियाँ कृष्ण की छवि को अपनी अपूर्णता में भी प्रस्तुत करने वाली हैं तथा इनमें यथेष्ट चित्रात्मकता भी है। ऐसे छन्दों की शेष पंक्तियों में कृष्ण की मोहक छवि छटा का प्रभाव दिखलाया गया है। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जहाँ कृष्ण की वेश-सज्जा अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित हुई है। ये छन्द तो कृष्ण की शोभा को मन पर अच्छी तरह अंकित कर देते हैं तथा ये अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण भी हैं। कभी तो चारों दिशाओं की छवि बटोरकर बाँके बिहारी झरोखे में झाँकते दिखाए गए हैं और कभी नाना वस्त्राभूषणों से सज्जित हो गली में खड़े दिखाए गए हैं जहाँ वे अपनी अपूर्व साज सज्जा के कारण पहचान में भी नहीं आते

> मोतिन माल बनी नट कै, लटकी लटवा लट घूँघर वारी।
> अंग ही अंग जराव लसै अरु सीस लसै पगिया जरतारी।
> पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
> चार्‌यो दिसानि की लै छवि आनि कै झाँकै झरोखे मैं बाँके बिहारी॥

कवि वर्णन करता है कि कृष्ण के सिर पर मोर का जैसा सुन्दर चँदवा शोभा दे रहा है वैसी ही सुन्दर पाग कसी हुई है। जैसी शोभा हृदय पर लटकी हुई वनमाला में है वैसी ही शोभा भाल के गोरज में है। एक छन्द ऐसा भी है जिसमें कृष्ण के समेत सारे ग्वाल बाल एक से वस्त्र पहने हुए हैं, एक से ही आभूषणों से भूषित हैं। वेश-भूषा की समरूपता में

---

१ सुजान रसखानि : छन्द ६४, १४१, १५६, १६६, १६७, १७६, १७७, १७९, १८२, १८३।

२ वही : छन्द १६६, १६७, १७७।

३ वही : छन्द १४१, १६२, १६३, १६७, १५६, १६४, १७२, १७६, १८२।

४ वही : छन्द १६६, १७७, १७९, १८३।

वे पहचाने नहीं जाते। उनके बीच एक कृष्ण ही ऐसे हैं जो वेश-भूषा की एकरूपता के बावजूद भी अपनी वैयक्तिक रूप-सुषमा और छवि-छटा के कारण अलग झलकते मिलते हैं।

कृष्ण के रूप का प्रभाव—कृष्ण के रूप-प्रभाव को रसखान ने विस्तार से वर्णित किया है। रसखान प्रेमी जीव थे। वे बादशाही खानदान की ठसक छोड़कर आये थे, वृन्दावन विहारी के मधुर रूप और छवि पर मुग्ध होकर। यह श्रीकृष्ण की छवि ही थी जो रसखान को आकृष्ट किये हुए थी। उन्होंने गदर के समय बड़ी विपत्तियाँ सही थी। भौतिक सम्पदा से उन्हें विरक्ति हो चली थी, मुसलमान धर्म में ऐसी व्यामोहिनी कोई शक्ति उन्हें नहीं दिखाई दी जैसी उन्हें कृष्ण की छवि में प्राप्त हुई। हृदय अवलम्ब ढूंढ ही रहा था, श्रीकृष्ण का मधुर और दृढ अवलम्ब पाकर उन्हीं में ठिठक रहा। कृष्ण में और जो गुण थे वे तो थे ही किन्तु उनकी मधुर मूर्ति और उन्मत्तकारिणी छवि सर्वोपरि थी—प्रथम और प्रधान आकर्षण तो उनकी छवि में था जिसकी डोर में रसखान का मन खिंचा चला जाता था—

(क) मोहन छवि रसखान लखि अब दृग अपने नाहिं।
ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं॥

(ख) देख्यौ रूप अपार, मोहन सुन्दर स्याम को।
वह ब्रजराजकुमार, हिय जिय नैननि में बस्यौ॥

कृष्ण की ऐसी छवि को अपनाकर रसखान अपना सब कुछ भूल बैठे थे। उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्णार्पित कर दिया था, उनका जीवन ही कृष्ण-ध्यान मय और कृष्ण-प्रेम-मय हो चला था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक था कि कवि अपनी भावना का, प्रिय की सुन्दरता के प्रभाव का शत-शत रूपों में विशदता से वर्णन करता। कृष्ण के रूप और शृंगार का वर्णन करते हुए कवि तटस्थ दृष्टा मात्र नहीं रह गया है, उन वर्णनों में कवि ने अपनी भावना का मधुर सम्मिश्रण किया है यही कारण है कि प्रायः सभी रूप शृंगार वर्णनात्मक छंद कवि के मनोगत प्रभाव से संपृक्त हैं। जब-जब कवि ने कृष्ण के रूप का, नेत्रों का, अधरों का, आंगिक सौन्दर्य का, वेणु वादन का, गोचारण का और इसी प्रकार उनकी असंख्य छवियों का ध्यान किया है, उस ध्यान के साथ-साथ उभरने वाला जो अनुराग है, उस छवि के प्रभाव को मन में रूपायित करने वाला जो मनोभाव है वह भी साथ-साथ ऊपर आया है। इस प्रकार रूप-सौंदर्य-चित्रण, रूप-प्रभाव-चित्रण कवि की अंतर्दशा को साथ लेता हुआ चला है। केवल रूप वर्णन के ही नहीं अन्यान्य प्रसंगों के छंदों में भी रसखान की यह आत्माभिव्यक्ति देखी जा सकती है। इस वैशिष्ट्य के कारण रसखान की रचना आत्मपरक या आत्माभिव्यंजक हो गयी है, वस्तुपरक या बाह्यार्थ निरूपक मात्र नहीं रहने पाई है। यह बताने की आवश्यकता यहाँ नहीं कि आत्माभिव्यंजन अथवा व्यक्तिनिष्ठता स्वच्छंद काव्य-प्रवृत्ति का एक प्रधान गुण है। यह रूप-प्रभाव-वर्णन उतने सीधे ढंग से वर्णित नहीं हुआ है जितने वैयक्तिक ढंग से वह घनआनन्द में आया है, परन्तु फिर भी रसखान के काव्य का आस्वादयिता इस तथ्य से अनवगत नहीं कि रसखान के काव्य में वर्णित प्रेम उधार लिया हुआ नहीं है और न शास्त्रचालित ही, अपितु वह उनकी अपनी निधि है—अर्जित और पोषित। रसखान ने अपने प्रेम को अधिकतर गोपियों की उक्तियों द्वारा व्यक्त किया है। वास्तव में गोपिकाएँ कृष्ण का प्राण थी, वे कृष्ण प्रेम की ही प्रतिमूर्तियाँ थी, उनके हृदय में प्रेम का स्रोत निश्छल भाव से और अप्रतिहत गति से प्रवाहित था इसलिए सूरदास, रसखान, घन

आनद तथा अन्यान्य कितने ही कवियो ने गोपी-भाव से या गोपियो के वर्णनो अथवा उक्तियो के माध्यम से अपने हृदय के भावो को व्यक्त किया है। जो भी भाव व्यक्त हुए हैं उनकी तीव्रता फिर भी बहुत कुछ अक्षुण्ण रह गई है, वे एक दम सेकेण्ड-हैंड नही होने पाये है।

कृष्ण के रूप का प्रभाव प्रधानत तो गोपियां स्वय बतलाती चलती हैं। जिस पर जैसी बीतती है वह आप बीती खुद बनाती चलती है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि एक गोपी आप बीती बयान कर किसी दूसरी गोपिका की सुषुप्त वासना को जागृत करती है। हर छद जैसे एक गोपी की अपनी राम कहानी है। किसी छद मे राशि-राशि गोपियों पर पडे कृष्ण के रूप के प्रभाव का पता चलता है। एक बात और, रूप प्रभाव निदर्शक अधिकाश छद सक्षेप मे उस प्रभाव को सूचित करते हैं हालांकि इस सक्षिप्तता के कारण प्रभाव की व्यजना मे लेशमात्र भी कमी नही आने पाई है, किन्तु अपवाद रूप मे कुछ छन्द ऐसे भी मिलेंगे जो पूर्णत प्रभाव-व्यजना के लिए ही नियोजित जान पडते हैं। ऐसे छद भी दो प्रकार के हैं—एक प्रभावाभिव्यजक और दूसरे प्रभाव की कथा कहने वाले। इस सम्बन्ध मे अतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रभाव रूप का हो चाहे रूपधारी के किसी कर्म या गुण का, परिणति उसकी आसक्ति, रीझ और प्रणय मे ही होती है। इसी परिणति मे रूप की चरितार्थता भी है।

रूप का प्रभाव नेत्रों पर पहले पडता है बाद मे मन पर। सच पूछिये तो नेत्रों के माध्यम से ही रूप हृदयगम होता है। रसखान की गोपिका कहती है कि श्रीकृष्ण को देखकर मेरे नेत्र अब मेरे वश मे नही रहे वे उन्हीं के रूप पर डटे रहते हैं, हटते नहीं। वे मोहन की मूर्ति से ही सम्बन्ध स्थापित किये रहते हैं और मुझसे रूठे रहते हैं, मेरी बात नहीं मानते, ये नेत्र उनके सौन्दर्य की लिप्सा मे मछलियो की तरह फँस जाते हैं[1]। कितने ही छद कृष्ण के अपूर्व सौन्दर्य से अभिभूत गोपियो के मन की दशा की सूचना देते हैं[2]। अनेकानेक छन्दो मे स्पष्ट रूप से मन, चित्त, हृदय, जीव, प्राण आदि शब्दो का प्रयोग करते हुए कवि ने अत करण की इन विभिन्न नामो से पुकारी जाने वाली सत्ताओ पर कृष्ण के रूप का, प्रभाव वर्णित किया है। गोपियाँ कहती है कि नन्द का पुत्र मेरे मन रूपी मणि को चुरा ले गया, अब मन के बिना मैं अपने को व्यर्थ पा रही हूँ। इन नेत्र रूपी दलालों ने मन रूपी माणिक को चौहट्टे मे प्रियतम के हाथ बेच दिया, हृदय और जीव सब एक साथ ही बिक गये। कृष्ण ने अपने रूप का जादू चलाकर हमारा चित्त चुरा लिया और शरीर के सारे सुखो का अत कर दिया क्योंकि अब रूप का निरन्तर दर्शन नहीं होता, कृष्ण की पगडी की मुरेडो या ऐंठनो मे मेरा मन मुरेड खा गया है। सारे रसखान-साम्यो मे एक कृष्ण ही ऐसे हैं जो समस्त ब्रजवासियो के हृदय को हर लेते है, कृष्ण का रूप ही ऐसा होता है जिसे देखकर हृदय अपने आप हुलसित होता है। रसखान लिखते हैं कि मोहन की छवि मन को मा रही है और हमे तरसा रही है, उनकी चाल और उनकी मुद्राएँ हृदय और प्राणो मे इस प्रकार समाई हुई हैं कि निकाले नहीं निकलती, उनके रूप-सिन्धु मे तो

---

[1] सुजान रसखानि छन्द १५३, १३५, १६४।

[2] वही : छन्द ७१, १३५, १५२, १५७, १५६, १६१, १७०, १७६, १८३, ६५, १३१, १३३, १६२, १६३, १८०, ७०, ६७, १३७, १४३, १५०, १५४, १५५, १६५, १६७।

मन बेतरह डूब गया है। उधर गोपिका को लाल की कितनी ही बातें चित्त में चुभ कर कसक पहुँचा रही हैं—उनका गायें घेरना, लकुटी फिराना, कटाक्षपात, भृकुटियों का मोडना, वेणु बजाना, पीतपट का चमकना, मोर मुकुट की लटक आदि। उनकी जितनी रूप-छटा है वह तो हृदय में चिरकाल के लिए अटक गई है, उनकी चितवन शरीर और प्राण को बेतरह बेधे दे रही है, वह चोट सम्हाले नहीं सम्हलती पर साथ ही साथ वह चोट ही है जो प्रेम के बन्धन में बाँधती भी है। कृष्ण के दृगबाण ऐसा हृदय बेधते हैं कि कोटि-कोटि गोपियाँ गिर गिर पड़ती हैं, ब्रज में कृष्ण के रूप की गैर मची हुई है, गोप-बालाओं की चेतना अपहृत हो चुकी है और उनका मन कृष्ण के ईषद् हास या स्मिति के हाथों बिक गया है। रूप और छवि की ऐसी निधि थे कृष्ण जो व्रज की गोपांगनाओं के मन, प्राण और शरीर को अपने प्रति आसक्त किये हुए थे, उनमें आनन्द-वर्षण की अपूर्व शक्ति थी, तन की तृषा शान्त करना जिसका साधारण व्यापार था और उनके प्राणों को रिझा लेना उनके लिए खेल था। कुछ छन्दों में बिना स्पष्ट कथन किये रूप के प्रभाव का चित्रण किया गया है, यह नहीं पता चलने पाता कि यह प्रभाव किस पर पड़ा है[१]। अनेक छन्दों में कृष्ण के रूप को उन्मत्त बना देने वाला, गोपियों के लोक-लाज को बहा देने वाला कहा गया है।[२] कुलमर्यादा या लोक-लज्जा का त्याग कुछ साधारण बात नहीं, यह कृष्ण का गुरुत्वपूर्ण आकर्षण है जिसमें गोपिका कुल-मर्यादा और लोक-लाज को अवहेलना कर जाती है। कृष्ण के मुसकराते हुए रूप में उनके अपांगों में, कामदेव से भी सुन्दर उनके बानक में और नेत्रों के चपल चालन में वह शक्ति है जो कोमल हृदय वाली गोपिका के हृदय की लज्जा की गाँठ को खोलकर ही रहती है। एक स्थान पर रसखान ने इस भाव को अतिशय अनूठी पद्धति पर व्यक्त किया है—व्रजगोपिका माता की रोक और सास की मनाही की तभी तक परवाह करती है जब तक वह कृष्ण की छवि का दर्शन नहीं करती—

'माइ की अंटक तौ लौं सासु की हटक जौ लौं,
देखो ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की।'

जो रूप गोपियों को इस सीमा तक आकृष्ट कर लेता है वह अपनी परम व्यामोहिनी शक्ति से उन्हें उतावला और उन्मत्त भी बना सकता है। रसखान कहते हैं कि एक दिन बछड़े चराने के बहाने कृष्ण बड़ी सजधज के साथ गोपियों की नई गली से होकर निकले। फिर क्या था, उनके आकर्षण का ऐसा विष फैल गया कि सारी व्रज कुमारियाँ उनके पीछे बावली-सी फिरने लगीं—

मकराकृत कुंडल गुंज की माल वे लाल लसै पग पाँवरिया।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयौ भावती भाँवरिया।
रसखानि बिलोकत ही सिगरी भई बावरिया व्रज-डाँवरिया।
सजनी इहिं गोकुल मैं विष सो बगरायौ है नन्द के साँवरिया॥

कोई तो कृष्ण के रूप पर इस कदर मुग्ध है कि वह उनकी मूर्ति को आँखों में भरे ले रही है, यह व्यामोह और आसक्ति देखिये। रूप नेत्रों में सदा बसा रहे यह रूप-लिप्सा

---

१ सुजान रसखानि - छंद ६५, १३१, १३३, १६२, १६३, १८०।
२ वही - छंद ७२, १५६, १५७, १५८, १७२, १७३।

देखिये। आँखों में कृष्ण का रूप भरकर, बसाकर या पीकर गोपिका ने अपनी आँखें बन्द कर रखी हैं। क्यों ? इसलिए कि वह रूप उन नैनों का ही होकर रहे भाग न जाय या फिर इसलिए कि ऐसी छवि पा लेने के बाद लोक के प्रति आँखों का बन्द रहना ही अच्छा है। कारण जो भी हो रूप का यह प्रभाव असाधारण है, सखियों के कहने पर भी वह प्रीतिमना गोपिका आँखें उघाड़ने को तैयार नहीं। कृष्ण की रूप-छटा प्रमत्तता की दशा तक पहुँचा देने वाली है। रूप दर्शन में बेमस्हाल हो जाना, आत्मविस्मृति, नेत्रशरों से बिधे हुए प्राणों की सतत दर्शनाभिलाष तथा प्रिय के वियोग की असह्यता, देह-चेतना का अपहृत हो जाना आदि अनेकानेक प्रभावों का कवि ने वर्णन किया है।[१] इसी रूप-प्रभाव का निदर्शन करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि यह रूप ऐसा है कि जिस पर कोटि-कोटि मनोज निछावर किये जा सकते हैं, उस स्मितिपूर्ण मूर्तिछटा या रूपाभा को देखकर रास्ता चलते नहीं बनता, पहाड़-सा दूभर हो जाता है।[२] एक जगह गोपिका को श्रीकृष्ण की रूपछटा के कारण मूर्छित तक दिखलाया गया है। उसे क्या हो गया है इसका निर्णय कोई नहीं कर पा रहा है। लोग अपने-अपने अनुमान लगाते हैं, उसके हितैषी कुटुंबीजन देवता मनाने लगते हैं किन्तु उसकी अन्तरंगिणी सखियाँ जब आकर उसे देखती हैं तो वे निर्विषाद भाव से हँसती हैं और उसकी मूर्च्छा का कारण घोषित करती हैं—

सखी सब हँसैं मुरझानि पहिचानि, कहूँ
देखी मुसकानि वा अहीर रसखानि की।

रूप-प्रभाव का चित्रण करने वाला यह छंद असाधारण है। ऐसे भी कुछ छंद हैं जिनमें मात्र रूप प्रभाव ही वर्णित हुआ है। जहाँ छंद रचना करते हुए कवि का मन रूप को छोड़ प्रभाव की भावना में निमग्न हुआ है वहाँ ऐसे छंद लिख गया है। रूप ने जहाँ मनोजगत पर जमकर असर डाला है, प्रभाव मन और इंद्रियों पर बेतरह हावी हुआ है वहाँ इस प्रकार के छंदों की रचना संभव हुई है। प्रभाव-वर्णनात्मक छंदों में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता हुआ करती है और इसी वैयक्तिकता के कारण रचना जीवंत हो उठी है। ऐसे छंदों में रूप-प्रभाव की व्यंजना अतिशय प्रगाढ़ एवं मर्मस्पर्शिणी है—

खंजन नैन फँदे पिंजरा छबि, नाहिं रहैं थिर कैसें हूँ माई।
छूटि गई कुलकानि सखी रसखानि लखी मुसकानि सुहाई।
चित्र कढ़े से रहे मेरे नैन न बैन कढ़े मुख दीनो दुहाई।
कैसी करौं कित जाऊँ अली सब बोलि उठे यह बावरी आई॥

क्या चित्र है। रूप बावरी के नेत्र, मुख, वाणी, मन, कुल-मर्यादा और अतर्व्यथा सभी को तो सचित्र कर दिया है। एक जगह गोपिका कहती है कि साँवरे के रंग में रँगे हुए ये लालची नेत्र अब मेरे पास नहीं रहते, रूपलिप्सावश कृष्ण के ही इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं, घूँघट या लोक-लाज की भी परवाह नहीं करते। ये आँखें रूप-मधु में ऐसी फँस गई हैं जैसे मधु की मक्खियाँ और इन्हीं के कारण प्रियतम से नेह का बंधन स्थापित हो गया है जो तोड़े नहीं टूटता। नेत्र तो नेत्र कान तक अब प्रियतम की स्नेहसिक्त वचनावली

---

१ सुजान रसखानि : छंद ७२, ७७, १५१।
२ वही : छंद १४८, १४६।

के बिना बेचैन रहते हैं।[1] नेत्र, मन, हृदय, जीव इन सब की दशा का निदर्शन एक छंद देखिये—

> नवरंग अनंग भरी छवि सों वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै।
> बतिया मन की मन ही मे रहै घतिया उर बीच अड़ी ही रहै।
> तबहूँ रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूंद पड़ी ही रहै।
> जिय की नहिं जानत हौं सजनी रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै॥

प्रभावसूचक छंदों मे भाव की आवृत्ति भी हुई है जो काव्य रचना की दृष्टि से दोष होते हुए भी रसखान आदि के काव्यों मे अभिव्यक्ति की सहजता और अनुभूति की सचाई के कारण उतनी दोषपूर्ण नही प्रतीत होती।[2] गोपियाँ कृष्ण का रूपासवपान कर बन-बन मे डोल रही हैं, विशाल नेत्रों के कटाक्षों न उन्हें आहत कर रखा है, प्रियतम की मुसकान देखकर वे बेहोश या बेसम्हाल हो जाती हैं, उन्हे मास का त्रास नहीं, लोक की परवाह नही, वे तो प्रियतम की एक चितवन से ही मन क्या महामत्त हो गई हैं आदि उक्तियाँ रसखान की रचनाओं मे बार-बार देखी जा सकती हैं किन्तु उनमे जो अनुभूति-प्रवणता का माधुर्य है और सहजाभिव्यक्ति का प्रच्छन्न प्रवाह है वह इन छंदों की भावावृत्ति को भी माधुर्य प्रदान करता है।[3] इस प्रकार के अनेकानेक छंद है जो चितवन, मुस्कान, रूप आदि के प्रभाव से ओत-प्रोत हैं—

> पूरब पुन्यनि तें चितई जिन ये अँखियाँ मुसकानि भरी जू।
> कोऊ रहीं पुतरी सी खरी, कोउ घाट डरी, कोउ बाट परी जू।
> जे अपने घर हीं रसखानि कहैं अरु हौंसनि जाति मरीं जू।
> *लाल जे बाल बिहाल करी ते बिहाल करी न निहाल करी जू॥*

कृष्ण की चितवन के प्रभाव के कारण चित्त का चुराया जाना, दृगों का जुड़ना, मन का सही रास्ते से मुड़ जाना, कुल और समाज की लज्जा का त्याग, घर के सम्बन्धों का टूटना, देह की सुध बुध खोने तथा मन के कामदेव द्वारा लूटे जाने आदि कितनी ही बातों का गोपिका ने वर्णन किया है।[4] कुछ छंद ऐसे भी हैं जिनमे रूप प्रभाव की कथा सी कही गई है। वैसे तो कवित्त या सवैये की लघु सीमा मे कथा कहने का अवकाश कहाँ किंतु फिर भी प्रभाव को ऐसी आत्मीयता से कहा गया है जैसे कोई कहानी कहता है।[5] इन छंदों का भी कथ्य वही है, कथन-विधि मे ही थोड़ा हेरफेर है। 'अबहीं खरिक गई गाइ के दुहाइबे कों' वाले छंद में इसी कथात्मक शैली पर प्रभाव का कथन किया गया है। इस शैली का एक उदाहरण देखिये—

> आजु सखी नंननदन री तकि ठाडो हो कुंजन की परछाहीं।
> नैन बिसाल की जोहन को सर भेदि गयो हियरा जिय माहीं।

---

१ सुजान रसखानि : छंद १२६।
२ वही : छंद १३१।
३ सुजान रसखान : छंद १३०, १३८।
४ वही : छंद १७०, १७१, १७८, १६०, १८१, १६१, १७५।
५ वही : छंद १४६, १४८, १७४, १७५।

घाइल घूमि सुमार गिरी रसखानि सम्हारति अंगनि नाहीं।
एते पै वा मुसकानि की डौंडी बजी ब्रज में अबला कित जाहीं॥

राधा या गोपी—

रसखान ने राधिका या गोपी की रूप-सुषमा के वर्णन के प्रति विशेष ध्यान नही दिया है क्योंकि उनके प्रेम के मूल आलवन कृष्ण थे, उन्ही के प्रति उन्होने अपना जीवन अर्पित किया था। राधा या गोपिकाएँ कृष्ण की प्रेमिकाएँ थी, रसखान भी कृष्ण के प्रेमी थे इसलिए रसखान के काव्य मे प्रेम-पात्र के रूप मे कृष्ण की ही प्रतिष्ठा है, राधा या गोपियो की नही। राधिका या गोपियाँ रसखान के लिए प्रेमी के आदर्श के रूप मे अवश्य थी, विशेषत गोपियाँ। गोपियो के ही प्रेम-चित्रण के माध्यम से रसखान ने अपना व्यक्तिगत प्रेम-भाव निवेदित किया है। गोपियाँ जो नाना रूपो मे नाना विधियो से अपनी आसक्ति और अनुरक्ति को मुखर करती हैं वह और कुछ नही प्रेमी हृदय रसखान की आत्माभिव्यक्ति ही है। उसमे रीझ और अनुराग रसखान का है। इस कारण गोपी रसखान के काव्य का स्वतत्र आलम्बन नही हो सकी है। राधा की रूप-सुषमा का अवश्य दो चार छदो मे कवि ने वर्णन किया है क्योंकि राधा कृष्ण की अनन्य प्रेमिका थी, उसका हृदय भी रसखान के ही हृदय के समान बल्कि उसमे कही अधिक प्रियतम कृष्ण के दृगबाणो से विद्ध था—

तन चदन खोर कै बैठी भटू रही आजु सुधा की सुता मन सी।
मनो इदुवधून लजावन कौं सब ज्ञानि काढि धरी गन सी।
रसखानि विराजति चौकी कुचो विच उत्तमताहि जरी तन सी।
दमकै दृग बान के घायन कौं गिरि सेन के सधि के जीवन सी॥

कैसा जीता जागता प्रेम रजित और पुनीत चित्र है राधिका का जो अपनी वर्णोज्ज्वलता और चदनर्चित वदन की अमृतोपमता के कारण अमृत की मानस पुत्री ठहराई गई है। उसके शरीर के रत्नाभरण या गुणो की गण-श्रीचद्र वधुओं (नक्षत्रों) को लज्जित कर रही है। उसका समग्र शरीर, एक एक अग अपनी सुन्दरता मे जैसे 'उत्तमता से विजटित' है। पदिक या माले के बीच लटकती हुई चौकी की छटा का क्या कहना—'श्वेत गिरि हिमालय के दो पहाडो के मधिस्थान के जलाशय सी वह चौकी ऐसी जान पडती है मानो नेत्र रूपी बाणो का चौकोर घाव हो।'[1] राधिका के सौदर्य की दिव्यता की प्रतीति वहाँ होती है जहाँ कवि कहता है कि राधिका के सौंदर्य को देखकर सूर्य और चद्रमा गतिशिथिल हो जाते हैं, वायु उनके नि श्वासो से सुरभि समेटने आता है आदि आदि।[2] प्रकृति के सौंदर्य की पराकाष्ठा *का नाम वसन्त है। इस वसत के वैभव की ही प्रतिकृति राधिका है।* इस भाव को कवि नाना उपमानो के विधान द्वारा प्रस्तुत करता है—राधिका के दुकूल पुष्प हैं, कुतल भ्रमर हैं, गुजा की माला किंशुक समूह हैं, मोतियो के आभूषण आम्र मजरियाँ हैं और वाणी कोकिल को भी लज्जित करने वाली है, फिर यह क्यो न कहा जाय कि यह राधिका का नही वसत का आगमन है।[3] अपने शरीर को सँवारती हुई राधिका रति को भी लज्जित

[1] विश्वनाथप्रसाद मिश्र - रसखानि ग्रथावली पृ० ४६।
[2] सुजान रसखानि छंद ४८।
[3] सुजान रसखानि : छद ४६।

करती है, ऐसी सृष्टि को देखकर विधाता स्वयं विस्मित है कि वह इस प्रकार की दूसरी सृष्टि भला क्या रच सकता है।[1] राधिका के इस पुण्य सौंदर्य-सुधासागर में रसखान ने दो ही चार डुबकियाँ लगाई हैं क्योंकि उनका प्रेम मूलतः कृष्ण के प्रति था। उनके मन में तो उनका परम काम्य ही बेतरह समाया हुआ था। राधिका के विषय में जो दो चार छंद वे लिख गए वह भी इस कारण कि राधिका कृष्ण की अनन्य अनुरागिनी थी, उस पथ की आदि पथिक थी जिस पर बहुत बाद में रसखान चले थे।

युगल जोड़ी—कुछ स्थलों पर रसखान ने राधा और कृष्ण की युगल जोड़ी का भी वर्णन किया है और उनकी सम्मिलित रूप सुषमा प्रत्यक्ष की है। मयूर-चंद्रिकाओं का मुकुट धारण किये हुए श्री कृष्ण प्रतिदिन दूल्हे के समान सुशोभित होते हैं और समस्त सुखों की निधि श्रीराधिका जी दुल्हन-सी शोभा पाती हैं, यह रूपशाली युगल प्रेम के फंदे में फँस कर अतिशय शोभा प्राप्त करते हैं और इन्हें देखकर सभी देहधारी विशेषतः व्रजवासी परम सुख प्राप्त करते हैं।[2] ऐसे प्रेमी युगल के प्रति जिनमें परस्पर इतना प्रगाढ़ प्रेम है, रसखानि का प्रेम भक्ति की कोटि तक पहुँच गया है—

(क) ऐसे भए तो कहा रसखानि रसै रसना जौ जु मुक्ति तरंगहि।
दै चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहि॥

(ख) टेरत हेरत हारि परयौं रसखानि बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर मैं बैठी पलोटत राधिका पायन॥

रसखान ने इस प्रेमी युगल के चौपड़ खेलने का भी वर्णन किया है।[3]

आलम कृत रूप-सौंदर्य वर्णन

अपनी मुक्तक रचनाओं में आलम ने मुख्य रूप से नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है। राधा और कृष्ण का वर्णन कम है, कुछ छन्दों में युगल छवि का भी वर्णन किया गया है। अपनी प्रबन्ध-कृतियों में आलम ने कामकंदला और माधवानल तथा रुक्मिणी और कृष्ण के रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है।

नायिका—शृंगारी कवि होने के नाते आलम कवि की दृष्टि नायिका के सौंदर्य पर ही विशेष रूप से निबद्ध रही है जिसका वर्णन उन्होंने विशेष विस्तार और अधिक मनोयोग से किया है। नायिका के सौंदर्य का वर्णन पढ़ते हुए हमें बार-बार ऐसा प्रतीत होता है कि वह व्रज की कोई गोपी है अथवा स्वयं राधा ही है जिसका वर्णन किया जा रहा है, कभी कृष्ण को उस पर अनुरक्त देखकर अथवा व्रज प्रदेश सम्बन्धी कोई संकेत पाकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह नायिका व्रज की ही कोई गोपिका है। कहने का आशय यह है कि नायिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि के मन में व्रज और कालिंदी का वातावरण घूमता रहा है, कृष्ण और गोपी की भावना काम करती रही है। उनका वर्णन करते समय कवि ने कृष्ण गोपी, राधिका आदि का नाम सामान्यतया नहीं लिया है या कम स्थानों पर लिया है।

[1] वही : छंद ५० ।
[2] सुजान रसखानि : छंद १६० ।
[3] वही : छंद १०८ ।

इस प्रकार आलम ने वर्णन किसी अज्ञात नायिका का किया है जो आलम के मन की कल्पित कोई रूपशालिनी तरुणी भी हो सकती है और ब्रज की कोई गोपिका भी। घन आनन्द की तरह उन्होंने अपनी प्रेमिका का वर्णन स्पष्ट रूप से नहीं किया है इसका एक कारण यह भी है कि रीति का भी थोड़ा प्रभाव आलम पर था। आलम ने नायिका के सौंदर्य का चित्रण तीन प्रकार से किया है (१) आलंबन रूप में (२) दूती के माध्यम से (३) आश्रयाश्रित रूप में अथवा नायक को नायिका के रूप पर रीझा हुआ दिखाकर।

आलम्बन रूप में

नायिका का वर्णन करते हुए आलम ने उसका वर्णन अलंकृत शैली में भी किया है, और उसके सौंदर्य का उत्कर्ष व्यंजित किया है। उसके अंग-अंग पर कवि की दृष्टि गई है तथा उसकी सुन्दरता पर कभी कोई उपमा निछावर हुई है और कभी कोई उपमा तिरस्कृत। नायिका के बोल की मिठास अंग-कांति मुख-सौंदर्य कटि की क्षीणता वेणी, छूटी हुई अलकें, रूठना, अंग-अंग के आभूषण, दांत, नाक, आँख सभी पर कवि की दृष्टि दौड़ी है—

(क) हीरा से दसन मुख बीरा नाना बीर चार,
        सोने से शरीर रचि चली चीर पान को।

(ख) आलम कहे हो बड़े बार हैं सेवार नये,
        तेरी तरुनाई सु नराइ सी जगनि है।
    मोतिन को हार हिये हौंस ते पहीरें नहीं,
        पोत ही के छरा मनछरा सी लगनि है।

(ग) आलम कहे हो पूरो पुन्य को सुहायो कौन,
        मुख की निकाई हेरि हिमकर हार्‌यो है।

(घ) तेरोई मुखारविन्द निंदे अरविन्दै प्यारी,
        उपमा को कहूँ ऐसो कौन जिय में खगै।
    घटि गई चन्द्रिकाऊ छपि गई छवि देखि,
        भोर को सो चांद भयो फीकी चांदनी लगै॥

वर्णन की ये कुछ परम्परागत विधियां हैं जिन्हें आलम अपनाकर चले हैं जिनमें चमत्कार ही प्रधान है, रूप-चित्रण नहीं। सौन्दर्य चित्रण करते हुए जहां कहीं भावुकता का सहारा लिया गया है कविता भी निखर उठी है और नायिका का रूप भी—

चितवन और लागै बोले और जोति जागै,
हँसे कछू और रूसे औरई निकाई है।
अंग अंग मोहनी मोहन मन मोहिबे को
मृग-नयनी मानो मैन मोहनी बनाई है।
"आलम" कहे हो रूप आगरो समातु नाहीं,
छवि छलकनि इहां कौन की समाई है।
भूषन को भार है किसोरी अंग गोरी गात,
तेरे मन प्यारी कोटि भूषन गुराई है॥

यहाँ नायिका में वह सौन्दर्य प्रतिष्ठित किया गया है जो प्रतिक्षण परिवर्तित होता हुआ नव्य से नव्यतर होता चला जाता है। नायिका की चितवन में और ही सौन्दर्य है, बोलने में और ही सौन्दर्य है, हँसती है तो सौन्दर्य कुछ और ही हो जाता है और उसके रूठने में भी मनोहर सुन्दरता है। ये सभी सौन्दर्य एक ही नायिका से प्रस्फुटित हो रहे हैं पर हैं पृथक-पृथक। नायिका ऐसी रमणीय और मनोमुग्धकारिणी है कि उसके एक-एक क्रिया-कलाप से प्रभा के नये-नये द्वार खुलते चले जाते हैं, उसका प्रत्येक आचरण नवीन कांति और शोभा का सृजन करता चलता है, उसे तो मदन ने अपने विशेष मनोयोग से विसृष्ट किया है। उसके अंगों से तो छवि छलकी पड रही है।[1] हे नायिके! तेरे अंगों की वर्णच्छटा तो करोड़ो आभूषणों की कान्ति के समान है। नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए आलम ने एक स्थान पर लिखा है कि तेरे अंग-अंग में तो ऐसी नवीन कान्ति फूट रही है कि जान पड़ता है जैसे तूने किसी रूप और सौन्दर्य के मुल्क को ही लूट लिया है।[2] तू भला जुही के फूलों के समान लज्जावनत क्यों हो रही है? घने श्यामल केशों के बीच अपने तारुण्य के साथ तू तो जड़ाऊ गहने के समान दमक रही है, तू अपने हृदय की प्रेम भरी उमंग के कारण मोती की हल्की-सी माला का भी निषेध किये हुए है, और काँच के गुरियों की छोटी सी माला पहनकर भी अप्सरा-सी प्रतीत हो रही है। नायिका के रूप-सौन्दर्य का यह चित्र अत्यन्त प्रभावशाली है। उसके सहज सौन्दर्य का वर्णन करते हुए अन्यत्र आलम लिखते हैं कि तेरे कनक से वर्ण वाले गात में हीरे की सी उज्ज्वल आभा है। तेरे लिए शृंगार के सारे प्रसाधन व्यर्थ हैं, तू तो अपना शृंगार स्वयं है, स्वर्णकार विधाता ने तुझे अनुपम शोभा प्रदान कर जड़ाऊ गहने-सा कान्तिपूर्ण कर दिया है—

> 'और है सिंगार भार तुही आपनो सिंगार,
> विधि है सुनार तू जराऊ जैसी कीनी है।'

कुछ छन्दों में आलम ने नायिका के सौन्दर्य को शरीर के समस्त संतापों का हरण करने वाला और उसे कामकेलि के सर्वथा उपयुक्त बतलाया है। इस प्रकार उक्तियों में आलम भावना की दृष्टि से बोधा के समीप आ गये हैं[3]—

(क) सौरभ सकेलि मेलि केलि ही की बेलि कीन्हीं,
सोभा की सहेली सु अकेली करतार की।

(ख) तपनि हरति कवि "आलम" परस सीरो,
अति ही रसिक रीझि जानै रस चार की।

---

[1] घनआनन्द में भी यही भाव आया है—अंग अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनौ रूप अबै धरच्वै।

[2] इसी से मिलता-जुलता भाव घनआनन्द में भी आया है—सुजानहित छन्द ४८

[3] बोधा की समान भाव वाली कुछ उक्तियाँ देखिए —

(क) बीच में बोधा रचैं रसरीति, मनो जगजोति चुरयो तिहि वारी।
यों दुरि केलि करै जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी॥

(ख) वेदऋचाप्रसून बतायो हमें बुद्धि सेन तरुणी को सरस तरगन बसतु है।

(ग) भूले कोऊ अन्त ही बतावत है बुद्धिसेन, प्रसून बसत है विदोष नवलान मे॥

सनि हूँ को रसु मानि सोने को महप लै कै,
अनि ही गरम सो संवारो घनसार को।
(ग) पानरो अंगेठी आंगी अग हूँ तों लागी रहे,
झलकतु अग झीनो झनक दुकूल को।
"आलम" सुधारे कच कारे मटकारे भारे,
डारे आछे पाछे प्यारी स्याम सुलफूल को॥

दूनी के माध्यम से—नायिका के सौन्दर्य, सौकुमार्य आदि का जो अभिव्यंजन कवि ने दूतिकाओं के मुख से कराया है उसमें भी कवि की ही सौन्दर्य-दृष्टि और सौन्दर्यानुभूति लक्षित होती है। प्रयोजन भी नायिका का सौन्दर्याङ्कन ही है, दूतिका मध्यस्थ मात्र रहती है। दूती द्वारा नायिका के सौन्दर्य वर्णन से एवं निहितार्थ नायक के हृदय में नायिका के प्रति रुचि जागृत करना भी हुआ करता है। यह पद्धति भी आलम में परम्परागत काव्य से ही आई है जिसके कारण कुछ तो उसकी स्वतन्त्र काव्यवृत्ति को क्षति पहुँची है तथा कुछ कामुकता की भी अरुचिकर छाया आ गई है—

(क) काम रस माते ह्वै करेरी केलि कीन्हीं कान्ह,
फूलनि की मालिका हूँ मींडि मुरझाई है।
"आलम" सुकवि याहि और सी न जानो बलि,
ऐसी नारि सुकुमारि कहौ कौने पाई है।
कमल की पात लै लै हाथ याको गात छूजै,
हाथ लाये मैली होय गात की निकाई है।
अधर है मुख सनमुख तासों बात कीजै,
ना तरु उसांस लागे मुकुर की झाई है॥

(ख) हौं तो ल्याई कालि प्यारे कोटिक जतनु करि,
तुम ऐसे रोष ह्वै हमाई सु कहा जु की।
कर परसत कुंभिलात कलेवर वाको,
वाही तो है एहो लाल फूल की सी नाजुकी॥

प्रथम उदाहरण के अंतिम दो चरणों म सौकुमार्य की जो पवित्र भावना अतिशयोक्ति-मूलक वर्णन शैली में हो रही जागृत होती वह पहले दो चरणों के कारण नितान्त मैली हो गई है परन्तु दूतिकाओं द्वारा वर्णित नायिका का सौन्दर्य पूरी तरह अवश्य उभर आया है। वे तरह-तरह से नायिका के सौन्दर्य का बखान करती हैं। उसके स्वरूप-चित्रण में दूतियों ने उसके अग कान्ति या वर्णच्छटा पर अधिक जोर दिया है, उसकी उज्ज्वलता और गोरेपन को लेकर अनेक मनोहर कथन किये है[1]—

(क) ऊजरई की उजियारी गोरे तन सेत सारी,
मोतिन की जोति सों जुन्हैया मानो बाढ़ी है।
"आलम" सुआली वनमाली देखि चलि दुनि,
सुगढ़ कनक की सी रूप गुन गाढ़ी है।

---

[1] आलम केलि : छन्द ६६, ६७, ६८, ६९, ७७, ८३, ८४, ८८।

देह की दमक वाके चीर में चमक छाई,
छीरनिधि मथि छिर्यो चाँद चीरि काढी है ॥
(ख) अंग अंग जगी जोति जोन्ह सी उजियारी होति,
ऊजरी उज्यारी प्यारी मानो चन्द जैसी है।
(ग) काम केलि बेलि सी अकेली कुंजधाम खरी,
बदन की आभा जनु फूलतु कमल है।
कहि कवि 'आलम' जगमगत अंग वाके,
रवि के किरनि मिलि कदली को दलु है।
(घ) सुख ही को रासि रस रासि रूपरासि ऐसी,
रोम रोम नखसिख पानिप की खानि है।
(ङ) अलबेली बोलनि हँसनि पुनि अलबेली,
अलबेली डोलनि में जोनि सी जगमगै।
नैननि में भौंहनि में अधर कपोलनि में,
ऐसो जाको जोवन जराऊ सो जगमगै॥
(च) पून्यों ऐसी आनि घर पैठि है घरी में बलि,
देहरी दुवार लगि दीपकु न चाहिहौ।
(छ) चन्दन चढाए चन्द चांदनी सी छाइ रही,
चन्द्रमा सो मुख छबि हाँसो चन्द्रिका सी है।

नायिका की शारीरिक कान्ति अछोर है, उसके अंग-अंग में सूर्य और चन्द्रमा-सी कान्ति है, उनकी आभा फूटी पड रही है, अंग अंग में यौवन का प्रकाश है। जिस घर में ऐसी नायिका पहुँच जाय उसमें देहरी दरवाजे तक दीपक की क्या आवश्यकता। दूती द्वारा नायिका की अनन्त रूपाभा के ये विविध कथन कुछ ऐन्द्रिकता लिए हुए अवश्य हैं, परन्तु इनमें आलम की सौन्दर्य भावना का अत्यन्त उत्कर्षपूर्ण स्वरूप गोचर होता है। ये वर्णन नायिका के कान्ति विषयक अन्य कवियों के वर्णनों से किसी प्रकार भी कम नहीं।

आश्रयाश्रित रूप में आलम ने नायिका के रूप एवं अंग-सौन्दर्य का जो वर्णन किया है वह भी देखने योग्य है। पहले तो शरीर की समूची प्रभा और कांति से मनुष्य प्रभावित होता है, उसकी चकाचौंध जब मिटती है तो सुघड अंगों पर दृष्टि जमती है। अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने एक एक अंग का पृथक-पृथक वर्णन नहीं किया है वरन् एक समूचा चित्र उपस्थित करने के लिए एक झलक में जितने अंग कवि की दृष्टि में आ गये हैं उन्हीं का वर्णन किया गया है।[1] ऐसे वर्णनों में कवि की दृष्टि अपेक्षाकृत स्वच्छन्द रही है। कवि ने नायिका के उमंग और काम-मद भरे सुगठित अंगों का वर्णन किया है, गठीले अंगों के सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ उनके प्रभाव की ओर भी आलम ने जब-तब संकेत किया है। वह कहता है कि नायिका अपने अंगों के सौन्दर्य की मार से मन को मरोड या उमठ डालेगी अथवा यह विधिकृत यौवन की मतवाली अवश्य ही किसी न किसी मनुष्य के प्राण ले लेगी। ऐसे वचन प्रायः रीझे हुए नायक द्वारा कराये गये हैं। रूप पर जो रीझना

---

[1] आलम केलि - छन्द ७१, ७२, ३१५, ७४, ८०, ८६।

है ये उसकी उक्तियाँ हैं इसी से इन वर्णनो की पद्धति को 'आश्रयाश्रित' कहा गया है। इन कथनो को नायिका के रूप और अंग-सौन्दर्य की कल्पना से उत्पन्न कवि के हृदय की निजी प्रतिक्रिया भी मान ली जाय तो कोई अनौचित्य नही। आलम ने भी रूप-सौन्दर्य के ये शृंगारी वर्णन बहुत अकुंठ चित्त से ही किये हैं—

(क) उरज उतंग मानो उमगो अनंग आवै,
कति बैठी आंगी उर गाढो जरीवन्द की।
सुभर नितंब जंघ रंभा के से खंभ-चलि,
मन्द मन्द आवै गति मद के गयन्द की॥

(ख) आठो अंग निपट सुठानि बानि ठानि ठई,
गांठि से कठोर कुच जोवन की ठेंठी है।
गुन की गभीर अति भारियं जघन जुग,
थोरे ही दिनन गोरी रूप रग जेठी है॥

(ग) देह मे कनक सी है लांक हू तनक सी है,
नूपुर झनक सी है महाछवि बडी है।

(घ) भारी सो लगतु हियो ज्यों ही उर ऊंचो होतु,
टगनि भरति कटि टूटिवे टराति है।

(ङ) झीनी आंगी झलकं उरोज की कसाउ कसें,
जावक लगाए पाउं पावक तें गोरी है॥

अंग-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कही कही एक या दो अगो के सक्षिप्त उल्लेख अथवा वर्णन से भी एक छवि सामने आ गई है, अंग-वर्णन के साथ-साथ कही-कही चलने, तिरछे देखने, मुस्कराने आदि का भी वर्णन हुआ है पर वह आंगिक सौंदर्य के वर्णनो को पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ है। सौकुमार्य का वर्णन करते हुए आलम लिखते हैं कि वह अपने हृदय के हार का भार भी नही सम्हाल सकती, प्यारी नायिका पान की डाल सी है जो 'सीरी' हवा चलने से शीतल और गर्म हवा चलने से झुलस जाती है, वह तो कमल कली सी मृदुल है जो स्पर्श से ही कुम्हला जाती है।[1]

आलम ने नायिका की शोभा और सजावट का भी वर्णन किया है। यद्यपि कुछ छन्दो मे आलम ने बिना शृंगार के भी नायिका के सुंदर होने की बात कही है—'बिनहू सिंगार कवि आलम सिंगारियौ तन', और है सिंगार भार तुहीं आपनो सिंगार'—तथापि अनेकानेक छन्दो मे उन्होंने नायिका के शृंगार प्रसाधनो का भी वर्णन किया है। स्वर्ण तथा रत्न के आभूषणो से उसकी शोभा और कांति मे अभिवृद्धि हो जाती है, उसके शरीर की आभरण युक्त शोभा के समक्ष स्वर्ग की अप्सराएँ रंभा आदि भी नहीं ठहर सकती, फूलो के गहनो से सारे शरीर का शृंगार किये हुए नायिका फूलो की माला-सी जान पडती है, तथा जडाऊ गहनो के बीच वह ऐसी शोभा देती है जैसे कचन के खभे मे दीपको की माला शोभा दे रही हो।[2]

---

[1] वही : छंद ८४, ७६।
[2] आलमकेलि छन्द ८७, ८६, ६०।

(क) रंभाऊ न भावै ऐसे रूप की आरभ देखि,
सोभित शरीर मधि सोभा अभरन की ॥

(ख) फूल ही के भार भरि सीस फूल फूलि रहे,
फूली सांझि फूली आवै फूलन की माल सी।

(ग) दीपति नवीन गन पांति पट झीने मानो,
कचन के खंभ मे दिपति दीप माल सी।

नायिका के स्वरूप की निर्मिति चन्द्रमा की मरीचियों से हुई है, उसके आभरण उसकी शोभा की समृद्धि मे योग देते हैं। वह छविशालिनी अपनी अटा से जब उतर जाती है तब ऐसा लगता है जैसे चांद डूब गया हो। कुसुभी सारी, फूलों के हार, केसर का तिलक, सुन्दर अंगिया, पांवो मे चूटे, नाक मे बेसर, हाथों मे कगन देखकर नायक का मन उमगित हो उठता है।[1] अलकृत शैली में कवि ने कभी उल्लेख अलकार के माध्यम से, कभी रूपकातिशयोक्ति के सहारे नायिका की रमणीयता का वर्णन किया है।[2] अलकृत शैली में किये गये वर्णनों मे स्वरूप साक्षात्कार तो नही होता, किन्तु वर्णित वस्तु के सौंदर्य को काल्पनिक उत्कर्ष अवश्य प्राप्त हो जाता है। आलम ने नायिका के एक-एक अग के सौंदर्य को पृथक-पृथक देखने की रीतिबद्ध कवियों की भद्दी प्रथा का पालन नही किया, किन्तु विशेष कारणों से नेत्रो का उन्होंने अपवाद रूप मे स्वतन्त्र वर्णन किया है। एक छन्द मे नायिका के नेत्रों मे ही समुद्र मन्थन मे निकले चौदह रत्नो की कल्पना आलम ने की है जिस पर रीझकर लाला भगवानदीन कह उठे हैं—'यह कमाल इसी कवि ने दिखलाया है' परन्तु वह छन्द कवि की स्वच्छन्द वृत्ति का द्योतन नही करता, उसमें कल्पना और आलकारिक चमत्कार ही विशेष है।[3] कही आंखो की श्यामता, कही कटाक्षों की तीक्ष्णता आदि का भी चमत्कार वर्णन किया है।[4] नेत्रों के ही समान अपवाद रूप मे दांत, कटि आदि पर भी दो-एक उक्तियाँ कवि ने की है।[5] इन वर्णनो मे भी वैचित्र्य ही प्रधान है।

राधा—रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए आलम की निजी भावना ने जिस सौंदर्य का भावन किया उसी का स्वरूप उपस्थित किया, नायिका का वह रूप जैसा हम कह चुके हैं किसी अज्ञात नायिका का भी हो सकता है अथवा किसी गोपी का भी। राधिका का वर्णन उन्होंने विशेष नही किया, दो एक छन्दो मे अवश्य उनके नाम का उल्लेख हुआ है। एक जगह उनके सौकुमार्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि राधा मालती पुष्पों की माला के समान निर्मल और सौरभयुक्त है, कुसुम किसलयों के समान सुकोमल है, सर्वोत्कृष्ट पद्मिनी जाति की है, उसके खुले हुए सुगंधित केश मौक्तिक लरों के साथ शोभा दे रहे हैं, ऐसी अल्प वय वाली वृषभानु-नंदिनी को देखकर हृदय शीतल हो जाता है तथा वह कमल-

---

[1] वही छन्द ६१, ८१।
[2] वही छन्द ७८, ७९।
[3] वही छन्द ३४।
[4] वही छन्द २६, ६४।
[5] वही छन्द ३३४, ३९१ ८१।

कलिका के समान ऐसी सुकुमार है जो स्पर्श से ही कुम्हला जाती है।[1] ऐसी राधिका का प्रभाव कृष्ण पर कुछ कम नहीं, कृष्ण उसके रूप पर जिधर दृष्टि डालते हैं उधर ही रीझ रहते हैं।[2] उसके अंग तो अंग अलंकार भी कृष्ण को मुग्ध कर लेते हैं —"चूरी ही मे चाहि चूर भयो वाही घरी को", कृष्ण उसके वय और रूप की जुन्हैया से दो टूक हो जाते हैं—

> सिसुता की सानी वैस रूप की जुन्हाई जैसे ।
> आधे ही निहारि नैना आधे-आध कै गई ।

ऐसी प्यारी राधिका श्याम के सुख की मूल है। आलम ने एक जगह यह कहा है कि राधिका के रूप-वर्णन में वह एकदम असमर्थ है, त्रिलोक में ऐसा कोई भी साधन नहीं जिसके द्वारा राधिका के स्वरूप को प्रदर्शित किया जा सके, समस्त उपमायें व्यर्थ हैं[3]—

> वृषभानु सुता सम कहन कहँ, आलम त्रिभुवन में जु कछु ।
> यह मन क्रम बच कै जानियहु कवि कहिबो सो सबै तुछ ॥

कृष्ण—कृष्ण प्रायः सभी स्वच्छन्द शृंगारी कवियों के आलम्बन रहे हैं। इसका कारण केवल यही नहीं था कि भक्तिकाल और रीति-काल के रीतिबद्ध कवियों ने उन्हें प्रेम और शृंगार के आलम्बन रूप में ग्रहण कर रखा था, इसका एक बहुत बड़ा कारण यह भी था कि कृष्ण परम सौंदर्यशाली देवता थे जो किसी के भी रतिभाव के श्रेष्ठतम आलम्बन हो सकते थे, स्वच्छन्द कवियों ने या तो अपने प्रेम-पात्र के रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है या फिर कृष्ण का। आलम की गोपियाँ कृष्ण के रूप पर, अंग-प्रत्यंग पर, आचरण और उनके क्रिया-कलापों पर यहाँ तक कि हँसने, बोलने, देखने और मुस्कराने पर भी रीझती दिखाई देती हैं, इस प्रभाव वर्णन के माध्यम से कृष्ण के रूप सौंदर्य की व्यंजना की गई है। एक गोपिका का मन तो खड़े ही खड़े बिक जाता है—कृष्ण आते हैं, जाते जाते एक एक बार मुँह मोड़कर उसे देख जाते हैं बस इतने में ही तो उनके रूप का विष उसे चढ़ जाता है, उसके जीव या प्राण को जैसे वे खुरच कर ले जाते हैं, उसकी रूप तृषा बुझती ही नहीं[4]। इस उद्दाम आकर्षण का मूल कारण था कृष्ण की अपार रूप राशि। कृष्ण का असीम रूप-सौंदर्य गोकुल की कुलीन से कुलीन कन्या के लिए और सती से सती कुलवधू के लिये एक खुली चुनौती था। आलम की गोपिका ने खुले आम कहा है कि कृष्ण को देख लेना ही मानो उन्हीं का हो जाना है, हमारा सयानपन, चातुर्य अथवा अभिमान तभी तक ठहर सकता है जब तक हम कृष्ण की गली तक नहीं जाती, उनके पास पहुँचने पर यह सब गायब हो जाता है—

> तब लौं सयानु अभिमानु कवि 'आलम' हो,
> जौ लौं आलो नेकु खोरि कान्ह की नहीं गई ।
> पार्वं ते न आयो जात कोजतु वाही को भायो,
> वा तन चितैये नेकु जनु वाही की भई ॥

---

[1] आलमकेलि छन्द ७६।
[2] वही : छन्द १६।
[3] वही : छन्द २८६।
[4] आलमकेलि : छन्द १२५।

व्यंजना यह है कि श्रीकृष्ण अपूर्व सौंदर्यशाली हैं उनके रूप पर जो रीझता है उसे अपनी सुध नहीं रह जाती, एक सद्य अनुरक्ता को देख एक पूर्वानुरक्ता की यह फटकार देखिये—

> कहाँ आई बैरिनि बेसुधिन को सुधि देन,
> सुधि आयें बुधि जाइ सुधि बुधि हरी है।
> बरस सिराने नैना बरसि सिराने नैना,
> गहिली गवाँरि अजों पहिलियै घरी है॥

आसक्तिपरक इस कथन में भी अभिव्यंग्य कृष्ण का सौन्दर्य ही है। आलम ने कृष्ण के रूप की अपेक्षा रूप के प्रभाव का ही वर्णन अधिक किया है, चितवन का प्रभाव कई छंदों में दिखाया है—कृष्ण ने जिसे एक नजर देख लिया उसकी दशा अकथ हो रही है, उसका हृदय उसी एक नजर के कारण नित्य दग्ध है, साँस लेने मे शलाका के वेध की सी हूक उठती है, मन परवश हो गया है, नींद हराम हो गई है, पर ऐसी नजर से देखने वाला बैरी हरदम आँखों में ही बैठा रहता है। कृष्ण की एक चितवन प्रेममूर्ति गोपिकाओं के सर्वस्वहरण के लिये पर्याप्त है, इतने में ही उनकी कौन सी गति नहीं हो जाती ? उनके हृत्स्पंदन की गति महा-तीव्र हो जाती है और उनकी धमनियों का भी धीरज खो जाता है। बेचैन और जड़ बना देने वाली कृष्ण की चितवन का इस प्रकार अनेक-विध वर्णन आलम ने किया है।[1] एकाध उदाहरण देखिये—

> (क) साँस लेत हिये मे सलाका ऐसी सालति है,
> कान्ह चितवनि माई नित चित कों दहै।
>
> (ख) पलक तें न्यारी कीनी नींदऊ बिडारि दीनी,
> निसि दिन नैननि मे बैरी बैठोई रहै॥
>
> (ग) लटपटी पेचै लखि चटपटी लागी आँख,
> अटपटे आये लाल मोहिं लटू के गये॥
>
> (घ) धीरे ही तें धाय धुकि आलम अधीन करि,
> हिये धकधकी है न धीरजु है धौनी में।
> अचल की ओट मे दृगचल लगाई नेकु,
> मोहि गयो मोहि सखी चपल चितौनी में॥
>
> (ङ) राजिव दृगनि तेरे राजत बिलोकि दृग,
> रीझि बसि भई खीझि कहूँ न पराइहै।

कृष्ण की बाँसुरी आदि का प्रभाव दिखाकर आलम ने उनकी मनोहरता की ओर भी व्यंजना की है।[2]

युगल छवि—रति भाव के सर्वोत्कृष्ट आलंबन राधाकृष्ण की युगल छवि का चित्रण आलम ने इस प्रकार किया है—

---

[1] आलमकेलि : छन्द १५०, १५१, १३८, १४१, १४३।

[2] आलमकेलि छन्द १२७, १५७, १२६, १४७, ३८७, ३६०, १४२।

बाह तमाल प्रसून लता किधौं स्याम घटा मिल बिज्जुल गोरी।
मधुपावलि कज्ज की माल मनो छवि पावत कंचन खंभ की जोरी॥
मूरतिवंत समुद्र समीप दिपै बड़वागि मिला वह धोरी।
जो बलि मालम नीके लखौं तो पै नन्दलला वृषभानु किसोरी॥

इस वर्णन में कान्ति और अनुराग से आवृत राधा और कृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप को अलंकृत पद्धति पर प्रत्यक्ष कराया गया है किन्तु यहाँ कवि का अपना भावोन्मेष भी प्रकट है जिसकी प्रेरणा से ऐसी रमणीक कल्पना संभव हुई है विवबोध न होते हुए भी यह वर्णन अपनी अलंकृति में आह्लादक है। उनके कुछ मोहक प्रेम व्यापारों का चित्र आलम ने इस प्रकार खींचा है—

गुन रूप निधान विचित्र बधू हित प्यारी पिया मधु गंजन की।
कवि 'आलम' पूरन पान समीप सुदेह दिपै दुति मंजन की॥
कर पल्लव कज्जल सों दृग छोरनि रेख रचै मनि अंजन की।
लिखतो दल मदुल कंज को मैन लै चचु मंवारत खंजन की॥

ऐसा लगता है जैसे कमल के कोमल पल्लवों से कामदेव खंजन की चोंच सँवार रहा हो। एक अन्य चित्र में युगल प्रेमियों को परस्पर एक दूसरे के कंधे पर अपनी भुजा का वर्णन किया गया है, लगता है जैसे चंपे की लता नीले पर्वत पर चढ़ी हुई हो—

कवनी भुज स्याम के कंधे धरे सनी मनो प्रीति की रीति बढ़ी।
छवि सा तन स्याम को सुन्दरता मानों चंपलता नग नील चढ़ी॥

इन वर्णनों में जो सौंदर्य है उसमें प्रिय-प्रिया-स्पर्श तथा प्रेम व्यापारों की निदर्शना के साथ-साथ मनोहर कल्पना और अलंकार-विधान का योग देखने लायक है।

स्याम-सनेही के कृष्ण—स्याम-सनेही प्रबन्ध में निर्मल शरदचन्द्र के समान कृष्ण के दुःख मोचन करने वाले मुखारविन्द का उनके सर्व व्यामोहक व्यक्तित्व का कवि ने प्रसादोत्पादक चित्र अंकित किया है। इस वर्णन में कृष्ण में ईश्वरत्व का भी संकेत है। जो उन्हें जिस भाव से देखता है उसी रूप में कृष्ण उसे गोचर होता है—

भगतन मिलि भगवन्त बखाने। कामिनि कामरूप पहिचाने॥
जोगिन जोगेश्वर करि लेख्यो। रोगिन मूरि सजीवन देख्यो॥
पुरुष पुरातन बिवेकी जाने। संतन संत रूप पहिचाने॥
मोर बिचार नीलघन बोलें। निर्मल मूल न्वन के खोले॥
घर घरनी मनि जिहि जनि भाई। निह तस देखे कुँवर कन्हाई॥

यह वर्णन उस समय का है जब रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण कुन्दनपुरी की ओर रुक्मिणी के उद्धार के लिये जाते रहते हैं। माताएँ पुत्र को भूलकर नारियाँ पतियों को भूलकर, बालक माँ को भूलकर, वणिक अपने वाणिज्य को भूलकर श्रीकृष्ण को देखते रह जाते हैं। कोई उन्हें देखकर चकित हो जाता है, कोई थरथराने लगता है कोई मतवाला होकर मूर्च्छित हो जाता है। यह वर्णन सीता स्वयंवर में तुलसीदास कृत रामरूप वर्णन से मिलता जुलता है। जिस समय रुक्मिणी द्वारा सन्देश लेकर भेजा गया ब्राह्मण श्रीकृष्ण के समक्ष पहुँचता है वह भी उनके रूप को देखकर कृतार्थ हो जाता है। इस प्रकार आलम ने

श्यामसनेही खण्डकाव्य में कृष्ण के रूप का कोई विशेष वर्णन तो नहीं किया है पर प्रभ दिखाकर उनके रूप की व्यंजना अवश्य की है।

रुक्मिणी—रुक्मिणी का जन्म नहीं अवतरण होता है। अपनी शुभ्रता और पवित्र में वह दूज के चन्द्रमा से बढ़कर है। वह साधारण कन्या न होकर मानो देवलोक की प है। उसका जन्म वैसा ही है जैसे जनक के घर सीता का आगमन। उसके बाल्यरूप दिव्यता के वर्णन में कवि लिखता है—

'विमलचन्द सम्पुट ते उतरो। जानहु सुर पूजन की पुतरी॥'

लक्ष्मी और सरस्वती के श्रेष्ठतम गुणों से वह विभूषित है। उसके जन्म लेते पिता का भवन रात-दिन प्रकाशमान रहता है। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश वहाँ अपेक्षि ही नहीं जहाँ रुक्मिणी रहती है। सौ दीपक जलाने पर भी वह प्रकाश न होगा जो रुक्मिणी के कारण होता है। वंश के दीपक के समान वह दोनों कुलों को उजाग करने वाली है। आगे चलकर कवि ने उसके आगत तारुण्य का (वय सन्धि का) वर्ण किया है। बाल-वय की बातें गयी, यौवन के लक्षण और गुण क्रम क्रम से चन्द्रमा क कलाओं के समान बढ़ने लगे, पुतलियों में श्यामता आ गई, भौंहों में वक्रता, कटि में क्षीणता, गति में मन्थरता, नेत्रों में मीनता या चपलता, अंगों में शोभा आदि। और आगे कवि ने विवाह का शृंगार किये हुए रुक्मिणी के वस्त्राभूषणों का वर्णन किया है जिसमें केसर चर्चित चूनरी, तिलक, बेसर, कज्जल रेखा, कर्णफूल, नगजटित खुटिला, हार या दाम वेणीबन्ध पर पृष्ठरंगा, मांग में मोती, कंकण, मणिजटित चूड़ाहार, कुसुमवर्ण के झीने वस्त्र, सुगन्धि-चर्चित चोली आदि का वर्णन किया गया है।

कामकन्दला—माधवानल प्रबन्ध में कामकन्दला के रूप का कवि ने विशद वर्णन किया है। कवि कहता है कि उसके रूप की सीमा नहीं है, सहस्र जिह्वाएँ भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं। केश, माँग, माँग में मोती, आगे मस्तक पर लटकती हुई मणि, कर्णफूल, तिलक, भ्रूभंग, चितवन, नेत्र, कटाक्ष, नासिका, बेसर और उसके मोती, कपोलों पर तिल, अलकें, अधर, हास, वचन-माधुरी, कंठमाल, मौक्तिकदाम, कुच, बाँह, क्षीण उदर, रोमावली, नाभि, कटि, जघन, नूपुर, पायल, कुसुम्भी साड़ी और चोली, ग्रंथित वेणी आदि का कवि ने अलंकृत शैली पर ब्योरेवार वर्णन किया है। यह वर्णन परम्परागत है पर उसमें कवि की निजी सौन्दर्य-चेतना भी देखी जा सकती है। एक-एक अंग और उसकी सज्जा पर उपमाएँ निछावर की गई हैं जिनके कारण वर्ण्य अत्यन्त उत्कर्ष के साथ सामने आया है। कंदला के सौन्दर्य का पाठक के चित्त पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता—

> कुंतल चिहुर चुवहिं ज्यों घाला। अहुधार कैधौं अलिमाला॥
> मध्य माँग चन्दनु घसि भरै। दूषधार विषधर मुख परै॥
> कहूँ कहूँ पुष्प कहूँ कहूँ मोती। जनु घन में तारागन जोती॥
> माँग अग्र मानिक दियौ मौ मुक्तागन संग।
> छिन छिन जोति धरै मनौं, मनि उगली जु भुजंग॥

कंदला के नृत्यकौशल आदि का प्रदर्शन करके तो कवि ने उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिए हैं।

माधवानल—माधव के रूप का वर्णन कामसेन की नृत्य सभा में प्रवेश के समय किया गया है जिसमें सारी सभा पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव अच्छी तरह दिखाया गया है। माधव साक्षात् कामदेव सा शोभा दे रहा था, कण्ठ में मौक्तिक माल, कानों में कुण्डल, विशाल नेत्र, महीन धोती और उपरना, सिर पर पगड़ी। उसका मुख, तेजस्वी और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व देखकर सारी सभा चौंक उठती है, सब अनायास उसके सम्मान में खड़े हो जाते हैं। लोग आपस में कहने लगते हैं कि ये कौन है—

कैं रे इन्द्र कैं चन्द्र है, कैं कान्हर कैं काम।
कैं कुबेर कैं जक्ष है, कैं किन्नर कैं राम॥

माधव के संगीत-ज्ञान तथा वादन-कौशल का वर्णन कर कवि ने उसके सौन्दर्य को और भी उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है।

समग्र रूप से आलम के रूप-सौन्दर्य वर्णन पर दृष्टिपात करते हुए कहना पड़ेगा कि आलम ने सौन्दर्य-चित्रण के क्षेत्र में भले ही किसी अभिनव पद्धति का श्रीगणेश न किया हो परन्तु उनमें सौन्दर्य को देखने, परखने और उस पर रीझने की सच्ची शक्ति थी और इसी से उनका रूप-सौन्दर्य-वर्णन बहुविध है। रूप के प्रभाव और उसके आकर्षण, उसकी रमणीयता और अनूठेपन का जिन नाना रूपों में उन्होंने वर्णन किया है वह उन्हें श्रेष्ठ कवियों की कोटि में बिठाने में सहायक हुआ है।

घनआनन्द कृत रूप-सौन्दर्य वर्णन

घनआनन्द का प्रेम जिस सुजान के प्रति था उसका वर्णन उन्होंने पूरे विस्तार और मार्मिकता के साथ किया है यहाँ तक कि कृष्ण और राधा तक के सौन्दर्य वर्णन में उन्होंने उतनी तीव्रता का परिचय नहीं दिया है। राधा की अपेक्षा कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का चित्रण अधिक है।

सुजान—घनआनन्द के जीवनवृत्त के सन्दर्भ में हम देख ही चुके हैं कि सुजान कौन थी। वह दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले की सभा की शोभा थी। इन्हीं बादशाह के खास कलम घनआनन्द उसके रूप पर फिदा थे और उसकी आसक्ति इतनी तीव्र थी कि वे उस पर अपनी जान भी दे सकते थे। उसके रूप और उसकी प्रीत ने इन्हें उन्मत्त कर रखा था। वे दिल्ली सल्तनत के बादशाह की अवज्ञा कर सकते थे पर सुजान की नहीं। बस इसी कारण उन्हें राजधानी छोड़नी पड़ी और सुजान के प्रेम में विकल हो बिलखते हुए वे वृन्दावन पहुँचे। सारा जीवन उन्होंने वहीं व्यतीत किया पर निष्ठुर सुजान की स्मृति उनके हृदय-देश से बाहर न जा सकी। मर्म में धँसे काँटों की तरह वह उन्हें जीवन भर सालती रही। जिस सुजान के लिये घनआनन्द में इतनी तड़प, पीड़ा और मर्मवेदना है वह सुजान कोई साधारण रूप वाली स्त्री न रही होगी। यदि घनआनन्द ने उसके रूप तथा अंग-प्रत्यंग की शोभा का कोई विवरण न भी दिया होता तो भी हम उनके काव्य में अंकित उनकी मनोव्यथा से घनआनन्द की प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य का अनुमान कर सकते थे किन्तु घनआनन्द जी ने इस सम्बन्ध में हमें असमंजस में नहीं रखा है। नाना छन्दों में विशद रूप में उन्होंने सुजान के रूप का, यौवन का, अंग-लावण्य का, मुख छवि का, हँसने, बोलने, चलने, देखने आदि का वर्णन किया है। जो हमारे रति भाव या प्रेम का आलम्बन

होता है उसका एक-एक अंग हमें मधुर लगता है, उसकी एक-एक चाल और एक एक बात में हमें अपूर्व माधुर्य लक्षित होता है। सुजान का रूप घनआनन्द ने इसी भाव से अंकित किया है।

घनआनन्द ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से अथवा कवि-परिपाटी के अनुसार शिख से नख तक का वर्णन एक साथ नहीं किया है। सुजान की समस्त छवि के जिस अंश का आकर्षण अधिक रहा है अथवा जिन अंगों का प्रभाव मन पर पड़ा है उसी के चित्रण में वे प्रवृत्त हो गये हैं। कवि का ध्यान प्रायः छवियों के चित्रण पर रहा है। एक-एक अंग को, उसकी सुन्दरता को अलग-अलग करके देखने-दिखाने की प्रवृत्ति उनमें नहीं। कुछ छन्द ऐसे मिल जाएँगे जिनमें केवल एक ही अवयव (आँख या चितवन, कटि, केश आदि) का वर्णन करके कवि रह गया है परन्तु वहाँ भी किसी अंग विशेष का वर्णन कोई अभिप्राय रखता है। ये वर्णन उस अंग विशेष की अतिशय शोभा या प्रभविष्णुता दिखाने के लिये या किसी नवीन पद्धति पर अंग वर्णन करने या किसी ऐसे अंग का वर्णन करने के लिये लिखे गये हैं जिसका वर्णन कवियों ने सामान्यतः नहीं किया है। आलम्बन का समस्त रूप भी कवित्त या सवैये में चित्रित कर सकना सम्भव नहीं इसीलिये हम देखते हैं कि सुजान की सौन्दर्य वर्णना का प्रत्येक छन्द उसकी एक नई छवि लेकर सामने आता है। छवि में नवीनता तीन कारणों से आई है—एक तो दृष्टिकोण या दृष्टिबिन्दु के बदल जाने अथवा उसकी भिन्नता के कारण, दूसरे रूप शोभा की अतिशयता के कारण, तीसरे हृदगत प्रेम के आधिक्य के कारण। दृष्टि भिन्न भिन्न अंगों या अंग समूहों पर पड़ती है इसलिये नई-नई छवियाँ कवि प्रस्तुत करता गया है तथा भिन्न भिन्न अवयवों की नई-नई दृष्टियों से संश्लिष्टता के कारण वर्णित छवियाँ नानाविध हो गई हैं। साथ ही सुजान के रूप और अंग-प्रत्यंग का सौन्दर्य 'क्षण क्षण नवीनता' वाले सिद्धान्त के अनुसार जितनी बार वर्णित हुआ है उतनी ही बार नई शोभा और प्रभाव के साथ कहा गया है। फिर सुजान के रूप पर कवि की निजी रीझ या उल्लास में भी तो कुछ कमी नहीं है, उसके कारण भी एक ही अंग के बार बार किये गये वर्णन में नवीनता, ताजगी और नई कान्ति आ गई है। इस प्रकार कवि ने सुजान के रूप का नाना छन्दों में विस्तार के साथ नाना प्रकार से वर्णन किया है। सुजान की रूप सौन्दर्य वर्णना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साक्षात्कृत एवं स्वानुभूत सौन्दर्य का आसक्त भाव से वर्णन किया है। इसी आत्मतत्व या अनिवेयक्तिकता (Subjectivity) के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन एक से और निर्विशिष्ट हो गये हैं जब कि घनआनन्द जी के रूप और छवि चित्र स्वकीय और अपरम्परागत कहे जायेंगे। उनका बहुत सारा सौन्दर्य और उन चित्रों की श्रेष्ठता का बहुत सारा श्रेय उनकी इसी आत्मनिष्ठता को दिया जायगा। उसमें जो नवीनता है, ताजगी है, सूक्ष्मता है, स्वच्छन्दता और नवीन भावनाओं और कल्पनाओं का योग है, वह सौन्दर्य-चित्रण की इसी आत्म-परक दृष्टि के कारण। बाह्य रूप सौन्दर्य और अंगलावण्य के भी तह में जाकर कवि ने जगह-जगह सुजान के आन्तर-सौन्दर्य की जो झलक दी है वह भी बड़ी मार्मिक और हृदयस्पर्शिणी है। कुछ चित्र या वर्णन रीतिशैली पर भी मिलेंगे जिसमें अलंकारों की योजना के सहारे रूप का साक्षात्कार कराया गया है पर वहाँ भी अलंकारिता में नयापन और ताजगी मिलेगी। मात्र पिष्टपेषण औरों में एक बार मिल भी सकता है पर घनआनन्द में नहीं।

इस दृष्टि से वृत्ति की स्वच्छन्दता घनआनन्द में जितनी मिलेगी औरों में नहीं। अब सुजान के अंग-सौन्दर्य के वर्णन देखिये।

सिर, केश, भाल, घूंघट, श्यामल साड़ी—सुजान के चिकने केशों की आकर्षक लटें उसके स्वच्छ मुख पर फैल कर उसके सुहाग-बिंदु-मंडित भाल और सिर की जो शोभा प्रदान करती हैं उसका कवि से बखान करते नहीं बनता—

> चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
> कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
> मानौं घनआनन्द सिगार रस सौं सँवारी,
> चिक मैं बिलोकनि बहनि रजनीस की॥

उसके खुले हुए केशों को देखकर पपीहे दौड़ने लगते हैं क्योंकि मुग्ध वृत्तों में पपीहों को अपने प्रियतम मेघ की प्रतीति होने लगती है और श्यामवर्ण के उसके सघन केश अपनी वर्ण-छटा के कारण भ्रमरों की भक्ति-भावना के आलंबन हो गये हैं। रात्रि में शयन के समय या प्रातःकाल सोकर उठने पर छूटी अलकों या बिखरी हुई लटों के सौंदर्य की भी चर्चा की गई है। भाल के वर्णन में कवि ने सुहाग-दीप्ति या मंगल बिंदु की चर्चा की है। उसका भाल सौभाग्य चिह्न से उद्योतित रहता है जिससे उसके प्रति उसके प्रेमी के प्रेम का भी पता चलता है। एक दो छन्दों में घनआनन्द ने सुजान को "घूंघटवारिये" कह कर उसके अवगुंठित रूप को भी प्रस्तुत किया है और उसकी सलज्जता तथा तत्कालीन घूंघट के रिवाज का भी परिचय दिया है—"घूंघट काढ़ि जो लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिनु काजनि॥" एक जगह श्यामल रंग की साड़ी भी उसे पहना दी गई है अंगों की गोरी कांति जिससे बाहर फूटी पड़ती है। घनआनन्द को वस्तु, शब्द, स्थिति, भाव सभी कुछ की विरोधात्मकता में जो सौंदर्य लक्षित होता था उसी के आधार पर उन्होंने अपनी गोरी सुजान को साँवली साड़ी भी पहना दी है और स्वयं मुग्ध भाव से उसकी प्रशंसा करते पाये जाते हैं—

> स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
> धूम के पुंज में ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता सुखकारी।
> कै छबि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
> कैसी फबी घनआनन्द चोपनि सों पहिरी चुनि साँवरी सारी॥

भौंह और नेत्र—भौंहों के वर्णन में उनके बाँकपन (वक्रता) का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है, उनकी किंचित चपलता, तनाव (रोष या गर्व आदि का सूचक), सन्निकटता आदि अन्य गुणों का भी संकेत मिलेगा। नेत्रों का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक किया है, नेत्रों की प्राणवत्ता, आकर्षण शक्ति, प्रभाव डालने की क्षमता आदि इसके कारण हैं। नेत्रों की विशालता, रंगीलापन, श्यामता, उज्ज्वलता, सुन्दरता, काम-मद मत्तता, आनन्द के आसव से छका होना, ओजस्विता, अंजन अंजित होना, नेह युक्त होना, चतुरता, चपलता, रसिकता, अरबीलापन (अड़ने की प्रवृत्ति), लाड़ से पालित होना, तीक्ष्णता, प्रसिद्ध उपमानों का दर्प दलन करने की शक्ति, सलज्जता, शीलयुक्तता, हँसीलापन, कांतिपूर्ण होना, रस-राशि सम-

न्वित होना, मनरंजिनी एवं रसस्त्राविनी शक्ति, स्नेह समन्वित होना, तृप्ति आदि बातों का वर्णन नाना छन्दों मे किया गया है।[1] कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) भलकैं अति सुन्दर आनन गौर छके दृग राजत काननि छ्वैं।

(ख) दक विलास रगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित।
आनन्द-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित॥

(ग) मीन-कज खजन कुरंग मान-भग करें,
साँचे घनआनन्द खुले सकोच सो मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बडे काती लिए छाती पै रहैं चढ़े॥

(घ) पानिप पूरी खरी निखरी, रसरासि निकाई की नीवहि रोपें।
लाज लडी बडी लोल गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपें।

(ङ) खजन ऐसे कहा मनरजन, मीननि लेखौ कहा रस दार सो।
कजनि लाज को लेस नहीं, मृग रखे, सने ये सनेह के सार सो।
मोतिन के यह पानिप-जोनि न, बान-जिवाई न जानन मार सो।
मीत सुजान सिरावत लो दृग है घनआनन्द रग अपार सो॥

नेत्रो के सौंदर्य वर्णन मे कवि की दृष्टि केवल उनके आकार प्रकार और वर्ण शोभा तक ही न जाकर उनकी सलज्जता, अनुरक्ति,तीक्ष्णता, रसार्द्रता, छका हुआ होना या नशीलापन, अडियलपना, काम के मद मे रँगा होना आदि आतरिक गुणो पर भी गई है जिससे सुजान के बाहरी स्वरूप तक ही नहीं हम उसके आन्तरिक रूप तक भी जा सकते हैं। इन आन्तर गुणों का सकेत कवि के निजी निरीक्षण एव अनुभव का सूचक है। जिन छन्दो मे थोड़ा अलकृत शैली का प्रयोग हुआ है वहाँ भी पिष्टपेषण नहीं मिलेगा। ऊपर के अन्तिम उदाहरण मे सुजान के नेत्रों के सामने प्रसिद्ध उपमानो को जो फीका ठहराया गया है वह सूरदास की स्वच्छन्द भावमयी वर्णन शैली का स्मरण दिलाता है।[2]

नाक, दाँत, अधर, ग्रीवा, मुख[3]—नासिका का वर्णन कवि ने बिलकुल ही नये ढग से किया है परम्परा की जिसमे कोई भी झाक नहीं है। सुजान की नाक जरा चढी रहती है, नाक चढी रहना मुहावरा है जिसका आशय है सदा ईषत् रोष मे रहना जो प्राय रूपवती स्त्रियो के स्वभाव का एक अग होता है। इस स्वभाव के मूल मे रूप का अभिमान तथा सब से लोक मे उसी रूप के कारण प्राप्त प्रशसा या प्रतिष्ठा कारण-स्वरूप हुआ करते हैं। रूप के कारण ही जिसे सब तरफ आदर मिलता है औरो की अवहेलना करने का उसका स्वभाव हो जाता है। निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी—

---

[1] घनआनन्द ग्रथावली—स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सुजान हित : छन्द १६२, ३०, ८५, ३६२, ३७५, १८, ५२, १८५, ४०२, १३७, प्रकीर्णक छन्द २, २२।

[2] उपमा नैन न एक रही।
कवि जन कहत कहत चलि आए सुधि करि करि काहू न कही।—(सूरदास)

[3] सुजानहित : छन्द ३०, ६८, २१६, ८५, २१०, प्रकीर्णक : २२।

अनखि चढ़े अनोखो चित्त चढि उतरै न,
मन-मग मूंदे जाको बेह सब ओर तें।
बड़े मैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप जोर तें।

नाक की छेद, नाक चढन की मुद्रा, एकदम (खरी) निडर और ऊँची नाक तथा नथ — इन सारी बातों का वर्णन ऊँची, लम्बी, इतराती हुई सुजान की सुन्दर नाक का सौन्दर्य प्रत्यक्ष करा देते हैं। कवि ने नाक चढ़ी रहने का और उसकी निडरता का कारण भी बिल्कुल सटीक दे दिया है—"खरियै निडर ऊँची रहै, रूप जोर तें।" दाँतों के वर्णन में उनकी शुभ्रता और चमक ही विशेष कथित हुई है और उनकी कान्ति को मौक्तिकदामवत ठहराया गया है तथा ओठों के वर्णन में अरुणता की चर्चा की गई है। अधर दांतो के वस्न हैं क्योंकि वे उन्हे आच्छादित किये रहते हैं। जिस प्रकार फाग खेलने वाली गोपी के आंचल में गुलाल भरा रहता है वैसी ही लाली सुजान के अधरों में भरी हुई है। लाल अधरों की यह भावना कितनी भव्य है। सुजान की ग्रीवा को गर्वीली और मान के समय एक विशेष मुद्रा में मुड जाने वाली बतलाया गया है। ग्रीवा की यह गरबीली मानयुक्त भगिमा चढ़ी हुई नाक वाली छवि को पूर्णता प्रदान करती है और सुजान के आभ्यतर स्वरूप को और भी अधिक स्पष्ट करती है। पर इससे क्या ? सुजान की सरोष मुद्रा भी घनआनन्द के पागल मन को सुख और सन्तोष ही प्रदान करती है। उनके प्राण उसकी ऐसी ही मुद्रा पर भीग भीग जाते है। सुजान के रूप वर्णन के साथ-साथ अपने हृदय और मनोभावों का सस्पर्श देकर घनआनन्द ने इन रूप चित्रों को अधिक जीवन बना दिया है। और कवि ग्रीवा के वर्णन मे कम्बु कपोत आदि की मिसाल बैठाने पर घनआनन्द उसी चित्र को प्रस्तुत करने वाले कवि है जिसका सम्बन्ध परिपाटी विहित रसज्ञता से नहीं, वरन आत्मगत अनुभूति से होना था। सम्पूर्ण मुख का वर्णन करते हुए कभी तो घनआनन्द ने सुजान को रूप की राशि ठहरा दिया है, कभी उसके सौन्दय की सुधा के कारण चकोरों को उसके पीछे दौडा दिया है और कभी उसके सहास मुखमडल को सिंधौरिया फल के समान कहा है। सम्पूर्ण मुख के साकेतिक अथवा व्यजनात्मक पद्धति पर प्रस्तुत ये छवियाँ एक से एक अनूठी हैं। ये चित्र अत प्रेरित भावना के कारण ही इतने सजीव रूप से प्रस्तुत किये जा सके हैं। मुँह को सिंधौरिया फल या आम बतलाना एकदम नई और रागलिप्त (हृदय लपेटी) सूझ या कल्पना का परिचायक है।

उरोज, उदर, पीठ और कटि[1]—सुजान के उन्नत उरोजों का विशद वर्णन न करते हुए केवल एक ही दो स्थलों पर उनका किंचित वर्णन किया है जिसमें उनकी उठान और दीप्ति पर थोडा प्रकाश डाला गया है. विस्तार के साथ उपमानों की झडी नहीं लगाई गई है और न दुंदुभियों को औंधा किया गया है, न पर्णकुटी के बीच शिवजी को ही बिठाया गया है वरन् केवल उस प्रभाव को व्यजित किया गया है जो सुषमायुक्त एव यौवन-सूचक उरोजों द्वारा कवि के मन पर पडता है—

---

[1] सुजानहित : छन्द ३४७, ३६०, १०७, १०३, ८०।

अगनि पानिप-ओपै छरी, निखरी नवजोबन की सुघराई।
नैननि ओरति रूप के भौंर अचम्भै-भरी छतिया-उपराई॥

उदर का वर्णन एक ही छन्द में किन्तु असाधारण सूक्ष्मता के साथ किया गया है। उदर का वर्णन मध्यकालीन हिन्दी काव्य में बहुत कम हुआ है और इतनी नव्य रीति और भावोन्मेष के साथ तो बिलकुल ही नहीं। कमनीय कामिनी के उदर सौन्दर्य के प्रभाव की भी ऐसी सप्राण प्रतीति कहीं नहीं कराई गई है। उपमानों को ओछा ठहराकर उदर सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखलाया गया है। इसी प्रकार सुजान की प्यारी पीठ की सुन्दरता का भी भाव-संयुक्त वर्णन देखिये—

सोभा-सुमेरु की सधितटी किधौं मान-मवास गढ़ास की घाटी।
कै रसराज-प्रवाह को मारग बेनी बिहार सौं यौं हग डाटी॥
काम कलाधार आंपि दई मनों प्रीतम-प्यार पढ़ावन-पाटी।
जान की पीठि लखै घनआनन्द आनन आन तें होनि उचाटी॥

पीठ की हृदयाह्लादक उक्त वर्णना में प्रत्येक सादृश्य कवि चित्त की आर्द्रता लिए हुए है। इसी से उपमानों के विधान की पद्धति परम्परायुक्त होकर भी अपरम्परागत प्रतीत होती है। पेट और पीठ के ये चित्र नितान्त स्वच्छन्द हैं। पीठ के चित्रण में प्रत्येक अप्रस्तुत एक नई कान्ति और गहरी अर्थवत्ता लिए हुए हैं और इन सबके ऊपर वह रीझ देखने योग्य है जिसे आकृष्ट करने में सुजान के शरीर के ये अवयव समर्थ हैं। इन अवयवों का वर्णन यों भी साहित्य में कम ही हुआ है। कटि की सूक्ष्मता और संदिग्ध अस्तित्व के वर्णन में घनआनन्द ने भी रस लिया है और कटि वर्णन सम्बन्धिनी जो हास्योत्तेजक उक्तियाँ कवियों ने की है घनआनन्द ने उनमें एक दो और जोड़ दी हैं। उसके वर्णन में कवि ने उक्ति विधान अवश्य अपने ढंग से किया है किन्तु कथ्य में कोई नवीनता नहीं है।

पिंडली, मुरवा, एंडी, तलवा (महावर और मेंहदी)—रमणी के घुटने के नीचे के भाग का वर्णन हिन्दी रीतिकार कवियों ने बहुत कम किया है। प्रसिद्ध कवियों में तो पिंडली और मुरवा का वर्णन सामान्यतः उपलब्ध नहीं। एँड़ी और तलवों का वर्णन अवश्य किया गया है। बिहारी की नायिका की एँड़ी का महावरी समझ नायिका द्वारा उसके मीड़े जाने का वर्णन और ताल में पैरती हुई पद्माकर की नायिका के पावों के रंग से त्रिवेणी की छटा के उपस्थित हो जाने के वर्णन प्रसिद्ध ही हैं। घनआनन्द ने सुजान की पिंडली और मुरवा (एँड़ी के ऊपर चारों ओर का घेरा) का वर्णन कर सौन्दर्यदर्शियों को नई दृष्टि प्रदान की है, अछूते अंगों की रमणीयता पर मन रमाने का मार्ग बताया है। उन्होंने कहा है कि साक्षात रति सी सुजान की सुन्दर पिंडलियों की गोराई को देखकर मन उसी में अनुरक्त हो जाता है, पिंडलियों की छवि पर ही पागल मन कुछ देर मुरवों की शोभा देखकर ठिठक रहता है और इसी प्रकार क्रमशः एँड़ी, तलवे और महावर में लीन होता हुआ उसके पैरों पर ही लुब्ध होकर बेसुध हो जाता है—

रति साँचें ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइयै पैरि परै।
छवि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सों सोभी छरो रसभूमि ररै।
घनआनन्द एड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे ते भरै न डरै।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै दुख पायनि लागि न हाय टरै॥

तलवों की लाली और पैरों की मेंहदी की चर्चा भी कुछ छन्दों में की गई है[1]।

समस्त शरीर तथा आभूषण—एकाध स्थल पर कवि ने सुजान के समूचे शरीर का और उसके प्रमुख आभूषणों का भी वर्णन किया है। समस्त शरीर का वर्णन करते हुए कवि ने उसमें सार्वत्रिक विकास और उल्लास दिखाने के लिए सुजान के शरीर में वसन्त के अधिवास की कल्पना की है और भूषण-भूषित तन की चर्चा करते हुए कवि ने उनके प्रभावों का विशेष विवरण दिया है। ये वर्णन भी सुजान को अंग अंग की उत्फुल्लता और आभरण सज्जा उपस्थित कर उसकी रूप की भावना को उत्कर्ष प्रदान करते हैं[2]।

इस प्रकार घनआनन्द ने अपनी प्रेयसी सुजान के अंगों का सौन्दर्य वर्णित किया है जिसमें कवि का रीझा हुआ हृदय भी लिपटा मिलेगा। रूप सौन्दर्य का यह वर्णन किसी कल्पित सौन्दर्य का वर्णन नहीं है वरन् उस सुजान का है जिसे वे नित्य देखते थे और जिस पर वे नित्य निसार होते थे। इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण उनके रूप-चित्र एक विशेष भंगिमा से परिपूर्ण हैं। उनमें एक प्रकार की स्वच्छन्दता है जो परम्परागत सौन्दर्य चित्रों को फीका बना देती है। इन चित्रों की ताजगी और ही है।

सुजान के रूप तथा अंगों के सूक्ष्मतर सौन्दर्य का वर्णन—घनआनन्द के पास निरीक्षण के लिए बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि थी फलतः वे स्थूल अवयवों के सौन्दर्य का उद्घाटन करते हुए उनकी सूक्ष्म विशेषताओं और रमणीयताओं तक भी गये हैं जैसे अंगों की कान्ति, उज्ज्वलता, अरुणाई, सौन्दर्य की सहजता, सुकुमारता, मधुरता, उनमें निहित तृप्ति, तीक्ष्णता, उन्माद, शैथिल्य, सुगन्धि, गरूर, तारुण्य, ताजगी, सरसता आदि तथा अंगों की मनोहर चेष्टाओं और क्रिया-कलापों के चित्रण द्वारा उन्होंने सुजान को राशिभूत रूप, रस और गन्ध की एक वास्तविक विभूति के रूप में प्रस्तुत किया है। सुजान का नैसर्गिक-सौन्दर्य-सम्पन्न यह जीवन्त रूप हिन्दी काव्य के पाठक कभी नहीं भूल सकते। ऐसे छन्द संख्या में भी बहुत अधिक हैं। अनेक बार ये छन्द सुजान के स्वभाव अथवा आन्तर-प्रकृति का भी द्योतन करते पाये जाते हैं।

रूप और मुख कान्ति—सुजान के रूप में सबसे अनुपम बात यह है कि उसे जितना ही अधिक देखा जाता है उसमें उतनी ही नई-नई शोभा दिखाई देती चली जाती है, यह शोभा परिमाण में इतनी अधिक हो जाती है कि उसकी नदी सी उफन चढ़ती है।[3] घनआनन्द ने कभी सुजान को अनुपम रूप से परिपूर्ण या रूप की खान बतलाकर आश्चर्य व्यक्त किया है कि ऐसी सुन्दरता की सृष्टि कैसे हुई, विधाता ने ऐसा आश्चर्यजनक सृजन किस प्रकार किया। ऐसे रूप को कवि ने अपनी विशिष्ट आलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया है जिससे उसका असाधारण उत्कर्ष लक्षित होता है। "नैनन बोरनि रूप के भौंर" कहकर कवि ने सुजान के रूप की असाधारण आकर्षण शक्ति की है क्योंकि उसके चक्करदार आवर्त में पड़कर नेत्र डूबने लगते हैं। कभी उसके रूप की जगमगाहट के सामने रति को

---

[1] सुजानहित : छन्द ८८, १२७, ४६६।

[2] सुजानहित: छन्द ५६, ११५।

[3] वही : छन्द ४१, १६७, १६२, ६७।

रूपहीन ठहराया गया है, इसी प्रकार अन्यान्य उपमानों को भी निरादृत किया गया है[1]। एक जगह रूप को दीवाली के पर्व पर जोतीला जुआड़ी कहा गया है—

> रूप-खिलार दिवारी कियें तिन जोवन दाँकि न मूरे निहारें।
> नैननि सैन छलै चित सौ चित-चाव भर्‌यौ निज दाँव विचारें।
> जीति हौ को चमको घन आनन्द चेटक जान सयान बिसारें।
> जीव बिचारौ पर्‌यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारें॥

रूप सम्बन्धिनी यह कल्पना कितनी नई है। इसी प्रकार एक जगह रूप की राखी भी बाँधी गई है। रूप चित्रण के लिए ऐसी रीति-निरपेक्ष और स्वच्छन्द कल्पनाएँ प्रस्तुत करना घनआनन्द सरीखे स्वच्छन्द-मति कवियों का ही काम था—

> पानिप मोती मिलाय गुही गुन-पाट गुही सु जु ही अभिलाखी।
> नीके सुभाय के रंग भरी हित जोति खरी न परै कछु माखी।
> चाह लै बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घन आनन्द जीवन साखी।
> नैनन पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी॥

यहाँ पर अभिलाष, स्वभाव, हित-जोति, चाह, प्रीति आदि की भी चर्चा कर रूप के साथ-साथ सुजान के आभ्यन्तर स्वरूप का भी बड़ी निपुणता से उद्घाटन किया गया है। सुजान का ऐसा सुन्दर रूप घनआनन्द ने नेत्रों तो नेत्रों तदुत्पन्न आँसुओं के प्रवाह में भी अंकित कर रक्खा है। रूप-मुग्ध घनआनन्द यह नहीं समझ पाते कि सुजान के रूप में यह विशेषता है जो वह अश्रु प्रवाह पर भी अंकित हो सका है या स्वतः उनके चितेरे चित्त के सामर्थ्य की विलक्षणता है—

> लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,
> लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
> रूप को चरित्र है अनन्दघन जान प्यारो
> अकि धौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की॥

अपने इस रूप सौन्दर्य के आतिशय के कारण ही सुजान जब तब गुमान किये रहती थी, इस तथ्य की ओर भी घनआनन्द ने कुछ छन्दों में संकेत किया है—कभी उसे 'रूप-मतवाली' बतलाया है, कभी 'रूप-गुन-ऐंठी' कहकर उसके इतराए रहने की बात कही है[2]।

रूप की सुन्दरता के साथ-साथ मुख की कान्ति का वर्णन भी अनेक बार आया है[3]। मुख की कान्ति का सम्बन्ध वर्ण दीप्ति से भी है और आतंरिक प्रकाश या चैतन्य से भी। सुजान की मुख कान्ति में दोनों का प्रकाश अन्तर्निहित है। मुख में कान्ति के उत्पादक कारण अनेक हैं। सहज सहास मुख मंडल, कान्ति-मंडित दशनावलि, स्वयं मुख का प्रकाश या वर्ण (गोराई) आदि। मुख की कान्ति के अभिवर्धक कारण हैं, हास विलास, बोल-चाल आदि। मुख की कान्ति और शोभा के अन्य उपादान हैं—माधुर्य की उठती हुई लहर, हर्ष

---

1. सुजानहित : छंद १६२, ४६६, ३४७, १६६, १८०।
2. वही : छंद १२७, १७६।
3. वही छंद ६८, १३३, १५४, १६२, १७३, १८०, ३५०, प्रकीर्णक १, २।

और आन्तर उल्लास आदि। सुजान की छवि मोतियों की माला की तरह उज्ज्वल है, करोड़ों चन्द्रमाओं की छटा को फीका करने वाली है, उसकी स्वाभा माधुर्य की ऊँची लहरें तरंगित करने वाली हैं। उसका उज्ज्वल मुख रूप और रंग की अनन्त सम्पदा है, छिटकी हुई केश-राशि के बीच उसका उज्ज्वल और दीप्त मुखमंडल ऐसा प्रतीत होता है जैसे चिक से चन्द्रमा की बहन झाँक रही हो, आनन की ऐसी उज्ज्वल दीप्ति के समक्ष एक भी उपमा नहीं ठहरती[१]। छवि या रूप की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने उसकी सहजता या स्वाभाविकता, रँगीलेपन, हँसीलेपन, अनुपमता, निरन्तरता और अकथनीयता की विशेष चर्चा की है[२]।

अंग दीप्ति[३]—जैसी शोभा और कान्ति सुजान के मुख मण्डल पर सतत छाई रहती है वैसी ही आभा उसके अंगों में सदा बनी रहती है। घनआनन्द ने उसके अंगों की अरुण ज्योति का वर्णन किया है और कहा है कि उसमें सच्चा पानी है, वे रंगमय हैं, उसके अंगों के थोड़ा हिल जाने या चंचल हो उठने पर उनमें अनंग रंग ढले बिना नहीं रहता। यह अंगेट (अंगदीप्ति) एँड़ी से सिर तक देखी जा सकती है— उसके अंग रंग की माधुरी वस्त्रों से छनी पड़ती है, दर्पण से उसके अंगों की दीप्ति की तुलना करना अपनी बुद्धि के कुण्ठित होने का परिचय देना है, उसके अंग-अंग में काम कला की अशेष सम्पदा विलसित होती रहती है, अखण्ड प्रकाश से मण्डित सुजान के शरीर में दीपावली की सी शोभा दिखाई देती है, उसके हँसते हुए अधरों में गुलाल की सी लालिमा है और चमकते हुए दाँतों में कपूर की सी शुभ्रता, उसके अंगों की असाधारण वर्ण छटा के कारण उसके अंग-अंग से रूप, रंग और रस बरसा पड़ता है, कान्ति की लहरें उठा करती हैं और ऐसा लगता है कि अब रूप धरती पर चू पड़ेगा, लगता है जैसे उसके अंगों की आभा ही द्रवित-स्रवित हो संसार में नाना रंगों के रूप में अवतरित हुई है। सुन्दर सलोने अंगों की ऐसी आभा देखकर मन मुग्ध हो जाता है। उसकी ज्योति जब भी जगती है नेत्र रस में पग जाते हैं, दर्शक आत्मचेतना शून्य हो जाता है।

सौकुमार्य, सलज्जता, यौवनोन्माद (तारुण्य-दीप्ति), अरुणाई, सरसता और सुगन्धि—सौन्दर्य के अन्य सूक्ष्मतर उपादानों में उक्त बातों का वर्णन घनआनन्द ने किया है। सुजान के सौकुमार्य का, उसके अंगों के 'कोंवरे' होने की भी बात दो-चार जगह आई है, उसकी लाड़-दुलार भरी मूर्ति की मृदुता प्रकाशित हुई है। उसके अंगों की सुकुमारता का कथन एक जगह बहुत सुन्दर और सप्राण बन पड़ा है—

> चातुर है रस-आतुर होहु न वान सयान की जान क्यों चूके।
> ऐसी अटाननि ठानन हो कित, धीर धरौ न, परौ डिग हूके।
> देखि जियौ, न छियौ घनआनन्द, कोंवरे अंग सुजान-बधू के।
> चोली-चुनावट-चोन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतू के॥

---

[१] सुजानहित : छंद १६२, १६६, १७३।

[२] वही : छंद २८ १२१ २४४, ९८, ३१, ८३, २४२, ६७।

[३] वही छंद ३४७, १५३, २८, १७८, १६२, १८०, २१६, २११, ८६, १७४ प्रकीर्णक १,२२।

सुजान की चोली में बेल-बूटे पड़े हुए हैं या चूनर पड़ी हुई है। उसके अंग इतने मुलायम हैं कि ये बेल बूटे और चूनरें भी उन पर उपट आती हैं। गौर करने की चीज है वह नाजुक-खयाली जो फारसी शायरी की भावना से प्रभावित प्रतीत होती है। जिसके अंगो मे ऐसी सुकुमारता हो वह छूने योग्य नहीं, देखने की ही चीज हो सकती है। लज्जा का वर्णन कवि ने नेत्रों अथवा चितवन के सन्दर्भ मे किया है क्योंकि इसका सम्बन्ध इन्हीं से है[1]। चितवन लाज से मानो अवष्टित है, सील से कसी हुई तथा अन्त करण के प्रेम को व्यजित करने वाली दृष्टि हृदय का सन्ताप दूर करने वाली है, सकोच से मढी हुई चितवन कैसी हर्षोत्फुल्ल कर देने वाली है। लज्जा के संक्षिप्त कथन तो अनेक हैं किन्तु घनआनन्द का एक सम्पूर्ण छन्द ही ऐसा है जिसमे केवल सुजान की सलज्जता चित्रित हुई है—

> घूंघट काढि जो लाज सकेलनि लाजहिं लाजनि है बिन काजनि।
> नैननि-बैननि मैं निहि-ऐन सु होत कहाऽब सजे पट साजनि।
> सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचम्भे-भरी छबि छाजनि।
> देखत देखत दोसि परे नहि यो बरसै घनआनन्द लाजनि॥

घूंघट काढकर सुजान जिस लज्जा का प्रदर्शन करती है उसे देखकर तो स्वय लज्जा भी लज्जित हो जाय। प्रदर्शन मे कृत्रिमता का भाव है, कृत्रिम लज्जा ही सही, सुजान उसके निदर्शन मे भी परम प्रवीण थी, अभिनय आदि की कलाओ मे पारगत नर्तकी जो ठहरी! उसका लज्जा का अभिनय भी वास्तविक लज्जा से बढकर ही होता था। पट और घूंघट द्वारा व्यजित लज्जा तो कम थी, उससे अधिक लज्जा तो उसके नेत्रो और वचनो मे थी। एक जगह गति के साथ लज्जा का चित्रण कवि ने किया है और कहा है कि लज्जा के कारण वह शिथिल गति से चल रही थी[2]। सुजान के यौवन का वर्णन करते हुए उसके यौवन के गरूर या अभिमान, चोप और चटक, यौवन के नशे की प्रमत्तता, यौवन की मरोर, यौवन से उत्पन्न शरीर और स्वभाव के अलबेलेपन, तारुण्यदीप्ति अथवा यौवन के तेज का कथन किया गया है[3]। कुछ छन्दो मे सुजान के यौवन से छके या उन्मत्त रूप का चित्रण अधिक खुले हुए रूप मे भी किया गया है, शयन या सम्भोग वर्णन के जो दो-चार छन्द उपलब्ध हैं उनमे आलस्य, जमुहाई, अँगड़ाई, आदि के वर्णनो द्वारा भी सुजान के यौवनोन्माद की व्यजना की गई है[4]। इस यौवनोन्माद से ही सम्बन्धित चीज है अरुणाई जो अगो का सौन्दर्य और रूप की छटा का अभिवर्धन करती हुई गोचर होती है। अगो की लाली जहाँ एक तरफ स्वास्थ्य और यौवन का प्रमाण है वही अनुरक्ति की भी प्रतिच्छाया है। सुजान के मुस्कराने के समय अधरो तथा सम्पूर्ण मुख की लाली का वर्णन किया गया है।[5] एक जगह तो यह कथन बड़ी सूक्ष्मता लिये हुए है। हँसते समय लाली अधरो से कपोलो पर आ जाती है 'अधरानि तें आनि कपोलनि जागं'। कही कहीं अरुणाई का वर्णन नेत्रो मे भी किया गया है

---

१ सुजानहित : छंद १८५, ३१, ५२, १५५, १५६, ३६२, प्र० १।
२ वही : छंद ३६०।
३ वही छंद ६८, १२७, १५३, ११४, १८०, १७६, १८१, प्र० २२।
४ वही - छंद ३४७, १७, ३५६, ३६०।
५ सुजानहित : छन्द १८०, ३६२, ३५६, २१६, प्र० २२।

किन्तु वह सम्भोगकामना की पूर्ति और तृप्तिजनित अरुणाई है—अँखियानि मे छावनि की अरनाई, हियो अनुराग लै बोरति है।' अधरो की लाली पर कवि की यह प्रसिद्ध उक्ति 'दसन वसन ओलो भरियै रहै गुलाल' अतिशय सरस है। सुजान के मुख को मुखचन्द, अग-जग की रस की निधि या रसराशि और स्वय सुजान को रसीली कहकर कवि ने यह व्यजित किया है कि रूप की राशि और कान्ति की प्रतिमा सुजान अपने अग-वैभव, रूप-लावण्य और परिपूर्ण यौवन के कारण परम रसमय थी। उसकी प्राप्ति मानो सुख का कन्द ही प्राप्त हो जाना था, राशिभूत सुख की वह सरस प्रतिमूर्ति थी।[1] उसके अग सुगन्धित थे, मुख और श्वासो ने सुरभि की लहरें उठा करती थी। घनआनन्द का सौन्दर्य-चित्र समस्त अपेक्षित गुणो की निधि था। यहाँ यह कथन आवश्यक नही कि काममूत्र कथित पद्मिनी, चित्रिणी आदि ऊँची जाति की कामनियो के अगो का सा वर्णन सुजान का हुआ है, घनआनन्द की सुजान मे जिस सुगन्धि की भावना की गई है उसका सम्बन्ध कवि की अनुभूति से था, वात्स्यायन के काममूत्र से नही। घनआनन्द ने कहा है कि सुन्दर सुगन्धियाँ उसके अगो के सग ही बसा करती थी, उसके अग निसर्गत महका करते थे, उसकी सासें उसके मुख की सुवास मे सनकर निकला करती थी—'मुख की सुवास स्वास निसरति सनि है।' एक जगह उन्होने कहा है कि जब वह साँस लेती थी तो उसकी साँसो के साथ ऐसी सुगन्धि फूटा करती थी मानो करोडो सुगन्धियाँ उसकी साँसो मे ही सिमटी हुई हो— सासनि सुगध सोधे कोरिक समोय धरे—यह सुरभि सुजान के सौन्दर्य को पूर्णता प्रदान करती है।[2]

४१ स्वभाव—सुजान के सौन्दर्य चित्रो मे बार बार उसका आन्तर स्वरूप या सौन्दर्य भी झलकता मिलता है। कुछ स्थानो पर उसके रूपगर्व या अभिमान, यौवन गरूर, गुमान आदि की झलक देखी गई है पर मुग्ध-चित्त घनआनन्द ने कभी भी इसे दोष के रूप मे नही ग्रहण किया है, सुजान के प्रति अन्धभाव से मुग्ध कवि को उसमे दोष दिखाई ही नही देते, यदि दोष दिखते भी हैं तो उसका मन उस दोष को दोष मानने को तैयार नही होता। सुजान के गुमान और गरूर की चर्चा प्रसंगवश ही कवि ने की है। उन्होने कहा है कि रूपाधिक्य और यौवन-गरूर के कारण वह जब गाती है तो भी ईषत् रोष की ही मुद्रा मे रहा करती है, उसकी गर्दन भी एक विशेष गर्वीली मुद्रा मे तनी रहती है, रूप और यौवन की थोडी मस्ती भी उसके ऊपर छाई रहती है, उसके नेत्रो में भी एक प्रकार की वक्रता आई है। एक तरफ मस्ती दूसरी तरफ सलज्जता और बार बार उसकी हँसी ही छवि का सकेत उसकी स्मिति-युक्तता या सहासता सूचित करता है, उससे लगता है कि सुजान प्रसन्नवदन रहनेवाली एक कमनीय रमणी थी जो समय समय पर रूप और यौवन के गर्व और दर्प मे जरा तन या ऐंठ भी जाया करती थी[3]। कवि ने उसके स्वभाव को वक्र न होकर सीधा ही बताया है, अपनी व्यथा के चित्रण मे जरूर उसे कठोर, निर्मम, उपेक्षापूर्ण आदि कहा है पर वहाँ पर दोष कभी उसके मत्थे नही मढा।

गति सम्बन्धी सौन्दर्य के चित्र : चितवन, हँसना, बोलना, चलना आदि—रूपवती

---

[1] वही : छन्द १७६, १८५, २१६, ३६०।
[2] वही : छन्द ८८, १७५, १६७, २१६।
[3] सुजानहित : छन्द ६८, ११४, १७६, ८५, १०२ प्र० २२।

सुजान का हर कार्य-व्यापार रमणीय कहा गया है। उसकी वक्र भौंहों का हिलना या चपल होना, उसकी घुमावदार भौंहों का तन कर चमकना तथा देखना तो विशेष सुखद कहा गया है। अपनी चंचल और सुन्दर आँखों को किंचित टेढ़ा करके जब वह देखती है तब वह नाना प्रकार के भाव देती है—उसकी चितवन का बाँकपन, सलज्जता (लज्जा से लिपटी होना, लज्जा से भीजी हुई होना, लाज लड़ी होना, लजीली चितवन), शीलयुक्तता (सील-गसीली, सील सौं लसीली) पैनापन या छुरे की सी तीक्ष्णता (घातकता, अन्यारापन, नुकीला होना, कटाक्षपूर्ण होना, घात करने के अवसर को कभी न चूकना), नाना भाव-भेदों की व्यंजकता, हँसीली होना, प्रमत्तता (घूमरे कटाछि), शोभा वर्धन का गुण, प्रभाव या मार करने में कामदेव के वाण से भी अधिक सामर्थ्यवान होना, अपने दाँव या घात में न चूकना, आलस्यपूर्ण होना, नशा या खुमारी का रंग होना, प्रेम के रहस्य को जतलाना आदि बातों का वर्णन किया गया है।[1] सुजान की मुस्कान के वर्णन में कवि ने कहा है कि उसकी मृदु और मिठास भरी मुस्कान में रस निचुड़ा पड़ता है, वैसी मिठास अमृत में भी नहीं। हुलास से भरी उसकी मुसकान पहले अधरों पर आती है पीछे कपोलों पर अपनी दीप्ति या जागृति दिखलाती है। सुजान के हँसने से चंद्रिका सी शुभ्रता प्रसरित होती है, कोटि-कोटि चन्द्रमाओं की कान्ति फीकी पड़ जाती है। उसकी हँसी चमेली की बिछी हुई चौसर है, उसमें कपूर की सरसता और सुगन्धि है, पुष्पराशियाँ उसकी हँसी की उपासना करती फिरती हैं। ये सभी उक्तियाँ और सादृश्य-योजनाएँ नितान्त स्वच्छन्द पद्धति पर हैं तथा उसकी हँसी की शुभ्रता, मृदुता, सुगन्धि और पवित्रता की अभिव्यक्ति करती पाई जाती है। उसकी हँसी में स्वाभाविकता है, रिझा लेने की शक्ति है, उसमें आँखों के गले के लिये फंदा बन जाने का गुण है, वह मोहनी शक्ति की खान है, सुजान की हँसी अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण घनआनन्द के प्राणों को बहुत प्यारी है।[2] सुजान के बोलने में जो मिठास, प्यार, स्निग्धता, प्रसन्नता, अमृत आदि बातें वर्णित हुई हैं उससे भी उसके सौन्दर्य का उत्कर्ष ही व्यक्त हुआ है। वह सदा हँसकर बोलती है, हँसी जैसे उसकी बोली में घुली-मिली रहती है, वह जब बोलती है तब खिलखिलाकर चाँदनी के समान, हल्की धूप के समान। हृदय पर हो उठने वाली फूलों के वर्षा के समान अत्यन्त प्रिय लगती है उसकी वाणी—'हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।' उसके वचन मिठास में कामदेव के मन्त्र या वाण से कम नहीं। कोकिला का स्वरमाधुर्य तो केवल यही सूचित करता है कि अभी वह बोलना सीख रही है, मधुर बोल के प्रथम पाठ पढ़ रही है—यह पाठ वह सुजान से सीख रही है। बोली के सौन्दर्य के ये सूक्ष्म और मनमोहक चित्र कितने अपरम्परागत और स्वच्छन्द हैं यह स्वयं स्पष्ट है।[3] सुजान की गति की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उसके मुड़ने, घूमकर, गति लेकर या एक विशेष ऐंठ और ठमक के साथ चलने, मरालों के उसकी गति के अनुकरण के लिए पीछे-पीछे दौड़ने आदि का वर्णन किया गया है जिससे उसकी चाल की मादकता और उत्तमता सूचित हुई है। सम्भोग प्रसंग में उसकी सलज्ज

---

१ सुजानहित : छन्द ३१, ५७, १२७, १५६, १६२, १७३, १८१, १८५, ३४७, ३६०, ३५२, ३७५, ४५५, प्र० १, २२।

२ वही : छन्द ३६२, ३७५ २८, १३३, १४४, १७३, १७६, २१६, २५२।

३ वही : छन्द १६२, २५२, २११, १६७ प्र० १, २।

और शिथिल गति (गति टोली लजोली) का वर्णन किया गया है। उसके मुड़कर देखने, देखकर मुड़ने, कटि पर एक विशेष प्रकार का बल देकर आगे बढ़ जाने आदि की जो छवि है वह घनआनन्द के चित्त को बेतरह मुग्ध किए हुए है।[1]

सुजान के नृत्य, गीत और अभिनय का सौन्दर्य—मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की वेश्या में नृत्य, गीत और अभिनय की कलाओं का परिपूर्ण मात्रा में होना नितान्त स्वाभाविक था। उसके सौन्दर्य के इन पक्षों का विस्तृत वर्णन तो नहीं हुआ है पर कई जगह इनकी चर्चा अवश्य हुई है।[2] नृत्य करते हुए सुजान भौंहों को चला चला कर नाना प्रकार के भाव-भेदों का सूचन करती है या नाना प्रकार के प्रणयभावों का निवेदन करती है, उसके नृत्य की चकाचौंध कर देने वाली लटक-मटक का भी उल्लेख हुआ है। वह महीन स्वर में गाती थी, उसकी तान अनोखी होती थी, आलाप लेते समय ही कानों को पता चल जाता था कि उसकी तान कैसी हृदयवेधक होगी। उसके स्वरों के रसास्वाद में मग्न मन को बीन के स्वर झूठे प्रतीत होंगे। गायिका सुजान के स्वर सान चढ़े हुए बाणों के समान तीक्ष्ण प्रभाव वाले थे, घनआनन्द के प्राण उसमें बेतरह बिंध जाया करते थे—'प्रान सुजान के गान-बिन्धे, घट लोटैं परे लगि तान की चोटैं।' नृत्य-गान में कुशल सुजान का अभिनय सौन्दर्य तो बुद्धि को हर लेने वाला था। मुहम्मदशाह रंगीले को नाच-गान के साथ नाटक का भी बड़ा शौक था, इस ऐतिहासिक सत्य का अंतर्साक्ष्य सुजान की 'अभिनै-निकाई' के कथन में पाया जा सकता है। इस तरह वह सुजान रूप-रंग-गुण आदि में ही नहीं अपने पेशे से सम्बन्धित कलाओं में भी पारंगत थी। उसकी यह कला-विष्णातता सरस हृदय घनआनन्द को मुग्ध और विजड़ित कर देने के लिये काफी थी। उसके रूप के स्वर्ण को जैसे सुगन्धि मिल गई थी।

कुछ विशेष चित्र—सुजान के सौन्दर्य के कुछ और भी स्फुट चित्र हैं जो यत्र-तत्र मिलते हैं। उदाहरण के लिये उसके लटों की कपोल-क्रीड़ा, उसका हिंडोले पर झूलना आदि[3]। इसी प्रकार उसकी सम्भोग-तृप्त छवियों या सुरतान्त सौन्दर्य के चित्र भी पर्याप्त अच्छे बन पड़े हैं[4]। इन चित्रों में तृप्ति का सौन्दर्य है, तुष्ट शारीरिक वासना जनित प्रसन्नता है, उन्मद यौवन की आकांक्षाओं की पूर्ति का बिम्ब है। इन छवियों में पूरा संयम है और पूरा सौन्दर्य भी। सुजान का यह तुष्ट और प्रफुल्लित सौन्दर्य क्या है मानो मनोरथों से फलित वल्लरी हो। एक और दुर्लभ चित्र है सुजान का जिसमें उसके शराब पीकर मस्त होने का वर्णन है। हिन्दी काव्य में मदिरा पीकर छकी हुई स्त्री का वर्णन नहीं मिलेगा, वह या तो वेश्या हो सकती है या बाजारू औरत या फिर फारसी शायरी और रंग में भीगी हुई कोई रमणी। सुजान राजनर्तकी थी, मदिरापान उसका दैनंदिन कर्म रहा होगा।

सुजान के रूप सौन्दर्य के इस ब्यौरेवार चर्चा या विवेचन के अनन्तर यही कहना शेष रह जाता है कि घनआनन्द ने सुजान के रूप सौन्दर्य के जो चित्र उतारे हैं वे सामान्यतः

---

[1] सुजानहित : छन्द २८, २१०, २५५ प्र० १।
[2] वही : छन्द ८५, ६८, १२१, १२७, १३३, १११।
[3] वही : छन्द ३६० प्र० २।
[4] वही : छन्द १७,३१, ३५६, ३६०।

समग्रता लिये हुए हैं, केवल एक अग को शेष अगो से पृथक कर देखने-दिखाने की प्रवृत्ति उनमे नही।

सुजान के रूप का प्रभाव वर्णन—रूप और सौन्दर्य अपनी सार्थकता खो देता है यदि वह किसी को प्रभावित ही न करे। सुजान के रूप के उत्कर्ष की व्यजना मे उसके प्रभाव का निदर्शन करने वाले अनेकानेक छन्द घनआनन्द ने लिख डाले हैं। अनेक बार ये प्रभावसूचक छन्द रूप सौन्दर्य की ऐसी गहरी व्यजना कर जाते हैं जैसी रूप चित्रण करने वाले छद नही कर पाते। ब्रजभाषा के कवियो ने रूप-चित्रण की इस प्रभावाभिव्यजक पद्धति को बहुत अपनाया था। रूप वर्णन का यह ढग नितान्त स्वाभाविक भी है, रूप कैसा है इसका पता तो वही दे सकता है जिस पर उसका प्रभाव पडा हो, यदि प्रभाव का कथन कर दिया गया तो रूपस्वत अभिव्यजित हो उठता है। रूप का प्रभाव नैन, मन, बुद्धि, प्रान, चित्त, मति आदि पर दिखलाकर घनआनन्द ने यही सूचित किया है कि सुजान इतनी रूप सौन्दर्यशालिनी थी कि उनका समूचा अस्तित्व, समग्र अन्तर्बाह्य उससे बेतरह प्रभावित था। बहिर्सत्ता की अपेक्षा उनकी अन्त सत्ता उससे विशेष प्रभावित थी। रूप का यह प्रभाव कुछ बाहरी या हलका-फुलका असर मात्र बनकर नही रह गया था, उनकी सम्पूर्ण चेतना को भकभोर देने वाली शक्ति के रूप मे था। इस प्रभाव का चित्रण इतनी अधिकता और विस्तार के साथ एक पर एक चले आने वाले नाना छन्दो मे किया गया है कि यह उनके काव्य के अतर्गत अध्ययन का एक स्वतन्त्र प्रसग सा हो गया है। सुजान के रूप-सौन्दर्य का प्रभाव, रूप-सौन्दर्य-लिप्सा प्रेम और रीझ के रूप मे परिणत हो जाती है। अपनी उसी ललक और आसक्ति का घनआनन्द मे शत-शत रूपो मे चित्रण किया है।

नेत्रो अथवा बाह्यसत्ता पर सुजान के रूप का प्रभाव—ऐसे छन्दो की सख्या बहुत बडी है जिनमे सुजान के रूप का प्रभाव कवि के नेत्रो अथवा उसकी बाह्य सत्ता पर दिखाया गया है[१]। इस सदर्भ मे कवि ने अपनी दृष्टि के प्रेम-शिथिल होने, पलको के कपाट सदा खुले रहने, पुतलियो के स्थिर हो जाने, आँखो को सुजान-दासता स्वीकार करने आदि का नाना रूपो मे वर्णन हुआ है। एक जगह नेत्र की मन के प्रति बडी ही मार्मिक उक्ति देखने को मिलती है—

> नैन कहै सुनि रे मन! कान दै क्यों इतनों गुन मेटि दयौ है।
> सुन्दर प्यारे सुजान को मन्दिर बावरे तू हमही तें भयौ है।
> लोभी तिन्हैं तनको न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
> कीजियै जू घनआनन्द न्याय कै पायं परौं यह न्याय नयौ है।।

रीझ की अतिशयता दिखलाने वाली ऐसी कितनी ही स्वच्छन्द उक्तियाँ, भावनाएँ और कल्पनाएँ घनआनन्द मे मिलेंगी। सुजान की कटाक्षो की चोट आँखो मे लगती है, उसे देखने से अखड लोभ जाग्रत होता है, उसके चित्र को मैंने अपने नेत्रो की अश्रुधारा पर अकित कर रखा है। ये आँखें नाना प्रकार से उन पर अनुरक्त होकर, रस की मूर्ति श्याम को

---

१ सुजान-हित छन्द १, २, ४१, ११२, १२७, ११७, १२०, १३२, १३३, १४२,१४३, १७१, १७५, १७६, १८५, १६७, १६६, २००, २०१, २०४, २५३, २११, ४३४, ८६, ६७, २७५।

देखकर रस की राशि हो गई हैं। उसकी ज्योति के लगते ही ये नेत्र रस में पग कर चकोर हो गये हैं। उस महारस का साक्षात्कार करके ये नेत्र अचीर हो गये हैं, शिथिल पड़ गये हैं और उसी का रूप-रस पीने के लिये लालायित रहते हैं। इस प्रकार अत्यन्त विशद रूप से कवि ने अपनी सुजान की रूप-सुषमा का प्रभाव नेत्रों पर दिखला कर उसके सौन्दर्य की अतिशयता शत-शत रूपों में ध्वनित की है जिन्हें उपस्थित कर सकना यहाँ सम्भव नहीं। घनआनन्द ने सुजान के रूप का प्रभाव नेत्रों के साथ साथ बाह्य सत्ता के कुछ अन्य उपकरणों पर भी दिखाया है, जैसे शरीर पर, रोम-रोम पर, वाणी पर आदि[1]। उसे देख कर रोम-रोम में मीनकेत जागृत हो उठता है, रोम-रोम आनन्द की वर्षा से भीग उठता है, लालसाओं से भीगी वाणी उसके सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर पाती और पैरों में जैसे प्रीति की बेड़ी पड़ जाती है।

ये सारे प्रभाव-चित्र घनआनन्द की प्रेमिका के रूप-चित्रों में रंग भरते हैं और उन्हें पूर्णता प्रदान करते हैं, इनमें जहाँ 'रिझावन हार रूप' का सौन्दर्योत्कर्ष लक्षित होता है वहीं 'रिझवार नेत्रों' की सहृदयता का भी पता चलता है। ये चित्र एक से एक मार्मिक हैं और घनआनन्द के हृदय-पक्ष को सामने लाने वाले हैं। ये चित्र क्या हैं मानो घनआनन्द के आसक्तिशील हृदय का सम्पूर्ण बिंब ग्रहण करने वाले विशाल दर्पण हैं। इन छंदों में घनआनन्द की रूपासक्ति शत-शत रूपों में स्पंदित हो रही है।

मन अथवा अंत सत्ता पर सुजान के रूप का प्रभाव—अब यह देखिये कि सुजान का रूप कवि की अंत सत्ता पर क्या कहर ढाता है। उनका मन, प्राण, जीव, चित्त, कलेजा, हृदय सभी कुछ सुजान पर बेतरह मुग्ध है, सौ जान से निसार है। कवि का मन सुजान के रूप पर रीझकर अत्यन्त दीन हो गया है—उसकी उँगलियों, एड़ियों और पैरों के तले भी पड़ा रहना चाहता है—अपने जीव को कवि ने सुजान पर निछावर कर रखा है और अपनी रीझ के ही हाथों बिक गया है। घनआनन्द ने अन्तर का धैर्य, लज्जा, संयम सब कुछ छोड़ दिया है और बुद्धि को भी रीझ के आधीन बना दिया है। नाना छंदों में घनआनन्द ने अपने रूपरसिक, सौन्दर्यसक्त मन की दशा का, सुजान के उस प्रभाव का चित्रण किया है जो उनके मन, रीझ, मति, जीव, प्राण, सूझ-बूझ (अवश) सुधि (होश या चेतना) चित्त, हृदय अर्थात् उनकी सम्पूर्ण अन्त सत्ता को व्याप्त किये हुए है। इन प्रभाव वर्णनों के कुछ उदाहरण देखिये—

(क) अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छवि छाय छवा।
घनआनन्द यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोवयौ न वा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यो न टर्यो मन मेरो भवा॥

(ख) छोरि छोरि डारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस-रसीली घनआनन्द सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही मों मेरी मति लीनी कसि है॥

---

[1] सुजान हित : छंद २०४, १८६, १६७, २११, २००, २०१।

(ग) भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकें भरयौ उर कें कजरौटी ।

रूप के इन मनोगत प्रभावों को शत शत रूपों मे व्यक्त कर घनआनन्द ने अपनी निजी सौन्दर्य चेतना और रूप लिप्सा का ही परिचय दिया है।[1] मन को उस सौंदर्य की राशि पर तरह-तरह से लुटा कर, रिझा रिझाकर, बेंच-बेंचकर अपने अनोखे रिझवार होने का पूरा परिचय दिया है। प्रभाव का प्रत्येक चित्र उनका अपना है और प्रत्येक अभिव्यक्ति परम्परा मुक्त उनकी अपनी आन्तरिकता और सहृदयता से ओत-प्रोत है।

कृष्ण—कृष्ण का रूप वर्णन करते हुए घनआनन्द ने उनकी अंग कान्ति, वेश-सज्जा, रूपाकृति और गति का वर्णन किया है। उनकी अंग कान्ति पर, सांवरे छैल की रूपछटा पर करोड़ों कामदेवों को निछावर किया गया है। वेशसज्जा *का वर्णन करते हुए कवि लिखता है* कि कृष्ण ने जुही की माला से अपना शृंगार कर रखा है तथा पत्तों की छतरी सिर पर धारण कर रखी है, पीली पिछौरी और फेंटा अलग शोभा दे रहे हैं तथा मुरली ध्वनि मुग्ध *करने वाली है*—इस वेश में पुष्पित कदंब वृक्ष के तले क्रीड़ा करते हुए वे विशेष शोभा पा रहे हैं। सोनजुही के फूलों की इंदीवर की पंखुरियों सहित माला गूँथी गई है, ऐसी माला को धारण किए हुये कृष्ण के रूप की जो शोभा है वह कही नहीं जाती, पीली पिछौरी का छोर सिर पर उलटकर वे रखे हुए हैं तथा भाल मे केसर का तिलक दिये हुए मुरली पर गौरी धुन बजाते हुये वे वन से वापस आ रहे है उनकी यह बनी हुई वेशसज्जा और शोभा देखने योग्य है—

> इन्दीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
> गुही माल हाल रूप गुन न परै गनै ।
> पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखें,
> केसर विचित्र अंग भाव रंग सौं सनै ।

लाल पाग बाँधे हुए कंधे पर ललितलकुट रखे हुए नित्त को निश्चय ही बेध देने वाले नेत्रों के काम-शर साधे हुए, यौवन की झलक मे भरपूर अंग कान्ति वाले मन को उलझा लेने मे समर्थ कुटिल अलक-जाल वाले, विशाल हृदयस्थल पर गुंजमाल धारण करने वाले, नख से शिख तक रस के आलय, श्यामकाय, नन्द के लाडले यमुना किनारे घूम रहे हैं। सुन्दर मोरचन्द्रिका के साथ सांवरे के सिर पर पचरंगी पाग कैसी अच्छी शोभा दे रही है, दाडिम-कुसुम के रंग के वस्त्रों से उनके लावण्यशाली अंगों की कान्ति फूटी पड रही है, उनके वक्षदेश पर शोभित मोतियों की माल को गंगा की धारा समझकर व्रजवनिताओं का मन उसी मे डुबकियां लेता रहता है—ऐसे कृष्ण आनन्द से भरे हुए खड़े होकर मुरली के मधुर स्वर बजा रहे हैं तथा नाना प्रकार की रागरागिनियों के तरंग उठा रहे हैं—

> लाल पाग बाँधे, धरें ललित लकुट काँधे,
> मैन-सर साँधे सो करत चित घाय कौ ।

---

[1] सुजान-हित . छंद १६, ३४, ३६, ४१, ४८, ५२, ६३,६७, ६८, १०१, १०६, ११२, ११४, ११५, १२७, १३३, १३४, १५०, १५२, १५३, १५४, १५५ १५६ १६८, १७५, १७६, १८१, १८५, १८६, २०४, २०५, २१६, २३६, ३५३, ३७५, ४०५, ४२३ ।

जोवन झलक अंग रंग तकि रक, छूटी,
कुटिल-अलक-जाल जिय अरझाय को।
गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख,
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अघोर और जमुना के तीर तीर,
टोना भर्यो डोलत ढुटौना नन्दराय को॥

वेशसज्जा युक्त इन छविचित्रों मे सचमुच ही कृष्ण की बांकी छवि अंकित की गई है, यह चित्र सुन्दर और चित्रात्मक है, इनमें गत्यात्मकता भी है। इनकी वेशसज्जा मे प्राकृतिक उपकरणों का जो उपयोग किया गया है वह कवि की स्वच्छन्द वृत्ति का द्योतक है, इन वर्णनों मे वेश वर्णन की अभिनव भावना और रूप कल्पना, परम्परागत रूप-वेश चित्रण से पृथक स्वच्छन्द वर्णन शैली के दर्शन होते हैं।

रूपाकृति का भी कवि ने स्वतन्त्र रूप से या किसी गोपिका के कथन के माध्यम से वर्णन किया है। एक गोपिका कहती है कि हे सखी कृष्ण का मुख सुन्दर है, सरल है, कमनीय और रँगीला है तथा उनके तन पर जो यौवन की आभा है वह कहते नहीं बनती, उनके नेत्रों मे जो चपलता है, प्रेम की जो दीप्ति है तथा जो सुन्दर भौंहें हैं वे नाना प्रकार के भावों को व्यक्त करने वाली हैं, उनकी सुन्दर नासिका, अधरों की सहज लालिमा और दांतों की सहास आभा हृदय को हर लेती है, हे आली! नख से शिख तक उनके अंग-अंग मे छवि छलका करती है तथा आनन्द और उमग की तरंगें हिलोरें लेती रहती हैं। एक अन्य गोपिका कहती है—नई उम्र है और अंग-अंग मे अलबेली कान्ति है, उनसे काम का रंग उमडता चलता है, सहज छबीले दाँतों मे पान का लाल रंग शोभा दे रहा है और अधरों के अमृत की तरंगें सी उठी पड रही हैं, हँसकर जब वे कानों को छूने वाली अपनी बडी-बडी आँखों से देखते हैं तो लगता है कि किसी ने धनुष की डोर को कान तक खींचकर बाण मार दिया हो, उसकी ऐसी एक चितवन से ही काम भावना चूर-चूर हो जाती है और पुनीत अनुराग का भाव छलक उठता है, उनकी काली घुँघराली अलकों के गोल-गोल छल्ले तथा उन पर से बाँसुरी की मीठी तान प्राणों को छल लेती है। अधरों की लाली, यौवन का गरूर, चितवन की वक्रता, अंगों का सलोनापन और कान्ति के साथ दोनों भुजाओं पर पीतपट ओढ़े हुए सिट्पौर पर श्रीकृष्ण खडे हैं, सारी गली या राह के देखने वाले शिथिल पड गए हैं और उनकी रूप शोभा की रौर मची हुई है। ये सभी रूपचित्र अत्यन्त वैयक्तिक पद्धति पर तरेहे गए हैं। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की एकदम निजी भावना ही घनआनन्द के काव्य मे मिलेगी। जैसा बाँकपन उनकी प्रेम-व्यंजना मे है वैसा ही बाँकपन उनके रूपचित्रों मे भी है यहाँ तक कि कृष्ण का भी परम्परा प्राप्त रूप-चित्र घनआनन्द के काव्य मे आकर घनआनन्दी विशेषता से सम्पृक्त हो गया है। सौन्दर्य के साथ-साथ प्रभाव और प्रीति के उद्रेक का मर्मस्पर्शी वर्णन मिलेगा जहाँ किसी मुद्रा विशेष का चित्र अंकित हुआ है, भले ही वह संक्षिप्त हो किन्तु प्रभाव की शक्ति उसमे पूरी मिलेगी। स्थिति विशेष को प्रस्तुत करने वाले चित्र तो और प्रभावशाली हैं। ये रूप वर्णन नितान्त भावभीने हैं, इनमे कवि का हृदय लिपटा हुआ है। यही बस रहस्य है इन रूप-चित्रों की विशिष्टता का जिसके कारण ये परम्परा प्राप्त रूप-चित्रों से पृथक कहे जायेंगे।

कुछ रूप-चित्र गत्यात्मक हैं। एक चित्र तो हम देख ही चुके हैं, जिसमे यमुना के तट पर टोना करने वाले नन्द के ढुटौना का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार के कुछ चित्र और भी हैं, कृष्ण का मुख छवि का सदन है, मोद से मण्डित है, उनका वेश चटकीला है और चाल मटकीली है, मुरली अधरो पर रखे हुए वे बड़ी लटक के साथ चलते हैं, अपनी आँखों को विशेष ढगो मे ढालते हुए या मटकाते हुए और कुछ मुस्कुराते हुए बहुत ही प्रेम की मिठास से भरी बातें करते हैं, ऐसे कृष्ण के लिए गोपिकाओं की ललक अनन्त है। एक गोपिका कहती है कि छवि से छबीला बना हुआ आज बड़े रंगीले ढंग से अचानक ही मेरी गली मे आ गया तथा मुस्कराता हुआ मेरी ओर देखकर, आँखें मटकाकर प्रेम से लपेटी हुई कोई बड़ी अनूठी तान गा गया। ये चित्र पर्याप्त गत्यात्मक हैं, नवीन और अपरम्परागत शैली पर तो हैं ही, भावना से ओतप्रोत भी हैं। उसमे कवि की निजी प्रेम भावना का वैशिष्ट्य है। कृष्ण के स्वरूप के आन्तरिक सौन्दर्य का भी जगह जगह उद्घाटन मिलेगा तथा घनआनन्द के रूप-वर्णनो मे चित्रात्मकता भी अच्छी पायी जायेगी। कृष्ण की छवि की सुन्दरता का वर्णन कवि के मतानुसार तो कर सकना ही असम्भव है—जो लुनाई उसमे है उसमे समुद्र की लहरो का सा रूप का ज्वार है, आभा की ऐसी उफान है जो अकथ है, उनके सौन्दर्य मे ध्वनि और संगीत जैसी सूक्ष्मता है। इस प्रकार नई-नई पद्धतियों से कवि ने कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का साक्षात्कार कराना चाहा है।[1] कृष्ण के रूपवर्णन मे कवि ने किसी एक अवयव को लेकर उसका पृथक् वर्णन नहीं किया है, किन्तु अंग-समुदायों को लेकर उनकी झाँकी प्रस्तुत की है तथा उनके मनोगत प्रभाव का निदर्शन किया है। छवि-चित्रण एवं मनोगत प्रभाव चित्रण साथ साथ होता चला है।

कृष्ण के रूप का प्रभाव— प्रभाव का वर्णन तो उन छन्दो मे भी मिलेगा जिनमे साक्षात् रूप-सौन्दर्य वर्णित हुआ है किन्तु अन्यत्र भी बहुत से छन्द हैं जिनमे प्रभाव का विशदता से कथन किया गया है। कृष्ण के रूप मे तरगों के जाल मे तथा उनकी गुणावली के फंदे मे पड़कर गोपिका की आँखें, उसका हृदय, उसकी गति-मति सब कुछ तल्लीनता की स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं, शरीर और अन्त करण की सारी शक्तियां उनके रूप खिंचाव के कारण उन्हों के पीछे लग जाती हैं, हृदय की समस्त अभिलाषाएँ उस सौन्दर्य की भाँवरें भरने लगती हैं। कृष्ण का हँसना, बतराना, हृदय मे अड जाता है, उनकी मुद्राएँ, गति आदि हृदय से टलती नहीं, चितवन भूलती नहीं और सुधि बेसुध कर देती है जिसके हृदय मे साँवरे की रसमयी छवि बसी है उसे दूसरो की बातें क्योंकर अच्छी लगेंगी। कृष्ण जिस गोपिका की गली से अपनी अलबेली वेशभूषा, चाल ढाल, हँसी-मुस्कान के साथ निकलते हैं उसी का धैर्य मन-प्राण सब कुछ हर ले जाते हैं—'नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौ, औचक ही आय मट्टू लूट सी विति गयो।' छवि से छबीले कृष्ण सबेरे सबेरे ही अचानक किसी की गली मे बड़े रंगीले ढंग से जा पहुँचते हैं, बस फिर क्या है उनकी चटक-मटक और लटक देख उसका तो मन ही बिक जाता है और जब कृष्ण कोई प्रेम से लटी तान गा उठते हैं तब तो उसकी दशा अकथ हो जाती है—'तब तें रही हौं घूमि भूमि जकि बावरी ह्वै, सुर की

---

१ सुजानहित : छन्द १४४, ३८८, ४०७ प्र० ३, १२, १३, १४, १५, २२, २३ ४० ।

कि उनका हृदय वेतरह विद्ध हो गया। वे तो पिचकारी ज्यों की त्यों लिये रह गये, तेरे रूप का ऐसा धक्का उन्हें लगा कि वे शिथिल पड़ गये। तुझे तो विधाता ने ही बनाया है, भला अब तेरी बराबरी कौन कर सकता है। तेरी हँसी की कौंध ने उन्हें भिगो दिया और उनके कपोलों पर गुलाल मसल कर तो तूने उन्हें अपने हाथों में ले लिया। इस तरह राधा की चितवन के कारण कृष्ण की वेतरह आहत स्थिति का वर्णन किया गया है—

पिचका लियेई रहे रह्यौ रंग तोहि देखें,
रूप की धमक लागें थके हैं थसरि कै।
कौंधि घनश्रानन्द की भिजयौहँसनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै।

प्रभावाविव्यंजक पद्धति पर राधा के रूप-प्रभाव के एकाध चित्र और देखिये—

(क) राधा नवयौवन विलास को बसत जहाँ,
अंग अंग रंगनि विकास ही को भौर है।
प्यारों बनमाली घनश्रानन्द सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहि धीर है।

(ख) दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यों न,
लेहि देहि स्वाद-सुख आनन्द अछेह को।
मोहि नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग-अंग अररात रंग मेह नेह को॥

राधिका के सौंदर्य का एक गत्यात्मक चित्र देखिये जिसमें उमंग के साथ राधा तो कृष्ण के पास तक जाकर उन्हें गुलाल की मूठ मार आती है और गर्व सहित अपनी सखियों में आकर मिल जाती है, उधर कृष्ण हैं जो निष्प्रभ हो बस खड़े ही रह जाते हैं। यह और कुछ नहीं राधिका के रूप का असाधारण सौंदर्य और जादू ही है जो कृष्ण सरीखे रसिक को विस्मया-विमुग्ध और हतचेत कर देता है। इस चित्र में करोड़ों दामिनियों की आभा को फीका कर देने वाली आभा का वर्णन हुआ है। ऐसी राधिका की चाल और चितवन की मुद्रा भी कवि ने असाधारण कौशल से चित्रित की है—

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि,
तानि कै चपल चली श्रानन्द उठान सों।
बायें पानि घूंघट की गहनि चहनि-ग्रोट,
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सों।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय,
दाय जीति आय भुण्ड मिली है सयान सों।
मीडिबे के लेखे कर मीडिबोई हाथ लग्यो,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सों॥

बोधाकृत रूप-सौन्दर्य वर्णन

बोधा के मुक्तक काव्य में सुभान और कृष्ण तथा प्रबन्धग्रन्थ में कृष्ण, लीलावती, माधव और कंदला के रूपसौंदर्य के कुछ चित्र देखे जा सकते हैं।

सुभान—अपनी मुक्तक रचनाओं के संग्रह 'इश्कनामा' में बोधा ने रूपवर्णन विशेष नहीं किया है यहाँ तक कि अपनी परमप्रिया सुभान के रूप का वर्णन उन्होंने पूर्णतः तो क्या अधूरे रूप में भी नहीं किया है, केवल उसके रूप की अपारता और सौंदर्य की अतिशयता का संकेत किया है—

(क) एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसकाहट ताको॥

(ख) बोधा सुभान को आनन छोडि न आनन सो मन आनि अरुझै॥
जैसे भये लखि सावन के अंधेरे नर को सु हरो हरो सूझै॥

(ग) फल चारि रहैं तिन आगे खरे भृकुटी परखैं चित चायन मैं।
जेहि ओर ढरैं उगरे तिनको जिनको पठवैं तिन्हैं जायन मैं॥
कवि बोधा सरोज रहै निसिबासर फूले सुभान सुभायन मैं।
मन भृंग भ्रहे महरात कहा बसु रे बसु गोरी के पायन मैं॥

कभी सृष्टि का सौंदर्य उसके रूप पर निछावर किया गया है और कभी उसकी मुस्कराहट पर कितने ही इन्द्र-पद निछावर कर दिये गये हैं। कभी उसकी मुख-छवि को संसार में अतुलनीय कहकर अपने हृदय की दशा 'सावन के अंधे' सी बताई है तथा साक्षात् रूप के चित्रण से कवि ने अपना पल्ला खींच लिया है, हाँ हृदय पर पड़े प्रभाव को दिखाकर रूप-छटा का आतिशय्य अवश्य व्यंजित किया है। एक छन्द में देवदर्शन और पूजन के लिये जाती हुई तरुणी का चित्र है जो पर्याप्त सुन्दरता से अंकित हुआ है—

देव दुआरे निहारि खडी मृगनैनी करै रवि की छवि छोटी।
हाथ मैं मालती माल लियें चली भीतरैं ताहि गोसांइ अँगोटी॥
पाइन ते सिख लौं लखि कै कवि बोधा मजा बरनी यक छोटी।
भाल मे रोरी की बेंदी लसी है ससी मैं लसीमनो बीर बहूटी॥

यहाँ उसकी कान्ति, पूजा भावना, रूप सुषमा के साथ-साथ कवि ने अपनी सौंदर्य चेतना का भी अच्छा परिचय दिया है। असम्भव नहीं कि यह चित्र सुभान का ही हो पर खेद है कि ऐसे सौन्दर्य चित्र बोधा में और नहीं हैं। यह तो रूप की एक झलक मात्र है।

कृष्ण—कृष्ण के रूप वर्णन में हृदय पर पड़े हुए उनके प्रभाव को दिखाकर रूप-सौंदर्य की असीमता व्यंजित की गई है, देखिए प्रभावाभिव्यंजक पद्धति पर चलकर गोपिका द्वारा रूप-सौंदर्य का कैसा प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है—

छुटि आइ है चेत के नेत सबै जो वहूँ मुरली अधरा धरिहै।
मुसकाइ कै बोलै तो बाट परै नखहू सिख लौं विष सों भरिहै॥
कवि बोधा तिहारे सयान सबै सुनी सूनेई हेरनि मैं हरिहै।
तुम्हें भावते जानि मने की करै वह जादूगरी बजि कै करिहै॥

माधवानल प्रबन्ध में कृष्ण—बोधाकृत माधवानल प्रबन्ध में कथा की भूमिका या पूर्ववृत्त के अन्तर्गत कृष्ण का जिक्र आता है, उसी प्रसंग में उनके रूप का विस्तृत वर्णन कवि ने किया है। इस रूप-चित्रण में कवि ने व्रज के कुंजों में विहार करने वाले, नन्द के घर क्रीड़ाएँ करने वाले और धेनु चराने वाले कृष्ण के रूप का अंकन किया है। कवि कृष्ण

के रूप के ब्यौरों के वर्णन में प्रवृत्त हुआ है। ये वे कृष्ण हैं जो वनोपवनों में विहार करते हैं, प्रति-दिन असुरों का सहार भी करते हैं तथा अनेक अलौकिक लीलाएँ करते हैं। उनका वर्ण नीलकण्ठ भगवान की कण्ठनीलता से मिलता जुलता है, वे शिरपेंच (पाग) पर मयूरपक्ष धारण करते हैं, उनके रूप-चित्र की कुछ रेखाएँ इस प्रकार हैं —

जगमगात छवि जटित जवाहिर पन्नन जेव जनाई।
भाल तिलक शोभा लखि भाल में केशर गच सुहाई॥
कारे अनियारे बड़वारे रतनारे दृग प्यारे।
अलि खंजन मृगमीन कमल दल पानिप जल सुत वारे॥
मुकुर कपोल नासिका सुकठ में हैं कछु अधिक सुहाई।
अधर सघर बिबाफल वारे बिहँसन ताहि लजाई।

कृष्ण जब हँसते हैं तो उनके गालों पर दो गढे पड जाते हैं उनका वर्णन इस प्रकार है—

बिहँसत परत हरत मन सबके कुवाँ कपोलन माहीं।
मनो कलिदी तीर नीर में भ्रमरो युग पर जाहीं॥

बोधा ने कृष्ण के रूप मात्र का वर्णन नहीं किया है अन्य अंगों के सौन्दर्य ने भी उन्हें समान रूप से आकृष्ट किया है जैसे कंठ, बाहु, नख, हृदय-प्रदेश, कटि, नाभि, नितंब और पिंडली। इसी प्रकार से उनके वेषभूषा के अन्तर्गत मुक्तामाल, गुंजमाल, पीताम्बर, पुष्पहार तथा अन्य आभूषण, चन्दन के चित्रालेख, कछनी, किंकिणी, पांवडी, लकुटी और मुरली। इस विस्तृत और सूक्ष्म विवरणात्मक चित्रण से कृष्ण के रूप की समूची छटा पाठक के मनपटल पर छा जाती है। वैसे तो कृष्ण के स्वरूप का यह वर्णन परम्परागत उपमान-विधान के सहारे किया गया है फिर भी इस वर्णन की समग्रता में एक विशिष्टता है, उसमें बोधा की अपनी कल्पना और भावना सुरक्षित है। यह वर्णन विशद और ब्यौरेवार है तथा पर्याप्त अच्छा है।

लीलावती—लीलावती के रूप तथा अंग सौन्दर्य का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी पूर्ण और प्रभावशाली है। उसके रूप लावण्य ने कामदेव के समान ब्राह्मण माधवानल को मुग्ध कर दिया था—

है द्विजराजमुखी सुनुरी अति। पीन कुचाहु गररी गररी गति॥
है हिरनाक्षय बाल प्रबोलिय। त्यों द्युति दामिनि को करि छोलिय॥
पन्नग मैचक सी वर वैनिय। कुंदन सो झलकै सुख दैनिय॥
है न बड़ी अति प्रीति भरी त्रिय। तीक्षण भौंह कटाक्ष करयो किय॥
खेलत सी उलती मन डोलहि। कचुकी आप कसै अरु खोलहि॥
हार उतार हिये पहिरै पुनि। पांव धरै सहि त्यों न उराधन॥
हार सिंगार सिंगारहि सुन्दर। क्यों न बसै तिय छैल दिलन्दर॥
यौं कटि मोरत छांह निहारत। ओढनी बारहि बार सम्हारत॥

इन पंक्तियों में अंकुरित यौवना लीलावती का चित्र है। उसमें यौवन की चेतना कैसी सजग है और रूप-सौंदर्य एवं अंग लावण्य के साथ उसकी आतरिक चपलता का रूप

कैसा मोहक है। यहाँ लीलावती का सौंदर्य अपने गत्यात्मक रूप में काव्यपाठक को मुग्ध कर रहा है।

माधव—कथा का नायक माधव स्वयं अत्यन्त रूपवान है, वह जहाँ जाता है अपने रूप और वेश के कारण ही समादृत होता है, अनेक अवसरों पर कवि ने उसके रूप का वर्णन किया है। वह सौंदर्य और लावण्य से परिपूर्ण शृंगार की मूर्ति ही जान पड़ता है, उसके रूप-वर्णन के साथ-साथ वेशभूषा का वर्णन कवि ने विशेष रूप से किया है। महाराज गोविन्दचन्द की सभा में, राजा कामसेन की सभा में और विक्रमादित्य की सभा में उसकी मूर्ति के पर्याप्त सरस चित्र खींचे गये हैं—

(क) पाँवड़ी मुकुट मौर केसर लसत भाल,
मीनाकृति कुण्डल कपोलन पै छ्वै रहे।
कुंदन बरन तन सुन्दर मनोज जनु,
बीणा कर लीन्हे पोरा पावन में ह्वै रहे॥

(ख) सोहै पाग जरकसी तुर्रा। जुल्फ बावरिन की लखि जुर्रा॥
केसर खौर भाल में दीन्हें। चरन पांवड़ी लकुटी लीन्हें॥
जलकठुका मुक्ता कानन। शरदचन्द सम सोहत आनन॥
मुख तमोल अधरन अरुणाई। बिहँसन दसन तड़ित छबि छाई॥
हाटक सो तनु बिप्र को लसत त्रिगुण उजियार।
जनु सुमेर की श्रृंग से धसी सुरसरी धार॥
श्वेत धोती पटुका जरद कर में लीन्हें बीण।
मनो मोहिनी मन्त्र ले नर तनु धर्‍यो प्रवीण॥

इस प्रकार माधव के तेजस्वी एवं प्रभावशाली रूप का चित्रण कवि ने किया है जो राजा-प्रजा, नर-नारी सबको मुग्ध करने की क्षमता रखता था। लीलावती और कामकन्दला ऐसी रूपराशि स्त्रियाँ उसके प्रेम में पड़कर बावली हो जाती हैं, यह भी उसके सौंदर्य की ही महिमा है।

कंदला—कंदला तो बोधा की एक साहित्यिक सृष्टि है, उसका रूप, सौन्दर्य, व्यक्तित्व चरित्र सभी कुछ देखने योग्य है। उसके रूप का वर्णन विशेष विस्तार और अभिनिवेश के साथ एक ही स्थान पर किया गया है—कामसेन की सभा में जब माधव की निगाह कंदला की निगाह से जुड़ जाती है और वह उसे देखता ही रह जाता है। इसी प्रसंग में कंदला के सोलह शृंगार और शिख-नख का वर्णन आता है। परम रूपवती कंदला के सौंदर्य के भिन्न-भिन्न अंगों और उपकरणों का पृथक-पृथक तथा एक साथ दोनों प्रकार से वर्णन हुआ है। कंदला के रूप और अंग सौन्दर्य की कुछ रेखाएँ इस प्रकार हैं—

मुख—नितप्रति नई कला को धरि शशि तेरे मुख सो जोरें।
सम न होय पूनों लौं सज फिर कुहू रैन लौं छोरैं॥
नेत्र—दृग-मृग एक रीति सों बखाने वे तो,
कानन बिहारी येऊ आनन बिहारी हैं।
बिंदी—लसत बाल के भाल में रोरी बिन्द रसाल।
मनो शरद शशि में बसो बीर बहूटी लाल॥

दात—चन्द मन्दकारी प्यारी मन्द मुसकान तेरी।
देखि दसनावलि को दाडिम दरकिगो ॥
कटि—बोधा कवि सूत के प्रधान अहुमान जैसे,
चलत हलत यों प्रमानियतु है।
दृष्टि मे परै ना यों अदृष्टि कटि तेरी प्यारी,
हूँ है तो विशेष उनमान जानियतु है ॥

इसी प्रसग मे कुछ अगो का वर्णन एक साथ भी किया गया है जिससे उनका समूचा प्रभाव हृदय पर उतर आता है—

ठोढी पके आम की बानिक तिल अलिछौन विराजै।
अल्पभार लखि जात ग्रीव तब मत्त कबूतर लाजै ॥
कनक लता से बनिक बाहु बिय अंगुरी चम्पकली सी।
कीन्हीं नरान लखत बहु लज्जित नखतन की अवली सी ॥
हाटक बरन कठिन उन्नत कुच गोल गोल मदकारे।
कमल बेल गेंद नारगी चक्रवाक युग वारे ॥
छिव कुच बीच सकीन सन्धि मे मन मतग उरझानो।
सकै न निकसि मृणाल तार लहँ निकसि पार क्यों जानो ॥

कामकदला की अग-समिष्ट का एक दूसरा चित्र इस प्रकार है—

गुरु नितम्ब ऊरु मदकारी लखि कदली तरु लाजै।
पिंडुरी गुल्फ सुढार सुल्फ अतिचरण अंगुली लाजै ॥

कदला के तथा अन्य आलम्बनो के रूप सौन्दर्य के बोधा द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त चित्र परम्परागत पद्धति पर हैं, उनमे कोई विशेष नवीनता नही फिर भी ये सम्पूर्ण काव्य के सौष्ठव को बढाने वाले हैं और आलम्बनो के प्रभाव को पाठक के मन पर घनीभूत करने वाले।

ठाकुर कृत रूप-सौन्दर्य वर्णन

ठाकुर की कविता के आलम्बन राधा और कृष्ण हैं तथा कभी-कभी गोपियाँ भी। परन्तु ठाकुर कवि आलम्बन के रूपरग के वर्णन मे कुछ विशेष दत्तचित्त न हुए और काव्य रचना की स्वच्छन्दवृत्ति रखने के कारण उन्होंने नखशिख-वर्णन की प्रचलित शैली का अनुसरण नहीं किया।

राधा और कृष्ण—राधा और कृष्ण का रूप वर्णन न करते हुए ठाकुर ने इनके रूप के प्रभाव वर्णन द्वारा रूप-सौन्दर्य को व्यजित किया है—

(क) ठाकुर को सुखमा बरनै अरे काम लगें जिनको छवि पाइक।
काहे न जाई सबै ब्रज देखन सांचहूँ सांवरो देखबे लाइक ॥

(ख) येई हैं वे वृषभानुसुता जिन सों मनमोहन मोह करै है।
कामिन तो उनसी नहिं दूसरि दामिनि की दुति को निदरै है ॥

(ग) सुरझी नहि केतो उपाइ रियो उरझी हुती घूंघट खोलन पै।
अधरान पै नेक लगी ही हुती अटकी हुती माधुरी बोलन पै।
कवि ठाकुर लोचन नासिका पै मडराई रही हुती डोलन पै।
ठहरै नहि डीठि फिरै ठिटकी इन गोरे कपोलन भोलन पै॥

(घ) कुंज के भौन मे पुंज प्रभान किशोर किशोरी बराबर ठाड़े।

रूप-लावण्य की यह प्रभावमूलक व्यंजना उसका उत्कर्ष अवश्य व्यंजित करती है परन्तु किसी रूप विशेष का साक्षात्कार नहीं कराती। एकाध पंक्तियों मे रूप का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न तो मिलता है किन्तु वह कुछ असाधारण नहीं कहा जा सकता—

छोटी नथूनी बडे मुतियान बडी अँखियान बडो सुघरै हैं।

नेत्र और कटाक्ष—राधा और कृष्ण के अंग-प्रत्यंग का वर्णन तो ठाकुर ने किया नहीं, नेत्रो पर अवश्य उन्होंने कुछ कहा है। आँखों के लिये ठाकुर इन गुणों का होना आवश्यक मानते हैं—विशालता, शीलयुक्त होना तीक्ष्णता, चपलता, सुकुमारता, अरुणता और रसीलापन। कटाक्षों के वर्णन मे भी प्रभाव-सूचन की ओर ही कवि की दृष्टि रही है। ठाकुर ने कहा है कि तलवार, बरछी और वज्र की चोट से आदमी बच सकता है, सर्प-दंश, विष-पान और मृत्यु मे भी एक बार जीवन की रक्षा हो सकती है परन्तु कटाक्षो से घायल हुआ व्यक्ति नहीं बच सकता—'न जियै इन नैन कटाक्ष को मारो' क्योकि नेत्रो की घातकता बहुत होती है और फिर इनका निशाना भी अचूक होता है—

(क) मरद मुछारे गमुआरे जौन होनहार,
तेऊ भूमि भूमि मतवारे से परे रहैं।
कोऊ घाट बाट कोऊ चौहट अथाइन में,
कोऊ पौर खोरिन में ऊसई घरे रहैं॥
लागत ना दारु उपचार करि हारे बैद,
ठाकुर कहत ऐसे हिय मे भरे रहैं।
एक दस सौ लौं औ सहस्त्र लौं कहाँ लौं कहौं,
आँखिन के मारे कैयो लाखन डरे रहैं॥

(ख) ठाकुर कहत कहूँ चोट को न चिन्ह कछू,
बिन देखे नैन चैन पलहू न पाइयें।
एक जागा होय तहाँ औषधि लगाऊं बीर
रोम-रोम पीर कहाँ औषधि लगाइयें॥

द्विजदेव कृत रूप-सौंदर्य वर्णन

द्विजदेव कवि रूप-सौंदर्य के वर्णन की ओर विशेष रूप मे प्रवृत्त नहीं हुए। फिर भी वे कृष्ण, नायिका या राधा के रूप वर्णन मे कुछ छन्द लिख गये हैं।

कृष्ण—कृष्ण का रूप उन्होंने एकाध छन्द मे ही परम्परागत ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमे पीताम्बर, मोरपंख, कछनी आदि का उल्लेख हुआ है, इस वेश मे वन-वीथियों में घूमते हुए उन्हें मनोभव-भूप का सखा बतलाया है।

नायिका या राधा—द्विजदेव ने अनेकानेक छन्दों में स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हुए राधिका का रूप चित्रण किया है, सुन्दर वसंत ऋतु के आगमन पर पहले तो उन्होंने ऋतु की सुषमा और प्रकृति की छटा को काव्यबद्ध किया था बाद में उनके मन में यह भाव आया कि यह प्राकृतिक विभूति राधिका और कृष्ण के विहार के लिये सर्वथा उपयुक्त है अतएव क्यों न इस काव्य प्रेरणा को कृष्ण और राधा के प्रेम-चित्रण में नियोजित कर दिया जाय। बस इसी भाव से भरकर उन्होंने कृष्ण और राधा के प्रेम के चित्र अंकित किये हैं। ऐसी स्थिति में हम आसानी से यह मान सकते हैं कि वे समस्त छन्द जिनमें राधा का नाम नहीं आया है अन्य किसी स्त्री या नायिका का वर्णन करने वाले नहीं वरन् उन सबका वर्ण्य राधिका ही है।

नायिका—नायिका के स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि की दृष्टि उसकी अंगकांति या समस्त रूप-छटा पर विशेष गई है। किसी-किसी छन्द में तो केवल उसकी तनद्युति का ही वर्णन पूरे उन्मेष के साथ किया गया है। कवि कहता है कि नायिका के अंगों की कांति के सामने कमल, कुसुम, गुलाल, केसर, सुवर्ण, विद्युत् ज्वाल, चंपक, सैनकी, चन्द्रमा, मशाल आदि में कोई चमक नहीं, ये सब तो उसके सामने फीके पड़ जाते हैं।[1] जिन छन्दों में नायिका के अन्यान्य अंगों का भी वर्णन है वहाँ भी अंग-दीप्ति पर कवि की दृष्टि विशेष रही है। ठीक भी है जिसके चेहरे पर चमक न हो, जिसके अंगों में आभा न हो उसमें भला कोई सौन्दर्य होता है। स्वच्छन्द धारा के सभी कवियों ने रूप-सौन्दर्य चित्रण में अंग कांति का विशेष वर्णन किया है, सौन्दर्य के सम्बन्ध में जैसे यही उनका प्रतिमान रहा है—'अंग अंग तरंग उठै दुति की परिहै वह रूप मनौ धर च्वै' (घनआनन्द)। अपनी नायिका के वर्णन में कपोल, हँसी, अञ्जन, अरुणिम अधर, आभूषण, केश, ओढ़नी आदि के साथ-साथ अंग-कांति या रूप छटा का वर्णन विशेष रूप से कवि ने किया है। ऐसी पंक्ति एक न एक हर छन्द में रखी गई है जिसमें उसके तन की गौर आभा या उज्ज्वल कान्ति की झलक मिले बिना नहीं रहती। चन्द्रमा, दर्पन, चपला, प्रवाल, दीपशिखा आदि को निरादृत कर रमणीय नायिका के अंगों के सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखलाया गया है।

नायिका की गति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि जो लोग उसे गज-गामिनी कहते हैं उनकी समझ कितनी ओछी है और जो कविन्द अपनी प्रतिभा का विकास मराल से उपमा देकर दिखलाते हैं उनकी समझ को क्या कहा जाय। उनके ये कुतर्क लोगों की मति को भ्रमित करने वाले हैं—

> चित-चाहि अबूझ कहै कितने, छबि-छीनी गयंदन की टटकी।
> कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै, यहि सीखी मरालन की मटकी॥
> 'द्विजदेव' जू ऐसे कुतरकन में, सबकी मति यौंही फिरै भटकी।
> वह मन्द चलै किन भोरी भटू, पग लाखन की अँखियाँ अटकी॥

प्रिया की आत्यन्तिक सुकुमारता के वर्णन में द्विजदेव ने वह नाजुकख्याली भी दिखलाई है जो फारसी शायरों का सर्वस्व थी और आगे चलकर जिस परम्परा का निर्वाह उर्दू शायरों ने किया। रमणीय नायिका के चरण धीमे पड़ते हैं चूँकि वे जावक के भार से

---

[1] शृङ्गार-लतिका-सौरभ : छन्द २७१, २०८, ११४, १६४।

बोझिल हैं, अलकें खुलकर उरोजों पर आ गिरी हैं क्योंकि उन पर गंध का भार अधिक है, पलकें नीचे को अधगिरी हो रही हैं क्योंकि बड़ी-बड़ी बरौनियों का उन पर दबाव है और तन की आभा का बोझ इतना भारी है कि लंक उस भार को सँभाल न सकने के कारण लचक-लचक जाती है—

जावक के भार पग परत धरा पै मन्द,
गंध-भार कुचन परी है छुटि अलकैं।
'द्विजदेव' तैंसिऐ विचित्र बरुनी के भार,
आधे-आधे दृगनि परी हैं अध पलकैं॥
ऐसी छबि देखि अंग-अंग की अपार वार,
वार लोचन सु कौन के न ललकैं।
पानिप के भारन सँभारत न गात लंक,
लचि लचि जाति कच-भारन के हलकैं॥

अतिशयोक्ति के द्वारा सौकुमार्य की यह व्यंजना पर्याप्त उत्कृष्ट है। प्रेयसी के सौंदर्य का आतिशय्य दिखलाने के लिए कवि की एक उद्भावना देखिए जिसमें वह कहता है कि नायिका यमुना के किनारे उद्यान में पुष्पों का सभार और उनकी छटा देखने आई थी किन्तु वहाँ तो दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो गया, स्वयं उसी का सौन्दर्य देखकर केतकी, चम्पक, से ही कांति, वर्ण, लोच, सुगंधि आदि गुणों का दान माँगना शुरू कर दिया। यहाँ पर एक ओर अंगों की नाना विभूतियों का असाधारण उत्कर्ष दिखाई देता है दूसरी ओर कवि की सूझ की स्वच्छन्दता और विशिष्टता। छन्द देखिए—

बाग बिलोकनि आई इतै, यह प्यारी कलिंद-सुता के किनारे।
सो 'द्विजदेव' कहा कहिऐ बिपरीत जो देखति मो दृग हारे॥
केतकी-चंपक-जाति जपा, जगभेद-प्रसूनन के जे निहारे।
ते सिगरे मिसि पातन के छबि, वाही सों माँगत हाथ पसारे॥

ऊपर नायिका के जिन रूप-वर्णनों की चर्चा हुई उन्हें यदि कोई राधिका का रूप-वर्णन मान ले तो कोई अनौचित्य न होगा।

राधा—राधिका का रूप वर्णन करते हुए भी कवि ने बार बार उनकी अंग कांति पर ही विशेष बल दिया है।[1] राधा की छवि के सामने चन्द्रमा शरमा जाता है, तारे फीके लगने लगते हैं। उनके अंग की ज्योत्सना सारी पृथ्वी का संताप दूर करने वाली है। राधा के अंग की कांति ऐसी है जो हजारों सुन्दर गोपियों के बीच भी छिपाये नहीं छिपती। उसकी अपूर्व शोभा का चित्र देखिये—

कातिकी के द्योस कहूँ आई न्हाइबे कौं वह,
गोपिन के संग जऊ नेकुक सुखौ रही
'द्विजदेव' दोह-दार हो तें घाट-बाट लगि,
लासी चंद्रिका सी तज फैलो विधु की रही।

[1] शृङ्गार-लतिका-सौरभ' छन्द ६८, ६६।

घेरि वार-पार लौं नमासे हित ताही समैं,
भारी भीर लोगन की ऐमिऐ भुकी रही।
आली उन आज वृषभानुजा बिलोकिवे कौं,
भानु तनयाऊ घरी द्वैक लौं रुकी रही॥

राधा के सौंदर्य समुद्र का संतरण कर सकना कवि असम्भव समझता है फिर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार उस सौंदर्य की थोड़ी बहुत प्रतीति कराने के उद्देश्य से वह कहता है—

चंद्रिका सी कहि हास-छटा, जग नाँहक ही उपहास करैहौं।
त्यौं, 'द्विजदेव' जू नाँहक हौं कहि दाजि-दुगौ तिन वाहि लजैहौं।
ऐसी अनोखी-अनोखी घनी घनी वातैं बनाइ कहा फल पैहौं।
कैं पिक-वैनी उड़ाइहौं वाहि, मयंक-मुखी कै कलंक लगैहौं॥

'शृंगार-लतिका' के अन्त के लगभग २५ छन्दों मे कवि ने क्रमशः राधिका के केश वेणी, मांग, भाल, नेत्र, कज्जलकलित कमलाक्ष, नासिका, श्रवण, अधर-लाली, कपोल ओष्ठ, ठोढ़ी, दंत, मुखमण्डल, मुसक्यान, हास्य, ग्रीवा, बाहु, उँगली, मेंहदीयुक्त हाथ, कुच रोमावली, उदर, जाँघ तथा पद, तन-द्युति और चाल का वर्णन किया है। विविध छन्दों में कवि ने एक-एक दो-दो या अधिक अंगों का भी वर्णन किया है जैसे कपोल और ओष्ठ ठोढ़ी और दाँत, हास्य और बोल, कुच रोमावली और नाभि आदि।[1] ये शिख-नख वर्णन परम्परागत ढंग के हैं तथा अलंकृत शैली पर किये गये हैं।

युगल-स्वरूप (राधाकृष्ण)—कुछ छन्दों मे राधा और कृष्ण के स्वरूप का एक साथ वर्णन किया गया है जिनमें कभी तो कवि उनके रूप पर निछावर होता है और कभी उनकी पारस्परिक प्रीति का वर्णन किया गया है।[2] इन छन्दों में भी कवि का ध्यान रूप-चित्रण की अपेक्षा प्रभाव चित्रण पर अधिक है—

ज्यौं घनस्याम से स्याम बने, त्यौं प्रिया तड़िता सी हिये मैं परै तकि।
आनन चन्द्र की दीपति देखि दुहूँन के नैंन चकोर रहे छकि।
ऐसी विनोद कला निरखैं, द्विजदेव न कौन की डीठि रहै चकि।
ज्यौं बिकसी अरविंद सी प्यारी, मलिंद-सी तैंसोई प्यारौ रह्यो जकि॥

उद्दीपन वर्णन एवं बाह्य-दृश्य-चित्रण

उद्दीपन वर्णन से हमारा अभिप्राय है शृंगार रसोद्दीप्ति मे सहायक प्राकृतिक उपकरणों की वर्णना से जो स्वच्छन्द कवियो द्वारा न्यूनाधिक परिमाण मे उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र वर्णित हुए हैं। ध्यान देने की बात यह है कि वियोग दशा के चित्रण में ही इन कवियों ने उद्दीपक उपकरणों का विशेष वर्णन किया है, संयोग व्यापारों के चित्रण मे नहीं या किया भी है तो बहुत कम। प्रायः उद्दीपक तत्वों का वर्णन आलम्बन वर्णनों के साथ साथ मिलेगा, स्वतन्त्र रूप से उसका वर्णन बहुत कम हुआ है। प्रकृति, नगर, वन आदि

---

[1] वही छंद २५६, २६० २६३, २६६।
[2] वही : छन्द ६७, ७२।

में सम्बन्धित बाह्य-दृश्य चित्रण भी प्रबन्धों में ही थोडा बहुत देखे जा सकते हैं, मुक्तक रचनाओं में नहीं। अपवाद रूप से द्विजदेव ही इस धारा के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने स्फुट छंदों में प्रकृति के स्वरूप का विशद एवं स्वतन्त्र चित्रण किया है और उसके प्रति प्रगाढ अनुराग भी प्रदर्शित किया है। उनके ऐसे वर्णन आलम्बन रूप में किये गये प्रकृति वर्णन माने जायेंगे परन्तु उद्दीपन रूप में प्रकृति को प्रस्तुत करने से वे भी बाज नहीं आये हैं।

रसखान कृत उद्दीपन वर्णन एवं बाह्य-दृश्य-चित्रण

रसखान के काव्य में उद्दीपनों का वर्णन न के बराबर है। केवल कृष्ण की प्रेम-क्रीडाओं के सदर्भ में थोडी चर्चा ऋतुओं अथवा प्राकृतिक उपकरणों की मिलेगी और वह भी अत्यन्त संक्षिप्त उदाहरण के लिए जब वे वन में होनी वाली प्रेम-क्रीडाओं की चर्चा करते हैं उस समय कुंजों का, उनकी सँकरी गलियों का, वन-पथ का अथवा वन-प्रांतर का नामोल्लेख मात्र करते हैं, व्रज और वृन्दावन की छटा को सामने लाने की चेष्टा बिलकुल नहीं करते। इसी प्रकार पास-पडोस के गाँवों की चर्चा भी हुई है पर उनका स्वरूप अंकित नहीं हुआ है। वन क्रीडा के सन्दर्भ में भी प्राकृतिक दृश्यावली का कोई वर्णन नहीं मिलता। एकाध जगह इतना मात्र कह दिया है कि 'कुंजन नन्द कुमार बसे तहाँ मार बसे कचनार की डारन' अर्थात् उस वनस्थली के कचनार वृक्ष ऐसे मादक एवं मोहक वातावरण की सृष्टि कर देते हैं जिसमें कामोद्रेक हो उठता है। पनघट क्रीडाओं अथवा रास-प्रसगादि के वर्णन में भी यमुना पुलिन और रजत ज्योत्स्ना के मुखकर वातावरण की सृष्टि का कोई प्रयास लक्षित नहीं होता। इससे यह ध्वनित होता है कि कृष्ण का रूप सौंदर्य और गोपियों का अनुराग आदि ही उनमें इतना समाया हुआ था कि इतर वस्तुओं की ओर उनकी दृष्टि भी न जाती थी। अपवाद रूप में ही एक छन्द में रसखान ने वसंत की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है जो पर्याप्त सरस एवं चित्रात्मक है परन्तु वह श्रीकृष्ण के प्रेम पूर्ण संयोग की पृष्ठभूमि का निर्माण करने के ही उद्देश्य से विरचित हुआ जान पडता है—

डहडही बैरी मंजुडार सहकार की पै,
चहचही चुहल चहूँकित अलीन की।
लहलही लोनी लता लपटी तमालन पै,
कहकही तापै कोकिला की काकलीन की।
तहतही करि रसखानि के मिलन हेत,
बहबही बानि तजि मानस मलीन की।
महमही मन्द मन्द मारुत मिलनि तैसी,
गहगही खिलनि गुलाब की कलीन की॥

रसखान के काव्य में वियोग का वर्णन नगण्य होने के कारण ऋतुओं आदि को विरहोद्दीपक उपकरण के रूप में प्रस्तुत करने का अवसर नहीं आ पाया।

आलम कृत उद्दीपन वर्णन एवं बाह्य-दृश्य-चित्रण

रसखान की भाँति आलम भी प्रकृति इत्यादि के वर्णन में विशेष प्रवृत्त नहीं हुए

हैं। मूलतः प्रेम की संवेदना के कवि होने के कारण इनकी भी दृष्टि इतर वर्णनीय बाह्योपकरणों पर नहीं गई है। अच्छा होता यदि सौंदर्य और प्रणय के ये चितेरे प्राकृतिक छवियों के चित्रण की ओर भी विशेष उन्मुख हुए होते। वातावरण की स्वच्छन्दता के नाम पर इन कवियों ने अधिक से अधिक ब्रज के वन, कुंजों, यमुना-पुलिन, वृन्दावन आदि का नाम मात्र ले लिया है पर सच्ची वस्तु-वर्णना इनके द्वारा सम्भव नहीं हो सकी है। इस ओर थोड़ी प्रवृत्ति घनआनन्द और द्विजदेव ने ही आगे चलकर दिखाई है। आलम ने भी वन प्रदेश में गोपियों और कृष्ण आदि के गोरस-दान प्रसंग का वर्णन किया है, परन्तु स्थानीय प्राकृतिक विभव का चित्रण नहीं किया है।

पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण—प्रणय भावना की पृष्ठभूमि के रूप में अवश्य दो चार छन्द यत्र-तत्र प्राकृतिक छटा को लेकर लिखे गए हैं जैसे मायवास का यह चित्र देखिए जो प्रणयिनी की मिलन बेला को निकट ले आई है—

> आई सौरी साँझ भीर गैयाँ दौरी आई घर,
> बन घर पुर बीच पूरि धूरि धाई हैं।
> आलम चहूँधा चढ़ि रूखनि चिरैयाँ बोलीं,
> भूपन बने हैं बलि बेरो बनि आई है॥
> आली तौ लौं चलि जौ लौं लाली मैं लपेटी समि,
> रवि को न छवि छिन जोन्हा ना जनाई है।
> छाह हूँ के छल मिलि हौं ही भई तेरी छांह,
> जौ लौं परछाहीं पर छाहीं आनि छाई है॥

प्रकृति की पृष्ठभूमि का एक अन्य चित्र इस प्रकार है—

> तैसोये तरल तमधार सी तमाल बेलि,
> रही हिलि मिलि अलि डोरनि के जोर सों।
> कहूँ ये लसित रन्ध्र तारे से उज्यारे न्यारे,
> कहूँ रहै एक है कलिन्दी छबि छोर सों।

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण—वियोग-वर्णन के अन्तर्गत भी आलम ने ऋतुओं का थोड़ा बहुत वर्णन किया है। ऋतुएँ प्रेमिका के विरह दुख का वर्धन करने वाली हैं। वसन्त ऋतु अपनी साज-सज्जा के साथ आती है तो जैसे विरहियों को मरोड़े डालती है। स्वयं सन्तप्त नायिका ऋतुपति के आने पर और भी दहने लगती है, चन्द्रमा की किरणें शीतलता के बजाय ताप देने लगती हैं, कमलिनियों पर भ्रमरों के गुंजार का हृदय अब उन्हें दाहक लगता है और कुहू कुहू करके कोकिलाएँ उसे अलग जलाये डालती हैं। नायिका इस बात से अवगत है कि विरहिणी वधुओं को जलाने की तो बसन्त ने चाल ही सीख ली है—'वधुनि बधन की घौं कब तें चला चलो।' विरहानल में जलती हुई विरहिणी की ग्रीष्म ऋतु में तो दशा और भी खराब हो जाती है। ग्रीष्म के दुष्प्रभावों को व्यर्थ करने के जितने उपचार हैं वे और भी संताप पहुँचाते हैं, वह क्षण क्षण मूर्छित होती जाती है। पंकज, पटीर,उसीर, घनसार आदि सब व्यर्थ है। जब शीतल करने वाली वर्षा ऋतु आती है उस समय उन्हें

नवजीवन मिलता हो सो बात भी नहीं—यह अभिनव ऋतु भी उनके प्रतिकूल ही पड़ती है—

> बिन ज्यों वसत यहै अतक सो आयो याते,
> कत बिनु अन्तर दसा को निपराती हैं।
> राती राती पाती बन बासी सी बरन लागीं,
> घाती घाम तानी कै लगाई छेदी छाती है॥
> लै लै अलि भूलो डारै फूलो अनफूलो हू तें,
> भूली भूली फूल ही सी नारी मुरझाती है।
> जरी जरी रहैं सहै घरी घरी हरी कहैं,
> हरी हरी बेलें देखि मरी मरी जाती हैं॥

सावन का आगमन सुनते ही वे मनभावन के बिना 'मैनवस' हुई नायिकाएँ व्याकुल होने लगती हैं, हवा चलने से उनका शरीर 'छीजने' लगता है, बिजली की कौंध देखकर उनके शरीर मे पसीना छूट चलता है तथा थाड़े थोड़े बादलो को देखकर वे मुरझा जाती हैं, ज्यों-ज्यो शीतल ऋतु निकट आती है वे ठण्डी पडती चली जाती हैं। बादल उन्हें मूर्छित कर देते हैं और आसन्न शरदऋतु उन्हे हिमशीतल कर देती है और जब शरद ऋतु सचमुच आ ही जाती है तब उनकी दशा देखने योग्य हो जाती है— सारा ससार शरद ऋतु की निशा मे उज्ज्वल हो जाता है किन्तु विरहिणी को ऐसा प्रतीत होता है जैसे आकाश अपरिसीम रूप से ज्वालाओं मे जल रहा है। जो चन्द्रमा 'सुधासई' और 'सुभग सरूप' कहा जाता है वह तो उसकी समझ मे और ही कोई चन्द्रमा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आलम ने विरहिणी की विरह व्यथा को अनेकानेक ऋतुओं के दर्पण मे प्रतिच्छायित किया है। स्वभावत ऐसे छन्दो मे ऋतुगत सौन्दर्य का अभिनिवेशपूर्ण चित्रण कम और विरहिणी की मर्म व्यथा का चित्रण अधिक हुआ है[1]। उद्दीपन रूप मे ऋतुओं के अतिरिक्त चन्द्रमा पवन आदि प्राकृतिक उपकरणो को भी लेकर कुछ छन्द मिलते हैं।[2] चन्द्रमा को तो विरहिणी अपने वध के लिये ही उदित हुआ मानती है, उसकी उज्ज्वल किरणों का स्पर्श उसे लाल की हुई अग्निमय शलाका की चुभन सा लगता है। पूर्णमासी की रात उसे डरावनी लगती है, चन्द्रमा की ओर देखने से उसके शरीर मे चिनगारियाँ उठने लगती है पवन की विरहोत्तेजकता दिखाते हुए कवि ने यह बताया है कि उसका स्पर्श विरहिणी को विष भरे शर के समान प्रखर और घातक लगता है। एक दिन की बात है मधुर और मोहक प्राकृतिक परिस्थिति से वह दुष्कर बात हो गई जो सम्भव न थी। केले के पत्ते झूम रहे थे, मन्दाकिनी मन्द मन्द बह रही थी, एला और बेला के फूलो की सुवास चारो ओर फैल रही थी, शरद की सुहावनी सध्या किंचित शीतल लग रही थी, विरहिणी की पलकें धीरे-धीरे झँप गई। जो नींद कभी न आती थी आज इस मुग्धकर वातावरण के कारण अप्रत्याशित रूप से आ गई। क्या होता है कि थोडी ही देर में मालती पुष्पों की सुगन्धि से प्रपूर्ण और सम्मोहक मलयज वायु

---

१ आलमकेलि छन्द २३१, २३६, २३४, २३०, २३२।
२ वही छन्द २३३, २४०, २४३, २४१।

आ गई। उससे तन्द्रास्लथ उस नवयौवना के रोम रोम सिहर उठे और उसकी नींद खुल गई। उसका आन्तरिक क्रोध उबल पड़ता है—

सखिन सुहेल वर दच्छिन समीर यह,
बरी पुरवैया बरी बैरिनि बिसासी है।

जिस पवन की मदिर-मधुर लहरियों ने उसे निन्द्रा का विश्व-दुर्लभ सुख दिया था उसी ने कुछ ही क्षणों में बिना बताए उसे छीन भी लिया, प्रकृति के विश्वासघात का इससे बड़ा और दृष्टान्त हो भी क्या सकता है। कभी-कभी 'मेघदूत' की अनुकृति पर हिन्दी कवियों ने पवन को संदेशवाहक बनाकर 'पवनदूत' की कल्पना की है। ऐसे ही वर्णनों और प्रसगों में आलम ने कभी जलज की, कभी मेघ और मयूर की अथवा कभी एक संश्लिष्ट प्राकृतिक वायुमण्डल की विरहोत्तेजकता का वर्णन किया है—

निझुकनि रैनि झुकी बादरऊ झुकि आये,
देख्यो कहूँ झिल्लिनि की झाँई झहनानि है।
पानी तें न पैंडो बूझै पानि पसरयौ न सूझै,
काजर सी आजु अँधियारी कारी राति है॥

अन्यत्र आलम लिखते हैं कि समीर तीर सा लगता है, शशि सूर्य सा ताप देता है, घनसार विष प्रतीत होता है, सारी लौह-वस्त्र सी भारी प्रतीत होती है। वन की बयार, चन्दन, कपूर, पुष्परस आदि में वह चूने की कली के समान प्रज्वलित हो उठती है, शरीर में कामदेव ने विष की लहरें जागृत कर दी हैं।[1]

प्रकृति में व्यथा की व्याप्ति—कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें सारी प्रकृति में विरही की वेदना को ही परिव्याप्त दिखाया गया है। जिस समय उद्धव ब्रज से लौटकर कृष्ण के पास जाते हैं वे ब्रजमण्डल की उदास स्थिति का वर्णन करते हैं—मैं जिस समय पहुँचा मुझे ब्रज अत्यन्त मलिन, उदास और उजड़ा हुआ मिला। वहाँ के मकान मलिन थे, कुंज रुग्रमय थे, सब कुछ उजड़ा हुआ अजीब सा लगता था, उस ग्राम में जाते हुए मुझे एक आवाज तक न सुनाई दी—

आलम कहै हो जात भनक न सुनी कान,
मेरिये धनक कछू बाला पायो प्रान सो।
दूलह बराती लै कै राति ही सिधारो जैसे,
ऐसो ब्रज देख्यो माधो ब्याह को बिहान सो॥

वहाँ का दृश्य ऐसा लगता था जैसे ब्याह का विहान हो, गोपियों का विरह सारी वनस्थली और समूची प्रकृति में परिव्याप्त हो गया है, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, दिशाएँ, वन, फूली हुई डालें, कमल, जल सभी कुछ दग्ध हो रहे हैं—

तुम बिनु कान्ह ब्रज नारि मार मारी सु तौ,
बिरह बिथा अपार छाती क्यों सिरानी हैं।
तरनि सो तमोपनि ताही सो तलप तवै,
हेरत ज्यों निसा परो दसो दिसा तातीं हैं।

---

[1] आलमकेलि : छन्द १०३, १०७, १०५, १०८, ११०, १२०, १०६।

कानन मे जाय नेकु आनन उघारि देत,
ताकी भार पूली डार दूलिनें तुलाती हैं।
बारि मे जो बोर्यौ तनु लागति ज्यो चुरैं मीन,
बारिज की बेलै ते बिलोके बरी जाती हैं ॥

प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन · अलकृत शैली पर—यमुना तथा तटवर्ती कुजो का वर्णन करते हुए आलम ने कमल के फूलने, भौरो के मंडराने, चन्द्रमा के प्रकाश, समीर की मन्द गति, मौलिश्री आदि का उल्लेख किया है। चन्द्रमा का वर्णन करते हुए कवि ने अलकारिक शैली पर कुछ छन्द लिखे हैं जिनमे कुछ दुरूह और क्लिष्ट कल्पनाएँ की गई हैं जैसे—

बिधु ब्रह्म कुलाल को चक्र कियो मधि राजति कालिमा रेनु लगी।
छबि घों सुरभोर पियूष को कीच कि वाहन पीठ की छाँह खगी ॥
कवि 'आलम' रैनि सजोगिनि ह्वै पिय के सुख सगम रग पगी।
गये लोचन बूडि चकोरनि के सुमनो पुतरीनि की पाँति जगी ॥

प्रबन्ध ग्रन्थों मे बाह्य-दृश्य-चित्रण—आलम के माधवानल प्रबन्ध तथा श्याम-सनेही मे यत्र-तत्र नगर-वर्णन मिलते है जो काव्य के वातावरण के निर्माण मे सहायक होते हैं। कामावती नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि इस नगरी मे सुकर्मी और सुधर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य रहा करते थे। नगरी मे मद-मदिरा, मार-पीट, धर पकड, चोर-बधिक और दण्ड-विधान आदि थे ही नहीं। यह सारा वर्णन केशव के समान परिसख्या के माध्यम से किया गया है—

नगर लोग सवै बसै सुधर्मी। ब्राह्मन छत्री बैस सुधर्मी ॥
तिहि पुर मद गयद सो रहै। मदिरा नाम औरन सो कहै ॥
मार सोइ सनरज मैं होही। पुष्पपत्र लै बाधे कोही ॥
दड सोइ जो जोगी लेही। और दड काहू नहि देही ॥
चचल चोर कटाछ त्रिया कै। जो नित चोरै चित्त पिया के ॥

उज्जयिनी का वर्णन थोडा भिन्न प्रकार का है। वह महाकाल की नगरी है, द्वादश ज्योतिर्लिगो मे से एक है, उसे कवि ने धर्मपुरी कहा है। वहाँ की फुलवारियाँ कनक-खचित मणिमदिरो, तालकूप सरिताओ, धनाढ्य नागरिकों, रसिक समाजों, धार्मिक समाजो आदि का कवि ने उल्लेख किया है। राजा विक्रम के राजद्वार पर जो भीड है वह भी राजा की लोकप्रियता और विभूति आदि का निदर्शक है—

धर्मपुरी सब नगर सुहावा। हाट पटन बहु देखि बनावा ॥
चहुँ दिसि नगर बाग फुलवारी। ताल कूप सरिता बहु भारी ॥
पुनि पुनि हाट पटन फिरि देखं। आनद पुरी बराबरि लेखं ॥
छत्तिस पुरी नगर बैपारी। बैठे हाट महाजन भारी ॥
कहूँ नाच कहुँ पेखन होई। कहूँ पवारा गावत कोई ॥
द्वार भीर नरपति कै होई। नेकु जुहार न पावइ कोई ॥

श्याम सनेही मे ब्राह्मण दूत के द्वारिकापुरी पहुँचने के समय नगरी का वर्णन किया।

गया है। प्रात काल द्वारावती कैसी सुन्दर लगती है, सूर्योदय की छटा कैसी होती है, द्वारिकापुरी का वैभव कैसा होता है आदि बातो का कवि ने सोत्साह वर्णन किया है क्योंकि यह पुरी रुक्मिणी की ही नहीं आलम के भी परमप्रिय और आराध्य कृष्ण की पुरी है। प्रात काल ऐसा लगता है जैसे घर-घर पर अमृत का स्रोत बह रहा हो, ऊँचे भवन हैं और ऊँची ध्वजाएँ हैं, उनमे भी कृष्ण का महल तो गगनचुम्बी है। सूर्योदय पर उत्तुंग भवनो के स्वर्ण-कलश अनूठी कान्ति से दीप्त हो उठते है, कोटि-कोटि रवि के प्रकाश से वे कलश ऐसे जगमगा उठते हैं जैसे बिजली हो। द्वारिकापुरी का सिहपौर तो स्वर्ण-विनिर्मित था, परकोटा स्फटिक का था, कगूरे विद्रुम जटित थे। नगरी अपर अलकापुरी सी छवि दे रही थी। ऊँचे मन्दिरो तक पक्षी भी शीघ्र नही पहुँच पाते थे। द्वारिका की हाट दो योजन (६ मील) लम्बी थी, उसकी सजावट का क्या कहना! मणि, माणिक, रत्न, पाटम्बर, मृगमद आदि के विक्रेता और नाना प्रकार का वणिज करने वाले व्यापारी कुबेर के समान आसन लगा लगाकर बैठे हुए थे। कृष्ण का भवन तो साक्षात् अमरावती ही समझिए। उसके सारे पौर नगजटित थे और पौरो के कपाट मणि-माणिक्य-विजटित थे। उनके महल के कलश, छत्र और ध्वजा की तो उपमा ही नही। ब्राह्मण दूत ने श्रीकृष्ण-मदिर के मणिजटित द्वार पर आकर कृष्ण का जो ऐश्वर्य देखा उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

> सुर नर मुनि गन गध्रप द्वारे। निसि दिन श्रस्तुति करहि पुकारे॥
> नवौं निधि जहाँ चँवर ढुरावा। प्रात वेद बदी जो बुलावा॥
> सेवहि जिमि सेवक अरु दासी। आठो सिध सिध चौरासी॥
> रतन किवार सूरज की कातो। चौखट नील मनिन की पाँती॥
> देखि द्वार दिज आयो चाइन्ह। जहाँ जगु चले सीस के पाइन्ह॥

ऐसे विस्मित कर देने वाले वैभव का कवि ने वर्णन किया है। रुक्मिणी की इच्छा-पूर्ति रूप मे बना हुआ गौरि मन्दिर ऐसा है जिसके चारो तरफ खाई है तथा जिसमे नदी का जल आता है। मन्दिर बहुत ऊँचा है जिस पर स्वर्णकलश प्रतिष्ठित है तथा उसके ऊपर ऐसी ऊँची ध्वजा फहराती है जिसे देखते ही कुल का कलेश मिट जाता है।

घनआनन्द कृत उद्दीपन-वर्णन एव वाह्य-दृश्य-चित्रण

घनआनन्द ने स्वतन्त्र रूप मे तो नही किन्तु उद्दीपन रूप मे अवश्य प्राकृतिक सामग्री का उपयोग किया है, उनके सहारे उन्होने अपनी विरह-व्यथा व्यक्त की है। विधिवत वर्षा, वसन्तादि को लेकर रूपक तो नही खडे किये गये हैं परन्तु वेदना की विवृति के लिये किसी भी प्राकृतिक उपकरण अथवा ऋतु को लेकर वे अपने भावो को व्यक्त करते रहे हैं। यह जरूर है कि ये प्राकृतिक उपादान उन्हे सुख पहुँचाने के बदले वेदनाओ का ही उपहार देते रहे हैं। इन्हे प्रकृति ने क्या पीडा दी यह तो हम विरह-निवेदन के सदर्भ मे देखेंगे किन्तु किन-किन प्राकृतिक उपकरणो ने विरही घनआनन्द अथवा विरहिणी गोपिकाओं को पीडित किया यह देखना चाहिये। लहकती हुई पुरवैया, भटके हुए बादल, चमकती हुई बिजली, वर्षा के प्रसूनो की सुगन्धि, चतुर्दिक घिरी हुई घटाएँ, कलापियो की कूक, शीतल समीर, बिजली की कौंध, टूटती हुई उल्काएँ, प्यासे चातक, उन्मत्त मयूर, गरजते हुए बलाहक, हँसती हुई बिजली, चन्द्रमारहित अघ आकाश आदि का वर्णन कर कवि ने इनके द्वारा विरह

की उद्दीप्ति दिखलाई है। अभिव्यंजना के आचार्य घनआनन्द ने अपने वियोग का आतिशय्य दिखलाने के लिए एक छन्द में अपनी व्यथा को ही प्रकृति में भर दिया है और कहा है कि चपला में जो दाह है, पपीहा के स्वरों में जो वेदना है, जिधर तिधर भटकते हुए पवन में जो अस्थिरता है और मेघों में वर्षण-शक्ति है वह सब प्रकृति को विरही से ही प्राप्त हुए हैं। वर्षा ऋतु वेदना को कम धार नहीं देती। एक छन्द में वर्षा के उपकरणों को एक-एक कर सम्बोधित किया गया है, धैर्य और शक्ति के साथ उनका मुकाबला किया गया है और उन्हें यह ललकार दी गई है कि जब तक विनोद बरसाने वाले हमारे प्रिय नहीं आते तब तक तुम जितना दुःख देना चाहते हो दे लो, उनके आने पर यदि दुःख दे सको तो मैं तुम्हें समझूँ। 'विकल विषाद भरे ताहों की तरफ तकि' और 'कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री' वाले छन्दों में प्रकृति का अनूठे ढंग से विरह काव्य में नियोजन हुआ है। बसन्त ऋतु का कवि ने विरह वर्णन अथवा विरह-निवेदन में उपयोग नहीं किया है, केवल इतना कहा गया कि वह प्राण घातक कुसुम शरों से सम्पृक्त हो विरहियों का शिकार करता फिरता है और कामदेव का परम सहचर बना हुआ अपनी पूरी सेना के साथ उन्हें त्रास देता फिरता है। विरहोद्दीपक उपकरण के रूप में घनआनन्द ने सावन की सुहावनी बूँदों, गुनगियां, चन्दन गुलाल-अबीर-समीर, दीपावली, निशा, दिवा, चन्द्रमा, बादलों, पुष्पित कमल, सुरभित समीर चातक आदि को लेकर घनआनन्द ने एक से एक सुन्दर छन्द लिखे हैं जिनमें प्रकृति द्वारा विरही अथवा विरहिणी की मनोव्यथा को अंकित किया है।[1]

अपनी भक्ति परक रचनाओं में व्रज के प्रति अनुराग में भरकर घनआनन्द ने जहाँ तहाँ व्रजभूमि अथवा वहाँ के ग्राम जीवन अथवा ग्राम्य दृश्यों का वर्णन किया है। ये वर्णन एक ओर जहाँ भक्ति-प्रेरित हैं वहाँ उस स्थान के व्यक्तिगत परिचय, स्थान मोह एवं अनुभव का भी आधार लिये हुए हैं। इस संदर्भ में व्रजभूमि के प्राकृतिक वातावरण के जो स्वच्छन्द चित्र घनआनन्द ने अंकित किये हैं वे अपने माधुर्य के कारण देखने योग्य हैं। उनमें वास्तविक प्राकृतिक छवि के चित्रण का जहाँ तहाँ प्रयास मिलेगा—

> बरहे हरे भरे सर जित तित। हिम-फुहार की झमक रहनि नित॥
> कुहीं मुरीं मुख गुहीं खिली हैं। लता ललित तरु उमगि मिली हैं॥
> गिरि सौंवल हरियारो रहै। चौमासो नित बासो गहै॥
> भूमे रहत गिरि-सिखर बादर। बोलत मोर पाति और दादर॥ (व्रजस्वरूप)

व्रज के सरिक खोरि, गोधन, धेनु और बछियाँ, गोरस, दहल (कुंड) धान्य, ज्वार (भुस) आदि तथा व्रजवासियों के परिवार देखकर मन और आँखों को अपार सुख मिलता है। कवि कहता है कि व्रज की सम्पदा और सहज माधुरी कहते नहीं बनती। व्रज के वन और नाले सदा हरे भरे रहते हैं जो ग्वालों और गायों के लिये परम सुखदायी हैं। कदम्ब, पसेहू ताल, रसाल आदि की छाया में मोहन विहार करते हैं, और प्रेम से बैठते हैं और कभी कभी वे सघन वन्य कंदराओं में भी सखाओं के साथ प्रवेश करते हैं। इस प्रकार का वर्णन 'व्रजप्रसाद' में आया है। 'व्रजस्वरूप' में भी घनआनन्द ने व्रजग्राम का एवं वहाँ की

---

[1] सुजानहित : छन्द ७६, ८८, १५१, ३०७, २२६, २१६, ३३८, २६३, ४५, ३४६, ३७८, २६८, ३५६, ३६१, ४४, १६८, १८२, ५३, २७०, ३३८, २०७।

प्रकृति का अल्प किन्तु मनहर वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि वहाँ के ऊँचे-ऊँचे प्रकाश युक्त चौपाल और ललित चौहटे देखते ही बनते हैं, चारों ओर शुभ और सुन्दर वृक्षावलि है, निकट ही साँवले सरोवर है जो मानो व्रजमोहन की छवि देखने के अमल दर्पण हैं। घाट या पनघट और खोरियाँ (गलियाँ) नाना प्रकार के रिझा लेने वाले दृश्य उपस्थित करती हैं। व्रज में सतत आनन्द की वर्षा होती रहती है इसलिये यहाँ बारहो महीने चौमासा बना रहता है, किसान की खेती निर्बाध गति से चलती रहती है। घुमड़-घुमड़ कर मेघ जलवृष्टि करते हैं जिसमें भीगते हुए व्रजवासियों की शोभा देखने योग्य होती है। नदी, तालाब, नाले भरे हुए हैं, चारो तरफ प्रकृति हरी भरी गोचर होती है। इस प्रकार कुछ स्वच्छन्द पद्धति पर घनआनन्द ने व्रज की प्रकृति का वर्णन किया है, किसान की चर्चा अपवाद रूप से ही घनआनन्द के काव्य में मिलती है अन्यथा बेचारे कृषक की चिन्ता किस रीति कवि को थी। स्वच्छन्द दृष्टि रखने के कारण ही घनआनन्द उसका वर्णन कर सके हैं।

बोधा कृत उद्दीपन-वर्णन एवं बाह्य-दृश्य-चित्रण

बोधा भी प्रकृति को प्रधानतः उद्दीपन रूप में ही ग्रहण करते चले हैं। वर्षा ऋतु की श्याम घटाएँ, दादुर-मोर-पपीहा के स्वर विरही के हृदय का अस्थिर करते दिखाये गये हैं। दक्षिण में काली घटाओं को घिरा हुआ देखकर उनकी विरहिनी को मूर्च्छित होते बताया गया है। वर्षा की अँधेरी रात में मयूरों का स्वर सुनकर के हृदय उठती हैं। अपने प्रिय को स्मरण करता हुआ पपीहा आधी रात में विरहिणी को उद्विग्न कर देता है। वसन्त ऋतु कुछ कम विरह विभावनी नहीं। आम्र, कोयल, पलाश को देख विरही हृदय अधीर हो उठता है, उसे ऐसा लगता है जैसे कोई उसके शरीर को जलाये दे रहा हो। इस प्रकार वर्षा, मेघ, दादुर, मोर, पपीहे, वसन्त, पलाशवन, आम्रतरु और कोयल ये सब विरहोत्तेजक प्राकृतिक उपकरण विरही के मन को मथित कर देने वाले हैं। इस प्रकार के वर्णनों में कोई विशेष नवीनता नहीं, हाँ वे अनुभूति प्रेरित अवश्य हैं—

(क) रितु पावस स्यामघटा उनई लखि कै मन धीर धिरातो नहीं।
पुनि दादुर मोर पपीहन की सुनि कै धुनि चित्त थिरातो नहीं।।

(ख) कारी दसा दिसि दच्छिन देखि भयो सु चहै हियरा जरि कारो।

(ग) बटपारन बैठि रसालन में यह बयेलिया आइ खरे ररि है।

(घ) बैठि रसालन के वन में अधराति कहूँ रन सों ललकारति।
नाहक बैर परी बिरहीन के कूक वियोग के लूकन जारति।।

विरह वारीश में भी बोधा ने जहाँ तहाँ कतिपय प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है उदाहरण के लिये कामदगिरि अथवा बांधोगढ़ का वर्णन करते हुए किन्तु ये वर्णन विशद नहीं हैं। वैवाहिक संस्कारों का वर्णन भी बोधा ने किंचित विस्तार से किया है जिसकी चर्चा हम प्रबंध काव्य पर विचार करते हुए करेंगे। यहाँ इतना ही कहना अलम है कि इन संस्कारों के वर्णन में उन्होंने पूरी सहृदयता और वृत्ति की स्वच्छन्दता का परिचय दिया है। लीलावती के विरह का वर्णन करते हुए बोधा ने परम्परागत शैली पर 'बारहमासा' भी लिखा है जिसमें ज्येष्ठ से शुरू कर बारह महीनों में क्रम क्रम से होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों के आलोक में विरहिन की दशा वर्णित की गई है। सावन के महीने का वर्णन देखिये—

सखी सुन सावन आवन कौन। भई बिन भावन हौं अति दीन ॥
खरी यह कोकिल कूकत बीर। लगै बिन भावन मो हिय तीर ॥
चवै चपला छहरै घन मांह। चलै चपकाय वियोगिन काहँ ॥
महाघन घोरत फोरत काल। रसै मुरवान हरै मम प्रान ॥
मनै धुरवा छहरै भुव आय। मनो विरही बध जाल उपाय ॥

ठाकुर कृत उद्दीपन-वर्णन एव बाह्य-दृश्य-चित्रण

उद्दीपन विभाव के रूप मे ठाकुर ने दो प्रमुख ऋतुओ वसन्त और वर्षा और इन्ही से सम्बन्धित होली और हिंडोला का वर्णन किया है। इनमे आगे बढ़कर दो अन्य व्रतोत्सवों ,अखती और दशहरा का वर्णन किया है। वसन्त-वर्णन के सभी छन्द विरह को उत्तेजना देने वाले बनाये गये हैं, ऋतु का स्वतन्त्र वर्णन कवि का अभीष्ट नही। 'रसाल द्रुमो मे मौर आ गये, पलाश के वृक्षो मे लाल फूल छा गए तथा आठो जाम निमम वासन्ती पवन बहने लगी है' आदि कहकर कवि ने गोपिका की अन्तर्वेदना ही व्यंजित की है, ऋतु की शोभा नही। प्राय. सभी छन्दो की मूल भावधारा यही है—'लोजिये खबर प्यारे कीजिये गहर निज, अब ऋतु-राज की अवाई आन भई है।' एकाध छन्द मे सयोग की स्थिति मे वसन्त की प्रेमोत्तेजकता भी बतलाई गई है पर अधिकतर छन्दो मे प्रकृति विरह वर्धक ही बताई गयी है—

(क) बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
सीतल मन्द सुगंधित बीर समीर लगे तन धीर धरै ना ॥

(ख) पत्र वन बेलिन के किसलै कुसुम देखु,
वन बन बाग मे छबीने छबि छावने
कोकिला की कूक सुनि हूक होत कैसी देखु,
ऐसे निसिबासर सु कैसे कै गँवावने ॥
ठाकुर कहत हिये बिसद बिचारु देखु,
ऐसे समै स्याम हू कों नाहि तरसावने।
आम पर मौर पर भौंर देखु,
भौंरन पै भौंर देखु गजत सुहावने ॥

होली—वसन्त ऋतु मे आने वाले होली के महोत्सव को लेकर कवि ने कुछ उल्लास-पूर्ण छन्द लिखे है। यद्यपि ठाकुर सयत भावो के कवि हैं फिर भी होली का वर्णन करते हुए उन्होने भी मर्यादा के बाँध को कुछ तोड़ दिया है।

पावस—वर्षा ऋतु का वर्णन कवि ने अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से किया है जिसमें उन्होने नाना वर्णो के मेघो से आच्छन्न आकाश का, चातक की रट और मयूरो के नृत्य का, इन्द्रवधूटियो के रेंगने और भिल्लियो के झनकारने का, बगुलो के उड़ने और चपला के चमकने आदि का वर्णन किया है। ये वर्णन हैं तो पर्याप्त सरस किन्तु हर वर्णन मे एक पक्ति ऐसी आ जाती है जो वर्षा के चित्र को स्वतन्त्र नहीं रहने देती—

(क) कारे कारे बद्दल सुहाये कहूँ सेत सेत,
कहूँ लाल लाल कहूँ आभा पीरी पीरी री।

ज्यों ज्यों होत चवल दिग्गन चचला की चौंध,
त्यों त्यों घन की धुकार होत धीरी धीरी सी ।

(ख) दौरि दौरि दमकि दमकि दुरि दामिनि यों,
दुन्द देत दमहूँ दिसान दरसतु है।
घूमि घूमि घहरि घहरि घहरात,
घेरि घेरि घोर घनो सोर सरसतु है ।।

कुछ छन्दों मे ठाकुर का वर्षा वर्णन केवल चमत्कार विधायक होकर ही रह गया है जैसे एक जगह पर वे आकाश मे छाए हुए विविध रंग बादलों को देखकर कहते हैं कि ये मेघ-खण्ड क्या हैं मानो किसी रंगरेज द्वारा सूखने के लिए डाले गए कपड़ों के रंग बिरंगे थान हैं। एक अन्य छंद मे घन और घनश्याम की तुलना करते हुए थोड़ा चमत्कार पैदा किया गया है। कभी-कभी वर्षा को प्रेम का वर्धक तथा संयोग स्थिति मे उल्लास पैदा करने वाला बताया गया है।

अखती और वट-पूजन—अखती वर्णन मे ठाकुर ने प्रेमी युगल के बीच पारस्परिक प्रेम के विवर्धन का अच्छा सुयोग पाया है। अखती (अक्षय तृतीय, वैशाख शुक्ला तीज) हिन्दू स्त्रियो के बीच व्रत स्वयं पूजन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पर्व है। इस दिन बुन्देलखण्ड में वट-वृक्ष के नीचे स्त्रियाँ पुत्तलिका पूजन करती हैं। पुरुष भी सज धजकर आते हैं और पूजा के बाद स्त्रियाँ पुरुषों से उनकी प्रेमिकाओं का नाम पूछती हैं। पुरुष भी स्त्रियो से उनके पतियों या उपपतियों का नाम पूछते हैं। नाम बतलाने मे जब कोई पक्ष संकोच करता है तब गुलाब अथवा चमेली की छड़ी से वे एक दूसरे पर प्रहार करते हैं। इसी मनोहर प्रसंग को लेकर ठाकुर ने इस प्रकार के छन्द लिखे हैं—'गांठ गठीली चमेली की बोदर धालो न कोऊ झनूनरी कहै ... आदि।' इस प्रकार ठाकुर ने ऋतु एवं प्रकृति तथा व्रतोत्सवों के वर्णन द्वारा इस क्षेत्र में किंचित स्वच्छन्दता का परिचय दिया है।

द्विजदेव कृत उद्दीपन-वर्णन एवं बाह्य-दृश्य-चित्रण

द्विजदेव के काव्य मे प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग लक्षित होता है, उनके प्रकृति विषयक चित्र परम्परा पालन करने वाले कवियों से पृथक हैं। उनमे हृदय का वह उल्लास देखा जा सकता है जो वसन्त की मादक ऋतु-छटा के आगमन पर किसी सहृदय हृदय में देखा जाता है। ऋतु के स्वागत के लिये वे जैसे सोल्लास दौड़ते या आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। प्रकृति उनकी वर्णना का स्वतन्त्र विषय भी है—रीति-निरपेक्ष तो वह है ही रति-निरपेक्ष भी वह दिखाई पड़ती है।

आलम्बन रूप मे प्रकृति-चित्रण—वसन्त-ऋतु का वर्णन तो द्विजदेव ने बड़े ही समारोह के साथ किया है, इतने विशद रूप में वसन्तागम का वर्णन कदाचित ही किसी मध्यकालीन कवि ने किया हो। इनके ये वर्णन सहज रस्म-अदाई के तौर पर नहीं लिखे गये हैं वरन हृद्गत उमंग और सच्चे भावोन्मेष के द्योतक हैं। देखिए न वसन्त के आगमन पर कवि का उल्लास फूटा पड़ रहा है, वह कोमल, दांव के भाड़ों, लताओं, लवंगलतिकाओं, पुष्पावलियों, पतियों, समीर वृक्ष आदि सभी से सज उठने के लिए आग्रह करता है क्योंकि

ऋतुराज के आगमन का समय अब दूर नहीं।[1] वसन्त के आगमन पर भ्रमर कुंजों में गुंजार करने लगे, वल्लरियाँ इठलाने लगी, पक्षियों का सम्मिलित स्वर-समूह एक सरस मनाका बांधे दे रहा है। ये चीजें प्रत्येक जन के हृदय को उत्फुल्ल बना रही हैं। पृथ्वीतल के लोग वसन्तागम पर इतने हर्षोन्मत्त हैं कि उनके समस्त दुखों का मानो निवारण हो गया हो। वसन्त के कारण छाए हुए पृथ्वीतल के इस उल्लास के समक्ष इन्द्र की सभा का आनन्द फीका हुआ जाता है। वसन्त ऋतु आ गई, सर्वत्र मादकता का साम्राज्य छा गया। प्रकृति में यौवन का गाम्भीर्य आ गया, बचपन की त्वरा और चपलता जाती रही। ऋतु-रमणी का सौंदर्य और उन्मद यौवन देखने योग्य है। प्रकृति की चाल मन्द और मदिर हो उठी है। शुक के कण्ठ में अधिक सुरीलापन आ गया है, अधिक सुरीली आवाज अधिक दूरगामिनी नहीं हो सकती, कीर के स्वर भी सुरीलेपन की अधिकता के कारण मंदिर में ही गूँजकर रह जाते हैं। कीर (तोते) का यह स्वर-व्यापार सूचित कर रहा है कि यह वसन्त ऋतु है। मोंगरे, मरुए और दौने कुछ वायु के भार के कारण नहीं झुक रहे हैं वरन अपने ही रसभार (मधुभार) से अवनत हैं और उनके झूमने में भी उतावलापन नहीं वरन् मन्दता है। हर भवन अभूतपूर्व सुषमा का सदन हो रहा है विशेषत वासन्ती ज्योत्सना में। चाँदनी के आधिक्य से मानो चन्द्रमा भी झुक गया है या मानो मेघों की तरह चन्द्रमा की ही घटा उमड़ी हुई है और गधभार वायु की गति को मथर किये हुए है। प्रकृति के प्रति ऐसा अनुराग रीतिरंजित साहित्य में नहीं प्राप्त हो सकता। एक-एक प्राकृतिक उपकरण के प्रति ऐसा प्रगाढ़ प्रेम और ऐसी सूक्ष्म अन्वीक्षणा किस सहृदय में दिखाई देती है। वासन्ती सुषमा देखिए—

> सुर ही के भार सूधे-सबद सु कीरन के
> मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
> 'द्विजदेव' त्यौंही मधु-भारन अपारन सौं,
> नेकु झुकि-झूमि रहे मोंगरे मरुअ दौन।
> खोलि इन नैनन निहारौ-तौ-निहारौ कहा,
> सुखमा अभूत छाइ रही प्रति भौन-भौन।
> चाँदनी के भारन दिखात उनयौ सौ चन्द,
> गंध ही के भारन बहत मन्द-मन्द पौन॥

वसन्त ऋतु के आगमन पर वनों में चतुर्दिक कैसी मादकता दिखाई देती है, भ्रमरों के गुंजार, कलियों के चटकने आदि का कैसा रुचिकर शोर होता है, पक्षियों का कैसा कलरव होता है, वायु की कैसी गमक होती है, पुष्पावलियाँ किस कदर झूम-झूम उठती हैं—

> (क) गुंजरन लागीं भौंर भीरें केलि कुंजन मैं,
> क्वैलिया के मुख तें कुहूकनि कढ़ै लगी।
> द्विजदेव तैसे कछु गहब गुलावन तें,
> चहकि चहूँघा चटकाहट बढ़ै लगी॥

---

[1] शृङ्गार लतिका सौरभ : छन्द १४२।

(ग) चहकि चकोर उठे, सोर करि भौंर उठे,
बोलि ठौर-ठौर उठे कोकिल सुहावने।
खिलि उठीं एकै बार कलिका अपार हिली,
हलि उठे मारुत सुगंध सरसावने॥

इसी प्रकार का प्राकृतिक उपकरणों और व्यापारों का सहृदय भाव में आलम्बन रूप में किया गया प्रकृति-चित्रण संश्लिष्ट प्रकृति चित्रण कहा गया है जिसकी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बड़ी सराहना की है। श्रीधर पाठक आदि स्वच्छन्द धारा के आधुनिक कवियों में इसी प्रकार का प्रकृति-प्रेम पाया जाता है। द्विजदेव के प्रकृति-प्रेम-जनित उल्लास की जितनी सराहना की जाय कम है। रात-रात भर का समय वे प्रकृति-प्रेम के कारण वनोपवनों में व्यतीत कर दिया करते थे। प्रकृति की छटा में परिवर्तन कब कैसे हो गया वे जानना चाहते थे और स्वतः देखना भी चाहते थे। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा 'द्विजदेव' जी को वसन्तऋतु अधिक आकृष्ट करती थी—ऋतुराज होने के कारण या उनकी राजसी वृत्ति के अधिक समीप पड़ने के कारण। जब भी वसन्त ऋतु आती ऋतु एवं प्रकृतिगत परिवर्तन वे अचूक रूप में लक्ष्य कर लेते थे और बड़ी वेसब्री से उसका आलिंगन किया करते थे। आगत वसन्त उनमें कदाचित विगत वसन्तों की उन्मादिनी स्मृतियाँ जगा दिया करता था, स्पष्ट संकेत न होते हुए भी उनकी पंक्तियाँ इस भाव का ध्वनन करती हैं। देखिये कितने अधीर भाव से कवि नवागत ऋतु का वर्णन कर रहा है—

फेरि वैसे सुरभि-समीर सरसान लागे,
फेरि वैसे बेलि मधु-भारन उनै गई।
फेरि वैसे चाँह कै चकोर चहूँ बोले फेरि,
फेरि वैसी कैलिया की कूकनि चहूँ भई॥

आलंकारिक शैली में प्रकृति-चित्रण —ऋतुगत परिवर्तन पर कवि मुग्ध है, विस्मित है। उसे समझ में नहीं आ रहा कि किन शब्दों में प्रकृति की चिर नूतन और चिर सुन्दर छटा का वर्णन करे। वह इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये अलंकृति का सहारा लेता है। कभी भेदकातिशयोक्ति के सहारे, कभी कैतवापन्हुति के, कभी उत्प्रेक्षा के सहारे, कभी रूपक के और इसी प्रकार उपमा, भ्रांतिमान, व्यतिरेक, उल्लेख, सन्देह, परिकरादि कितने ही अलंकारों के सहारे कवि वासन्ती सुषमा का कथन करता है। ये कथन स्वतः प्रसूत हैं, आयास साधित नहीं, रीति का अनुधावन करने वालों में आलंकारिकता भले ही मिल जाय पर प्रकृति का वह अनुराग उनमें नहीं झलकता। द्विजदेव जी द्वारा वर्णित वसन्तऋतु और उस ऋतु की प्रकृति के अलंकृत वर्णन भी उसी अनुराग से सपृक्त मिलेंगे जिससे उनके आलम्बन रूप में किये गये वर्णन ओतप्रोत मिलते हैं। ऋतुराज की अवाई का वर्णन उन्होंने बड़े समारोह से किया है।[1] प्रकृति में वसन्तऋतु का आगमन क्या है मानों किसी राजा महाराजा का आगमन हो रहा है। उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही हैं, वायु पृथ्वी की बुहार (सफाई) कर रही है, पुष्परज और सुगन्धि से वीथियाँ सींची जा रही हैं, मदमत्त भ्रमर विजय के कड़खे (गीत) गा रहे हैं, पक्षिसमूह मंगलपाठ में तन्मय है, पुष्प-पल्लवों ने स्वागत के वन्दनवार तान दिये

[1] शृंगारलतिका सौरभ : छन्द ७, ११, १२, २६, २७, २८।

हैं, कोकिलादि का गायन (मानों मेनका का गायन) चल रहा है, वृक्षावलियाँ पुष्प-वृष्टि करती हुई अमरावती तरुओं को लज्जित कर रही हैं। राजपथ के दोनों ओर के वृक्ष वृक्ष नहीं हैं नागर नर हैं जो ऋतुराज के स्वागत के लिये पंक्तिबद्ध खड़े हैं, पुष्पराग विनिर्मित दुकूलों के पाँवड़े बिछाए गए हैं। ऋतुराज का आगमन सभी के शूलों को दूर करने वाला सिद्ध हुआ है (क्योंकि वसन्त में पौधे कंटकित नहीं रह पाते, पल्लवित और पुष्पित हो उठते हैं)। कोई वृक्ष राजा के आगमन से मारे प्रसन्नता के झूम रहा है, कोई शिर नवाए हुए खड़ा है, कोई अनुरक्त भाव से आशिष दे रहा है—अपनी-अपनी वृत्ति के अनुसार ऋतुराज के स्वागत में समूची प्रकृति दत्तचित्त है। उधर वृक्ष प्रसूनों की झड़ी लगा रहे हैं, इधर अलि-चारण कीर्तिगान से वायुमण्डल को गुंजित कर रहे हैं। यही छटा सारी वनस्थली में दृश्यमान है। द्विजदेव प्रकृति के इस चरम उल्लास और उत्कर्ष पर मुग्ध हैं। उसकी अभूतपूर्व और अनिर्वचनीय शोभा के चित्रण में वे अपने आपको असमर्थ पाते हैं इसीलिये अनिर्वचनीयता व्यंजक शब्दावली में वे उस शोभा का आख्यान कर रहे हैं—

> औरें भाँति कोकिल चकोर ठौर-ठौर बोले,
> औरें भाँति सबद पपीहन के बै गए।
> औरें भाँति पल्लव लिये हैं वृंद वृंद तरु,
> औरें छबि-पुंज कुंज-कुंजन उनै गए।
> औरें भाँति सीतल सुगंध मन्द डोलें पौन,
> 'द्विजदेव' देखत न ऐसे पल द्वै गए।
> औरें रति, औरें रंग, औरें साज, औरें संग,
> औरें बन, औरें छन, औरें मन ह्वै गए॥

कवि ने अनायास ही भेदकातिशयोक्ति के सहारे प्रकृति की अनिर्वचनीय वासन्ती छटा को व्यंजित कर दिया है। सच भी है प्रकृति की चिर परिवर्तनशील राशि शोभा को क्या आसानी से शब्दबद्ध किया जा सकता है। एक छन्द में 'सार' अलंकार के माध्यम से कवि ने प्रकृति के उपकरणों की शोभा को उत्तरोत्तर बढ़-चढ़कर बताया है—

> द्विजदेव' की सौं दुति देखत भुलानों चित्त,
> दसगुनो दीपति सों गहब गढ़े गुलाब।
> सौगुने समीर ह्वं सहसगुने तीर भए,
> लाख गुनी चाँदनी, करोरगुनों माहताब॥

इस प्रकार अलंकृत शैली में भी प्रकृति का जो चित्रण हुआ है उसमें भी प्रकृति का स्वरूप, वसन्त की शोभा ही प्रत्यक्ष करना-कराना कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है, अलंकार की चमत्कृति दिखलाना नहीं। यह प्रवृत्ति स्वच्छन्द वृत्ति के ही अनुरूप है फिर एक बात और लक्ष्य करने की है कि द्विजदेव ने रीतिबद्ध कवियों की भाँति हर ऋतु पर छन्द नहीं लिखा है।

सावन की अंजोरी तीज—द्विजदेव रीति के चक्कर से मुक्त हो ऐसी वस्तुओं के चित्रण में प्रवृत्त हुए हैं जिन पर रीति से बँधे कवि कभी नहीं गए। एक स्थान पर उन्होंने ठाकुर के ही समान हिन्दू स्त्रियों के प्रसिद्ध पर्व और त्योहार श्रावण की अँजोरी तीज का भी वर्णन किया है—

सावन के व्याज आज आई गाँव गाँवनतें ,
भावन तें लीन्हें छरी करन प्रसून की ।
गुरुजन हूँ मैं गूढ़े गुननि रिझावें स्याम,
गोरी गुनवती गाइ तानें ठाह-दून की ।।
'द्विजदेव' साजें सबै अगन सुरग चीर,
झालरें झमाकें लगी कोरन कदून की,
इन्द्र की बधून की सुदेखी छबि तूने इत,
दूनी छवि देखि री ! गुबिंद की बधून की ।।

प्रभावाभिव्यजक शैली—इस पद्धति का आश्रय लेकर द्विजदेव ने ऋतु अथवा प्रकृति के उस गहरे प्रभाव की चर्चा की है जो उनके मन पर पड़ा है । इस शैली मे वर्ण्य का रूप तो विशेष सामने नहीं आता किन्तु उसकी महत्ता अथवा श्रेष्ठता की प्रतीति अवश्य होती है । कवि लिखता है कि सजी हुई, सलोनी सेज पर मैं सो रहा था, पिछले पहर की एक घड़ी रात बाकी थी । मैं क्या देखता हूँ कि अलक्ष्य रूप से दक्षिणी वायु बह उठी और चाँदनी रात घिरी हुई है, मैं सच कहता हूँ मुझे लेशमात्र भी पता न चलने पाया कि सारे नगर की और समूची प्रकृति की यह नवीन सुषमा कब आ गई, कैसे आ गई ! उसे देखकर तो हमारी मति ही कुछ और हो गई है । बदली हुई ऋतु कवि की तन्द्रा भग कर देती है, हृदय अपार आनन्द से भर जाता है । सुरभित समीर के झोंके उसके हृदय को हिला हिला देते हैं, लवग लतिकाओं का हिलना आदि देख उसके अग हर्ष और उल्लास के अतिरेक से शिथिल हुए जा रहे हैं और वसन्त ऋतु मे चटक-चटककर गुलाब की समस्त कलिकाओं का खिलना उसके निद्रित लोचनों को खोले दे रहा है हृदय मे प्रकृति-दर्शन की लालसा बलवती हो रही है— जब कवि राशि-राशि प्रकृति सौन्दर्य के केन्द्र स्थल पर पहुँचता है तो उसकी बुद्धि बावली हो जाती है, हृदय अधीर हो जाता है, ज्ञान भाग जाता है और नेत्र उस सौन्दर्यातिशय्य से अन्धे हो उठते हैं । प्राकृतिक वैभव का यह साक्षात्कार हृदय मे कैसे अनूठे अनूठे भाव जगाता है—

नख सों भुम्रैं खोदत कोद चहूँ, अवलोकत हूँ नहिं जानि परै ।
कर को अवलब कपोलन दै, भुज के अवलब कौं जानु धरै ।
इहि भाँति सौं मौन ह्वै बैठो घरीक, सुजाइ कै काहू तमाल तरै ।
तन और के जीव सजीव मनों मन मानहुँ और की देह धरै ।।

इस स्थिति को पहुँचा देने वाला प्रकृति के प्रति अनुराग हिन्दी के किसी कवि मे नहीं देखा गया है । ये छन्द अत्यन्त आत्म-परक हैं जो प्रकृति-राग मे बेतरह पगे हुए हैं । सचमुच *द्विजदेव कवि का प्रकृति-प्रेम* विलक्षण है, वह ऐसी स्वानुभूति से भरा हुआ है जैसा मध्यकाल के किसी कवि मे देखने को नहीं मिलता । प्रकृति की अलौकिक छटा को देख कवि विधाता से प्रश्न करता है कि मैं जो कुछ सामने देख रहा हूँ वह सत्य है या कोई स्वप्न ? वह कहता है कि मैं ही नहीं कोई भी इस प्राकृतिक विभव का वर्णन नहीं कर सकता चाहे चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, विधाता, शेषनाग कोई क्यों न हो—'सीस हजार हजार करै पै न पार लहैंगे हजार जुबानन ।' किसी अन्य कवि की वाणी मे प्रकृति को यह महत्व प्राप्त नहीं हुआ था ।[1]

[1] शृ गारलतिका सौरभ : छन्द १, ३, ६, ३२, ३३, ३१, १३ ।

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण—इस अति प्रचलित शैली में भी द्विजदेव ने प्रकृति का उपयोग किया है। कवि कहता है कि अब वे सारी बातें प्रकृति में घटित होने लगी हैं जिनसे विरहीजन दुखित हुआ करते हैं। राधिका अपनी एक परिचारिका से कहती है कि वसन्त की विषम बयार आ रही है, दरवाजों को बन्द कर दे। कलकिनी कोयलों को समझा दे कि व्यर्थ में शोर न करें और मधुपावलियों को डाँट दे कि अनावश्यक रूप से पुष्प पर मँडरायें नहीं और न गुंजार ही करें। उधर प्रकृति अपना उल्लास प्रदर्शित कर रही है इधर विरहिनी की पीड़ा बढ़ रही है। यह पीड़ा बढ़ते-बढ़ते उसे उन्माद की स्थिति तक पहुँचा देती है। इस प्रकार के छन्दों में कवि लिखता है कि वसन्त में शरीर हततेज हो रहा है, विरहिन के हृदय का धीरज ठहरने नहीं पा रहा है, मजरित आम्रतरु मन को बावला बना रहे हैं, पलाशों में लगी हुई आग चित्त को विदीर्ण कर रही है, वन-बागों में बगरा हुआ वसन्त ज्ञान को डिगाए दे रहा है। इस प्रकार तरह-तरह से प्रकृति की विरहोत्तेजकता दिखाई गई है।[1]

परम्परागत शैली में प्रकृति-चित्रण[2]—कुछ छन्दों में केशवदास या जायसी वाली वस्तु-परिगणन शैली पर द्विजदेव ने तमाम पक्षियों के नाम भर गिना दिये हैं जैसे कोयल, चकोर, चातक, चकवा, सारिका, कपोत आदि और इसी प्रकार कहीं तरह-तरह के वृक्षों के नाम भी एकत्र कर दिये गए हैं। जहाँ प्रकृति की रमणीयता में मुग्ध दाम्पभाव रखने वाले पशु-पक्षियों को एक ही साथ बैठे या विचरण करते दिखाया गया है वहाँ भी परम्परागत शैली का ही वर्णन माना जायगा।

पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण—द्विजदेव ने वासन्ती सुषमा का वर्णन करते हुए इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया है कि ऋतु ने यह छटा इसलिये बिखेर दी है जिससे राधा रानी प्रेम और आनन्द का पर्व मना सकें—'राधिका जू के बिहार के काज, सबै विधि सौं सुखमा उपजाए।' वसन्त की पृष्ठभूमि में तो प्रेम के कितने ही चित्र प्रस्तुत किये गए हैं पर वर्षा की पृष्ठभूमि में ऐसे वर्णन कम हैं—ऐसे छन्दों में कभी-कभी तो वर्ण्य प्रणय होते हुए भी पृष्ठभूमि का वर्णन भी अधिक मनोग्राही बन पड़ा है[3]—

> चूनरी सुरग सजि सोहौ अग अगनि,
> उमगनि अनग-अगना लौं उमहति है।
> झुकि-झुकि झाँकति झरोखन तें कारी घटा,
> चौहरे अटा पै बिज्जु छटा-सी जगति हैं॥
> 'द्विजदेव' सुनि-सुनि सबद पपीहरा के,
> पुनि पुनि आनद-पियूष मैं पगति हैं।
> चावन चुभी-सी मन भावन के अक तिन्हैं,
> सावन की बूँदें ए सुहावनी लगति हैं॥

---

[1] शृंगारलतिका सौरभ छन्द २, १७१, ८८, २२०, २४०, १७६, ६६, १११, ११६, १०६, १६१, १६६, १०१।

[2] वही छन्द १६, २०, २५, १०।

[3] वही छन्द ३५, ६१, ३० ८१, ८६।

द्विजदेव प्रकृति की छवि पर मुग्ध होने वाले बँधे बँधाये विषयों से अलग हटकर हृदय का प्रसार दिखलाने वाले कवियों में थे। वर्ना रस्म-अदाई के वे ऋतु-वर्णन में नहीं प्रवृत्त हुए नहीं तो वे छओं ऋतुओं पर कुछ न कुछ अवश्य लिखते। उनमें भावों का जैसा प्रसार और हृदय की जैसी उमंग के दर्शन होते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह मानना पड़ेगा कि प्रकृति या ऋतु-वर्णन की दिशा में अत्यन्त मनोग्राही आलेखनों के कारण द्विजदेव का स्थान विशिष्ट है।

संयोग शृंगार

स्वच्छन्दधारा के प्रेम और शृंगार के कवियों ने संयोग पक्ष का वर्णन भी पर्याप्त विस्तार से किया है। घनआनन्द में अवश्य संयोग वर्णन कम है परन्तु रसखान, आलम, बोधा आदि इस पक्ष के विशद वर्णन में प्रवृत्त हुए हैं और अच्छी एवं अभिनव भाव राशि प्रस्तुत कर गये हैं। प्रस्तुत खंड में प्रेमी प्रेमिका की मिलन दशा की मनोभूमि का ही लेखा-जोखा लेना है तथा उनकी संभोग-सुख की अनुभूतियों के सौंदर्य का दिग्दर्शन कराना है।

रसखान का संयोग-वर्णन

रसखान ने जो कुछ भी प्रेम वर्णन किया है उसके प्रधान माध्यम गोपी और कृष्ण हैं। उन्हीं के बहुविध प्रेम-व्यापारों की वर्णना में ही रसखान की प्रेम-भावना अंतर्हित समझनी चाहिये। रसखान को सूरदास द्वारा तैयार की गई काव्य भूमि सहज ही प्राप्त हो गई थी, उसी पर उन्होंने अपनी भावना के नाना चित्र अंकित किये हैं।

गोचारण[1]—रसखान के कृष्ण गऊएँ चराते हुए अपने सौन्दर्य, रूप माधुर्य एवं आचरण द्वारा गोपियों के मन पर अमिट छाप छोड़ देते हैं। रसखान ने गाय चराते हुए कृष्ण के गाय दुहने, कुंजों में जाने, गायों के घेरने और टेरकर बुलाने, वेणु बजाने, मोहिनी तान से गोधन गाने, गायों के संग वन से लौटने, वेणु बजाते हुए गीत गाने आदि का उल्लेख मात्र किया है। गोचारण प्रसंग के वर्णन में सूरदास वाला माधुर्य तो रसखान नहीं पैदा कर सके हैं पर उन्होंने यह अवश्य दिखलाया है कि गोचारण करने वाले कृष्ण किस प्रकार गोपियों के हृदय-देश के अधिपति बन गये हैं। वे उनके हृदय में समा गये हैं, एक न दो सारा का सारा ब्रज उनके कार्यों एवं गुणों पर मुग्ध होकर जैसे बिक गया है, समस्त ब्रजवासी जैसे उनके गुणों के क्रीतदास हो गये हैं। गोचारण करते हुए सम्मोहन रूप और वेश वाले कृष्ण को देख गोपियाँ प्रेम में पसीज जाती हैं वैसे ही जैसे कि आँच पाकर राँगा पिघल जाता है। गोपियों का समूह का समूह कृष्ण के गोचारण और संग संग वेणु-वादन तथा गोधन-गान पर मुग्ध है—'गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइ गो प्रान चराइ गो गैया।' गो चराने वाले कृष्ण के रूप-वेश और सौंदर्य पर मुग्ध गोपियाँ लोक लाज नहीं मानतीं, वे कृष्ण को देखती हैं, तृप्त होती हैं और अपने मन की तपन बुझाती हैं।

कुंज क्रीड़ा[2]—कुंजों के अन्दर प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन विशेष नहीं है वरन् कुंज से निकलते हुए मोहक रूप वाले कृष्ण की रूप माधुरी का गोपियों पर जो मादक प्रभाव पड़ता है उन्हीं

---

[1] सुजानरसखानि : छन्द २५, २२ २४, २६।

[2] वही : छन्द २६, ३०, ३१, १६०, १३२, १७४, १५७, १५८, २८, १८६।

का वर्णन किया गया है। एक छंद में कृष्ण संकरी कुंजगली में गोपिका के साथ शरारत करते दिखाए गए हैं किन्तु वह छेड़छाड़ उसके दुःख का कारण नहीं वरन् अपार हर्ष का कारण है—

कुंजगली मे अली निकसी तहाँ सांकरें ढोटा कियौ भटमेरो।
माई री वा मुख की मुसकान गयी मन बूडि फिरै नहिं फेरो॥
डोरि लियौ दृग चोरि लियौ चित डार्यौ है प्रेम को फंद घनेरो।
कैसी करौं अब क्यों निकसौं रसखानि पर्यौ तन रूप को घेरो॥

अपवादस्वरूप ही एक छंद में रसखान ने कृष्ण और राधिका की कुंज-क्रीडा या कुंज-विहार का उल्लेख किया है—

लाडली लाल लसैं लखियैं अलिपुंजनि कुंजनि मैं छबि गाढ़ी।
बालन लाल लिये बिहरैं, छहरैं बर मोर पखी सिर ठाढ़ी॥

सच तो यह है कि भक्तमना रसखान को प्रेम के पुनीत और उदात्त रूप का ही चित्रण अभीष्ट था इसीलिए उनकी कुंज-लीला प्रेम मन की मिलन-भूमि के रूप में प्रस्तुत की गई है, उस पुनीत मिलन भूमि को सामान्यतया भोग-भवन का आमुष्मिक रूप नहीं प्रदान किया गया है। स्फुट छंदों में बार-बार कृष्ण को कुंज में आते हुए या खड़े हुए या मुस्काराते हुए दिखलाकर कवि ने बतलाया है कि भरी हुई भौंहें, सुथरी बरौनियाँ और रक्तिम अधरोष्ठ, विशाल नेत्रों से चलने वाले कटाक्ष, खजनादिकों का मद चूर करने वाले उन्मद नेत्र, चन्द्रमा से भी सुन्दर मुख, रूप के सिंधु की अत्यन्त कोमल वाणी, मनोहर वेश और कामदेव से सुन्दर रूप छटा जिसके अधरों पर मुस्कुराहट की लहरें उठती हैं तथा वह मुसकान जिसकी सारे नगर में डौंडी बजती है—ऐसा है वह रूप जो गोपियों को रिझाता है तथा उनके मन प्राण को हर लेता है। कुंज-क्रीडा-वर्णन में कृष्ण के रूप प्रभाव का चित्रण ही विशेष है जो नाना गोपियों के कथनों द्वारा वर्णित किया गया है। एक गोपिका कहती है—हे सखी! कुंजगली से होकर मैं आ रही थी, रास्ता सँकरा था वहीं पर नन्द का ढोटा आकर मुझसे भिड़ गया। किसी और के द्वारा लोक में यह समाचार फैले इससे अच्छा है कि वह खुद इसे कह दे और अपना निरपराध होना प्रमाणित कर दे। भिडन्त हुई पर वह कुछ बुरी बात न थी। मन का यह भाव छंद के अंतिम चरणों में कितनी सुन्दरता से व्यक्त हुआ है—'कुंजगली में अली निकसी तहाँ सांवरे ढोटा कियो भटमेरो'—इस छन्द के अंतिम चरणों तक पहुँचते-पहुँचते ऐसा लगता है जैसे कुंज में अचानक आ भिड़ने वाले प्रिय ने गोपिका का हृदय झकझोर कर खींच लिया है और सब कुछ लुट जाने पर उसमें ऐसी विह्वलता आ गई है जिसमें दुःख कम हर्ष अधिक है, गोपिका के शरीर पर जैसे कृष्ण के रूप ने घेरा डाल दिया है। कृष्ण का रूप, वेश, नेत्र, कटाक्ष, मुस्कान आदि गोपियों को आत्मविभोर करने वाले हैं, वे उन्हें देख लेने पर आत्म-विस्मृत होकर उन्हीं की हो जाती हैं, उन्हीं के पीछे-पीछे लग जाती हैं, आत्म-ज्ञान शून्य हो जाती हैं, शरीर की सातों सुध (पचेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि का ज्ञान) भूल जाती हैं, मतवाली हो जाती हैं, चक्कर खाकर गिर पड़ती हैं, गृह-बंधन तोड़ देती हैं, आर्यवंशी मर्यादाओं तथा लोक-लाज का त्याग कर देती हैं। यह है कृष्ण के रूप का प्रभाव कुंज-लीला के संदर्भ में[1]।

---

[1] सुजान-रसखानि : छंद २९, ३०, ३१, १६०, १३२, १७४, १२७, १२८, २८, १८६।

दान प्रसंग[1]—बहुत कुछ सूरदास आदि के ही ढंग पर रसखान ने १०-१२ छंदों में दान-प्रसंग का वर्णन किया है। आभीरो के गांव ब्रज में गोरस (दूध-दही) इत्यादि ही जीवन का आधार है। वही खाना, वही बेचना। ब्रजगांव मे परदे की प्रथा नही, ग्वाल-बाल गायें चराते हैं, अमीर जन दूध दुहते हैं, गायों को खिलाते पिलाते और उनकी सेवा करते हैं, स्त्रियां दधि मथन करती हैं, नवनीत तैयार करती हैं, बच्चों की सँभाल करती हैं और ग्वालिनियां-बालिकाएँ, किशोरियाँ और युवतियाँ अपने-अपने सिर पर मटका लेकर गांव के पार, पास-पडोस के गाँवो मे, निकटवर्ती बस्तियों मे और कभी-कभी यमुना के पार के नगर मे भी गोरस बेचने के लिए जाती हैं। उनका मार्ग और कार्य निरापद है। कोई उन्हें छेड़ता नही, कोई उनका मार्ग नही रोकता और कोई उनका माल नहीं लूटता लेकिन ब्रज ग्राम के ही महर के लाडले कृष्ण हैं कि गोपियों को नित्य छेड़ते हैं और उन्हे तग करते है। कभी उनका रास्ता रोकते हैं, कभी उनसे दूध-दही मांगते हैं, कभी उनकी आंखों मे आंख डालकर अपने मदिर मनोभावों को व्यक्त करते हैं। गोपियाँ हैं जो तग होती हैं पर अपना धधा नहीं छोडती। कभी-कभी यशोदा के पास शिकायतें भी लेकर जाती हैं और कभी-कभी कृष्ण को ही डाँटती फटकारती हैं। कृष्ण कभी-कभी योजनाबद्ध रूप मे काम करते हैं और ग्वालिनो को बेतरह तग करते हैं। अपने एक से एक उद्धत सखाओं को लेकर वन मार्ग मे छिप जाते हैं, जब गोपिकाएँ दूध दही लेकर निकलती हैं तो वे सब के सब निकल पडते है, उन्हें छेड़ते हैं, राह रोकते हैं, दूध-दही मांगते हैं, निषेध किए जाने पर हठ करते हैं और बहुत सी बातें करते हैं जो सही नही जाती। वे ऐसी मनमानी करते हैं जैसे गाँव मे उन्ही का राज्य हो—दूसरे का माल खाना फिर उनका माल लुढ़का देना। यह तो शरारत न हुई खासी बदमाशी हुई। किसी के कपड़े लेकर पेड पर चढ जाना जिससे वह पा न सके, देर तक परेशान हो और इनसे आरज़ू-मिन्नत करे। वह तो चोरी न हुई बल्कि सीनाज़ोरी हुई। ऐसा औद्धत्य! सब कहती हैं चलो जरा यशोदा से चलकर पूछें तो कि ये बेटा पैदा किया है या कही का लुटेरा बुला रखा है—

काहू को माखन चाखि गयो अरु काहू को दूध दही ढरकायौ।
काहू को चीर ले रूख चढ्यो अरु काहू को गुंजछरा छहरायौ॥

कितनी सच्ची खीझ है। ये वचन किशोरियों के नही वरन् वय-प्राप्त युवतियों के हैं। वक्षस्थल से हार तोडकर बिखरा देना आदि कौन सहेगा पर ये स्त्रियाँ सहती हैं क्योंकि एक तो कृष्ण ग्राम-स्वामी के सतान है दूसरे अपूर्व और मनोहर रूप वाले हैं, उनकी बड़ी से बड़ी शरारत अधिक देर तक गोपियों के मन में क्रोध को टिकने नहीं देती। कोई कोई तो कृष्ण की दोनों भुजाएँ पकड़कर उन्हें यशोदा के पास ले जाती हैं। वे करती तो कृष्ण की शिकायत हैं किन्तु उनके स्पर्श और ससर्ग-सुख की सतत कामना उनके मन में प्रवाहित होती रहती है। कृष्ण को अपनी बाँहों मे पकड कर शिकायत के बहाने ले आने का जो दुर्लभ आनन्द है वह उनके जीवन का सर्वस्व है—

---

[1] सुजान-रसखानि : छंद १०३, १०४, १०५, ३८, ३९, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, (११ छन्दों वाली दानलीला भी देखिये)।

लूटत हैं कहें ये वन में मन में कहैं ये सुख-लूट कहां है ।
अग ही अग ज्यौं ज्यौं ही लगैं त्यौं त्यौं ही न अग ही अग समाहैं ।।

अब देखिये जरा इस दान-लीला की शुरुआत किस प्रकार होती है । एक नई ग्वालिन है जो ब्रजगांव मे पहले पहल 'गोरस' बेचने निकली है । यह तो रोजगार की शुरुआत है, थोडी लज्जा होनी है कुछ अजनबीपन लगता है, 'दही ले लो' कहकर आंखो ही आंखो मे वह थोडा हँस पडती है । उसकी वह मनोहर हँसी कृष्ण के प्राणो मे बस गई, बस फिर क्या था कृष्ण रोज ही उसे देखने को आने लगे गोरस बेचने मे विघ्न डालने लगे । एक अन्य गोपिका है जो गोकुल मे दही बेचने जाती है, वही नटनागर से उसकी आखें चार होती हैं, उन्हे देखकर वह 'मैनमई' हो जाती है, इधर वे भी आकर 'गोरसदान' मांगते हैं और अपनी मांग पर अड जाते हैं । उधर ग्वालिन भी नई है और सलज्ज है—मुक्तदान भी सम्भव नही, निषेध भी सम्भव नही। उसकी अतर्द्वन्द्वमयी दशा का रसखान इन शब्दो मे वर्णन करते हैं—

नख तें सिख नील निचोल लपेटे सखी सम भांति कँपै डरपै ।
मनौ दामिनि सावन के घन मैं निकसैं नहीं भीतर ही तरपै ।।

धीरे-धीरे यह घटना नित्य की साधारण सी बात बन जाती है, गोपियां कृष्ण की यह लगरई, उनकी शरारतें और छेडखानियां सहती जाती हैं और कृष्ण सिर चढते जाते हैं । कुछ तो नवयुवतियां है लाज सकोच के मारे बोलती नही, कुछ कृष्ण के रूप पर सौ जान से निसार हैं, उन्हें कृष्ण का छेडना पसन्द है, दूध दही गिरे-पडे गिरता पडता रहे । बस फिर क्या है कृष्ण ने साथी इकट्ठे किए एक को छेडा, दो को छेडा । धीरे धीरे हिम्मत खुल गई जिसे चाहा उसी को छेडने लगे । नवयौवनाएं मुग्ध होने लगीं, मुग्धाएं और मध्याएं पूर्णकाम । सब आ-आकर अपनी-अपनी कथा एक दूसरे से कहने लगी । ये बातें किसी को भली लगी, किसी को बुरी । एक दूसरे को समझाने लगीं । दूर दूर के गांवो मे भी कृष्ण के गांव मे ग्वालिनें आती थी । वे भी कृष्ण के शरारतो की शिकार बनने लगीं । अधिक वय वाली गोपिकाएं उन्हे समझाने लगी कि जमुना के पार मत जाया करो, अपने गांव मे ही दूध-दही बेचो वरना सारे गांव मे तुम्हारे प्रेम की डौंडी बज जायगी और तुम्हारा निकलना-फिरना बिल्कुल बन्द हो जायगा । उधर जैसी गोपिका हुई कृष्ण को वैसी ही भेंट मिलती है । एक दृढ मनोबल वाली गोपिका को कृष्ण ने छेडा तो उसने निहायत शराफत से साफ साफ कह दिया कि तुम्हे दूध नही चाहिए और न मक्खन ही । क्यों बेकार की बहस करते हो और बातें बढाते हो । तुम जिस रस के इच्छुक हो वह मैं भली भांति समझती हूँ, लेकिन तुम मुँह धो रक्खो वह रस तुम्हें नही मिलेगा—

छोर जो चाहत चीर गहैं अजू लेउ न केतिक छीर अँचैहौ ।
चाखन के मिस माखन मागत खाउ न माखन केतिक खैहौ ।।
जानति हौं जिय की रसखानि सु काहे कौं एतिक बात बढैहौ ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नेकु न पैहौ ।।

एक क्षीण मनोबल वाली सुन्दरी का जब कृष्ण से पाला पडा तो उस पर जो कुछ बीती वह अपनी सहेलियों से आकर इस प्रकार वर्णित करती है—

आज कहूँ दधि बेचन जात ही मोहन रोकि लियौ मग आयौ।
माँगत दान मैं आन लियौ सु कियौ निलजी रस-जोबन खायौ॥
काहु कहूँ सिगरी री विदा रसखानि लियौ हँसि कै मुसकायौ।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियौ सु कियौ मनभायौ॥

अपने सर्वस्व-हरण में वह अपने अकेलेपन को कारण ठहराती है और सारी घटना-वली इस प्रकार कह चलती है जैसे कुछ हुआ ही न हो। जो कुछ उसने ऊपर वर्णित किया है वह उसके दुख का नहीं वरन हर्ष का कारण है। कभी-कभी कोई कोई वयस्क गोपिका अपने धन अथवा वस्तु के अपहरण अथवा कृष्ण के अशिष्ट और अनुचित आचरण पर क्षोभ प्रकट करती हुई तथा कृष्ण को फटकारती पाई जाती है। एक ग्वालिनों की मण्डली ने कृष्ण ने कहा कि 'हमें गोरस दो, बिना गोरस लिये हम तुम्हें जान नहीं देंगे'। कृष्ण के उक्त वचन में कुछ रसिकता का भी आभास था जिसे लक्ष्य करके एक प्रौढ़ ग्वालिन ने उन्हें अच्छी फटकार बताई—

आवत ही रस के चसके तुम जानत ही रस होत कहा हो।
नैनुक चै-रस भोजन दै हौं बिना दन के अलबेले लला हो॥
ग्रंत वही दिन आवैगे भूमि गुवालिन ही के सु नंद लला हो।
त्यौंनै कहा इन बातन तें घर जाव लला अब ही लरका हो॥

यह फटकार अच्छी थी, कृष्ण की 'अचगरी' का मुँहतोड़ उत्तर थी। कृष्ण जो 'गोरस' (इन्द्रिय-रस) चाहते थे गोपिका उससे भली-भाँति अवगत थी। एक अन्य वयस्क गोपिका को इस बात का बड़ा दुख है कि उन्हीं के गाँव का छोहरा होकर भी कृष्ण उनके साथ ऐसा व्यवहार करता है—

यहै दुख भारी गहै डगर हमारी मांझ, नगर हमारे ग्वाल बगर हमारे को।

वन-क्रीड़ा[1]—वनक्रीड़ा के छन्दों में वनमार्ग से जाती हुई गोपियों के संग कृष्ण की शरारतों का वर्णन है, बहुतेरी गोपियाँ ऐसी थी जो दही बेचने जाकर कृष्ण को देखे बिना या उन्हें गोरसदान दिये बिना तुष्ट न होती थी। कुछ ऐसी भी थी जो कृष्ण की समीपता तो चाहती थी किन्तु कुल-मर्यादा, लोक-लाज आदि के कारण जा नहीं पाती थी वैसे दो-चार बार जाकर वे वन-प्रान्तर के सम्मोहक एवं उन्मादक वातावरण से परिचित भलीभाँति हो गई थीं। ऐसी ही एक कृष्ण-संसर्ग की अभिलाषिणी गोपिका की यह उक्ति कितनी मार्मिक है। वह दूसरी गोपिका से कहती है कि मैं तो गोरस अपने गाँव में ही बेचा करूँगी, गाँव के बाहर नहीं जाऊँगी क्योंकि उस बाट में कृष्ण मिलते हैं और इस कारण ननदें चुगली शुरू कर देती हैं। उनकी चुगली और गालियों की ज्वालाएँ मैं नहीं सह सकती। इस पर जब दूसरी प्रौढ़ गोपिका उसे कहती है कि ननद आदि नाते-रिश्ते के लोगों से डरना बेकार है यदि अपने मार्ग पर तुम निष्पाप भाव से चली जा रही हो। इस पर वह गोपिका उत्तर देती है—नहीं, ऐसी बात नहीं है, उस वन प्रान्त में प्रवेश करते ही लज्जा की सँभाल मुश्किल हो जाती है, वहाँ लज्जा का त्याग करना ही पड़ता है क्योंकि वन-मार्ग के कुंजों में नन्द-

---

[1] सुजानरसखानि : छन्द ४०, १८४, १८५।

कुमार बसते हैं और उस वनस्थली के कचनार वृक्ष ऐसे मादक एवं मोहक वातावरण की सृष्टि कर देते हैं जिसमे कामोद्रेक होता है अतएव उधर न जाना ही अच्छा। इससे तो अच्छा है कि अपने गाँव मे ही गोरस बेचूँ। वहाँ जाती हूँ तो बेसम्हाल हो जाती हूँ और इधर ननदो की वार्ताओ की ज्वाला मे भी जलना पडता है। किसी-किसी छन्द मे वन-प्रान्तर मे राधा और कृष्ण की प्रेम-क्रीडा का चित्रण हुआ है। उनकी आकस्मिक भेंट, फिर वनस्थली का रमणीय सौंदर्य और उस सब के ऊपर हृदय से फूटती हुई मनोभव की मधुर निर्झरिणी। इस सबके होते हुए अपार आनन्द की सृष्टि भला कैसे न होगी—

> आज अचानक राधिका रूप-निधान सो भेंट भई बन माहीं।
> देखत दृष्टि परे रसखानि मिले भरि अंक दिये गलबाहीं॥
> प्रेम भरी बतियां दुहुधां की दुहूँ को लगीं अति ही चित चाहीं।
> मोहिनी मन्त्र बसीकर जन्त्र हहा पिय की तिय की नहिं नाहीं॥

यह 'नाहीं' दूलह कवि के अनुसार 'हाँ ते भली' होती है यह बताने की आवश्यकता नही। वन मे जो मिलन होता है उसके आनन्द का क्या कहना! ग्रीष्म का प्रखर आतप कोई व्यवधान नहीं डाल पाता, फिर जिसकी आतप से विशेष सुरक्षा होनी चाहिये उसे पुरुष की स्निग्ध छाया भली भांति प्राप्त होती है—

> जोवन कौ फल पायौ भटू बसबातन बेलि सों तोरत नाहीं।
> कान्ह को हाथ कंधा पर है मुख ऊपर मोर किरीट की छाहीं॥

पनघट—जलाशयो के निकट भी कृष्ण और गोपियो के प्रणय-व्यापारो का मनोहर चित्रण रसखान ने किया है, उसमे सूरदास वाला विस्तार तो नही है परन्तु उसका स्वरूप बहुत कुछ वही है।[1] कृष्ण यमुना मे जल भरन वाली गोपिया को भी तरह-तरह से छेडते थे और गोपिकाएँ थी जो लज्जावश उनके इस प्रकार के आचरणो का विरोध करती थी परन्तु कृष्ण इन व्यवहारो के कारण उनके हृदय से उतरे नही—

> जात हुती जमुना जल कौं मन मोहन घेरि लयौ मग आइ कै।
> मोद भर्‌यौ लपटाइ लयौ, पट घूंघट टारि दयौ चित चाइ कै॥
> और कहा रसखानि कहौं मुख चूमत घातन बात बनाइ कै।
> कैसें निभै कुलकानि, रही हिये सांवरी मूरति की छवि छाइ कै॥

ऐसे प्रसगो मे ऐन्द्रिक तृष्णा कृष्ण मे ही विशेष दिखाई गई है। जब ब्रजागनाएँ यमुना मे स्नान करने के लिए जाया करती थी उस समय घात लगाकर नन्दलाल भी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए आस-पास फटकने लगते थे। उधर आने के तरह बहाने उन्हें मालूम थे, और कुछ नहो तो वेणु बजाते हुए और तान सुनाते हुए ही आ पहुँचे।

एक छन्द मे कृष्ण द्वारा स्नान करती हुई गोपियो के चीर-हरण का भी वर्णन आया है।[2] पुनीत एव अतीन्द्रिय भावो के कवि होने के कारण ऐसे अधिक छन्द कवि ने नही लिखे।

---

[1] सुजानरसखानि छन्द ३६, ३७।
[2] वही : छन्द २७।

रास—रसखान के रास-विषयक छन्दो मे वह आनन्द नही छलकता है जो सूर के पदो या नन्ददास की 'रास पचाध्यायी' मे उमडता दिखाई देता है।[1] राम रचने वाले श्रीकृष्ण जब वेणु बजाते हैं तो उनके मादक नाद ने सारी ब्रजगोपियाँ अचेत हो जाती हैं। जब उन्हें होश आता है तो वे किसी प्रकार जल्दी-जल्दी अपने वस्त्र ठीक कर वन की ओर जाती हैं जहाँ कृष्ण उनके साथ विलास करते हैं। कोई गोपिका कहती है कि चलो आज वन मे मनमोहन ने रास रचा है, कोई कहती है कि आज तो महावन मे ग्वालवालो की मण्डली देखने योग्य है, सभी गोपकुमार सजधज कर आये हैं और कामकुमार से सुशोभित हो रहे हैं। मेरी समझ मे तो कोई कितना भी शृगार करे लेकिन आँखें घूम फिरकर श्यामल कृष्ण पर ही जा टिकती हैं। कभी कृष्ण मुरलीवट के समीप भी रास रचते हैं और नाना हावभावो का प्रदर्शन करते हुए गोपियों के चित्त मे रमण करते हैं, वे तो उनके सौंदर्य पर बिक सी जाती हैं। जो गोपिका रास मे कृष्ण का ससर्ग प्राप्त कर लेती है वह अपने सौभाग्य पर भी फूली नही समाती।

वंशी—कृष्ण की जिस वशी को कवियो ने गोपियों की ईर्ष्या का विषय ठहराया है और जिस भाव-परम्परा का अनुगायन करते हुए रसखान की गोपिका ने भी कहा है—

> भावतो तोहि मेरो रसखानि जु तेरे कहे सब स्वाँग भरौंगी।
> पै वा मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥

वही वशी सामान्यतया गोपियों को विमोहित करने वाली कही गई है। कृष्ण की श्यामोहिनी शक्ति मुरली के कारण और भी बढ जाती है, कृष्ण जिधर जाते हैं उनकी मुरली की ध्वनि के कारण गोपियाँ उसी तरफ दौड पडती हैं। सभी झरोखो मे झाँकने लगती हैं, अटारियो पर चढ जाती हैं। कोई कोई तो लोक-लाज का तिरस्कार कर आँखो आँखो मे मोल-तोल भी कर लेती हैं। कृष्ण जिस गली से निकलते हैं वही गोपियाँ उन पर लट्टालोट हो जाती हैं—'वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है।' एक गोपिका तो कहती है—

> काननि दै अँगुरी रहिबो जबही मुरली धुनि मन्द बजैहै।
> मोहनीताननि सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै॥
> टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितो समुझै हैं।
> माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै॥

वेणु का शब्द सुनकर गोपियों की मिलनोत्कण्ठा इतनी प्रबल हो जाती है कि वे अपने वश मे नहीं रहतीं, उनकी कामाग्नि दहक उठती है, तन-मन की ऐसी दशा उनके लिए जीना मुश्किल कर देती है। राधिका पर तो कृष्ण की वशी का जादू इस तरह सवार हो जाता है कि कुछ पूछिये मत। उसका जीवन-मरण विधाता के आधीन हो जाता है, उसकी दशा देख-कर अन्यान्य गोपियाँ भी बेहाल हो जाती हैं और कहती हैं—'राधिका जो है तो जीहैं सबै न तो पीहैं हलाहल नन्द के द्वारे।' इस प्रकार कृष्ण की बाँसुरी के आकर्षण मे सारा ब्रज बँधा हुआ है, कौन सी गोपिका है जो उस पर लट्टू नही है। इस प्रभाव की व्यापकता 'दूध दुह्यौ सीरो पर्यो' वाले कवित्त मे सुन्दरता से निदर्शित हुई है जहाँ यह बताया गया है कि

---

[1] सुजानरसखानि : छन्द ३३, ३४।

कृष्ण की वंशी का स्वर कान मे पडते ही सारे ब्रज के कारबार रुक जाते हैं, लोगों के अग ढीले पड जाते हैं, जो व्यक्ति जैसा रहता है वैसा ही रह जाता है, जगत के सारे व्यापार धरे के धरे रह जाते हैं। कृष्ण की वंशी का जादू इस कदर झकझोर देने वाला है कि उसके प्रभाव मे आई हुई गोपिका को लोग आसानी से पहचान लेते हैं और कहने लगते हैं यह देखो 'पगली आ गई'। अपनी दुर्दशा से पीडित हो वे औरो को आगाह भी करती हैं—'जो कोउ चाहै भलो अपनो लौं स्नेह न काहू सों कीजियो माई' अथवा 'तकि पाँय धरौ रपटाय नहीं वह चारो सो डारि फंदावत है।' कभी-कभी कृष्ण अपनी मुरली मे ही किसी गोपिका का नाम ले लेते हैं, तुरन्त ही उसकी बदनामी फैल जाती है लेकिन वह भी सोचती है कि जब बदनामी हो ही गई तो फिर वह प्रेम का रस पाने से क्यों वंचित रहे। दुनियाँ को वह पचडा समझकर छोड देती है और नगाडे की चोट पर कृष्ण को अपना प्रिय स्वीकार करती हैं। कभी सास-ननँद आदि बैठी रहती हैं और गोपिका का नाम कृष्ण की मुरली ध्वनि से आता सुनाई पड़ता है, बेचारी की साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह जाती है परन्तु वे प्रेम के उन्मेष मे थोडा शक्ति सञ्चित करते ही लोक-लाज की उपेक्षा करती दिखाई देती हैं। अग-अग की मन मोह लेने वाली वंशी प्रीति की उत्पादिनी दिखाई गई है, लोक-लाज का निगड टूट जाता है और प्रेम की स्वच्छन्द धारा प्रवहमान हो उठती है, प्रेम की सकुचाई और बँधी हुई सरिता मे बाढ आ जाती है। वंशी का प्रवाह रसखान ने दो रूपों मे दिखलाया है एक तो गोपियो का मुग्ध होना, प्रेम शिथिल होना और प्रेमोन्मत्त होना दिखाकर दूसरे उनमें कामोत्तेजना या प्रबल मिलन-लालसा दिखाकर।[1]

होली—होली उन्मत्त मन का पर्व है फिर ब्रज की होली तो प्रसिद्ध है जहाँ स्त्री-पुरुष मुक्त हृदय से इस पर्व को मनाते आये हैं। रसखान की गोपियाँ और कृष्ण बडी ही स्वच्छन्द पद्धति से होली खेलते है।[2] गोपी है जो प्रेम से भरकर पूरे मौज के साथ कृष्ण पर केसर, अबीर और रग की बौछार करती है और उनका मन चुराकर मदमत्त भाव से चल देती है। एक नवीन गोपिका के सग कृष्ण का होली खेलना देखिये—

> **आवत लाल गुलाल लियें मग सूने मिली इक नार नवीनी।**
> **त्यौं रसखानि लगाइ हिये भटू मौज कियो मन माँहि अधीनी।**
> **सारी फटी, सुकुमारी हटी, अँगिया दरकी सरकी रग भीनी।**
> **गाल गुलाल लगाइ-लगाइ कै अक रिझाइ बिदा करि दीनी॥**

यह चित्र तरुण रसखान ने चाहे न भी लिखा हो पर तरुण हृदय रसखान की रचना अवश्य है। रीति स्वच्छन्द शृगारधारा मे नीति, नियम और सयम का ध्यान नहीं दिया जाता, इन बातो को महत्वहीन समझकर बलाए ताक कर दिया जाता है। केवल प्रेमी ही नहीं प्रेमिकाएँ भी नियम-सयम, लोक-लाज आदि का अतिक्रम प्रेम के लिए आवश्यक मानती हैं और विशेष रूप होली मे—'ताहि सरो लखि लाख जरौ इहि पाख पतिव्रत ताख धरौं जू' ऐसी पक्तियो से रसखान के शृगारी मन का परिचय मिलता है। होली मे कौन सी गोपिका

---

[1] सुजान रसखानि छन्द ६६, ५६, ५७, ६७, ६१, ६२, ६८, ६६, १३६, ६०, ५५, ५८, ६३।

[2] वही - छन्द १६७, १६६, १६२, १६३, १६४, १६८, प्रकीर्णक छन्द १, २।

है जो निमर्याद नहीं होती—'को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहि मान बच्यौ है।' कोई कितना भी रोके होली के पर्व पर प्रेमी-प्रेमिकाओं का उन्माद रुकता नहीं। होली अनेक अवगुणों का मूल है, रसिक सलोना रिझिवार बेहद ढिठाई करता है, हृदयहार तोड़ देता है, गोपिका के अंग-अंग में काम का संचार होता है, रंग गुलाल कुंकुम और बुक्के की धूम मच जाती है, धमार गीतों से सारा वायुमण्डल गूँज उठता है तरह तरह के तान छिड़ते हैं और चांचरें होती हैं कृष्ण क्या नहीं करते और गोपियाँ कौन सा आनन्द नहीं लूटतीं।

प्रेम के कुछ स्फुट प्रसंग—कृष्ण और गोपियों के नाना छोटे-छोटे प्रसंगों की भी रसखान ने उद्भावना की है[1] उदाहरण के लिए एक प्रेमिका है जिसका नया-नया प्रेम है। वह अपनी सहेलियों में खेल रही है, इशारे से प्रिय ने उनसे कुछ कहा। उधर प्रिय का संकेत इधर सहेलियों की उपस्थिति। मन दुविधा में पड़ जाता है परन्तु वह लोक-लाज का निर्वाह और प्रिय-कामना की पूर्ति बड़ी चतुरता से करती है, जँभाई लेने के बहाने वह चुटकी बजा देती है और प्रिय को विदा कर देती है। एक अन्य गोपिका है जिसने नई और मृदुल क्वणन करने वाली बिछिया पहन रखी है। उनकी बिछिया की झनकार ही उसे कृष्ण के निकट ला देती है पर नई नवेली गोपिका अपने नाम पर कलंक लगने के भय से दूसरे ही दिन वह बिछिया उतार देती है, उतार ही नहीं बेंच भी देती है। कृष्ण के निर्लज्ज भाव से खुल खेलने का और उस सलज्ज यौवना की भीत मनोदशा का ऐसा मर्मस्पर्शी बिम्ब यहां प्रस्तुत किया गया है—

> मारग रोकि रह्यौ रसखानि के कान परी झनकार नई है।
> लोग चितै चित दै चितए नख तें मन माहिं निहाल भई है॥
> ठोढ़ी उठाइ चितै मुसकाइ मिलाइ कै नैन लगाइ लई है।
> जो बिछिया बजनी सजनी हम मोल लई पुनि बेचि दई है॥

अब एक ढीठ प्रेमिका का चित्र देखिये जो इतनी निर्लज्ज तो नहीं कि प्रणय या अभिसार का खुला निमन्त्रण दे किन्तु इतनी ढीठ अवश्य है कि मिलन अभिलाषा से कृष्ण का सार्वनिक आवाहन करती है और स्वेच्छा प्रेरित स्पर्श-सुख लाभ करती है। बातों ही बातों में वह कहती है—हे नन्द के लाड़ले ! जरा मेरे सिर का आंचल तो ठीक कर दो, मेरा हाथ फंसा हुआ है—'नन्द के लाडिले ढाँकि दै सीस इहा हमरो कर हाथ भर्यो है।' एक छन्द में प्रेमिका और कृष्ण के गुप्त प्रणय का चित्रण बड़े ही मनोहर ढंग से पारिवारिक वातावरण के बीच किया गया है। कृष्ण दूर से कदाचित दूसरे की अटारी से छिपे छिपे-आये और किसी कुलवधू से उसकी अटारी पर मिले। प्रेम की बातें होने लगी। चित्त सत्रस्त है किन्तु प्रणय-व्यापार चल रहा है। इसी समय अचानक सीढ़ी चढ़कर सास ने बहू को आवाज लगाई। बेचारी की जान सूख गई। इशारे से बोली—'हे श्याम, अब सिधारो यहाँ खैरियत नहीं।' ये फुटकल प्रसंग समय-समय पर उठने वाले भावों के मूर्तरूप हैं।

प्रणय-केलि—सम्भोग शृंगार के अन्तर्गत प्रणय-क्रीडा का चित्रण करते हुए कविजन कभी-कभी अश्लील और नग्न चित्र भी प्रस्तुत करते पाए जाते हैं।[2] रसखान के भी कुछ छंद

---

[1] सुजानरसखानि : छंद ११६, १८८, ११०।
[2] वही - छंद ११८, १२०, १२१, १२२, ११६।

ऐसे हैं जो उनकी वासना परक प्रेम भावना का परिचय देते हैं—कहीं तो उन्होंने नायक अथवा कृष्ण की बरजोरी दिखलाई है कहीं प्रेमी युगल को एक दूसरे पर वशीकर मंत्र चलाते दिखाया है कहीं तरु-छाया में प्रेमी युगल को आलिंगन रत दिखाया है और कहीं प्रेमिका को अपने तनोद्यान में विहारार्थ निमंत्रित करते दिखाया गया है—

> बागन काहे को जाओ पिया घर बैठे ही बाग लगाय दिखाऊँ ।
> एड़ी अनार सी मौरि रही, बहियाँ दोउ चंपे की डार नवाऊँ ॥
> छातिन मैं रस के निबुवा अरु घूँघट खोलि कै दाख चखाऊँ ।
> ढांगन के रस के चसके रति फूलनि की रसखानि लुटाऊँ ॥

प्रणय के नाना मनोभाव—प्रेम का वर्णन करते हुए रसखान ने कृष्ण की अपेक्षा गोपियों में प्रेम भावना का विशेष विकास दिखाया है क्योंकि कृष्ण एक थे गोपियाँ अनेक। एक गोपिका कहती है कि यदि बहुत सी आँखें होतीं तो गोचारण करते हुए कृष्ण का सारा सौंदर्य आत्मगत कर लेती, यदि बहुत से कान होते तो उनकी अमृतमयी वाणी अपने वर्णपुटों में भर लेती। अच्छा होता यदि हमारा हृदय पृथ्वी का एक खण्ड होता जिस पर कृष्ण कछनी काछे हुए खेलते। एक अन्य गोपिका सतृष्ण भाव से उस दिन की प्रतीक्षा करती है जब वह घुँघचियों की माला बनाकर तथा मालती, मल्लिका और कुंद के फूलों के हार गूँथ कर किसी कुंज में अपने प्यारे कृष्ण को पहनायेगी। गोपियाँ नाना रूपों में कृष्ण के संसर्ग-सुख की अभिलाषिणी दिखाई गई हैं। यदि किसी की बदनामी हो जाती है तो भी उसे कोई पछतावा और नहीं होता बस वह यही सोचती है कि 'मो पछितावो यहै जु सखी कि कलंक लग्यो पर अंक न लागी'। गोपियाँ कृष्ण को पाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हैं वे हर रूप धारण करने को तैयार हैं। ये अभिलाषाएँ तरह-तरह से व्यक्त की गई हैं।[1]

गोपियों के कृष्ण के प्रति आसक्त होने का वर्णन भी विशद रूप से किया गया है।[2] रीझ के वर्णन में रसखान ने लिखा है कि प्रणयिनी गोपिका रात-दिन प्रियतम के ही ध्यान में डूबी रहती है—

> उनहीं के सनेहन सानी रहैं उनहीं के जु नेह दिवानी रहैं ।
> उनहीं की सुनैन औ बैन त्यौं सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
> उनहीं संग डोलन मैं रसखानि सबै सुख सिन्धु अघानी रहैं ।
> उनहीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आंखि मेरी अंसुवानी रहैं ॥

सच्ची रीझ तो वही है जिसमें एकाग्रता हो, एकोन्मुखता हो और हम देखते हैं कि रसखान की गोपिका की रीझ ऐसी ही है—'और तो रंग रह्यौ न रह्यौ इक रंग रंगी सोइ रंग रह्यौ री।' इस रीझ के मार्ग में जो भी बाधाएँ हैं ये रिझवार गोपियाँ उन्हें सहर्ष पार करती है—ताने, व्यंग, चुगलियाँ, निंदा, कुल और लोक की लज्जा। प्रेम की दीवानी गोपियों ने प्रिय की छवि को अंग-अंग में भर रखा था—रूप को आँखों में, मोहक वचनावली को अपने कानों में, सुगंध को घ्राणेन्द्रिय में और सांवली मूर्ति को अपने हृदय में। कृष्ण की

---

१ सुजानरसखानि छंद ८५, ८८, १३८, ७३, १२८।
२ वही : छंद ७४, ८३, ६१, ११२, ६०, १२६, १२६, १३६, ११२, १३२, १४४, १४५, १५६, ६२, ६३, १३६, १६८।

आसक्ति के बिना वे जग और जीवन सब कुछ व्यर्थ समझती थी। रीझना ही मानो उनका जीवन था, तप था, ध्यान था योग था, संयम था सब कुछ था। मानो वे इस संसार में रीझने के लिए ही पैदा हुई थी। यह उनका स्वभाव हो गया था जैसा कि उन्होंने कहा भी है 'मेरो सुभाउ चितैबे को माई' इस रीझ का कारण है प्रिय का प्रेम भरी दृष्टि से देखना, उनकी मुस्कराती हुई रूप छटा, उनका वेणु वादन आदि। कृष्ण की स्निग्ध दृष्टि और मुस्कान का बन्धन सैकड़ो लौह शृखलाओ से भी जबरदस्त है। रीझ या आसक्ति का यह मार्मिक एव विशद निदर्शन उस प्रेमाभिव्यजन का अग ही है जिससे रसखान का समग्र काव्य ओत-प्रोत है। स्वच्छन्दधारा के कवियों मे रसखान मनोलोक की पुनीत भावनाओं के चतुर चितेरे हैं। उनके काव्य मे रूप सौंदर्य और आंगिक आकर्षण के बावजूद भी प्रेम का पुनीत मानसिक पक्ष ही विशेष चित्रित हुआ है, कामोत्तेजक सभोगप्रधान कायिक अनुभूतियों एव आंगिक तृष्णादि की चर्चा बहुत कम है। उनमे जो चतुरता है वह गाढ अनुभूति की है किसी काव्यशिल्प या वाग्विधि की नही।

रसखान का समस्त काव्य प्रेम-भावना के माधुर्य से ओत-प्रोत है। उन्हे अपने जीवन में धन वैभव की प्रभूत राशि सुलभ थी किन्तु राजनीति की सिर पर लटकती हुई तलवार का भय निरन्तर बना रहता था। रसखान ने ऐसे जीवन से फकीरी को बेहतर समझा और वे कृष्ण प्रेम मे मग्न हो व्रज-भूमि चले गये थे। वहाँ कृष्ण के प्रेम मे वे वैसे ही निमग्न हो गये जैसे कि गोपियाँ। रसखान का मन कृष्ण-प्रेम से मनोज्ञ हो उठा था। वे व्रज के मधुर और वासती जीवन का राग गाने वाले कोयल थे, घनश्याम पर रीझने वाले कलापी थे। उनका मन श्याम रग मे डूबकर उज्ज्वल हो उठा था। वे जीवन के लौकिक प्रणय से वि-क्ति रखकर मात्र ईश्वर-भक्त न थे। प्रेम उनकी मूलवर्ती चेतना थी। उनके काव्य में कृष्ण प्रेम के केन्द्र अथवा देवता के रूप मे अधिष्ठित है इसके कारण उनकी रचना अति शृगारिक होने से बच गई है किन्तु उसका एकदम अभाव नहीं होने पाया है। इसका मूल कारण यही है कि वे लौकिक मनोभावों की, सहज ऐन्द्रिक अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति को स्वाभाविक ईहा मानते थे इसी कारण उनके काव्य मे गोपियो की, कृष्ण की ऐन्द्रिक ईहाओं की आकाक्षा व्यक्त हुई है। इच्छा, उपलब्धि, उपलब्धि का सुख और अनुपलब्धि का दुख यही तो प्रेम है और इन्ही भावनाओं का विस्तार रसखान मे नाना रूपों मे सुलभ है। मन की शत शत वृत्तियो का समधुर प्रकाश रसखान के छदो से विकीर्ण हो रहा है। मन की ये प्रकाश-रश्मियाँ अरुद्ध गति से फूट रही हैं, इसी कारण उनका प्रकाश प्रत्येक हृदय मे समा जाता है। हृदय की मुक्ति उनके काव्य का सौंदर्य है। उसमे असहज और कृत्रिम कुछ नही। जो अन्दर है वही बाहर है। मन की यही स्वच्छन्दता और निर्बंधता स्वच्छन्द शृगार प्रवृत्ति की पहली शर्त है। रसखान इसे भली भाँति पूरा करते हैं।

आलम का संयोग वर्णन

आलम के समस्त काव्य का मूल विषय प्रेम ही है जिसमे व्रजभूमि का पावन वातावरण समृष्ट हुआ है—यमुना, निकुज और व्रज वीथियों की चर्चा आई है, मन को मोह लेने वाले प्रेम के बंधन हैं, एक दूसरे के प्रति कहा सुनी और उलाहने हैं, गाँव घाट की बातें हैं, रूप का आकर्षण है। कोई रूप पर रीझ रही गोपिका है तो कोई रग पर, कोई चितवन

पर लट्टू है तो कोई विहँसन पर कोई उनके वेणु वादन पर विमुग्ध है तो कोई मोहिनी पर। तात्पर्य यह कि कृष्ण के पास मोहने वाले उपकरणों की कमी नहीं और उधर मुग्ध होने वालों का भी कोई अभाव नहीं। कृष्ण की अचगरी ने किसे तंग नहीं कर रक्खा है पर मुग्ध वे भी हैं। उनके उपालम्भ और रोष-कथन परिवर्तित रूप में प्रेम कथन ही हैं। कभी ककड़ी मारकर कृष्ण खिसक गये, गोपिका की आँख बाल बाल बच गई, कभी किसी गोरस बेचती हुई गोपिका का रास्ता रोक लिया, कृष्ण के शरारतों के यही सब ढंग हैं। इन समस्त वर्णनों में एक भोलापन है, एक सरल स्वच्छन्दता है जिसमें आलम की रचना में भावगत उत्कर्ष आ गया है।

कृष्ण कम उम्र में ही एक अधिक वय वाली परिपूर्ण यौवना गोपिका से कुछ अपने हृदय की प्रेम पीडा कह चलते हैं। वह उम्र में बड़ी थी और अनुभव में भी इसलिए एक मीठी सी फटकार सुनाती हुई बढ चलती है—

> भोरो बैस राखो जिनि भुरये हो साँचो नहीं,
> काँचो प्रीति जानो जहाँ कहूँ नैना लगि हैं।
> अजौ मति भीजो नहीं ऐसी मन बसी बातें,
> खोलो ठोलो हासी के कन्हाई दिन आगे हैं॥

बढती हुई आयु में उठने वाली इस प्रकार की भावना और उसके लिए दी जाने वाली यह मधुर फटकार शाश्वत है और उसकी यह शाश्वतता ही हमारे मनस्तत्व को स्पर्श करने वाली है। कृष्ण एक गोपिका पर आसक्त हैं पर वह गोपिका भी उन पर कम आसक्त नहीं, अंतर इतना ही है कि कृष्ण लोक का भय छोड़े हुए हैं और गोपिका लिए हुए। वह कृष्ण को समझाती है—मैं जानती हूँ कि तुम्हारा मन तुम्हारे हाथ अब नहीं रहा, तुम निडर होकर मेरे पास खड़े रहते हो या अगल-बगल बैठकर उसाँसें लेते रहते हो। प्रेम के पथ में तो दुख के काँटे रहते ही हैं, उन्हें पारकर लेने पर हम दोनों का मिलन तो होना ही है पर मेरे पास अभी जरा कम फटका करो क्योंकि यदि कोई देख लेगा तो क्या होगा। यहाँ पर गोपिका के मन में जो लोकापवाद का भय है वह नितांत स्वाभाविक है। उक्त दोनों प्रसंगों में आने वाली गोपिकाएँ प्राप्तवय ज्ञात पडती हैं।[1]

एक चित्र है जिसमें एक गोपिका शृंगार करके अपने घर में दीपक लेकर नंद-भवन में दीपक जलाने आती है। ज्योति से ज्योति जुड़े इसके पहले ही उसकी आँखें कृष्ण की आँखों से जा जुड़ीं। उस मतिमारी और आत्मविस्मृत गोपिका ने बाती की जगह अपनी उँगली ही जला ली। सब कुछ पा लेने पर सब कुछ भूल जाने का यह कैसा प्रेम भरा चित्र है, देखिए—

> जोति कों जुरति जोति आगे नैना जुरे आइ,
> बातुरी अचेत भई चितयो कन्हाई है।
> बाती रही हाती रसमाती छवि छाती पूरि,
> पाँगुरी भई है मति आँगुरी लगाई है

[1] आलमकेलि छन्द ६८, ६६।

एक अन्य गोपिका है जिसकी अभी नयी-नयी ही कृष्ण से प्रीति जुटी है। वह उसे पूर्णतः गुप्त रखना चाहती है। जब उसे अपने हृदय से लगाकर पूर्ण आत्मीयता जताती हुई उसकी धाय ने पूछा कि क्या तुम्हें प्रेम हुआ है तो भी उसने उसे जाहिर न होने दिया, वह प्रेम के उन बेशकीमती आँसुओं को पी गई। वह अपने प्रेम के प्रति कितनी सच्ची थी। प्रेम तो दो के बीच का व्यापार है, उसमें तीसरे की गुंजाइश कहाँ?

हँस हँस देइ बोले बोले औ न खोले बैन,
बातें पहिचानी कछु थोरी थोरी ह्वै गई।
आलन कहै हो याके हिये की पीराई देखो
हँसे के दुराई नाई प्रीति कान्ह सौं नई।
सबै अनमनी हुती अंसुवा भरति छाती,
औचक ही धाइ धाइ भुज भरि ह्वै लई।।
पूछे निहि अंसुवा कहे हो? कहै हँसे आँसू,
पलकै पखारि दई पुतरीनु पी गई।।

प्रेम में फँसने का मार्मिक प्रभाव देखिये। जब से गोपिका कृष्ण से अचानक भेंट करके आई है उसकी छाती काँपती रहती है, वह खरिक में दूध दुहने गई, वहाँ से भी दोहनी फेंक कर प्रकंपित शरीर लिये चली आई। ऐसे प्रेम से बँधते हुए मन और तन का चित्र-र्ण किये—

धावत तराइल सी मानो बरसाइल सी,
बार बार बाइल सी घूमनि घरिक ते।

जो गोपिका गागर लेकर जल भरने जाती है वह गागर तो छोड़ आती है पर कृष्ण के रूप-रस से अपने नैनों की गागर जरूर भर लाती है—'रूप रस प्यासी भई कान्ह तन डीठि दई, गागरि भरन गई नैना भरि लाई है।' ये गोपियाँ रीझती और आसक्त होती हैं कृष्ण के रूप पर, अंग प्रत्यंग पर, आचरण और उनके क्रिया-कलापों पर, यहाँ तक कि हँसने, बोलने, देखने और मुस्कराने पर। कृष्ण की मोहक शक्ति, उनका वेणुवादन, रास और रासरस के नयी अन्यान्य बातें भी गोपियों के आकर्षण का अवलम्ब हैं। कृष्ण जाते हैं और जाते-जाते एक बार मुँह मोड़कर उसे देख जाते हैं, बस इतने में ही उनके रूप का चित्र उसे चढ़ जाता है तथा उसके प्राणों को जैसे वे मुग्ध कर ले जाते हैं। कृष्ण का अतीव रूप सौंदर्य गोकुल की कुलीन से कुलीन कन्या के लिए और सती से सती कुल वधू के लिए एक खुली चुनौती था—'मोरी करि भौंरे भौंह मोरि माहो खोरि नखौं, नेकु मुख मोरि कै मरोरि हिय लै गयो।' गोपियों का स्वतः भी यही विचार था कि हमारा सदाचरण अथवा अभिमान तभी तक ठहर सकता है जब तक हम कृष्ण की गली तक नहीं जाते, वहाँ उनके पास पहुँचने पर यह सब तिरोहित हो जाता है। एक नवीन प्रेमिका से एक अन्य अनुभवी प्रेमिका कहती है कि अभी तो तेरी प्रेम-वेदना की पहली ही घड़ी है। यहाँ तो वर्ष पर वर्ष इसी तरह बीत गये, जरा सोच समझ कर इस पंथ पर पाँव देना। गोपियाँ आपस में कृष्ण की छेड़खानियों की चर्चा करती हैं—वह नम्बरी शरारती है, पास चला आता है और धक्का दे देता है, ऊपर से हमीं से 'लगराई' करता है, हमारा कहना लेश मात्र भी नहीं मानता, बस अपना

ही करता है और डरता किसी को भी नहीं । अपने शरीर को नृत्य की मुद्रा में चपल करता हुआ समीप आ जाता है मना करने पर भी दूर नहीं होता, सहसा मटकी छीन कर फोड़ देता है और वस्त्र खोचने लगता है, मेरी लटें बिखर कर अस्त व्यस्त हो जाती हैं और वस्त्र भी। बस मेरी भुजा पकड़कर आँखो में आँखें टिका देता है तथा एक क्षण इसी प्रकार देखते रह कर सटक चलता है । बस उसकी इतनी सी शरारतो मे मैं भूल भटक जाती हूँ । परंतु कृष्ण की इन शरारतो से गोपियो की आसक्ति कम होने वाली न थी, उनकी खीझ में भी उनकी रीझ अंतहित है । गोपिका की आसक्ति ऐसी है कि उसका जी ही नही अघाता । इस अतृप्ति मे ही उसके आकर्षण प्रेम और रीझ का वास्तविक सौन्दर्य निहित है । जब दोष ही प्रेम के कारण गुण प्रतीत होने लगे तब समझ लेना चाहिए कि रीझ अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है । रीझ का पथ ही न्यारा है । प्रिय के दुर्गुणो पर प्रेमी ध्यान नही देता, चकोर चन्द्रमा के कलक की परवाह नहीं करती भौंरा फूल के काँटो की फिक्र नही करता । रिझवार गोपिका भी कृष्ण की श्यामलता मे उज्ज्वलता के दर्शन करती है, कृष्ण को काला कहना गँवारपन है—

कारो कान्ह कहत गँवारी ऐसी लागति है,
मोहि वाकी स्यामताई लागति उज्यारी है ।
मन की अटक तहाँ रूप को बिचारु कहाँ,
रीझिबे को पैंडो तहाँ बुझि कछु न्यारी है ॥

अनोखी चितवन का प्रभाव[1]—गोपिका कहती है कि हे माई ! कृष्ण की चितवन हृदय की शलाका ऐसी सालती है तथा चित को दहती है—'पलक तै न्यारी कीनी नींदऊ बिडारि दीनी, निसि दिन नैननि मैं बैरी बैठोई रहै ।' एक अन्य गोपिका कहती है कि मेरा मन उनकी चितवन के कारण जैसे मेरा मन नही रह गया है, पलकें लगती नही तथा नेत्र हमारे कुछ और हो गये है । बात क्या थी ? बात इतनी सी थी कि धोखे से कृष्ण एकाएक लटपटी पाग पहने हुए एक दिन सुबह-सुबह आ गए और उसने उन्हे एक नजर देख भर लिया था । कृष्ण की एक चितवन प्रेम-मूर्ति गोपिकाओ के सर्वस्व हरण के लिए पर्याप्त है, वे पूरी तरह उनके आधीन हो जाती है, उनके हृत्स्पदन की गति महातीव्र हो जाती है और उनकी धमनियो का भी धीरज खो जाता है—

धीरे हो तें धाय धुकि आलम अधीन करि,
हिये धक धकी है न धीरजु है धौंनी मैं ।
अचल को ओट मैं दृगचल लगाइ नेकु,
मोहि गयो मोहि सखी चपल चितौनी मैं ॥

बाँसुरी का प्रभाव[2]—बाँसुरी कृष्ण की सम्मोहन-शक्ति का एक अश है । उसके प्रभाव से गोपियाँ अपने आपको बचा नही सकती । आलम की उक्तियों मे मुरली गोपियों का विरह वर्धन करने वाली तो है परन्तु उनकी ईर्ष्या का विषय नहीं । बाँसुरी की ध्वनि अचानक गोपिका के कानो मे पड़कर उसकी मूर्च्छा का कारण हो जाती है, उसका चित्त पर

---

१ आलमकेलि . छद १३८, १४१, १४३

२ वही : छद १२७, १५७, १४७, ३८७, ३६०, १४२, १२६ ।

विचित्र प्रभाव पड़ता है। एक गोपी झरोखे में कृष्ण को वंशी बजाते देखती है। कानों से वंशी-स्वर सुनकर और आंखों से उनका रूप देखकर उसकी मति विकल हो जाती है, उसे हर दम यही लगता है जैसे कोई सपना देख रही हो अथवा किसी ने उसे 'ठगमूरी' देकर अपने वश में कर लिया हो। गोपियों को मोहने के लिए मुरली कृष्ण का एक बहुत बड़ा अस्त्र थी। कभी किसी को नजदीक से दृष्टि डालकर देख लिया फिर दूर जाकर वंशी के स्वर लहराने लगे। बस इतने में ही गोपियों के मन-प्राण ऊब-डूब होने लगते थे। किसी की सुध-बुध भूल जाती थी तो किसी के प्राण कृष्ण में अटक रहते थे। कृष्ण प्रायः बाँसुरी या तो वन में बजाया करते थे या वन से लौटते हुए या फिर किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना हुआ तो गलियों से गुजरते हुए घर के झरोखों के आस-पास। यह सब साभिप्राय ही होता था, गोपियाँ सारे कार्य छोड़कर उनके प्रति आकृष्ट हो जाती थीं। मुरली की दी हुई मनोव्यथा कितनी ही क्यों न हो गोपियाँ उसका स्वागत करती थीं—

पावन दै गोर प्रेम धावन दै पूरो नेह,
आजु ही ते जरनि जुन्हैया हू सों जागी है।
मेरो जो न कह्यौ मानै मेरियै बलाय जानै,
जागन दै लाइ याहि लागन दै लागी है॥

प्रिय की शरारतें[1]—कृष्ण कभी गोरस दान के बहाने कभी किसी अन्य ब्याज से गोपियों का रास्ता रोककर खड़े हो जाते हैं। गोपियाँ कहती हैं—हे कृष्ण, हमें रास्ता दे दो हम जाँय, बसेरा हमारा दूर है फिर हम युवतियाँ हैं हमें समय पर घर पहुँचना ही है। लो दही ले लो और हमें जाने दो, व्यर्थ मत छेड़ो। तुम जो रस चाहते हो वह हमें नहीं मालूम, आखिर हम सब गँवार गूजरी ही तो ठहरीं। तुम जैसे अच्छे छबीले छैल हो वैसी ही अच्छी और छबीली बालाएँ अभी पीछे और भी आ रही हैं उन पर रीझो, वे भी तुम पर रीझेंगी। अपनी मुक्ति के लिये गोपिका का यह बहाना कितना सुन्दर है, वह दधिदान करती हुई समर्पण कर रही है, रास्ता देने के लिये विनय कर रही है और तरह तरह से आत्म रक्षा के उपाय भी। इस प्रकार के चित्र पर्याप्त मनोहर हैं। कृष्ण कभी किसी रास्ता चलती गोपिका को कंकड़ी मार देते हैं वह भी चुपचाप चली नहीं जाती, उसकी 'वचन-लोलुपता' उसे कृष्ण से तरह तरह की बातें करने को प्रेरित करती है। इसी प्रकार एक और अनखाई हुई गोपिका अपने हृदय का पट इस प्रकार खोलती है—

हौं उनही जु कह्यौ सु कह्यौ इन का कहिहैं तुम ही पहिचैहौ।

एक भोली गोपिका कृष्ण की अचगरी चुपचाप सह लेती है पर बाद में उसे पछतावा होता है कि मैंने कुछ कहा क्यों नहीं। दूसरी को इस बात का पछतावा रह जाता है कि कृष्ण ने शरारत की तो की लेकिन मैंने उन्हें भला बुरा क्यों कहा। अन्य रूपों में भी इस संदर्भ में गोपियों का प्रेम व्यक्त हुआ है उदाहरण के लिए एक दिन एक गोपिका के साथ कृष्ण कुछ दूर तक रास्ते में साथ हो लेते हैं बस इतनी ही बात की चुगली चारों ओर होने लगती है। इस लोक-निंदा ने गोपिका के प्रेम को और दृढ़ कर दिया। कृष्ण जिसे एक बार

---

[1] आलमकेलि : छंद १९५, ३८०, ३८५, ३८४।

हँसकर देख लेते है वह अपना जीवन धन्य समझती है और कुल मर्यादा की अवहेलना करती हुई कहती है— **आलम नैननि रीति यहै, कुल कानि तजौ कुल री मुँह मे मसि ।'**

दर्शनाभिलाषा[1]—इन गोपियों मे 'दिगसाध' बड़ी प्रबल थी, एक की तो यह हालत थी कि उसे कोई कितना ही बुरा-भला कहे वह बीस बहाने करके नन्द भवन हो ही आती थी। कभी दूध या दही माँग लाती थी और फिर थोड़ी ही देर मे आग माँगने के बहाने चली आती थी। लड़ाई, रोष या उलाहने के रूप मे यदि कोई कुछ कहता तो बार बार आकर बीसों बहाने बता जाती थी, कारण यही था कि **'कौनहु भाँति कछु छिन कान्हह जो अँखियाँ भरि देखन पैये ।'** इस प्रकार तरसती हुई ब्रज मे कितनी ही गोपिकाएँ थी, कुछ एक दो थोड़े ही। बहुतेरी ऐसी भी थी जिन्हे कृष्ण सपर्क का पूर्ण सुख प्राप्त था। आँख भर देखने की ललक रखने वाली एक गोपिका कहती है—**'मैं सखी रूप की छाँह सी छ्वै कबहूँ अँखियाँ भरि कान्ह न देखे ।'** जिसे एक भी बार समीप से भर आँख देखने को कृष्ण कभी नही मिले थे वह इस बात को सहर्ष सह सकती थी कि एक बार कृष्ण उसे देखकर अन्य सौभाग्यशालिनी गोपियों को देखने लगें लेकिन लोक की निंदा उसे असह्य थी। सही बात है, लोक की निंदा वही सह सकती है जिसे प्रिय के 'दरस-परस' का सुख मिला हो या मिलता रहता हो। एक गोपिका का रोना यह है कि वह जी भर कर अपनी आँखो से कृष्ण को देख भी नहीं पाती क्योंकि उसके आँसू उसे प्रिय को देखने ही नहीं देते—

> **कान्ह मिलें तो मया करि चाहत हौं न कछू जिय हू की सुनाऊँ ।**
> देखन को अँखियान महासुख जो अँसुवानि सौं देखन पाऊँ ।।

प्रेम कथन[2]—आलम के स्वच्छन्द प्रेम-वर्णन मे वे अश पर्याप्त मार्मिक और मोहक बन पड़े हैं जिनमे गोपियाँ स्वय अपना प्रेम कृष्ण के प्रति व्यक्त करती हैं। ऐसे कथनों मे दो प्रकार के भाव मुख्य हैं एक तो यह कि 'कृष्ण तुम बहुत निठुर हो' दूसरे यह कि 'हमारी दशा देखो'। पहले प्रकार के छन्दों मे कृष्ण से प्रगल्भतापूर्वक उनकी निठुरता बताई गई है और दूसरे प्रकार के छन्दों मे बड़ी मार्मिकता से गोपियों ने पुरानी यादें जगाते हुए आत्म-दशा निवेदन किया गया है।

गोपियाँ कृष्ण की प्रीति-रीति पर जब तक व्यंग करती हैं—तुम प्रेम का नाता सभी से जोड़ लेते हो लेकिन निभाते किसी किसी के ही साथ हो। एक ही पुर मे बसकर भी तुम हमारी खबर नहीं लेते। यदि कृष्ण कभी उसके यहाँ जाते तो वह उनका स्वागत इन शब्दों मे करती—

> भली कीनी भावते जू पाँव धारे याहि खोरि,
> अनत सिधारे कि बसत याही पुर हौ ।।
> निकट रहत तुम एतो निठुराई गही,
> अब हम जाने तुम निपट निठुर हौ ।।

कृष्ण कभी किसी गोपिका से कतराकर चल देते थे, जब उसमें नहीं रहते बनता तो कुछ कहने का उनसे साहस करती है और कुछ पूछने का भी। कहती यह है कि यमुना से

---

[1] आलमकेलि : छन्द ३८३, ३८६, ३८२।
[2] वही · छन्द १७७, १७८, १८१,१८४, १८२, १८३,१८५, १८७।

लौटती हुई जब मैं तुम्हें यमुना की ओर जाते देखा है मेरा शरीर अन्दर ही अन्दर दहता रहता है। ये क्या बात है कि ऊपर मुँह उठाकर देखते ही नहीं, नीचे ही नीचे मुँह किये चले जाते हो। कोई कहती है कि मुड़कर मुस्कराते हुए तो तुमने हमारा मन ही मरोड़ दिया, कोई कहती है कि तुम्हारी एक चितवन ही मेरे जीवन की सब बुद्धि हो गई है। इस प्रकार के वचनों द्वारा गोपियों का प्रेम नाना रूपों में फूट पड़ा है।

संभोग वर्णन[1]—आलम ने अनेकानेक छन्दों में संभोग की स्थितियाँ भी वर्णित की हैं। किसी में अभिसारोद्यत प्रणयिनी का वर्णन है तो किसी में उसकी अभिसार-लीला का। इस प्रकार के छन्दों में आलम अपनी मौज में बहे हैं, लोक परलोक उनके ध्यान से ओझल हो गया है। उन्होंने राधा और कृष्ण के संभोग-व्यापारों के अनेकानेक अश्लील चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनकी अतिशृंगारिक वर्णना में उनके अतियुवा हृदय की सच्ची उमंग देखी जा सकती है तथा उनके अदमित चित्तवृत्ति का उन्मुक्त प्रवाह भी—

(क) अलि कान्ह लता-वनिता मधि मैं मधुपान कियो मन भौंत सनै।
कवि आलम मध्य मुचे सकुची, गति उर्द्ध करी भ्रकुटी रिस मैं॥
छवि नील निचोल उरोजनि त्यों मनश्यो परिरम्भन के मिस मैं।
कनकाचल शृंग प्रकासन कों रवि को कर दौरि परौं निसि मैं॥

(ख) पिय पानि कुचप्पर दै तिय के झलके नख मंजुल जोति जगै धरि।
सम्भु के सीस सरोरुह के दल छोरनि मानहु धोम रह्यो टरि॥

(ग) एक समै सग प्रान प्रिया ज रमै नन्दलाल ब्रजकहि जू।
छनु कंठ चली बरबाल की आलि दुरे वर नायक अंकहि जू॥
धाइ गही कबरी कर तैं अधरम्पुट देत निसंकहि जू।
अहि के मुख तै मनो लेन छुड़ाइ ज्यों गारड मैन मयंकहि जू॥

यह ठीक है कि ये तथा ऐसे अन्य वर्णन असंयत-भोग-वासना के प्रकाशक हैं तथा इनमें भोग की उन्मद धारा बड़े वेग से बही है और राधा-कृष्ण के प्रेम को अत्यन्त भौतिक धरातल पर उतार दिया गया है किन्तु सभी प्रकार से निर्बन्ध स्वच्छन्द कवि इस क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतन्त्र रहे हैं। आलम ने इस प्रकार के वर्णनों में अपने चित्त की स्वच्छन्दता का परिपूर्ण प्रकाशन किया है। अकुंठ चित्त से उन्होंने जो कुछ कहना चाहा है कहा है। प्रेम का स्वच्छन्द चित्रण करते हुए उन्होंने सूर आदि पूर्ववर्ती ब्रजभाषा कवियों का पर्यानुसरण ही किया है परन्तु उसमें चित्तगत स्वच्छन्दता अपनी मिलाई है और इसी दृष्टि से उनकी श्रेष्ठता है। सहज प्रेम के चित्रण में ब्रजभूमि के वातावरण का सहारा लिया है और गोपीकृष्ण प्रेम के बहाने अपने हृदय की मधुर भावना को व्यक्त किया है। उनकी वर्णन शैली में अपनापन है जिसकी सहज स्वाभाविकता उनकी कविता को हमारे मर्म के निकट पहुँचा देती है। यह बात गोपियों की प्रेम प्रेरित उक्तियों में भी है तथा समूचे प्रेम-वर्णन में भी।

---

[1] आलमकेलि छन्द : २७८, २३, २६, २३, ३३२, ३३६, २७१, २७७, २७६, २७४, २७५, ३६६, ३६०, ३६२, ३७०, २८४, २८८, २६३, ३१६, २८३, २६६, २६६, ३०४, ३०६, ३०७, ३५६, ३६१, ३६२, ५४, ३०३, २८६।

घनआनन्द का संयोग वर्णन

घनआनन्द के काव्य में संयोग पक्ष का वर्णन बहुत कम है परन्तु जो कुछ है उसे देखने से प्रतीत होता है कि कवि को सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य स्थापित करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। अत्यधिक अवसर इस प्रकार के लब्ध न हुए हों परन्तु ऐसे अनेक प्रसंग उनके अल्पकालीन संयोग में अवश्य प्राप्त हुए थे जिनका उन्होंने पूर्ण लाभ उठाया था। कदाचित यही कारण है कि उस सुख की बड़ी मादक स्मृतियाँ और संभोग स्थिति के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र व प्रस्तुत कर सके हैं। लगभग ५०० छन्दों के सुजान प्रेम विषयक विशद काव्यराशि में केवल २०-३० छन्द ही संयोग वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं, सुजान के रूप सौंदर्य और उस पर घनआनन्द की रीझ का वर्णन करने वाले छन्दों की संख्या अवश्य बड़ी है। शताधिक छन्दों में सुजान के रूप का आकर्षण वर्णित हुआ है जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं।

संभोग-वर्णन—संयोगावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने पूर्व संभोग, संभोग और परसंभोग स्थितियों का चित्रण किया है।

पूर्व संभोग—सर्वप्रथम संयोग वर्णन के प्रसंग में आसन्न संयोग के सुख का उल्लास देखिये जिसमें रोम-रोम में उमंग है और आनन्द का सिंचन है, अंग-अंग से उल्लास फूटा पड़ रहा है—

> ललित उमग-बेली आल-बाल अन्तर लै,
> आनन्द के घन सींचौ रोम-रोम ह्वै चढ़ी।
> आगम-उमाह चाह छायौ सु उछाह रग,
> अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
> बोलत बधाई दौरि दौरि के छबीले दृग,
> दसा सुभ सगुनौती नीके इन है पढ़ी।
> कंचुकी तरकि मिलै सरकि उरज, भुज,
> फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी॥

संभोग-पूर्व स्थिति के चित्रण में पहले तो कवि ने अपनी सामीप्य लाभ और संसग की लालसा का वर्णन किया है, अपने हृदय के अन्तरतम की अभिलाषाओं को व्यक्त किया है और बताया है कि कामार्त पुरुष कितना दीन हो जाता है, स्थूल अंग-भोग की लालसा से प्रमत्त हो क्या कुछ करने को प्रस्तुत नहीं हो जाता। वे परमदीन होकर हाथ जोड़कर आँखें नीची करके सुजान के आज्ञानुवर्ती अनुचर बन जाने को तैयार हैं क्योंकि उनकी यह परम लालसा है कि वे सुखदायिनी सुजान के समीप रहने का अवसर प्राप्त करें—

> उर आवत है अपने कर ह्वै वर बेनी बिसाल सों नीके कसौं।
> हित-पायनि ह्वै चित चाहन नै नित पायनि ऊपर सीस घसौं॥

स्थूल वासना प्रेरित मनोदशा का यह चित्र कितना जीवन्त है। अनेक बार उन्होंने सुजान के पैरों पर अपना सिर रख देने का भाव लालसा या रीझ या प्रीति की अतिशयता दिखलाने के लिए प्रस्तुत किया है। इससे उनकी शारीरिक तृषा और क्षुधा के साथ-साथ मानसिक आत्मसमर्पण का भी पता चलता है। यह सब घनआनन्द निःसंकोच लिख गए हैं

क्योंकि वे कुछ छिपाना नहीं चाहते थे। सुजान के अंग अंग से बरसते हुए रूप, रंग, रस और गुण के प्रति वे अपना क्या कुछ निछावर करने को तैयार नहीं थे। अपनी सबसे मूल्यवान सम्पदा मन को उन्होंने उसके प्रति निछावर कर दिया था, बदले में वह प्रेम की क्या चार गालियाँ भी दे देती तो घनआनन्द धुरा ही जाते—'प्यारी मन पगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करैं।' इस सीमा तक पहुँची हुई रीझ का चित्रण दूसरा कौन कवि कर सकता था। रीति-बद्ध कवि तो इस अनूठे प्रेम पन्थ पर जा भी नहीं सकता था। प्रणय में कामना और वासना जनित यह दैन्य अपनी समूची यथार्थता के साथ घनआनन्द के काव्य में अवतरित हुआ है, इस भाव में कोई सदाचारी हीनता देखे तो देख सकता है पर साथ ही साथ कवि की अपने प्रति, अपने प्रेम के प्रति अपने प्रिय के प्रति ईमानदारी और वफ़ादारी भी देखने लायक है। इसके ऊपर से जब सुजान ही काम और यौवन से उन्मत्त नज़र आ रही हो तब तो प्रेमी की अन्त-र्दशा का कहना ही क्या।[1] उसके यौवन के नशे से छकी हुई मति, प्रेम भरी चितवन की छाप से अंकित चित्त और टकटकी बाँधे हुए नेत्र कवि की मनोदशा भली भाँति व्यक्त कर रहे हैं। सुजान की आतरिक दर्प से भरी मुस्कान को अधरों और कपोलों पर खिलता देखकर, अंजन-अंजित बड़ी बड़ी आँखों की नशीली चितवन और सौभाग्य-दीप्त भाल को देखकर घनआनन्द उसके अनु-राग को पहचान लेते हैं। ऐसी सुजान को समीप पाकर कवि ने उसके अंग-अंग की ललक और प्यास का चित्रण किया है।[2] कामोद्रेक के सूचक स्वेद बिन्दुओं को उसके मुख पर ढरका हुआ देखकर प्राणों की ईर्ष्या, सामीप्य लाभ की तृषा, मोह-मदिरा में छक कर उसे व्यंजन झलने और चुम्बन करने की अरोक ललक ऐन्द्रियता लिये हुए है, इसके बाद चिबुक को पकड़ कर नैकट्य स्थापन की कामना और केलि की इच्छा से दाँव ताकने की बात भी कही गई है। यह तो हुआ पुरुष पक्ष का चित्र, उधर कामिनी पक्ष में प्रतिक्रिया इतनी प्रखर न होते हुए भी पर्याप्त अनुकूल है जो स्त्रियोचित भी है और स्वाभाविक भी। वह सलज्ज भाव से देख रही है (वर्जन नहीं कर रही), अपनी चितवन से अपना प्रेम जाहिर कर रही है और अपनी हँसी की वर्षा द्वारा घनआनन्द को सींचे दे रही है। उसकी ये मुद्राएँ खुले आमंत्रण से कम नहीं।

संभोग—साक्षात संभोग के वर्णनों में कवि ने एक छंद में सुजान के माधुर्य पूर्ण और प्रसन्न मुख मण्डल, चंचल और विशाल नत्रों की लाज भीनी चितवन तथा काम की तरंगों में बहकर रस के वश में होकर आलिंगन करने और अपनी ललक मिटा चुकने के बाद शिथिल पड़ जाने का सांकेतिक चित्रण किया है। दूसरी जगह पर्यंक पर शयन करने और सुरति-रस लूटने का अकथित कथन हुआ है, आभरणादि उतारने, अंगों के सम्हालने और ठौर-ठौर रखने तथा नई-नई अभिलाषाओं के जाग्रत होने, रस में भरकर झूमने, एक दूसरे को भली भाँति ग्रहण करने और चूमने का कथन हुआ है—अन्य बातें अकथित रहकर भी कथित सी हो गई हैं। एक तीसरा चित्र है जिसमें फागुन की रात्रि में यौवन के रंग में भरे हुए काम की तरंगों में बहते हुए अंगों में अंग मिलाकर न सोते हुए प्रेमियों का चित्रण हुआ है।[3]

---

[1] सुजानहित : छन्द १५३, ३६२।
[2] वही : छन्द २३१।
[3] वही : छन्द ३१, ७०, ४८७,।

परसंभोग—कुछ चित्र पर संभोग दशा के हैं[1]। इनमें होली की निशा के संभोग-सुख के अनन्तर अपने वस्त्रों को ठीक करती हुई होली के रंगों और रति के चिन्हों को पोंछती और मिटाती हुई प्रसन्न वदन प्रेमिका का चित्र है, रात्रि की रति क्रीडा से श्रम शिथिल सुजान की सोती हुई अवस्था का चित्र है जो बहुत ही प्रभावशाली और चित्रात्मक है—

> मद-उन्माद-स्वाद मदन के मतवारे,
> केलि के अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं।
> भुजनि उसी सौं धारि अंतर निवारि,
> जानु, जघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं।
> सघने सुरति पागे महा चोप अनुरागे,
> सोए हैं सुजान आगे ऐसे भाव-भोए हैं।
> छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
> भरे रस-सार घनआनन्द अहो ए हैं॥

पर-संभोग दशा के अन्य चित्र इस प्रकार हैं— प्रेमिका अतिशय रस से उत्पन्न आलस्य में भीगी हुई है, अभी-अभी सोकर उठी है, मुख पर प्रसन्नता और तृप्ति की आभा है, अलकें मुख पर बिखरी हुई है, वह अंगड़ाइयाँ और जमुहाई ले रही है। नेत्रों में उसके लज्जा का भाव है, अंग अंग से अनंग की दीप्ति उठ रही है। जो कुछ बोलती है आधा अधरों से स्फुट होता है, आधा अस्फुट ही रहता है। उधर चेहरे पर एक मस्ती भी झलक रही है। रति-रंग में अनुरक्त, प्रीति में पगे हुए, रात्रि के जगे हुए नेत्रों की नाना भावमयी दशा भी देखने योग्य होती है—ये नेत्र नींद के बोझ से झँपे जाते हैं, काम-क्रीडा में ये कभी उमगित होते हैं और कभी शिथिल और जड हो जाते हैं, पलकों पर पीक की लीक झलक रही है और नेत्रों में उन्माद या खुमारी भरी हुई है। सुजान के ये सुखद नेत्र घनआनन्द के प्राणों का पोषण करते हैं। आश्चर्य की खान है ये नेत्र जो खुले होकर भी लज्जा से ढके हुए हैं। ये वर्णन परम्परागत वर्णनों से मिलते जुलते हैं, कथन-पद्धति अवश्य कुछ भिन्न है तथा चित्रात्मकता भी विशेष है। रात्रि काम-क्रीडा में व्यतीत कर प्रेम में पगी हुई सुजान प्रातः जब अंगड़ाई लेती है उस समय उसके मुख की कांति देखने योग्य होती है। उसकी आँखों में संभोग-जन्य तृप्ति की जो अरु-णिमा है उसे देखकर हृदय उसके अनुराग में डूब जाता है। संभोग-सुख से उत्पन्न स्वेद के कण उसके मुख पर छवि दे रहे हैं, उधर बिथुरी केश-राशि की छटा भी अकथनीय हो रही है, उसका यौवनोन्मत्त स्वरूप, रूप-तृप्त नेत्र, आलस्यपूर्ण अवलोकन और दीप्तिपूर्ण उन्नत उरोजों की मनोज-दलित शोभा भी कही नहीं जा सकती। ऐसी रसीली सुजान के अंगों की शिथिल गति और लजीली शोभा को देखकर लगता है जैसे मनोरथों की वल्लरी फल युक्त हो उठी हो।

संभोग सुख की स्मृति—कुछ छंदों में संभोग के मादक सुख की याद की गई है, ये छंद पूर्व कथित छंदों से भिन्न हैं। इनमें कहीं तो स्मृति के साथ साथ अतृप्ति का वर्णन है, कहीं सुजान के प्रति घनआनन्द ने अपनी अनन्त तृषा का वर्णन किया है, कहीं संभोग की सुखद स्मृति के साथ-साथ अनुराग की वृद्धि का होना कथित हुआ है और कहीं मुक्त-भोगी

[1] सुजानहित - छन्द ४८८, ३८२, १७, २६, ३५६, ३६०, ४८६, २३।

की भाँति यह कहा गया है कि सुजान के संसर्ग-सुख से बड़ा सुख दूसरा नहीं[1]। इन स्मृति-परक छन्दों में अधरामृत पान से छकने, अपने हाथों से प्रेयसी के अंगों को चाँपने, कपोलों के स्वाद में पगने, रीझ से भींगने, अंगों से अनंग-ज्वाला के जाने और सुजान के प्रति अखंड लौ के उदित होने आदि का वर्णन करते हुए उनकी महासुखदायिनी विभूति का कथन किया गया है और इस सुख की उपलब्धि से अपने भाग्य के जागने की बात भी कही गई है। एक छंद में शृंगार-मूर्ति सुजान की छवि और अंगों के प्रति जो आसक्ति व्यक्त हुई है उसमें उच्च कोटि के भक्तिमूलक छन्दों में प्राप्त स्वच्छता, पवित्रता और मनोन्मेष के दर्शन होते हैं—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं ।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाँय चूमि चूमि कै कपोलन सों माँजिहौं ।
जान प्रानप्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग दुख भाँजिहौं ।
कब घनआनन्द ढरौंहीं बानि देखें सुख,
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि राँजिहौं ॥

सुजान की प्राप्ति के महासुख से उनके प्राण भीग उठे हैं, उनके रग-रग पगे अंग ही उस सुख को जानते हैं, कवि को ऐसा शुद्ध सामीप्य लब्ध हुआ कि कुछ काल के लिए द्वैत भाव जाता रहा—'द्वै उर एक भए घुरि कै घनआनन्द सुद्ध समीप लह्यौ है'। रूप की अनुपम तरंगों को देखकर चित्त प्रेम-प्रवाह में बहा जाता है, ऐसे ऐसे सुख संयोग में मिले हैं फिर भला उसकी स्मृति क्योंकर भुलाई जा सकती है। सुजान के स्वभाव की मिठास से पगकर संसार के अन्य रस या स्वाद फीके लगने लगते हैं। घनआनन्द सौगंध खाकर कहते हैं कि हे सुजान! तेरे आनन पर अनुरक्त होकर ये नेत्र किसी और को देखते भी नहीं, यदि कभी तुम्हारे साथ मिलकर रात्रि व्यतीत करने का अवसर मिले तो वह मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य होगा। यहाँ शुद्ध आमुष्मिक या ऐंद्रिक तृषा है पर कितने निश्छल रूप में व्यक्त की गई है।

इस प्रकार घनआनन्द की संयोग वर्णना में बीभत्सता और कुरुचि का कहीं लेश भी नहीं और मन का हर भाव, इन्द्रियों की हर वासना पूरे पूरे तौर से कह दी गई है। सुजान के संयोग वर्णन में भी संयोग की स्थूल क्रियाओं का वर्णन विशेष नहीं किया गया है, ध्यान अधिकतर कवि की मानसिक दशा के निदर्शन पर केन्द्रित मिलता है। संयोग वर्णना में वासना और ऐंद्रिकता का भाव पूरा पूरा है, बहुत सारा रीझ और आकर्षण उसी से सम्बन्धित है, पूरा का पूरा प्रेम व्यापार लौकिक है, सारी रीझ इन्द्रियों की ही है, इन्द्रियों के ही प्रति है पर गंदी कामुकता और छिछोरापन कहीं नहीं। ऐन्द्रिक रीझ और वासना एकनिष्ठ हो परिष्कृत और पवित्र हो गई है। कवि की सच्ची प्रीति और निष्ठा ने उसमें दीप्ति और पुनीतता पैदा कर दी है। घनआनन्द की प्रेम-वर्णना अकुंठ है, उनके भाव अरुद्ध गति से फूटे हैं पर उनमें एक आन्तरिक संयम है, एक संस्कार है जो कवि के निजी जीवन और व्यक्तित्व

[1] सुजानहित : छन्द २५३, ३२८, २३६, ६३ ।

की चीज है। वह आगे चलकर उनके कृष्ण-काव्य और भक्ति परक रचनाओं में और भी परिशुद्ध और उज्ज्वल रूप में गोचर होती है।

बोधा का सयोग वर्णन

बोधा के शृंगार वर्णन मे परम्परा पालन नही। उनमे न रास के चित्र हैं न यमुना पुलिन और वृन्दावन-कुंजो एव व्रज वीथियों के वे रमणीक प्रसंग है जिनमे बार-बार राधा, कृष्ण और कृष्ण-गोपियों का मिलन दिखाकर सभोग की अच्छी भूमिका प्रस्तुत की जाती है। बोधा लौकिक प्रेम के गायक थे, उन्होंने अपने प्रेम को भक्ति का आवरण नही दिया है। जहाँ उन्होंने लिखा है—'यो दुरि मेलि करे जग मे नर धन्य वहै धनि है वह नारी' अथवा जहाँ वे कहते हैं—

जित बाल तितै सुखी हाल सबै जित बाल नहीं तित हाल दुखी।
दुख ठौर सबै बिधि और रचे सुख ठौर अकेली सरोजमुखी॥

वहाँ हम उनकी मुक्त वासना-परक प्रेम भावना का दर्शन करते हैं। उन्होने भी निर्बंध प्रेम की वकालत की है। बोधा की गोपिका ने लोक-बंधन की शृंखलाओं को विशृखल करने के ही उद्देश्य से यह सकल्प किया था—

छांड़ि नवीन की सीख सबै कुलकानि निगोडी बहाइबेही है।
ह्वै कै लटू लपटाइ हिये हरि हाथ ते बसी छुटाइबेही है॥
बोधा अरेलुन के उपहास अंगेजु कै कुंजनि जाइबेही है।
लाज सौं काज कहा बनि है ब्रजराज सों काज बनाइबेही है॥

इस निश्चय की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होती हुई एक अन्य गोपिका के हृदय की अधीरता देखिये—वह कहती है कि निगोडी लाज का बन्धन मारे डाल रहा है, अपना नेह निभाने के लिए उस बन्धन को तोडना ही पडेगा। एक छन्द मे एक ऐसी प्रेमिका के मनोभावो का चित्रण हुआ है जो प्रेम तो करती है किन्तु रात-दिन जिसके ऊपर घर वालो का पहरा रहता है, वह कहती है—

खरी सासु घरी न छमा करिहै निसि बासर त्रासन हीं मरबी।
सदा भौहैं चढाए रहै ननदी यो जेठानी को तीखी सुनै जरबी॥
कवि बोधा न संग तिहारो चहैं यह नाहक नेह फँदा परबी।
बडी आँखै तिहारी लगै ये लला लगि जैहै कहूँ तौ कहा करबी॥

यह एक अतिशय मनोवैज्ञानिक चित्र है, अतस् के भीतर पैठकर कवि ने गोपिका का स्वरूप देखा और दिखाया है। एक तरफ बरबस रीझना है दूसरी तरफ उससे मुक्ति पाने का प्रयत्न। वह विवेकमयी है जानती है कि प्रेम के फदे मे पडने को तो पड सकती है पर निर्वाह न हो सकेगा क्योंकि उस पर कठोर नियन्त्रण है। वह विवेक की तुला पर तोल कर देख लेती है कि क्षणिक मानसिक सुख के लिए कोप और यन्त्रणा का अपार दुख नही सहा जा सकता इसी से वह विवेक बुद्धि से काम लेती है और कृष्ण से कह देती है—'कवि बोधा न संग निहारो चहैं यह नाहक नेह फँदा परबी' फिर भी यह कौन कह सकता है कि उसकी ललक हमेशा के लिए समाप्त हो गई थी। लेकिन अधिकांश गोपियाँ ऐसी थी जो अपनी प्रेमोन्मत्त

स्थिति में घर और बाहर का भेद नहीं करती, अपने सुख के आगे सुरेश का वैभव भी तुच्छ समझती है। प्रेम के रंग में रँग जाने पर उन्हें कुल-मर्यादा की पर्वाह नहीं रह जाती, वे तो बिना मद पिये ही मदमयी हो गई हैं—'ब्रजराज को चाहि के आखिर या बिनही मद पै मतवारी भई।'

सुभान प्रेम—कुछ छन्दों में बोधा ने अपने निजी प्रेम का भी वर्णन किया है। उन्होंने अनेक बार सुभान के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट की है—'बस मेरो कछू ना हुतौ मन मैं छिन देखे तुम्हें मनु मानत ना।' गोपी कृष्ण प्रेम वर्णन द्वारा भी प्रायः उन्होंने अपने ही हृदय का प्रेम अंकित किया है। उनकी प्रेम की अभिव्यक्ति किसी प्रचलित लीक को पकड़ कर नहीं हुई है, नायक नायिका-भेद की चहारदीवारी में उनका प्रेमी हृदय क्रीडा के लिए अनुकूल क्षेत्र नहीं पा सका है। उनकी वृत्ति की स्वच्छन्दता और अभिव्यक्ति की रीति-निरपेक्षता देखनी हो तो इस छन्द को देखिये जिसमें उनके दिल की पुकार है और अंतःकरण की अभिलाषा—

> प्रेम की पाती प्रतीति कुँडी दृढ़ताई के घोटन घोटि बनावैं।
> मैन मजेजन सो रगरैं चित चाह को पानी घनो सरसावैं।
> बोधा कटाक्षन की मिरचैं दिल साफी सनेह कटोरे हिलावैं।
> मो दिल होइ खुसी तबहीं जब रग मैं भावती भंग पिआवैं॥

रीति-मुक्ति का इससे बढ़कर दृष्टान्त दूसरा न मिलेगा, कैसी निर्बन्ध और उन्मद भाव-तरंग है। क्या तबियत पाई थी बोधा ने और कहने का कैसा अनूठा ढंग उन्होंने निकाला है। बहुत से रूपक बाँधे गए पर हृदय के मुक्त उल्लास से बँधे इस 'भंग के रूपक' की बात ही कुछ और है। अभिव्यक्ति का ऐसा रूपकाश्रित कौशल हृदय की इतनी संवेदना के साथ ढूँढ़ने पर भी न मिलेगा।

संभोग वर्णन—संभोग के जैसे नग्न चित्र बोधा ने अंकित किए हैं वैसे स्वच्छन्द धारा तो क्या समूचे हिन्दी साहित्य में शायद ही किसी कवि ने अंकित किये हों। इस दृष्टि से उनके 'विरह-वारीश' में आये हुए ऐन्द्रिक संभोग के वे चित्र देखने योग्य हैं जिनमें माधव-लीलावती तथा माधव-कन्दला की कामकेलि का वर्णन हुआ है।[1] इस संदर्भ में अधिक कुछ न कहकर एकाध उदाहरण प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा—

> बीरा प्रिय के कर खान। तिय के कपे थर थर गात॥
> ऊग्यो अंग अंग अनंग। समझो कोक को यह ढंग॥
> तिय की गही पिय ने बाँह। तब तिय कही नाहीं नाहं॥
> मोको दरद हूहैं मित्त। ऐसी आनिये नहि चित्त॥
> पग के धुवत उलटी चाल। माधो गल गह्यौ त्यों हाल॥
> ज्यौं ज्यों करत वारण बाम। त्यों त्यों बढ़त द्विज हिय काम॥
> नाहीं करत बारम्बार। टूटत जलज मणिमय हार॥
> कुच के छुवत भौंह कहरात। तकिया ओर टरकत जात॥

---

[1] विरह वारीश: तरंग ७ तथा १५, १६, २५।

कमर ग्रीव पकरी दोय। बाला रही दूनर होय ॥
सखिन सों कहै तुम धाय। मो कहँ आय लेहु बचाय ॥
राखी दुवौ जघन बीच। कुच भुज नैन दै कै खींच ॥
माधो गह्यो बाल रिसाय। जघा भुजा ऊपर नाय ॥
लागी कपन थर थर बाम। पिय पै चलत कछु नाम ॥
उभकत भुकत यो थहरान। चलदल मातलो यह रात ॥
— (माधव-कदला-कामकेलि १५ वीं तरंग)

ठाकुर का संयोग वर्णन

ठाकुर का प्रेम वर्णन आत्मपरक न होकर गोपी-कृष्ण मूलक है, इसी की तह मे हम ठाकुर के प्रेमी हृदय को छिपा हुआ देख सकते हैं। राधा-कृष्ण अथवा गोपी-कृष्ण के प्रेम को लेकर उन्होंने नये-नये भावो एव प्रसगो की उद्भावना की है। उनमें रूप, अगोपाग, वाणी विनोद क्रीडाओं एव मनोभावो का नाना परिस्थितियों के बीच चित्रण किया गया है। संयोग चित्रण मे ठाकुर ने पूर्वराग, मिलनोत्कठा, बदनामी की चर्चा, गोपिका की प्रीति की प्रकर्षता और दृढता, चिन्ता तथा मन की अन्यान्य सूक्ष्म एव सुकुमार वृत्तियों का चित्रण किया है। इस चित्रण में बडी सावधानी बरती गई है, कवि का कोई भी संयोग चित्रण वासना के कर्दम से पंकिल नहीं होने पाया है, उसमें हृदय की शुद्ध निश्छल निष्काम प्रीति ही व्यक्त हुई है। कभी-कभी गोपियों का समूह रूप में भी वर्णन हुआ है जैसे होली खेलने के अवसर पर अनेक गोपियो का मिल कर कृष्ण को घेर लेना आदि किन्तु जहाँ प्रेम की व्यजना की गई है वहाँ किसी एक ही गोपी का वर्णन आया है। होली के वर्णन मे मर्यादा का बाँध टूट जाता है—

डार्‌यो जो गुलाल रग केसर को अग अग,
आन भकझोर्‌यौ मोडी बौर मुख रोरी में।
चाहि चितचारी हितवारी नितवारी करी,
काहैं कहो कौन अब जैहे ब्रज खोरी में॥
ठाकुर कहत ऐसे रस मे निरस होन,
कहा भयौ छालो जो छबीले हुई चोरी में।
अक भरि लीनी तौ कलक को न सक कीजै,
आज बरजोरी कौन दोष होत होरी में॥

सामान्यतया ठाकुर ने इस प्रकार की रचना नहीं लिखी है। वे मनुष्य की शालीनता और सम्याचरण पर बल देने वाले कवि हैं। होली खेलने के और कई रमणीय चित्र ठाकुर ने उतारे हैं—एक मे एक मतवाली ग्वालिन का कृष्ण को लिये-दिये केसर की कीच मे गिरने का वर्णन है, दूसरे मे एक रुष्ट हुई ग्वालिन की कृष्ण को डाँट-फटकार है, तीसरे मे हुरिहारों से बचकर भाग निकलने वाली एक गोपिका का चित्र है, चौथे मे चारों ओर से गोपियों का दौडकर कृष्ण को घेर लेने का दृश्य है और इसी प्रकार अन्य चित्र भी हैं। इनमें से एकाध चित्र देखिये—

(क) ठाकुर दौरि परे मोहि देखत भागि बची जु कछु सुघरी तो।
बीर जो द्वार न देहुँ केवार तौ मैं होरिहारन हाथ परी तो॥

(ख) ठाकुर ऐसो उमाह मचो भयौ कौतुक एक सलौन के बीच में।
रग भरी रस माती गुवालि गोपालहिं लै गिरी केसर कीच में॥

कभी-कभी गोपियो के प्रेम मे व्याघात उत्पन्न करने वाली 'घरहाइनो' चौचदहाइयो की चर्चा भी की गई है। यह प्रेम वर्णन किसी क्रमिक अथवा धारावाहिक रूप मे नही किया गया है और न ही किसी प्रचलित अथवा कल्पित कथा को खडा करके।

ललक--गोपियो और कृष्ण की सुविरूपात प्रोति को ही लेकर उनकी ललक, आसक्ति, अनुरक्ति आदि का ही नाना छन्दो मे वर्णन किया गया है। कृष्ण अवसर गोपिका के घर की ओर जाया करते थे और उसके रूप की शोभा को दुगुना कर देने के इरादे से मौलिश्री की माला ले जाया करते थे। वह गोपिका कृष्ण की चिर-उपकृत थी पर यह सब और लोग न जानते थे। वह गोपिका नित्य ही डरती रहती थी कि कही किसी दिन यह भेद न खुल जाय, अपने ही पास पडोसियो की निंदा और भर्त्सना के भय से एक दिन वह बडे स्नेह से कृष्ण को समझाती है—

हौं ही समै लखि कै उत आइ कहौ करिहौं सब रावरे जो को।
बारही बार न ऐये इतै यह मेरो कछू है परोस न नीको॥
ठाकुर चाह भरे नित ही तुम हार लै आवत मौलसिरी को।
कोऊ कहूँ लखि लेय जो याहि तो होय लला मोहि लील को टीको॥

वह कृष्ण से अमिलन भी नही चाहती और उनका अपने मुहाल मे आना भी ठीक नही समझती फिर कृष्ण की जो इच्छाएँ हैं उन्ही मे उसको मन की तृष्णा की भी तृप्ति है। ऐसी दशा मे कलक के टीके से बचने का वह कैसा सुन्दर उपाय निकालती है, अब से वह स्वत कृष्ण से मिलने जाया करेगी। नया नया प्रेम है उसकी परवरिश के यत्न और उत्कठा के दर्शन कीजिये।

लोक-बाधा—प्रिय से मिलने मे सबसे बडी बाधा है लोक निंदा और बदनामी, इसका डर बराबर बना रहता है और गोपियो को विशेषकर। ये बाधाएं प्रेम को और भी प्रगाढ बना देती हैं इसमे सदेह नही। यो भी लोकनिंदा और बदनामी का भय भारतीय समाज मे प्रबल रहा है। इस चुगली और निंदा को लेकर कई बहुत अच्छी उक्तियाँ ठाकुर ने लिखी हैं—

(क) ठाकुर या ब्रजगाँव के लोग चवाई करै तुम एक हो दोऊ।
प्रीति हमैं तुमैं टूटि गये की अबै लौं प्रतीति न मानत कोऊ॥
(ख) चौचदहाई जरैं ब्रज सो जे परायो बनो हर भाँति बिगारैं।
(ग) घर ही घर घेर कर घरहाइने नाव धरैं सब गाँवरी री॥

इतनी बदनामी से ऊबकर आखिर एक दिन गोपियाँ अपने प्रेम की दृढता से प्रेरित होकर सकल्प करती हैं—

कवि ठाकुर नेह के नेजन की उर मे अनी आन लगी सो लगी।
अब गाँवरे नाँवरे कोई धरौ हम साँवरे रग रँगी सो रँगी।

एक तो कहनी है कि जब ओखली मे सिर दिया तो मूसरो का क्या डर। इस प्रकार के सकल्प का परिणाम यह होता है कि प्रिय-मिलन की सभावना बढती है और हृदय की भावना

का पोषण होता है। अपने प्राप्य को पाने के लिए अब ये गोपियाँ सब कुछ करने को तैयार हैं उनमें से एक तो अपने हृदय के अरमान निकालने की गरज से अपनी सौत के घर जाने को भी तैयार है। एक नवीन प्रेमिमती के हृदय की हौंस और दिल की उमंग देखिये जिसके ऊपर लज्जा का बड़ा भारी नियन्त्रण बना हुआ है—

> यह ठाकुर भेंटवे के उपचार बिचारत द्यौस बितैयत है।
> बतियाँ न बनें जिनसों कबहूँ, छतियाँ तिन्हें वैसे लगइयत है॥

भला हवस की इस तीक्ष्ण धार के आगे सकोच का पर्दा रह सकेगा ?

अन्यान्य अन्तर्वृत्तियाँ—एक छन्द में राधिका की अनुरागमिक्त खीझ दिखाई गई है जिसकी शिकायत यह है कि बिना जान पहचान के कौन है जो मेरे मार्ग को छेंका करता है कोई उसे रोकता नहीं, वह सिर से पैर तक अजीब ढंग से देखा करता है जैसे कि कोई भी नहीं देखता ऊपर से मुरली में 'राधिका-राधिका' कहकर मुझे पुकारता है। इस खीझ और उपालम्भ भरी उक्तियों में भी उस सुकुमारी की चाह झलक रही है। कृष्ण के प्रेम में कितनी ही गोपागनाएँ बेसुध हैं—कोई इस आशा में है कि एक दिन उसकी भी उलझन सुलझ जायगी, किसी को अपने मन की दृढ़ता पर भरोसा है और कोई अपनी अभिलाषाएँ व्यक्त किए जा रही है—

(क)
> रोज न आइये जौ मनमोहन तौ यह नेक मतौ सुन लीजिये।
> प्रान हमारे तुम्हारे अधीन तुम्हें बिन देखें सु कैसे कै जीजिये॥
> ठाकुर लालन प्यारे सुनौ बिनती इतनी पै अहो चित दीजिये।
> दूसरें तीसरे पाँचवें सातवें आठवें तौ भला आइबो कीजिये॥

(ख)
> ऐसे कबौं कहा कारज होत है जो मग माँझ कबौं दरसाने।
> ये छिन ऐसे ही बीतत हैं हम हूँ तरसौं तुम हूँ तरसाने॥
> ठाकुर और बिचार कछू नहिं ये अभिलाख हिये सरसाने।
> कै हमको बसियै नँदगाँव की आप ही आय बसौ बरसाने॥

मन की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के निरूपण में ठाकुर बड़े प्रवीण थे। सुनारिन के लिए लिखे गये उनके प्रसिद्ध छन्द 'वा निरमोहिन रूप की रासि' में सयम का पूरा ध्यान रखा गया है और प्रेम भावना की पवित्रता अक्षुण्ण रहने दी गई है। ठाकुर के सयोग वर्णन की यह सर्वोपरि विशेषता कही जा सकती है। कुछ और भी प्रेम के भाव के चित्र देखिये—किसी व्यक्ति को ज्योतिषी जानकर राधिका उसकी बड़ी आवभगत करती है और कहती है कि हे ज्योतिषी जी महाराज! मेरा मन तो मोहन से खूब लगता है पर मोहन का मन मुझसे लगता है या नहीं जरा अपने ज्योतिष के हिसाब से इसका तो विचार कीजिये। यह प्रश्न कितना भोला भाला है और इससे हम राधिका का प्रेम में पगना देख सकते हैं। उधर ज्योतिषी भी चतुर है वह उन्हें निराश नहीं करता और कहता है कि—

> डोलत हौ खोर खोर हेरत तिहारी ओर,
> तेरो बोल सुनै गैल भूलि जात धाम की।
> जैसी रट तोहि लगी राधे श्याम सुन्दर की,
> तैसी रट वाहि लगी राधे तेरे नाम की॥

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर ज्योतिषी से अपने मन की बात सुनकर राधिका का मन मारे उमग के नाच उठता है। ज्योतिषी पूछता है—

ठाकुर या दिन देहौ कहा यह बूझिले बात सबै जियरा सों।
मोहन को मन तो सो लगै तै लगै मन मोहन के हियरा सों॥

राधिका का उमग भरा कथन देखिये—

विप्र की बानी सुने सकुचौ कहौ वा दिन तेरे विषाद नसैहौं।
रक ते ह्वं हौ निसक महा मनमोहन को जब श्रक लगैहौं॥
ठाकुर मीठो करौं मुख रावरो पांव परौं जस कीरति गैहौं।
हाथन चूरा गरे मणिमाल सुआनन को मुकताहल दैहौं॥

इस प्रकार एक से एक सुन्दर भावो से भरा हुआ राधा कृष्ण के प्रेम का मानस-पक्ष असाधारण रमणीयता से ठाकुर ने प्रत्यक्ष कराया है और ऐसे पावन प्रेम चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से वे इस धारा के बेजोड़ कवि कहे जा सकते है। भावात्मक सौंदर्य की दृष्टि से यह छन्द देखिये जिसमे राधा और कृष्ण की प्रीति को समूची प्रकृति मे परिव्याप्त दिखाया गया है—

अपने अपने निज गेहन मे, चढे दोऊ सनेह की नाव पै री।
अगनान मैं भीजत प्रेम भरे समयौ लखि मैं बलि जाव पै री॥
कह ठाकुर दोउन की रुचि सों रग ह्वै उमडे दोउ ठाव पै री।
सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै गोरी घटा नदगाव पै री॥

द्विजदेव का संयोग वर्णन

द्विजदेव की शृगार वर्णना मे सयोग की स्थिति का चित्रण पर्याप्त है। यह प्रारम्भ मे ही बता देना आवश्यक है कि द्विजदेव का प्रेम वर्णन भी राधा-कृष्ण-मूलक है।

प्रथम मिलन[१]—प्रेमिका सहज भाव से पुष्प वाटिका मे जाती है अचानक श्री कृष्ण के उसे दर्शन हो जाते हैं। उसका सलोना रूप उसकी आंखो को भा जाता है और उसके प्रेमाश्रु छलक आते हैं और वह कर्तव्यमूढ विजडित सी रह जाती है और कह उठती है 'तू जो कहै सखि लौनौ सरूप, सो मो अंखियान मैं लोनी गई लगि।' एक दूसरी गोपिका कहती है कि नाना रूपो से अपनी छवि को व्रज मे छिटका कर चन्द्रिका की शोभा को भी जो मात कर रहा है उसे देख लेने के बाद तो एक पल का समय भी नही कटता। एक तीसरी गोपिका है जो यमुना मे स्नान कर नदी तट पर अपने केशो को सुलझा रही है, औचक उधर से छली कान्ह निकलते हैं। उनकी दृष्टि का फदा ऐसा पडता है कि वह बालो को सुलझाने जाकर अपना मन ही उलझा आती है। राधा को देखकर कृष्ण से बोलते नहीं बनता और कृष्ण को देखकर राधा जडवत् हो रहती हैं। प्रेम के मार्ग मे पैठते ही उनकी यह दशा हो जाती है। श्री कृष्ण राधा के यहाँ जाते हैं, राधिका से मारे हर्ष के स्वागत सत्कार ठीक-ठीक नही करते बनता। उधर कृष्ण की भी यही दशा है, राधा को देखकर उन्हे आतिथ्य ग्रहण करना भी मुश्किल हो जाता है —

---

[१] शृङ्गार लतिका सौरभ : छन्द ६२, १७८,१८२, २५५, २२७।

आवती ती वे बिछारे वहूँ ओर ही ठौर पै बैठे कन्हाई।
पाँइ के धोखें पसारे भुजा, लकुटी वह धोवत सीस नवाई॥
आगत-स्वागत के बदलें, द्विजदेव दुहूँ दिसि होनि ठगाई।
देखत ही अलि! आजु बनें, नए पाहुँन और नई पहुँनाई॥

अन्य प्रणय प्रसग[1]—राधा और कृष्ण मे अपार प्रेम दिखाया गया है। दोनो के हृदय मे जो पारस्परिक आकर्षण है वह देखने योग्य है। प्रारम्भिक लज्जा और सकोच अधिक दिन तक नही टिकता, दोनो के प्राणो का प्रेमामृत दोनो की प्रीतिलता को सींच देता है। वृन्दावन के कुन्जो मे मदन धनी की अनोखी हाट लगती है, वहाँ जिस तरीके से लेन-देन या खरीद फरोख्त होती है वह देखने योग्य है। हल्की चीज का विनिमय भारी और कीमती चीज से किया जाता है। उन्मद नेत्र देखा-देखी मे ही जाने क्या मोल-तोल कर लेते हैं। मोहन का थोडा सा रूप (चाँदी) ले लेकर गँवार अहीरिनें बदले मे अपने हृदय (हीरक या हीरे) दे डालती हैं आँखो की यह लगा-लगी आगे एक दूसरे के सुख को अपना सुख दुख मानने की भावना तक पहुँचा देती है। देखिये नायिका के शरीर को पहुँचने वाला थोडा सा कष्ट भी नायक को असह्य हो जाता है, उधर नायिका की इस सवेदनशीलता पर कम मुग्ध नही—

ज्यों ज्यों उतै कछु लाडली के उन पंकज पाँइन जात भँवाँ छ्वै।
नाक मरोरि, सकोरि कै भौंह सु त्यौं-त्यौं रहे हरि आँखिन सो ज्वै॥
सो तकि बाल निहाल सी ह्वैनि, बिथा तब आन की कौन गनै स्वै।
राधिका के सुख-काज सु तौ सखि। पाँइ की पीर उपाइ गई ह्वै॥

कभी-कभी कृष्ण के हृदय मे राधिका के प्रति अपार प्रेम का प्रदर्शन किया गया है, राधिका चाहे कितना ही मान करे कृष्ण सदा उसी के बने रहेंगे। कही पर किसी अल्पवयस्का अनुरागिनी को शिकायत करते दिखाया गया है कि आज तक तो वह उन्ही के लिए जाती थी और वे भी उसे देखकर अनुरक्त होते थे लेकिन अब उनका ही व्यवहार दूसरा हो गया है—

आनि मुँदाय हमारी हहा! अब औरन हूँ सँग मेलन लागे।

ऐसी ही ईर्ष्या वशी के प्रति भी व्यक्त हुई है। वशी इतनी ढीठ और कृष्ण की मुँह-लगी हो गई है कि वह स्वच्छन्द रूप से ब्रज-बालाओं को सताने का ही काम किया करती है। स्वाभाविक है कि उसके ऐसे आचरण पर गोपियाँ उसे बुरा-भला कहें और जली-कटी सुनावें। वैसे कृष्ण की मुरली गोपिकाओं का हृदय भी हरण किया करती है। वे कृष्ण के और गुणो के साथ-साथ उनके वेणु-वादन पर भी मुग्ध हैं, उनके मन-प्राण सब उसी के स्वर मे समा जाते हैं, अग शिथिल पड जाते हैं और वे प्रेम-विवश हो कुछ भी नही कर पातीं, मुग्ध मोहित और चेतना शून्य मात्र हो रहती हैं, जो काम करती रहती हैं उसे भी भूल जाती हैं—

---

१ शृंगार-लतिका-सौरभ, छन्द ७२, २०६, २३४, २०७, ६०, १७२, ११६, १५४, ८२।

(क) स्वांसा कढी नासा तें, न वासा तें भुजा हूँ कढी,
अजनी न अजली तें, आखरौ न गर तें ।
(ख) चित्र लिखिबे की कौन चरचा चलावै जब,
चित्र की तिखी सी भई सारी चित्रसारी मैं ॥

होली[1]—होली या फाग का वर्णन करते हुए कृष्ण और गोपियों की रस-क्रीडा का कवि ने सोत्साह वर्णन किया है । गुलाल की गरद के बीच गोपिका का भागना और कृष्ण का उसके पीछे दौडना, साँकरी गली मे गुलाल मलना और भुजाएँ पकड कर भेटना, कृष्ण का राधिका को रग के सागर मे डुबोने जाकर स्वय ही रस की सरिता मे डूब जाना आदि द्विजदेव के रसिक और उमगी चित्त का परिचय देता है—

लहि साँकरी-खोरि बिथोरि गुलाल, बिसाल दुहूँ भुज-जोरि रहे ।
कसि बोरिवौ चाहत जो लौं लला, रस की सरिता महँ आपं बहे ॥

सभोग[2]—सयोग शृगार के अन्तर्गत कवि कामोद्रेक-सूचक एव रमण-प्रसगो का भी वर्णन करते रहे हैं । ऐसा करते हुए उन्होंने स्त्री-पुरुष की काम चेष्टाओं, आदि का विशेष वर्णन किया है । कुछ छन्दो मे द्विजदेव ने अभिसारोद्यत गोपिका का और उसकी तैयारी का वर्णन किया है । वह शाम मे ही गोविन्द से मिलने की तैयारी करती है, उधर वह तैयारी करती है इधर मेघ घिर आते हैं । बूँदें पडती हैं फिर वर्षा होती है किन्तु प्रणयिनी अपने निदिष्ट पथ से विचलित नही होती, मनोज-मद की प्रबल प्रेरणा जो है । उधर कृष्ण भी कम आतुर नही, मार्ग मे ही मिलाप हो जाता है और वे उस कामिनी की छटा को देखते ही रह जाते हैं । गुप्त रूप मे मिलन के लिए निकलने वाली प्रेमिका की सशक मनोदशा का चित्रण भी कवि ने बडी सच्चाई से किया है । ये दोनो चित्र देखिये—

(क) मग ही मैं आय ताहि मिलिगे गुबिंद तहाँ,
देखत भुलानें छबि रूप-रस-वारी की ।
सूही सजी सारी की, जरी की, जरतारी की,
मु आनन-उज्यारी मैं चलनि चाए प्यारी की ॥
(ख) दाबि दाबि दसन अधर छनवत करै,
आपने ही पाँइन की आहट सुनति स्त्रौन ।
द्विजदेव लेति भरि गातन प्रसेद अलि,
पात हूँ की खरक जु होती कहूँ काहू-भौन ॥

प्रिय से मिलने मे जब देर होने लगती है, तैयारी पूरी नही होने पाती तब उसकी जो त्वरा और हडबडी है वह देखने ही लायक होती है । कहीं का आभूषण कहीं पहना जा रहा है, बाधाओं को शीघ्र ही निवारा जा रहा है, कवि कहता है कि आज अवश्य ही गोविंद के भाग्योदय का दिन है । प्रेमिका मे यह मिलन-कामना इतनी तीव्र दिखलाई गई है कि उसके सामने कोई भी अवरोध नही टिक सकता । उसे डर किसका है—अभिलाषाओं के रथ

---

[1] शृगार-लतिका सौरभ : छद ६४, १६३, १६५ ।
[2] वही : छद १२६, १३६, १३१, १४१ ।

पर चढ़कर उमग रूपिणी सहेलियों के साथ वीर कामदेव के सरक्षण में वह मुख-चद रूपी मशाल के प्रकाश में प्रिय से मिलन के लिए चली जा रही है। प्रिय का प्रेम, उससे मिलन की कामना उसमे इतना साहस और बल भर देती है।

वास्तविक सभोग व्यापार का वर्णन भी द्विजदेव ने किया है पर अधिक नहीं और वह साकेतिक ही अधिक है।[1] इस प्रकार के वर्णनो पर कुछ रीति कवियो की छाप दिखाई देती है—

> सावन के दिवस सुहावने सलोने स्याम,
> जोति रति-समर बिराजे स्यामा-स्याम सग।
> द्विजदेव की सौं तन उघटि घटुंधा रह्यौ,
> चुबन की चहल चुचात चूनरी को रग॥
> पील पट ताने हरखाने लपटाने लखें,
> उँमहि उँमहि घनस्याम-दामिनी को ढंग।
> रति-रन भीजे पै न मैन-मद छीजे अति,
> रस बस भीजे तनकि पुलकि पसीजे अंग॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विजदेव का सयोग वर्णन राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण को लेकर किया गया है। उसकी प्रेरणा उन्हे अपने जीवन से प्राप्त नही हुई है वरन् कृष्ण के प्रसिद्ध जीवन प्रसगो से। वही व्रज, यमुना, वृन्दावन आदि का वातावरण उनके काव्य मे भी अकित हुआ है। कभी वन मे कभी उपवन मे कभी पनघट पर गोपियो से उनका साक्षात्कार होता है। पहला साक्षात्कार ही गोपिका के हृदय की धारा को बदल देता है, उसमे कृष्ण-दर्शन की ललक तीव्र हो उठती है। फिर प्रणयी युगल जब मिलते हैं तो मिलते नहीं बनता, हृदय धड़कता रहता है, आचार-व्यवहार बदल जाते हैं, करने को कुछ ये प्रेमी कर कुछ और बैठते हैं। आकर्षण बढ़ता चलता है, लज्जा सकोच छूटता चलता है। लोक और कुल की मर्यादाओ को तिलाजलि दे दी जाती है। फिर तो वृन्दावन की कुंजो मे प्रेमी युगल अवसर मिलते हैं—देखा देखी, साहचर्य, स्पर्श, सुख, पुनर्मिलन की प्रतिज्ञाएँ और भावी जीवन के आश्वासन आदि प्रणय व्यापारों का चित्रण हुआ है। प्रेम दोनो पक्षो मे दिखाया गया है जिसके बीच-बीच में वशी के प्रति ईर्ष्या अथवा गोपिका का मान आदि दिखाकर प्रेम को और भी प्रगाढ़ बनाया गया है। एकात मिलन, अभिसार, रसकेलि, ऋतुओ आदि के वर्णन द्वारा प्रेम को उत्तरोत्तर गाढ़ा बनाया गया है। होली के 'मढ़भेर' आदि के बीच हर्ष की सरिता और भी लहराती दिखाई गई है। कवि के निजी जीवन से यह प्रणय काव्य विशेष सयुक्त न होते हुए भी पर्याप्त अनुभूतिपूर्ण और सरस बन पड़ा है।

वियोग शृंगार : स्वच्छन्द कवियो का विरह-वर्णन

रीतिमुक्त प्रेम की उमग के कवियो ने विरह का वर्णन असाधारण विस्तार से किया है। उनका विरह वर्णन ही उनकी समूची काव्य-सृष्टि का नवनीत है। इसी विरह वर्णना के अन्तर्गत प्रेमी चित्त की सहस्रो सूक्ष्म और सुकुमार भावनाएँ अंकित हुई हैं। इनमे से अनेक

[1] शृंगार-लतिका सौरभ - छद १६१, १६६, १८६।

कवि प्रेम की पीर के अप्रतिम गायक हैं--घनआनन्द सा विरही कवि तो दूसरा हुआ ही नहीं। प्रस्तुत खंड में हमने यह दिखाने की चेष्टा की है कि रीति-स्वच्छन्दधारा के कवियों ने किस प्रकार की विरहानुभूतियों का अंकन किया है तथा उनकी मर्मस्पर्शिता कितनी है।

रसखान का वियोग-वर्णन

वियोग का वर्णन रसखान के काव्य में विशेष नहीं है। उन्होंने संयोग और मिलन स्थिति की सरसता को ही विशेष महत्व दिया है। फिर भी उन्होंने जो वियोग सम्बन्धी छन्द लिखे हैं उनमें मार्मिकता पर्याप्त है। उनके काव्य में गोपियों का विरह वर्णित हुआ है।

स्मृति—गोपियों को कृष्ण के चले जाने पर उनके संसर्ग के सुख-पूर्ण जीवन को याद आती है, वे बीते हुए दिनों को वापस बुला लेना चाहती हैं। इस प्रकार के छन्दों में बड़ी कसक व्यक्त हुई है—

> नवरंग अनंग भरी छवि सों वह मूरति आँखि गड़ी ही रहै।
> बतिया मन की मन ही में रहै, घतिया उर बीच अड़ी ही रहै।
> तबहूँ रसखानि सुजान अली नलिनीदल बूँद पड़ी ही रहै।
> जिय की नहिं जानत हौं सजनी रजनी अँसुवान लड़ी ही रहै॥

कभी उन्हें कृष्ण की रंग भरी छवि, उनकी बातें और घातें याद आती हैं, कभी उसे रात्रि के उन सुखद प्रसंगों का स्मरण होता है जब रस क्रीड़ा हुई थी। याद यों तो सदा बनी रहती है ताजी रहती है लेकिन विशेष सुखों की स्मृति तो यथावसर ही आती है। सम्भोग और रतिकेलि के सुख रात में मनोलोक में जगते हैं और स्मृतियाँ उसे बहुत ही बेचैन कर देती हैं। वह नहीं जानती थी कि इन अपूर्व सुखों का बदला वियोग के रूप में चुकाना पड़ेगा। कभी प्रिय की हँसती हुई मूर्ति को याद आती है जो नेत्रों से टाले नहीं टलती।[1] इन नेत्रों ने तो उस रूप के प्रति योगियों सा ध्यान लगा रखा है। जब शाम होती है तो गोचारण से लौटे हुए कृष्ण की छवि सामने आती है, ऊँची अटारियों पर चढ़कर गोपियों को 'मार्ग तकने' की याद आती है--

> साँझ समै जिहि देखति ही तिहि पेखन कौं मन यौं ललकै री।
> ऊँचो अटान चढ़ी ब्रजबाम सुलाज सनेह दुरै उमकै री॥
> गोधन धूरि की धूँधरि में तिनकी छबि यौं रसखानि तकै री।
> पावक के गिरि तें बुझि मानो धुँवा लपटी लपटैं लपकै री॥

उपचार—वियोग घटते-घटते गोपिका के लिये रोग हो जाता है। रोज की यही हालत हो जाती है—याद करना और बिसूरना, रोना और दुख मनाना। उसके अशांति और व्यथित चित्त को शांत करने के लिये कोई गुलाब जल का छिड़काव करता है, कोई खस की सुगन्धि प्रस्तुत करता है, कोई पत्र-पुष्पों के उपहार भेंट करता है और कोई चंदन का आलेप करता है किन्तु ये कामोपचार वियोग शांति में सहायक नहीं होते। इनसे वियोग की आग

---

[1] सुजान रसखान : छन्द ११३, ११४, ११५, १११।

और भी भड़क उठती है। विरहिणी को अन्त में स्वत मूलोपचार का संकेत करना पड़ता है—

एते इलाज बिकाज करो रसखानि कों काहे को जारे पैं जारो।
चाहति हों जु जिवायो भटू तो दिखावो बड़ी बड़ी आँखिनी वारो॥

वह बड़ी-बड़ी आँखों वाला ही इनके रोग की औषधि है। एक छन्द मे वियोग की परिणति मिलन के महासुख मे दिखाई गई है। यह प्रसन्नता और मिलन सुख ही रसखान के प्रेम चित्रण मे प्रधान है वियुक्ति और विरह नही।

उद्धव-गोपी प्रसंग—उद्धव के ब्रज आगमन प्रसंग को लेकर रसखान ने कुछ छन्द लिखे हैं, इस संदर्भ मे भी गोपियो की वियोगावस्था का पर्याप्त सुन्दर निदर्शन हुआ है। रसखान कुछ नए भाव और नवीन उक्तियाँ प्रस्तुत कर गये हैं। उदाहरण के नए गोपिका का यह कहना कि हमारे ऊपर 'कारे बिसारे का विष' चढ गया है अर्थात् काले और महाविषैले सर्प के दश की भीषण विषमय पीड़ा हो रही है काले कृष्ण के विरह के कारण। उपदेशों के मन्त्र पढ़े गये, लज्जा का लेप चढ़ा करके हमने सबकी सीख सुनी और सुन-सुन कर थक गई। उत्तमोत्तम औषधियो की सौगन्ध, दिलादिला कर ब्रज के सारे वैद्य (गारुड़ू या सर्प का विष उतारने वाले) हार गए। भला ऐसे भयकर नाग का विष हे पागल उद्धव! तुम राख लपेट कर उतार सकोगे? विरह का सर्पदंश ऐसा भीषण है और तुम्हारा उपचार इतना निकम्मा है! कुबड़ी कुब्जा को लक्ष्य कर उद्धव से कही गई गोपियो की उक्तियाँ भी कम चुभने वाली नही हैं। एक गोपिका कहती है कि हम अजान और मूढ़ गोपियाँ कृष्ण को न रिझा सकीं, उधर उस दासी ने उन्हे रिझा लिया, हमारी अपेक्षा दासी की आधीनता स्वीकार कर लेने से सारे ब्रज का सिर लज्जा से नीचा हो गया है। क्या पढ़कर चेरी ने ऐसा चेटक कर दिया है। उसके सौभाग्य पर ईर्ष्या से जलती हुई क्षुब्ध गोपियाँ उसे जो कुछ भला बुरा कहती हैं उसे इससे अधिक जीवन्त रूप मे नहीं कहा जा सकता—

मैनी जु पैं कुबरी ह्याँ सखी भरि लातन मूका बकोटती लेती।
लेती निकारि हिये की सबै, नक छेदि कैं कौड़ी पिराई कैं देती।
देती न चाइ कैं नाच वा रांड को, लाल रिझावन को फल सेती।
सेती मदा रसखानि लिये कुबरी के करेजनि सूल सो मैती॥

एक जगह अत्यन्त दीन होकर गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव! हमें अब अधिक न कुढ़ाइये, हमारी रोष और ईर्ष्याग्नि को अब और अधिक प्रज्वलित मत कीजिए। आपकी ऐसी विपरीत बातो से हमारा हृदय यो ही अत्यन्त दग्ध हो चुका है। अब तो इतना भर बतला दो कि कृष्ण कब ब्रज आवेंगे और ब्रज मे मगल मोद की कब वर्षा होगी। दैन्य और विवशता व्यजक यह छन्द कुछ कम मार्मिक नहीं जिसमें प्रियदर्शन के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं—

काहू सों माई कहा कहियै सहियै सोइ जो रसखानि सहावै।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब नाचियै सोई जो नाच नचावै।
चाहत हैं हम और कहा सखि क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावैं।
चेरियै सों जु गुपाल रच्यौ तो चलो री सबै मिलि चेरी कहावैं॥

प्रेम की यह वह दशा है जिसमें प्रिय के रीझ की आधीनता उसे बिना शर्त के आत्म-समर्पण करने को बाध्य कर देती है। कृष्ण जिस प्रकार भी रीझें गोपियाँ उसी प्रकार का आचरण करने को तैयार हैं। मान, अहंकार आदि अहम्मूलक वृत्तियाँ गलकर पानी हो जाती हैं, प्रिय की अप्राप्ति में चित्त-शोधन की ऐसी अपार शक्ति हुआ करती है।

रसखान के भँवर गीत सम्बन्धी इन छंदों में भावों का पिष्टपेषण नहीं मिलता तथा प्रेम भावना सम्बन्धिनी स्वतन्त्र उक्तियाँ देखने को मिलती हैं। उद्धव की ओर से कोई बात नहीं कहलाई गई है, सभी उक्तियाँ गोपियों की हैं और उनमें भी कुब्जा ही उनका प्रधान लक्ष्य है। ईर्ष्योक्तियाँ बड़ी शक्तिशालिनी हुआ करती हैं। रसखान के छंदों में जो भावावेग की तीव्रता या उक्ति की तीक्ष्णता है उसका यही कारण है। हम अपने ही अनुचित कार्यों एवं दोषों पर लज्जित नहीं हुआ करते, हमारा यदि कोई आत्मीय है तो हम उसके दोषों पर भी लज्जित हुआ करते हैं। हमारे प्रिय का यदि संसार मजाक उड़ाये तो वह 'जगहँसाई' हमारी भी होती है—प्रेमी मन इस ढंग से सोचता है और अपने प्रिय के अनुचित कार्यों से स्वतः दुखी हुआ करता है—

> वा रसखानि गुनौं सुनि कै हियरा सत टूक ह्वै फाटि गयौ है।
> जानति हैं न कछू हम ह्याँ उन वाँ पढ़ि मन्त्र कहा धौं दयौ है।
> सांची कहैं जिय मैं निज जानि कै जानति हैं जस जैसो लयौ है।
> लोग लुगाई सबै ब्रज माँहि कहैं हरि चेरी को चेरा भयौ है॥

ये गोपियाँ कृष्ण की अनन्य प्रेमिकाएँ हैं, उद्धव की नासमझी पर उन्हें क्षोभ होता है जो यह भी नहीं समझते कि वे जहाँ आए हैं वहाँ की हवा क्या है और वहाँ के लोगों के मनोभाव क्या हैं। इसी कारण उन्हें उद्धव की नागरता में पूरा सन्देह है। इस प्रकार इस सन्दर्भ में गोपियों का आत्मदशा निवेदन, कुब्जा के प्रति ईर्ष्यापूर्ण कटूक्तियाँ और क्षोभ, व्यंग, विवशता, आत्म-समर्पण तथा सदृश भावों का सुन्दर प्रसार देखा जा सकता है।

आलम का वियोग वर्णन

आलम की मुक्तक रचनाओं में प्राप्य विरह वर्णन में व्यक्तिनिष्ठता नहीं फिर भी वे विरह की अनुभूतियों का चित्रण पर्याप्त मार्मिकता से कर गये हैं।

प्रिय की वियुक्ति के समय के कुछ चित्र देखने योग्य हैं। एक में आसन्न विरह से पीड़ित प्रेमिका के हृदय का जो सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है उसमें कहा गया है कि प्रेमिका विवर्ण और अबोल हो चली है, विदा होने के पूर्व प्रिय जब उसे हृदय से लगा लेता है उस समय वह सिर झुका लेती है और प्रिय के बहुत कहने पर भी बड़ी मुश्किल से अपना मस्तक उठा पाती है तथा प्रियतम के मुख की ओर देखते समय दो अश्रु बिन्दु उसके कपोलों पर ढुलक पड़ते हैं। दूसरे में कहा गया है कि प्रेमिका के प्राण उसके हाथ में नहीं रह जाते जिस समय उसका प्रिय विदा होने का प्रस्ताव रखता है। उनकी शारीरिक और मानसिक स्थितियों की पर्याप्त प्राणवान वर्णना आलम कर गये हैं।[1] प्रियतम के प्रयाण के समय प्रेमिका के प्राणों

[1] आलमकेलि : छंद १५८, १६७।

की उतावली आदि के कुछ चित्र अतिशयोक्ति-पद्धति पर भी उतारे गये हैं[1]। आलम ने ऐसी स्थिति में भी वियोग की व्यथा वर्णित की है जिसमें कृष्ण और गोपी अथवा प्रिय और प्रेमी शारीरिक अथवा भौतिक दृष्टि से एक दूसरे से बहुत दूर नहीं। उदाहरण के लिए ऊपर दिया गया छंद का भाव ही यह द्योतित कर रहा है कि अभी प्रिय का प्रस्थान नहीं हुआ है, वह अपनी प्रिया के निकट ही है और उसका आलिंगन भी कर रहा है फिर भी हर्ष और रोमांच के बजाय वियोग का सा संताप पैदा हो रहा है। यह वियोगानुभूति बहुत कुछ परिस्थिति और मनःस्थिति का परिणाम है। इसी कारण मान आदि मानसिक दशाओं में भी कभी-कभी विदग्ध कवियों ने वियोग की सी वेदना वर्णित की है। आलम की गोपिका कृष्ण की प्रतीक्षा में है और कृष्ण हैं कि आ ही नहीं रहे भौतिक दृष्टि से यहाँ वियोग की स्थिति नहीं है दोनों के बीच कोई खास फासला नहीं है फिर भी कृष्ण का आचरण और गोपिका की उसके परिणाम-स्वरूप जो मनोभावना है वह विरह की पूरी व्यथा का अनुभव कराने वाली है। प्रणयिनी इतनी विकल है कि न उठ सकती है और न अपना शरीर ही सम्हाल सकती है, उसका हृदय धक-धक करता रहता है और उसमें आग सी लगी हुई है—

> कारे सीरो नीर होति पीव ज्यों प्रबल ज्वाल,
> भहर भहर सिर पाइ भभकति है।
> एकई अधार याके हिये है रहत प्रान,
> आटक लगाये मगु कुंज की तकति है॥

कुछ छन्दों में कवि ने अभिलाष-हेतुक वियोग का भी वर्णन किया है जिनमें कृष्ण का प्रथम रूप-दर्शन अथवा उनके द्वारा बजाई गई मुरली की ध्वनि उनके चित्त में मिलन की व्याकुलता जगा देती है।[2] वास्तविक वियोग की परिस्थिति में प्रेमिका अथवा गोपिका की जो दशा दिखाई गई है उसका तो कहना ही क्या! प्रणयिनी की आँखें उमड़ पड़ती हैं, नींद हराम हो जाती है, एक पल के लिए भी पलकें नहीं लगतीं, पुतलियाँ आँसुओं का सारा पानी समेट कर उसके भार से अवनत हो जाती हैं—'पानिप डोठि सकेलि सबै जुरि कै, पुतरी भर भार नई हैं।'[1] परम दुखिनी विरहिणी चाहती है कि मृत्यु आ जाय और दुखों से उसका पिंड छूट जाय। कभी विरह विदग्धा किसी ज्योतिषी को आया देख उसे अपने घर ले जाती है और अपने प्रिय का हाल-चाल पूछती है तथा यह भी जानना चाहती है कि उसके दुखों का अंत कब होगा।[3] यह बड़ी ही स्वाभाविक और मार्मिक मनःस्थिति है, ज्योतिषी से सुदिन और लगन पूछने के प्रसंग को लेकर ठाकुर ने भी दो-एक बहुत सुन्दर सवैये लिखे हैं। कभी विरहिणी को प्रियतम के आने की अवधि टल जाने पर प्रतीक्षा जन्य बेचैनी होती है। उसके शरीर में विरह की क्यारियाँ खूब हरी हो उठती हैं, यह उद्भावना कैसी नई है—

> उससि उसाँसनि सों पांसुरी ह्वै न्यारी भई,
> बीच बची अँसुवनि भाँति भर लीनी है।

---

[1] आलमकेलि : छंद ३४०, ३४३।

[2] वही : छंद १११, १४५, ११६।

[3] वही : छंद ३४६।

विरह के बीज बये सलिल सों सींचि दये,
आछी भूमि मानो कामकाछी बयारी कीनी है ॥

प्रतीक्षा के तथा इसी प्रकार की वियोग-दशा के सूचक और भी अनेक चित्र हैं जिनमें गोपिका की दशा का विवरण कोई सखी अथवा दूती कृष्ण को दे रही है। ये चित्र अच्छे तो हैं पर एक सीमा तक वे परम्परामुक्त हैं।[1] उदाहरण के लिए देखिए—

(क) आगि सी भंवाति है जू ओरो सो विलाति है जू,
छिनुहू न देखे सुधि बुधि बिसराति है ॥
अँसुवनि भीजें औ पसीजें त्यौं त्यौं छीजें बाल,
सोने ऐसी लोनी देह लोन ज्यों गरति है ॥
(ख) आइ हू की ओर आये ऐसो गति होति भई,
औरती से नैना आँग ओरो सो औरातु है ॥
(ग) पावक तें पोखति हों पाँखुरी सी राखी है मैं,
प्यारे फिरि लागे पल राख आनि देखिहो ॥

अब आलम की वह प्रसिद्ध कल्पना देखिये जिसमें अगताप का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। बालम के विदेश होने के कारण अपने यौवनोत्कर्ष को पहुँची हुई विरहिणी अपने शरीर में ही ज्वाला और स्फुलिंग के दर्शन करती है और अपनी सखी को पडोस में जाने से मना कर अपने शरीर से ही दीपक प्रज्वलित करने का आमंत्रण देती है—

बालम बिदेस ऐसी वैस मैन आगि लागै,
जागि जागि उठै हियो विरह बयारि लै ।
अब कत पर घर माँगन है जानि आगि,
आगन में चाडु चिनगारी चारि झारि लै ।
साझ भई मौन सँझवाती क्यों न देति है री,
छाती सों छुवाय दिया बाती आनि बारि लै ॥

विरह की कृशता का वर्णन करते हुए आलम लिखते हैं कि माधव के बिना राधिका अब आधी की आधी भी नहीं रह गई। क्षीण हुई वह शिथिल सी धूल में पड़ी रहती है। उसका अस्थि-पंजर दिखने लगा है, मन उदास है, शरीर काँपता रहता है और मदनियाँ (आँखें) मूर्छित हो गई हैं। विरह के संताप से शरीर में रत्ती भर भी रक्त नहीं रहा। वह सोच में घुली जा रही है, उच्छ्वासों से मरी जा रही है और उसके शरीर में माशा भर मांस भी नहीं रह गया है—'सोचनि मसूसनि उसाँसनि सों मरी जाति, मासक ते मासऊ न मास रह्यो देह मैं।' यह विरह वर्णन फारसी शैली से प्रभावित है।

नायक कृष्ण की निष्ठुरता अथवा उनके प्रेम-छल का भी कथन एकाध छंद में किया गया है जिसमें प्रेमिका की खासी अच्छी खीझ, रोष, पश्चाताप आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है—

आलम कहे हो कहूँ ऐसियो विसासी है री,
जानि बूझि भई बात काहू की न मानती ।

[1] आलमकेलि : छंद १०४, १०६, १२३, १०३, १०५, ११६, ३४१ ।

मोसों मुख मोरि जैहै औरनि सों जोरि जैहै,
काहे को हौं जोरों नैना जो हौं ऐसो जानती ।।

कुछ छन्दों मे नायक की विरह व्यथा का भी वर्णन आलम ने किया है। नायक की वेदना भी दूतिकाओं द्वारा ही कथित है, एक स्त्री गोपिका अथवा राधा से कह रही है कि जब से तू कृष्ण के पास से चली आई है उनकी आँखें स्थिर भाव से तुझे ही देख रही हैं 'तू तौ चलि भाई वाके नैनाऊ न चले हैं' और उनकी अजीब दशा हो गई है—

वा घरी ते वैसे ही उहाँ ही, उही ओर दीठि,
पीठि पलटें लें मानो काहू काहू छले हैं ।

एक अन्य सखी कहती है कि उनका शरीर तेरे विरह मे गल रहा है, मैं तुमसे क्या कहूँ कि कृष्ण किस तरह तेरे वियोग म व्याकुल हो रहे हैं। तेरी याद कर करके उनकी आँखो मे प्रेम इतनी जल्दी छलक आता है जितनी जल्दी मदिरा का भी प्रभाव लक्षित नही होता—

तनक मे वेग ऐसो मद हू को नाहीं आई,
जैसे वेग नैननि मैं नेहु आइ जातु है ।

कृष्ण का विरही रूप रीति कालीन कवियों ने बहुत कम दिखलाया है, जिन कवियो मे वृत्ति की थोड़ी स्वच्छन्दता थी वे ही ऐसा कर सके हैं। कृष्ण अथवा नायक के विरह का वर्णन करके आलम ने प्रेम के सम-रूप का विधान किया है। यही बात हम उनके प्रबन्धो मे भी पाते हैं। अब वियोग की उस स्थिति का चित्र देखिये जिसमे प्रेमी प्रिय के भाव मे तन्मय हो रहता है—एक विरहिणी है जो अपने अस्तित्व को इन्द्रियो और मन समेत प्रिय मे लीन कर देती है—

बैननि सलोने श्रौन, नासा प्रान हू अघानी,
अति हूँ अनूप ओप रूप लोने नैन हैं ।
अधर मधुर परसन रसना सरस,
कामकेलि मिलि सुख साँचे अंग अंग छ्वै ।
अब कवि 'आलम' बिछोहे छिनु छिनु तिय,
पिय पीय कहि कहि कहे कहो कहाँ ह्वै ।
सुरति समानी मन मन ही मे देखि बोलै,
मोरे जान पाँच हू समाने पाँच रूप ह्वै ।

ऋतुओ एव प्राकृतिक उपकरणो द्वारा विरहोद्दीप्ति—आलम लिखते हैं कि ऋतुएँ तो प्रेमिका के विरह-दुख को जैसे बढाने के लिये ही आती हैं।[1] वसन्त ऋतु अपनी साज सज्जा के साथ आती है तो जैसे विरहियो को मरोड डालती है। स्वय सतप्त विरहिणी ऋतुपति के आने पर और भी दग्ध होने लगती है, चन्द्रमा की किरणें शीतलता के बजाय ताप देने लगती हैं, कमलिनियो पर भ्रमरो के गुंजार का दृश्य अब उन्हें दाहक लगता है और कुहू-कुहू करके कोकिलाएँ उसे अलग जलाए डालती हैं। नायिका इस बात से अवगत

[1] आलमकेलि : छन्द २३५, २३८, २३६, २२६, २३४, २३०, २३२ ।

है कि जाने कब से विरहिणी वधूओं को जलाने की तो वसन्त ने चाल ही सीख ली है—'बधुनि बधन की धों कब ते चला चलो।' विरहानल मे जलती हुई विरहिणी की ग्रीष्म ऋतु मे तो दशा और भी खराब हो जाती है। ग्रीष्म के दुष्प्रभावों को व्यर्थ करने के जितने उपचार हैं वे उलटे और भी सताप पहुँचाते हैं, वह क्षण-क्षण मूछित होती जाती है, उसके मन को मरोड़ें ही उसे मारे डालती हैं—मन ही मरते मरि रही मन मारि नारि, एक ही मुरारि बिनु मारी मरे मार को।। पटीर' या चन्दन उसे दुःख पहुँचाता है, 'उसीर' या खस पीड़ा और 'घन-सार' या कपूर से उसे लपटें निकलती मिलती हैं। जब शीतल करने वाली वर्षा ऋतु आती है तो उन्हें नवजीवन मिलता हो सो बात भी नहीं—यह अभिनव ऋतु भी उनके प्रतिकूल ही जान पड़ती है—

> बिस ज्यौं बमत यहै ग्रतक सो ग्रायो याते,
> कत बिनु ग्रतक दसा को नियरानी हैं।
> राती राती पाती बन बाती सी बरन लागीं,
> घाती घाम तानी कै लगाई देदि छाती हैं।
> लै लै ग्रलि भूलौं डारैं ग्रनफूली फूलो ह्वै तैं,
> भूली भूली फूल ही सी नारी मुरझाती हैं।
> जरी जरी रहैं सहैं घरी घरी हरी कहैं,
> हरी हरी बेलै देखि मरी मरी जाती हैं।।

सावन का आगमन सुनते ही वे मनभावन के बिना 'मैन बस' हुई नायिकाएँ व्याकुल होने लगती हैं, हवा चलने से उनका शरीर 'छीजने' लगता है, बिजली की कौंध देखकर उनके शरीर से पसीना छूट चलता है—

> बोरैं चीर चोली तनु ढारैं भरैं नैन जल,
> थोरे थोरे बादरनि चितै मुरझाति है।
> सौरी ह्वै है भूमि पियराइ लु रही हौं तनु,
> सोरी होति ज्यौं ज्यौं ऋतुसौरी नियराति है।।

बादल उन्हें मूर्छित कर देते हैं और आगत शरद ऋतु उन्हें हिमशीतल, और जब शरद ऋतु सचमुच आ ही जाती है तब देखिए उनकी दशा—सारा ससार शरद ऋतु की निशा मे उज्ज्वल हो जाता है किन्तु विरहिणी को ऐसा प्रतीत होता है जैसे आकाश अपरि-सीम रूप से ज्वालाओं में जल रहा है। जो चन्द्रमा 'सुधामई' और 'सुभग सरूप' कहा जाता है वह तो उसकी समझ मे और ही कोई चन्द्रमा है, उसे लगता है, कि कृष्ण के बिना सृष्टि में सब विपरीतता ही विपरीतता है। इस प्रकार हम देखते कि आलम ने विरहिणी की विरह-व्यथा को अनेकानेक ऋतुओं के दर्पण मे प्रतिच्छायित किया है। स्वभावतः ऐसे छन्दों में ऋतुगत सौंदर्य का अभिनिवेशपूर्ण चित्रण कम और विरहिणी की मर्मव्यथा का चित्रण अधिक हुआ है।

प्रकृति के नाना उपकरण भी जैसे चन्द्रमा, पवन आदि विरहिणी को कम तग नहीं

करते।[1] चन्द्रमा को विरहिणी अपने वध के लिये ही उदित हुआ मानती है। उसकी उज्ज्वल किरणों का स्पर्श उसे आग में लाल की हुई शलाका की चुभन सा लगता है, पूर्णमासी की रात उसे डरावनी लगती है, चन्द्रमा की ओर देखने से उसके शरीर से चिनगारियां उठने लगती हैं। वियोग का यह वर्णन अतिशयोक्तिमूलक वर्णना पर आश्रित है, कभी-कभी यह वर्णन जब भाव अथवा अनुभूति से रहित हुआ करता है तो कोरे चमत्कार का सृजन करता है। पवन की विरहोत्तेजकता दिखाते हुए कवि ने यह बताया है कि उसका स्पर्श विरहिणी को कितना प्रखर और घातक लगता है—एक मनु मारे मैं तो मार ही को मारो मरों, दूजे मारे मरत प्रवेश विष सर ज्यों। एक छन्द में इसी सन्दर्भ में एक असम्भव बात का भी सम्भव होना बड़ी मार्मिकता से दिखाया गया है—कैसे ये पत्ते झूम रहे थे, मंदाकिनी मंद मंद बह रही थी, एला और बेला के फूलों की सुवास चारों ओर फैल रही थी, शरद की सुहावनी संध्या किंचित शीतल लग रही थी—विरहिणी की धीरे धीरे पलकें झँप गईं। जो नींद कभी न आती थी आज इस सुखकर वातावरण के कारण अचानक अप्रत्याशित रूप से आ गई। क्या होता है कि थोड़ी ही देर में मालती पुष्पों की सुगन्धि से प्रपूर्ण और सम्मोहक मलयज वायु आ गई, उससे तन्द्राश्लथ उस नवयौवना के रोम-रोम सिहर उठे और उसकी नींद खुल गई। उसका आन्तरिक क्रोध उबल पड़ता है और वह वायु को कोसती हुई कहती है—

> सखिन सुहेल बर दच्छिन समीर मह,
>
> बरी पुरवैया बरी बैरिनि बिसासी है।

यहाँ पर 'बिसासी' का प्रयोग कैसी गम्भीरता लिये हुए है। जिस पवन की मंदिर मधुर लहरियों ने उसे निद्रा का विश्व-दुर्लभ सुख दिया था उसी ने कुछ ही क्षणों में उसे बिना बताये छीन लिया, प्रकृति के विश्वासघात का इससे बड़ा दृष्टान्त और क्या हो सकता है। यहाँ पर उद्दीपन रूप में आई हुई प्रकृति और नायिका की आन्तरिक मनोदशा का कैसा मनोहर और उत्तम सामंजस्य है। कभी-कभी 'मेघदूत' की अनुकृति पर हिन्दी कवियों ने 'पवनदूत' की भी कल्पना की है। आलम की विरहिणी ने भी अपने प्राणों की पीड़ा पवन द्वारा प्रेषित की है। प्रियतम के परदेश गमन के कारण दग्ध हृदया विरहिणी को कोयल, मोर, चन्द्रमा, पवन, दिशाएँ आदि प्राकृतिक उपकरण और शरीर को शीतलता प्रदान करने वाले प्रसाधन जैसे कुंकुम, सुगंध, कमल आदि सभी अत्यंत दाहक और अरुचिकर लगते हैं। उन्हें देखकर उसके हृदय में जो खीझ उठती है उसकी यहाँ पर कैसी स्वाभाविक सरस और काव्योपयोगी व्यंजना हुई है, क्रोध में भरकर विरहिणी इन सबको जला देने को कहती है—

> मारिबे को तिय भार के मैं रही मेरे कहे पिक मोरनि मारि दै।
>
> मारुत मंद सुगंध दहै ततु मंदिर मूँदि रा[illegible] [illegible] बारि दै॥
>
> 'स्याम' बिना कवि 'आलम' धाम तैं कुंकुम भेद सुगंधहि टारि दै।
>
> बारि कै देखि बरे तन चाली सो [illegible] तू [illegible] [illegible] [illegible] दै॥

[1] आलमकेलि, छन्द २३३, २४०, २४३, २४१, २४६।

यहाँ पर भाव प्रेरित होने के कारण यह उक्ति हास्यास्पद नहीं होने पाई है। कृष्ण के बिना ये सब कुछ अच्छे नहीं लगते अतएव इनका विनष्ट कर दिया जाना ही अच्छा। जो जो वस्तुएँ संयोग में सुन्दर और मनमोहक लगती थीं वे ही वे वस्तुएँ दारुण पीड़ा पहुँचा रही हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक उद्दीपनों को लेकर आलम ने पृथक से कुछ नहीं लिखा है। इन्हीं वर्णनों और प्रसंगों में कभी पावस की कभी मेघ और मयूर की और कभी एक संश्लिष्ट प्राकृतिक वातावरण की विरहोत्तेजकता का वर्णन किया है।

उद्धव-गोपी-प्रसंग—आलम ने विप्रलम्भ शृङ्गार के इस प्रसिद्ध प्रसंग पर अन्य स्वच्छन्द कवियों की अपेक्षा कुछ अधिक लिखा है। उन्होंने सूरदास आदि द्वारा स्वीकृत कथा का आधार ग्रहण करते हुए दोनों पक्षों के मत प्रस्तुत किये हैं। गोपियों की अनेक उक्तियों में भ्रमर को भी सम्बोधित किया गया है। आलमकेलि में दो छन्द ऐसे हैं जो इस प्रसंग की भूमिका का काम दे सकते हैं।[1] एक में कंस के राजकर्मचारी सुफलकसुत अक्रूर के कृष्ण को ले जाने का वर्णन है जिसके परिणामस्वरूप गाय, गोप गोपिका ग्वाल सभी दीन और दुखी हो जाते हैं तथा कृष्ण के द्वारा मथुरा लौटा दिये जाने पर नन्द एक हारे हुए जुआरी की तरह व्रज वापस आते हैं और उस समय यशोदा उनको अच्छी फटकार बतलाती है—

डारि सरब्बसु मारि मनें जैसे हारि चले कर झारि जुआरी।
आनन्द कंद गोबिन्द बिना अब नंद भई मति मंद तुम्हारी।

दो छन्दों में उद्धव द्वारा गोपियों का प्रबोधन है। वे कहते हैं कि तुम जिनका ध्यान करती हो वह 'रूपरेखाहीन, अगम्य और अभेद' है। उसकी प्राप्ति के लिये सनक, सनन्दन शंकर ऐसे योगी और तपस्वी अनन्त साधना करते हैं और सदैव समाधि लगाते हैं। व्रज में नर वेश धारण कर जो सगुण रूप में अवतरित हुआ है और जो तुम्हें सुलभ है वह वास्तव में वेद शास्त्रों के ज्ञान से भी कठिन है और अन्ततः निर्गुण है। व्यंजना यह है कि तुम निर्गुण का ध्यान धरो। दूसरे छन्द में वे कहते हैं कि ये श्याम जिनका तुम ध्यान धरती हो वे ही हैं जिनके लिये योगी समाधि लगाते हैं, रात्रि जिनमें नित्य चला जाती है, पलकें लगते ही मनुष्य जिनमें तन्मय हो जाता है और जो नेत्रों की पुतलियों से पृथक नहीं रहता। इनके लिए तुम व्यर्थ ही विकल हो रही हो।[2] ये कथन अशक्त और न्यास-स्थापन-क्षमता से शून्य हैं।

गोपियों के तर्क—उद्धव ने दो बातें कहीं और गोपियों ने बीस। गोपियों के तर्क इस प्रकार हैं—वृन्दावन-चन्द्र के लिये चकोर बनी हुई हम गोपियों को भला दूसरी ओर ही क्या? कृष्ण की रसीली मुरली की नाद सुधा पीने वाली गोपियों के लिये कैसा योग? कैसी मुक्ति, कहाँ का ज्ञान और कहाँ का ध्यान? यदि कृष्ण अविनाशी है तो यहाँ क्यों नहीं आ जाते? यहाँ आने से उनका क्या बिगड़ेगा? यह तर्क कितना भोला और मधुर है। भोली गोपियाँ कहती हैं—उद्धव जी। योग तो आप उन्हें सिखायें जो योग की युक्ति जानें, हम तो कृष्ण की वंशी का रस भोगने वाली हैं। वे और भी कहती हैं—उद्धव। समझदार

[1] आलमकेलि : छन्द ३२७, ३२८।
[2] वही : छन्द २००, २०१।

होकर भी तुम ना समझ सी बातें करते हो। जिसे पाने के लिए प्रवृत्ति का सुगम पन्थ है उसे योग या निवृत्ति का अगम पथ क्यों सूझेगा ? सच तो यह है कि जो चीज जिसके योग्य हो वह उसे बताई जानी चाहिये। इस प्रकार की उक्तियो मे वाग्वैदग्ध्य का सुन्दर वैशिष्ट्य देखा जा सकता है—गोपियाँ कहती हैं कि योगियो और मुनियो से भी कठिन साधना उनकी है—

बासुरी सबद सिंगीनाद पूरि पूरि रहे,
ताही को अँदेस सोई तन मन धुनि है।
बिरह की ज्वाल साधं साधं जलु नैननि को,
निद्रा तन भूख साधं साधं उनमुनिह हैं॥
'आलम' सुकबि यहि जुगति जागं सु जोगी,
अलि उपदेस हम सुन्यौ है न सुनि हैं।
सुमिरन मौन उर उरध उसास ए रूधे,
जैसे ब्रजबासी ऊधौ ऐसे कहा मुनि हैं॥

एक जगह गोपियाँ मीठा व्यंग करती हुई कहती है—हे उद्धव जी। शून्य या ब्रह्म का सयोग पाने से योगी परम आनद की अवस्था को पहुँच जाता है, इसी प्रकार से आप हमे भी कोई ऐसी युक्ति बता दें जिसमे श्रीकृष्ण का सयोग सम्भव हो सके।

गोपियो का आत्मदशा निवेदन—इन तर्कों के अनन्तर गोपियाँ आत्मदशा निवेदन करती पाई जाती हैं। वे कहती हैं—बिना कृष्ण के यहाँ तो पलकें ही नहीं लगती, उद्धव जी आप अजान बावरे की तरह कैसा उपदेश कर रहे हैं। जिस दिन से कृष्ण हमसे दूर हुए एक करोडो दिनों के समान सुदीर्घ लगने लगा है और अपनी दशा अधिक क्या कहें—

ता दिन ते बन सूनो घरु है दहत दूनो,
तारनि में ज्योति नहीं जटा भये केस हैं।

बदलती हुई ऋतुएं तो हमारे ऊपर और भी कहर ढा रही हैं। शीत, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा आ-आकर क्रम क्रम से हमारे शरीर को विषाक्त और मरणासन्न किये दे रहे हैं—

बधिबे को बूंदनि बियोगिनि को बीनि बीनि,
आये बैरी बादर बिसासो बिस बर्षने।

गोपियाँ कहती हैं—मनभावन जब परदेश हैं तो भामिनो भला किस प्रकार जीवित रह सकती है। उसे घर डरावना लगता है, प्रतिपल प्रलय सा भयावह और दुखद हो गया है और इन परम दुखिया आंखो को हम क्या करें, उद्धव जी इन्हें तो आप ले जाकर श्याम को ही दे दीजिये—

हाथहि के लीजें लै कै दीजें ब्रजनाथ हाथ
ऊधो दोऊ अँखियाँ लै साथ ही सिधारिये।

यहाँ सम्पूर्ण भाव से आत्म समर्पण किये हुए गोपियो की व्यथा व्यक्त हुई है।

व्यंगात्मक कथन—कही-कही गोपियो ने व्यंग्य और ईर्ष्या के भाव व्यक्त किये हैं

तथा कहीं-कहीं दैन्य भावना और विदग्धता से वे कहती हैं—राजा हो जाने पर कृष्ण हम अहीरिनों को भूल गये हम सब प्रकार गँवार और रूप-रसहीन हैं। वहाँ उन्हें परम रसवती कुब्जा जो मिल गई है। उन्हें अपने घर, गलियाँ अमराइयाँ और प्राणवासी सभी विस्मृत हो गए हैं। परिस्थिति के परिवर्तन से (राजा हो जाने से) उनमें इतना परिवर्तन हो गया है। यहाँ पर ईर्ष्या-प्रेरित व्यंग स्पष्ट है परन्तु गोपियों का विश्वास है कि कृष्ण पहले गोपियों के रहे हैं और अन्तत वे गोपियों के ही रहेंगे। वे इसी विश्वास पर जीवित हैं और आशावान हैं तथा पूछती हैं कि कृष्ण अब तो चन्दन चर्चित शरीर पर रुचिर वस्त्राभूषण धारण करते होंगे, विविध विलास भोगी कृष्ण अब कम बाते करते होंगे। जिन्हें हमारे बिना चैन नहीं आती थी वे अब हमें अपना समाचार भी नहीं भेजते हैं, क्या कभी इधर भी उनकी कृपा होती है—'मधुर कबहूँ माधो मुरलि करत है।' कभी वे कृष्ण का हाल भी पूछती हैं और उन पर व्यंग भी करती हैं—उनका कुछ हालचाल तो सुनाओ ऊधो। उन्होंने हमें जितने दुःख दिये हैं हम उन्हें दुःख नहीं मानती सुखमानकर अंगीकार करती हैं, उन्हें भला क्या पता कि हमारा वैरी विरह हमारी क्या-क्या दुदशा कर रहा है। जिन गोपियों से उन्होंने प्रेम किया उनकी भला उन्हें अब क्या पड़ी है, वे तो महाराज हो गए हैं न! अपनी पुरानी जान पहचान वे बिल्कुल भूल-गए हैं।

उद्धव द्वारा कृष्ण से गोपियों की दशा का निवेदन—उद्धव को ये सारी बातें बहुत बुरी लगी, वे गोपियों से अधिक तर्क न कर सके, उन्होंने उनकी अत्यन्त मार्मिक स्थिति का वर्णन कृष्ण से किया—मैं जिस समय पहुँचा मुझे ब्रज अत्यन्त मलिन, उदास और उजड़ा हुआ मिला। वहाँ के मकान मलिन थे, कुंज रजमय थे सब कुछ उजड़ा हुआ उजाड़ सा लगता था, विरहविकल गोपियाँ जहाँ तहाँ पड़ी हुई थी। उस ग्राम में जाते हुए मुझे एक आवाज तक न सुनाई दी किन्तु मुझे ही देखकर अचेत पड़ी हुई गोपियों को कैसे कुछ जीवन सा मिल गया, वहाँ का दृश्य ऐसा लगता था जैसे ब्याह का बिहान हो। हे कृष्ण तुम पर आसक्त गोपियाँ प्रेम को छोड़ अन्य किसी सिद्धान्त का विश्वास नहीं करती, दिन भर आहें भरते रहने से और रात्रि में आँसुओं की धारा बहाने से उन्हें क्षण भर का भी छुटकारा नहीं मिलता, वियोग से जो उनको जलन है वह कही नहीं जाती। समग्र दृष्टि से देखने पर कहना पड़ेगा कि आलम द्वारा लिखित भ्रमर गीत के छन्द पर्याप्त सुन्दर और मार्मिक हैं।[1]

घनआनन्द की विरह व्यथा

घनआनन्द का प्रेम वियोग-प्राण है। वियोग ही उसमें थिर तत्व है। निरंतर विरह ही उनका जीवन था, निरन्तर प्रिय का स्मरण और ध्यान ही उनकी दिनचर्या थी, निरन्तर आत्मवेदनाभिव्यक्ति ही उनका विश्राम था। रात-दिन अपनी विरह व्यथा से ओत-प्रोत उद्गारों के संग्रह का ही नाम 'सुजानहित' है। सुजान के हित पागल बने हुए घनआनन्द की अपनी व्यथा ही कविता बन गई है। इसी से उनके अनन्य प्रशंसि-गायक ब्रजनाथ ने कहा था—'समझै कविता घनआनन्द की हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।' सुजान प्रेम से संबंधित विशाल काव्यराशि का एक पृथुल भाग घनआनन्द के विरह-वर्णन से सम्बद्ध है। आत्म-

[1] आलमकेलि : छन्द २२७, २२८, २००, २०१, २०२, २०४, २०६, २०७, २११, २१२, २१४, २१०, २१६, २१९, २०५, २१५, २०३, २१७, २२१, २२०, २२४।

दशा कथन करने वाले छन्दों में कवि ने नाना रूपों में अपनी आकुलता, मन की, प्राणों की दशा का वर्णन किया है। रात-दिन जो विरह सताया करता था वह विरह था कैसा, हृदय किस प्रकार उस विरह की ज्वाला में जलता रहता था इसी का शत शत रूपों में कथन हुआ है। उद्विग्न मनोदशा की एक से एक तीव्र अभिव्यंजनाएँ घनआनन्द में भरी पड़ी हैं। विरह रासी-भूत हो उनके काव्य में आ बैठा है। समूचे मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में विरह व्यथा के चार ही चित्रकार उल्लेखनीय ऊँचाई प्राप्त कर सके हैं—गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन करते हुए सूरदास, नागमती का विरह निवेदन करने वाले जायसी अपने विरह को मुखर करती हुई मीरा और सुजान-विरही घनआनन्द। घनआनन्द की इसी तीव्र विरह मूलक भावराशि का अध्ययन हम सुविधा की दृष्टि से पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे।

आत्मदशा निवेदन[1]—आत्मदशा निवेदन करते हुए घनआनन्द कहते हैं कि मेरी पीड़ा का कुछ ओर छोर नहीं संसार के प्रसिद्ध प्रेमियों की विरह यातना भी मेरी 'अकुलानि' की समता नहीं कर सकती। प्रेमियों के सिरमौर मीन और पतंग तो मर कर विरह व्यथा से त्राण पा जाते हैं, उन कायरों की पीड़ा कोई पीड़ा नहीं, हम तो जीवित रहकर पीड़ा सहते हैं और वियोग की लपटें झेलते हैं। अपनी व्यथा को हम तक पहुँचाने के लिए कवि ने इसी प्रकार की एक से एक भावोत्कर्ष-क्षम कल्पनाएँ सामने रखी हैं उदाहरण के लिए यह कि चुड़ैल के लग जाने से प्राणों की जो दशा होती है उससे चौगुनी भीषण स्थिति सुजान के वियोग में हमारी हो रही है। इस प्रकार की उक्तियों में जो पीड़ा कचोट और ताप है वह स्वयं अपनी भाषा है, तीव्र भावों के आवेग में कवि लिखता चला गया है—

> **अन्तर आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।**
> **ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सु धरै नहिं थ्यावस॥**
> **नैनन घारि दियें बरसै घनआनन्द छाई अनोखियै पावस।**
> **जीवन मूरति जान को आनन है बिन हेरे सदाई अमावस॥**

हम देखते हैं कि आत्मदशा का निवेदन करते हुए घनआनन्द ने तरह-तरह से अपने मर्म की पीड़ा का उद्घाटन किया है।[2] बहुत कुछ कह जाने के बाद भी उनको यही लगता है कि वे अपनी पीड़ा ठीक से कह नहीं पायें—'विरह बिदमदसा मूक लौं कहनि है' कहकर उन्होंने इस तथ्य की ओर संकेत किया है। आत्मदशा निवेदन करते हुए घनआनन्द ने कहा है कि मेरे बहिरन्तर जो दाह है वह कही नहीं जा सकती, एक एक अंग की दशा भीषण है, चित्त अस्थिर और उद्विग्न है तथा मन बावला। यह व्यथा तीव्र होने के साथ साथ अनोखी भी है जिसमें हँसना, रोना, सोना-जगना साथ साथ होता है। इस व्यथा को कहा भी नहीं जा सकता, कहे तो किससे कहे ? इसमें रात दिन का बिताना मुश्किल है, इसमें प्राण नहीं निकलते बाकी शरीर और प्राणों की सब दुर्गति हो जाती है। त्रिय सर्वत्र गोचर होता है

---

१ सुजानहित · छन्द ४, २४० ५०, ६८, ६१, १४०, २०६, १४८, १६५,१७०, १७८, १६६, २०७, २०६।

२ सुजानहित · छन्द २१६, २२०, २२३, २२६, २७७, २८०, २८६, ३२४, ३७६, ३३३, ३४६, ३८४, ४३७।

पर व्याकुलता कम नही होती। मेरे विरह की तुलना मे ठहरने योग्य किसी का भी विरह नहीं, वियोगाग्नि मे तपे बड़े बड़े विरही भी मेरे विरह को देख दांतो तले उंगली दबा लेंगे। इस व्यथा मे उपाय काम नही आता, इस रोग की कोई औषधि भी नही, प्रिय का मिलन ही इसका एकमात्र उपचार है। इस प्रकार के अनूठे और हृदय प्रेरित भाव मुख्य रूप से आत्मनिवेदनात्मक छन्दों मे आए हैं, आन्तरिकता ही इन छन्दो की जान है और उसी के कारण जहाँ-तहाँ अत्युक्तियाँ भी स्वभावोक्तियाँ सी जान पड़ती हैं।

सुजान के रूप की रीझ से उत्पन्न बेचैनी—बेचैनी और व्यथा की व्यजना का एक आधार घनआनन्द ने सुजान के रूप सौंदर्य को भी बनाया है। सुजान इतनी रूपशालिनी थी कि उसका वियोग कवि को दाहे देता था। सुजान के रूप का अदर्शन ही मानो कवि पर पीडा के पहाड गिरा देता था। इस प्रकार की व्यथा को कवि ने दो प्रकार से व्यक्त किया है—एक तो अपनी आँखो की दयनीय दशा का कथन करके दूसरे मन की वेदना की विवृत्ति द्वारा।

घनआनन्द का प्रेम लौकिक था, रूप-सौंदर्य से उत्पन्न था, एक सासारिक तरुणी सुजान की छवि पर वे फिदा थे, उसी का अदर्शन उनके प्राणो की पीडा का कारण हो गया था। उसके अभाव मे आँखो की व्यथा का चित्र उन्होने अत्यन्त सप्राण रूप से अकित किया है।[1] वे कहते हैं—रूप उजियारे सुजान को देख लेने के बाद अब ये आँखें और कुछ नही देखती, इनकी रीझ और लगन तथा टेक की अनन्यता देखने योग्य है, अपने प्रिय को पाने के लिये ये कौन-कौन से दु:ख नहीं सहती? प्रिय दर्शन के लिए ये आँखें सदा रुग्ण, सतप्त और घबराई सी रहती हैं, जहाँ इनमे चचलता थी वही अब एक प्रकार की जडता समा गई है। इनकी बेचैनी निरन्तर बनी रहती है, खुली और बन्द दोनो स्थितियो मे वे परेशान रहती हैं, दिन-रात परेशान रहती हैं, पल भर के लिए भी पलकें नही लगती। पूर्व सुख तो इन्हे अब प्राप्त नहीं पर उसी को पाने के लिए ये झरने की तरह बहती रहती हैं, चिन्तित होती हैं, जलती रहती हैं, चौंकती रहती हैं। अनिद्रा, उलझन, बेकली, विपाक्तता यही इनका जीवन हो गया है। चिर दु:ख ही इनका प्राप्य और भाग्य है। ये अपने प्रिय की सतत प्रतीक्षा करती रहती हैं, उसकी प्राप्ति की लाख-लाख अभिलाषाओं से भरी रहती हैं, उसके स्वागत के लिए पलकों के पाँवडे बिछाती हैं और उसके चरणो को धोने की आकाक्षा मे निरन्तर अश्रुधारा बहाती रहती हैं। इनकी आशा अटूट है, ये उस परम रूपशालिनी के रूप और शोभा की शृखलाओ मे बँधी जो हैं। इतना सब होते हुए भी अनन्त दुख ही विधाता ने इनके बाँट मे रख दिया है। पता नही किस घडी मे विधाता ने इनका सृजन किया जो इन्हे इतना दारुण दुख झेलना पड रहा है। इनकी व्याधि असाध्य है पर जो हो घनआनन्द को एक बात का बडा बल और सन्तोष है और वह यह कि उनकी आँखें चाहे कितना भी दुख सहे परन्तु वे सच्ची आँखें हैं क्योकि और आँखें तो मोरचन्द्रिका के समान देखने को ही होती हैं—अर्थहीन और निरुद्देश्य-परन्तु इनमे किसी के प्रति चाह की मीठी पीर उठा करती है—

---

[1] सुजानहित : छन्द ३, ३५, ४२, ४३, ५१, ५६, ५८, ६४, १०५, १२०, १४५, १५१, १६४, १७६, १९९, २१२, २३०, ३०१, ३२१, ३४४ ३४८, ४५८, ४६२, ७, ८, ३६, १०६, १८२, २१०, २३५, २३७, २७६, ३२८, ३५३, ४९१।

मोरचंद्रिका सी सब देखने कों धरे रहैं,
सूक्ष्म अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि तै बिचारे जड कैंसेपहचानहीं॥
जान प्रान प्यारे के बिलोके अविलोकिवे को,
हरप विषाद-स्वाद-बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनदघन,
तेई आँखें साखें और पांखें कहा जानहीं॥

घनआनन्द की आँखें शरीर का एक क्षुद्र अंग मात्र न होकर एक स्वतन्त्र अंगी के रूप मे वर्णित हुई हैं। ये आँखें अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती है—उनकी एक प्रकृति है, एक आचरण पद्धति है चाहे वह कितनी ही विचित्र क्यों न हो। उनकी आँखें संकोच नही करती, ढीठ हैं, हठीली हैं, ओछी हैं, लोभिन हैं, भुक्खड़ हैं, चाह बावरी हैं, अविवेकी हैं और इसी कारण उन्हें इतनी व्याधि सहनी पड रही है। विरह विकल इन आंखों की नानाविध दशा कवि ने दिखलाई है—पानी मे डूबकर ये जलती रहती हैं, प्यासी होकर भी जल बरसाती रहती हैं, अपनी अनोखी लाग के कारण ये सोती हुई भी जगती रहती हैं और जगती हुई भी सोती, पानी बरसाकर भी रूप के पानी के लिए तरसती रहती हैं और सबसे विचित्र बात तो यह है कि अपनी होकर भी ये पराई हो गई हैं।

रूप-रीझे मन की दशा भी कुछ कहने योग्य नही। कवि कहता है—हे सुजान! तुम्हारे रुचिर रूप को देखकर मेरा मन बावला हो गया है, मेरी सीख नही सुनता, मेरी रीझ उमडी पड रही है मेरे चित्त मे भीषण बेचैनी है, यह आश्चर्य है कि तुम्हारे रूप-गुण(डोर)को पकड कर भी मैं डूब रही हूँ। ये प्राण पखेरु तुम्हारे रूप का चारा पाकर फँस गये हैं, तुम्हारे वियोग का बहेलिया इन्हे मारे डाल रहा है, रस-रस बरसाने वाली सुजान के बिना उर-पीर कही नहीं जाती, जीना विष की ज्वालाओ मे जलना है तथा कहीं भी कोई धैर्य दिलाने वाला नही है। सुजान के रूप रीझे और स्वभाव-मुग्ध मन की दग्ध एव विरहाकुल दशा का जीता-जागता चित्र देखना हो तो इस छन्द म देखिए—

मेरो मति बावरी ह्वै जाय जान राय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आंखिन मैं झांकै आय,
राखौं परचाय पै निगोडे चलैं धाय धाय।
विरह विषाद छाय आंसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरैन ताय ताय।
ऐसें घनआनन्द बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय फिरौं हाय हाय।

कवि के मन की वेदना का भी ओर छोर नही है[1]। रूप ने घनआनन्द के मन को

---

[1] सुजानहित छद २५, ४६, ५३, ६१, ६६, ११८, ५२८, १६८, १६०, २१५, २३५, २३७, २५५, २७६, २७६।

रिझा रखा है उसे देखने के लिए मन बावला बना रहता है, रीझ उमटी पड़ती है, चित्त बेचैन रहता है, जीवन अग्निदाह बना हुआ है। हृदय में चाह की ऐसी अनोखी आग लगी हुई है जो बुझाने पर और भभक उठती है, वह निरंतर सुलगती रहती है, कवि की मति सदा उस चिन्ता की आँच में औटती रहती है और ऐसी तीव्र व्यथा से बावली बनी रहती है, प्राण आँखों में आ-आकर झाँकते हैं, प्रिय के न मिलने पर धैर्य का बाँध टूट जाता है और वे हा हा करके बिलला पड़ते हैं। विरह में पड़ा मन घूर्णवात में पड़े पत्तों की तरह चक्कर खाता रहता है, यह दुखी मन सदा संकटों के समूह में घिरा रहता है, सोते जागते उसी सुजान का रूप-वैभव शूल की तरह अन्तर में कसकता रहता है, मन दर्शन और अदर्शन दोनों ही स्थितियों में परेशान रहता है, प्राण सदा उसी के लिए कराहते रहते हैं, लगता है जैसे मन की यह गति सदा ही बनी रहेगी। इस रिझवार ने हृदय के कज्जल-पात्र में सुजान का ही रंग-रूप पार रखा है, रोम रोम में वही समाई हुई है, यह मन अब और कहीं लगने वाला नहीं, शेष संसार इसके लिए सूना है। साधों से भरा हुआ यह मन अभिलाषों के आधिक्य के कारण इतना घबराया रहता है और उतावली में रहता है कि मिलने पर (स्वप्न में) कुछ कह भी नहीं पाता, मौका हाथ से निकल जाता है। विरही अपने प्राणों का समर्पण करके भी सुजान को पाना चाहता है। इस प्रकार के उद्विग्नता मूलक भावों को व्यक्त करते हुए कवि ने अपनी मनोदशा का अत्यन्त जीता-जागता रूप सामने रखा है, हृदय की बेचैनी का इससे अधिक मर्मान्तक उद्घाटन और क्या हो सकता है।

> सकट समूह में बिचारे घिरे घुटें सदा,
> जानी न परत जान ! कैसे प्रान ऊबरे।
> नेही दुखियान की यहै गति घनआनंदघन,
> चिन्ता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे॥

स्मृति जनित वेदना—विरह में प्रिय का स्मरण एक नितान्त स्वाभाविक मानसिक व्यापार है। स्मृति ही अनेकानेक विरहोद्वेगों की जननी है, कवि ने स्मृति जनित मनोदशाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया है। सच तो यह है कि हर छन्द में ही स्मृति लगी हुई है, विरह की हर भावना के मूल में वह अन्तर्व्याप्त है—

> तब तो छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।
> हित पोष के तोष सु प्रान पले बिललात महा दुख-दोष भरे।
> घनआनन्द प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
> तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे॥

स्मृति जन्य वियोग-व्यथा के वर्णन में मुख्य रूप से कवि ने अपने वर्तमान से ही प्रेरणा ली है। उसकी वर्तमान व्यथा ने उसे उसके अतीत सुख का स्मरण दिलाया है और स्मृति के आलोक में कवि अपनी व्यथापूर्ण विरह दशा को और भी अधिक दयनीय पा रहा है। दिन और रातों के सुख याद आते हैं जिसमें हृदय अधिकाधिक विदीर्ण हुआ दिखाई देता है, धैर्य छूटता हुआ दिखाई देता है और तड़प चौगुनी हो उठती है, फिर भी स्मृति घनआनन्द का पल्ला नहीं छोड़ती। घनआनन्द भी बीती बातों की याद कर करके इस विषम विरह दशा में भी कुछ राहत पा लेते हैं। परन्तु अन्त यह स्मृति दुख को बढ़ाने वाली ही है, जी को

जितना ही बहलाया जाता है स्मृति सजग होकर उतना ही इस अनुरागी हृदय को सालती रहती है। जो रातें सुजान के संग बातों ही बातों में बीत जाया करती थीं वही अब न जाने कहाँ की दीर्घता लेकर आया करती हैं, जो दिन जीवन का चरम सुख या फल दिया करते थे वे ही दिन अब यमराज से भयावने और लम्बे हुआ करते हैं, अंगों की भी दशा और हो गई है, सुख रूपी लता के जब लहलहाने के दिन आये तभी वह मुरझाई जा रही है। इस प्रकार के स्मृति प्रेरित नाना व्यथा-मूलक भाव कवि ने अंकित किये हैं।[1]

ऋतु और प्रकृति के कारण विरहोद्दीप्ति —विरह व्यथा को जागृत करने अथवा उद्दीप्त करने में चतुर्दिक की प्रकृति तथा ऋतुओं का बड़ा हाथ रहता है। प्रेम में ये ही सुख भी पहुँचाते हैं और अनन्त दुख भी। घनआनन्द ने प्राकृतिक उपादानों को विरह व्यंजना का एक अच्छा साधन माना है, इनके माध्यम से ही वे अपनी बहुत सारी पीड़ा उंडेल गये हैं। रीतिबद्ध कवियों के समान विधिवत् घनआनन्द ने वर्षा-वसंतादि के छन्द नहीं लिखे बल्कि भावों के आवेग में जब जिस ऋतु अथवा प्रकृति के उपकरण पर दृष्टि गई है तब उसकी विरहोत्तेजकता पर छंद लिख गए हैं। घनआनन्द की दृष्टि-ऋतुओं में मुख्यतः पावस और बसन्त, महीनों में सावन और फागुन, त्यौहारों में फाग और दीवाली, काल में दिन और रात्रि तथा प्राकृतिक उपकरणों में चन्द्रमा, चाँदनी, खिले हुए कमल, सुरभित समीर, मेघ, चपला और अन्धकार तथा पक्षियों में चातक पर गई है। इनके कारण होने वाली विरह-व्यथा की तीव्रता का उन्होंने अनेक छन्दों में मार्मिक चित्रण किया है।[2] ऋतुओं और प्राकृतिक उपकरणों से उद्दीप्त व्यथा के चित्रण में कवि ने बताया है कि पुरवैया उन्हें किस प्रकार लहक लहक कर दहकाती है, बहकते हुए बादल किस प्रकार घुमड़-घुमड़कर गरजते हैं, डराते हैं, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, और विरही का गला घोंटे देते हैं। चहकती हुई चपला आँखों को चकाचौंध से भर देती है, निस्तेज कर देती है, टूटती हुई उल्का के समान त्रस्त करती है और कभी विरही का दुःख देखकर हँसती भी है। महकती हुई सुरभि साँसों पर हावी हो जाती है, शीतल समीर का स्पर्श अंगों को दग्ध करता है, कामदेव से दूना दाहक हो जाता है, मयूरों की कूक हृदय में हूक उठा देती है और चातकों के बोल कलेजा काढ़े लेते हैं, अन्धकार राहु सा प्राणों को ग्रसता है तात्पर्य यह कि प्राणों को हराभरा करने के बजाय वर्षा उन्हें सुखाये देती है और जीवन दूभर एवं सन्देहास्पद हो उठा है। सारांश यह कि वर्षा कालीन सारी प्रकृति कवि के प्राणों की ग्राहक बनी हुई है। बसन्त अपने सहचर कामदेव को साथ लेकर विरहियों का शिकार करता फिरता है। सावन की बूँदें शरीर का स्पर्श कर शीतल करने के बजाय उसमें आग धपका देती हैं, यह उल्टी गति देखिए—

> बूँदें लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि देखौ।
> पौन सों जागति आगि सुनी ही पै पानी सों लागति आँखिन देखौ॥

रंग-रचावन सुजान के बिना फागुन फीका लगता है—सुगंध, चंदन, अबीर, गुलाल घनसार, सभी साँसों को घोंट देने वाले हैं और हृदय को बेतरह अधीर कर देते हैं—

[1] सुजानहित छंद ८, ६, १४६, १२६, २७८, ३६, प्र० ६।
[2] वही : छंद ७६, ८४, १५७, ३२७, २२६, २६६, ३३८, २६३, ४५, ३४६, २७८, २६८, ३८२, ३६१, ४४, १६८, १८२, ५३, २७०, ३३८, २०७।

सोंधे की बास उसासहिं रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बैरी सो है री गुलाल, अबीर उड़ावत धीरज ही को॥
राग विराग धमार त्यों धार सी, लौटि परयौ ढंग यौं सब ही को।
रंग-रचावन जान बिना घनआनन्द लागत फागुन फीको॥

दीपावली मलार से विरक्ति जगाने वाली होकर आती है, दिन और रात जाने कहाँ की दीर्घता लिये आते हैं, दिन सुहाता नहीं, रात करवटें लेते भी नहीं बीतती, रात के दुःखों का तो कहना ही क्या—नागिन की तरह विषैली रात अनन्त रूपों में विरही को डसती है। सुजान के बिना रात और दिन जिस प्रकार व्यतीत होते हैं उस व्यथा को कहा नहीं जा सकता उनके तो मानो स्वयं वे दिन और रात ही हैं—

जानै वेई दिन-राति, बखानै तैं जाय परै दिन-राति कौ अंतर।

चन्द्रमा भी प्राण खींचे लेता है, अमृत के बजाय विष देता है और शीतलता के बजाय दाह और उसकी चाँदनी। वह तो चुड़ैल की तरह चबाए लेती है, प्रलयसिन्धु के समान विरही को डुबोने के लिए उमड़ती चली आती है और उलटी ज्वाला है उसकी जो अम्बर से धरती की ओर आती है तथा अंगों को अनंग की आँच में जलाए देती है। विकच कमल उदास बनाते हैं और सुरभित समीर दाह देता है, चातक प्राणों को वेधता है। इस प्रकार व्यापक प्रकृति अनन्त रूपों में विरही घनआनन्द को वेदना ही पहुँचाती है। कवि की वेदना अपने आप ही कुछ कम नहीं, उस पर से ये प्रकृति उसकी अन्तर्व्यथा को शतशत रूपों में बढ़ा देती है। कवि विकल होकर महासन्तप्त हो उठता है, अपने उसी सन्ताप को यथासम्भव तीव्रता के साथ उसने व्यक्त किया है। वर्षा, फागुन, रात्रि और जुन्हैया उसे सर्वाधिक पीड़ा पहुँचाते हैं, इनसे उसे जितनी वेदना-वृद्धि होती है अन्य उपकरणों से उतनी नहीं।

अनंगदाह—कामदेवता भी विरही को कुछ कम पीड़ा नहीं देते, उनका काम ही है अव्यक्त रूप से तन और मन में प्रवेश कर दोनों को भ्रम देना और एक अकथनीय अतृप्ति और उत्कट कामनापूर्ण उत्तेजना से भर देना। अनंग संयोग में भी सताता है पर तब उसका साधन सुलभ रहता है 'जतन-जतन' सम्भव हो जाता है पर विरह में विरही क्या करे, अनंग पीड़ा का उपचार सम्भव नहीं। उपचार रहित विरही को मनोजन्मा देवता जो पीड़ा पहुँचाते हैं उसे उस विरही के सिवाय और कोई नहीं जानता। कामज्वर विरही के अंगों को तपा तपाकर क्षीण किए देता है, उसके प्राण मूर्छित हुए जाते हैं, अनंग रंग में डूबा हुआ शरीर जतन-उपचार के बिना विवर्ण हो रहा है, मतवाला होकर कामदेव अंग अंग में दहक उठा है, रोम रोम में उसके विजय की दुंदुभी बज रही है यही सब बातें इन संदर्भों में दिखाई गई हैं[1]। अनंग अंगों को प्रज्वलित करता है, हृदय के सुखों की दुनिया उजाड़ डालता है और अनन्त आपदाएँ अपने संग में ले आता है—

(क) मानौ फिरै न घिरै छबलानि पै जान मनोज यौं टारत मारैं।
(ख) रोम ही रोम परी घनआनन्द राम की रौर न जानि निबेरौ।
(ग) अंग भए विथरे पट लौं सुरझे दिन ढंग अनंग मरोरनि।

---

[1] सुजानहित : छंद १२५, १३६, २६२, ३४३, ३२६, ७४, २५१।

प्रेम-वैषम्य—प्रेम वैषम्य घनआनन्द के काव्य मे अवतीर्ण होने वाला सर्वप्रमुख भाव है, शत-शत छन्दो मे सहस्र-सहस्र रूपो मे इस प्रेम-विषमता की चर्चा हुई है और अनेक बार कवि ने अपने प्रेम की विषमता या विपरीतता का स्वत उल्लेख किया है। बात यह है कि उनका निजी जीवन ही विरोधो और विषमताओ का जीवन रहा, सुख से उन्हें जैसे भेंट ही न हुई थी, कम से कम अन्तर्साक्ष्य से तो यही प्रमाणित होता है। उन्हे सुजान की चाह थी और सुजान उन्हे न मिली, सुजान से उन्होने सर्वात्म भाव से प्रेम किया पर उसने इनका साथ न दिया यो कहिए इन्हे ठुकरा दिया। सारा जीवन उसी के वियोग मे विसूरते हुए उन्होंने काट दिया, यही उनके जीवन की सबसे विषम स्थिति थी, इसी ने इन्हे पागल कर रक्खा था। इनके प्रेम के अनेक निन्दक भी थे, कुछ ने इन्हें खुले-आम गालियाँ भी दी थी, उन्होंने उन सबकी परवाह भले ही न की हो पर उनसे इन्हे पीडा तो पहुँची ही होगी। मृत्यु भी इनकी अब्दाली के सिपाहियो के हाथो हुई, कृपाण की धार पर ये प्रेम-विरही सीधे उतार दिये गये, जिस आरे पर कट जाने और कृपाण की धारा पर दौडने की बात औरो ने कही है वही बात घनआनन्द ने करके दिखा दी थी, कथनी और करनी का यह अभेद कितने लोग दिखा सकते हैं। ताल ठोककर प्रेम के अखाडे मे उतरने वाले प्रेमियो को इस प्रश्न का उत्तर देना पडेगा। घनआनन्द की बराबरी तो क्या यदि उनके चरणो के धूल के बराबर भी वे अपने आपको सिद्ध कर सकें तो भी उनकी तारीफ की जा सकती है। सारा जीवन सुजान की स्मृति का स्तूप सा बनकर उन्होने काट दिया, आज उनका जीवन और उनका काव्य उनके प्रेम का अविचल स्मारक है। ऐसी प्रेम साधना करने वाले घनआनन्द का जीवन विषमता का एक लम्बा-चौडा आख्यान है। उनके जीवन की एक-एक घटना क्या प्रमुख घटनाओ के महत्वपूर्ण ब्यौरे हम न मालूम हो तो क्या उनकी एक-एक साँस का उनकी एक-एक आह का इतिहास तो हमे पता है। उनका हर छन्द एक दीर्घ नि श्वास है। अपने जीवन की इस विषमता से वे बेतरह विकल थे, वह उनके हृदय पर सबसे भारी पत्थर था, उस स्तूप की विशालतम चट्टान थी जिसका दर्द कभी निकलना न था, जिसकी पीडा कभी बन्द न होती थी। विषमता की वह चट्टान क्या थी ? सुजान की निष्ठुरता, उदासीनता, अनमनापन, निर्मोहिता। एक तरफ इतना लगाव था, दूसरी तरफ इतनी उपेक्षा, एक तरफ इतनी पीडा थी दूसरी तरफ इतनी बेफिक्री, एक तरफ स्मृति दूसरी तरफ शुद्ध विस्मृति प्रिय का यही आचरण उनके हृदय को सदा सालता रहता था, इसी शूल से उनकी सारी भावना वैषम्य-परक हो गई थी। विषमता उनकी भावधारा का ही नहीं, उनकी अन्त सत्ता का ही नहीं, उनकी भाषा और अभिव्यक्ति का भी अपरिहार्य अग हो गई थी इसी कारण उनका सम्पूर्ण काव्य विशेषत सुजान प्रेम का व्यजक प्रत्येक छन्द इस वैषम्य की अन्तर्व्यापिनी भावना से ओत-प्रोत है, उनकी हर उक्ति मे वैषम्य की भगिमा किसी न किसी रूप मे समा गई है। यह वैषम्य उनके तन-मन-प्राण का अभिन्न तत्व हो गया है, हर कथन किसी न किसी प्रकार का विरोध भाव या वैपरीत्य लिये आता है। विपरीतता शत-शत रूपों मे ही मुखर हो उठी है।[1]

---

[1] सुजानहित छन्द २६, १८७, १६६, १६८, २०४, २२५, २१५, २२७, २७८, २८०, १०८, १२८, २३७, २०२, ३२५, १३१, ११३।

घनआनन्द को अपने प्रेम की विषमता का पूरा भान था, उन्होंने स्वत: अनेकानेक छन्दों में इस पक्ष की ओर संकेत किया है। अगर कोई चाहे तो यह भी कह सकता है कि घनआनन्द को प्रेम-विषमता सिद्धान्त रूप में स्वीकार थी जैसा कि नीचे के छन्द से व्यक्त होता है पर यह समझ रखना चाहिये कि घनआनन्द प्रेम-विषयक किसी सिद्धान्त को स्वीकार करके या स्थापित करके प्रेम करने नहीं गये थे। यह तो उनके जीवन की गहरी अनुभूति है जो अत्यन्त प्रौढ़ रूप में प्रकट होकर सिद्धान्त-कथन सी प्रतीत होती है—

> मोहि दुख-दोष दोखैं तोहि तोखैं पोखैं सुख,
> चिन्ता मोहि चूरि तोहि रासैं निपरक है।
> रवाय कै जगाई मोहि बिहुँसावै स्वावै तोहि,
> तेरैं भूत भरैं मोहि सालैं ज्यौं करक है।
> तोहि चैन चांदनी मैं सरसै हरष-सुधा,
> मोहि जारैं बारैं हू वै विषाद को अरक है।
> कहूँ घनआनन्द घमडि उघरत कहूँ,
> नेह की विषमता सुजान अनरक है।।

घनआनन्द ने प्रेम-वैषम्य का भाव मुख्य रूप में तीन रूपों में व्यक्त किया है—

(१) प्रिय के निष्ठुर आचरण पर प्रकाश डालते हुए, प्रिय के असंगत और अनुचित आचरण पर टीका-टिप्पणी और शिकायत करते हुए, (२) प्रिय के निष्ठुर या विषम आचरण के कारण अपनी दशा का वर्णन करते हुए, (३) प्रिय से प्रतिकूल या विषम आचरण न करने का आग्रह करते हुए।

प्रिय के निष्ठुर आचरण पर प्रकाश डालते हुए घनआनन्द जो कुछ कहते हैं उसका केन्द्रीय भाव यही है कि प्रिय अर्थात् सुजान का प्रेम पक्का नहीं है, न उसमें सतता है न एकनिष्ठता। इसके अभाव में उसका प्रेम छल और धोखा ही है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम बात कवि यह बतलाता है कि प्रिय प्रेम और आशा जगाकर उदासीन हो जाता है जिसके कारण हमें संसार का उपहास और लोक की निन्दा सुननी और सहनी पड़ती है, चारों तरफ यही चर्चा सुनाई देती है। प्रेम सम्बन्धी प्रिय के इस आचरण को अर्थात् प्रेम जगा करके स्वयं उदासीन हो जाने की बात को घनआनन्द ने तरह तरह से व्यक्त और स्पष्ट किया है।[१] वह कहता है कि प्रिय हमें सींच करके जलाता है, अमृत पिला करके विष देता है, गुणों में बाँध करके छोड़ देना है, अधमरा या घायल करके परवाह नहीं करता, ऊँचे से आकर वहाँ से नीचे पटक देता है या वहीं छोड़ देता है, स्नेह देकर रुखाई अख्तियार करता है, स्नेह सम्बन्ध जोड़कर तह के साथ तोड़ देता है, मँझधार में सहारा देकर डुबो देता है, हृदय हर कर चिन्ताओं की चिता में जलाता है, हँसी-हँसी में धोखा देता है, रूप दिखाकर दूर हट

---

[१] सुजानहित : छन्द ६, ८, २१, २२, २५, ३३, ३८, ४३, ४६, ७४, ८७, १०८, १६०, ११६, १४०, १८३, २३२, २४६, २७२, ३६६, ३६७, ३८५, ४०६, ४४१, २६, २८, २१७, ३१५, २२६, २७१, २८३, २६७, ३१२, ३६६, ३२२, २८२, २५८, २४४, ३४, ६३।

जाता है, मिठाई का टुकडा दिखाकर खींच लेता है। ये सारे कथन प्रिय के प्रेम सम्बन्धी एक ही आचरण अथवा तथ्य का पोषण करते हैं और वह यह कि प्रिय पहले प्रेमी के हृदय में विश्वास पैदा करता है फिर विश्वासघात करता है। इसी कारण कभी कभी कवि यह भी कहता पाया जाता है कि हे भगवान अमोही से किसी का प्रेम न लगे। इसी सन्दर्भ में कवि ने सुजान के स्वभाव और व्यवहार के बारे में भी कुछ बातें कही हैं जो इस प्रकार हैं—प्रिय के रुख में कडापन है, हृदय में कठोरता है, वह सुनता नही और न जवाब ही देता है, न मेरी सुनता है और न अपनी कहता है, सारा सुख खुद समेटे बैठा है और दुख इधर भेज देता है, अपनी करनी पर विचार नहीं करता, सुध भुला देता है, सारी पुरानी पहचान को पीठ दे देता है जानकर भी अजान बनता है, कपट करता है, प्रेम का प्रपच करता है, रोष करता है, अनुचित कर्म में विश्वास करता है, प्रेम का नाटक करता है, कृत्रिम प्रेम जतलाता है, किसी का दुख नहीं समझता, आनन्दघन जीवन निधान होकर भी किसी की प्यास नहीं समझता, पीडा पहुँचाकर भी पीडित नही होता, अनेक से प्रेम करता है या जतलाता है, जब जिससे चाहता है उसमे प्रेम करता है, प्रेम करके दूर हट जाता है, किसी का रोना गाना उसके लिए एक बराबर है, अपने में ही मस्त और फूला रहता है, ऐसा निधडक है कि अपने प्रेमी की हत्या करने में भी नहीं डरता, निष्करुण है। घनआनद उसकी निष्ठुरता के नाना दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं और क्रूरकर्मा प्राणियों (वधिकादि) से उसे अधिक क्रूर सिद्ध करते हैं। इतना सब कह जाने के बाद यही कहकर उन्हें सन्तोष करना पडा है कि प्रिय के स्वभाव और आचरण के विषय में मौन रहना ही अच्छा[1]।

प्रिया सुजान की निष्ठुरता ने घनआनन्द को किस स्थिति में पहुँचा दिया था इस बात को कवि ने बड़े विस्तार से अंकित किया है[2]। प्रिय की निष्ठुरता कवि के जीव को अधीर कर देती है, आग में जलाती है, चिन्ता में चूर करती है, रोम रोम में पीडा भर देती है, रुलाती है, तडपाती है, शरीर को भस्म बनाकर उडा देने की वृत्ति जगा देती है। विरही के प्राण कलमलाते हैं, बाय-बावरे होते हैं, उमडते हैं, उफनते हैं, सहमते हैं। वह अपनी दशा कहे भी न तो क्या करे, अन्दर ही अन्दर प्राण घुटते हैं यदि वह उसे कहता नहीं। वह कामार्त्त होता है, बुद्धि उसकी बावली हो जाती है, सब तरफ से विरोध और निन्दा के वाक्य सुनने पडते हैं, निर्लज्जता और हलकेपन का अनुभव होता है, उद्वेगों की आँच में अन्तःकरण जलता है, हृदय विदीर्ण होता है, मृत्यु भी कुछ दूर से ही निरादर करके चली जाती है जिसमे दैहिक और मानसिक यातनाएँ कम नही होती बल्कि और बढती हैं। सुजान की उदासीनता या निष्ठुरता की बढियाँ उसे ही अपने हृदय पर झेलनी पडती हैं,

---

[1] सुजानहित : छन्द १६०, १९५, २२९, २४४, २५८, ३४५, ३६९, ३६६, ३९१, ४०६।

[2] सुजानहित छन्द ४९, ८७, ९२, ९३, १०८, १४०, २५८, २५६, २८०, २८३, २८४, ३१५, ३१८, ३२५, ३२९, ३८३, ३९८, ४४३, ४८६, ४९२, २९३, ३१२, ४८६, २५६, २८४, २९५, ३९१, १६०, ९३, २४१, २८४, ३२६, ३८५, ७४, २४६, २८४, ३१६, ३२९, ३२६, ३६५, ३६८, ३८६, ३९८, २१७, ६६, ७५, ३३१, २६२, प्र० ६, ७, ५।

ऋतुएं भयावनी लगती हैं, सब कुछ उजड़ा सा लगता है, दृष्टि को कुछ सूझता ही नहीं। उद्वेग की तरंगों में पड़ा हुआ विरही घनआनन्द विकल होता है, स्मृति की आँच में तपता है, मिलन की आशा में दग्ध होता है, जीते जी अग्निदाह की मर्मांतक यातना घनआनंद सी निष्ठा के बिना झेली भी तो नहीं जा सकती। घनआनन्द का प्रेम निष्फल है, कष्टप्रेम है, पानी बिलोने के समान है फिर भी वह रीझा रहता है। निर्मम प्रिय से प्रेम करके उसकी दशा देखने योग्य हो गई है—अधीरता, बौद्धिक अशक्तता, मानसिक दीनता-हीनता की दशा को वह पहुँच गया है। प्रेमी तो इस दशा को प्राप्त हो रहा है और प्रिय है कि कान में रुई डाले हुए है। कोमल चित्त वाला द्रवणशील प्रेमी प्रिय के अवगुणों के लिये पछताता है—यह उसके रीझ की, प्रेम-वैषम्य में भी उसके अनुराग की चरम सीमा है। कवि प्रिय के निरन्तर स्मरण, गुण-कीर्तन, निहोरे और आत्मनिवेदन में नाना प्रकार से तल्लीन है; उसकी विवशता और आधीनता जीवन में व्याप्त रिक्तता, अन्तर्दाह, अनचैन, वेदनावृद्धि, निष्प्राण दशा कही नहीं जा सकती। विरही कवि जैसे पीड़ा का अक्षय आगार हो गया है। कभी वह पश्चाताप करता पाया जाता है, कभी तरह-तरह से अपनी बेबसी जाहिर करता है, कभी अपनी निष्ठा और अनन्य प्रीति का इज़हार करता है, कभी वह अपने को ही समझाता है और धैर्य बँधाता है और कभी प्रिय से कहता है कि दो आँसू तुम भी बहा लो। तुम्हारा ऐसा प्रेमी जनम-जनम में भी तुम्हें नसीब न होगा, यहां कवि का प्रेम गर्व बड़े मनोहर रूप में व्यक्त हुआ है— **मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोय है।** घनआनन्द ने कई बार प्रिय की अन्तर्बाह्य स्थिति से अपनी स्थिति की तुलना करते हुए अपनी दयनीय स्थिति का तथा प्रेम की और उसके परिणामों की विषमता का स्वरूप प्रत्यक्ष किया है। जो हो जैसा भी हो, प्रिय घनआनद के प्राणों की प्राण है। सौ बात की एक बात यह है कि वे उसी पर सौ जान से निसार हैं—वह उसके दोषों को भूला हुआ है, उसके दोष भी उसे गुण तथा प्रिय के व्यक्तित्व के आभूषण ही प्रतीत होते हैं। '**मो हिय कों तो अमोहियौ मोहौ**' और '**कपट करेहूँ प्यारे निपट भले लगौ**' आदि कहकर इस तथ्य की उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी है। प्रिय की निष्ठुरता और प्रेम विषमता से उत्पन्न आत्म-दशा निदर्शन सम्बन्धी इन चित्रों की भी मर्मस्पर्शिता असाधारण है।

प्रेम-वैषम्य के चित्रण में तीसरे प्रकार की भावराशि वह है जिसमें अपनी प्रिया सुजान से कवि ने यह आग्रह किया है कि वह अपनी निष्ठुरता छोड़ दे, अन्याय न करे, निर्मोही न बने आदि आदि[१]। यह आग्रह नाना रूपों में किया गया है कभी सीधे स्पष्ट कथन द्वारा, कभी प्रश्न के रूप में, कभी प्रार्थना के रूप में, कभी समझा बुझाकर या उपदेश के रूप में, कभी आत्मीयता के साथ और कभी व्यंग के रूप में तथा खीझ और झल्लाहट की स्थिति में धिक्कार और फटकार के रूप में भी। बात यह है कि यदि प्रिय को अनुचित आचरण से रोका न जाय तो वह भी ठीक नहीं। प्रेमी सदा से प्रिय को ठीक राह पर लगाता आया

---

[१] सुजानहित : छन्द ७, ३३, ३८, ७१, १७७, २१, १८६, ३११, ४३१, ३६५, ८६, २७, ६३, ११६, १८४, २२४, २७१, ३१६, ४६५, ११६, १७७, ४०४, २८४, ३६५, २१७, १८७, ४१५, १३५, २४१, २६०, १०८, १५६, १७१, १८४, १६१, २६७, ५०६।

है, कम से इस दिशा में उद्योग तो करता ही रहा है। यह उद्योग प्यार-पुचकार, समझाने-बुझाने से लेकर डाँटने फटकारने तक सभी रूपों में हुआ करता है। जो प्रेम देता है अपना सर्वस्व निछावर कर देता है उसे फटकारने का भी पूरा अधिकार है। घनआनन्द ने अपने इस अधिकार को बड़ी ईमानदारी से कमाया है और कमाया है इसीलिये उसका उपयोग भी किया है। प्रिय का निष्ठुर आचरण, प्रेम मार्ग पर चलकर भी उसका असगत व्यवहार ऐसा ही रहा है जो कड़े से कड़े शब्दों में फटकार के योग्य था। घनआनद ने प्रिय को निष्ठुर न होने की सलाह, अप्रिय आचरण से विरक्त रहने का सुझाव तथा अनुकूल होने का आग्रह नाना रूपों में किया है[1]। प्रिय को अमोही होने, अन्याय करने, जिलाकर मारने, अपना बनाकर दूर करने, रोष करने, मँझधार से उबार कर डुबोने, अपने प्रेमी को त्यागने, अमृत पिलाकर विष देने, विश्वासघात करने, मौन होने, रूठने, आँखें फेरने, दुख देने आदि से रोका गया है इन कर्मों से विरत रहने को कहा गया है। प्रिया से यह भी पूछा गया है और बड़ी आत्मीयता के साथ पूछा गया है कि वह अपने प्रेमी को क्यों प्यासा ही मारे डाल रही है, क्यों अनीति कर रही है, सुनती क्यों नहीं ? उसे ऐसा करने से क्या मिलता है ? थोड़ा सा मिलकर वह बहुत सा दुख क्यों देती है ? बेसम्हाल को सम्हालती क्यों नहीं ? वह आखिर उसी का तो है, अपने प्रेमी को इतनी पीड़ा क्यों पहुँचाती है, हाथ पकड़ कर अलग क्यों हट रहती है ? जीवन-दायिनी, मनमोहिनी, पयोद रूप होकर भी हृदय क्यों जलाती है और बदनामी क्यों सहती है ? ऐसे प्रश्नों का एक ही अर्थ है कि वह अपने इन विपरीत और विषमय आचरणों को बदले। उससे प्रार्थना भी की गई है कि वह अपने प्रेमी की बात सुने, निराश न करे, अपने द्वार से न हटाए, मन न फेरे, प्रिय की बातें सुने और अपनी भी कहे, अपनी सूरत दिखा दे और अपने इतने बड़े प्रेमी को खो न दे, आलस्य न करे, दया करके दूर से ही थोड़ा दर्शन दे दिया करे। कभी-कभी स्नेहसिक्तवाणी में उपदेश देते हुए भी इसी आशय के भाव व्यक्त किये गये हैं कि सुजान अपने प्रेमी को स्नेह सहित आमन्त्रित करे, उसे आदर मान दे, स्निग्ध दृष्टि से देखे, रोष न करे, अपने दरवाजे हटाये नहीं, अपनी ओर खींचकर छोड़े नहीं, अपने प्रशस्त गुणों को कलंकित न करे, लज्जा जनक कार्यों से अलग रहे, अपने हितैषी की ही हत्या का जघन्य कर्म न करे, उसे कलपाये नहीं, उसकी बातों पर आनाकानी न करे, रुक्षता न धारण करे, प्रेमी को सहारा दे, उसके घाव पर नमक न छिड़के आदि। कभी व्यग्य का आश्रय लेकर भी विरही को कहना पड़ा है कि खुद तो मौज करना और प्रेमी को तड़पाना कुछ अच्छी बात नहीं, लेने के नाम पर आगे आते हो, देने के नाम पर पीछे हट जाते हो, दुख से तुम्हें क्या लेना देना, कभी दुख तो देखा नहीं फिर पपीहों की वेदना उसे क्या मालूम, अपनी ही खुशी में मस्त रहने वाले को किसी और की वेदना का क्या पता। जरा स्वार्थ की सकीर्ण सीमा से ऊपर तो उठे ! मेरी पीड़ा तो उसके लिये खेल है, यह खेल उसने बहुत दिन खेला है। उसके प्रेम में निष्ठा भी तो नहीं, नित नये फंदे डालना ही उसका काम है, चकोरों को दुख के अधकार में झोंककर खुद मस्ती

[1] सुजान-हित छन्द ७, ३३, ३८, ७१, २१, १८६, ३२२, ३६१, ४३१, ३६५, ११६, १८४, २२४, २७१, ३१६, ४६५, ११६, १०७, ४०४, २८४, ३६५, २१७, १८७, ४१५, प्र० २७।

की तरंगों में बहनी ही तो उसे आता है, यदि उसे देने में सकोच है तो वह लेता क्यों नहीं आदि आदि एक से एक चुटीली बातें उसमें कही गई हैं। खीझ के बढ़ने पर कवि को फटकार, धिक्कार और अनुचित शब्दों के प्रयोग तक का सहारा लेना पड़ा है। अन्तर्व्यथा ही तो ठहरी, अनुरक्ति की प्रगाढ़ता रोष और क्षोभ की गहरी उत्तेजना भी जगाती है और घनआनन्द सुजान को वैरिन, क्रूर, अपमानकारिनी, निर्लज्ज, विश्वासघातिनी, वधिक आदि कहकर फटकारते और धिक्कारते भी पाये जाते हैं। वे कहते हैं विधाता ने तुझ सी निष्ठुर सृष्टि ही क्यों रची? भगवान न करे ऐसे जड़, वधिक, क्रूर और भकभूर (मूढ उजड्ड) से किसी का काम पड़े। प्रेम-वैषम्य ने इस प्रकार के अनूठे भावलोक का सृजन घनआनन्द के काव्य में किया है।

प्रेम की दृढ़ता और एकनिष्ठता—सुजान के विरह ने घनआनन्द को क्या-क्या यातनाएं सहने को बाध्य नहीं किया परन्तु उनके प्रेम में कभी कमी नहीं आई थी बल्कि विरह की आंच में तपकर उनके प्रेम ने और भी मंजिष्ठा राग पकड़ लिया था। अपने बहुत से छन्दों में उन्होंने अपने इस प्रेम-निष्ठा का कथन किया है[1]। प्रेम की यही एक बहुत बड़ी खसूसियत हुआ करती है—वह टूट नहीं सकता, झुक नहीं सकता, वियोग-व्यथा के भभके पा-पा कर और भी गाढ़ा रंग पकड़ता है। कवि की प्रेम-निष्ठा और अनन्यता तथा प्रीति की दृढ़ता का स्वरूप इस छन्द में देखिये—

जब तें निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तें गहीं है उर आन देखिबे की आन।
रस भीजे बैननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,
मधु, मकरन्द-सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रान प्यारी न्यारी घनआनन्द गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करति गान।
अंग अंग मेरे उनहीं के संग रंग रंगे,
मन-सिंघासन पै विराजे तिन ही को ध्यान।

विरह घनआनन्द की प्रेम भावना को शिथिल करने के बजाय और भी दृढ़ता प्रदान करता है। कोई भी यातना उसके प्रेमावेग को दबा नहीं सकती। उसके लिए दूसरा ठौर नहीं, दूसरा द्वार नहीं। ससार को वह व्यर्थ समझता है और निंदकों की पर्वाह नहीं करता, प्रेमी उसी को देखना चाहता है, उसी का गुण श्रवण करता है, उसी के गुण गाता है और उसी का ध्यान करता है। सुजान की विरक्ति और निष्ठुरता भी उसे अपने निश्चय से विरक्त नहीं कर सकती। यही दृढ़ता और प्रेम की निष्ठा कवि में वह सामर्थ्य भर देती है, जिससे वह प्रिय के लिए कुछ भी कर सकता है। वह प्रिय की घोरतम कठोरता को भी करुणा में परिणत करने की शक्ति और हिम्मत रखता है, वह प्रेम के मैदान की धूल में मिल जाना चाहता है। प्रेमी की दृढ़ता ने उसे प्रेमोन्मादी बना दिया है, उसमें बावले की सी लौ लग गई

[1] सुजानहित : छद १५, ७१, ८०, १०१, ७, ८, ६३, ४६१, १०५, १०३, १२३, १२४, १६६, २२१, २४१, २६०, २६२, २१३, ३११, ४२२, २६७, २८२, २६०।

है। सुजान न भी मिले फिर भी वह प्रेम करना नहीं छोड़ सकता, कवि के प्रेम की दृढ़ता, अनन्यता और एकनिष्ठता का इससे अधिक ज्वलन्त रूप और क्या हो सकता है।

अभिलाषाएँ, लालसाएँ और उत्कण्ठाएँ—अपनी अभिलाषाओं और लालसाओं को व्यक्त करते हुए कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से विरहावस्था में अपनी मानसिक दशा का परिचय दिया है[1], उसने अपनी आंतरिक इच्छाओं को वाणी देकर जहाँ एक ओर अपने प्रगाढ़ अनुराग को संवेदित किया है वहीं नाना प्रकार की कामनाओं और अभिलाषाओं द्वारा अपनी बेचैनी का भी इजहार किया है। विरही की सबसे बड़ी लालसा सुजान के दर्शन की है और इसके लिये उसके प्राणों में अनोखी उलझन है, विकलता है। अश्रुवर्षण, तड़प, तृषा, कलिक्षेप की कठिनता, सभी कुछ इसी कारण होती रहती है। प्रिय दर्शन की ललक लाख-लाख अभिलाषाओं के साथ कवि की आँखों में समाई हुई है साथ ही अनंग-दुख-भंजन की भी अभिलाषा विरही के अंतस् में विद्यमान है, रोम रोम में तरंगित काम की तरंग भी क्षीण पड़ने वाली नहीं। ये लालसाएँ कवि को प्रिय के आगे दीन-हीन कर के उसे अनुनय-विनय करने को बाध्य कर देती हैं, उसे उसके चरणों पर अपना सिर रख देने की इच्छा जागृत कर देती हैं। इन अभिलाषाओं के कारण ही विरही इतनी मर्मान्तिक वेदनाएँ सह कर भी जीवित है। आन्तरिक अभिलाषा के दो चित्र देखिये—

(क) अभिलाषनि लाखनि भाँति भरौं बरुनीन सभाव ह्वै काँपति हैं।
घनआनन्द जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
दृग लाय रहौं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोंपहि भाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग मापति हैं।

(ख) साखा कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी हलै मान आनि कै सलिल बूडैं,
घुरि जाय चायनि हो हाय मनि को कहै।
तऊ दुख हाई देखौं छिदति सलाकनि सों,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।
पियमनसा लौं वारी मिहँदो घनदघन,
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै।

सन्देश सम्प्रेषण—विरह में आत्म-व्यथा को व्यक्त कर अपना जी हल्का कर लेने का एक बहुत अच्छा साधन संदेश-सम्प्रेषण भी हुआ करता है। यह संदेश चाहे जिस माध्यम से सम्प्रेषित किया जाय—पत्र द्वारा, पक्षियों द्वारा, प्राकृतिक उपकरणों, मेघ, वायु आदि द्वारा, दूतादि द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार। इस माध्यम द्वारा भी विरह की तीव्रतम व्यंजनाएँ कवि लोग कर गए हैं। घनआनन्द ने संदेश भेजने के चार माध्यमों का उपयोग किया है—

---

1 सुजानहित : छंद २६, ५८, ७२, ७८, २६६, ३४८, ११७, ३२८, ३४३, ३०७, ४२८, २९१, २६८, ७६, २१३, ३४३, ३०६।

पत्र, दूत, पवन, और मेघ[1]। प्रथम दो साधन तो कवि के विरह की अतिशयता के कारण व्यर्थ से ही हैं, विरह की परम उद्विग्न स्थिति में इतना अनुपात होता है, इतना संताप और इतनी टीस पैदा हो जाती है कि शरीर बेकाम हो जाता है आँखों का कुछ सूझना नहीं और पत्र लिखना असंभव हो जाता है—

> बिरहा-रवि सो घट व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवै इकली छतियाँ।
> हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उघरे बरसैं दिन और रतियाँ॥
> घनआनन्द जान अनोखो दसा, न लखौं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
> नित सावन दीठि सु बैठक में टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ॥

घनआनन्द कहते हैं कि किसी समय स्थिर चित्त से यदि पत्र लिखने या लिखाने की ही चेष्टा की जाय तो भी विरह जाग्रत हो उठता है, प्रिय की स्मृति विरह के तीव्रतम आवेगों को उभाड़ देती है शरीर झनझना उठता है और उँगलियाँ पंगु हो जाती हैं, विरह का संताप पत्र लिखने नहीं देता। यदि संदेश ही किसी की जबानी भेजने की चेष्टा की जाय तो वह चेष्टा भी चेष्टा मात्र ही होकर रह जाती है क्योंकि उन विरहाग्नि ज्वलित संदेशों को हृदय से रसना तक ले आना ही असंभव है फिर उन्हें सुनना तो अकल्पनीय ही है। कवि-भावना की भाषा में बात की जाय तो इसे हम यों कह सकते हैं कि जिनके कान वज्रों के समान हों वे ही ऐसे संदेश सुन सकते हैं और जिनके मुँह भट्टिया के समान हों वे ही ऐसे संदेश कह सकते हैं। 'पाती-मधि छाती-छत' वाले छन्द की प्रसिद्ध उक्ति को आचार्य पं० विश्वनाथ मिश्र ने स्वानुभूति निरूपिणी कहकर रीतिबद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पृथक बतलाया है क्योंकि यहाँ नाप-जोख नहीं तथा विरही अपनी ज्वाला में स्वयं ही भस्म होता है किसी और को भस्म नहीं करता, दूसरों के लिए इतना ही कहा गया है कि वे ऐसी बातें सुन नहीं सकते।[2] इस प्रकार न पत्र लिखे जा सकते हैं और न विरह ज्वाला से जलते हुए संदेश ही भेजे जा सकते हैं—'ग्रव गैल सँदेसन हू की थकी'। सोते हुए भी जगने वाला, रात में बरर्रा उठने वाला, आपाद मस्तक विरह से प्रकम्पित विरही पत्र नहीं लिख सकता। एक पत्र घनआनन्द ने भेजा भी था जाने किस समय, जाने किस प्रकार, पर वह पत्र कागज पर नहीं लिखा गया था—हृदय को ही कागज बनाकर उसी पर प्रेम कथा लिखी गई थी पर वह किस प्रकार टूक-टूक कर दिया गया था और बाँचा भी नहीं गया था। तथ्य का मार्मिक उद्घाटन कवि ने इस छन्द में किया है—

> पूरन प्रेम को मन्त्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि कै लेख्यौ।
> ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
> ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
> सो घनआनन्द जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ।

अब रह जाते हैं दो साधन, दो प्राकृतिक उपकरण पवन और मेघ। पवन से दो बातें कही गई हैं एक तो यह कि मेरा संदेशा कौन कहेगा और कौन सुनेगा (छोटों की बात

[1] सुजानहित : छन्द २७४, २०६, ३४१, ४२८, ३३५, २५६, ३३६।
[2] घनआनन्द ग्रंथावली : वाङ् मुख : पृ० ३२।

बडे लोग नही सुना करते) परन्तु पवन की शक्ति, गुण और ढरकौंही बान—'पर-दुख दल के दलन कौं प्रभजन हौं'—देखकर विरही उसे अपनी व्यथा के निवेदन का कार्यभार सौंप देता है। दूसरी बात पवन से यह कही गई है कि तू तो सभी दिशाओं मे जाता है, कृपा करके मेरा यह कार्य कर दे—'विरह बियाहि मूरि आंखिन में राखौं पूरि, धूरि तिन पायन की हा हा नेकु आनिदै।' ऐसा ही एक निवेदन पर्जन्य के प्रति भी किया गया है जो बहुत प्रसिद्ध है तथा जिसमे प्रतीकात्मक पद्धति से सुजान-प्रिया तक कवि ने अपनी विरह दशा निवेदित करने की प्रार्थना की है—'परकाजहि देह को धारे फिरौ ।' संदेश प्रेषण के छदो मे विरही की अति सतप्त दशा, विकलता, अश्रु-प्रवाह, अग्निदाह आदि का चित्रण पर्याप्त मार्मिकता से बन पड़ा है और वायु तथा मेघ द्वारा अपनी दीन हीन स्थिति को प्रिय तक सवेदित करने की और प्रिय के चरण रज को अपने पास ले जाने की विनय की गई है।

प्रिय का गुण-कथन—घनआनन्द ने अपने विरह निवेदन मे केवल सुजान की निष्ठुरता का ही वर्णन नही किया है, उसके गुणो का भी अनेक बार कीर्तन किया है। यह अवश्य है कि आक्षेप, निष्ठुरता और प्रिय के प्रेम वैषम्य की बातें बहुत बडे पैमाने पर असाधारण विस्तार से कही गई हैं। वेदना और विरह व्यथा से पीडित चित्त से प्रेम-वैषम्य और प्रिय के निर्मम आचरण की सविस्तार वर्णना स्वाभाविक ही है पर प्रिय के गुणो से कवि का ध्यान सर्वथा हटने नही पाया है, अनेक बार उसकी गुणावली का स्मरण किया गया है और साथ ही साथ उससे विरह की पीर हर लेने की प्रार्थना भी की गई है। कृपा की याचना करते हुए प्रिय की गुणावली का स्मरण स्वाभाविक है।[1]

दया की याचना—विरही कवि ने कितनी ही बार प्रिय से अत्यत दीन होकर कृपा की याचना की है कि वह उसके वियोग सताप का शमन करे। विरही के हृदय मे प्रिय की दया की आकाक्षा सर्वथा स्वाभाविक है, विरह उसे परम दीनता की स्थिति मे ला पटकता है।[2] प्रिय से दया की याचना करते हुए कवि को अपनी हर प्रकार की दीनता और असमर्थता व्यक्त करनी पड़ी है। अपनी विवशता और प्रिय के ही एक मात्र आश्रय होने और उद्धारकर्त्ता होने की बात भी कही गई है, कवि को अपनी टेक और प्रीति-निष्ठा भी बार बार दुहरानी पड़ी है तथा प्रिय के महत्व को ध्वनित करने वाली बातें पद-पद पर कहनी पड़ी हैं। वास्तव मे दैन्य भाव के साथ-साथ ये अन्य भाव इस प्रकार जुडे हुए हैं कि इन्हे पृथक करके दीनता दिखाई ही नही जा सकती और कृपा की याचना भी नही की जा सकती। जिसने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया हो उसे जीने के लिए याचना के सिवा और मार्ग भी क्या बच रहता है—'हार्यौ सब भाँति जो, बिचारो सो कहा करै।' याचना इन बातो की गई है कि प्रिय विरही की याद करे, उसे सुख का दान दे, उसके मन का

---

१ सुजानहित - छन्द ८६, ६०, ३५०, ३५१, ३५२, ३५५, ३५८, ३७६, ३६१, ६४७।

२ वही - छद ८६, ६०, ३५०, ३५१, ३५२, ३५५, ३५८, ६, ७, ४६, २४, ६२, ७१, ८१, ११७, ११६, १२२, १२३, १२४, १३८, १६४, १८८, २०३, २०५, २२८, २४३, २६०, २७१, २६१, ३४०, २६१, २६५, २७३, ३७७, ३६२, ३६३, ४२५, ४२६, ४३१, ४४४, प्रकीर्णक २७।

भाया करे, वियोग को मिलन मे परिणत कर दे, आलस्य-उदासीनता और निष्ठुरता छोड़कर जल दे, रस दे, जीवन दे, तरसाये नहीं बल्कि अपने 'मोह-आवरो' प्रेमी को दर्शन देकर आनन्दघन की वर्षा करे, प्राण चकोरो को अपना मुख चद्र दिखलावे, रोग का उपचार करे, झिड़के नहीं अपने पास ही शरण दे, मान न करने का दान दे, प्रेमी के अवगुणो को न देखे, अपने पास मे ही बसा ले, तड़पते हुए प्राण मीनो को जिला ले, अपने प्रेमी की टेक को देखे, बेचारे चातक की चूको को नहीं, जब इतनी वेदना सह लेने के बाद उजाड़े नहीं, कृपा कर उसकी पुकार सुनें, वियोग को बीच से हटा दे, अपने चातक की ओर ध्यान दे, विरह के तम को ज्योत्सना में परिणत कर दे, अपनी सुधा पूर्ण हँसी और चितवन से जीव को जिला दे, उसकी ओर स्निग्ध भाव से देखे और उसके हृदय मे बस जाय, छिप कर हृदय न जलाये बल्कि बाहर आकर हृदय में छा जाय, विरह की दावाग्नि को अपने सयोग द्वारा शीतल करे, जीव रूपी चातक की सारी आशकाएँ, उसके मन के सारे खटक हर ले, भुला न दे वरन् कृपा करे, अपनी रस-रग पूर्ण मृदु वचनावली का माधुर्य उसके कानो को पिलाये, अपनी गति की सुन्दर शोभा के साथ उसकी आंखो मे बसे और प्रिय के हृदय की सारी अभिलाषाएँ पूरी कर उसकी रीझ को सार्थक करे, आलस्य और विश्वासघात के बजाय अनुकूलता प्रदर्शित करे, अपनी कृपा ढरक को जगा दे, प्रिय की विनय मान ले और उसके प्रति कोमल आचरण करे।

प्रिय के प्रति दीनता प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं—इस दीन की दशा तो देखिये, इसे आपकी ही टक लगी हुई है, यह दीन जीव आपके द्वार पर पड़ा हुआ है, आपके मोह मे व्याकुल यह आपका ही चातक है, देखिये न। यह बेचारा रोगराज वियोग का सताया हुआ है, यह आपके ही प्यार का पाला हुआ है, हा हा! इसे अपने दरवाजे से हटाइये मत, इसके लिए दूसरा द्वार ही नहीं है, चिंताओं की चिता में अब अधिक जलते नहीं बनता, इसके अवगुणों को लेकर आपको क्या करना है, ये प्राण जल-विरत मछलियों के समान हो रहे हैं, हे रसराशि! ये आपकी ही मछलियाँ हैं, जरा इनकी टेक का तो विचार कीजिये, यह लोभी जब टक लगाकर आपकी ही ओर निहारा करता है। तुम्ही तक इसकी पहुँच है, यह तुम्हारी ही दुहाई बोल रहा है, अपनी अनत अधीरता मे तुम्हे ही पुकार रहा है, तुम यदि कृपा न करो उसे त्याग ही दो तो उसका क्या वश है, तुम्हे वह स्वेच्छानुरूप कुछ करने को बाध्य तो नहीं कर सकता, बस तुम्हारी कृपा (ढरक) का ही सहारा है, इन अभागिन आंखों की क्या दशा है ये बेचारी तो किसी भी गिनती में नहीं, तुम्हारे बिना तो ये एकदम तुच्छ और हीन हो गई हैं, हे रस भरे ढरारे (दयानिधान) इन चातकों की चूक पर मत ध्यान दीजिये और 'नीर प्यारे मीन श्री चकोर चदहीन ह्वै तें अति ही अधीन दीन गति मति पेखिय।' प्रिय के लिये लालसा या ललक जितनी तीव्र होती गई है दीनता भी उतनी ही अधिक परिमाण मे उतनी ही अधिक तीव्रता मे व्यक्त हुई है, जो बेचारा अपना सब कुछ तुम्हारे ऊपर निछावर कर चुका है वह रोने गिड़गिड़ाने के सिवा और क्या कर सकता है। हमारा मन करता है तुम्हारे पैरो पर गिर पड़ूँ, तुम्हारे चरणो को अपने सिर से लगाऊँ, आंखो से स्पर्श करूँ, हृदय और प्राणो मे बसाऊँ, चूमूं और उनकी शोभा देख-देखकर अपने कपोलो मे उन्हें स्वच्छ करता रहूँ। ये नि श्वास तप रहे हैं

मैं प्राण कब तक रखूँगा, अब किसी की बातों का उत्तर देने की भी हमारे पास शक्ति नहीं रही, इशारे से कब तक बातें करता रहूँगा, शरीर में घोर विवर्णता छाई हुई है, एक कलकी मुँह भर बचा हुआ है, अब बहुत उजड़ चुका हूँ, अधिक उजड़ने की सामर्थ्य नहीं। किसकी शरण जाऊँ, कहा पुकार करूँ, चिंताओं में मति खोई जा रही है, शरीर ताप में तपता है आँसुओं से भीगता है, 'भीजनि दहनि' साथ-साथ चलता रहता है, जीवन का क्या ठिकाना, कब इससे भी वंचित हो जाऊँ। हृदय उद्वेगों के कारण उजट चुका है, मन मर-सा गया है। नीच वियोग अलग मारे डाल रहा है, दूर से ही तुम्हारे पैर पड़ता हूँ, यही बता दो मैं किसी को क्या जवाब दूँगा। इन आँखों को किसका रूप दिखलाऊँ? इन कानों को किसके वचनामृत पिलाऊँ? इस मरे मन को किसे परचाऊँ? मैं हाथ जोड़कर, पैरों पकड़कर प्रार्थना करता हूँ मुझे आप बता दें कि मैं क्या करूँ। दीनता और विवशता ने इस प्रकार के भावों का ज्वार कवि के हृदय में उद्वेलित कर दिया है। परम बेबसी, बेचैनी, दीनता की अनुभूति उसे भिखारी से भी बदतर हालत में ला पटकती है। सब कुछ हारकर निछावर करके जो कंगाल हो जाता है उसी की सी हालत विरही घनआनन्द की हो गई है—

प्रिय के हित की कामना—प्रेमी प्रिय को लाख बार बुरा कहे, उसकी निष्ठुरता की शिकायत करे, उसे उपालम्भ दे, उसकी कठोरता के प्रति हजार प्रकार की बातें करे पर वह प्रिय का अनिष्ट कभी नहीं चाह सकता, अनिष्ट तो दूर उसका बाल-बांका होना भी नहीं चाहता। भारतीय प्रेमी का तो कम से कम यही आदर्श रहा है। सूर आदि की गोपियों ने 'ल्याही लाख धरो दस कुबजा अन्तहि कान्ह हमारो' अथवा 'जहँ-जहँ रहो राज करो तहँ-तहँ लेहु कोटि सिर भार। सूरदास हम बैठि असीसहि न्हात खसै जनि बार।।' आदि कहकर इसी ऊँचे भव्य और दीप्त प्रेमादर्श को सामने रक्खा है। परवर्ती हिन्दी कवि भी प्रेम की इसी ऊँची भावना को व्यक्त करते रहे हैं। प्रिय के दोषों से अवगत होकर भी सच्चा प्रेमी उसका अहित कभी नहीं चाहता, उससे बदला लेने का भाव अपने मन में नहीं रखता। इतना ही नहीं भविष्य में उसके विषम आचरण की सम्भावना होने पर भी उसका हित ही चाहता है। यह बहुत ही उदात्त भाव है, प्रेम की तीव्र अनुभूति रखने वाले संसार के हर सच्चे प्रेम के चितेरे कवि ने यह भाव-चित्र अवश्य प्रस्तुत किया होगा।

घनआनन्द कहते हैं अथवा गोपिका की उक्ति मान लीजिए—यदि कभी तुम्हें भी प्रेम की चोट लगी (हालांकि उसकी सम्भावना बहुत कम है) तो मेरे ही समान असह्य पीड़ा से तुम्हारा हृदय भी पीड़ित हो उठेगा। क्या जाने ऐसा दिन भी कभी आयेगा जब विषम वियोग से पीड़ित तुम भी रात-दिन व्यथा के मारे तड़पा करोगे—जब तुम्हारा प्रेम पात्र तुम्हें न चाहेगा, तुम्हारे पास न आयेगा और तुम उसे पाने के लिए तरसोगे जैसे कि आज हम तुम्हारे लिए तरस रही हैं—ईश्वर करे एक बार ऐसा दिन आ जाए लेकिन इतना कहते-कहते गोपिका का दिमाग दूसरी दिशा की दौड़ उठता है और वह कहने लगती है 'नहीं नहीं' यह ठीक नहीं, तुम जब किसी की पीड़ा से तड़पोगे तब भी तो हमें सुख न मिलेगा, तुम्हारा वियोग दुख देखकर हमसे सहते न बनेगा। हम वियोग की पीड़ा को जानती हैं, हम नहीं चाहतीं कि यह अग्नि ज्वाला किसी को सहनी पड़े। फिर तुम्हें सहनी पड़े यह तो हम स्वप्न में भी नहीं चाह सकती हैं इसलिये हम यही चाहती हैं कि तुम सुखी रहो, सदा सुखी रहो,

जहाँ भी रहो जैसे भी रहो। हम दुख सहती हैं बस हमी दुख सहती रहें, तुम क्यों सहो।' यहाँ भी प्रेम-वैषम्य का सौंदर्य देखने लायक है—कृष्ण गोपियों की वेदना देख सकते हैं, गोपियाँ कृष्ण को वेदना सहते नहीं देख सकतीं। यह भावोदय और भाव-शान्ति कितनी मधुर है, कितनी मनोवैज्ञानिक है, अन्तःकरण की एक स्थिति विशेष का कैसा जीवन्त रूप उपस्थित करती है। गोपिका एक बार चाहती है कि प्रिय भी जरा हमारी तरह वियोग के दुख झेल ले तो मजा आ जाय, उसे भी पता चल जाय कि वियोग की पीड़ा कैसी होती है, फिर अपना आचरण सुधार लेगा, फिर हमें कभी दुख न देगा। प्रतिकार के इस दूषित भाव का पहले तो उदय हुआ, शीघ्र ही फिर दूसरा भाव आता है, मन में सद्विचार जगता है—नहीं नहीं। ऐसा क्यों हो। हमारे प्रेम के आल-वाल को पीड़ा क्यों पहुँचे। उसे पीड़ा पहुँचेगी तो हम क्या सुखी रह सकती हैं? हमारे सुख का दारमदार तो वही है, वही यदि कष्ट पायेगा तो हमारा अन्तःकरण उस पीड़ा से विरत कैसे रह सकता है। आखिर वह भी तो हमें झेलनी होगी, इससे अच्छा है कि प्रिय सुख से रहे। हम झेल रही हैं वह व्यथा, हम झेल सकती हैं, हम झेलती रहें। दोनों क्यों दुख पायें? कम से कम एक तो सुखी रहे और विशेषकर वह जो हमारे प्राणों का प्राण है, *जिसे हम इतना चाहती हैं। उसके मंगल की कामना की यह वृत्ति कितनी मार्मिक है, कितनी* अन्तःस्पर्शिणी है और कितनी निश्छल है। इस भावाभिव्यक्ति के टक्कर के छन्द अन्य कवियों में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेंगे। रीति बद्ध कवि इस तर्क-वितर्क पद्धति से अन्तर के स्वरों को कभी मुखर ही नहीं कर सकता, पीड़ा का पूरा भार झेले बिना ऐसी आह निकल ही नहीं सकती, प्रेम का पूरा पथ पार किये बिना अन्तर से ऐसे कोमल भाव-कुसुम खिल ही नहीं सकते सुकुमार भावों की ऐसी झाँकी सामने लायी ही नहीं जा सकती—

> लगैगी तुम्हैं हूँ कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
> मेरी सी दुहेली पीर अन्तर पिराय हौं।
> कहा जानौं ऐसो दिन ह्वैयगो कबै धौं दैया,
> विषम बिछोह द्यौस रातिहिं बितायहौ।
> छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनन्द जू,
> मोहि फिरि आपने हू दुखनि दुखायहौ।
> तातें तुम सुखी रहौ हौं ही दहौं हौं कहौं कब,
> लपटनि ताती छाती लपटि सिराय हौं।

इसी प्रकार के और भी अनेक भाव कवि ने किये हैं।[1]

अपना ही भाग्य खोटा है प्रिय का क्या दोष—प्रेम पात्र की निष्ठुरता के बावजूद भी प्रेमी उसे चाहता तो है ही, उसे निर्दोष भी बताता है। विधाता ने ही हम दोनों के भाग्य में भिन्नता रख दी है, प्रिय का दोष नहीं। यह एक विशेष भाव है जो अनेक बार कवि द्वारा कथित हुआ है।[2] विरही घनआनन्द ने अपने भाग्य का खोटा और प्रिय को निर्दोष अनेक कारणों से कहा है। इन आशय की उक्तियों के पीछे रीझ-खीझ, बेबसी, क्षोभ, व्यंग

---

[1] सुजानहित : छन्द २३२, २५७, ३०३, ३६५, ३१६, २३२, ६६, प्रकीर्णक ५२।
[2] वही : छन्द ६६, २५७, २२५, ४६३, ३६५, ३२३, ४६६, प्रकीर्णक ५।

बहुत कुछ छिपा हुआ है। मार्त वेदना सहते-सहते भी ऐसी प्रतीति होने लगती है कि सुख तो हमारे भाग्य में ही नहीं। यहां पीड़ा का आधिक्य और विवशता बहुत स्पष्ट है। यहाँ कहा गया है कि आपको जो अच्छा लगे कीजिये हमने तो सब कुछ शीश चढ़ाकर स्वीकार कर लिया है वहां भाग्याधीनता के साथ साथ व्यंग छिपा ही हुआ है। इसी प्रकार उन कथनों में भी जिनमें ये आशय निकलते हैं—निर्दोषी को क्या दोष दिया जाय अर्थात् वे तो जन्म से ही विधाता के कृपा पात्र हैं अथवा यह कथन कि तुम तो गुणों की खान हो, जैसे हो भले हो। हमारा ही भाग्य निकम्मा है जिसका हम पूरा भोग भोग रहे हैं अथवा यह उक्ति कि हे सुजान ! तुम्हारा समय तो सदा सुख से बीता है, सदा मनचीता होता रहा है, तुम सुखी रहो। हम तो चिर दुखी हैं, प्रारम्भ से दुखी हैं, विधाता ने हम दुखियों की जाति ही विचार करके बना दी थी, तुम जितना जो चाहे उतना अन्याय करो तुम्हारा जन्म इसी-लिए हुआ है—इन कथनों में अतिशय क्षोभ विवशता में पीड़ित हो तीक्ष्ण व्यंग के रूप में फूट पड़ा है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रिय के दोष पर परदा उतना नहीं डाला गया है अथवा उसे निर्दोष उतना नहीं ठहराया गया है जितना व्यंग द्वारा उसे मर्माहत किया गया है। भाग्य को दोष देकर प्रिय को निर्दोष घोषित करने वाली कुछ पंक्तियाँ देखिये—

(क) इस बाँट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसें उराहनो दीजियं जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियं जू।

(ख) तिन्हें यों सिराति छाती तोहि वै लगति ताती।
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो।

(ग) हौ सु भले हो कहा कहिये हम आपने पूरन भाग लहे हो।
आँखि निगोडिन ही यह दोष अबू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हौं।

(घ) जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ होति रही है सदा चित चीतो।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरचि बिचारि कै जाति रची तो।

(ङ) मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सों कहनो है।
आखिनि हूँ पहचान तजी कछू ऐसोई भागन को लहनो है।

मन के प्रति कथन—कुछ छन्दों में कवि ने मन, जीव अथवा चित्त को संबोधित करते हुए भी कुछ उक्तियाँ की हैं। ऐसे छन्दों में अन्तःकरण की उक्त सत्ताओं की प्रायः फटकार ही बताई गई है। उसके पीछे मूलभाव यही है कि मन पहले तो बिना समझे-बूझे, पूछे-ताछे प्रिय के पीछे लग गया था, अब यातना का जीवन यापित करना पड़ रहा है तब विकल हो होकर रो रहा है। कवि का कहना है कि यदि रोना ही था तो पहले क्यों नहीं सोचा ? नहीं जानते थे कि यह प्रेम है कोई खिलवाड़ नहीं ! अब मन ने मूर्खता की तो वह भुगते। ऐसी उक्तियों में क्षोभ, डाँट-फटकार, आत्मभर्त्सना आदि वृत्तियाँ ही मुख्य हैं।[1] मन को प्रताड़ना की एक-आध उक्तियाँ देखिये—

(क) बिन्दद्यौ निहिं दोष न जानि सयौं, जु गयौ मन मो तजि रोवन तें।
जिय ता दिन यौं अब आतुर क्यों, तब तौ तन को खिरमायो न तें।

[1] सुजानहित . छन्द २८१, १९४, १९५।

(ख) चिप लै छिमार्यौ तन, कै बिलानौ आपचार्यौ।
जान्यौ हुतौ मन! तै सनेह कटु तेल सो।
अब ताकी ज्वाल में पजरिबौ रे भली भांति।
नीकें सहि, असह उदेग दुख सेल सो॥

कुछ अन्य मनोदशाएं: कुछ स्फुट भाव—उपर्युक्त विरह मूलक भावराशियों के अतिरिक्त कुछ बड़े सुंदर भाव और विशेष मनस्थितियों के स्फुट चित्र जहां-तहां घनआनन्द के विरह काव्य में देखे जा सकते है।[1] एक भाव तो यह है कि वियोग में सब कुछ उल्टा हो जाता है, हर वस्तु की प्रकृति बदल जाती है। गुण दोष हो जाता है और औषधि रोग को बढ़ाने वाली हो जाती है, प्रेम का वैषम्य प्रेमी और विरही के जीवन और जगत् का वैषम्य हो जाता है, अनुकूल वस्तुएं और स्थितियां प्रतिकूल हो जाती हैं। दूसरा भाव यह है कि विरही की दुर्दशा का कोई इलाज नहीं—एक तो विरही का रोग ही कोई साधारण रोग नहीं 'रोग-राज' है दूसरे इसकी औषधि किसी वैद्य के पास नहीं, धन्वन्तरि के पास भी नहीं। यह मर्ज ही ला-इलाज है। सब कहते है कि दर्द-दिल की दवा नहीं हुआ करती, महा-विरही घनआनन्द एक कदम आगे जाकर कहते हैं कि इस मर्ज की जितनी दवा की जाती है यह मर्ज उतना ही बढ़ता जाता है—'औषधि हू रोग पोखौ' यत्न ही रोग का विवर्धक कारण हो जाता है। विरह का रोग औषधि पाकर दबता नहीं भड़कता है। यह भाव उर्दू शायरों ने भी सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की।' तीसरा भाव यह है कि विरह, प्रेम, प्रेमी सभी अनोखे हुआ करते हैं, प्रेम में दर्शन-अदर्शन, मिलन-अमिलन दोनों स्थितियों में एक सी दशा रहा करती है, प्रिय सर्वत्र दीखता है फिर भी पीड़ा बनी रहती है। इसी प्रकार विरही सोते हुए जगता है, जगते हुए सोता है, उसकी हँसी में रुदन और रुदन में हास समाया रहता है इसी प्रकार उसके लाभ में हानि और हानि में लाभ निसर्ग रूप से व्याप्त रहता है। ये विरोधाभासात्मक उक्तियां विरही की अत्यन्त विचित्र, कठिन और दुर्भर स्थिति का द्योतन करने के लिए ही दिखलाई गई हैं। एक चौथा भाव है वियोग में संयोग का। जिस प्रकार संयोग में वियोग की खटक बनी रहती है उसी प्रकार वियोग में भी संयोग की भी विद्यमानता कही गई है—हृदय में तो प्रिय रहता ही है आंखों में भी वह झूला करता है। भले ही वह पार्थिव रूप से वियुक्त अथवा दूर हो स्मृतियां तो उसका मानस-संयोग कराया ही करती हैं, प्राणों की तड़प भी प्रिय को स्वप्न में ला मिलाती है—

ऐसें कहौं कैसें घनआनंद बताऊं दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरति-महीप हौ।
दीठि-आगे डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागै,
मोंहि तौ वियोग हू में दीसत समीप हौ।

पांचवां भाव, भाव क्यों चित्र विरह की अंतिम अवस्था का है जिसका चित्रण कई छंदों में हुआ है। वियोग का आधिक्य विरही को बार बार मरणासन्न स्थिति में पहुँचा देता

---

[1] सुजानहित: छंद २२४, २२०, २७६, २७७, ३३७, ६१, २२०, २७७, ३३७, ६१ २८०, २७६, २६६, ७२, २१४, ५७, ६४, , ५४, ६२, ११८, २४३, २८०, ३१८।

हैं। मृत्यु के समीप पहुँचे हुए प्राणी की सी व्यथा, कृशता, कंठावरोध, श्वासरुद्धता, विवर्णता, आँखों का पथरा जाना आदि बातें विरही की चरम व्यथा सूचन करने वाले चित्रों में अंकित हुई हैं। विरही विधाता से उस घड़ी की याचना कर रहा है जब वह अपने प्राणों की भेंट चढ़ाकर प्रिय से भेंट कर सकेगा—'अब घनआनन्द सुजान प्रान दान भेंटौ, विधि बुधि-आगर प जाँचत वहै घरी।' विरही प्रिय को ढूँढ़ता-ढूँढ़ता बावला हो जाता है, उसकी मति खो जाती है, वह कहाँ जाये, उसे कहीं भी ठिकाना नहीं, वह घर को उजाड़ करके वन में जा छिपता है—ऐसी हालत हो जाती है कि जीवन को नींद आ जाती है और मरण दशा कुछ बहुत दूर नहीं रहती—'बनी आनि ऐसी घनआनंद अनैसी दसा, जीवौ जान प्यारे बिन जानैं गयो सोय है।' विरही की ऐसी मरणासन्न स्थिति भी घनआनद ने अंकित की है जिसमें उसके हृदय में अन्त अन्त तक प्रिय की आशा की तरंग उठती दिखाई देती है। विरही मृत्यु की कामना करता है, प्राणों की बलि चढ़ाकर प्रिय को पाना चाहता है पर दो में से क्या एक भी सम्भव हो पाता है? नहीं, उसे न प्रिय मिलता है और न मृत्यु ही—

> क्यौं करि बितैयै, कैसें कहाँ धौं रितैयै मन,
> बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियै।
> बनी हैं कठिन महा, मोहिं घनआनद यौं,
> मीचौं मरि गई आसरो न जित ढूकियै॥

बहुत वेदना सहता है पर विरही मरता नहीं, यदि वह मर जायेगा तो व्यथा कौन झेलेगा। वेदनाओं के लिये ही पैदा हुए विरही का और तो और मृत्यु भी निरादर कर जाती है—

> फूटि फूटि टूक-टूक ह्वै कै उडि जाय हियो,
> बचिवो अचभो, मीचौं निदरि करै गई।

गोपियों का विरह निवेदन—घनआनन्द की प्रेम-वेदना की मुख्य कृति 'सुजानहित' है जिसमे मूलत सुजान के प्रति कवि के प्रेम और उसके विरह में कवि की अनुभूतियों का चित्रण हुआ है किन्तु सुजानहित में ही ऐसी भी अनेकानेक छन्द मिलते हैं जिनमें अंकित प्रेम-वियोग भले ही कवि का निजी प्रेम-वियोग हो पर कथित हुआ है गोपियों के वियोग के रूप में। ऐसी रचनाओं की भी भाव-राशि द्रष्टव्य है। सुजानहित में गोपियों के विरह का वर्णन करते हुए उनके अंगों की उद्वेगजनित मूर्च्छा, साँस लेने की कठिनाई, घर का उजाड़ लगना, अपने ही रूप-गुण-यौवन का भार-सा प्रतीत होना, दृष्टि और भवन सब कुछ उजड़ा हुआ प्रतीत होना, गुमान का गल जाना, जीवन का कटु प्रतीत होना आदि वर्णित हुआ है। गोपिकाएँ कहती हैं कि अपनी व्यथा कही नहीं जाती और मन में छिपाकर रखते भी नहीं बनती, आदि। इसी प्रकार की बातों का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है जिसमे आत्मनिवेदन, प्रिय को धिक्कारना, उसकी निष्ठुरता पर व्यंग्य, प्रकृति तथा सृष्टि के समस्त उपकरणों का प्रतिकूल हो जाना, अपनी अनन्य प्रेम-निष्ठा आदि बातों का विशद वर्णन हुआ है।[1]

---

[1] सुजानहित : छन्द १०, ११, १२, १३, १४, २७, ६८, ४२, ४४, ४६, १२८, १४०, १८३, ११६, १५६, २२४, २८४, २४२, २७७, २८०, २६६, २७८, २७०, २४६,

वियोग सम्बन्धिनी लगभग वैसी ही भावनाएँ गोपियों का विरह-वर्णन करते हुए की गई हैं जैसी कि कवि ने सुजान के प्रति अपने विरह-वर्णन में निर्दाशित की है। बात यह है कि समसामयिक काव्य परम्परा में कृष्ण प्रेम का काव्य लिखा ही जा रहा था जिसका प्रवर्तन सूर आदि कवि भक्तियुग में कर आए थे दूसरे घनआनद स्वय ऐसे वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदाय में दीक्षित थे जिसमें गोपी भाव के प्रेम की प्रतिष्ठा थी, तीसरे प्रेमियों के समाज में गोपी और कृष्ण से अधिक अनुरागपूर्ण पात्र दूसरे थे भी तो नहीं। इन्हीं कारणों से घनआनद के काव्य के एक अश में प्रेम-वर्णन और विरह-निवेदन के माध्यम रूप में गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण का स्वीकार किया गया है। सुजानहित से इतर रचनाओं में भी गोपी-कृष्ण के प्रेम और विरह का वर्णन पर्याप्त मार्मिक ढग से किया गया मिलेगा।

वियोगबेलि—वियोगबेलि में सलोने श्याम को बार-बार बुलाया गया है, उनसे निहोरा किया गया है कि हम तुम्हारे दरस की प्यासी मरी जा रही हैं, हमें जिला लो, बड़ी तड़प के साथ कहा गया है कि तुम कहाँ हो! कहाँ हो! कहाँ हो! मेरी आँखों के आगे क्यों नहीं रहते! तुम्हारे ही कारण हम रात-दिन जगती हैं, हे सजन! प्रेम मानकर ऐसा मत करो, हम तुम्हारे ही लिये बावली बनी हुई हैं, आकर हमारी सुध लो। तब तो प्यार से सुख देने वाली बातें करते थे, अब दु ख की घातें दे रहे हो। तुम बहुत बुरे हो जो हमे अकेली छोड़कर यों छिप गए हो, ऐसा आचरण तुम्हें कैसे शोभा देता है? तुम सुखी हो और हमारी ऐसी दीन दशा है! तुम बड़े निष्ठुर हो। अब मैं अपनी विरह कहानी किससे कहूँ, मैं तुम्हे प्रेमपाती कैसे लिखूँ, छाती टूक-टूक हो रही है और आँसुओं की झड़ी लगी हुई है। इस प्रकार की मार्मिक वचनावली की धारा सी 'वियोग-बेलि' में फूट पड़ी है। रचना फारसी रग ढग की है, शैली तो पूरी की पूरी वहीं से उधार ली गई है, भावना अवश्य ही घनआनद की है क्योंकि बहुतेरे व हो भाव इस रचना में भी देखे जा सकते हैं। शैली की नकल के साथ-साथ थोड़ा-बहुत अनुकृत काव्य की भावना भी लगी-लिपटी चली आती है यह बात जरूर वियोगबेलि में देखी जा सकती है—

> बहे तव नैन तें अंसुवानि-धारा। चलावै सोस पै यों विरह आरा॥
> इतै पै जो न पावौं पीर प्यारे। रहैं क्यों प्रान ये विरही बिचारे॥
> जरावै नीर तौ फिरि को सिरावै ... अध मारे कहौ जू को जिवावै॥
> जु चंदा तें झरै देया ... भी निय ... रन को कहौ गति कौन प्यारे॥
> भई सूधी सुनौ ... घनआनद। करिहैं मान फिरि सौंहैं तिहारी॥
> चढाई मूड अब ... लगी। कहौ जोई अजू सोई करैगी॥
> निहारी ह्वै ... डोली हूँ जियेगी। बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैगी॥

———मोहि ———

२६४, २६६ भाव ..., २१८, २५०, २६?, २६८, २४१, ३१३, ३३४, ३२७, ३६८, ३३०, ३ योग ३४६, ३६१, ३२५, ३४०, ३६७ ३६५, ३६३, ३७६, ३०६, ४७५, ४७८, ४६३, ४६०, ४०६, ४६१, ४२८, ४२१, ४०६, ४६०, ४६७, ४१२, ४३६, ४२७, ४६४, ५००, ५०१, प्र० १०, ११, २६, ३४, ५१, ५६, ५५, ५७, ६५, ७०, ३, २६, ६२।

वियोगबेलि में जहाँ-तहाँ उदात्त भावों की भी अत्यन्त मार्मिक झलक देखने योग्य है, विप्रलंभ शृंगार की दृष्टि से यह रचना अनूठी कही जायगी।

इश्कलता—इश्कलता में भी 'नंद दा सोहना' के प्रति अपनी प्रेम-भावना का ही सहज स्वाभाविक निवेदन गोपियों ने किया है। इसमें भी प्रेम-वैषम्य का भाव ही मुख्य रूप से कथित हुआ है। अपनी विवशता, कृष्ण के रूप पर रीझ, उनके गुणों का गान, उनकी बेफिक्री और आचरण पर शिकायत, अपनी बेचैनी और हृदय की पीड़ा आदि का गोपियों ने नाना रूपों में कथन किया है। इस रचना पर भी फारसी रंग ढंग की भावना और भाषा-शैली की झलक देखी जा सकती है। उस 'दिलपसंद दिलदार यार' की 'बेदरदी' और 'इश्क दे फंदे' की चर्चा विशद रूप से की गई है। इस रचना में कवि की अपनी प्रीति का भी पूरा-पूरा बिम्ब देखा जा सकता है।

प्रेम पत्रिका—गोपियों के प्रेम का बार-बार वर्णन करने का एक आशय यह भी है कि घनआनंद अपनी ही प्रीति का बिम्ब गोपियों में पाते थे। उनकी प्रीति का वर्णन करके जैसे वे अपने ही प्रेम-भाव का इज़हार कर लिया करते थे। प्रेम-पत्रिका में गोपियों के कृष्ण के प्रति किये गये कथन मिलते हैं जिनमें कहा गया है कि हे कृष्ण ! यदि तुम कहीं मिले तो हम तुम्हारी ही पाती तुम्हें बाँचकर सुनाएँगी कि तुम कैसी कठोरता भरी बातें करते हो। धन्य है तुम्हारा धीरज ! प्रेम की जो मदिरा पी गए थे उसे भूल गये ! और तो और पहचानते तक नहीं ! हम तो विसूरती हुई दिन और रात बिता रही हैं, हमारे चित्त में क्रन्दन पैदा करके तुम निश्चिन्त बने हुए हो, हमारी हत्या पर ही तुम पल रहे हो। ऐसी अनीति छोड़ो, ईश्वर से कुछ तो डरो, जानबूझकर आनाकानी मत करो। हम तुम्हारे ही कारण जी रही हैं। इन आँखों को तुम्हारा दर्शन क्या कराऊँ तुम तो सदा मन में ही बैठे रहते हो। ये प्राण तुम्हारी धरोहर हैं, जब चाहे ले लो। हम एकदम तुम्हारी हैं और हमें तुम्हारा ही आसरा है। तुम्हारे कुशल से ही व्रज में भी सब कुशल है, बस एक ही आकांक्षा है हे आनंदघन ! तुम व्रज में ही सतत उमड़े रहो। इस प्रकार की बहुसंख्यक एक से एक सुकुमार भावनाएँ इस कृति में व्यक्त हुई हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हम तो तुम्हारा ही मुँह देखकर जीवित हैं, हमारी रक्षा करो। हम जिस गैल में जाती हैं हमें वहीं तुम दिखाई देते हो। इस रचना में भी प्रेम-वैषम्य, प्रिय के गुणों का गान, आत्मव्यथा निवेदन, प्रिय की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भ, दीनता, अभिलाषाओं का उमड़ता हुआ रूप, आसक्तिजनित पीड़ा, निरन्तर प्रतीक्षा, आँखों की आर्त्तदशा आदि बातें बहुत कुछ उसी ढंग से कही गई हैं जिस ढंग से सुजानहित में मिलती हैं। इस रचना में भी थोड़ा-बहुत फारसी रंग-ढंग और प्रभाव झलक मारता मिलेगा।

बोधा का विरह वर्णन

बोधा के काव्य में वर्णित प्रेम आरोपित अथवा भावित नहीं वह बहुत कुछ घनआनंद के ही समान व्यक्तिगत प्रेम का प्रकाशन है और उसमें भी विरह का तत्व ही प्रधान है। लोक में यह प्रसिद्ध ही है कि बोधा एक आशिक मिजाज जीव थे और पन्ना दरबार की वेश्या सुभान से इनके प्रेम की कथा देखी ही जा चुकी है। उसी के विरह में इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इश्कनामा' और 'विरह-वारीश' लिखे गये थे।

लौकिक प्रेम-वियोग सुभान का विरह—बोधा की प्रेम व्यंजना में शुद्ध लौकिकता है, भक्ति आदि तो कहीं है ही नहीं। सुभान के विरह में अपनी अन्तर्दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि विरह की वेदना मन ही मन सहनी पड़ती है, उस अथाह पीड़ा को कोई बांट नहीं सकता मन जोगी की तरह भांवरे देता फिरता है, मुंह से कुछ बोलते नहीं बनता, आंखों से देखते नहीं बनता और चेहरे पर हंसी नहीं आती। ठीक भी है जिस सुभान की आंखें हृदय में शल्य की तरह धंसी हुई हों उन्हें चैन पड़ भी कैसे सकता है!

निसिवासर नींद औ भूख नहीं जब ते हिय में वह आनि बसी।
तिनको कल कैसे परै निरदै जिनकी हैं कुनांगरे आंख कसी।।

बोधा कहते हैं कि सुभान के लिये हमारे हृदय में जो प्रेम वेदना है उसे कोई क्या जाने—

(क) बात नहीं समुझावै सबै यह पीर हमार न जानत कोई।
बोधा कदाचित जानै वहै दहि के जिय में जिन वेदन होई।।
(ख) बोधा सुनै है सुभान हितू करि कोटि उपाइ थके उपचारी।
पीर हमारी दिलन्दर की हम जानत हैं वह जाननहारी।।

इस प्राणान्तक पीड़ा से जीव रक्षा और कोई नहीं कर सकता, एक सुभान ही इस मर्मान्तक वेदना की सजीवनी जड़ी है—'**जाते मिटै यह पीर सरीर की है वह मूरि सजीवनि सोई।**' बोधा के प्रेम में उतनी विषमता न थी जितनी घनआनन्द में। सुभान के मन में भी बोधा के लिये पर्याप्त स्थान था, वह उनसे पूर्ण सहानुभूति रखती थी किन्तु कदाचित् पन्ना-नरेश की इच्छा ही उनके मार्ग की बाधा थी जिसके कारण वह बोधा का साथ न दे सकी। उनकी इस विवशता को बोधा ने भी सही-सही ढंग से समझा था और तभी वे लौटकर पन्ना दरबार में फिर आये भी। उन्हें सुभान के प्रेम पर जरूर विश्वास रहा होगा तभी वे यह कह सके हैं कि हमारे दिल के अन्दर की पीर या तो हम जानते हैं या वह सुभान।

सुभान के प्रति बोधा की इतनी आसक्ति यों ही नहीं थी। वह अत्यन्त रूपवती थी, उसके ऊपर बोधा सब कुछ निसार करने को तैयार थे। यही कारण है कि उससे वियुक्त होने पर वे अधीर हो उठे, लोगों ने उन्हें बहुत समझाया पर किसी को इनकी वास्तविक अन्तर्व्यथा का क्या पता हो सकता था। सुभान की प्रेमभरी वह चितवन जो इनके चित्त में चुभ गई थी उसकी शक्ति, उसके प्रभाव और मूल्य को इनका चित्त ही समझ सकता था इन्हें उसके रूप के सामने और किसी का रूप अच्छा नहीं लगता था और जब से इन्होंने सुभान को देख रखा था तब से इन्हें अपनी आंखों के सामने सर्वत्र सुभान ही सुभान दिखाई देती थी—

बोधा सुभान को आनन छांडि न आन न मो मन आनि अरूझै।
जैसे भये लखि सावन के अंधरे नर को सु हरो हरो सूझै।।

बोधा की विरह-पीर की सघनता का यही कारण था कि वे सहृदय और प्रेमी जीव थे तथा सुभान की खूबसूरती पर दिलोजान से फिदा थे। कभी-कभी वियोग दशा में बोधा ने पुरानी स्मृतियों को जगाया है—नेवारी के फूलों का फूलना और लता बेलों का लहलहाना 'असती' त्योहार का मनाया जाना आदि। वे कहते हैं—

बोधा सुभान हितू सो कहौ वै भिराव के गार ते फेरि फिरैं ना ।
फेरि न फूली नेवारी उतै उन बेलिन सों फिरि कै अभिरैं ना ।
फेरि न वैसी भई अवनी कव हूँ वह बाम मैं फेरि थिरैं ना ।
खोरिन खेलिबो सग सलोन के वै दिन भावतो फेरि फिरैं ना ।

गोपियो का विरह—अपनी विरह व्यथा का निवेदन बोधा ने गोपियो के माध्यम से भी किया है जिसका कारण मुख्यत परपरागत काव्य ही है, फिर व्यक्तिगत प्रेम के प्रकाशन की परम्परा भी ठीक से विकसित न हो पाई थी । फलस्वरूप बोधा न कुछ छन्दों मे अपनी व्यथाभिव्यक्ति का माध्यम गोपियों को बना लिया है पर ऐसे छन्द भी बोधा की निजी विरह वेदना के कारण क्रमागत रीति काल के विरह वर्णनात्मक छन्दो से पृथक दिखाई देते हैं । कभी गोपियां गाँव के देवताओ का ध्यान करती है, उन्हे मनाती हैं और उनके पैर पडती है । उनस वे प्रियतम को अक मे भरने की अभिलाषा व्यक्त करती हैं । वे अपनी विवशता व्यक्त करती हैं—

नित गाँउ के नेह के देवता ध्याय मनाय भली विधि पाउँ परौं ।
तिनसों धुनि या बिनवौं विनती निरसक ह्वै भावतो अक भरौं ।
यह चाव न बोधा सरो कबहूँ यह पीर ते बौर दिवानो फिरौं ।
परवाह हमारो न जानै कछू मनु जाय लग्यो कहु कैसे करौं ।

विरहोद्दीप्ति

अनेक स्थलो पर बोधा ने विरह वेदना के उद्दीप्त स्वरूप का भी चित्रण किया है, जहाँ क्रमिक रूप ऋतुओ के आने तथा प्रकृति मे परिवतन होने के कारण विरहिणी की उत्तरोत्तर बढती हुई विकलता का स्वरूप देखा जा सकता है । पावस की श्याम घटाएँ घुमड आती हैं, चित्त अधीर हो उठता है और विरहाग्नि धधक उठती है—

रितु पावस स्यामघटा उनई लखि कै मन धीर धिरातो नहीं ।
धुनि दादुर मोर पपीहन की सुनि कै धुनि चित्त थिरातो नहीं ।
जब ते बिछुरे कवि बोधा हितू तब ते उर दाह धिरातो नहीं ।
हम कौन सो पीर कहैं अपनी दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं ।

कोई-कोई गोपिका तो वर्षा की काली घटाओं को देखकर मूर्च्छित हो जाती है, कितने उपाय कर-करके हकीम और वैद्य थक जाते हैं पर वह धैर्य धारण नहीं कर पाती—

कारी दसा दिसि दच्छिन देखि भयो सु चहै हियरा जरि कारो ।
ताही घरो घहराइ वही गिरि गो भुव पै लगि प्रेम तमारो ।
केतन श्राइ लगाइ थको कवि बोधा हकीमन को उपचारो ।
पै न धरै वह धीर अली न मिलै वह पीर के जानन हारो ।

प्रियतम के प्रवासी होने के कारण विरहिणी भयकर विरहाग्नि मे जल रही है, वर्षा की अँधेरी रात मे केकी (मयूरी) का कलाप सुनकर उसका हृदय हहर उठता है । अपने प्रिय को स्मरण करता हुआ पपीहा भी शोर मचा रहा है और बेचारी विरहिणी का हृदय इन सब की शोर से आधी रात मे भग्न हुआ जा रहा है, वह कहती है—"तू अपने पिय को सुमिरै

सुमिरे हम तेरी जुबान की दापन।' पपीहे की तो यह आदत ही पड़ी हुई है, वह आधी रात 'पी-पी' की रट लगाता है। गोपियाँ कहती है कि उसे अपने ही सुख की पड़ी है, वह हमारी व्यथा नही देखता। यह नही देखता कि जिस मेघ को देखकर उसके मुरझाये प्राण हरे हो जाते हैं, वही मेघ हमारे हृदय को कितना दग्ध करता है।

पिय प्यारे की बानि पपीहे परी अधराति कुलाहल गावतु है।
कलकानि न बोधा हमारी लखै इन्हैं आपनोई सुख भावतु है।

कुछ छन्दो मे वसत की विरह-विभाविनी शक्ति का भी सकेत मिलता है—

बटपारन बैठि रसालन में यह कर्वैलिया आइ खरे ररि है।
बन फूलि है पुंज पलासन के तिनको लखि धीरज को धरि है।
कवि बोधा मनोज के ओर्जान सों विरही तन तूल भयो जरि है।
घर कन्त नहीं बिरतन्त भटू अब कैंधो बसन्त कहा करि है।

वसन्त मे विरहिणी अधिक काम-दग्ध दिखलाई गई है, आम, कोयल और पलाश के सहारे वसन्त का वातावरण प्रस्तुत करते हुए उसकी उद्दीपक-शक्ति का बखान किया गया है। विरहिणी कहती है कि हे कोयल! नेह मे भरकर तू कूक मत, तेरी कूक विरहिन की दुर्बल काया को वेध देती है—

कर्वैलिया तेरी कुठार सी बानि लगे पर कौन को धीरज रैहै।
यातें मैं तोसो करों बिनती कवि बोधा तुही फिरिकै पछितैहै।
स्वारथ और परमारथ को गथ तेरे कछू सुनु हाथ न ऐहै।
ठौर कुठौर वियोगिनि के कहूँ दूबरी देहन में लगि जैहै।
बैठि रसालन के बन में अधराति कहूँ रस सो ललकारति।
माहक बैर परी विरहीन के कूक वियोग के लूकन जारति।
बोधा अनेक कियो विनती रति कौन कहूँ करना उर धारति।
बाल रमैं मधुमास इकौ यह कर्वैलिया पापिन पीसई डारति।

कोयल का कूकना विरहिणी को ऐसा लगता है जैसे कोई आग जलाकर शरीर से उसका स्पर्श कराए दे रहा हो। प्रकृति और उसके नाना उपकरण वर्षा, मेघ, दादुर, मोर, पपीहे, बसत, पलाशवन, आम्र तरु और कोयल ये सब विरहिणी का विरह बढ़ाते हैं, उनके धैर्य की निर्बल रज्जु को क्षीण से क्षीणतर करते हुए काट देते हैं और वह बेसहारा हो जाती है। उनके प्राणों का स्पदन तीव्र हो जाता है, कभी वे कोमती हैं, कभी मूर्च्छित होती हैं, कभी काम दग्ध। इन विरहोत्तेजक प्राकृतिक उपकरणों मे उनका मन मथित हो उठता है और उनके अन्तस मे मनमथ प्रबल हो जाता है। यदि बोधा परम्परा की लीक पीटने वाले कवि होते तो वे छओं ऋतुओं का वर्णन अवश्य करते। प्रेम का वास्तविक आनन्द विरह मे है, विरह मे ही प्रेम परिपक्व होता है और निखार पाता है इस तत्व मे बोधा पूर्णत. अभिज्ञ थे। वे स्वय छै महीने या एक वर्ष की वियोग की अग्नि मे तप चुके थे इसी कारण उनके काव्य मे विरह का वर्णन विस्तार से हुआ है।

उद्धव-गोपी-प्रसग—बोधा के 'इश्कनामा' मे इस विषय पर चार पॉच स्फुट छद

मिलते हैं। इन छन्दों मे गोपियों की ही भावाभिव्यक्ति मिलेगी, न कृष्ण का सदेश और न उद्धव का उपदेश। बोधा की गोपियो ने दो तीन प्रकार की बाते कही हैं—उपालभ, योग और वियोग की एकता और दु खातिरेक। उपालभ देते हुए उन्होंने कृष्ण की निष्ठुरता के समक्ष राम ऐसे अनन्य प्रेमी का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है जिनके हनुमान ऐसे दुष्ट नाशक सेवक हो गये हैं —

> ह्यॉं तौ न जी की भई उधवा कवि बोधा लहैं सो महादुखदायक।
> ह्वॉं हनुमान नजीकी रहैं कर जोरे ध्रुवं परबं खलघायक।
> ए ब्रजराज मिले हमको जिनके न कहूँ करुना उर भायक।
> जानिये राम गरीब नेवाज सिया धनि जाके पिया रघुनायक।

दूसरे प्रकार के भाव जिन्हे गोपियों ने व्यक्त किया है वे इस प्रकार हैं—हे उद्धव योग और प्रेम-वियोग मे क्या अतर है ? योगी लोक को त्याग देता है, हमने भी लोक को त्याग दिया है (हमे दुनिया की कोई परवाह नही है)। योगी का चित्त ब्रह्म मे लग जाता है, हमारा भी मन प्रिय मे लगा हुआ है। योगी को निद्रा और आहार की अपेक्षा नही, हमे भी वियोग मे नीद और भूख नही लगती। योगी अपनी सांस खीचकर चुप हो बैठता है, हम भी वियोग मे लम्बी सांस खीचती हैं और दु ख की अधिकता के कारण मुँह से कुछ नही बोलती। समाधि की अवस्था मे योगी को मृत्यु और क्लेश नही व्यापते, अपनी परम विरहावस्था मे हमारी भी यही दशा होती है फिर उद्धव जी आपके और उपदेश हम क्या सुनें। हमे योग और अपने इस प्रेम-वियोग मे कोई अन्तर ही नही दिखाई देता। उद्धव को निरुत्तर करने के लिए यह तर्क पर्याप्त प्रबल है जो प्रेम के आवेश मे दिया गया है। बोधा की गोपियो वियोग मे भिन्न किसी योग को नही जानती—

> त्याग को जोग जहान कहै हम तौ तबहीं चुकी त्यागि जहानैं।
> मौत कलेस को लेस नहीं कवि बोधा गोपाल मैं चित्त समानैं।
> खैचती पौन को मौन गहे अरु नींद अहार नहीं उर आनै।
> ऊधो जू जोग की रीति कहौ हम जोग ना दूजो वियोग ते जानैं।

एक अन्य छद मे गोपिका उद्धव के ज्ञान मार्ग की उपयोगिता स्वीकार करती हुई जान पडती है, ऐसा भ्रमरगीतकारों ने प्राय नही दिखलाया है। कहीं कहा भी है तो भी लक्ष्य-रूप मे गोपियो ने कृष्ण को ही पाना चाहा है, ब्रह्म को नही। बोधा की गोपिका कहती है—हे उद्धव ! इसमे शक नही कि ईश्वर बुद्धि या ज्ञान से ही पहचाना जा सकता है—

> 'ऊधो जू यामे कछू सक ना हम आकिल ही ते खुदा पहिचानै।'

यहाँ उसका निराश भाव अत्यत गम्भीर रूप मे प्रकट हुआ है। प्रेम से ठिगनी हुई उसकी आस्था उसके उस दारुण दु ख की व्यजना करती है जो उसे प्रिय से प्रेम करने के बाद उसके वियोग मे सहनी पडी। इस प्रकार के कतिपय भावों की व्यजना बोधा के उद्धव-गोपी प्रसग विषयक छदों मे मिलती है। यह विषय जब तक उनके मस्तिष्क मे उठा होगा और उन्होने समय-समय पर इस आशय के छद लिख दिये होंगे, स्थिर भाव से यदि यह विषय

उनकी काव्य रचना का आधार होता तो अवश्य ही बोधा से हम अधिक आशा कर सकते थे।

ठाकुर का वियोग वर्णन

विरह वर्णनात्मक छंदों में ठाकुर कवि ने वियोगी की विविध मनोदशाओं का चित्रण ही मुख्य रूप से लिया है, ऊहात्मक दूरारूढ़ कल्पनाएँ इन्होंने नहीं की हैं। उन्होंने राधा और गोपियों के विरह के साथ-साथ कृष्ण की वियोग व्यथा का भी वर्णन किया है।

कृष्ण का विरह—वियोग के लिए शारीरिक विछोह तो आवश्यक होता ही है किंतु कभी-कभी मानसिक वैषम्य अथवा अनमेल या असंतोष भी वियोग व्यथा का उत्तेजक हो जाया करता है। कभी-कभी 'मान' भी अपार मानसिक संताप का कारण हो जाता है। ठाकुर की गोपिका से एक दूती कहती है—हे मानिनी! तेरे दृगबाणों से आहत कृष्ण अब जगत में काफी बदनाम हो चुके हैं और घर के सारे सुखों से भी वे वंचित हैं तथा दीन से बने हुए तेरे द्वार पर आ गये हैं। क्या अब भी तेरे हृदय में कसक पैदा नहीं हो रही है?

> ठाकुर तू न लखै पिछलो पग पारे हैं लालन बार घनेरो।
> प्रीतम को सु भई गति या छतिया कसकै न कसाइन तेरो।

वियोग के कारण कृष्ण को कभी-कभी विरहोन्माद की स्थिति में भी दिखाया गया है—

> घन को निहारें तब वारें हौन आपुन पै,
> बीजुरी निहारें तब वारें हौन तो पै री।

कृष्ण के मन की व्यथा का चित्रण कर ठाकुर ने सहृदय समाज का ध्यान कृष्ण की प्रेमपीड़ा की ओर भी आकृष्ट करके एक बड़ा काम किया है और परम्परागत ढंग सोचने वालों के लिए एक नवीन मार्ग प्रदर्शित किया है।

गोपियों का विरह—गोपियों के विरह वर्णन में ठाकुर ने भी प्रेम-वैषम्य पर अधिक बल दिया है और प्रेम के निर्वाह को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। प्रायः प्रिय निःस्नेह और उपेक्षापूर्ण देखे गये हैं। ठाकुर की गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण अत्यन्त स्वार्थी हैं, प्रेम करके उसे तोड़ने में उन्होंने तनिक भी विलम्ब नहीं किया और उधर कुबड़ी कुब्जा से वे प्रीति ठान बैठे हैं—

> (क) यहि ओर सनेह की आँखिन सों अब तो हरि हेरत ही नहियाँ।
> (ख) जु कियो बदनाम सबै ब्रज में अब आँखें लगाई दिखान न आँखिन।
> (ग) हरि साँचो औ चोरी बखानत है अब गाढ़े धरे गुन और बड़े जू।
> (घ) छोड़ि पन्निन प्रीति करी निबही नहिं औम सुखी हम मोऊ।
> माया मिली नहि राम मिले दुबिधा में गये सजनी सुन दोऊ।
> (ङ) कहि ठाकुर कूबरी के बस ह्वै रसमय किन बावरो ह्वै गयो है।
> मन मोहन को हिलिबो मिलिबो दिन चारिक चैन सो हो गयो है।

इस प्रेम पथ में गोपिकाओं को कितनी और भी विपदाएँ सहनी पड़ती हैं। घर-घर

घेरु' चलती है, घरहाइया के कारण मुहल्ले टोल मे आना-जाना दूभर हो जाता है, मन की कसक चौगुनी होकर सालने लगती है—

ठाकुर या घर चौचद को डर तातें घरी घरी ऐपत नाहीं।
भेटन पैयत कैसे तिन्हें जिन्हें अखियन देखन पैयत नाहीं।

कभी-कभी मन को अपरिसीम निराशा भी ग्रस्त कर लेती है और वियोगिनी को अपने प्रारब्ध अथवा दुर्दैव मे समझौता कर लेना पडता है—'इन चौचद हाइन मे परि कै समयौ यह बीर बरावने हैं।' यह दुख का समय किसी प्रकार काटना ही पडेगा फिर यह वियोग की वेदना भी कुछ ऐसी वैसी नही होती, उसकी दारुण असह्यता का किसी को अदाज भी क्या लग सकता है। ठाकुर इस सम्बन्ध मे इतना ही कहकर सतुष्ट हो गये हैं कि—

'पर बीर मिले बिछुरे की बिथा मिलि कै बिछुरै सोइ जानतु है।'

एक स्थान पर परम्परागत शैली मे ठाकुर वियोग की उत्कट दशा का चित्रण करते हुए पाये जाते हैं—

बरुनीन में नैन झुकै उझकैं मनो खजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनों सजनी अंगुरीन के पोरन छाले परे।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिये निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे के अब लाले परे।

उद्धव गोपी प्रसग—इस प्रसग पर भी ठाकुर ने लगभग आधे दर्जन छन्द लिखे हैं जिनसे गोपियों की दुर्दशाग्रस्त स्थिति का पता चलता है। ये अब कहीं की नही रह गई हैं—

खेत कुटुम्ब लै लीन्हौं उजारि नबेर नबेर कै स्वाद नवीनो।
फेर दुरे दुरे लाई अथाय रुचीं न रुची को जनाय न दीनो।
ठाकुर यो कहती ब्रजबाल सो ऊधो सुनो या कथा रसभीनो।
खाई कछू बगराई कछू हरि गोपी गुलाम को गाजर कीनो।

कृष्ण जहाँ छली और धोखेबाज कहे गए हैं वहीं गोपियों का अनन्य भाव देखने योग्य है, जिस बात को गोपियाँ मन मे प्रतिष्ठित कर लेती हैं उसका परिपालन वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ करती हैं—

धिक कान जो दूसरो बात सुनैं अब एक ही रग रहो मिलि डोरो।
दूसरो नाम कजात कढ़ै रसना जो कहूँ तो हलाहल बोरो।
ठाकुर यो कहती ब्रजबाल सो ह्याँ बनितान को भाव है भोरो।
ऊधो जू वै अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँडि तकैं तन गोरो।

ऐसी तीक्ष्ण वाग्धारा स्वच्छन्दवृत्ति के कवि की ही गिरा से उद्गीर्ण हो सकती है। कृष्ण गोपियो को इतने प्रिय हैं कि लाख और व्यथाएँ उन्हें सहनी पड़ें तो भी वे चूँ न करेंगी। वे घनआनन्द की गोपिका की भाँति अपने भाग्य से समझौता करते हुए कहती हैं—

(क) ऊधो जू दोष तुम्हैं न उन्हें, हम लीन्हो है आपने हाथ ही बोछो।
(ख) ऊधो जू दोष तुम्हैं न उन्हैं हम आपुही पाँव पै पाथर मारे।

यह है गोपियों का व्यक्तित्व जो वियोग की आँच में और भी निखार पाता है। इन अभिव्यक्तियों में जो वेग और प्रभाव है वह अनुभूति-प्रेरित होने के कारण है। वे गोपियाँ स्नेह के अधीन हो सभी कष्ट सहने को तैयार हैं। दुनियाँ इन पर कोप करेगी करे, निन्दा करेगी ठीक है इनके लिये दुनियाँ की हस्ती ही कितनी ! वे एक कृष्ण पर कोटि-कोटि स्वर्ग सुख निछावर कर सकती हैं। उनके लिये तो समग्र ब्रज एक तरफ और मात्र श्री कृष्ण एक तरफ—'वा घनश्याम अकेले बिना सिगरो ब्रज बीर बिरानोई सो है।' यह है उनकी प्रीति में पगन और प्रेम की अनन्यता। भयंकर विरह और दुर्वह पीड़ा को कठोर और अरोक झंझा के बीच उनका धैर्य-पोत डगमग होकर भी हताश नहीं होता। उनमें पूरा आत्मविश्वास है और असाधारण धैर्य है, वे पीड़ा से नहीं डरतीं, उन्हें भगवान के न्याय में पूर्ण विश्वास है तभी तो वे कहती हैं—

(क) मेरो कह्यो कर सो जिय रावरे तो सों कहौं हौं सनेह के नातें।
एक दिना भगवान सु आइहैं को कहिहै सुख सों सुख बातें।
ठाकुर फेरि जुदे-जुदे ह्वैहगे देख विचार कहाँ मैं कहाँ तें।
भेनो वियोग के ये उभिला निकसै जिन रे जिय्ररा हियरा तें॥

(ख) काहे अरे मन साहस छांडत काहे उदास हो देह तजै है।
वे सुख ये दुख आये चले गये एक सी रीति रही नहिं रैहै॥
ठाकुर काको भरोस करें हम या जगजालन भूत न ऐहै।
जानें संजोग में दीन्हों वियोग, वियोग में सो का संयोग न दैहै॥

कैसा आस्थापूर्ण भाव है ! कितनी प्रीतिमयी निष्ठा है ! अपने प्रेम का कैसा दृढ़ विश्वास है।

द्विजदेव का वियोग वर्णन

द्विजदेव कवि का वियोग वर्णन व्यक्तिगत प्रेम-वियोग की तड़प न होकर काव्य परम्परा के प्रसिद्ध प्रेमियों राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण से सम्बन्धित है और इनमें भी विरह-व्यथा का उद्रेक गोपियों में विशेष दिखाया गया है।

गोपियों का विरह—कृष्ण के असाधारण रूप-सौंदर्य में आकृष्ट गोपियाँ एक क्षण के लिये भी उनका वियोग नहीं सह सकतीं। उनकी व्यथा औरों के लिये भले ही उपहास की चीज हो उनके जीवन-मरण का प्रश्न बनी हुई है—उनकी हँसी सपना हो गई है, शरीर अर्वा के समान हो गया है, फूले हुए किंशुक ज्वाल-जाल के समान प्रतीत होते हैं, चित्त पंख के बिना पक्षी बना हुआ है—यह हालत तभी से बनी हुई है जब से उनकी आँखें मनमोहन से मिल आई हैं। 'कैसो करें बावरी परिंद बिन पखियाँ' वाली उक्ति में उनकी विवशता की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। श्रीकृष्ण कुछ बहुत दूर नहीं फिर भी गोपियाँ उनके लिये तरस रही हैं, कृष्ण की अप्राप्ति में उनकी उन्मत्त स्थिति का चित्र देखिए—

डारें कहूँ मथनि, बिसारें कहूँ घी को माट
बिक्ल अपारें कहूँ माखन-मठा-मही।
भ्रमि भ्रमि आवति चहूँघा तें सु याही मग
प्रेम-पय-पूरि के प्रवाहन मनो बही॥

झुरसि गई घों कहूँ काहू की वियोग-झार,
बार-बार विकल बिसूरति जहाँ-तहाँ ।
ए हो ब्रजराज एक ग्वालिन कहूँ की आज,
भोर ही तें द्वार पै पुकारति दहो-दहो ॥

कभी कृष्ण की बांसुरी बज उठती है और गोपियों की शमित पीड़ा जैसे शाश्वत हो उठती है ।

द्विजदेव जी का विरह वर्णन गोपी-कृष्ण या राधा कृष्ण परक होते हुए भी अनुभूति की तीव्रता लिये हुए है । विरह व्यंजना में विशेष आस्वादनीयता होती है, विशेषतः उन वर्णनाओं में जो वियोगी के अंतःकरण से सम्बन्धित होती हैं । द्विजदेव का विरह-वर्णन आत्मगत न होते हुए भी वैसा ही सजीव और अनुभूतिपूर्ण बन सका है ।

बाह्य दशा के चित्र[1]—एक गोपिका विरह व्यथा से अत्यन्त पीड़ित हो प्रिय को पत्र लिखने बैठी है, इसी समय वासन्ती पवन अपनी समस्त मादकता के साथ उधर से बह उठती है । वह बेचारी जो बड़ी मुश्किल से प्रकृतिस्थ हो पत्र लिखने बैठी थी बात की बात में बावली हो उठती है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं और शरीर में विवर्णता आ जाती है, ऐसी विवर्णता जिसके कारण पत्र भी पीला हो जाता है और उसके हाथों से गिर पड़ता है । विरह दशा का यह रूप आत्यंतिक है, अतिशयोक्ति गर्भित और ऊहात्मक है जो रीति-प्रणाली से प्रभावित भी है । इसी से मिलता-जुलता एक और वर्णन है जिसमें बताया गया है कि विरहिणी के अंग शिथिल और निष्प्राण से थे । वियोग की भीषण ज्वालाओं में झुलस जाने के कारण उसके हृदय में हजारों फफोले पड़ गये थे । उसका शरीर देखने से पता नहीं चलता कि वह जीवित थी या मृत । बस उसके कुछ खुले हुए नेत्र ही जीवन की चेतना की प्रतीति करा रहे थे । उसकी इसी दशा का सूचन कृष्ण को कराया गया है । यह वर्णन किसी सीमा तक उर्दू-फारसी प्रभाव से युक्त कहा जा सकता है ।

मानसिक स्थितियों के चित्र—अब विरहिणी की मानसिक दशा के चित्र देखिए ।[2] प्रेम का सुख मिलकर भी इनके हाथ से छूट जाता है, ऐसी अभागिन हैं ये गोपिकाएँ । प्रिय के मिलन के समय नवयौवना गोपिका को लज्जा हो जाती है जिससे प्रिय मिलन तो दूर प्रिय दर्शन भी ठीक से नहीं हो पाता और प्रिय जब चलने लगता है तो यह चंचल पलकें झँप-झँप कर प्रिय-दर्शन में बाधा पहुँचाती है । विरहिणी गोपिका की उसकी उद्विग्नता असह्य हो रही है, विरह की तड़पन उससे सहते नहीं बनती, दुःख कुछ एक दो हो तो कहे भी जब वे अनन्त हों तब क्या कहे ! हृदय की कसक इतनी तीव्र है कि लगता है जैसे उसके हृदय में लोहे का काटा धँस गया हो । वियोग ने उसके तन मन को ऐसा शिथिल, जर्जर और दुर्बल कर दिया है कि पत्र लिखना भी उसके लिये मुश्किल हो चला है, विरह की पीड़ा अंग-अंग में इस तरह समा गई है कि कुछ बोलते भी नहीं बनता । उधर बैरी कामदेव ऐसा सताता है कि कुछ पूछो

[1] शृंगार-लतिका सौरभ छन्द २२२, १८५, २०१, २११, २३३, १६२ ।
[2] वही छन्द - २२८, ६५, १६०, १७५, १०२, १८०, २२६, २३८ ।

मत। बेचारी को प्रिय का काल्पनिक अथवा मिथ्या संयोग भी असम्भव जान पड़ता है, मिलन की समस्त सम्भावनाओं को समाप्त कर देने वाली यह स्थिति अत्यन्त दयनीय है। प्रश्न उठता है कि ऐसी विरह-विदग्धा जीवित कैसे रहती है जिसकी तमाम आशाएं ही भग्न हो चुकी हैं? एक जगह कवि ने इसका उत्तर दिया है, वह कहता है यदि पुरा-काल में वह प्रिय के प्रेम से भलीभाँति सिंचित न हुई रहती तो वह कब की बुझ जाती, यह उसका पूर्व सुख ही है जो उसे जिलाए हुए है। यह भावना कितनी मर्मस्पर्शिणी है—

प्रथमैं बिलसे घन वैरी बनन के, बातन तें मुरझाई हुती।
'द्विजदेव' जू ताहू पै देह सबै, बिरहानल ज्वाल जराई हुती।
यह साँवरे रावरे-नेहन सौं, अंग प्यारी न जो सरसाई हुती।
तौ पै दीप-सिखा-सो नई दुलही, अब लौं कब की ना बुझाई हुती।

एकाध बार विरहिणी बेचारी का प्रिय से स्वप्न में मिलन भी होता है परन्तु सपने की सपदा का बिसात ही क्या? उसका मिलना न मिलना एक बराबर। उस मिथ्या मिलन के बाद जो दुःख होता है वह पहले से ज्यादा ही होता है, इस प्रकार मिलन में दुःख ही विशेष है, सुख क्या है! जिसके भाग्य में अशेष दुःख ही लिखा हुआ हो उसे सुख कहाँ से मिल सकता है? यह सोचकर द्विजदेव की विरहिणी अपने भाग्य से समझौता कर लेती है, उसके लिए इस शरीर का रहना न रहना एक बराबर है—'बिधि आपने भाल लिखी जो कछू, अब तौ बनि हैं सोई बात ठए।' विरह में अपनी सब प्रकार से दुर्गति हुई देख वियोगिनी गोपिका जब जान जाती है कि उसका जीवन अब अधिक दिन का नहीं, अमिलन और वेदना ही उसका चिरंतन भाग्य है तो वह सारी खीझ और सारी रीझ को इस प्रकार घनीभूत रूप में ही व्यक्त करती है—

अब मति दे री कान काहू की बमोठिन पै,
झूँठे झूँठे प्रेम के पतौवन कों फेरि दै।
उरझि रही ती जो अनेक पुरखा तें सोऊ,
नाते की गिरह मूँदि नैननि निबेरि दै॥
मरन चहत काहू छैल पै छबीलो कोऊ,
हायन उँचाइ ब्रज-बीथिन में टेरि दै॥
नेह री कहाँ कौ, जरि खेह री भई तौ मेरी,
देह री उठाइ वाकी देहरी पै गेरि दै॥

उद्विग्नता और क्षोभ की चरम मनस्थिति पर पहुँचकर भी उसकी निष्ठा में कोई कमी नहीं होने पाती। वह मरकर भी अपनी शरीर-रज प्रिय की देहली पर ही डालना चाहती है जिससे उसका शरीर प्रिय के चरणों का स्पर्श पाकर सार्थक हो जाय, जिससे उसकी निष्ठा मरणोपरान्त ही सही अपना व्रत पूरा कर सके, जिससे उसका तन प्रिय के ही काम आ सके। उस समय भी यदि प्रिय के हृदय में करुणा जगी, उसके प्रति दया और प्रेम का उद्रेक हुआ तो वह अपना जीवन और जन्म सार्थक समझेगी। प्रेम का यह आदर्श कितना ऊँचा और महान है जिसमें अर्पण ही अर्पण है, चाह कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि समस्त

अभिलाषाओं और आकांक्षाओं की बलि चढ़ा दी जाती है। प्रेम के इस पुनीत आदर्श के समक्ष विश्व में प्रेम का कौन-सा दूसरा आदर्श है जो ठहर सकता है। इतनी थोड़ी भी अभिलाषा पर इतना बड़ा और इतना भयदर्शी तथा इतना महान जीवन होम कर दिया गया। त्याग का ऐसा भी दृष्टान्त विश्व में कहीं मिलेगा। इस छन्द में कवि ने गजब की पीड़ा, अनुभूति और मर्मस्पर्शिता भर दी है। विरहातिरेक में यह निष्काम आत्मदान और भावावेश की यह चरम स्थिति देखने योग्य है।

ऋतुओं द्वारा विरह की उद्दीप्ति—ऋतु और प्रकृति में द्विजदेव का बड़ा आकर्षण था इसी कारण विरह वर्णन करते हुए वे प्रकृति को भी साथ लेते हैं।[1] वर्षा, शरद, हेमन्त, बसंत आदि ऋतुओं में विरह उत्तरोत्तर उद्दीप्त होना दिखलाया गया है। विरहिणी जानती है कि आने वाली वर्षा ऋतु में कष्ट बढ़ेंगे, हृदय की पीड़ा चौगुनी होगी और प्रकृति के नाना उपकरण उसे सताए बिना मानेंगे नहीं। इसी से वह क्रोध में भरकर व्यंग्यपूर्ण ललकार सी करती है। मेघों से कहती है—तुम घहर घहर कर चारों ओर से पृथ्वी को घेर क्यों नहीं लेते और छहर छहर कर विष की बूँदें क्यों नहीं बरसाते? पपीहे से कहती है—हे पापी! तू अपने प्रियतम की रट क्यों नहीं लगाता? मयूर से कहती है—अरे दुष्ट! हम दुख और वियोग में पड़ी हैं, हमें सताने का ऐसा सुनहला अवसर तुझे फिर नहीं मिलेगा। तू मटक-मटक कर अब शोर क्यों नहीं मचाता? और चन्द्रमा से कहती है—मैं तो यों ही प्राण-हीन सी हूँ और रही सही प्राणशक्ति भी अब विसर्जित होना चाहती है, तू आकाश में चढ़कर दौड़ क्यों नहीं लगाता? यह भी एक तरीका है दुष्टों की दुष्टता को रोकने का। दुष्टता करने से पहले ही उन्हें इजाजत दे दी जाय कि दुष्टता करें तो सम्भव है उनमें कुछ शराफत आ जाय और उनका आचरण पहले से बहतर सिद्ध हो। मना करने से दुनियाँ नहीं मानती, इसलिए स्वतन्त्रता या छूट दे दी गई है, शायद यह तरीका कुछ कारगर सिद्ध हो। एक जगह तो दुष्ट सताने वाले चन्द्रमा को ही लक्ष्य कर वियोगिनी गोपिका ने बड़ा ही सजीव और करारा व्यंग किया है—

> साझ ही तै आवत हिलावत कटारी कर,
>
> पाइकै कुसंगति कृसानु-दुखदाई कौ॥
>
> निपट निसंक ह्वं तजी तैं कुल कानिखानि,
>
> औगुन कौ नेकऊ तुलै न बाप-भाई कौ।
>
> ए रे मतिमन्द चन्द आवत न लाज तोहि,
>
> देत दुख बापुरे वियोगी-समुदाई कौं।
>
> ह्वं कै सुधा-धाम-काम-विष कौं बगारं मूढ,
>
> ह्वं के द्विजराज काज करत कसाई कौं।

इससे अधिक लताड़ और क्या हो सकती है। इस तीखी लताड़ का कारण वियोग वेदना की तीव्रता है। मनोगत व्यथा जितनी ही तीव्र होगी रोष और क्षोभ भी उतना ही अधिक होगा। चन्द्रमा बुरा माने तो माना करे किन्तु वह स्पष्ट कहे बिना न रहेगी, स्त्रियों को यों भी स्पष्ट कहने में डर नहीं होता फिर ये गोपिकाएँ तो परम दुखिनी ठहरीं।

[1] शृंगार-लतिका-सौरभ - छंद १५१, ८४, १७६, १६३, १६४, १७४।

चन्द्रमा यों दु:ख देता है विशेषतः शरद ऋतु का। आगे चलकर हेमत ऋतु आती है जिसके आगमन से वियोगिनी का हृदय हहर उठता है और उसके सारे सुखों की जैसे परिसमाप्ति हो जाती है। उसका सारा शरीर ऋतु की वनस्पतियों के समान पीला पड़ जाता है।

यदि ऐसे अवसर पर भी वनमाली नहीं आते तो उसके हृदय में वियोग की अग्नि होलिका की तरह धू धू करके जल उठती है। जब वसंत ऋतु का आगमन होता है तब तो विरहिणी का दु:ख जैसे अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। जो प्राणोन्माद की ऋतु है वह भीषण मृत्यु का अभिशाप लेकर आती है। विरहिणी कहती है कि पुष्पित वृक्षावलियों को देखकर तो किसी प्रकार रहा भी जा सकता है किन्तु जगलों में पलाशों की जो आग लगी हुई है उसे कैसे सहा जाय! फिर बाज की तरह ये वैरी कोयल पीछे पड़ गए हैं, इनसे इन प्राण-पक्षियों की रक्षा किस प्रकार हो सकती है! इस वसंत की प्राणातक ऋतु में इस जान की खैरियत नहीं। दु:खी हृदय भोगी को चट भला बुरा कह डालता है, वाणी पर से उसका नियंत्रण जाता रहता है। ऐसी ही दशा को पहुँची हुई गोपिका वसंत में पुष्पित होने वाले अशोक को लक्ष्य करके कहती है कि तुममें जो भाव और रंगत है वह ऊपरी ही है, अन्तर के तो तुम काले ही हो। इतना ही नहीं तुम लात के ही देवता हो (पदाघात से ही पुष्पित होते हो) नीच हो! तुममें और नीच प्राणियों में भेद ही क्या है आदि आदि। भले ने तो मेरी जीवनमूरि का पता क्यों नहीं बताते? हमारा शोक हरण कर अपना 'अशोक' नाम सार्थक क्यों नहीं करते? किन्तु जड़ प्रकृति क्या किसी की सुनती है? वह तो अपने ही ढग से काम करती जाती है। पक्षी शोर करना नहीं छोड़ते, ऋतु आने पर लताएँ सजना सँवरना नहीं बन्द करती। ये चीजें विरहिणी को बुरी लगें, लगा करें। उन्हें किसी की क्या परवाह, दुखी प्राणियों के प्रति क्या संवेदना! जड़ पदार्थ को किसी के सुख दुःख से क्या लेना देना! विरहिणी इसीलिए प्रकृति के विपरीत आचरण से बेहद परेशान हो जाती है और अन्त में धैर्य के साथ अपने भाग्य को स्वीकार कर लेती है—

> बन गाजन दै री चकोरन-मोरन, आज इन्हें गजिबोई परौ।
> छिति छाजन दै री लवग-लतान कों जो पै लिन्हें छजिबोई परौ।
> सब आज लौं गाहक जाके हुते, यह स्वाग हमैं सजिबोई परौ।
> प्रिय प्रान के नेह लगालगी मैं, अब प्रान हमैं तजिबोई परौ।

इस प्रकार द्विजदेव कवि का वियोग वर्णन पर्याप्त मार्मिक और सजीव बन पड़ा है। वह कवि की निजी विरहानुभूति न होकर भी पर्याप्त हृदयस्पर्शिता लिए हुए है। उसमें रीतिबद्ध कवियों की भांति विरह की नाप-जोख नहीं है वरन् विविधमनोदशाओं का सच्चा आकलन है। हृदय के रोष, क्षोभ, दैन्य, अधीरता, धृति, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, मृति आदि कितने ही भावों और मनोदशाओं की सच्ची व्यंजना है। यह वियोग वर्णन शास्त्र की अंगुलिका-ग्रहण करके चलने वाला नहीं है वरन् कवि के आराध्य कृष्ण की क्रीडा-भूमि के वातावरण के बीच भक्ति और निष्ठापूर्वक उनकी लीलाओं के ध्यान और भावना से प्रेरित तथा उत्पन्न विरह वर्णन है। द्विजदेव के समस्त प्रेम काव्य की यही प्रेरणाभूमि रही है फिर साहित्यिक परम्परा में दीक्षित द्विजदेव ने प्रौढ़ रीति से उसे काव्य बद्ध किया है।

उद्धव गोपी-प्रसग—इस प्रसंग पर भी द्विजदेव ने १०-१२ छन्द लिखे हैं।[1] इन छन्दों में कहीं तो गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण का जैसा नाम है वैसा उनका गुण नहीं वे कपटी और छद्मवेशी है, उनके मधुसूदन, गिरधारी, प्रियतम, घनश्याम आदि नाम निरर्थक हैं। कृष्ण ने गोपियों को जो पीडा पहुँचाई और योग का संदेश भेजकर उनके साथ जैसा आचरण किया उसके कारण कृष्ण पर से अब उनका विश्वास उठ गया है। वे सोचती हैं कृष्ण पहले तो ऐसे न थे, जब से मथुरा गये हैं तब से ही उनका ऐसा छला और उल्टा व्यवहार हो गया है, शायद यह मथुरा का ही गुण है कि जो वहाँ जाता है वही कुटिल और छली हो जाता है। पहले तो वसुदेव आये थे जो अपने पुत्र को यशोदा को सौंप गये थे और अब बडे हो जाने पर कृष्ण को अपना पुत्र कहने लगे है, दूसरे अक्रूर नामधारी किन्तु क्रूर और कुटिल कर्म करने वाले महाराज आये थे जिनका यश अगर एक युग तक गाया जाय तो भी समाप्त न होगा। अब देखने में सीधे-सादे ऊधव आये है जिन की कुमगति का फल अभी से ही मिलने लगा है। बस, बहुत हो गया अब मथुरा वालो का विश्वास नहीं किया जा सकता। सारे मथुरा वालों का स्वभाव कृष्ण ने ग्रहण कर लिया है। व्रज में रहकर वे गोपिकाओं से प्रेम करते थे, मथुरा पहुँचकर वे कुबडी कुब्जा के प्रेमी हो गये है। यह आचरण क्या कुछ कम निंदनीय है। ऐसे विचलित शीलवान व्यक्ति का क्या भरोसा। इसी से एक गोपिका बडी खीझ के साथ कहती है—कृष्ण के झूठे प्रेम के दावों से भरे पत्र को फेंक दे, उनके संदेशों और दूतों की बातों का विश्वास मत कर। इसी खीझ में वे उद्धव से भी कहती है कि आप जाइये, कृष्ण की झूठी बातों पर अब यहाँ किसी का विश्वास नहीं रह गया—

> बाँचनि न कोऊ अब बैनिऐ रहित खाम,
>
> जुबती सकल जानि गई गति याकी है।
>
> झूँठ लिखिबे की उन्हे उपजै न लाज कहूँ,
>
> जाइ कुबजा के बसे निलज तिया की है।
>
> दूसरो अवधि 'द्विजदेव' राधिका के आगे,
>
> बाँचै कौन मारि जौन पीड़ छतिया की है।
>
> ऐसे ही मुखागर कही-सो-कहौ ऊधौ! इहा,
>
> उडि गई ब्रज तें प्रतीत पतिया की है।

इस प्रकार कृष्ण के प्रति क्षोभ प्रकट करती हुई वे बार-बार उद्धव पर बरस पडती हैं। वे खीझ कर व्यंग करती है—हे उद्धव जी ? बडी दया की जो इधर आये, इससे हमें महान पुण्य का फल प्राप्त हुआ है। कभी वे आगत उन्मादक वसंत ऋतु को लक्ष्य कर अतिशय रोष के साथ उद्धव से कहती हैं—तुम्हें लज्जा नहीं आती। ऐसी ऋतु को देखकर भी उजड़ने की राय देते हो ? प्रसग, अवसर, ऋतु समय किसी का भी तुम्हें ज्ञान ध्यान नही ?

---

[1] शृंगार – लतिका-सौरभ - छन्द ७७, २३५ २३८, २३७, १०८, ७५, २१२, २६१, १६७, २१४।

कृष्ण के ज्ञान और योग के सन्देश मे गोपियों की वियोगाग्नि का दहक उठना स्वाभाविक था और इसीलिए उनके वचनो मे बड़ी खीझ झलकती है। प्रकृतिस्थ होने पर उनकी वाणी में अपेक्षित नम्रता और दैन्य के भी दर्शन होते हैं। परन्तु सारी व्यथा और ऋतु-जनित पीड़ा और वियोग दशा के बीच जो व्यथा सदा काँटे सी कसकती रहती है वह है कुब्जा। वे सोच नही पाती कि किन उपायों से कुब्जा ने कृष्ण को इतना मुग्ध कर रक्खा है, जो कुछ परम रूप-शालिनी गोपियाँ न कर सकीं वह एक लूली-लँगडी, कुरूपा ने कैसे कर लिया। वे कृष्ण को भी उनकी अबुद्धिमत्ता के लिए धिक्कारती हैं, क्या सारी दुनिया के रूपोद्यान उजड गये थे? क्या एक कुबड़ी ही दुनिया मे रीझने के लिए बच रही थी? इसे वे अपना घोरतम दुर्भाग्य समझती हैं। सचमुच भाग्य ही तो है, जीवन उत्सर्ग करने वाली गोपियो को अनत विरह मिलता है। एक दिन चदन लगा देने वाली कुबड़ी को कृष्ण-सा जीवन धन प्राप्त हुआ है। बस एक भाग्य पर ही सब दोष मढकर वे चुप हो रहती हैं—

> (क) "द्विजदेव" जू यामें विषाद कहा जु पै गोपिका सोस वियोग परो।
> अब ऊधो जू! कूवरी कौ वरिजौ, उन "लालत्रिभंगी" पै जाने परो॥
>
> (ख) जग देति दया करि ईस जोई सोई कोंछ-पसारि गह्यौई परै।
> "द्विजदेव" उराहनो यानें कहा, दुख आपनों आपं सह्योई परै॥

"कूबरी" और "लालत्रिभगी" कहकर दोनों के ऐंट-बैंडे पन पर अच्छी चोट की गई है। दोनो के जोड़ के योग बैठ जाने का कारण कदाचित दोनो की टेढ़ी-मेढी काया ही है, और तो कोई सगत कारण दिखाई नहीं देता। इस प्रकार के कुछ भाव उद्धव-प्रसग के छदों मे आये हैं। अतत गोपियाँ कृष्ण के सुख की कामना करती हैं। उन्हें कृष्ण से कुछ नहीं चाहिए—कृष्ण उनके हैं यही बहुत है, वे जहाँ रहें प्रसन्न रहें। उद्धव के माध्यम से वे यही सदेश कृष्ण के पास भिजवाती हैं। बड़ा ही मार्मिक है यह सदेश जिसमे वे कहती हैं—प्रियतम! हमे भोग के, सुख के दिन दिखाओ चाहे योग के संदेश भेजो, हम चाहती हैं कि तुम सतत् अगरागों से लिप्त सुरभि से पूर्ण सुख के दिन व्यतीत करो। हमारा जीवन अब इसी प्रकार वियोग में कट चला है, दुखों का, शूलों का, मानसिक यातनाओं का अभ्यासी हो गया है इसलिए हमे अब अपने लिये तो कुछ चाहिए नही हाँ, तुम्हारे लिए यह अभिलाषा अवश्य शेष है कि तुम जहाँ भी रहो आनद से रहो। तुम्हारे जीवन के आनद होने की सूचना हमे भी सुखी बनाये रहेगी। तुम्हारे जीवन की आनद-धारा मे व्याघात हमें सह्य न होगा। इस प्रकार इस सदर्भ मे हमे गोपियों की खीझ, कृष्ण के प्रति अविश्वास, कुब्जा के प्रति ईर्ष्या, अपनी भाग्यहीनता, कृष्णानुराग और उनके प्रेम के उदात्त रूप के दर्शन होते हैं। इन छदों मे भावो का आवेग दुरुस्त है, वह मात्र पिष्टपेषण नही है। द्विजदेव एक प्रभावुक और कवि-हृदय प्राणी थे फलस्वरूप उनकी भावयोजना सर्वत्र पुष्ट है, पिष्टपेषण या परपरानुसरण मात्र नहीं।

अन्य विषय : भक्ति, नीति आदि

प्रेम के अतिरिक्त रीति मुक्त कवियों मे भक्ति, वैराग्य, ईश्वरीय लीलाओं का वर्णन, नीति आदि से सम्बन्धित रचनाएँ भी मिलती हैं। ये रचनाएँ परिमाण और महत्व दोनों

ही दृष्टियों से स्वच्छन्द कविया की प्रेम सबधिनी रचनाओं के समक्ष नही ठहर सकती फिर भी लगभग सभी कवियों ने भक्ति, नीति आदि के छन्द समान रूप से लिखे हैं अतएव उनकी सक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत प्रबन्ध मे अनावश्यक नही कही जा सकती।

रसखान की भक्ति

रसखान प्रेम के कवि होने के साथ साथ उच्च कोटि के भक्त भी थे, उनकी गणना हिन्दी के श्रेष्ठतम भक्तो मे भी की जाती है। उनकी भक्ति के आलबन थे कृष्ण जिनकी भावना उन्होने साक्षात ईश्वर या ब्रह्म के रूप मे की है।

रसखान की दृष्टि मे कृष्ण—रसखान ने कृष्ण को नर के रूप मे नही माना है, वे तत्वत ब्रह्म ही हैं जिनके ध्यान मे शकर और ब्रह्मा रात दिन लगे रहते हैं। और भी कितने ही देवी देवता, योगी-यती लगे रहते हैं। शारदा, शेष, गणेश, सूर्य, इन्द्र आदि भी उनके गुणो का पार नही पाते, वेद जिनका अनादि, अनत, अखड, अछेद, अभेद आदि शब्दों द्वारा आख्यान किया करते है तथा नारद, शुकदेव और व्यास जैसे देवर्षि, महर्षि और ब्रह्मर्षि जिनका वर्णन करते हुए अन्त नहीं पाते। रसखान के कृष्ण ऐसी महती विभूति और विराट सत्ता हैं। नर एव दवता ही नही वरन देवो, अदेवो और भू-लोक की स्त्रियां भी जिन पर अपने प्राण निछावर किया करती हैं। ऐसे कृष्ण ने पृथ्वीतल पर अवतार लिया था। उनकी समृद्धि और सपदा देखकर कुबेर को सकोच होता था, उनके रूप को देख अनग लज्जित होता था, उनका आनदोपभोग देखकर इन्द्र ललचाया करता था। इन कृष्ण की वाणी मानो मुक्ति देने वाली तरगिणी थी। इस प्रकार रसखान के कृष्ण मे सौन्दर्य, कृपालुता, रक्षणशीलता और भक्तवत्सलता आदि के कितने ही महान गुण थे। वे साक्षात ब्रह्म के ही प्रतिरूप थे। उन्होने कितने ही आर्त्तजनो का उद्धार किया था—द्रौपदी, गणिका, गज, गीध अजामिल, अहिल्या आदि। ऐसे कृष्ण को पाकर रसखान अपने भविष्य के सबध मे निश्चित और आश्वस्त थे, उनकी कृपालुता और रक्षणशीलता पर उन्हें पक्का भरोसा था। ये कृष्ण अपने भक्तो के उद्धार के लिये उनकी भावनाओ के आदर के लिये पृथ्वी पर नाना रूपो मे अवतार लिया करते थे। देखिये न—

(क) नदरानी के तनक पय पीबे काज, तीन लोक ठाकुर सो ठुनकत ठाढ़ो है।
(ख) काग के भाग कहा कहिये हरि हाथ सो लै गयो माखन रोटी।

ईश्वर का यही मुग्ध करने वाला लौकिक आचरण उसके भक्तो का हृदय हर लिया करता है।

भक्ति-भावना—रसखान निश्छल चित्तवृत्ति के भक्त थे। उन्होने कृष्ण के प्रेम में पागल हो अपना सब कुछ उन पर निछावर कर दिया था। वे कृष्ण की छवि देखकर उनके अनन्य उपासक हो गये थे, उन्होने बडे आवेशोन्मेप के साथ उनके प्रति अपनी उत्सर्गपूर्ण भक्ति-भावना निवेदित की है। वे कृष्ण की लकुटी और कमरी पर तीनो लोको का राज्य, आठों सिद्धियां, नवो निधियां तथा कोटि-कोटि कलधौत के धाम निछावर करने को तैयार थे। उनकी एक ही अभिलाषा थी—कृष्ण-ससर्ग और उन्ही का सान्निध्य। इसके अतिरिक्त वे

और कुछ न चाहते थे—'मानुष हौं तौं वही रसखानि' वाले छन्द में उन्होंने अपने आने वाले जन्म की भी अभिलाषा व्यक्त कर दी है। वे कितने ही जन्म लेने को तैयार थे, मनुष्य, पशु, शिला, पक्षी, सभी कुछ बन सकते थे किन्तु उनकी एक ही शर्त थी और वह यह कि उनका जन्म व्रज में हो और वे गोप बनें या नन्द की धेनु बनें या गोवर्धन का पत्थर बनें या कालंदी-तट के कदंब की डालों पर बैठने वाला पक्षी। आशय यह है कि वे हर स्थिति में व्रजवास तथा कृष्ण का संसर्ग-सुख चाहते थे। ऐसे छन्दों में उनकी पवित्र भक्ति-भावना का उच्छल स्रोत देखने योग्य है। वे मोक्ष नहीं चाहते थे बल्कि उन कुंज कुटीरों को झाड़ने बुहारने की सेवा करना चाहते थे जिनमें श्रीकृष्ण कभी गये हों, वे व्रजरेणुका पर अंकित कृष्ण के चरण चिन्हों को सुरक्षित रखना चाहते थे—ऐसी निरीह और भोली आकांक्षाओं वाले भक्त थे रसखान। उनकी भक्ति में दूसरा मुख्य भाव यह था कि हम चाहे कुछ भी हो जायें, कितनी ही ऊँची पदवी और कितनी ही विशाल संपदा पा जायें किन्तु हमने यदि पीतपटवारे में प्रेम नहीं किया तो कुछ नहीं किया, इसके बिना हमारा जीवन निरर्थक है। लोग लाख प्रकार की अभिलाषाएँ करें किन्तु रसखान को एक कृष्ण को छोड़ किसी दूसरे से सरोकार नहीं। भक्ति का यही अनन्य भाव रसखान को महान भक्तों की श्रेणी में भी बिठा देता है। वे कहते हैं कि वही वाणी, कान, हाथ, पैर, प्राण और जीवन सच्चा है जो कृष्ण के गुणों के गायन, श्रवण, उनके स्पर्श, अनुसरण और ध्यान के प्रति समर्पित है।

भक्ति-विषयक छन्दों के ही संदर्भ में उन्होंने कुछ उपदेश-परक पंक्तियाँ भी लिखी हैं जिनमें यह कहा गया है कि हमारा जीवन संकल्प, नियम और सत्य से परिपूर्ण होना चाहिए, उसमें दुर्भाव न होना चाहिये, उज्ज्वल सत्संग होना चाहिये—जीवन यापन की यही सच्ची और पुनीत पद्धति है, यही भक्ति है, यही अर्पण है, यही सेवा है, यही त्याग है और सबसे बड़ी बात यह है कि गोविन्द का विस्मरण कभी न होना चाहिये—

> मिलिये सब सौं दुरभाव बिना, रहियै सतसंग उजागर मैं।
> रसखानि गुबिंदहि यौं भजियै, जिमि नागरि को चित गागर मैं॥

जीवन का यही पवित्र यापन सच्ची ईश्वर-भक्ति है। भक्ति अकर्मण्य का नाम-जप नहीं है, वह नाम है सदाचार और सत्यपूर्ण जीवन का, निर्लिप्त और संयत आचरण का, सद्भाव और सत्संगयुक्त आत्मविकास का। ऐसे ही कर्मों से संकुल जीवन के बीच सच्ची ईश्वर-भक्ति निहित समझनी चाहिए। सभी कर्मों के बीच ईश्वर का ध्यान बना रहना चाहिए उसी प्रकार जैसे डोर खींचती हुई पनिहारिन *इधर भी झूलती रहे किन्तु पलभर के* लिये भी डोर से उसका ध्यान इधर-उधर नहीं होता। साधना की अन्य पद्धतियों की अपेक्षा रसखान को भक्ति, सेवा और प्रेम का रुचिर पथ ही अधिक सुगम और प्रिय था। अत्यन्त दुःसाध्य तथा कष्टपूर्ण साधनाएँ उनके मनोनुकूल न थीं—

> कहा रसखानि सुखसंपति सुमार कहा,
> कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंगछार को।
> कहा साधे पंचानल, कहा सोए बीच जल,
> कहा जीति लाए राज सिंधु-आर पार को।

जप बार बार, तप संजम बयार-व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हो नहीं प्यार, नहीं सेयौ दरबार,
चित चाह्यौ न निहार्यौ जो पै नंद के कुमार को।

अन्य देवी-देवता—रसखान मुसलमान होकर भी कृष्ण के अनन्य भक्त और प्रेमी थे किन्तु उनकी यह अनन्यता अन्य देवी देवताओं के प्रति सम्मान प्रकट करने मे बाधक न थी। वे उदाराशय व्यक्ति थे तथा हिन्दू भक्तो के समान उनके आचार विचार हो गए थे, वैष्णव धर्म और आदर्शों की उन्होने श्रद्धापूर्वक महत्ता स्वीकार की थी। उनकी रचना से पता चलता है कि वे अन्य देवी-देवताओं को पर्याप्त सम्मान की दृष्टि से देखा करते थे। गगाजी की महत्ता और गरिमासूचक तथा शिवस्तुति-परक एक दो छन्द भी उनके काव्य मे मिलते हैं। गगा की प्रशस्ति मे वे कहते हैं कि उसके जल मे वह सजीवनी शक्ति है जो पथ्यापथ्य का विचार न करने वालो को भी जीवनदान करती रहती है। उसी की अमृतोपम शक्ति के भरोसे शिव भी जो चाहते हैं आकधतूरा चबाते और विप-भक्षण करते फिरते हैं। गगा के जल के पान से वैद्य की औपधि की आवश्यकता नही रह जाती। शिव के विचित्र वेश किन्तु महान् कृपालुता के प्रति भी उन्होने अपनी प्रणति निवेदित की है। उनके वीभत्स एव हास्योत्तेजक रूप मे उन्होने मगलकारिणी शक्ति देखी है। एक छन्द मे रसखान ने कृष्ण और शकर को एकरूप देखा है। अर्धनारीश्वर की कल्पना तो पुरानी है किन्तु 'हरिशकरी' की यह भावना सर्वथा नई है—

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन राजत री।
मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठपै आधिक नाद से बाजत री।
रसखानि पितबर एक कंधा पर एक बघबर राजत री।
कोउ देखउ सगम लै बुडकी निकसे यहि भेज सो छाजत री॥

हरि और शकर को एक ही रूप या मूर्ति मे कल्पित कर रसखान ने इन देवताओ मे तात्विक अभेद दिखलाया है। ऐसा करने का एक कारण तो समसामयिक वैष्णवों और शैवो का कलह हो सकता है, हो सकता है तुलसी के ही समान कृष्ण और शकर मे एक रूपता दिखाकर धार्मिक कलह को प्रशमित करने की भावना इसके पीछे रही हो।

कृष्ण की लीलाओं का वर्णन—रसखान ने कृष्ण के बालरूप, किशोर रूप, उनकी गोचारण लीला, कुजलीला, दानलीला, बनलीला, पनघट लीला, चीरहरण लीला, रासलीला आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। इस सन्दर्भ मे उन्होंने उनकी असाधारण रूप-मोहिनी और रूप-माधुरी दिखलाकर सारे ब्रज को उन पर मुग्ध दिखलाया है। कृष्ण मे जिन दैवी गुणो का अधिवास दिखलाया गया है उसमे उनके ईश्वर होने का ही परिचय मिलता है तथा इस प्रकार के वर्णन एक ओर जहाँ कवि की पूज्य भावना को व्यक्त करने वाले हैं वही दूसरी ओर पाठक के अन्दर भी पूज्य बुद्धि विकसित करने वाले हैं। रसखान ने एकाध छन्द ऐसे भी लिखे है जिनमे कृष्ण की शक्ति तथा उनके पौरुष का वर्णन हुआ है। कालियादमन और कुवलया-वध नामक कृष्ण के दो वीरतापूर्ण कृत्यो का रसखान ने साकेतिक उल्लेख किया है।

ये तथा इसी प्रकार के और भी बहुत से प्रसग हैं उदाहरण के लिये अघासुर, बकासुर, पूतना, तृणावर्त्त आदि का संहार, कंस-वध तथा सदृश प्रसगों पर भी रसखान लिख सकते थे किन्तु उनका चित्त कृष्ण के लोकोपकारक रूप पर उतना आसक्त न था जितना उनके ललित, मधुर और कोमल रूप पर। इसी कारण उन्होंने कृष्ण के साहस और वीरतापूर्ण रूप का विशेष वर्णन न कर केवल दान लीला, वेणु-लीला आदि मनोहर प्रसगो पर ही विस्तार से लिखा है।

आलम की भक्ति

आलम में भक्ति-भावना का रसखान सरीखा उन्मेष तो नहीं दिखाई देता किन्तु उन्होंने भक्ति के विविध आलम्बनों तथा उनके जीवन से सम्बन्धित छन्द पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं। स्पष्ट ही यह समसामयिक युग का प्रभाव था परन्तु साथ ही साथ उसमें उनकी पूज्य बुद्धि का भी थोड़ा योग रहा होगा इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। मूलतः आलम प्रेमी ही थे परन्तु अनेकानेक छन्दो द्वारा उन्होने प्रेम-भाव के आलम्बन कृष्ण को अपनी आस्था और भक्ति के आलम्बन-रूप में भी चित्रित किया है।

आलम ने मुख्य रूप से भक्तो के परम आराध्य श्री कृष्ण के ही बाल रूप एवं स्वभाव वर्णन पर लगभग ३० छन्द लिखे हैं जिसमें उनकी क्रीड़ाएं, सुन्दरता, वेशभूषा,गोचारण, माता यशोदा का वात्सल्य, गोपियों का कृष्ण ऐसे खिलौने पर असीम अनुराग आदि चित्रित किया है। कंस के मतवाले हाथी को मारने का वर्णन भी एक छन्द में आया है। ये सभी छन्द ईश्वरावतार श्रीकृष्ण के सौन्दर्य एवं गुणों के प्रति पाठक की पूज्य बुद्धि को बढ़ाने वाले हैं इसलिये प्रकारान्तर से भक्ति के ही विकासक हैं। इसी सन्दर्भ में यमुना और वंशी के प्रभावादि का भी वर्णन हुआ है।[1] आलम की आस्था और पूज्य बुद्धि भगवान राम के प्रति भी थी। भक्तिकाल के समस्त सगुणोपासक कवियों की ही भाँति आलम आदि स्वच्छन्द धारा के कवियों में भी भक्ति और आस्था के क्षेत्र में उदारता के दर्शन होते हैं। ये कवि एक ईश्वर-रूप की प्रतिष्ठा करके दूसरों की अवमानना में प्रवृत्त नहीं हुए हैं वरन् उनके प्रति भी पूर्ण सद्भाव का प्रदर्शन इन्होंने किया है। आलम ने राम के जीवन से सम्बन्धित कई प्रसंगो पर छन्द लिखे है उदाहरण के लिए धनुर्भंग एवं परशुराम का कोप, सीता का वनवास, केवट की नाव पर राम का चढ़ना, अंगद का रावण को समझाना, लंका में आग लगना, राम विरही भरत की दशा आदि।[2] शिव के प्रति भी श्रद्धा-बुद्धि से लिखित दो-एक छन्द मिलते हैं जिसमें उनके स्वरूप और निश्चिन्त स्वभाव की प्रशस्ति की गई है।[3]

वैराग्य—नीति और उपदेश के कथन आलम में न के बराबर हैं पर कुछ छन्दों में वैराग्य-भावना मिलती है, ऐसे छन्दो में कहा गया है कि मनुष्य की प्रकृति और प्रवृत्ति इतनी भोग-विलासोन्मुख है कि वह सिर पर छाई मृत्यु की परवाह नहीं करता, रात-दिन हँसने-बोलने, खाने पीने और मौज करने में ही गँवा देता है, उसके जीवन की थोड़ी सी पूँजी

---

१. आलमकेलि : छन्द २४४, २४५, १६१, १६२।

२. वही : छन्द ३५५ २६१, २६२, ३५६, २६०, २६४, ३५७, ३५८, २६३, २६६, २६७, २६८।

३. वही : छन्द २८७।

जन्म और मरण के बीच ही चुक जाती है वह यह नहीं देखता कि उधर घरी घड़ी पर घड़ियाल बज रहा है और आयु पूरी हुई जा रही है—

> हँसे खेलें खाय न्हाय सोवें डोलें आवें जाय,
> मन ही की रुचि नीके तन ही हिताति है ।
> घरी है गनतु घरियार ज्यौं ज्यौं बाजत है,
> जानतु है नहीं कि बजाये आयु जाति है ।।

एक अन्य छन्द में कवि ने मनुष्य की आराम तलबी का वर्णन किया है—मनुष्य जन्म लेता है तो पृथ्वी पर पड़ता है बड़ा होकर पालने पर, और बड़े होने पर हाथी-घोड़े पर तथा शत्रु विषयों के चक्र में पड़कर युवती के भोग में पड़ता है। इसी सबसे उसे पड़ने की (भोग करने की) आदत पड़ गई है। वह पड़ा ही रहता है इसीलिये वह शीघ्र मृत्यु के मुख में भी पड़ जाता है। कवि का यहाँ पर संकेत यही है कि मनुष्य को भोग में विरत होना चाहिये। एक अन्य छन्द में आलम ने भोग में लिप्त और भगवान को भूले हुए मनुष्य को भगवद्स्मरण करने की सलाह दी है—

> अजहूँ सँभारि आलम सुकवि जौ लौं अन्तक नहिं धर्यौ।
> पग डगमगात हेरत झुँमत बिरह भुअंगम को डस्यौ ।।

इस प्रकार की उक्तियाँ परम्परा का पोषण करने वाली है, वे कवि अंतस् की स्थायी प्रवृत्ति नहीं हैं और न उनमें आलम के हृदय का उन्मेष ही पाया जाता है।

घनआनंद की भक्ति

घनआनद प्रेमी होने के साथ साथ परमोच्च कोटि के भक्त भी थे। यह भक्ति उनके उत्तरकालीन जीवन में परिस्थितियों की विवशता के कारण आई। प्रेम ही उनका जीवन-सर्वस्व था परन्तु उस क्षेत्र के अपार नैराश्य और कोरे अंधकार ने कालान्तर में उनके जीवन की धारा ही मोड़ दी थी।

प्रेम की वैराग्य और भक्ति में परिणति—वियोग और क्लेश के आतिशय्य से घनआनद में जगह-जगह वैराग्य का भाव पाया जाता है। जब सारा जीवन वियोग की वेदना का स्वरूप मात्र हो रहा है तब अन्तिम समय में या बहुत दुःख झेल लेने के बाद कवि के मन में यह भाव आता है कि मन इस चक्कर में फँसा ही क्यों? इसमें प्रेम का हल्कापन नहीं है वरन् दीर्घजीवनकाल व्यापी वेदना की यह तो एक अनिवार्य परिणति मात्र है। कवि को अपने मूल्यवान जीवन को यों ही विरह में तड़पते हुए बिता देने का कोई खेद नहीं है पर वह अन्तिम समय में निराश हो भगवदोन्मुख हो गया अवश्य लगता है। 'सुजानहित' में ही उनके जीव को प्रबोधन देने वाले वैराग्य परक छन्द मिलते हैं जिनके पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे ये विरक्तिमूलक भाव विरह-व्यथा से ही उत्पन्न हों।[1] सुजानहित के उत्तरवर्ती अंश में

---

[1] सुजानहित छन्द ३६६, ४००, ४०१, ४१७, ४३५, ४४०, ४४८, ४५५, ४८५, ४६५, प्र० ८६, कृपाकंद छन्द १२

इस आशय के कई छन्द हैं। उनके द्वारा वैराग्य के साथ साथ भक्ति-भाव-परक छन्दों के लिखे जाने का भी यही रहस्य है। प्रेम जब लौकिक से टूटा तो अलौकिक मे समा गया। आखिर घनआनद के जीवन का सबसे मूल्यवान तत्व प्रेम ही तो था, वे अपनी समूची सत्ता को प्रिय के प्रति अशेष रूप मे समर्पित कर देने वाले प्राणी थे। लौकिक प्रिय की अप्राप्ति में उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्णार्पित कर दिया था। सुजानहित के अन्तिम छन्दों तक आते आते समूची भावधारा ही बदल गई है, प्रेम कृष्णोन्मुख हो गया है। लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम मे यह परिणति असाधारण है। घनआनन्द का प्रेम उनके जीवन मे ही पूरी तरह व्याप्त था कुछ आरोपित नही। उस ओर सफलता न मिलने से वह अनुराग-भण्डार कृष्णार्पित हो गया। वे स्वय लिखते हैं कि अपने प्रेम को सब ओर से खींचकर कृष्ण मे केन्द्रित करना मेरे लिये आवश्यक हो गया था। – 'सब ओर तें ऐंचि कै कान्ह किसोर मैं राखि भले थिर प्रास रूरे।' उनकी कृष्ण-भक्ति-परक रचनाएँ सुजान-प्रेम वाली रचनाओं से स्पष्ट भिन्न हो गई हैं। यह अवश्य है कि सुजानहित मे भक्ति-मूलक रचनाएँ परिमाण में कम हैं परन्तु अन्य ग्रन्थों मे उनकी भक्ति का स्वरूप और अधिक विकच रूप मे देखा जा सकता है।

निम्बार्क संप्रदायानुसारिणी भक्ति— निम्बार्क सम्प्रदाय मे भगवान कृष्ण की चरण सेवा का ही महत्व सर्वोपरि है, ब्रह्मा-शिव सभी उनकी वन्दना करते हैं। अचिन्तनीय शक्तियों वाले कृष्ण अपने भक्तों का दुःख दूर किया करते हैं। कृष्ण की प्राप्ति भक्ति द्वारा सभव है जो इन पांच भावो मे पूर्ण होती है—शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल। उज्ज्वल रस के भक्त हैं गोपी तथा राधा। निम्बार्क सम्प्रदाय मे उज्ज्वल अथवा मधुर भाव को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया गया है। श्री निम्बार्काचार्य ने युगल उपासना के साथ भगवान कृष्ण की माधुर्य एवं प्रेम-शक्ति राधा की उपासना को विशेष महत्व दिया था क्योंकि उनका विश्वास था कि राधा मे भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने की अक्षय सामर्थ्य है—

> अङ्गेतु वामे वृषभानुजा मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम।
> सखी स_स्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्ट-कामदाम्॥

निम्बार्क मत मे साधको के लिये किसी विशेष भाव को ही स्वीकार करने का आग्रह नहीं किया गया इसीलिये श्री भट्ट जी तथा श्री हरिव्यासदेवाचार्य आदि ने जो माधुर्य रस के ही मान्य उपासक कहे जाते हैं दास्य, वात्सल्यादि भावों मे भी भक्ति-निवेदन किया है। भक्ति सम्बन्धिनी यह भाव-विविधता घनआनद मे भी पाई जाती है। फिर भी इतना अवश्य है कि इस सम्प्रदाय मे प्रेमलक्षणा अनुरागात्मिका पराभक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। भक्तिक्षेत्र मे राधा को महत्व देने वाले इस निम्बार्क सम्प्रदाय से ही वृन्दावन मे राधावल्लभीय एव हरिदासी मतो का उद्भव हुआ। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय का सम्बन्ध स्वामी हरिदास से ही जोडा जाता है। वे भगवत्प्राप्ति के लिये गोपीभाव की भक्ति को ही सर्वोत्कृष्ट साधन मानते थे। उनकी इस भावना का बडा प्रचार हुआ और भक्ति के क्षेत्र में गोपी या सखी-भाव का पुष्कल साहित्य लिखा गया। घनआनंद की भक्ति-भावना पर भी गोपी या सखीभाव की भक्ति की छाप देखी जा सकती है।

घनआनद ने अपनी भक्ति भावना का निवेदन राधा और कृष्ण के प्रति किया है।

ये दोनों एक से एक बढ़कर भक्ति के आलम्बन हैं जितना भावोन्मेष घनआनंद ने कृष्ण के प्रति भक्ति-निवेदन में दिखलाया उससे कम आवेश राधा के प्रति भक्ति-निवेदन में नहीं। निम्बार्क सम्प्रदाय में भक्ति के सभी भावों के लिये अवकाश था इसी कारण घनआनंद के भक्तिकाव्य में भी एकाधिक भावों की भक्ति देखी जा सकती है। मन जब जैसी वृत्ति कर लेता था तब उस भाव की भक्ति व्यक्त करता था। घनआनन्द की भक्ति के आलम्बन राधा और कृष्ण ही नहीं उनकी निवास एवं लीलाभूमि भी है इसीलिए शत शत रूपा में कवि ने कृष्ण के ब्रज, गोकुल, वृन्दावन, राधा के बरसाने आदि के प्रति अत्यन्त भक्तिभावापन्न पंक्तियाँ लिखी हैं। उसके जीवन में इस समूचे ब्रजप्रदेश का ही अक्षय महत्व है।

ब्रज—ब्रज की माहात्म्य का, वहां के सुख और वैभव का, उस चिरअभिलषित पावन भूमि के प्रति अटूट प्रेम का वर्णन कवि ने बार-बार अनेकानेक कृतियों में किया है—ब्रज-प्रसाद, ब्रजस्वरूप, ब्रजविलास, धाम चमत्कार, ब्रजव्यवहार आदि में उक्त भावनाओं का अटूट प्रकाश देखा जा सकता है। जिस भक्ति भावापन्नता के साथ कवि ने अपने आपको व्यक्त किया है वह सहृदय व्यक्ति को डुबो देने वाली है, बहा ले जाने वाली है, उसके चित्त में भक्ति की पुनीत भावना का उद्रेक करने वाली है। कवि के हृदय में ब्रज के प्रति अपार अनुराग और पूज्य भाव है। उन्होंने जिस ढंग से इसका वर्णन किया है उसकी ध्वनि यही है कि हर प्राणी को इस ब्रजमण्डल में आकर रहना और अपने जीवन को सार्थक करना चाहिये। श्रीकृष्ण और राधा की इस लीला भूमि के विषय में काफी कुछ कह लेने पर भी उन्हें यही अनुभव होता रहा है कि यहाँ की शोभा, पवित्रता, महिमा आदि शब्दों में वर्णित नहीं हो सकती—

> (क) यह सुख मुख हूँ को उच्चारं। सुख ही निज सुख बरनन करं॥
> (ख) गोकुल छबि आंखिनि हूँ मावं। रहि न सकं रसना कछु गावं॥
> (ग) सबनें अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस॥

ब्रजमण्डल की शोभा के ये वर्णन नितान्त सरल, निश्छल, भक्तिभावापन्न, महिमा-गायन की शैली पर किये गये हैं जिनमें वर्ण्य के स्वरूप को प्रत्यक्ष कराने की अपेक्षा उसकी अनिर्वचनीय महत्ता का भाव मनोगत कराने का प्रयास किया गया है। आरम्भ हृदय से उत्पन्न ये वर्णन पाठक के हृदय में ब्रजदेश के प्रति सम्मान भावना और पूज्यबुद्धि जगाने में समर्थ हैं।

ब्रज-प्रसाद—इस रचना में घनआनन्द ने अत्यन्त भक्ति-विह्वल भाव से ब्रज का माहात्म्यगान किया है और अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हो अपने और ब्रज के सम्बन्ध की बात कही है। यह ब्रज संसार में उज्ज्वल और प्रकाशित है क्योंकि यह ब्रजलोचनों के तारे श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। ब्रज का प्रसाद शुक, सनकादि ऋषि भी चाहते रहते हैं। ब्रजप्रसाद से सब दुःख दूर होते हैं तथा तन मन परमानन्द से परिपूर्ण हो जाते हैं। ब्रज में नन्द-यशोदा, कीर्ति और वृषभानु रहते हैं जो ब्रज को अपने प्राणों के समान पालते और उसकी रक्षा करते हैं। इनके घरों में नित्य त्योहार सा रहता है तथा ब्रजवासियों में परस्पर आत्मीय प्रेम-व्यवहार गोचर होता है। वहाँ सभी के अभिलाष पूरे होते हैं। ब्रज के सरस सरोवरों और

यमुना के तट पर कान्हा बलवीर के संग सदा विहार करते रहते हैं। गाँव-गाँव में श्रीकृष्ण पहुँचते हैं और उनके साथ-साथ मोद और विनोद भी पसरता चलता है। ब्रज की वीथियाँ और बाग, एक-एक ठौर यहाँ तक कि ब्रजवासियों के नेत्र और मन श्याममय दिखाई देते हैं, वहाँ पर लोगों में कृष्ण के प्रति अनूठा प्रेमोन्माद दिखाई देता है। कवि का ब्रज के प्रति जो असाधारण रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया है उसकी शतशत रूपों में परिपूर्ण व्यंजना प्रस्तुत रचना में देखी जा सकती है। जो भावविभोर हृदय इतना अधिक काव्य में उतरा है उसकी वास्तविक ब्रज-प्रीति और प्रेम मग्नता कितनी रही होगी ? सचमुच ये छोटी-छोटी कृतियाँ जैसे घनआनन्द के मधुर हृदय-खण्ड हों—

> यह ब्रज नित सुखसिंधु कलोलै। ब्रज को चंद सदा ब्रजडोलै॥
> आँखिन को सुख ब्रजदरसन है। आनदघन बरसन सरसन हैं॥
> अहोभाग या ब्रज कों लखौं। ब्रज की सींव न कबहूँ नखौं॥

ब्रजस्वरूप—ब्रज परमप्रेम से पूर्ण प्रदेश है, शेष-महेश जिसके रज की वन्दना करते हैं। ब्रजग्राम निरवधि आनन्दमय है जहाँ श्यामसुन्दर अपने प्रेम-पुंज परिकर के साथ सदा निवास करते हैं और लीला-सुख-सम्पदा का भोग करते हैं। नन्द और यशोदा की अत्यन्त कांतिशालिनी और रमणीय ब्रजवसुन्धरा का क्या वर्णन किया जाय। ब्रज के ईश में अनुरक्त ब्रज-वसुमती की द्युति देखने में अद्भुत है। नन्दगाँव तथा अन्य गाँवों में गोपसमूह निवास करते हुए अत्यन्त शोभा देते हैं। सभी गोप-ग्वालों में परस्पर बड़ा स्नेह है, गोधनों के ठाट का क्या कहना, अपरिमित परिमाण में धन और धान्य सुलभ है, घरों के पास में ही खरिक होती है, घरों के बगल में स्वच्छ गलियाँ और गऱ्यारे हैं। घर-घर में मंगल गीत होता रहता है और नित्य उत्सव का सा दृश्य गोचर होता है। ऊँचे ऊँचे प्रकाशयुक्त चौपाल और ललित चौहटे देखते ही बनते हैं। चारों ओर शुभ और सुन्दर वृक्षावलि है, निकट ही साँवले सरोवर हैं जो मानो ब्रजमोहन की छवि देखने के अमल दर्पण हैं। श्याम के सुभग अंगों की पावन गंध से ब्रजवन सदा महकता रहता है, उसके सुख का क्या वर्णन किया जाय। जमुना के किनारे कदंबों की छाँव में केलिके अनुकूल सुन्दर और निर्जन स्थान है। जैसा आनन्द चौमासे में बरसता है वैसा ही आनन्द वर्ष भर बरसता रहता है। ब्रज में अभिराम श्याम बसते हैं इसलिये सारे सुख, सारी विभूतियाँ ब्रज में पानी भरती हैं, हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। इस तरह ब्रज में होने वाले आनन्द का शत-शत रूपों में कवि ने वर्णन किया है। वह कहता है कि ब्रजवासियों का आनन्द मेरे चित्त में चढ़ा हुआ है, ब्रजमोहन और ब्रजवधू का विलास देखकर मेरी सारी आशाएँ पूरी हो जाती हैं—कवि की यह भावना मधुराभक्ति की भावना के नितान्त मेल में है जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम और संयोग-सुख में ही भक्त अपनी तृप्ति समझता है। ब्रजवासियों का सत्संग लाभकर कवि अपना जन्म सफल समझता है, वह ब्रज का है, ब्रज उसका है।

ब्रज विलास—इस रचना में दो बातें मुख्य रूप से कही गई हैं। एक तो ब्रज के ठौर-ठौर की विभूति और सौन्दर्य का वर्णन दूसरे राधा की कृष्ण-प्रीति का वर्णन। ब्रजभूमि के कण-कण से कृष्ण की प्रेम-क्रीडाओं की स्मृति जुड़ी हुई है। ब्रजनाथ की कृपा से ही ये नेत्र

ब्रजभूमि का दर्शन पा सकते है और हृदय ब्रजवन के माधुर्य का अनुभव कर सकता है। वे नन्द, ग्वाल-बाल, गोपजन आदि महाभाग है कृष्ण जिनके प्राणों के आधार हैं। कृष्ण ने ब्रज-प्रदेश को अपनी प्रेम दृष्टि की अपरिमित वृष्टि से सींचकर चिरकाल के लिये हरा भरा बना दिया है। इसके बाद स्वय राधा के ही मुख से राधा और कृष्ण की प्रीति का वर्णन कराया गया है। राधिका कहती है कि रात दिन मेरे कानों में कृष्ण की मुरली की ध्वनि रमी हुई है और आँखो मे उनकी मूर्ति, मेरे अग अग मे उन्ही के मोह की छाक से छके हुए हैं। घूँघट की ओट होने पर भी दृष्टि उधर ही जाती है, हृदय का धैर्य खो गया है और हर समय एक ही अभिलाषा रहती है—'जागति हौं बतरानि हौं सत सोवत को पीर।' कृष्ण का विरह केवल राधा का ही दुःख नही है समग्र ब्रज की व्यथा है। ब्रज का यही अमल, अगाध रस कवि के प्रेम का विषय है और उसका मन उसी मे डूबता उतराता रहता है, उसका मन मोहन पद-अंकित ब्रज की रज मे सदा लोटता रहता है तथा ब्रज और ब्रजमोहन के माधुर्य एव रसनाथ की लालसा कभी मिटती नहीं।

धाम-चमत्कार—इस रचना मे ब्रज के वनो के सुख का वर्णन हुआ है जो कृष्ण की लीला एव विहार की भूमि है। वहाँ रहने से हृदय में अपरिमित ओज, माधुर्य और उत्साह का सचार होता है। इसके स्थान-स्थान की रुचिर शोभा अकल्पनीय और विस्मयकारी है। इसकी रज म जैसे परमतत्व का सार समाया हुआ है जिसे पाने के लिये शिव, ब्रह्मा, शेष, सनकादि लालायित रहते हैं। धन्यभाग हैं वे ग्वालबाल जो कृष्ण के परिकर बने हुए हैं। इस ब्रज वनस्थली की अतुल, अभूत माधुरी से शकर अवधूत भली भांति परिचित हैं। इस धाम के समस्त आनन्द तक पहुँच सकने की क्षमता मन भी नही रखता तथा श्रीकृष्ण की यहाँ पर होने वाली अद्भुत लीलाएँ अधिकारी भक्तों की बुद्धि को भी चकित कर देने वाली हैं। व्रजवन की अनेक बहुरगी शोभाएँ हैं जिनका ओर-छोर नही। अत्यन्त भाव-विह्वल हो कवि कहता है कि 'मगलनिधि गोपाल-उपासी' ब्रजवासी धन्य हैं, यहाँ के नैत्यिक मगलचार और व्यवहार धन्य है। देखने पर नेत्रों को हर्षातिरेक से आत्मविस्मृत कर देने वाला ब्रज का सुख, वहाँ सघन छाए रहने वाले विनोद, कुँवर कान्ह के हृदय को हर लेने वाली ब्रज की वनश्री और वनसम्पदा का कथन नहीं किया जा सकता—

> या ब्रज सो यह ब्रज ही आहि। ब्रज की परतर दीजै काहि॥
> ब्रज वृदावन की बलि जैयें। ब्रज वृन्दावन लीला गैयें॥
> ब्रज देविन की कृपा मनैयें। याही तें यह ब्रजरज पैयें॥

यमुना यमुना-यश—प्रगाढ भक्ति-भावना से प्रेरित हो घनआनन्द ने यमुना का भी यशोगान किया है। यमुना-जल की अपूर्व कान्ति, उसकी मधुरता, स्वाद की अकथनीयता, धारा की अगाधता, उसके रूप की रम्यता, लहरो की रुचि-रोचकता, उसके जल की त्रिताप हारिणी और परमपद-दायिनी शक्ति, चिन्तामणि उपमित मनोकामना-पूरक शक्ति, उसके स्पर्श की हर्षोत्तेजकता, उसकी परमार्थ-साधन-सक्षमता और मगलमयता आदि का कवि ने उत्साह-पूर्वक वर्णन किया है। यमुना के तट पर गोपाल लाल क्रीडा करते हैं, यहाँ अगम ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है, इसमे स्नान करके श्रीकृष्ण पूर्व सुख का अनुभव करते हैं, इसके

रमणीय कुंजों में नित्य विहार होता है, भानुनंदिनी कहलाने के नाते यमुना श्री राधाजी को अत्यन्त प्रिय है, इसके मनोरम तट पर प्रीति के अकुर नित्य प्रकट होते हैं, इसके दर्शन मात्र से सांसारिक भ्रमबाधाएँ दूर होती हैं और दु:ख-तिमिर का नाश होता है। श्यामवर्ण और गम्भीर गुणों वाली यमुना कृष्ण और बलराम की गोचारण भूमि है, यह श्रीकृष्ण के अनुरागों के रस में पगी है, इसके पुलिन पर लीला का अखण्ड आनन्द उपजता है। कवि यमुना के प्रति अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करते हुए कहता है—

> या जमुना को भाग निकाई। मति अति रीझी विचार बिकाई॥
> या जमुना को हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ॥
> या जमुना में नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ॥

गोकुल : गोकुल गीत—गोकुल की महिमा घनआनन्द ने वर्णनातीत बताई है जहाँ नन्द महर के द्वार पर गोप और ग्वालों की सतत भीड लगी रहती है। कुंवर कन्हाई जहाँ सबके जीवन प्राण हैं और बडभागिन यशोदा अपने सत्कर्मों और पुण्य का फल अपने ही सामने देख ले रही है। उसके समान भाग्यशालिनी और महिमामयी कौन है जिसके पुत्र के प्रेम में सारा व्रज ही पगा हुआ है। नदराय का भाग्य कहने योग्य नहीं जिनके लाडले लाल मोहन का खेलना, हँसना, चलना, गाना प्रत्येक जन के जीवन में रस की वृष्टि करता है। यमुना तट पर बसे गोकुल गाव की शोभा न्यारी है, वह नेत्रों का विषय है, वाणी का नहीं। वहाँ कमल नयन की चितवन सभी को आनंदित किये हुए है। गोकुलवासियों के लिये सोते-जगते एक ही सुख है—कृष्ण के साहचर्य का सुख जिसके आगे त्रिलोक की सम्पदा तृण के समान त्याज्य है। यहाँ के लोग कृष्ण लीलाओं में ही विभोर और पुलकित बने रहते हैं। इस गोकुल की छवि सदा नेत्रों में बसी रहे यह घनआनन्द की कामना है।

वृन्दावन : वृन्दावन-मुद्रा—वृन्दावन का माहात्म्य गायन तथा उसके प्रति अपनी पूज्य-भावना का प्रकाशन करते हुए घनआनद लिखते हैं कि अब मैं राधाजी के वृन्दावन का गुणगान करता हूँ। कैसा वह वन है जिसमें व्रजमोहन का मन ही मानों सतत रमण करता रहता है। यहाँ राधा और मोहन नित्य प्रेम-क्रीडा करते रहते हैं, दोनों के नेत्रों में वृन्दावन पुतलियों की तरह बसा रहता है। वृन्दावन में यमुना की तरल तरगें शोभा देती हैं। यमुना के तीर पर ही यह वन स्थित है। इसके गुणगान से तो मेरी वाणी भी सरस हो गई है।—'तीर भूमि बनि रह्यौ सदा बन। जै जमुना जै जै वृन्दावन॥' गौर-श्याम युगल सतत एकरस हो यहाँ विहार करते रहते हैं। यहाँ ललित लतानियों के संग रसवलित वृक्ष महामधुर फलों से परिपूर्ण हो शोभा देते हैं, सुखद सरोवर हैं, पवन महमह करता हुआ परिमल वहन करता है। राधा और कृष्ण अपनी प्रेम क्रीडाओं से वृन्दावन में जगमग करते हैं और वृन्दावन की अलौकिक आभा के बीच छिप भी जाते हैं। वृन्दावन और यमुनातट पर शोभा की नित्य भीड लगी रहती है, प्रिय और प्रिया का आना जाना देखते ही बनता है। यहाँ का मोद-माधुर्य त्रिलोक में न्यारा है, यह राधा-प्रिय के प्रेम को पुष्ट करने वाला है तथा पवित्र रुचि को सब प्रकार से सहज ही तुष्ट करने वाला स्थान है। वृन्दावन में कुंजों का परिकर है तथा यमुना पुलिन की रेणु तो मानो चिंतामणि-चूर्ण है। इस अक्षय, अगम्य और

अलौकिक वन में कौन है जो किसी प्रकार का दोष पा सके ? मैं वृन्दावन का हूँ, वृन्दावन मेरा है, मैं इसका रखवाला हूँ, यहाँ सदा मधुर रस की धारा बहती रहती है।

गोवर्धन : गिरिपूजन--कवि लिखता है कि सारे ब्रजवासियों को अत्यन्त प्रिय लगने वाला गोवर्धन पूजन का दिन आ गया। गोधन पूजन के उत्साह का क्या कहना ! घर घर कड़ाहे चढ़े हैं और नाना प्रकार के पकवान बन रहे हैं। डौरे, मांडियाँ और बहेलियाँ भर-भर कर और हृदय में गोधन-परिक्रमा के परम सुख की कल्पना से भर भर कर सारे गाँव के लोग जब कृष्ण के साथ गोवर्धन पर्वत की ओर चलने लगते हैं उस समय की शोभा कही नहीं जाती। जब दीप-दान का समय आता है तो इतने दीपक जल उठते हैं कि सभी दिशाओं की चमक फीकी पड़ जाती है। गोपी ग्वालों की भारी भीड़ जब गोवर्धन की परिक्रमा करने लगती है उस समय जो कोलाहल होता है उसे सुन कर ससार विस्मृत हो जाता है। कृष्ण माताओं से अपने वस्त्रों में पकवान भरा लेते हैं और अपने सखाओं को बाँटते हैं और मधुमगल नामक अपने सखा को पकड पकड कर नाचते हैं। इस प्रकार रुचिपूर्वक वे गोवर्धन की परिक्रमा करते हैं, थका हुआ जानकर नद जी उन्हें कभी कभी गोद में भी ले लेते हैं लेकिन कृष्ण उतर कर फिर पाँव पाँव चलने लगते हैं, उनके हृदय में गोवर्धन की महिमा का भाव रहता है। कृष्ण का पैदल चलना और ललित स्वर से वशी बजाना, उनके चरण-नखों की ज्योति के सामने चन्द्रप्रभा का भी मद पड़ जाना आदि देखकर यशोदा माता और ब्रजवासी सभी अपना भाग्य सराहते हैं। गोवर्धन की पूजा के अनन्तर सब लोग घर लौटते हैं, घर घर आनन्द और मगल-गीत होते हैं। लोग बलराम और कृष्ण को आशिष देते हैं जिनके कारण अपरिमित सुख का यह सयोग घटित होता है।

बरसाना--ब्रजमण्डल में बरसाना नाम का एक परम पवित्र पर्वत है जहाँ गौर शरीर वाले हरिप्रेमी महाराज वृषभानु का राज्य था। उसी पर्वत के नाम से वह गाँव प्रसिद्ध था जो उसके समीप ही बसा था। बरसाना गाँव की शोभा का तो कहना ही क्या और उस भाग्यशालिनी धरती की महिमा का वर्णन क्या किया जाय--'भागनि भरी भूमि रँगभीनी, काहू कर विरचि रचि कीनी।' प्रेम में रँगमगी कीर्तिकुमारी राधिका वहीं अपनी सखियों के साथ खेला करती थीं। अपनी अपनी ओलियों (कोंछ) में जाने क्या भर भर कर सब खेलती थी हिलती मिलती और गीत गाती थीं, पशुचारण भूमियों, गलियों एवं कुंजों में विचरण करती थीं और जब मन की उमग से वचनोच्चार करती थी तो ऐसा लगता था जैसे उनकी वाणी के अमृत से सारा वन ही सिंचित हो उठा हो। इस प्रकार अपनी सखियों के साथ पर्वत-वन-बाग-तड़ागों में राधा सुखपूर्वक खेलती और विविध प्रकार के कौतुकों में रसमग्न होती रहती थीं। सखियाँ फूलों के आभूषण बनाती हैं और जहाँ जाती हैं अपने वदन-चन्द्र की चंद्रिका से सब कुछ को प्रकाशित करती चलती हैं। अचानक छबीले छैल आ निकलते हैं और न जाने कौन सा जादू खेल खेल में कर जाते हैं कि सब के मन और नेत्रों को अपने हाथ में ले लेते हैं। मुरली की सम्मोहक तान हर ग्वालिन के हृदय में अनोखी लगन जगा देती है, रसिक शिरोमणि की चितवन सभी के लिए सम्मोहन अस्त्र का काम देती है। यह प्रीति माधुरी बरसाने में नित्य हुआ करती है--

रूप माधुरी पीवत प्यावत। ब्रज जीवन यों जीव जिवावत॥
नित यह चुहल रहति बन गहवर। लग्यौ रहत आनंदघन को झर॥

मुरली मुरलिका मोद—कृष्ण के मादक अधरों पर विराज कर मुरली वन में बज उठती है। उसकी ध्वनि को सुनकर लोग छक जाते हैं, वह प्राणों में मँडराने लगती है, उसके स्वर हृदय को धैर्य से रिक्त कर देते हैं और वह हृदय में विषम पीड़ा जगा देती है। नटवर की मुरली की ध्वनि वन-वल्लरियों के बीच भर उठी है, यमुना की गति तो कहते नहीं बनती, उसके दोनों तट जैसे वेणुनाद में पट उठे हों, उसमें जल के स्थान मानो मुरली-स्वर की ही धारा बहने लगती है। कुंजों के पुष्प समूह मुरलिका स्वर को सुनकर झर पड़ते हैं। चराचर सृष्टि बेतरह द्रवीभूत हो जाती है। पक्षी टकटकी बाँधकर देखते रह जाते हैं और वेणु-नाम के श्रवण में ही जीवन का चरम लाभ मानते हैं। कृष्ण ने ऐसी विषम रागिनी अलाप दी है कि उसकी ध्वनि 'थावर-जंगम' सभी के अन्तर में व्याप्त हो गई है। उसके स्वरों की अनी कानों को साले डालती है। उसकी अनुगूँज सतत कानों को सुनाई पड़ती है

बिन बाजेहूँ बजति रात दिन। कौन भाँति की गहनि गही इन॥
घायल प्रान घूमि घुरि मूझैं। सुर सामुहे घरनि घिरि जूझैं॥
विष की लहरि सुरनि सग सरसै। तीखीताननि सरसै बरसै॥
मुरली कित को बैर बिसाह्यौ। कियौ विधाता याकौ चाह्यौ॥
जगै आप अरु हमैं जगावै। तातो धुनि उर आग लगावै॥
क्यौं ब्रज बसैं कौन बिधि जीवै। विष सो नाद अमृत लौं पीवै॥
बिसवासी कान्हौ बस याकें। कछु न बिचारत या रस छाकें॥

इस मुरली ने संसार को मोहने वाले कृष्ण को भी मोह लिया है फिर भला किसका हृदय है जो इसके वशीभूत न हो। यह कृष्ण के अधरों से क्षण भर भी न्यारी नहीं होती। इस घरघाली ने कितने घर बरबाद कर दिये हैं। धन्य है वह वंश जहाँ इसने अवतार लिया! इसने तो सभी गुन अपने वश कर रक्खे हैं। व्रजनायक तक जिसके प्रति अनुरक्त रहते हैं ऐसी मुरली तो पैर पूजने लायक है। हे सखी। यही तो मिलाप रचाती है और तरह-तरह के नाच नचाती है, वृन्दावन में यमुना के तीर कल्पवृक्ष की छाया में मुरली महामोददायी रास का विधान कराती है जिसमें सभी अपना मनोवांछित रस प्राप्त करते हैं। ऐसी प्राणधन मुरलिका चिरजीवी हो।

भक्ति के विविध भाव : पदावली और कृपाकन्द—घनआनन्द ने भक्तों के रंग-ढंग पर चलकर सूर, तुलसी और मीरा के समान गेय पदों की भी रचना की है जो संख्या में सहस्राधिक हैं। इन पदों में मुख्यतः तो गोपियों तथा राधा के कृष्ण-प्रेम को ही नाना रूपों में व्यक्त किया है किन्तु वह कुछ साधारण प्रेम नहीं, भक्ति की कोटि को पहुँचा हुआ परा प्रेम अथवा अनुरक्ति है जिसमें घनआनन्द की निजी कान्ताभाव की उज्ज्वल भक्ति भावना ही संवेदित हुई है। घनआनन्द की भक्ति जिन अन्यान्य रचनाओं में मुखर हुई है उनमें 'कृपाकन्द' का स्थान महत्वपूर्ण है, इसी प्रकार 'पदावली' भी भक्ति की दृष्टि से देखने योग्य है। हम देखते हैं कि

घनआनन्द ने दास्य, सख्य और कान्ता भाव मे अपनी भक्ति का निवेदन किया है। कान्ता सखी या गोपी भाव की भक्ति निम्बार्क सम्प्रदाय में विशेष प्रचलित तो हुई परन्तु अन्य भावों से भगवद्भजन का निषेध न था इसलिए भक्ति की भावना के क्षेत्र में ये कवि अपनी चित्त-वृत्ति के अनुसार अपना भाव निवेदन किया करते थे।

दास्य-भाव—दास्य भाव के पदों में घनआनन्द लिखते हैं—हे हरि! अब मेरा स्वार्थ-परमार्थ सभी तुम्हारे हाथ है, तुम्ही से हमारी याचना है। तुम्हारे गुणों का मैं क्या गान करूँ, तुम तो अपार गुणों की खान हो। तुम्हारे अपरिमित चरित्र के समुद्र को तो देखते ही मैं विस्मय की तरंगों में डूबने लगता हूँ, तुम्हारी कृपा के बोहित द्वारा ही मैं उसे पार कर सकता हूँ। हे गोपाल! मैं तुम्हारे ही गुणों को गाता हूँ, मैं सिर नवाकर विनय करता हूँ कि मुझ दीन जन पर कृपा करो। तुम्हारी कृपा के मेघ जब बरसेंगे तभी ये प्राण-पपीहे जीवन लाभ करेंगे। हे हरि! मैं झूठा हूँ और तुम सच्चे, मुझे भी सच्चा क्यों नहीं बना देते? इस संसार के चक्करों में पड़कर मैं बहुत नाचता फिरा—

> जग जंजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहु नाचौं।
> अब आनंदघन सुरस सींचिये लगै नहीं दुख-आंचौ॥

इसी तरह से जाने कितने दिन बीत गये, ये नेत्र आपके दर्शन के बिना रिक्त मे इधर-उधर भटकते फिरते है। इस प्रकार अपने किये पर पश्चाताप, अपने दोषों की स्वीकृति, ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने मे परिपूर्ण विश्वास, अपने दोषों को दूर करने की, भव-बंध से छुड़ाने की कृपा करने की याचनाएँ कवि करता पाया जाता है—

(क) आयौ सरन बिकार भरयौ
 तुम सरबज्ञ जान हौ बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु करयौ। (कृपाकन्द)

(ख) भूल-भरे की सुरति करौ।
 अपनी गुननिधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरौ।
 या असोच कौं सोच कीजियै हा हा हो हरि सुढर ढरौ।
 कृपाकंद आनंदकंद हौं पतित पपीहा-त्रपति हरौ॥ (कृपाकन्द)

अपने सम्बन्ध में कवि कहता है कि अपने मन की असाध्य स्थिति है अन्तर्यामी! मैं तुमसे क्या कहूँ—

> असुचि असोच पोच पै गुन सुनि उरमत मुरझत पतित सकामी।
> सरसि दरसि बरसौ, परसौ जु आनंदघन चातक-हित नामी॥ (कृपाकन्द)

'कृपाकंद' के छंदों मे कवि लिखता है कि उसकी भक्ति कृष्ण के प्रति अनन्य है, अपने आराध्य की सामर्थ्य और कृपा के प्रति उसका दृढ़ विश्वास है, वह उन्हीं की शरण है और उसके लिए उनकी कृपा से बढ़कर संसार मे कुछ नहीं है। कर्म धर्म, हानि-लाभ, लोक-परलोक सभी कुछ की वे अवहेलना कर देते हैं क्योंकि उन्हें कृपापूर्ण दृष्टि से देखने वाले का आसरा है—

धरे रहौ करम धरम सब धरे रहौ
डरे रहौ डर कौन गनं हानि लाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपादिखबैया काहू दिसि देखें काहे कौं॥

घनआनंद ने ईश्वर की कृपा के प्रति ही दृष्टि लगा रखी है और संसार की शेष वस्तुओं के प्रति पीठ कर दी है। कभी वे कहते हैं-हे माधव ! मेरी पुकार पर कब ध्यान दोगे और कब मेरे हृदय के आंगन में अपनी सम्पूर्ण ज्योति के साथ पधारोगे ? भक्त की ईश्वर-सान्निध्य की अभिलाषा देखिये—

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भांति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन-कृपा-पियूष पालत रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन कौं।
गोबिंद गुसाईं त्यों हौ मागत हौं गोद-गोह,
गिरा अगराई गुन-गरिमा-गनन कौं।
मन घनआनंद तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है संनिधि सवादनि सनन कौं॥

सख्य-भाव—अनेक पदों और छंदों में घनआनंद ने ईश्वर के साथ मैत्री अथवा बराबरी के भाव से बातें की हैं और अपने भावों का निवेदन किया है। ऐसे अवसरों पर उन्होंने कहा है कि तुम मुझे भी रास्ते से क्यों नहीं लगा देते ? मेरा भी उद्धार क्यों नहीं कर देते ? तुम कैसे हो जो अपनों की इतनी भी चिन्ता नहीं करते ? मुझे सोते हुए को प्रबुद्ध और जागृत क्यों नहीं करते ? परन्तु सख्य भाव के कथनों की संख्या अत्यन्त सीमित है।

मधुर अथवा कांताभाव पदावली—सूर और मीरा के पदों में जो भावुकता पाई जाती है वही घनआनंद की पदावली में देखी जा सकती है। गोपियों का जैसा प्रेम कृष्ण के प्रति सूर आदि दिखा आये हैं वैसा ही प्रेम भाव घनआनंद ने भी दिखाया है। इन पदों में शुद्ध और वासनाहीन, पुनीत प्रेम भाव की झलक मिलती है। उज्ज्वल रस का इन छंदों में भी बड़ा सुन्दर परिपाक हुआ है। ये पद संतन कविवर घनआनन्द की मधुरा भक्ति (जो निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति के मेल में हैं) का ही परिपोषण करते हैं। कांताभाव की भक्ति गोपियों के कृष्णानुराग वर्णन के व्याज से सुन्दर और अपेक्षित रूप में व्यक्त की जा सकी है। सखी या गोपी भाव से मानो घनआनन्द ने ही कृष्ण का ध्यान किया है, उनसे प्रेम किया है और उनकी लीलाओं में भाग लिया है। उनके संसर्ग का मानस सुख प्राप्त किया है।

मधुर भाव की भक्ति द्योतित करने वाले पद और छन्द बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये हैं जिनमें कहा गया है—हे व्रजनाथ ! समय बीत गया और तुम नहीं आये, हमें अपनी चेतना नहीं रह गई है। हमें होश कौन दिलाये, मन भी तुम्हारे साथ चला गया है। तुम्हारी बाट जोहते-जोहते दृष्टि मन्द पड़ चली है और रसना भी तुम्हारे गुणों की गाथा गाते-गाते

थक गई है। तुम हमारी सुध कब तक लोगे हे जानमनि ! समय बीता जा रहा है बाद में यदि आये तो क्या लाभ -

> हमारी सुरति कब धौं तुम लैहो।
> अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ।
> आनदघन पिय चातक कूक-थके पछितायोई पैहौ॥ (पदावली)

हे मेरे प्रियतम ! अब मेरा तुमसे स्नेह हो गया है। हे रूप-उज्यार ! दृग-तारे ! प्राणों प्यारे ! हमसे कुछ कहते नहीं बनता और कहे बिना रहते नहीं बनता तथा दिल पर जो बीत रही है उसे सहते नहीं बनता, तुम अपना प्रण क्यों नहीं निभाते ? घनआनन्द कहते हैं—

> मेरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय।
> विषम वियोग जरावै जियरा सह्यौ न जाय।
> लिपट अधीर पीर-बस हियरा गह्यौ न जाय।
> आनदघन पिय बिछुरन को दुख कह्यौ न जाय॥

हे प्रिय ! मेरे हृदय में तुम्हारी लौ लगी हुई है, तुम कब मेरे नेत्रों के पाहुने बनोगे ? कब मैं अपने आँसुओं के जल से तुम्हारे चरणों को धोकर भाग्यशालिनी बनूँगी ? इस प्रकार के प्रेम की तड़प से भरे शत-शत सहस्र-सहस्र कान्ता-भाव की भक्ति के उद्गार घनआनन्द व्यक्त कर गये हैं जिन्हें हम उनकी 'पदावली' में विशेष रूप से देख सकते हैं। देखिये भक्ति-भाव की कैसी मंगलमयी आरती कवि उतार रहा है—

> नेह सों भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
> रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
> गावरी आरति बावरी लौं घनआनद भूलि वियोग निवारति।
> भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति॥

राधा के प्रति भक्ति निवेदन सखी भाव की भक्ति—अपनी अनेक कृतियों में घन-आनन्द ने राधा के प्रति अपनी भक्ति और अनन्य निष्ठा का परिचय दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति भावना के अन्तर्गत राधा की अविकल प्रतिष्ठा थी ही क्योंकि वे भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने की अक्षय शक्ति से सम्पन्न मानी गई है। कवि ने उनके प्रति अपनी उत्सर्गपूर्ण निष्ठा का बारम्बार प्रकाशन किया है। घनआनन्द के निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी होने की बात विदित ही है, किन्हीं देव ने इन्हें परम्परा की रीति का ज्ञान भी करा दिया था तथा सम्प्रदाय में प्रचलित सखी भाव की उपासना पद्धति इन्होंने अंगीकार कर ली थी। सखी भाव से उपासना करने वाले महात्मा भक्ति-साधना का बहुत पथ पार कर चुकने के बाद ही साम्प्रदायिक सखीनामों से पुकारे जाते हैं। घनआनन्द का भी 'बहुगुनी' नाम रखा गया था जिससे यह सिद्ध है कि ये भी भक्ति-साधना की ऊँची भूमिका पर पहुँच चुके थे तथा महात्माओं की कोटि में परिगणित होने लगे थे और सम्प्रदाय में सखी भाव का इनका 'बहुगुनी' नाम प्रचलित भी हो गया था। साधकों और सिद्धों से भी उच्चतर भक्ति साधना करने वाले घनआनन्द सुजानों की कोटि में ले लिये गये थे। इनकी सखी-भाव की भक्ति का

प्रकाशन करने वाली रचनाएँ अनेक हैं। उन्हीं के आधार पर घनआनन्द की सखी-भावना का परिचय दिया जा रहा है।

वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन—इस रचना में बरसाने में रहने वाली श्रीकृष्ण की परम-प्रिया श्री राधिका जी की दासी अथवा सखी बनकर कविवर घनआनन्द ने उनके साथ अपने रहने की बात कही है। वे अपने को राधिका जी की 'बहुगुनी' नाम की सखी बताते हैं और बरसाने को भी अपना सुन्दर खेड़ा (गाँव) कहते हैं। वे आगे लिखते हैं—मैं उनका सब काम करती हूँ, उनकी दृष्टि की कोर निहारती रहती हूँ और सदा उनकी इच्छा का अनुगमन करती हूँ यह सब प्रकार की सीख मैंने ही दी है (जरा यह नैकट्य-भाव देखिये) और सब प्रकार का रसोत्तेजक शृङ्गार मैंने ही किया है, नाना प्रकार से उनकी कबरी या वेणी मैं ही बाँधती हूँ और इसी से श्री राधा जी ने मेरा नाम 'बहुगुनी' रख छोड़ा है। उन्हें मैं अच्छे से अच्छे तान सुनाती हूँ, खुद रीझती हूँ और उन्हें भी रिझाती हूँ। अनुभूति भरे स्वर में, प्रेम की उमंग में सने छन्द और कवित्त मैं उन्हें सुनाती हूँ। श्रीकृष्ण की मुरलिका की स्वर-लहरी उन्हें बहुत प्रिय है, उसी स्वर का अनुसरण कर मैं भी कुछ मधुर स्वरालाप करती हूँ जिससे उनकी प्रीति की गाँठ कुछ खुलती है। इस प्रीति की रस-रीति में पारंगत समझकर ही श्री राधिका जी ने मुझे अपनी 'लाडिली लौंडी' बनाया है। उनकी परम-प्रिय दासियाँ ललिता, विशाखा और सहचरियाँ मुझे बहुत मानती हैं तथा मेरे कार्यों को पसन्द करती हैं। वे मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखती हैं तथा श्री राधा जी के सामने मेरे कार्यों की सराहना करती हैं और मैं भी उन्हें श्री राधा जी के ही समान मान देती हूँ और उन्हें प्रसन्न रखती हूँ। उन्हीं की कृपा से मैं श्री राधा जी को भी अत्यन्त प्रिय हूँ। ये सारी बातें सखी भाव की भक्ति-भावना और परम्परा के ही अनुरूप हैं।

प्रिया प्रसाद—प्रियाप्रसाद में कवि ने अपनी ठकुरानी और वृन्दावन की रानी श्री राधा की स्तुति और महिमा का गान किया है तथा उनकी अपने प्रति कृपा एवं अपनी उनके प्रति भक्ति और निष्ठा का परिचय दिया है—'**राधा अतुल रूप गुन भरी, ब्रजवनिता कदंब मजरी।**' ऐसी राधा मदन-गोपाल को प्रिय है, वे अपनी बाँसुरी में उसी का नाम बजाते रहते हैं। घनआनद कहते हैं कि मोहन जगते रात-दिन हर समय मैं राधा की ही वन्दना करता हूँ। राधा ही मेरी सच्ची स्वामिनी है और उनके लिए ही मैं नृत्य करती हूँ। यहीं से सखी भाव की भक्ति उमड़ने लगती है और कवि कहने लगता है कि राधा जो कुछ कहती है मैं वह सब करती हूँ, सहज में उनकी टहल-परिचर्या आदि सभी कुछ। उन्हीं को रिझाने के लिए मैं गीत गाती हूँ, नाना प्रकार के राग सुनाती हूँ और तरह-तरह की बातें करती हूँ। मैं राधा के चित्त में चढ़ी हुई उनकी 'चटकीली चेरी' हूँ और सदा उनके निकट रहती हूँ। उनकी रुचि का अनुसरण ही मेरा एकमात्र धर्म है। राधिका के रूप की उजियाली को मैं सदा देखती हूँ और यह मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य है। राधा को मैं सब प्रकार से प्यार करती हूँ और उनके रीझने पर मुझे उन्हें पा जाने का सा आनद मिलता है। देखिये कैसे सुकुमार भाव हैं—

> चाँपन चरन तनक जुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा के पाऊँ॥
> चरेत हराय जगाए जगौं। बहुरि औंधि नित पांयनि लगौं॥

राधा धरयौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ॥
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं॥
राधा कौ सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दै हौं हूँ सुख पाऊँ॥

राधा के साथ जब श्याम को देखती हूँ तो समयोचित सुखदायिनी सेवाएँ करती रहता हूँ। राधा-प्रिय को मैं व्यजन झलती हूँ तथा उनके श्रम बिन्दुओ का निवारण कर उस सेवा के रस मे अपने आपको डुबो देती हूँ। मैं ललना और लाल दोनो को सुख पहुँचाती हूँ। मैं राधा का स्वभाव पहचानती हूँ, वह अपने मन की बातें मुझसे ही कहती हैं। मैं कीर्ति की घरजाई चेरी हूँ और राधा की मनभावनी लौंडी हूँ। राधा के उतारे हुए चीर पाकर मैं अपने को अतिशय भाग्यशालिनी मानती हूँ। मैं ही उनके पाँवो को मलती हूँ और मैं ही उनमे महावर लगाती हूँ। राधा श्याम के बिना नही रहती। दोनो की रँगीली जोडी को यमुना के तट पर मैं तरु-बेलियो की ओट से देखती रहती हूँ। ऐसी राधा ही मेरी सम्पदा है और जीवन-मूल है। मुझे राधा के अतिरिक्त और किसी की चाह नही।

मनोरथ-मजरी—इस ग्रन्थ मे भी साम्प्रदायिक सखी भाव से अपनी भक्ति और निष्ठा निवेदित करते हुए घनआनद लिखते हैं—मैं राधा और मदन-गोपाल की सेज सजाती हूँ। मैं बहुत प्रकार से उनकी टहल करती हूँ तथा उनके सुख भोग के सारे साज एकत्र करती हूँ। मैं ऐसे सारे कार्य करती हूँ जिसमे राधा और मोहन लाल में प्रेम का रस अधिकाधिक बढे। मैं रस-रीति की बातें कह कहकर दोनो का मिलन कराती हूँ तथा एक की छैलता और दूसरे की सलज्जता देख देखकर अपनी आँखें शीतल करती हूँ। मैं उन्हें समयानुसार रस-भेद की बातें बताती हूँ। भीतर की बातें मैं क्या जानूँ क्योंकि दोनो के सम्भोग के समय मैं उठ कर बाहर आ जाती है। जब वे मुझे पुकारती हैं तो हुलास के साथ दौड जाती हूँ। यदि वे एक दूसरे के कान मे लगकर कुछ बातें करते रहते हैं तो उन्हें सुनकर अपने प्राणो को प्रसन्नता की अनुभूति कराती हूँ और इसी मे अपने जीवन का चरम सुख मानती हूँ। ऐसी सुख की सपदा को मैं किसी के समक्ष उद्घाटित नहीं करती, उसे मन मे ही छिपाकर रखती हूँ। उनकी आपस की 'रसमसनि' मैं किसी को क्यो बताऊँ? उनकी रस-भेद की बातो को मैं सुन-समझ कर भी अनसुना और अनसमझा कर देती हूँ। उनके मुख पर काम का मद देखकर मैं प्रसन्न हो जाती हूँ और उनकी तृप्ति को देख स्वत. तृप्ति का अनुभव करती हूँ। उनकी इच्छा जानकर सरस सुगन्धित पान का बीडा खिलाती हूँ और कभी-कभी सकोच के साथ दोनो को फूलो की माला भी पहना देती हूँ। कभी कृष्ण-प्रिया का अचल खीचते हैं तो मैं उसे थोडा छुडा देती हूँ और कभी मुझ पर कृष्ण की कृपा हो जाती है तो मैं लज्जा का अनुभव करती हूँ—

'मोहिं भुज भरैं छकनि सो जिय समझि सजाऊँ।'

जब प्रिय-प्रिया प्रीति-क्रीडा मे तन्मय होते हैं उस समय मैं हट जाती हूँ और छिपकर उनकी बातें सुनती हूँ तथा उनकी 'नही' और 'हाँ' सुन सुनकर अपने प्राणो को सीचती हूँ, सुख और तृप्ति का अनुभव करती हूँ। कभी मैं उनके लिए मगल गीत गाती हूँ और अपनी जगह से ही बैठी-बैठी मृदु वीणा बजाती हूँ। सखी भावना की भक्ति के अन्तर्गत

आने वाले ये भाव कितने मधुर और सुकुमार हैं। इसी प्रकार और भी अनेकानेक सूक्ष्म भावनाएँ कवि अंकित करता गया है—

(ग) केलि-रसमसे मिथुन कों सुख-नींद अनाऊँ।
या बिधि मनभायो करों जगि रैनि बिताऊँ॥
(क) बडे भोर अनुराग सो भैरवो जमाऊँ।
अति रति-मतवारेनि कों नव प्रात जताऊँ॥
(ख) आरस-भरी जभानि पै चुटकीनि चिताऊँ।
अलक-तिलक-सेवा-समै आरसी दिखाऊँ॥
(घ) निरखि डगमगी डगनि को भुज गहि सम्हराऊँ।
नित नूतन रगरीति की चित चोप बढाऊँ॥
(ङ) फिरि फिरि पट तानै तऊ बहुर्‌यौ अहुराऊँ।
निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ॥
(च) तिन्हैं रचै सोई करों रसियानि रसाऊँ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलें हौं कहा मिलाऊँ॥
(छ) बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ।
नव पराग भरि भाव सों तिन पर बगराऊँ॥

बोधा की भक्ति

बोधा के 'इश्कनामा' में जगह-जगह इस प्रकार की भक्ति-भाव-भावित उक्तियाँ प्रस्फुटित हुई हैं—

(क) बसु रे बसु राधे के पायन में मन जोगिया प्रेम वियोगिया रे।
(ख) कवि बोधा गही छबि साँवरे की उर में यह प्रेम कि यारी बई।
तुम होउ सबै महरानी अबै हम तो अब राम दिवानो भई॥
(ग) सहजै कुबरिहि दीन्यो, जो फल चार।
सोई नाथ निबाहो, लगन हमार॥
(घ) जिहि गिरिवर कर धारिसि, तारसि गीध।
तेहि चरनन कवि बोधा, मो मनु बीध॥
(ङ) प्रकृति दीन फल, असुरन, प्रभु [illegible]।
रे मनु भजु तिहि प्रभु कहँ, तजि वक बाध।

इससे बोधा का भक्तकवि होना उतना नहीं सिद्ध होता जितना यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय हिन्दुओं में जो संस्कारगत भक्ति-भावना है उसी का यह थोडा सा प्रस्फुटन है। दूसरे समसामयिक अथवा पूर्ववर्ती काव्य-परंपरा में भक्ति का इसी प्रकार का प्रदान हुआ है। बोधा की अपनी वृत्ति प्रेमाभिमुख थी इसी से उनकी भक्ति भावना के कुछ उद्गार मूलत लौकिक प्रेम से प्रेरित हैं जैसे उपर्युक्त अवतरणों में से पहला और दूसरा। अन्यान्य भक्ति-संवेदनों में परम कृपालु, परमदानी, परमशक्तिशाली, परम तारक और परम

मोक्षदाता का अनुध्यान किया गया है । ससार और उसके पाश से मुक्त होकर ऐसे वैभव-धान के शरण मे जाने और भजन करने का कवि ने उपदेश दिया है, वही अपने दुख भी दूर करेगा और अभिलषित सिद्धियाँ देगा ऐसी आशा भी व्यक्त की गई है । यह वाणी भक्ति की दृष्टि से भी उच्चकोटि के भक्तो की वाणी न होकर साधारण कोटि के आर्त अथवा अर्थार्थी भक्तों की सी वाणी है । इसमे उच्चकोटि के भक्तो सी निष्कामिता नही, मोक्ष की अवहेलना नही । बोधा के प्रेम काव्य की विवेचना के सदर्भ मे हम देख चुके हैं कि वे शुद्ध लौकिक प्रेम-भावना के कवि थे ।

नीति-कथन और उपदेश—बोधा ने कुछ नीति-कथन भी किये हैं । उनकी कुछ नीति-सबधिनी उक्तियो का सबध प्रेम से ही है जैसे एक जगह उन्होने यह कहा है कि—

बिष खाइ मरै कै गिरै गिरि तें दगादार ते यारी कभी न करै ।

अथवा उनका यह कथन कि कसक या पीडा जिसके हृदय मे होती है उसे वही जान सकता है बाकी शहर के और लोगो के लिये उसका दर्द तमाशा या उपहास का कारण मात्र होकर रह जाता है—

'दिल जानै कै दिलवर जानै दिल की दरद लगी री ।'

सासारिक अनुभवों से गर्भित नीत्योक्तियाँ—बोधा कहते हैं कि कृपण अथवा सूम की सेवा करने से कोई फल नही होता । वह तो 'चाम का दाम' तक वसूल कर लेता है, उसकी सेवा करना वैसा ही है जैसे वेश्या से प्रेम करना अथवा शठ की जबान का भरोसा करना । इसी प्रकार उनका यह कहना कि जो कुछ रूपवान और आकर्षक दृष्टिगोचर होता है वह वस्तुत वैसा नही होता (जैसा कि शेक्सपियर ने भी कहा है—*All that glisters is not gold*) यह कथन भी वास्तविकता के कितना निकट है । इस कथन की पुष्टि मे बोधा ने सेमर के फूल और तोते का उदाहरण प्रस्तुत किया है—

सखि चीकने पातन पेड बडो रहै फूलन सों छवि छाइ सबै ।
सकि ऐसो सुआस सुवा बिलमो फलिबे की तहाँ सचु पाइ सबै ।
कवि बोधा सुवान फँसो फल मे पछिताइ बिदा यहि माँगि अबै ।
सठ सेमर ने यह ज्वाब दयो हम सो तुम सो पहिचान कबै ।।

बोधा की दृष्टि मे सत्पुरुष का बडा महत्व है । ससार मे बहुत प्रकार के लोग मिल सकते हैं—निरुद्यम, अभिमानी, रणशूर, ज्ञानी, प्रतिष्ठावान, निर्भीक, राजा, रक आदि परन्तु जिसे मन चाहता है ऐसे मनुष्य से भेंट न हुई तो सब व्यर्थ । मानवीय गुणो से ओत-प्रोत व्यक्ति ही बोधा की दृष्टि मे सर्वोपरि है—'और अनेक मिले तौ कहा नर सो न मिल्यो मन चाहत जाको ।' ऐसे व्यक्ति मे पहले तो भेंट होना ही दुष्कर है फिर यदि भेंट हो जाय तो बिछुडना अत्यन्त दुखद—

बिछुरे दरद न होत, खर सूकर कूकरन कों ।
हस मयूर कपोत, सुघर नरन बिछुरन कठिन ।।

बोधा एक स्वाभिमानी जीव थे। जिस समय सुभान नामक वेश्या के प्रति प्रेम रखने के कारण उनके आश्रयदाता ने उन्हे ६ माह के लिये निर्वासित कर दिया था उन्होने राज-दण्ड की लेश मात्र भी परवाह नही की और वे अपना यह प्रसिद्ध सवैया मौज मे पढते हुए राज्य की सीमा से बाहर हो गये—'**जो धन है तो गुनी बहुतै अरु जो गुन है तो अनेक हैं गाहक।**' उनकी नीत्योक्तियो मे यही स्वाभिमान, यही लापरवाही और दिल की मस्ती मिलेगी, ऐसी उक्तियो मे सासारिक सत्यो का सीधा और सच्चा कथन हुआ है। बोधा तरंगी जीव थे, स्वाभिमान और प्रतिष्ठा उनके जीवन की बहुत बडी सपदा थी, वे उसकी रक्षा करने के लिए किसी भी धनाढ्य की उपेक्षा कर सकते थे। बडे से बडे और धनी से धनी व्यक्ति से वे समता की सम्मानपूर्ण भूमि पर ही मिल सकते थे। यही वह ऊँचा आदर्श है जिससे आज का समाज असाधारण रूप से च्युत जान पडता है। इस नैतिक आदर्श को लेकर बोधा का यह कवित्त अत्यन्त प्रसिद्ध है—

> **हिलि मिलि जानै तासो हिलि मिलि लीजै आप,**
> **हिलि मिलि जानै ऐसो हितू ना बिसाहिये।**
> **होय मगरूर तासो दूनी मगरूरी कीजै,**
> **लघुता ह्वै चलै तासो लघुता निबाहिये॥**
> **बोधा कवि नीति को निबेरो एहि भाँति करो,**
> **आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये।**
> **दाता कहा सूर कहा सुन्दर प्रवीन कहा,**
> **आपको न चाहै ताहि आपहू न चाहिये॥**

इस कवित्त मे अत्यन्त व्यावहारिक जीवन-पद्धति का निर्देश किया गया है। बोधा '**शठं शाठ्यं समाचरेत**' के सिद्धान्त का अनुगमन करने वाले थे। नम्र के प्रति नम्र, अभिमानी के साथ कठोर, मिलनसार के प्रति प्रीतिपूर्ण और घृणा करने वाले के प्रति उपेक्षा-पूर्ण होने मे वे विश्वास करते थे। ऐसे नीति-सदेश 'इश्कनामा' मे अधिक नही हैं किन्तु फिर भी उपलब्ध छन्दो से यह बात जाहिर है कि बोधा ने जीवन के अनुभवो से दिलेर होना सीखा था। स्वाभिमान और आत्म-प्रतिष्ठा उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी जिसका उन्होने मुक्त कठ से उपदेश किया है।

ठाकुर की भक्ति

ठाकुर की रचनाओ का एक अश ऐसा भी है जिसमें हमे उनकी भक्ति भावना की झलक मिलती है। उन्होने ऐसी भक्तिपरक रचनाओ मे कही तो बालक कृष्ण, श्रीराम, राधिका, गणेश आदि का गुणस्तवनात्मक शैली मे अभिनन्दन किया है, कही ईश्वर की महिमा और गतिवैचित्र्य का वर्णन किया है, कही दास्य भाव से विनय प्रदर्शित की है, कही सखा के समान उन्हे लाछित किया है और उलाहना दिया है तथा कही सपूर्ण रूप से उनकी महा-मोहिनी शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है। ठाकुर की भगवद्भक्ति जब अपने चरम उन्मेष पर पहुँचती है तो वे यह कहते हुए पाये जाते हैं—'**या जग मे जनमे को, जिये को यहै फल है हरि सो हित कीजै।**' यही उनका अखड मत है, जिसने ससार मे मनुष्य देह धारण किया उसने यदि भगवत्प्रीति मे अपने आपको लीन नही किया तो उसका जन्म ही व्यर्थ गया—

प्रानन प्रेम की फांस नहीं नहिं कानन बांसुरी को सुर छायो।
बैनन सों न जप्यो नदनन्दन नैनन ना व्रजचन्द लखायो।
ठाकुर हाथ न माल लई नहीं पाइन सो हरिमंदिर धायो।
नेक किये न सनेह गोपाल सो देह धरे को कहा फल पायो॥

उपर्युक्त छन्द मे यह भी पता चलता है कि सर्व-साधारण मे स्वीकृत धर्माचार के रूप मे ठाकुर ने हाथ में माला लेना और हरि मदिर मे जाना भक्ति का लक्षण माना था।

सात्विकता—ठाकुर ने एक स्थान पर भगवान से बडी ही मनोहारिणी विनय की है–हे भगवन्! यदि हमे भारी सपदा देना तो इतना वरदान देने की कृपा करना कि मेरा जन्म न बिगडने पाये तथा कुसगति मे पडकर मेरा आचरण भ्रष्ट न होने पावे जैसा कि ससार मे अकसर होता है। मुझे प्रवीणो की सगति मिले, दीनो के प्रति दयाभाव दिखला सकूं तथा आपके प्रेम मे डूबा हुआ जन्म व्यतीत करूँ और सबसे बडी बात जो हो वह यह कि—

ऐ हो ब्रजराज तेरे पांइ कर जोरे गहौं,
प्रानहूँ नजर पै न नियत बिगारियो।

ठाकुर इस प्रकार के शुद्ध और सात्विक हृदय वाले व्यक्ति थे, वे जानते थे कि दुनिया के प्राय सभी धनवान नीयत के बुरे होते हैं और इससे ससार मे अपरिमित भ्रष्टाचार का प्रसार होता है। वे सपदा को तो शायद उतना बुरा नही समझते थे। परन्तु उसके अवश्य-भावी दुष्परिणामो से अवश्य पूर्ण रूपेण अवगत थे। ऐसी याचना करने से यह स्पष्ट है कि वे ऊँची नैतिकता से चालित प्राणी थे।

भक्ति-कोटि—यह सब होते हुए भी ठाकुर को सूर तुलसी, और मीरा की कोटि का भक्त नही कहा जा सकता जिन्हें कोई सासारिक अभिलाषा न थी। फिर भी ठाकुर आस्थावान व्यक्ति थे। ईश्वर की महानता और सर्वशक्तिमत्ता मे उन्हे विश्वास था और इससे वे उनकी उपासना करते थे, वे जानते थे कि ईश्वर की सहायता और कृपा से सब कुछ सभव है। उनकी भक्ति निष्काम न थी, वे आर्त और अर्थार्थी कोटि के भक्तो मे थे जो सासारिक भोग और वासनाओ से विरक्त न थे वरन् किसी सीमा तक ऐसी इच्छाओं की पूर्ति के लिये ईश्वर की भक्ति करते थे। उन्हे जिज्ञासु अथवा निष्काम भक्तो की कोटि में नही बिठाया जा सकता। कहा जाता है कि एक बार भयकर रोग की पीडा से व्याकुल हो ठाकुर ने जब राम का नाम लेकर औषधि-पान किया तब तुरन्त ही उनकी रोग पीडा शात हो गई, इसी अवसर पर उन्होने 'राम मेरे पंडित अखडित सुदिन सोधै' वाला कवित्त पढा था।

औदार्य और हरिनिष्ठा—यह हम देख ही चुके हैं कि उपासना के बाह्य उपकरणो मे ठाकुर का कोई विरोध न था बल्कि वे उन्हे एक सीमा तक भक्ति के लिये आवश्यक भी समझते थे। कृष्ण के साथ-साथ ठाकुर ने राम का स्तवन भी उसी आदर भाव से किया है। ईश्वर के समस्त अवतारो के प्रति उनमे समान श्रद्धा थी। वे ईश्वरीय गति से भली भाँति परिचित थे इसीलिये उन्होने कहा है कि अपने किये कुछ नहीं होता। वही होता है जो ईश्वर चाहता है, उसी का दिया सब सुख है और उसी का दिया सब दुख—

जो सुख देइ तो देइ दई दुख देइ न देख हिये डरने हैं।
होत न काहू की नेकी करी अब यों निरधारि हिये धरने हैं।

ठाकुर भाँतिन भाँति अधीर ह्वै दीन ह्वै आइ पर्यो मरने है।
को करि सोच वृथा ही मरै हरि होने वही जो तुम्हैं करने है।

वे कहते हैं कि भगवान तो क्षण में राजा और क्षण में रंक बना देता है तथा गज-ग्राह, प्रह्लाद-हिरण्यकशिपु तथा अजामिल-नारायण आदि के वृत्तान्तों का स्मरण करते हुए वे यही आशा रखते हैं कि उन पर भी ईश्वर कृपा-दृष्टि रखेगा।

भक्ति-भाव का स्वरूप—कभी-कभी ठाकुर कवि मित्रता अथवा बराबरी के भाव से ईश्वर की आलोचना और भर्त्सना भी करते पाये जाते हैं—

(क) मेवा वई घनी काबुल में बिदारावन आनि करील जमाए।
राधिका सी सुभ बाम बिहाय के कूबरी संग सनेह बढ़ाए।
मेवा तजी दुरजोधन की बिदुराइन के घर छोकल खाए।
'ठाकुर' ठाकुर की का कहौं सदा ठाकुर बावरे होतई आए॥

(ख) नीच परसगी जातपाँति के न अबौ ऐसें,
ठाकुर दोरंगी तो सदा ते होत आए हैं।

(ग) ऐसे अन्ध अधम अभागे अभिमान भरे,
तिन्हैं रचि रचि दिन नाहक गँवाये तैं।
भकुआ भरंगी अरु हिरसी हरामजादे,
लावर लबार स्यार जाँखिल दिखाए तैं।
ठाकुर कहत ये अज्ञानियां अबूझ भोंदू,
भजिन भजत के वृथा ही उपजाये तैं।
निपट निकाम काम काहू के न आवैं ऐसे,
सूरत हराम राम काहे को बनाए तैं॥

ठाकुर की भक्ति-विषयिणी रचनाओं के आधार पर हम यदि उनके भक्ति भाव को निर्धारित करना चाहें तो कह सकते हैं कि उनकी भक्ति भावना दास्य और सख्य भाव मिश्रित थी। वे ईश्वर की अपार शक्ति और अपनी नगण्यता से अभिज्ञ हो दास्य भाव की विनम्रता प्रकट करते हैं और किन्हीं क्षणों में अपने को भगवान के अत्यन्त निकट अनुभव कर उनसे बराबरी का व्यवहार करते हुए अपने काव्य में सख्य-भक्ति की झलक देते हैं।

नीति कथन—ठाकुर कवि की प्राप्य रचनाओं का एक अंश ऐसा भी है जिसमें उन्होंने जगत की गति का वर्णन किया है, तथा मनुष्य को संसार में रहने का ढंग बतलाया है। ऐसी रचनाओं में कवि ने अपने युग के दोषों को देखने-दिखाने की चेष्टा की है जिससे उनकी सामाजिक जागरूकता का पता चलता है।

जगत की दशा—ठाकुर ने भक्त कवियों की तरह कहा है कि देखो कलियुग में समाज और जाति की यह दशा है, यह है कुकर्म का प्रसार और यह है अनीति की पिटती हुई डौंडी—

दंभी दगाबाजन की बाढ़ी है अधिक थाप,
ज्ञान ध्यान वारेन की बान वे प्रमाना है।

पूँछत न कोऊ कवि कोबिद प्रवीनन को,
नमक हरामी को हजारन खजाना है।
ठाकुर कहत कलिकाल को प्रभाव देखो,
झूठन की बातन पै जगत दिवाना है।
बडे बडे सूबा, तेऊ जात पाप डबा देखि,
जीव अति ऊबा या अजूबा कारखाना है।

ससार की क्या दशा हो चली है कि रूप, रस, गुण, ज्ञान, शील, सत्य का कही लेश भी नही रह गया—प्रीति, रीति, नीति, न्याय ससार से उठ चले और घर-घर मे विषाद का तम घिरता जा रहा है। सभी अमीर, उमराव, ठाकुर, रईस शिथिल अकर्मण्य और कायर हो चले हैं और काम पडने पर निकम्मे प्रमाणित होने लगे हैं—

दान किरवान समै ज्ञानगुन ध्यान समै
सब जादे मिटि कै हरामजादे हो रहे।

ठाकुर कहते हैं कि ससार मे अब कुछ नही रह गया। खाने के लिये लोगो के पास कसम बच रही है, करने के लिये पाप, लेने के लिये अपयश और देने के लिये दोष—

खैबे को जु सौंह राखी कैबे को सुपाप राख्यो,
लैबे कों अजस अरु दैबे को सु लाबरी।

कवि का क्षोभ कभी-कभी ईश्वर के प्रति कटु उलाहने के रूप मे फूट पड़ा है। ऐसे ससार के प्रति ठाकुर के हृदय का कोई लगाव नही, शायद इसी से उन्होंने अपने समस्त इन्द्रियार्थों को यथाशक्ति भगवदोन्मुख किया था। वे इस भौतिक जगत और उससे भी अधिक इस पचभौतिक काया की नश्वरता से भली भाँति अवगत थे, इसी से उन्होंने कुछ-कुछ कबीर के ही ढग से कहा है कि जिस शरीर के सुख के लिये हम अनेक प्रकार के व्यजनो, हय-गज-रथादि, धन-धाम और भेपजादि की आयोजना करते हैं उसी को प्राण विसर्जित हो जाने पर जला कर हम राख कर डालते हैं। इस प्रकार का तत्वज्ञान रखने वाले ठाकुर ने फिर भी हमे अकर्मण्यता अथवा जगत की अवहेलना का कोई पाठ नही पढाया।

मानवी-प्रकृति का विश्लेषण—ठाकुर ससार और ससारी की प्रकृति से अच्छी तरह वाकिफ थे। वे जानते थे कि मनुष्य बडी सामर्थ्य वाला प्राणी है, उसके लिये कुछ भी असभव नही, अपराजेय शक्तियो को भी वह अपनी अनुगामिनी बना सकता है किन्तु कुपथ पर चल कर वह असाधारण रूप से नीचे भी आ सकता है। जरा-जरा सी बात का उसे डर रहता है और यों उसे यम की भी परवाह नही रहती। कभी वह परम धर्मात्मा हो जाता है और कभी एक दम अधर्माचरण करने लगता है, जब उसकी नीयत खराब हो जाती है तो स्वार्थ-साधन और परार्थ-विनाश मे उससे चतुर दूसरा नही हो सकता। लोभ-मोह-माया मे लिप्त हो वह शरीर को ही अजर-अमर कहने लगता है तथा उसे लोक-परलोक का भी भय नहीं रहता। उसका अभिमान जब उद्बुद्ध होता है तो वह विधाता को भी कुछ नहीं गिनता किन्तु उसके स्वरूप के इसी पक्ष को ही सत्य मान लेना भारी भूल होगी—

कबहूँ यौं संयोग के भोग करै जिनको सुरराज को चाह सी है।
कबहूँ यौं वियोग विथा को सहै जोऊ जोगिन हूँ कों अचाह सी है।
कवि ठाकुर देखो विचार हिये कुछ ऐसी अलाह्दी राह सी है।
यह मानस को तन मेरी भटू समयौ परै को बड़ो साहसी है॥

मन को प्रबोधन—मनुष्य सचमुच ब्रह्मा की सबसे विलक्षण सृष्टि है, उसके मन के हठीलेपन को लक्ष्य करके भी ठाकुर ने कुछ छन्द लिखे हैं। उसे मोह के बीच में फँसा हुआ मतवाला हाथी कहा है जो माया के समुद्र में आ धँसा है, वह ज्ञान के महावत, लज्जा के अंकुश और भय अथवा शंका की शृंखलाओं में भी जकड़ा नहीं जा सकता। वह मोह के कीच में ऐसा फँस गया है कि उससे निकलता भी नहीं, उसे सिर पर सवार मौत भी नहीं दिखाई देती। उसे नियन्त्रित रहने की विधि बताते हुए कवि ने इस प्रकार चेतावनी दी है—

मेरी कही मान मन सपनौ सो जान जग,
छोड़ि अभिमान फेर ऐसो नहीं दाँव रे।
दीन ह्वै दया को सीख संपति बिपति भीख,
एक सम दीख नहीं बनै है बनाव रे।
ठाकुर कहत ब्रजचंद चदमुखी राधा,
बृन्दावन बीथिन में हरिगुन गाव रे।
बीति जात उम्मर भँडार तन रीति जात,
बीति जात काल के हवाले होत बावरे॥

मन को मोह से मुक्त होने और उसे प्रबोधित करने का कारण है उसकी अटक-भटक जाने की आदत। इस आदत को छुड़ाने की सख्त आवश्यकता भी रहती है क्योंकि इसके पड़ने या सुधरने पर बहुत सारा अनिष्ट और इष्ट निर्भर करता है। लेकिन मन को लेकर जो सबसे ऊँची बात ठाकुर ने कही है वह यह है कि इस मन को भगवान के प्रेम रस में डुबोये रह कर संसार में निर्द्वन्द्व रहो—

ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखौ,
प्रेम निरसंक रस रंग बिहरन देव।
बिधि के बनाये जीव जेते हैं जहां के तहां,
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव॥

मनुष्यता और उपदेश—संसार की गति और दशा को देखते हुए तथा मनुष्य की आचरण-विधि से अभिज्ञ हो अपने जीवन के अनुभवों से उत्पन्न ज्ञान को उन्होंने उपदेश अथवा नीति-मूलक उक्तियों के रूप में हमारे सामने रखा है। वे बार-बार मनुष्यता को सर्वोपरि धर्म बतलाते हैं। यह मनुष्यता, पौरुष या मरदानगी ठाकुर की राय में यह है कि हम जिसकी बाँह पकड़ें उसका अंत तक निर्वाह करें, अपने वचनों को व्यर्थ न जाने दें, साहस पूर्वक सिर पर जो आ पड़े उसके बावजूद भी समस्त जीवन-धर्मों का निश्चल भाव से निर्वाह करें। इतनी वे हमसे मनुष्यता के नाम पर उम्मीद करते हैं और उनकी यह उम्मीद बिलकुल जा है। उनके कुछ उपदेश इस प्रकार हैं—प्रवीणों की संगति करो, मन को आंतरिक तोष

देने वाले कार्य करो, नीचों की सगति से बचो तथा रूप और यौवन ऐसा दुर्लभ रत्न और धन पाकर उसका दुरुपयोग न करो। यथाशक्ति दूसरों की विशेषकर उनकी जो तुम से कुछ आशा रखते हैं भलाई करो, दीनो का सदा दुख दूर करो, यदि गाँठ से खर्च करने में कष्ट होता हो तो अन्य ऐसे उपकार करने मे बाज न आओ जिनमे तुम्हारी गाँठ से कुछ न लगता हो। इस प्रकार के ऐसे अनेक उपयोगी एव व्यावहारिक सकेत ठाकुर हमारे लिये कर गये हैं जो उनकी जीवन-विषयक परिपूर्ण जागृति का सूचक है। ऐसे अवतरण उनकी रचना से अनेक प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमे वे सहज मस्ती मे आकर अमूल्य बातें कह गये हैं—

> दान दया बिन दीबो कहा अरु लीबो कहा जब आपु ते माँगी।
> प्राण गये रस दीबो कहा पय छीबो कहा उर प्रेम न जागो।
> नारि कहा जेहि लाज तजी गुरु कीबो कहा भ्रम दूर न भागो।
> या जग मे फिर जीबो कहा जब आँगुरी लोग उठावन लागो॥

ठाकुर की ये जगत सबधिनी रचनाएँ जिनमे ससार की दशा, उसकी गति, ससारियो की प्रकृति, मनुष्य के मन तथा उसके उज्ज्वल और अनुज्ज्वल पक्षो का दार्शनिक अथवा बौद्धिक नहीं वरिक आनुभविक आधार पर विश्लेषण किया गया है अपने आप मे बडी सबल हैं।

द्विजदेव की भक्ति

महाराज मानसिह 'द्विजदेव' की कविता पढने से इस बात की भी प्रतीति होती है कि उनके हृदय मे राधाकृष्ण के चरणो के प्रति अपार प्रीति और भक्ति थी। यही कारण है कि मूलत• प्रकृति-सौन्दर्य विषयक अपने अनुराग को काव्य-बद्ध करने के बाद उन्होने राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। प्रकृति वर्णन का प्रसग समाप्त होते ही कवि के मन मे एक अभिनव भाव का उदय होता है, वह सोचता है कि प्रकृति इस अपरिमित मात्रा में सौन्दर्य क्यो बिखेर रही है? इस राशि-राशि सुषमा का कारण क्या है? मन मे उठे हुए इन प्रश्नो का उत्तर भी वह स्वत दे लेता है कि यह सौन्दर्य और किसी कारण नहीं, स्वामिनी श्रीराधिका जी के विचरण और विहार के उद्देश्य ही प्रकृति मे सृष्ट हुआ है इसलिये क्यों न हरि-राधा के सुयश और लीलाओ का वर्णन किया जाय। इस भाव के उदित होते ही वे कह उठते हैं—

> 'एक-रूप आनंदमय श्रीराधा-ब्रजचन्द।
> करत विविध लीला ललित जेहि न जान जान श्रुति छद॥'

राधा और कृष्ण दो नही एक सत्ता के ही रूप भेद हैं। लीलार्थ ही वे दो हैं अन्यथा एक। वे सृष्टि में जो विविध लीलाएँ करते हैं वेद और शास्त्र भी उन सबको नहीं समझते। इस प्रकार प्रकृति के सौरभित वैभव मे उन्मत्त भाव से डूबा हुआ कवि 'द्विजदेव' प्रकृति की स्वामिनी (परम प्रकृति) श्री राधा और पुरुष (परम पुरुष) श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाता है और उन्ही की प्रणय-क्रीडाओं म तल्लीन हो जाता है और अपने मन को प्रबोध देता हुआ कहता है कि इन लीलाओं के वर्णन से भवदाह निश्चय ही कम होगा—

या विधि बहु लीला रचै, हरि-राधा ब्रज माँह ।
ताहि बरनि द्विजदेव तुम, किन मेटौ दुख-दाह ।।

राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति भाव का यह उद्रेक उन्हें आत्म-दैन्य निदर्शन में भी प्रवृत्त करता है—

कौन कहाँ को राज, कहा बापुरे सुरभि मैं ।
नाहक करि चित-चाव, ब्रत बसत बरनन करौं ।।

और वे सोचने लगते हैं कि कौन कहाँ का राजा है और कौन किसकी प्रजा है। सब उसी परम शक्ति के अनुचर हैं। ऊँच नीच का भेद भुला देने वाली यह पुनीत भावना भक्ति भाव प्रेरित ही समझी जानी चाहिए। इसके पश्चात कवि सरस्वती की वंदना और स्तुति करके तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करके हरि राधा की लीलाओं के वर्णन में प्रवृत्त होता है। सर्वप्रथम राधा कृष्ण के गुणों पर प्रकाश डालते हुए उनकी स्तुति की गई है—

एकै ह्वै बिबि-रूप, राधिका-स्याम कहावै ।
ह्वै बस ब्रज-जुवतीन, चतुर-चातुर मन भावै ।।
पचबान-रति कोटि, अंग-अंगनि पै वारे ।
छल-बल करि ब्रज-सुजस, परम पावन बिसतारे ।।

'द्विजदेव' सातहूँ भुवन मैं, अष्ट-सिद्धि-दाता विदित ।
मन सेवहु नवधा भक्ति-जुत, नव रस-मय ब्रजराज नित ।।

स्वच्छन्द कवि आलम ने 'नवरसमय नन्दलाल' की वन्दना की थी, द्विजदेव ने 'नवरसमय ब्रजराज' की। द्विजदेव के राधा और कृष्ण कहने को दो हैं, अन्यथा वे एक ही सत्ता हैं, ब्रजयुवतियों ने उन्हें प्रेम द्वारा स्ववश कर लिया था। प्रेम द्वारा ही वे प्राप्य हैं, सौन्दर्य में कोटि-कोटि रति और कामदेवों की छवि उनके एक-एक अंग पर निछावर की जा सकती है। समस्त लोक-लोकांतर में वे विख्यात हैं और अष्ट सिद्धियों के प्रदायक हैं, नवधाभक्ति सहित उनकी सेवा ही जीव की परमगति है। उन्होंने स्थान-स्थान पर राधा और कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत किया है। राधिका के अतिशय शोभा-शाली अंगों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—'मोहमई तम क्यों न मिटै, इमि ध्यान धरै वृषभानुलली कै।' जिसके रत्नजटित आभूषणों के सामने नक्षत्रों की ज्योति फीकी लगती है, जिसके मुख की छवि के सामने चन्द्रमा शरमाता है, जिसके कानों के कुण्डल सूर्य की प्रभा को मन्द कर देते हैं वह परम ज्ञान-ज्योतिमयी राधिका संसार के अज्ञानान्धकार को क्यों न दूर करेगी? उसका ध्यान ही मानव-चित में ज्ञान ज्योति का प्रसार है। इसी श्रद्धा और पूज्य भाव के कारण श्री राधा का नख शिख वर्णन करते हुए कवि ने उनके कुछ अंगों का वर्णन जानबूझ कर छोड़ दिया है या कुछ रहस्यमय ढंग से कर के वे आगे बढ़ गये हैं। उनकी अपार शोभा और सुन्दरता का कल्पना द्वारा साक्षात्कार करके भी कवि हक्का-बक्का रह जाता है। वह कहता है कि स्वयं सृष्टि के अनन्त सौंदर्य का सृष्टा विधाता भी श्री राधा जी के सौन्दर्य को देखकर संकोच और लज्जा का अनुभव करता है, ठगा सा खड़ा रह जाता है, सोचता है मेरी सृष्टि का सौन्दर्य

इस रमणीयता के सामने कुछ भी नहीं—'करतूति कितीक कितीक करी, पै विरचिहि पीठि दै जात बन्यो।' अन्यत्र भी कवि ने श्रीराधा के स्वरूप की अलौकिकता के सुन्दर संकेत किये है जैसे उस छन्द मे जिसमे 'बाग बिलोकने' को गई हुई राधिका से ही केतकी, चपक जपा आदि प्रसूनो के अपने पत्तो के मिस हाथ फैला-फैलाकर छवि की भीख माँगने का वर्णन आया है अथवा यह उक्ति—

'प्रनि पद जामै होत, ध्यान राधा-माधव कौ।
पढत सुनत चित-गुनत जाहि डर रहै न भव को।।'

शृङ्गार-लतिका के अन्तिम सवैये मे जिसमे राधिका के चरणो के सौन्दर्य का वर्णन किया है पर्याप्त विलक्षणता आ गई है, उसका कारण कवि की भक्ति- भावना ही है। उसका कहना है कि लाखो भक्तो के नेत्र जो श्री राधिका के चरणो पर टिके हुए हैं उन्ही की भीड के कारण तो राधा की चाल मन्द हो गई है, भक्तो को भी इसमे अपूर्व सुख ही मिलता है—

वह मंद चलै किन भोरी भटू! पग लाखन की अँखियाँ अटकीं।।

शृङ्गार-लतिका मे 'द्विजदेव' ने कृष्ण की अपेक्षा अपनी आराध्या राधा के प्रति भक्ति का निवेदन अधिक किया है।

७

स्वच्छन्द कवियों के प्रबन्ध ग्रन्थ

रीतिमुक्त शृङ्गारी कवि प्रेमावेग में मुक्तक शैली की रचनाएँ तो करते ही थे कभी-कभी वे प्रबन्ध रचना में भी प्रवृत्त हो जाते थे। प्रबन्धों में प्रेम का अधिक प्रगाढ़ और गम्भीर रूप अंकित मिलता है। रसखान की 'प्रेम वाटिका' में विचारों की जो क्रमबद्धता है और घनआनन्द की छोटी-छोटी वर्णनात्मक कृतियों जैसे ब्रज-व्यवहार, गिरि-गाथा, ब्रज प्रसाद, गोकुल विनोद, ब्रजस्वरूप, प्रिया प्रसाद, धाम चमत्कार, कृष्ण कौमुदी भावना-प्रकाश, प्रेमपद्धति, गिरिपूजन, वृषभानुपुरसुषमावर्णन आदि में जो भावों और वर्णनों की क्रमबद्धता है वह स्पष्ट सूचित करती है कि रसखान और घनआनन्द में प्रबन्ध-शक्ति थी जिसका उन्होंने पूर्ण उपयोग नहीं किया। ये रचनाएँ अधिकतर दोहा, चौपाई और कभी-कभी रोला छन्दों में लिखी गई हैं। भाषा काव्य परम्परा में ये तीनों छन्द प्रबन्ध रचना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माने गए हैं। द्विजदेव की 'शृङ्गार लतिका' में जहाँ-जहाँ क्रम से अनेक दोहे या भुजंगप्रयात, मौक्तिकदाम आदि छन्द व्यवहृत हुए हैं वहाँ कवि की प्रबन्धात्मक शक्ति का आभास मिले बिना नहीं रहता। इसलिए यह तो स्पष्ट ही है कि रीति-स्वच्छन्द-धारा के कवियों में प्रबन्धरचना की अच्छी शक्ति थी जिसका वे सम्यक् विकास न कर सकें। इसका प्रधान कारण तो यही कहा जायगा कि स्वच्छन्द भावोन्मेष बन्धन नहीं स्वीकार करता—वह बन्धन चाहे किसी प्रकार का भी क्यों न हो। स्वच्छन्द कवि प्रबन्ध रचना में बन्धन में पड़कर अपनी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को आहत नहीं होने देना चाहते थे इसी से उनमें मुक्तकों का प्राधान्य गोचर होता है फिर भी इस धारा के प्रमुख आधे दर्जन गायकों में दो कवि ऐसे हुए जिन्होंने प्रबन्ध रचना का सहारा लिया, वे कवि हैं आलम और बोधा। इन्होंने प्रबन्ध रचना की अच्छी शक्ति का परिचय दिया। इनके द्वारा तीन प्रबन्ध ग्रन्थ लिखे गए हैं—आलम कृत 'माधवानल कामकन्दला' और 'श्यामसनेही' तथा बोधाकृत 'विरह-वारीश' या 'माधवानल कामकन्दला' यहाँ इन्हीं तीनों प्रबन्धों का अध्ययन अभिप्रेत है।

आलम कृत माधवानल-कामकंदला

कथा—पुष्पावती नगरी मे गोविन्दचन्द नाम का एक राजा था, उसके यहाँ माधवानल नाम का एक वैरागी था जो समस्त शास्त्रो मे निष्णात कामदेव सा रूपवान था। वह राजा के यहाँ पुराण बाँचने, शिक्षा देने आदि का काम करता था। उसे देखकर पुरनारियाँ अधीर हो उठती थी। उसके वीणावादन से पनिहारिनें बेसम्हाल हो उठती थी और कुल वधुएँ चचल। जब पुरवासियो द्वारा राजा तक उसकी शिकायत पहुँची तो राजा ने परिस्थिति की जाँच की। तीस तरुण दासियाँ कमलपत्र पर बिठा दी गयी और माधव के वीणा-नाद के प्रभाव से उनका मदन बह चला और जब वे उठी तो वे कमल पत्र उनके शरीर से चिपक गए थे। राजा ने माधव को राज्य-निष्कासन का दण्ड दिया और फलस्वरूप माधव वीणाद जाता हुआ कामावती पहुँचा। वहाँ का राजा कामसेन था, रसिक और कलाप्रेमी। एक दिन उसकी राजसभा मे नृत्य-सगीत आदि का विशद आयोजन हुआ। अनाहूत माधव भी वहाँ पहुँचा। पहले तो उसे राज्य सभा मे प्रवेश ही प्राप्त न हो सका किन्तु उस कलाविज्ञ ने जब राजसभा के बाहर से ही राजा के पास यह कहला भेजा कि तेरी सारी सभा मूर्ख है, १२ मृदग वादको मे एक जो ७ और ४ के बीच बैठा हुआ है उसके दाहिने हाथ मे ४ ही उँगलियाँ हैं जिसके कारण सगीत का सारा रस भग हो रहा है तो राजा और राजसभा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह बडे सम्मान के साथ सभा मे बिठाया गया और विपुल धन एव रत्नाभूषणो की उसे दक्षिणा दी गई, उसका रूप और वेश सबको मुग्ध कर रहा था। अनेक कार्यक्रमो के बाद राजनर्तकी कामकन्दला का अद्वितीय कौशलयुक्त नृत्य हुआ जिससे माधव अत्यन्त प्रभावित हुआ तथा जलभरा कटोरा सिर पर रखकर हाथो से चक्र घुमाते हुए उसने जिस प्रकार का नृत्य दिखलाया और कुचाग्र पर बैठे भ्रमर को जिस प्रकार स्तनस्रोत द्वारा प्रताडित वायु से उडा दिया उसे देखकर तो वह दग रह गया। उसने समस्त प्राप्त सम्पदा कन्दला को भेंट कर दी तथा राजा को अविवेकी और सभा को मूर्ख बतलाते हुए उसने कन्दला के कौशल की प्रशसा की। कामसेन उसके शब्दो से आहत हो उठा, उसने माधव को कडे शब्दों मे फटकारा और राज्य से निकल जाने का कहा तथा उसे राज्य मे शरण देने वालों के लिये दण्ड की घोषणा भी करा दी। कन्दला राजाज्ञा की उपेक्षा कर परमश्रेष्ठ कलाविद को अपने भवन मे ले जाती है और सम्भोग व्यापारो मे थक-थक कर दोनो बहुत दिन तक चूर होते रहते हैं। राजाज्ञा-भय से माधव जब भी विदा होने को कहता कन्दला अनुनय-विनय करके उसे रोक लेती थी। अन्त मे एक दिन वह चल ही देता है और कन्दला के वियोग मे वनवन भटकता मरणासन्न सी स्थिति मे दुखहारिणी नगरी उज्जयिनी मे पहुँचता है। वहाँ वह एक ब्राह्मण का आतिथ्य ग्रहण करता है। एक दिन विरही माधव उज्जयिनी के महादेव मन्दिर के अन्दर की दीवाल पर आत्मदशा व्यजक एक दोहा लिख देता है—

> कहा करौं कित जाउँ मैं राजा रामु न आहि।
> सिय वियोग सताप बस राघौ जानत ताहि॥

पर दुख कातर उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य ने जब यह दोहा पढ़ा तो उन्होंने उस विरही को ढूंढ निकालने के लिए एक लक्ष मुद्राओ के पुरस्कार की घोषणा करा दी। आन-

वती नामक एक दूती के उद्योग से विरही माधव राजा विक्रम की सभा में लाया जाता है। विक्रम ने उसका पता ठिकाना और दुख के कारण की पूछताछ के अनन्तर उसे वेश्या प्रेम से विरत होने की सलाह दी, उसके प्रेम की जांच की परन्तु माधव का प्रेम अविचल था। राजा ने उसके विविध शास्त्रों के ज्ञान की भी परीक्षा ली और उसे परम निष्णात पाया राजा ने उसके सुख के लिये नृत्य-संगीत आदि की भी व्यवस्था करा दी परन्तु माधव को इससे न संतोष हुआ और न प्रसन्नता। इसके अनंतर विक्रम अपनी कटक सजाकर कामावती नगरी के लिये चल पड़ते हैं और नगर सीमा पर ही अपना शिविर डालकर कंदला के भवन में यह देखने के लिए पहुँचते हैं कि जिसके वियोग में माधवानल की यह दशा है उस कामकंदला नर्तकी की प्रीति कितनी और कैसी है। राजा ने उसे अत्यंत कृशकाय, मलिन तन, बस माधव की नाम की ही रट लगाते हुए पाया। राजा ने उसके प्रेम की परीक्षा लेने के लिये उज्जैन में उसकी मृत्यु होने का समाचार दिया जिसे सुनते ही कंदला का तो प्राणांत हो गया। राजा बहुत पछताया तथा उसकी सखियों को धैर्य देकर माधव के पास आया। कंदला के प्राणांत की सूचना जब माधव को दी तब तुरन्त ही माधव ने भी प्राण त्याग दिया। अब विक्रम के पश्चाताप का ठिकाना न रहा, उसने जीते जी चिता में जल मरने का निश्चय किया। चिता सजी और राजा भी स्वर्णदान आदि करके चिता पर बैठने को उद्यत हुआ। उधर यह समाचार सुनते ही विक्रम का मित्र बैताल स्वर्ग-लोक से दौड़ा। राजा के संताप का कारण जानकर बैताल ने सहायता का आश्वासन दिया। उसके द्वारा सुधाकुंड से लाये अमृत से माधव और कंदला के प्राण फिर वापस आ गये। राजा विक्रम ने अब कंदला को सारा वृतांत बतलाया और आगे कार्यक्रम भी। माधव और कंदला के प्रेम की अनन्यता से प्रभावित हो राजा विक्रम ने श्रीपति नामक एक दूत द्वारा राजा कामसेन के पास काम कंदला को भेजने का प्रस्ताव प्रेषित किया परन्तु कामसेन ने अपमानजनक समझकर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया जिसके फलस्वरूप घमासान युद्ध हुआ जिसमें कामसेन की पराजय हुई। उसने दीन भाव से पश्चाताप व्यक्त करते हुए कामकंदला को समर्पित कर दिया, राजा विक्रम अपना कार्य पूरा कर उज्जयिनी चले गये। माधव और कंदला का चिरकांक्षित मिलन हुआ और दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।

वस्तु-विवेचन—प्रस्तुत प्रबंध के आरम्भ में परब्रह्म की वंदना की गई है इसके बाद समसामयिक सम्राट् अकबर की प्रशंसा की गई है और आगरे के स्वामी टोडरमल का भी उल्लेख किया गया है। ग्रंथ का रचना काल सन् ९५१ (हिजरी) बताया गया है और वस्तु-निर्देश करते हुए प्रबंध को वियोग शृंगार की कथा कहा गया है। आलम ने कहा है–'कछु अपनी कछु परकृत चोरों' परंतु किसकी कृति से इन्होंने यह कथा चुराई यह ठीक स्पष्ट नहीं हो पाता, हाँ इतना अवश्य पता चल जाता है कि इन्होंने संस्कृत भाषा में लिखित माधव कंदला का आख्यान सुना था। इस आख्यान को सुनने के बाद ही उन्होंने दोहा चौपाइयों में उसे बाँधा था इसका प्रमाण ग्रंथ के अंत में फिर मिलता है। माधवानल प्रबंध की कथा-वस्तु परंपरा-प्राप्त है परन्तु उसके ग्रहण का मूल कारण यह है कि कवि को अपने प्रेम-सिद्धान्त के प्रकाशन के लिये इस कथानक में अपेक्षित अवसर मिलता है। प्राय: प्राचीन प्रेमियों की गाथाएँ प्रेमोमार्ग के कवियों का काव्य विषय बनी हैं तथा कृष्ण और रुक्मिणी,

न-दमयन्ती, ऊषा-अनिरुद्ध ऐसे प्राचीन प्रेमियों के इतिवृत्त उठाए गए
माधव और कदला, मैम-व्यंजना के लिये ऐसे प्रबन्ध बड़े उपकारक होते है।
हैं। प्रेमी कवियों की चना मे बहुत पटु थे। उनकी कथा की धारा बिना टूटे चली चलती
आलम प्रबंध के वर्णन इतने सरस हैं कि मन उनमे भी मुग्ध होता चलता है और
है, बीच-बीच मे आने का रुक जाना पता भी नही चलता। जितनी सरसता और धारा-
थोड़ी देर के लिये कथाएं हैं उतनी ही रुचि उत्पन्न करने वाले ढग से वे वस्तु-वर्णन भी करते
वाहिकता से वे कवर्णनों का आश्रित रहा करता है जैसा कि श्यामसनेही से भी सिद्ध होता
हैं। उनके कहीं कथा की गति अप्रतिहत रहती है। उन्हें कथावस्तु में नियोजित तत्वों के
है लिए इतना अच्छा ज्ञान था कि उनके दो प्रबन्धों मे से एक मे भी केशव की राम-
चन्द्रिका का सा उखड़ापन नही मिलता। ये वर्णन बीच-बीच मे आकर जहाँ एक ओर पाठक
के मन को रमा लेते हैं वहीं शीघ्र ही कथा की गति को आगे भी बढ़ा देते हैं। ये वर्णन न
बहुत बड़े हैं और न बहुत छोटे। जगह-जगह वर्णनों की अधिकता के बीच कथा की गति
मंथर हो गई है परन्तु वर्णनों की सरसता उसकी क्षतिपूर्ति कर देती है। वर्णनों मे आकर्षण
का एक प्रधान कारण यह भी है कि ये वर्णन अधिकतर शृङ्गारपरक है।

प्रस्तुत कथानक मे अनेकानेक छोटी बड़ी घटनायें अनुस्यूत हैं उदाहरण के लिये (१) स्नान के अनन्तर माधव का वीणा वादन और नगर की स्त्रियों का मुग्ध होना (२) माधव के वीणा वादन की शक्ति की परीक्षा और उसका देश निकाला (३) कामावती नगरी मे माधव का सगीत ज्ञान के कारण सम्मान और फिर देश-निष्कासन (४) माधवकदला-मिलन और सभोग (५) माधव का वन-वन भटकना (६) उज्जयिनी के महादेव-मडप मे माधव का दोहा लिखना और राजा से भेंट (७) राजा विक्रम द्वारा माधव और कदला के प्रेम की परीक्षा (८) विक्रम का चितारोहण तथा बैताल की सहायता से माधव और कदला का जीवित हो उठना (९) विक्रम का कामसेन का युद्ध जिसके परिणामस्वरूप माधव और कदला का मिलन। ये घटनाएँ परस्पर सबद्ध हैं और एक के बाद एक घटती चली जाती हैं, इनके बीच कोई बाधक तत्व नही उपस्थित होता। ये घटनाएँ बड़ी रोचक और सरस हैं परन्तु इनमे अतिमानवीय अथवा दैवी शक्तियों (Supernatural element) का योग भी हुआ है जैसा कि सूफी प्रेमाख्यानो मे प्राय देखा जाता है। माधव और कदला की प्रेम-परीक्षा राजा विक्रम के लिये बड़ी मँहगी पड़ती है। एक दूसरे की मृत्यु का समाचार सुनकर दोनो की मृत्यु हो जाती है। यदि बैताल द्वारा अमृत ले आने का वर्णन नहीं लाया जाता तो इस कथा की सुखद परिणति असभव थी। राजा विक्रम के चितारोहण पर देवताओं का विमान पर चढ़-चढ़ कर अन्तरिक्ष मे आना और विक्रम के मित्र बैताल का व्याल-रक्षित सुधाकुंड से अमृत ले आना जिससे माधव और कदला को नव जीवन प्राप्त होता है दो दैवी व्यापार हैं जिनसे कला की नैसर्गिकता को ठेस पहुँची है। गनीमत है कि इस प्रबन्ध में बैताल द्वारा अमृत लाने के अतिरिक्त और इस प्रकार के प्रसग नही हैं। जायसी के पद्मावत आदि सूफी प्रेमाख्यानों मे अनेकानेक असभव व्यापारो की योजना द्वारा कथानक को तमाशा बना दिया गया है। मध्ययुगीन कवि ईश्वर और दैवी शक्तियों मे आस्था रखने वाले प्राणी थे, देव-शक्तियाँ बार बार उनके जीवन के व्यापारो मे आ-आकर योग देती हैं ऐसा उनका विश्वास

देखी जा सकती है।
था। स्वय तुलसी के ही प्रबन्ध मे अतिमानवीय तत्वो की प्रचुरता सिद्ध करता।
अच्छा होता यदि बैताल की सहायता के बिना यह प्रबन्ध अपना अभीप्
ओ की भी सख्या कुछ

घटनाओ की अधिकता के साथ साथ अल्प महत्व वाले पा ह आदि के विशद वर्णन छोटी नहीं हैं। वर्णन, सवाद, चरित्र-चित्रण, मर्मस्पर्शी प्रसगों, विर पर के बजाय चारना ही काव्य को विस्तार देने वाले हैं पर इनके कारण काव्य मे नीरसत र की शैली में प्रस्तुत आई है। परम्परा-प्राप्त कथा सुगठित ही है पर कविवर आलम ने उसे अप है मृत्यु जीवित हो दिया है। बैताल द्वारा अमृत का लाया जाना और मृत नायक-नायिकाओ का ... भी उठना ऐसे अनर्गल व्यापार दिखाये गये हैं जो आधुनिक रुचि के अनुकूल नही। ... लोक चित्त का अनुरजन करने की सामर्थ्य इस कथा में है यह स्वीकार करना पडेगा। अस्वाभाविक, अत्युक्तिपूर्ण और आश्चर्यजनक प्रसग प्रस्तुत कथा मे जुडे हुए हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) माधवानल का वीणानाद सुनकर पुहुपावती नगरी की स्त्रियो का उन्मत्त हो जाना।

(२) एक कुल ललना जो अपने पति को भोजन परोस रही थी उसके हाथ से माधव के वीणानाद के कारण भोजन की थाली का गिर पडना।

(३) माधव के वाद्य-नाद के परिणामस्वरूप राजा गोपीचन्द की बीस चेरियो की कामशक्ति का बढ़ पडना और कमल-पत्र का उनके अग मे चिपक जाना।

(४) कामावती नगरी की सगीत सभा के बाहर से ही बिना देखे हुए माधवानल का यह बता देना कि अन्दर बारह वादक हैं जिनमे से ७ और ४ के बीच जो वादक बैठा हुआ है उसके दाहिने हाथ मे चार ही उँगलियाँ है जिससे वह तार चूक जाता है।

(५) माधव के सौंदर्य और व्यक्तित्व के प्रभाव से अनायास सारी सभा का मुग्ध हो जाना और सम्मान मे खडे हो जाना।

(६) कदला के आग्रह पर माधव द्वारा बजाई गई वीणा के प्रभाव से रात्रि का रुक जाना।

(७) विक्रम द्वारा सूचना पाने मात्र से कदला और माधव का प्राण त्याग देना।

(८) बैताल द्वारा लाये गये अमृत से माधव और कदला का पुनर्जीवित हो जाना।

(९) शिवजी तथा उनकी जोगनियो एव भूतिनियो का रणस्थल मे आ आकर मुड-माल बनाना, मांस खाना और रक्त पीना।

ये सारे अनर्गल व्यापार कथा को स्वाभाविक नहीं रहने देते और प्रबंध रचना मे सुगठित, सजीव और घटनावली-सयुक्त कथा का जो आनद होता है उसमे बाधा पहुँचाते हैं। प्रबन्ध में कुल तेरह खड हैं जिनमे सबसे बडे खड में ७२ और सबसे छोटे खड मे ३ दोहे (चौपाइयो सहित) रचे गये हैं, इसमे भी खडो के विधान में थोड़ा असतुलन आ गया है परन्तु कथा की धारा इनके कारण उखटी हो ऐसा नही कहा जा सकता। उसका आरम्भ

दोहा चौपाई शैली का प्रयोग है। साथ ही साथ प्रबन्ध काव्य के समस्त उपकरणो की नियोजना पर भी कवि का जो ध्यान और सतुलन रहा है वह भी कारण स्वरूप रहा है।

वर्णन—माधवानल प्रबध वर्णनो से परिपूर्ण है। वर्णन का क्रम इस प्रकार है ,— (१) माधवानल के सगीत का प्रभाव वर्णन (२) कामावती नगरी का वर्णन (३) कामकदला का रूप वर्णन (४) राजा कामसेन की सभा मे माधव का रूप-सौन्दर्य और प्रभाव वर्णन (५) गुण का माहात्म्य वर्णन (६) माधव का सगीत वर्णन (७) कदला का नृत्य वर्णन (८) कर्म रेखा की प्रबलता का वर्णन (६) कदला का शृगार करने और कोक रीति की शिक्षा लेने का वर्णन (१०) रतिक्रीडा और सुरतात वर्णन (११) कदला का स्नान वर्णन (१२) उज्जयिनी वर्णन (१३) युद्ध वर्णन। इन वर्णनो मे कुछ वर्णन तो नायक नायिका के रूप गुण और उनके प्रभाव से सबधित है (सख्या १, ३, ४, ६, ७), *कुछ शृङ्गारिक वर्णन* हैं जिनमे नायिका के शृङ्गार करने, स्नान करने और रतिक्रीडा आदि का वर्णन हुआ है (सख्या ६, १०, ११) जिनसे हमे कवि की स्थूल शृङ्गारी वृत्ति का परिचय मिलता है, कुछ वर्णन वाह्य दृश्यो के हैं जैसे कामावती और उज्जयिनी के वर्णन तथा युद्ध वर्णन (सख्या २, १२ और १३) तथा कुछ वर्णन ऐसे हैं जिनमे गुण का माहात्म्य और कर्मरेख की प्रबलता का वर्णन पात्रो की बातचीत के माध्यम से कराया गया है (सख्या ५ और ८)।

काम-कदला के अमीय रूप-सौन्दर्य का कवि ने विशद वर्णन किया है, माधव के रूप का वर्णन कामसेन की सभा मे प्रवेश के समय किया गया है। माधव के सगीत का जो वर्णन किया गया है उसके शास्त्र पक्ष के सम्बन्ध मे तो सगीतज्ञ ही कुछ कह सकता है किन्तु उससे दो बातें स्पष्ट हुए बिना नही रहती। एक तो यह कि माधव ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढग से अपने सगीत ज्ञान का प्रदर्शन किया है दूसरे यह कि कवि को भी सगीतशास्त्र का ज्ञान अवश्य था अन्यथा शास्त्रीय सगीत के रागो और बोलो का जैसा विवरण दिया गया है वैसा सम्भव न था। इसी प्रकार कदला के नृत्य का वर्णन भी बडा व्यामोहक है। इन ललित कला प्रेमी नायक नायिकाओ द्वारा जहां-जहां भी सगीत-वाद्य-नृत्य होता है वहां वहां उनकी कला के सम्मोहक स्वरूप और प्रभाव का कवि ने वर्णन किया है उदाहरण के लिए ग्रन्थारम्भ मे स्नान के अनन्तर माधवानल ने जो राग छेडा उसके कारण नाना कामिनियाँ नाना रूपो मे प्रभावित हुई। कवि ने एक-एक के प्रभाव का वर्णन किया है। पनिहारियो को व्याकुल हुआ *देख माधव जब वीणा बजाता हुआ नगर की ओर चल देता है तब अपने* गृहकार्यों मे सलग्न स्त्रियां वीणानाद से सम्मोहित हो बेसुध हो जाती हैं। किसी के हाथ से भोजन का थाल गिर पडता है और किसी की कोई गति हो जाती हैं। जब पहुपावती के राजा गोविन्दचन्द उसके इस गुण की परीक्षा लेते हैं तब भी ऐसा ही प्रभाव देखने को मिलता है—

माधोनल वीना कर गह्यो। खस्यो काम धीरज नहिं रह्यो॥
माघो विप्रनाद अस कहा। मीजे चीरु मदन तब बहा॥

माधव और कदला के सगीत और नृत्य का प्रभाव मनुष्य जगत तक ही सीमित नहीं दिखाया गया है, उसकी व्याप्ति पशुसृष्टि तक प्रदर्शित की गई है। सगीत के विशेष प्रेमी मृग तो सचेत भाव से मुग्ध होकर अपने प्राणो का अर्पण कर देते हैं—

जब पारधी नाद मृदु गावै। सुनतहि मृग हिय मोहित ह्वै जावै॥
हरिनी कहै हरिन का कीजै। रीति पारधी कौं का दीजै॥
हमरे कहा देन कौ दाना। कहै कुरंग सो दीजै प्राना॥
तब पारधी धनुष संधाना। मृग हियरा आगे कै दीन्हाँ॥

मृग-मृगी का यह वृत्तान्त लोकगीतों की सी सम्मोहनशक्ति और माधुर्य रखता है। माधव और कन्दला की पारस्परिक आसक्ति का एक बहुत बड़ा कारण उनकी कला मर्मज्ञता है। वे वर्णन भी देखने योग्य हैं जिनमें कवि की शृङ्गारी वृत्ति को और भी खुलकर खेलने का अवसर मिला है। कदला के भवन में जब माधव और कदला की प्रथम भेंट होती है उस समय कदला को प्रथम समागम की लालसा तो अवश्य है परन्तु वह कामकला से अनभिज्ञ होने के कारण सन्त्रस्त सी है। पहले वह उचित शृङ्गार करती है, अनन्तर कामकला की शिक्षा ग्रहण करती है। प्रिय के प्रथम समागम के लिए जाते समय महीन कंचुकी धारण करती है, सुगन्धियों से उसे सींचती है, लाल पुष्पों के हार पहनती है, वेणी में पुष्प गुँथवाती है, अंगो में चपलता और स्फूर्ति का सचार करती है, मस्तक पर चन्दन का टीका लगाती है, आँखों मे अंजन आँजती है तथा अंग अंग को आभूषित कर 'कुसुमी' सारी पहनती है और मुह मे पान का बीडा लेती है। कामरीति की शिक्षा देती हुई उसकी सखी उसे सफलता के दो तीन मूल मन्त्र बतलाती है—

जहाँ वासु मनमथ को जानो। तिहि ठां रिसु निकट जनि आनो॥
जहाँ जग मनमथ रह तहाँ। छिपन कियो रहियो पै तहाँ॥

इसके बाद कवि ने कामक्रीडा या सुरति का वर्णन तो नाममात्र को किया है किन्तु सुरतान्त स्थिति का चित्रण किंचित् विस्तार से किया है। प्रातःकाल काम-क्लि-न्त-श्रम कन्दला के सरोवर स्नान का वर्णन है जहाँ उसके समस्त अंगों की थकान मिटाने के लिये तेल, सुगंधि, अरगजा, उबटन आदि से उसकी सखियाँ उसे चर्चित करती हैं। स्नान के अनन्तर की छवि देखने योग्य होती है—अंगों पर बूँद-बूँद जल शोभा देता है, खुले हुए केशों से भी जलबिन्दु टपकते चलते हैं आदि। ये वर्णन भी बड़े सरस और ऐश्वर्यपूर्ण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये अधिकांश वर्णन शृङ्गार-परक हैं। इनमें स्थूल आंगिक सौन्दर्य, रूप और आछटा का आकर्षण, स्वरसिको की सम्मोहित स्थिति, नेत्रों की लिप्सा, ऐन्द्रिक साहचर्य की तृष्णा और सभोग तथा सुरतान्त स्थितियो का वर्णन कर कवि ने शृङ्गार प्रेमियों के लिए रसास्वाद की पर्याप्त सामग्री संजो दी है। वर्णनों की सरसता और मनोरमता का यह एक प्रधान और मनोवैज्ञानिक कारण भी है। जिन वर्णनो में शृङ्गार का पुट नहीं है ऐसे वर्णन दो तीन ही हैं जैसे नगरवर्णन करते हुए कामावती और उज्जयिनी का वर्णन तथा युद्ध वर्णन। इन वर्णनों तथा रूप-सौन्दर्य के वर्णनों की चर्चा प्रस्तुत अध्याय के दूसरे खण्ड में की गई है। इनके अतिरिक्त एक दो स्थलों पर कवि ने प्रसगवश गुण का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा है कि भले ही कुछ काल तक गुण रूपी हीरा अन्धकार की तहों में न पहचाना जाय किन्तु अन्ततः उसका प्रकाश लोक मे छा करके ही रहेगा। गुण के बिना कोई महत्व नहीं हो सकता, गुण होने पर गुणवान् हीरा अधिक से अधिक मूल्य पर बिकता है जिस प्रकार कामसेन की सभा मे माधव—

ऊँच नीच पूर्छहि नहिं कोई। बैठहि सभा जौ रे गुनु होई॥
गुनी पुरुष जौ परभुमि जाई। त्यौं त्यौं मंहगे बोल बिकाई॥
गुन बिन पुरिप पंख बिन पखी। गुन बिन पुरुष अध ज्यौं अखी॥

किन्तु एक जगह कवि को एक और भी गम्भीर तथ्य—भाग्य—का भी वर्णन करना पड़ा है, वह कहता है कि कर्म की रेखा में यदि दीनता, दरिद्रता ही लिखी हो तो गुण धरा का धरा रह जाता है। जगत का यह भी एक कठोर सत्य है। गुण का माहात्म्य और भाग्य की प्रबलता वैसे तो वर्णन के विषय नहीं किन्तु प्रसगवश अनुभूत सत्य होने के कारण कवि ने उनका भी वर्णन किया है।

संवाद—प्रस्तुत प्रबन्ध में संवादों की स्वतन्त्र योजना नहीं है जैसी कि केशव कृत रामचन्द्रिका में मिलती है। कथा-प्रसग के अन्तर्गत पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप के अवसर आते हैं जहाँ बातचीत एकतरफा होती है वहाँ संवाद अपनी पूर्णता पर नहीं पहुँचता किन्तु जहाँ किसी विषय अथवा समस्या पर दो पात्र कुछ देर तक विचार-विनिमय करते हैं वहाँ रचना में संवाद का सौन्दर्य आ जाता है। इस दृष्टि से आलम के प्रबन्ध में छोटे बड़े कुल मिलाकर लगभग दो दर्जन संवादात्मक स्थल हैं। अनेकानेक अवसरों पर तो ये संवाद अत्यंत संक्षिप्त अथवा एकांगी हैं। पात्र एक-दो बातें करते हैं कि कथा आगे बढ़ जाती है अथवा एक पात्र कुछ कहता है और दूसरे पात्र उसे सुन भर लेते हैं या तदनुसार कार्य करने लगते हैं। संवाद ऐसे स्थलों पर कुछ विशेष महत्व नहीं रखते, वे कथा की धारा को अग्रसर करने मात्र का काम करते हैं। कभी-कभी ये चमत्कार का सृजन अवश्य कर जाते हैं जैसे कामसेन की संगीतसभा के बाहर बैठे-बैठे माधव का पौरिया से निम्नलिखित कथन—

द्वादस माँहि तूरिया अनारी। दहिनें हाथ अँगुरिया चारी॥
सात चारि के मद्धि है, उठि कै देखौ ताहि।
चूकै तार जो पाव सिसि, पातुर दोस न आहि॥

कभी ये एकपक्षीय कथन पात्र की मनोवृत्ति का भी निदर्शन करते हैं जैसे ऐसे अवसरों पर जहाँ विक्रम अपने सभासदों से कुछ कहते हैं यह पता चलता है कि वे अपने सभासदों से परामर्श किया करते थे और अपने शुभ्र व्यक्तित्व के साँचे में लोकमन को ढाला भी करते थे। शेष संवाद जो एकपक्षीय नहीं हैं उनके माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों की मनोवृत्तियाँ अच्छी तरह झलकाई जा सकी हैं। ऐसे संवाद अपेक्षाकृत बड़े हैं पर वे सच्चे अर्थ में संवाद हैं जैसे—(१) संगीत सभा में कामसेन-माधव-संवाद (२) कन्दला के भवन में माधव-कन्दला-संवाद (३) विक्रम की राजसभा में विक्रम-माधव-संवाद (४) विक्रम-कन्दला-संवाद (५) विक्रमदूत श्रीपति-कामदेव-संवाद। इनमें से प्रथम संवाद में माधवानल में कलाकार-सुलभ स्वाभिमान और अपने को सृष्टा समझने की अहम्मन्यता, ब्राह्मणोचित शाप देने की तथा कामसेन में राजोचित रोष एवं दण्ड देने की उद्धत प्रवृत्तियाँ बलवती हो उठी हैं। द्वितीय संवाद में प्रणयी-युगल की मनोवृत्तियों का चित्र देखा जा सकता है, इस प्रकार से काम की वेदिका पर आदर्शों की बलि चढ़ा दी जाती है, किस प्रकार सम्भोगसुख से उन्मत्त कन्दला वियोग की बातचीत से ही काँप-काँप उठती है, एक की बेबसी दूसरे का विनय और दैन्य, दोनों की

अविलग रहने की इच्छा पर राजाज्ञा का त्रास, दोनों का एक दूसरे के प्रति प्रणय-प्रकाशन, आसन्न वियोग की पूर्व-परिकल्पना, उनकी अनन्य प्रेमनिष्ठा आदि बातें इन प्रमुख पात्रों के आतरस्वरूप को एकदम उजागर कर देते हैं। इस सवाद में माधव का राजाज्ञा उल्लंघन का भय, कर्मरेख में विश्वास, सयोग के साथ-साथ वियोग की अनिवार्यता में विश्वास, प्रेम पथ की कठोरता और विरह वेदना की असह्यता आदि विचार व्यक्त हुए हैं। उधर कन्दला की भोगविलास-प्रियता, कामाधता, उसके जीवन के लिये माधव की अपरिहार्यता, राजाज्ञा की अवहेलना और माधव को पाने के लिये उसके कृत-सकल्प होने आदि के भाव व्यजित हुए हैं। तृतीय सवाद में माधव की तड़प, प्रेम की अनन्यता, विक्रम द्वारा गणिकाप्रीति छोड़ने की सलाह आदि बातें आई हैं, इसमें एक ओर जहाँ राजा की परदुख-कातरता, सहानुभूतिशीलता, आतिथ्य-परायणता और विवेक बुद्धि का परिचय मिलता है वहीं दूसरी ओर माधवानल की विरहाकुलता, रीझ और अनन्य प्रीति आदि के दर्शन होते हैं। उनके सवाद दो भिन्न विचारणाओं और जीवनानुभूतियों का प्रतिपादन करते हैं, दो भिन्न व्यक्तित्वों का चित्रण करते हैं। चतुर्थ सवाद में एक ओर विक्रम के प्रति कन्दला की कृतज्ञता का जहाँ ज्ञापन हुआ है वहीं विक्रम द्वारा विगत और आगत घटनाओं की सूचना देकर कथा के सूत्रों को भी जोड़ा गया है। राजा की परोपकारी वृत्ति से अत्यन्त प्रभावित हो कन्दला भी अपने प्रति किये गये उपकार के लिये राजा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है जिससे उसकी निश्छलता और विक्रम के व्यक्तित्व की महत्ता का पता चलता है। पचम सवाद तो राजपूत राजाओं के दुर्निवृत्ति का स्मरण दिलाता है जो छोटी-छोटी बातों पर खून की नदियाँ बहा देते थे। दूत के वचनों में अपेक्षित नम्रता के स्थान पर अनावश्यक औद्धत्य है। उधर राजा काममेन भी असहनशील हैं। दूत की वाणी असयत है जिसके परिणामस्वरूप परिहार्य एवं अनावश्यक रक्तपात होकर ही रहता है। वाणी का असयम कितने भीषण परिणामों का वाहक हुआ करता है यह देखना हो तो इस सक्षिप्त किन्तु तीक्ष्ण सवाद को देखा जा सकता है। यह सवाद एक प्रकार से इस प्रणय काव्य के कोमल वातावरण को बिगाड़ने वाला है किन्तु यही जीवन है जिसमें मृदु-कठोर क्रम-क्रम से आते आते हैं।

सक्षेप में हम कह सकते हैं कि इन सवादों द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व का अत्यन्त सुन्दरता के साथ उद्घाटन किया जा सका है, ऐसा जिससे पात्र का समूचा अन्तर्जगत प्रकाशित हो उठा है। इस प्रकार से काव्य के अन्तर्गत मनोविश्लेषण आदि के कलात्मक और मर्मस्पर्शी प्रसगों की मनोहर अवतारणा की गई है। ये सवाद अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढग से चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करने वाले तथा पात्रों के अन्तर्जगत तक पाठक को ले जाने वाले हैं। इनके माध्यम से पात्रों की और उनके माध्यम से कवि की निजी विचारावली का भी परिचय मिलता है। ये सवाद यथावसर कथा प्रसगों को जोड़ने में भी सहायक हुए हैं साथ ही अनेक स्थलों पर कथा की गति के अपरिहार्य अग हो गये हैं। उदाहरण के लिये श्रीपति कामदेव सवाद की वृश्चिक-तीक्ष्णता के बिना कथावस्तु अपनी चरम सीमा पर पहुँच ही नहीं सकती थी। इन सवादों की शैली में अथवा इनके विधान में कहीं कोई कृत्रिमता नहीं है। पात्र अपने मनोगत भावों को बिना रोक-टोक के कहते चले जाते हैं, लगता है जैसे कवि की अनुभूतियाँ न कहीं उलझी हुई हैं और न कहीं उसका चिंतन ही भ्रान्तिपूर्ण

है क्योंकि पात्र जो कुछ कहते हैं अन्तत तो वे कवि की ही अन्त सत्ता के विचार और भाव-लोक के प्रकाश है। ये सवाद बहुत बड़े नहीं हैं, इनकी योजना करते हुए कवि का ध्यान मूल कथा से हटने नहीं पाया है और उसने सवादो की योजना केवल सवाद-विधान का कौशल दिखलाने के उद्देश्य से नहीं की है।

मार्मिक स्थल—रस की दृष्टि से माधवानल प्रबन्ध विप्रलम्भ शृङ्गार का काव्य है। स्वभावत. इसके मर्मस्पर्शी प्रसग वे ही हैं जो प्रेमियो को वियुक्त करने वाले हैं और जहाँ उस वियुक्ति का सहृदयता से निदर्शन किया गया है। पहला मार्मिक प्रसग तो पुहुपावती नगरी से निर्दोष माधवानल का निष्कासन ही है, बड़े आश्चर्य की बात है कि इतना बड़ा शास्त्रज्ञ और कलाविद एक दिन निरपराध ही राज्य से बहिष्कृत कर दिया जाता है और सहानुभूति के दो आँसू तो दूर दो, शब्द भी कोई नहीं कहता। इसे आलम ने छोड दिया है। यदि इस अवसर पर किसी भी पात्र द्वारा माधवानल के प्रति सहानुभूति प्रकट की जाती तो सहृदयता की अच्छी रक्षा हो सकती थी। बोधा ने इस अवसर पर आलम की अपेक्षा अधिक सहृदयता का परिचय दिया है, स्वयं पुहुपावती नरेश गुणज्ञ होने के नाते लोकमत का आदर करते हुए भी अपने मुँह से देशनिकाले की आज्ञा नहीं देते। इसके बाद कवि ने कथा के मार्मिक स्थलो को पहचाना है और ठीक पहचाना है तथा उन अवसरो पर अच्छी और पूरी सहृदयता का परिचय दिया है। माधव ऐसा पडित और सगीतज्ञ तथा कला-प्रेमी जीव जब अत्यन्त अपमानपूर्ण रीति से कामावती नगरी से बाहर निकाल दिया जाता है उस समय स्थिति बड़ी करुण हो उठती है। इस अवसर पर कन्दला माधव के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करती है और अपनी सहृदयता का कोष खोल देती है। इसके बाद माधव का बार-बार राजाज्ञा के भय से विदा होने का प्रस्ताव रखने का प्रसग आता है जिस पर कन्दला बार-बार इस प्रकार की बातें कहती हैं—

तोहि चलत मोरे प्रान चलाहीं। पलक ओट आँखिनि अकुलाहीं॥

और माधव का यह कहना कि कर्म की रेखा पर किसी का बस नहीं चलता, उसकी वश्यता सभी को स्वीकार करनी होगी, मैं किसी और नगर मे रहूँगा फिर भाग्य मे हुआ तो मिलेंगे आदि बातें बहुत मार्मिक हैं जिसे सुनकर कन्दला अधीर हो उठी, माधव को अधिक काल तक रोकने की जो अभिलाषा थी वह जैसे कुठित हो गई। फिर भी उसने सारे क्षीण होते हुए मनोबल को सचित कर एक रात और रुकने की प्रार्थना की। यह प्रसग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है। इसे भी कवि ने सक्षेप मे ही लिखा है। माधव उस रात रुक जाता है किन्तु एक रात की बिसात ही कितनी? वह एक क्षण की भाँति बीत जाती है और पोथी-पोथी बाँध बीणा कधे पर ले माधव चलने को फिर तैयार हो जाता है। कन्दला ने इतनी बार रोका, कुछ दिन के लिए, कुछ घडियो के लिये पर उसकी इच्छा सतत यही थी कि माधव उसे छोडकर जाय ही नहीं। यह मनोदशा कितनी सुन्दर और सूक्ष्म है और साथ ही हृदयस्पर्शिणी भी जिसमे प्रिय को जाने देने का तो विचार ही नहीं है किन्तु दिन और घडियाँ बतला-बतला कर उसे रोका जाता है। अतिम बार कामकन्दला माधव की भुजा पकड लेती है और आज कल तो क्या एक पल के वियोग का भी निषेध करती है। यह निषेध और वर्जना जिन शब्दो मे है उनकी मार्मिकता कुछ व्याख्या-सापेक्ष नहीं। वह कहती है—

हे प्रियतम ! अब मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी भला यह कौन सी रीति है कि तुम मेरा मन मुग्ध करके चले जा रहे हो। तुम मेरे जीते जी 'पर-भूमि' नहीं जा सकते। हे प्रिय, अभी तो अपना नया प्रेम है यदि तुम जाने को ही कृतसंकल्प हो तो हमें अर्जलिदान देकर जा सकते हो। ऐसी कठोर और हृदय को खंड खंड कर देने वाली बात साधारण सुनने वाला नहीं सुन सकता फिर भला माधव के दिल पर क्या गुजरी होगी इसका अनुभव किया जा सकता है। कन्दला कहती चली जाती है और माधव निरुत्तर हो सुनता चला जाता है। यह प्रसंग ही ऐसा था जिस पर कवि का कुछ अधिक कहने की अपेक्षा थी। प्रबन्ध के नायक और नायिका का मिलन-सुख अभी पूर्ण भी न हो पाया था कि निरवधि वियोग आ पहुँचा। भला प्रणयी हृदय क्योंकर भग्न न होता ? यहाँ पर विरह की व्याप्ति तो दोनों पक्षों में है परन्तु कन्दला में अपेक्षाकृत अधिक है। उसमें अधिक वाचालता और प्रगल्भता है। माधव पुरुष होते हुए भी संयत और गम्भीर है, कन्दला स्त्री होते हुए भी अधिक वाचाल और अधीर है। कन्दला माधव की बाँह छोड़ने को तैयार न थी, माधव में बाँह छुड़ाकर चल देने की सामर्थ्य न थी। दोनों की मनोदशा का यह चित्र कैसा जीवंत है। माधव का जाना अनिवार्य और अटल देख-समझ कर एक सखी आकर उसकी बाँह छुड़ा देती है और वह चल देता है। बाँह छूटते ही कन्दला मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़ती है एक सखी आकर उसे अँकवार (गोद) में उठा लेती है और सेज पर लिटा देती है। यहीं पर कुछ विस्तार से पहले कामकन्दला का फिर माधवानल का विरह वर्णित हुआ है। ये प्रसंग निर्बाधरूप से एक पर एक आए हैं और सबके सब प्रबन्ध में मर्मस्पर्शिता लाने वाले हैं। इसी प्रकार और भी अनेक मार्मिक प्रसंग हैं जैसे नाना प्रकार से कन्दला का विरहोपचार या प्राकृतिक उपकरणों द्वारा कन्दला की उद्दीप्त विरह वेदना, माधव का कन्दला के वियोग में वन-वन भटकना, मनक और उच्छ्‌वासों से विकल हो अश्रु वर्षा करना, उसकी विरहाग्नि उसकी प्राणों की बेचैनी आदि का वर्णन। माधव का यह विरह वर्णन अत्यन्त हृदयद्रावक है जो अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण जहाँ एक ओर ऊहात्मक हो उठा है वहाँ दूसरी ओर दग्ध मांस और चाम की चर्चा के कारण फारसी प्रभावापन्न भी हो उठा है। कन्दला के विरह वर्णन में भी यही बात मिलती है जहाँ कवि ने इस प्रकार का वर्णन किया है कि साँस लेते समय उसका शरीर हिल हिल उठता है, उसके शरीर में रक्त नहीं रह गया है, शरीर पीले पत्ते की तरह हो गया है और अधीरता के कारण सतत काँपता रहता है तथा हवा का झोंका सहने में भी वह असमर्थ है आदि। विरह के ये वर्णन शैली की दृष्टि से सूफी प्रभावापन्न कवियों जायसी आदि द्वारा वर्णित विरह के मेल में हैं, हाँ आलम ने उनकी तरह 'बारहमासा' नहीं लिखा है जिसका कारण वृत्ति की स्वच्छन्दता ही है। माधव के विरह में भी प्रेम की जो अनन्यता है वह देखने की चीज है, वही विरह को इतना प्रभावपूर्ण बनाये हुए है। भूखे-प्यासे विरही माधव की उज्जयिनी पहुँचने पर जो दशा चित्रित की गई है वह अत्यन्त हृदयद्राविनी है। उससे बोलते नहीं बनता, वह अत्यन्त कृशकाय हो गया है, आँखें नीची किये केवल लम्बी आहें भरता रहता है। बड़ी मुश्किल के बाद जब बोल निकलते हैं तो हिचकियों के कारण वह पूरी बात भी नहीं कर पाता। उसकी पीड़ा ऐसी थी जो दूसरों को शीघ्र ही व्याप्त हो जाती थी। माधव जब विक्रम से आत्मदशा निवेदन करता है तो भी हम उसकी परिस्थिति

का अत्यन्त करुण चित्र उपस्थित हुआ पाते हैं। राजा विक्रम का चितारोहण, पुनर्जीवन प्राप्त करने के अनन्तर कन्दला के विक्रम के प्रति कृतज्ञता ज्ञापक कथन आदि अन्य मर्मस्पर्शी स्थल हैं जहाँ कवि ने पूरी सहृदयता का परिचय दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि माधवानल प्रबन्ध में जितने भी मार्मिक स्थल हैं उनका सम्बन्ध माधव और कन्दला के वियोग से ही है। परम प्रेमियों के संयोग-वियोग की यह कथा है, ऐसी कथा में हृदय को हिला देने वाले वियोग-परक प्रसंग यदि मार्मिक न होंगे तो और कौन से प्रसंग मार्मिक हो सकते हैं ? एक बात जो इन मार्मिक वर्णनाओं में लक्षित करने की है वह यह कि अनेक स्थलों पर ये विरह वर्णन सूफियों की शैली का विरह वर्णन हो गया है। इसमें बहुत कुछ वही वेदना, वही रंग-ढंग देखने को मिलता है जो जायसी आदि में दिखाई देता है। कहीं-कहीं अतिशयोक्तियाँ, वैसी ही ऊहाएं प्रस्तुत की गई हैं और फारसी शैली की रक्त मांस मज्जा वाली वीभत्स दृश्यावली भी उपस्थित की गई है।

रस और भाव—यह मुख्यतः वियोग शृङ्गार का प्रबन्ध है जिसकी चर्चा मार्मिक स्थलों के वर्णन के अन्तर्गत ऊपर की गई है, इसकी चर्चा प्रस्तुत अध्याय के पाँचवें खण्ड में भी देखी जा सकती है। साथ-साथ संयोग शृङ्गार के भी प्रसंग हैं जैसे कामसेन द्वारा निष्कासित होने पर कदला के भवन में माधव का कदला से जो मिलन होता है वह अथवा कथा के अन्त में युद्ध आदि के उपरान्त संयोग का यह जो दूसरा प्रसंग है इसका वर्णन आलम ने नहीं किया है। बड़े-बड़े उद्योगों के परिणाम स्वरूप जो मिलन होता है उसके आनन्द और उल्लास की विवृति में कवि प्रवृत्त नहीं हुआ है। वहाँ पर कवि जाने क्यों काव्य को शीघ्र समाप्त करने के फेर में पड़ गया है। फल-प्राप्ति स्वरूप यदि कवि ने माधव और कन्दला के संयोग-सुख या मिलन-उल्लास का वर्णन किया होता तो काव्य की समाप्ति अधिक सुखद और सफल हो सकती थी। जो मिलन और संभोग अवैध या गुप्त रूप से कन्दला के भवन में वर्णित हुआ है उसमें संभोग शृङ्गार का उत्तान रूप सामने लाया गया है, वहाँ शुद्ध कामुकता के ही दर्शन होते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि कामुकता पुरुष में कम और स्त्री में अधिक दिखलाई गई है। कन्दला की वाणी में यह कामुकता निर्लज्जता का रूप धारण कर लेती है, उसमें संभोग-वासना पर्याप्त तीव्र दिखाई गई है। लज्जा या संकोच नाम की चीज उसके पास नहीं है। वह स्पष्ट निवेदन करती है कि आप मुझे कुछ प्रेम कथाएँ और सुनाएँ और मेरा कामाग्नि-जन्य संताप नष्ट करें। बस संयोग शृङ्गार का इतना ही वर्णन माधवानल प्रबन्ध में प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि वियोग के समान वह काव्य में व्यापक रूप में प्रधानता से प्राप्त नहीं होता तथा उसका जो भी वर्णन किया गया है उसमें ऐन्द्रिक संभोग बहुत कम है, उसकी तैयारी बहुत अधिक है और उस संभोग की उत्कट लालसा भी बहुत दिखाई गई है तथा यह लालसा विद्यमान तो उभय पक्षों में है पर स्त्री पक्ष में प्रबलता से दिखाई गई है। संभोग वर्णन का यह संक्षिप्त किन्तु सरस मानस पक्ष पर्याप्त उत्तम बन पड़ा है। यह ठीक ही हुआ है कि संभोग व्यापार की अनौचित्य वर्णना में आलम बोधा की तरह प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

रस की दृष्टि से अन्य रस जो इस काव्य में मिलते हैं वे हैं वीर, रौद्र और वीभत्स। आलम ने वीभत्स रस के चित्र प्रस्तुत किये हैं भयानक रस के नहीं जैसा कि डा० हरिकान्त

श्रीवास्तव ने लिखा है।[1] इन रसों का परिपाक 'युद्ध-खण्ड' के युद्ध वर्णन में हुआ है। युद्ध के डंके पर जब चोट होती है, वीरों का उत्साह थमता नहीं, उधर कायरों में विपरीत भाव की जागृति होती है। सांग, सेल, परसु आदि की चमक और नाना शस्त्रास्त्रों की झनझनाहट तथा झांझ, मारु आदि रण वाद्यों का नाद सुनकर धीर-वीर पुलकित हो उठते हैं। युद्ध शुरू हुआ और सूर-वीर सिंह के समान उत्साह प्रदर्शित करने लगे। रण का नाद सुनकर कामावती के लोग रो पड़े और प्रजा जिधर-तिधर भागने लगी। राजा कामसेन ने अपने शूरवीरों को जब उत्साह दिलाया तब जो घर में छिपे थे वे भी सोत्साह बाहर आ गए। सेना युद्ध के लिए चलती है, रानियाँ धौलहर पर चढ़कर उस दृश्य को देखती हैं। उन क्षत्राणियों के हृदय में कोई विषाद नहीं, आनन्द और स्फूर्ति की शिखा जल उठती है। वे अपने स्वामी के बल और पौरुष के दीप्त स्वरूप को देख हर्षित होती हैं और उनकी कल्याण कामना करती हैं। स्त्रियों में यह आनन्द भावना कितनी पवित्र है—

> अचरज सूरमा देखि कैं, वलो अनंद करेइ।
> दुहूँ विधि माँग सिंदुर भरि, हाथ नारियर लेइ॥

कवि ने इस युद्ध वर्णन में सामूहिक उत्साह का चित्रण अधिक किया है। प्रमुख वीरों की वीरता का अलग-अलग चित्रण नहीं किया है। दोनों तरफ से युद्ध शुरू हो जाता है और उसमें वीरों का उत्साह देखने योग्य होता है। यह वर्णन सामान्यतः अच्छा है और परम्परागत शैली में होने हुए भी जीवन है। वीर रस की दृष्टि से उत्साह स्थायी भाव का निदर्शन अच्छी तरह हुआ है जिससे वीर रस की सृष्टि निर्बाध रूप में होती गई है। युद्ध के बाद शुण्ड-खण्डित हाथियों के चीत्कार का, मुण्ड-खण्डित वीरों का, पहाड़ की तरह धरती पर डले हुए गयन्दों का, रक्त के नाले बहने का वर्णन किया गया है, इतना ही नहीं वीभत्स के आलम्बन रूप इन जुगुप्सा-जनक वस्तुओं के वर्णन तक ही कवि नहीं रह गया है, उसने ऐसे उद्दीपक व्यापारों का भी वर्णन किया है जो जुगुप्सा की भावना को अत्यन्त तीव्रतर कर देते हैं। उदाहरण के लिए मुंडों को बीन बीन कर शिव जी का माला गूँथना, जोगिनी और भूतनी का लोहू पीना, मांस खाना और लोथों को ले लेकर दौड़ना, हड्डियों और खप्परों से करो-करो (कुरेद-कुरेद) कर मांस खाना और हर्षित होना, शृगालों का मांस नोचना आदि ऐसे व्यापार हैं जो वीभत्स रस की अविलम्ब सृष्टि कर देते हैं।

प्रबन्ध के अन्तर्गत आने वाले कुछ भाव भी देखने योग्य हैं उदाहरण के लिए शोक, क्रोध, चिंता, भाग्यवादिता, दया, करुणा, सहानुभूति, आदर, सम्मान, सद्भाव, पश्चात्ताप, दम्भ, अहंकार आदि। यह स्वाभाविक है कि एक लम्बे प्रबन्ध में नाना मानव मनस्थितियों के निदर्शक भाव जगह-जगह आयें। प्रबन्ध का वर्ण्य और उसकी वस्तु में जितनी व्यापकता होगी भाव-व्यंजना उतनी ही विविध होगी। प्रस्तुत प्रबन्ध में रस या भाव दृष्टि से वर्ण्य या वस्तु सीमित है, भले ही घटनावली, वर्णनों, सम्वादों, प्रसंगों तथा कवि की प्रबन्ध शैली के कारण कथा ने एक विशद प्रबन्ध का रूप धारण कर लिया हो। फिर भी उपरिनिर्दिष्ट जिन भावों की व्यंजना इस काव्य में हुई है उनमें पर्याप्त स्वाभाविकता और मार्मिकता है।

---

[1] भारतीय प्रेमाख्यान काव्य: पृ० ४७५

इन नाना मनोभावो का चित्रण कर कवि ने मनुष्य के अन्तर्जगत मे अपनी अच्छी पैठ का परिचय दिया है। भाव लोक के इन चित्रो को प्रस्तुत कर कवि ने एक ओर जहाँ अपनी सहृदयता दिखलाई है वही चरित्रो के चित्रण की क्षमता भी और प्रबन्ध मे सरसता उत्पन्न करने की योग्यता भी। वर्णनो और सवादो के साथ साथ कथा के मार्मिक प्रसगो तक अपनी रस सत्ता की गति दिखलाकर कवि ने कुशल प्रबन्धकार होने का परिचय दिया है।

चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान—प्रस्तुत प्रबन्ध मे मुख्य पात्र चार है—माधवानल, कामकदला, काममेन और राजा विक्रम। पुहुपावती नरेश राजा गोपीचद, राजा विक्रम का दूत श्रीपति तथा स्वर्गीय पात्र वैताल तीन गौण पात्र हैं जिनका महत्व मात्र इसी बात मे है कि इनके द्वारा प्रबन्ध की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं। ऐसे भी बहुतेरे मात्र हैं जो थोडी थोडी देर के लिए आवश्यकता पडने पर आते है जैसे पुहुपावती नगरी का वह दम्पति युगल जिनके बीच माधव की वीणा का नाद कलह की सृष्टि करता है, राजा कामसेन की सभा का पौरिया, राजा विक्रम की दासी ज्ञानवती जो विरही माधवानल का पता लगाती है और राजा कामसेन की रानी जो दूत को बहुत बढ-बढ कर बातें करते हुए तथा अपने पति को अपमानित होते देख दूत के द्वारा विक्रम को युद्ध का निमत्रण देती है। इनके अतिरिक्त भी पात्रो का एक चौथा और बहुत बडा वर्ग है जो यथा स्थान प्रबन्ध में वर्णित हुआ है और जिसका अपना महत्व है। इस वर्ग मे आने वाले चरित्र असख्य है किन्तु उनका कोई स्वतत्र व्यक्तित्व नही। वह एक भीड या समूह है जिसमे व्यक्ति लुप्त हो जाता है। इन सामूहिक चरित्रो मे पुहुपावती के क्षुब्ध नागरिक हैं, जलाशय पर पानी भरने वाली पनिहारिनें तथा अन्य पुरनारियाँ हैं जो माधवानल की नादविद्या पर मुग्ध है, गोपीचन्द राजा की चेरियाँ हैं जिन पर माधव की नादविद्या की परीक्षा ली जाती है, कामावती के सम्पन्न नागरिक और सगीत प्रेमी सभाजन हैं, कदला की बहुसख्यक दयालु और सेवापरायण दासियाँ और सहेलियाँ हैं, उज्जयिनी के सपन्न व्यापारी, आमोद प्रमोद-प्रिय नागरिक, सहानुभूतिशील कर्मचारी वर्ग और राज भक्त प्रजा है। इसी वर्ग मे वे बहुसख्यक सैनिक भी हैं—कामावती और उज्जयिनी के—जो अपने-अपने राजा के लिये धन-वैभव, पुत्र-कलत्र सभी का मोह छोड युद्धभूमि मे कद जाते हैं और वीरगति प्राप्त करते हैं। पात्रो की यह विपुल सख्या भी प्रस्तुत काव्य के प्रबन्धात्मकता का ही सकेत करने वाली है।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध मे कवि ने मुख्य रूप से चार और गौण रूप से अन्य अनेकानेक वैयक्तिक और सामूहिक चरित्रो की योजना की है। सभी महत्वपूर्ण पात्रो के व्यक्तित्व को समान रूप से वे प्रस्फुटित कर सके हैं। गौण पात्र भी अपने योगदान के ही अनुपात मे उभरे या दबे हुए मिलेंगे। सामूहिक आचरण के भी जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वे अस्वाभाविक और अनगढ नही हैं। प्राचीन भारतीय जीवन से गृहीत होने के कारण इस प्रबन्ध के पात्रो का व्यक्तित्व ऋजु और सरल है, उसमे अधिक अन्तर्विरोध और जटिलता नही है। जो भी पात्र चित्रित हुए है अपने गुण दोषो के साथ सामने लाये गये हैं। सर्वगुण सम्पन्न या सर्वदोष मडित पात्र एक भी नही हैं। फलत. सभी पात्र मानव सुलभ विशेषताओ और सवेदनाओ से सपृक्त हैं। साथ ही साथ प्रबन्ध मे कई एक ऐसे भी प्रसग हैं जहाँ पात्रो

का, उनकी मनोभावना का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेपण किया जा सका है उदाहरण के रूप मे केवल एक ही स्थल यहाँ दिया जा रहा है।

यह प्रसग है कामावती नरेश काममेन से सम्बन्धित। राजा कामसेन पडितो और गुणियो का सम्मान करता था, दान और पुरस्कार देने मे उदार था। वह कला का बहुत बडा ज्ञाता न सही, कला-प्रेमी और रसिक अवश्य था परन्तु वह स्वाभिमानी और दुर्वचन बोलने वाला, तमोगुणी व्यक्ति भी था जो क्रोध के वश मे ही सतुलन खो देता था और किये-कराये पर पानी फेर देता था। कहाँ तो उसके द्वारा किया गया माधवानल का अभूत पूर्व मानसम्मान और कहाँ उसकी ये वचनावली—

> क्रोधवत राजा उठि कहै। ढोठ विप्र चुप क्यो नहिं रहै॥
> मारौं खग टूक द्वै करौ। बिप्रघात अपजस तो डरौ॥
> जो तोहिं इहाँ बहुरि सुनि पाऊँ। खाल खैंचि करि भूस भराऊँ॥

परन्तु ब्राह्मण के शाप मे वह डरता था क्योंकि माधवानल जब शाप देने की धमकी देता है तब कामसेन सोच म पड जाता है—यदि मैं इस ब्राह्मण को मारता हूँ तो मैं स्वर्ग से पतित हो जाऊँगा, अपयश का भागी होऊँगा, लोग मुझे हत्यारा कहेंगे, कोढी बन जाऊँगा, तीर्थाटन और कोटि यज्ञ करने से भी पाप-मुक्त न हो सकूँगा। माधव ने ये ही धमकियाँ दी थी और वह इन्ही की चिन्ता मे पड जाता है—

> सुनि राजा कुछ कहन न पारै। क्रोधवत मनही मैं विचारै॥

उधर क्रोध और अपमान मे प्रतिकार की भावनाएँ लहरें मार रही हैं, इधर ब्रह्म हत्या और ब्रह्मशाप का भय उसके रक्त को सुखाये डाल रहा है। अन्तर्द्वन्द्व का इससे अधिक सुन्दर और मनोवैज्ञानिक चित्र आलम दूसरा नही खीच सके है। ब्राह्मण को देश-निकाले का दड देकर भी काममेन सन्तुष्ट नही हैं। वह मनस्ताप की ज्वाला मे दग्ध हो रहा है। ब्राह्मण माधव का भरी सभा मे उसमे यह कहना कि तुम्हारे ऐसे कितने राजा मेरे चरण धोकर पिया करते हैं उसके लिये जीवन-व्यापी अपमान का कारण बन जाता है। भरी सभा मे उसका यह अपमान सर्पदश या हृदय म धँसी हुई वाण की अनी की तरह उसे सालता है जिसकी पीडा से वह जल्दी मुक्त नही हो पाता। काममेन का यह मनस्ताप बहुत ही स्वाभाविक रूप मे दिखाया गया है जिसमे क्षणिक आवेश मे होने वाली गलती का उसे बहुत बडा दण्ड भुगतना पड रहा है। वह सोचता है मुझे धन का लोभ नही, गुणियो का मैं पूरा आदर और सम्मान करता हूँ, दान और पुरस्कार देने मे मैं कृपणता नहीं करता और फिर भी एक दूर देश का ब्राह्मण मेरा इतना अपमान कर गया। भाग्य ही तो है और क्या? अपने गुणो का ब्राह्मण द्वारा किये गये अपमान से जब वह मेल बैठाता है तो मेल बैठता ही नही। उसे जरा सी चूक के कारण बडी आत्म-ग्लानि होती है। ऐसी मनस्थिति मे कर्म रेख की प्रबलता ही उसे धीरज दे पाती है। मानलोक मे इस चित्र की मनोवैज्ञानिकता असदिग्ध है।

काव्य-कोटि—माधवानल कामकदला कथानक की दृष्टि से एक विशद प्रबन्ध है। किसी महत् उद्देश्य के अभाव मे आप उसे महाकाव्य भले ही न कहे परन्तु एक अर्थ विशेष

को ओर एक उद्देश्य विशेष को लेकर चलने के कारण हम इसे एकार्थ-काव्य अर्थात एक बड़ा प्रबन्ध कह सकते हैं। खण्ड काव्य का वृत्त छोटा होता है और उसमे अवातर वृत्त नहीं होते जैसे श्याम-सनेही किन्तु इस प्रबन्ध मे अवान्तर प्रसगो की भी विनियोजना है। घटनाएँ ही इतनी हैं जो कथा को विशदता प्रदान करती हैं। वर्णना का आधिक्य और विविधता भी इसे 'प्रबन्ध-काव्य' ही कहने को बाध्य करती हैं। कथा के बीच-बीच मे जो एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के वर्णन मिलते हैं, स्थान-स्थान पर ठहरने आदि के ब्यौरे दिए गए हैं तथा छोटी-बडी विविध घटनाएँ वर्णित हुई हैं उनके कारण यह काव्य कुछ दीर्घकालीन अवधि को अपने मे समेटे हुए हैं। माधव का विरह, कदला का विरह, ऋतुओ का बीतना, युद्ध, माधव का जगह्-जगह ठहरना, इधर से उधर सदेश भेजना आदि इतने विविध प्रसग उक्त कथा मे जोड दिये गये हैं कि रचना प्रबन्ध काव्य सी लगती है, उसमे एकदेशीयता नहीं रह जाती। वह एक उद्देश्य विशेष को लेकर लिखा जाने वाला विस्तृत प्रबन्ध काव्य या एकार्थ काव्य हो गया है।

कवि का प्रस्तुत प्रबध के लिखने का उद्देश्य—प्रस्तुत रचना मे कवि का उद्देश्य जीवन मे प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करना रहा है परन्तु कवि ने अपनी प्रेम सम्बन्धी विचार-धारा के प्रतिपादन के लिए इसे किसी सिद्धान्त ग्रन्थ का रूप नहीं दिया है। उसने प्रसिद्ध प्रेमियो माधव और कदला की ऐसी प्रेम कथा चुनी है जिसके वाचन से ही सहृदय हृदय द्रवीभूत हुए बिना न रहेगा और उसके हृदय पर वर्णित प्रेमियो के प्रेम का गाढा रग भी चढ जायगा। प्रेम यदि सच्चा है तो कुल और जाति का बधन नहीं मानता, लोक परलोक की उसमे परवाह नहीं की जाती, मन जिसका हो जाता है उसी का हो रहता है, प्रेम के बन्धन को तोडने की मजाल ससार की बडी से बडी शक्ति मे भी नहीं परन्तु हाँ, वह प्रेम होता बहुत कठिन है। कठिन इस अर्थ मे कि उसमे प्राणान्तक वेदना सहनी पडती है, वियोग होता है, असह्य सताप मिलता है। जो इन्हे झेल सकता हो वही इस अमृत पथ का पथिक कहा जा सकता है। माधव और कदला प्रेम की नाना परीक्षाओं को पार कर ऐसे ही प्रेमी सिद्ध होते हैं। उनका प्रेम कुल और जाति के बन्धनो को तोडकर चलने वाला है। एक ब्राह्मण और वारवनिता मे भी प्रेम सभव है। उनकी प्रेम-निष्ठा मे कुल, जाति, धर्म, पेशा सब कुछ पवित्र हो जाता है। जहा प्रेम मे निष्ठा नहीं वहाँ प्रेम एक मजाक और छिछली रसिकता से अधिक कुछ नहीं। वेश्या से महापडित माधवानल का प्रेम दिखलाकर कवि ने प्रेम की स्वच्छन्दता का ही परिचय दिया है। सच्चा प्रेम निर्बन्ध होता है, उसमे कैसी लज्जा और किसकी लज्जा? इस रचना मे प्रेम का स्वरूप भी सूफियाना नहीं है। पुरुष मे प्रेम का आधिक्य चित्रित नहीं किया गया है और न प्रेमियो को ईश्वर का ही रूप दिया गया है। प्रेम का रूप बहुत कुछ सम है, यदि प्रेम के आधिक्य का ही निर्णय करना पडेगा तो निर्णय कदला के ही पक्ष मे जायेगा। इस प्रकार प्रेम का भारतीय स्वरूप ही इस काव्य मे अकित मिलेगा।

बोधा कृत विरह-वारीश या माधवानल-कामकन्दला

बोधा के माधवानल प्रबन्ध का दूसरा नाम 'विरह वारीश' भी है। इस ग्रन्थ के

आरम्भ मे कवि ने गणेश, श्रीकृष्ण, शिव और सूर्य की वन्दना की है तथा कथावस्तु का निर्देश किया है। स्वय कवि के कथनानुसार 'यह रचना कवि ने अपनी महबूबा की स्मृति मे ऊब डूब होते हुए विरह की महादशा मे लिपिबद्ध की है। इसी कारण इसमे शैथिल्य भी मिलेगा और विशेष अर्थवत्ता भी न मिलेगी, परन्तु फिर भी जो सज्जन होंगे वे इसे पढकर अवश्य सुख पाएँगे।' बोधा ने अपने आश्रयदाता पन्ना नरेश महाराज खेतसिंह का और अपनी निजी प्रीति का सक्षिप्त परिचय एव वृत्त प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इस प्रबन्ध की रचना के पीछे उनकी प्रेमिका सुभान की प्रेरणा थी। रचना सवाद या प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है जिसमे प्रेम को लेकर सुभान नाना प्रश्न करती है और माधव उत्तर देते हैं। इसके बाद उसकी समस्त जिज्ञासाओं के समाधान के लिए वे माधव और कन्दला नामक प्रसिद्ध प्रेमीयुगल की परम्परा प्राप्त कथा का विस्तृत वर्णन करते हैं।

कथा—कथा के प्रमुख पात्रों माधव, कामकन्दला और लीलावती के पूर्व जन्म का वृत्त प्रस्तुत करते हुए कवि पुहुपावती नगरी से कथा का आरम्भ करता है। माधव और लीलावती का शम्भुवाटिका मे प्रथम मिलन और विष्णुदास पडित की पाठशाला मे सहाध्ययन और साहचर्य प्रणय मे परिणत हो जाता है। वे गुप्त रूप मे मिलने और प्रेम-क्रीडा करने लगते हैं। तरुण माधव का कामदेव सा रूप समस्त पुरनारियो को मोहित कर लेता है जिसके परिणाम स्वरूप लोकमत माधव के विरुद्ध हो जाता है और उसे पुहुपावती नगरी छोडनी पडती है। लीलावती के विरह मे जगल-जगल भटकता हुआ माधव बाँधोगढ और कामदगिरि पहुँचता है। वृक्षों और वनस्पतियों तथा पशुपक्षियों से अपनी विरह व्यथा कहता हुआ माधव कामावती नगरी पहुँचता है। बाँधोगढ से ही एक सुवा उसका हितैषी और सहायक होकर उसका साथ देता है। कामावती के नागरिक उसके रूप-गुण के कारण उसका सम्मान करते हैं और एक बरई (तमोली) उसे अपना मित्र और अतिथि भी बना लेता है। अपने सगीत कला नैपुण्य के कारण वह राजसभा मे सम्मानित होता है, वहीं कन्दला नाम की नर्तकी से भी उसका प्रेम हो जाता है परन्तु वह राजा कामसेन और उसकी सभा को कला के परखने मे मूर्ख और अज्ञ बतलाने के अपराध मे कामावती से भी निष्कासित कर दिया जाता है। निष्कासित होने के बाद भी कन्दला उसे बारह दिन तक अपने भवन मे रोक रखती है जहाँ नादविद्या के आदान प्रदान के साथ-साथ दोनो रतिक्रीडा मे अहर्निश निमग्न रहते हैं। अन्त मे एक दिन माधव कन्दला के भवन मे एक पत्र छोडकर और अपने बरई मित्र से आज्ञा लेकर कामावती से विदा हो जाता है और अपना दुख उस सुवे पर प्रकट करता हुआ फिर दर-दर कदला के विरह मे भटकता हुआ उज्जैन पहुँचता है जहाँ महेशमठ के समीप मृगचर्म पडा देख उसे कन्दला की उन्मादकारिणी स्मृति हो आती है। उसकी पीडा को कम करने के लिए सुवा कन्दला के पास जाता है, उसे माधव का सन्देश देकर उसका कुशल समाचार ले आता है। इधर माधव की विरह व्यथा की गाथा सुनकर उज्जयिनी नरेश विक्रम सेना लेकर कामावती नगरी की ओर चल पडते है। नर्तकी कन्दला के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए जब राजा विक्रम झूठ ही विरही माधव की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं तो कन्दला प्राण त्याग देती है और कन्दला की मृत्यु की सूचना पाकर उधर माधव [illegible] ...प-विगलित विक्रम जीने जो जल मरने के लिए चिता तैयार

कराता है। स्वर्ग के देवता भी इस दारुण दृश्य को देख नहीं सकते और यम-प्रेरित वैताल द्वारा लाए गए दो बूंद अमृत से माधव और कन्दला पुनर्जीवित हो जाते है। इसके बाद विक्रम वैताल द्वारा कामसेन के पास कन्दला को समर्पित करने का प्रस्ताव भेजते हैं परन्तु कामसेन कन्दला को समर्पित करने की अपेक्षा युद्ध करना स्वीकार करता है। दिनभर के युद्ध के बाद भी जय-पराजय का निश्चय न हो सकने के कारण विक्रम और कामसेन के पक्ष के असाधारण वीर योद्धाओ रनजोर और मेढामल्ल के बीच द्वंद्व युद्ध होता है। विकट युद्ध के पश्चात् विक्रम के पक्ष का वीर विजयी होता है और कामसेन पूर्ण सद्भाव तथा आदर सत्कार के साथ कन्दला को समर्पित कर देते हैं। अब माधव सुख-पूर्वक भोग करता हुआ कन्दला के साथ रहने लगता है। उधर वर्ष भर से अधिक लीलावती माधव के वियोग मे तडपती रहती है। इधर एक दिन स्वप्न मे लीलावती को देख माधव भी विकल हो उठता है। कन्दला अपने प्राणप्रिय का दुःख दूर करने के लिए राजा विक्रम और कामसेन की सहायता उपलब्ध करती है तथा पुहुपावती-नरेश गोविन्दचन्द भी माधव का स्वागत करते हैं। माधव और लीलावती का विवाह सोत्साह सम्पन्न होता है तथा लीलावती और कामकन्दला सुखपूर्वक माधव के साथ रहने लगती है।

वस्तु-विवेचन—उक्त कथा शत-शत रोचक प्रसगो, विवरणों और वर्णनो के साथ विस्तार पूर्वक बोधा द्वारा अत्यन्त सरस रीति से कही गई है। 'विरह-वारीश' की कथा का आधार 'सिंहासन द्वात्रिंशतिका' की २१ वी कहानी है जिसे मधुरोचवली नाम की एक पुतली सुनाती है। इस ओर स्वय बोधा ने ही दूसरे तरग मे सकेत किया है। बोधा का प्रबन्ध उक्त कथा का उल्थामात्र नही है, उसमें बोधा कवि की निजी भावना और कल्पना का योग पर्याप्त है। जैसा कि बोधा स्वय भी कहते हैं—'**कछु अपनी कछु परकृति चोरौं, जथा सकति करि अच्छर जोरौं।**' नख-शिख, बारहमासा, विरह, युद्ध, राग-रागिनी और नृत्य आदि के वर्णन तथा अनेकानेक छोटे-छोटे प्रसग कवि की मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं और कथा-कथन की शैली, सवाद आदि में भी बोधा का स्वतन्त्र कृतित्व देखा जा सकता है। माधवानल की कथा ऐसी है जिसे कहने मे बोधा को अपने हृदय की प्रेम-व्यथा का प्रगाढ़ रग घोलने का पूरा अवसर मिला है। इस प्रबन्ध की विशदता, वस्तु-विस्तार, वर्णनाधिक्य आदि को देखकर इसे महत्प्रयत्न कहने मे कोई बाधा नही है। सगीत-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, लोकज्ञान आदि सम्बन्धिनी कवि की विस्तृत जानकारी तथा नाना परिस्थितियो और घटनाओ की विनियोजना के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध सभी दृष्टियो से पर्याप्त उत्कर्षपूर्ण बन पड़ा है।

प्रेमी और प्रेमिका बोधा और सुभान की प्रश्नोत्तरी के रूप मे यह प्रबन्ध लिखा गया है। सुभान प्रेम से सम्बन्धित नाना प्रकार के प्रश्न करती है और इन्ही प्रश्नो का उत्तर देता हुआ बोधा माधव और कदला के प्रेम की लम्बी कथा कह जाता है। कथा-कथन की सवाद या प्रश्नोत्तर शैली का निर्वाह ठीक रूप से आद्यन्त नही हो सका है क्योकि बीच-बीच मे केवल एकाध बार ही सुभान कुछ पूछती है और बोधा उसका समाधान करके आगे बढ जाते हैं। बोधा की इस प्रेम-कथा को सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की कोटि मे नहीं रक्खा जा सकता क्योंकि एक तो यह प्रेमोन्माद की व्यंजना का लक्ष्य लेकर चलने वाली लौकिक गाथा है जिसका कोई अलौकिक अभिप्राय नही, कथागत लौकिक प्रेम व्यजना को रहस्यमय (Mystry)

नहीं किया गया है और न प्रेम की कथा को किसी रूपक (Allegory) में अध्यवसित ही किया गया है, दूसरे इसकी कथा के आरम्भ का ढंग भी सूफियाना नहीं है जिसमें मुहम्मद साहब की स्तुति, शाहेवक्त की प्रशंसा आदि की गई हो। तीसरी बात यह है कि सूफी प्रेमाख्यान मात्र दोहा चौपाई छन्दों में लिखे गए हैं जब कि बोधा के प्रबन्ध में छन्दों की इतनी विविधता है कि यह प्रेमगाथा दोहा-चौपाई-छन्द प्रधान होते हुए भी शैली की दृष्टि से एकदम नवीन हो उठी है। इस प्रेम कथा में प्रेम और जीवन की भारतीय मर्यादाएँ पूर्णत सुरक्षित हैं। काव्य में वर्णित प्रेम सम या उभयपक्षीय है, एकपक्षीय नहीं—जितनी तड़प माधव में कदला या लीलावती के प्रति है उतनी ही तड़प कदला और लीलावती में भी माधव के लिए दिखलाई गई है। इसी प्रकार प्रेम के बीभत्स और रक्त-पाण चित्रों की विशेषत विरह प्रसंगों में एकान्त कमी मिलेगी। इस प्रकार इस काव्य का वातावरण, प्रेम पद्धति आदि सब कुछ भारतीय ही है, प्रभाव की बात मैं नहीं कहता। सूफी कवियों और फारसी शायरों का थोड़ा प्रभाव अवश्य है।

बोधा के प्रबन्ध की कथावस्तु ऋजु एव सरल है। कथा-नायक माधव के साथ-साथ कथा भी घूमती है। माधव जिधर-जिधर मुड़ता है उधर ही उधर कथा की धारा भी मुड़ती है। माधव के प्रणय सम्बन्ध में ही कथा का प्रारम्भ होता है और इसी में अन्त भी। प्रणय सम्बन्धों की सफलता में जो जो बाधाएँ पड़ती हैं वे ही सघर्ष की स्थितियाँ हैं—ऐसी स्थितियाँ कितनी ही बार आती हैं। जब माधव का प्रेम लीलावती में स्थापित हो जाता है तो पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्दचन्द का मन्त्री रघुदत्त और प्रजा माधव का विरोध करती है जिसका परिणाम होता है माधव का नगर-निष्कासन। स्थान स्थान पर भटकता हुआ माधव जब कामावती पहुँचता है और काममेन की सभा में नर्तकी कदला के रूप और नृत्य पर मुग्ध होता है तथा अपने सगीत से कदला को विमुग्ध और कामार्त्त बना देता है तो उसे राजा कामसेन का कोप सहना पड़ता है और कामावती नगरी से भी उसे निष्कासन दण्ड भुगतना पड़ता है। यह उसके जीवन का दूसरा प्रणय सम्बन्ध है और इसकी पूर्ति में भी असाधारण बाधाएँ सहनी पड़ती हैं। भटकते-भटकते वह उज्जैन पहुँचता है, वहाँ भी थोड़ी बहुत बाधाएँ आती ही हैं जैसे विक्रम द्वारा उसके प्रेम की परीक्षा आदि। यहीं से उन प्रयत्नों का आरम्भ होता है जिससे कथा वस्तु की सुखान्तता का आभास मिलने लगता है। चौथी और सबसे बड़ी बाधा है कामावती का राजा काममेन, जो स्वाभिमानी है और कदला को सहज अर्पित करने वाला नहीं। काममेन और विक्रम की सेनाओं में युद्ध होता है दोनों पराक्रमी हैं—यहीं पर उत्सुकता (Suspense) अपनी-चरम सीमा पर पहुँच जाती है। नहीं कहा जा सकता कि कौन विजयी होगा। दोनों दलों के दो वीरों के युद्ध में ही माधव की सफलता असफलता का निश्चय निहित रहता है। मदनमल्ल और रनजोर के द्वन्द्व-युद्ध में, उनके पात्र प्रतिघात में कथावस्तु अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचती है। रनजोर की विजय से माधव को सफलता निश्चित हो जाती है। कदला उसे प्राप्त होती है। यह कदला-प्रणय-प्रसंग इतने मनोयोग और विस्तारपूर्वक लिखा गया है कि पाठक लीलावती को भूलने सा लगता है किन्तु कवि की ओर से चूक नहीं होती। कंदला के साथ सुख भोग करते हुए माधव को लीलावती का स्मरण आता है—कदला अपने

प्रियतम के सुख को अपना सुख मानती है, उसे लीलावती के सौभाग्य से ईर्ष्या नहीं होती। वह भी एक बाधा सी पाठक को अनुमित होती है परन्तु काव्य पाठक आश्चर्यान्वित हो यह देखता रह जाता है कि किस प्रकार कदला स्वत लीलावती की प्राप्ति के लिये उद्यमशील होती है। वह राजा विक्रम को प्रेरित करती है, विक्रम, कामसेन और दोनो राज्यो की सेना सहित पुष्पावती को प्रस्थान करते हैं। राजा गोविन्दचन्द उभय राजाओ का सहर्ष स्वागत करते हैं। माधव अपने माता पिता से मिलकर उन्हे हर्ष पहुँचाता है। कदला का भी उसके घर मे सम्मान पूर्ण स्वागत होता है। गोविन्दचन्द की अनुमति से मत्री रघुदत्त अपनी कन्या का पाणिग्रहण माधव से करा देता है। वैवाहिक धूमधाम के बीच कथा की सुखद समाप्ति होती है।

सयोग (Coincidence) का भी इस काव्य की कथावस्तु मे एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उधर लीलावती बेचैन होता है इधर माधव को सपना आता है और वह लीलावती के विरह मे व्यग्र और विक्षिप्त हो उठता है। लीलावती की प्राप्ति के लिये यही बात एक प्रबल हेतु हो जाती है और इसी से माधव-कदला के मिलन सुख के अनन्तर भी कथा समाप्त न होकर आगे बढती है और लीलावती की प्राप्ति के बाद इस प्रेम-कथा का वृत्त पूरा हो जाता है।

माधवानल प्रबन्ध मे आधुनिक दृष्टि से अनेक अस्वाभाविकताएँ और अयथार्थताएँ हैं, जो आधुनिक युग के पाठक को अरुचिकर लगेंगी, अविश्वसनीय तो होगी ही—(१) यह कहना कि माधव पूर्व जन्म मे कामदेव था जिसने गोपियों को द्वापर मे सन्तप्त किया था, कदला कामदेव की स्त्री रति का ही कलियुगी सस्करण है और लीलावती द्वापर के बनारस पुरी के सुमन्त नामक एक कायस्थ की कन्या थी, (२) लीलावती की सखियों का माधव को लीलावती के घर ले जाना और विवाह के पूर्व ही उनकी कामकेलि का वर्णन (३) नगर की स्त्रियों का माधव के पीछे पड जाना (४) माधव का एक तोते से मिलना और उससे बात-चीत करना, सुवा का कदला के पास माधव का पत्र ले जाना और कदला से प्राप्त उत्तर ले आना (५) माधव का कामसेन की सगीत सभा के बाहर से ही यह बता देना कि मृदग बजाने वाले का अँगूठा मोम का है (६) कदला का राज सभा मे नृत्य का सौन्दर्य बिगडने के भय से कुचस्थल पर बैठे भ्रमर को सारे शरीर की वायु समेट कर कुचस्रोत से उसका त्याग करना और भ्रमर का उड जाना (७) कदला और माधव का ऐसा सगीत जिससे हवाएँ चल पडे, मशालें जल उठें, मेघ घुमड आएँ और बिखर जाएँ तथा काममिनियाँ कामोन्मत्त हो उठे, (८) कदला और माधव का एक दूसरे की मृत्यु का समाचार पाते ही मर जाना, (९) चिता पर चढने की तैयारी करते हुए विक्रम और एक अन्य युवा विप्र को देखकर यमराज का बैताल को भेजना, बैताल का शेषसुत को आवाहन करना और उनसे दो बूँद अमृत प्राप्त करना तथा उनकी सहायता से मृतक माधव और कदला का पुनर्जीवित हो उठना, (१०) कदला के वक्षस्थल पर हाथ रखने ही राजा कामसेन के मूर्छित हो जाने का वृतान्त और कदला द्वारा अपने हाथ पर अगार रखने के परिणामस्वरूप माधव के हाथ मे छाला पड जाना आदि बातें अस्वाभाविक, अयथार्थ और असम्भव लगती हैं। आज कवि ऐसी उपहास की सीमा पर उमडने घुमडने वाली बातें लिखने को तैयार नहीं किन्तु प्राचीन

कवियों ने ऐसी स्वतन्त्रता ली है। वह युग भी ऐसी बौद्धिकता और तर्कशीलता का न था। अपनी बात या सवेदना को आस्थावान और भोले पाठक के मन पर प्रभावशाली ढग से जमा देने के लिए भी ऐसी काल्पनिक बातों का सहारा लिया जाता था और इसे पंडित अथवा अपंडित कोई भी वर्ग हीन और बुरा नहीं समझता था। ऐसी दशा मे हम बोधा को इन प्रसगो के विन्यास के लिए बहुत दोषी नहीं ठहरा सकते किन्तु आधुनिक दृष्टि से ये बातें खटकती तो हैं ही।

वर्णन—प्रस्तुत काव्य की रमणीयता मे स्थान स्थान पर रखे गये वर्णनो का प्रमुख योग रहा है उदाहरण के लिए नगर वर्णन (पुष्पावती, कामावती, बांदोगढ, उज्जैन आदि), मार्ग की प्राकृतिक शोभा के यत्किंचिन वर्णन—कामदगिरि और मन्दाकिनी के उल्लेख, ऋतुओ के वर्णन, माधव-लीला-कदलादि के रूप सौन्दर्य का उनके नख-शिख का वर्णन, कदला के नृत्य-सगीत का वर्णन आदि। माधवानल प्रबन्ध मे बोधा ने प्रमुख पात्रो कृष्ण, लीलावती, माधव और कदला के रूप का वर्णन विशेष रूप से किया गया है जिसकी-चर्चा हमने इसी अध्याय के दूसरे खण्ड मे की है। विक्रमादित्य, कामसेन, सुवा, बरई, आदि अन्य पात्रों का रूप वर्णन नही मिलता। प्रमुख पात्रों के रूप के अधिकाश वर्णन राज-सभाओं के ही वर्णन के सदर्भ मे किये गये हैं, ये वर्णन कुछ परम्परागत पद्धति पर ही हैं। कोई विशेष नवीनता न होने हुए भी ये रूप वर्णन सपूर्ण काव्य के सौष्ठव को बढाने वाले हैं और चरित्रों के प्रभाव को भी पाठक के मन पर घनीभूत करने वाले हैं।

वैसे तो बोधा ने काव्य मे स्थान-स्थान पर रूप आदि का वर्णन किया है किन्तु एक जगह (८ वी तरग) उन्होंने जाति के आधार पर चार प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है—पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी और हस्तिनी। ये वर्णन उस समय किये गये हैं जब पुहुपावती नरेश गोविन्दचन्द माधव की नाद विद्या की परीक्षा लेते हैं। ये वर्णन काम-शास्त्रीय पुट लिए हुए हैं। इनमे एक ओर जहाँ यह पता चलता है कि बोधा को कामशास्त्र का भी थोड़ा ज्ञान था वहीं इन वर्णनों की एक और भी ध्वनि है—यह कि माधव की नाद-विद्या सभी प्रकार की कामिनियों को मुग्ध करने की क्षमता रखती थी। बोधा ने नायक भी चार प्रकार के बताये हैं—शश, कुरग, वृषभ और तुरग।

कुछ स्थलो पर कवि ने प्रबन्ध मे अत्यन्त प्रेम पूर्वक नृत्य और सगीत का भी वर्णन किया है। इन वर्णनो को पढकर यह बात निर्भ्रान्त रूप से कही जा सकती है कि बोधा को सगीतशास्त्र आदि का ज्ञान अवश्य था। कथा का नायक सगीत शास्त्र एव कला में पारगत है और नायिका नृत्य कला मे परम प्रवीण और उत्तम गायिका है। सच तो यह है कि माधव और कदला रूपाकर्षण के अतिरिक्त एक दूसरे के प्रति नाद विद्या की प्रवीणता के कारण भी अत्यधिक आकृष्ट हुए थे और सन्निकटता का अनुभव करने लगे थे। इस समूची कथा का मूल प्रेम है और उस प्रेम का आधारभूत कारण नृत्य और सगीत। माधवानल को अपनी नाद-विद्यागत मोहन शक्ति के कारण निरपराध होते हुए भी नगर छोड़ना पड़ा। उसी नाद विद्या के कारण वह लीलावती का आकर्षण बना और उसी सगीत-ज्ञान के कारण वह कामावती की राजसभा मे कदला के दर्शन कर सका। कदला भी उसके सगीत के शास्त्रीय

पूर्वक दौड़-धूप करते हैं, पंडित-जन विवाह की लगन निश्चित करते हैं, फनदानियों को जेंवनार कराया जाता है, भांति भांति की मगल गालियां गाई जाती हैं, आँगन लिपवाया जाता है, दीवार पुतवाई जाती है, बखरी छवाई जाती है, स्वर्ण-कलश सजाये जाते हैं, चित्र टांगे जाते हैं, हरे बांस के मडप सजाये जाते हैं, जामुन के पल्लवों से उसे छाया जाता है, नीचे जरी का वितान तनाया जाता है जिसमे मणि-मोतियों के गुच्छे लटकाये जाते हैं। स्वर्ण-विनिर्मित अनार, सोने मे जडी थूनी, जवाहरों से जडे द्वार और बदनवार, मडप-द्वार पर कलश सब जगह ज्योति की जगर-मगर आदि का वर्णन किया है। विवाह से सम्बन्धित और भी बहुत से ब्योरे दिये गये हैं जो भारतीय जीवन के सस्कारों का तथा कवि की रीतिबन्धन से मुक्त दृष्टि का प्रामाणिक परिचय देते हैं। इस दृष्टि से गौरि-स्थापना, स्त्रियों का शृङ्गार करना, रसोई, तेल-हल्दी, मायन, नगर मे नाऊ का फिरना, पगत, जेंवनार, मडवा का बराभात, कडाहियों का चढना, छकडा भर-भर मिठाइयों का जनवासे भेजा जाना, दायज, भेंट, बारात का आगमन, द्वाराचार, भांवर, रहस बधाई, पलकाचार, भोज आदि विवरण और वर्णन भी पढने योग्य हैं। इसी सदर्भ मे बहुत प्रकार के उपहार, दान और नेग आदि के देने का वर्णन है। सखियों से भेंट करके लीलावती का विदा होना तथा ससुराल पहुँचने पर उसकी अगवानी आदि का भी उल्लेख है। इस प्रकार विवाहोत्सव का वर्णन कवि ने मनोयोग पूर्वक सम्पन्न किया है जो काव्य मे पर्याप्त सुन्दर तथा यथावश्यक अनुकूल वातावरण की सृष्टि करने वाला है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के उत्तरार्ध मे सेना और युद्ध का वर्णन आता है। माधव की भर्त्सना से प्रेरित हो विक्रम उसके कार्य पूर्त्यर्थ जब सेना सहित प्रस्थान करते हैं उस समय नगाडे, खाखर, तूर्य, भेरी, जगी ढोल और शहनाई, गुडगुडी, ढक्क बीना, नारसिंही आदि विविध रणवाद्यों तथा उत्साहोत्तेजक कवित्तों और कडखों का, मत्त गजों के चिक्कार का, क्षत्रियों की युद्ध-सज्जा का, सेना के चलने से उत्पन्न त्रास और कम्प का—धरा के धसकने और शेष के कांपने का—धूल के कारण सूर्य के आवृत हो जाने का, दिक्पतियों के शकित होने का, दिग्गजों के दहल जाने का, समुद्र के जल के उछलने का, समग्र भारत-खण्ड के प्रकपित होने का परम्परागत पद्धति पर वर्णन हुआ है। भाट लोग कवित्त पढते हैं, पृथ्वी चलदल की तरह कांपती है, चारो तरफ विक्रम की ही ध्वजाएँ फहराती गोचर होती हैं। ये वर्णन जहाँ एक ओर उत्साहादि भावों को जाग्रत करते हैं वहीं वर्ण्य के अनुकूल वातावरण का भी निर्माण करते हैं। सेना के चलने से भूमि का धमकना, शेष के फन का विदीर्ण होना, धरती से आकाश तक धूल छा जाना आदि सैन्य सचलन के सुपरिचित परिणाम हैं। इन वर्णनों से उत्साह नामक स्थायी भाव की अच्छी उद्दीप्ति हो सकी है तथा काव्य मे वीर रस की अनुभूति के योग्य वातावरण का निर्माण हो सका है। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि प्रातःकाल होते ही कामसेन और विक्रम गलगाज उठते हैं, दोनों दलों के नगाडे बज उठते हैं। दिग्गजों के चिंघाड, नक्कारों की आवाज और खाखरों का शोर सुनकर रणसूरमा हर्षित होते हैं। कवि ने सैन्य-रचना का भी विचित्र वर्णन किया है—चारों तरफ सैनिक हैं, बीच मे चार कतारें अश्वारोहियों की हैं, उनके बीच में स्वय राजा है जो गजारोही होकर इतनी ऊँचाई पर स्थित है कि वहाँ तक कोई बाण भी नहीं पहुँचा सकता। सेना के अग्रभाग में

उनका प्रमुख सरदार मैंढामल्ल तीस हजार घुडसवारों के साथ तथा विक्रमादित्य की सेना का प्रमुख वीर रनजोर सात सौ अश्वारोही लेकर डटा हुआ है। शस्त्रयुद्ध होने के पहले मैंढामल्ल और रनजोर मे वाक्‌युद्ध होता है। इसके पश्चात् युद्ध प्रारंभ होता है। एक-एक से भिडता है, एक के गिरने पर दूसरा उसका स्थान ले लेता है। एक का प्रतिशोध दूसरा लेता है। दोनों दल के अनेकानेक वीर जूझ मरते हैं—बाघन वीर, बलभद्र नन्देल, मम्मन, विरसिंह, छूरनसिंह बघेल, विहडनराय, हमीर आदि। सामूहिक युद्ध का चित्र प्रस्तुत करने मे एक-एक करके अनेक वीरो के आघात-प्रत्याघात का वर्णन अत्यधिक सहायक होता है और युद्ध की समग्रता का रूप हृत्पट पर अंकित होने लगता है। कहना न होगा कि इस प्रकार का वर्णन प्रस्तुत करने मे बोधा जी अत्यन्त कुशल हैं, वे पर्याप्त इंटेलिजेंस-प्राप्त और असाधारण कामनसेंस-लब्ध कवि थे। युद्ध का वातावरण और स्वरूप प्रस्तुत करने मे वे अत्यन्त कुशल हैं। रीतिकाल के शृङ्गारी कवियों के बीच इस दृष्टि से भी उनका वैशिष्ट्य स्वीकार करना पड़ेगा। परुष-वर्ण प्रधान पदावली, नादानुकृति और अस्त्रशस्त्र एवं क्रिया-वाची शब्दों के प्रयोग के सहारे उन्होंने युद्ध की प्रलयकर स्थिति प्रस्तुत की है। जय-पराजय का निश्चय न हो सकने से तथा अधिक रक्तपात बचाने के विचार से द्वन्द्व-युद्ध करने का निश्चय होता है। पहले तो मैंढामल्ल और रनजोर के बीच चलने वाली कहा-सुनी पढ़कर ऐसा लगता है जैसे यह युद्ध इन्हीं दो के बीच होने वाला है पर उसके बाद जो वर्णन मिलता है वह तो समूची सेना के लडने का है, उसमें अनेक नामी वीर भाग लेते हैं और काम आते हैं जैसे पूरनमल्ल खगार, हुसैन पठान, धनसिंह पमार, अनन्दराय, गोंडवली, उद्धवराय, वीरमदेव, चौहानवीर, वीरमगल, कर्नपमार आदि। अनेक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता है जैसे बाण, खड्ग, कृपाण, शूल, शक्ति आदि। वर्णन सम्बन्धी यह एक भारी भूल कवि से हो गई है जो स्थूल दृष्टि के पाठक को भी खटकने वाली है। यो युद्ध का दृश्य गत्यात्मक है, सजीव है, प्रभावपूर्ण है। उसमे चित्रोपमता है। सैन्य-वर्णन भी स्थिर न होकर सजीवता और गत्यात्मकता से परिपूर्ण है, अनुपात की दृष्टि से आवश्यक परिमाण में है और सशक्त है। वीर और रौद्र रसों के उद्रेक मे सहायक है। वीरता के उच्च धर्म को, प्राचीन युद्धविषयक मर्यादाओं को लेकर चलने वाला है। युद्ध का कारण भी हल्का-फुल्का नहीं पर्याप्त गम्भीर है। वर्णन शैली मे पौराणिकता, अतिशयोक्ति के साथ-साथ वीरगाथा-कालीन शैली का प्रभाव स्पष्ट है जिसमे द्वित्त वर्णों का विधान है, टवर्ग प्रधान वर्णों का विन्यास है, छप्पयादि अनुकूल छन्दों का चयन है और सानुप्रासिक एवं नादात्मक पदावली का प्रयोग है। प्राचीन अस्त्रशस्त्रों के तथा मध्ययुगीन सामन्त सरदारो के नामोल्लेख से अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने मे बडी सहायता मिली है और सबसे बडी बात यह है कि हर्ष, क्रोध, अमर्ष आदि भावों और उद्वेगों की तीव्र व्यंजना पूर्ण रूप से हो सकी है।

संवाद—इस काव्य मे संवादों की योजना पर्याप्त सुन्दर बन पडी है। इन संवादों की संख्या तो कम ही है परन्तु ऐसे स्थलों पर जीवन और जोश पूरा मिलता है। रोचक और रमणीय संवादात्मक प्रसंग इस प्रकार हैं—(१) कामावती नगरी मे राजा कामसेन की सभा मे कन्दला के नृत्य के उपरान्त माधव-कामसेन संवाद (२) उज्जैन नरेश विक्रमादित्य की सभा में विरही ब्राह्मण माधव के पहुँचने पर विक्रम-माधव संवाद (३) विक्रमादित्य को

असावधानी से कन्दला और माधव की मृत्यु हो जाने पर विक्रम और उसके मन्त्री का सवाद (४) विक्रम के पूर्व ही चिता पर चढने वाले विप्र का राजा विक्रम से सवाद (५) कन्दला के प्रेम की परीक्षा लेते हुए विक्रम-कन्दला सवाद (६) महाराज विक्रम की ओर से कन्दला को माँगने के लिये गये हुए बैताल का राजा कामसेन से सवाद और (७) युद्ध भूमि मे कामसेन और विक्रम के वीरो मैढामल्ल और रनजोर का सवाद। इन सवादो मे माधव का सकोच, कामसेन का रोष, माधव का प्रबोधन और विवेकदान, कामसेन द्वारा माधव का अपमान जिसके परिणामस्वरूप माधव का स्वाभिमान, विक्रम द्वारा माधव के प्रेम की परीक्षा, माधव के कन्दला-प्रति प्रेम की अनन्यता, कन्दला और माधव की मृत्यु पर विक्रम की आत्मग्लानि और पश्चात्ताप, उसके सकल्प की दृढता, आत्मोत्सर्ग आदि की चारित्रिक महत्ता, एक अज्ञात विप्र की स्वामिभक्ति, कन्दला के पुनर्जीवित हो उठने के अनन्तर विक्रम द्वारा परीक्षा लिये जाने पर कन्दला के माधव-प्रति प्रेम की दृढता और अनन्यता आदि बातें रुचिरता के साथ व्यक्त हुई हैं। ग्रन्थान्त की ओर राजा कामसेन की सभा मे विक्रम के सदेशवाहक बैताल और कामसेन के बीच जो पद्यमय वर्तालाप है वह सपूर्ण प्रबन्ध में सवादात्मक सौदर्य का एक विशिष्ट स्थल है—बैताल द्वारा विक्रम का सदेश सुनकर कामसेन का क्रुद्ध काल के समान गरजना तथा आत्मप्रतिष्ठा पर पहुँचे आघात के कारण तीव्र रूप मे उग्र भावो का उन्मेष देखने योग्य है। सहज अभिमानजन्य व्यग्य, उपहास, भर्त्सना, दर्प, आदि विविध भावो की एक ही साथ सौन्दर्य सृष्टि करने वाली ऐसी कथनावली प्रस्तुत काव्य को यत्रतत्र सजीवन शक्ति देती चली है। इसी प्रसग मे उक्त कथन-प्रतिकथन के पश्चात अपने-अपने बल-विक्रम वर्णन की जो वेगवती वाग्धारा दोनो ओर से प्रवाहित हुई है वह कुछ साधारण नहीं। बैताल और कामसेन के ये आत्म-प्रशसात्मक कथन अनेक हैं जिसका परिणाम होता है भयानक युद्ध। इसी प्रकार रनजोर और मैढामल्ल के द्वन्द्व-युद्ध के समय दोनो मे उत्साह की अति के कारण जो कहा-सुनी बोधा ने वर्णित की है वह भी देखने योग्य है, उससे दोनो के भीषण द्वन्द्व-युद्ध की खासी अच्छी पृष्ठभूमि तैयार हो सकी है और साथ ही युद्ध वर्णन मे भी पर्याप्त उत्कर्ष आ गया है—

(क) मेढ़ामल्ल बलवान कह्यौ वीर रणजोर सौं।
तू मति खोवे प्रान बिनु दल बल निज गर्भ बसि।
(ख) भली कही रनजोर तू या जाने सब कोय।
प्रीयम मत पमार को भाजी साजो होय॥
(ग) वह मेढ़ा जिन जान तू रौंघ खात सब गाँव।
मैं वह मेढ़ामल्ल हो पेट फारि कढ़ि जावँ॥

इन बातो मे दाह और उत्तेजना की कितनी शक्ति है। ऐसे कथोपकथनो के विधान से वर्णित परिस्थिति की तीव्रता का उद्घाटन होता है और प्रसग में रोचकता, सरसता और सजीवता का सचार होता है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि ये सवाद काव्यगत पात्रो की चारित्रिक विशिष्टिता के प्रकाशन मे, प्रसगो और परिस्थितियों के प्रभाव को तीव्र करने मे एव मानव हृदय की नाना वृत्तियों एव भावनाओं की प्रखर व्यजना करने में

अतिशय सहायक हुए हैं। सवाद प्रस्तुतीकरण की शैली द्विविध है—एक तो पात्रो का पृथक् से नाम देकर दूसरे तृतीय पुरुष मे। काव्य के अन्तर्गत उत्तम और शुद्ध सवाद तो वे ही कहे जायेंगे जिसमे पात्र का नाम दे-देकर कथन कराये जाते हैं जैसा आचार्य केशवदास ने प्राय. सर्वत्र अपनी रामचन्द्रिका मे किया है। बोधा मे उक्त दोनो शैलियों का आश्रय लिया है।

मार्मिक स्थल—माधव-कदला की प्रेम-कथा बडी मार्मिक है क्योंकि इसमे उन दोनों के प्रेम का निश्छल प्रकाशन हुआ है। इसमे उल्लास-जनित सभोग और अतिशय प्रेम-जन्य विरह-व्यथा की ऐसी तीव्र अनुभूतियाँ अकित हैं जिन्हे पढकर हृदय एक ओर प्रेमोन्मत्त हो उठता है तो दूसरी ओर विरह-कातर। कभी प्रिय और प्रिया के भेजे गये पत्रो मे, कभी मेघ या सुवा द्वारा भेजे सदेशो मे उनका हृदय ही प्रत्यक्ष लक्षित होता है विशेष कर वेदना-व्यजक प्रसगो मे यथा ऋतुकृत उद्दीपन, प्रकृति-जन्य पीडा स्मृति-जनित कातरता आदि अवसरो पर हृदय को हृदय की पहचान मिलती है। हृदय हृदय के प्रति समवेदना मे भर उठता है। कुछ ऐसे भावुकतापूर्ण प्रसग भी विन्यस्त हुए हैं जो इस वाछनीय मार्मिकता के अभिवर्धक हुए हैं जैसे माधव का पुष्पवाटिका मे महारूपवती बाला लीलावती को देखना, उस पर मुग्ध हो अपनी वीणा बजाने लगना, विष्णुदास की पाठशाला में माधव-लीलावती का साहचर्य, उनके अध्ययन-जीवन की समाप्ति, पत्र-प्रेषण आदि। सरिता मे स्नान कर सूर्य को अजलि अर्पित करते देख पुष्पावती की यौवनाओं का माधव विप्र के प्रति अनुरक्त हो पीछे लग जाना—

> तन मन बूडि विरह मे मूर्च्छित ह्वै गिर जाँय।
> सरिता के तट कामिनी बिन जल गोता खाँय॥

माधवानल के निकाले जाने की बात सुनते ही लीलावती का व्याकुल भाव से राज सभा मे आना और माधव का हाथ पकड कर कहना—'मीत ! तुम्हे निकालने की बात कौन कह रहा है ? उसे मैं शाप दूँ, अपना शीश उतार कर राजा के आगे रख दूँ।' माधव का राज्य से निकल वन-वन भटकना और मृग शुक कोकिलादि मे अपनी प्रिया का सौंदर्य देखना, बाँदोगढ मे दक्षिण दिशा से उमडते हुए मेघों को देखकर मूर्छित होना और होश आने पर उनके माध्यम से अपना सदेश लीलावती के पास भेजना, बाँदोगढ छोडने पर माधव का वहाँ के स्नेही नागरिकों की याद मे विसूरना। माधव के सगी सुवे का माधव द्वारा नगर त्याग की जानकारी होने पर यह सोचना कि 'माधव के बिना इस वट वृक्ष पर अब मैं कैसे रह सकता हूँ ! कूप, तडाग, वृक्ष, खग, मृग आदि से लीलावती का समाचार पूछना, मार्ग की दयामयी वनिताओं का उसे दुखी देख करुणार्द्र होना, माधव के चलने के प्रस्ताव पर कदला की मूर्छा, कामावती छोडकर सुवा सहित पश्चात्ताप करते हुए माधव का आगे बढना, विक्रम की नगरी मे राजवाटिका के महेशमठ के समीप पडे मृगचर्म को देख कदला की स्मृति, कदला द्वारा अपनी फुलवारी मे प्रियतम का नाम रटना, कदला के सदेश-वाहक सुवे से उपालभ, वैद्य रूप में विक्रम के पहुँचने पर कदला की दशा और माधव की मृत्यु का झूठा समाचार सुनते ही मरण, इसी प्रकार माधव का भी मरण, राजा विक्रम की दुश्चिन्ता, युद्ध के वर्णन मे दिग्दर्शित वीरोत्साह, माधव और कदला का भरी सभा मे आलिंगनपूर्ण मिलन,

लीलावती की स्मृति मे माधव और माधव के विरह मे लीलावती की वेदना आदि अनेकानेक मार्मिक प्रसगो के विधान और उनकी अनुभूतिपूर्ण वर्णना से समग्र काव्य हृदयस्पर्शी हो उठा है।

रस-व्यंजना—रस की दृष्टि से यह प्रबन्ध विप्रलभ शृगार की रचना है किन्तु प्रबन्ध काव्य होने के कारण इसमे जीवन की अनेकानेक परिस्थितियाँ वर्णित हुई हैं। प्रसगवश अनेक स्थानो पर प्रेमी-प्रेमिकाओ के सयोग और मिलन के चित्र भी उरेहे गए हैं। यद्यपि वियोग वर्णन की तुलना मे सयोग वर्णन के प्रसग और अवसर कम आए हैं फिर भी वर्णित सयोग के अवसर विरह की व्यजना को और भी उत्कर्ष देने मे सहायक हुए हैं। विरह की तीव्र व्यथा दिखाने के लिए सयोग अथवा सभोग के प्रगाढ सुखो का दिखलाया जाना आवश्यक हो जाता है। नायक माधव के लीलावती और कामकदला से मिलन के अनेक प्रसग वर्णित हुए हैं—प्राय पारस्परिक रूप दर्शन से, वीणा श्रवण से, सगीत श्रवण और नृत्य दर्शन से आकर्षण, रीझ और अनुराग का जन्म होना दिखाया गया है और साहचर्य, सामीप्य और स्पर्श-लाभ से कामोत्तेजना का। प्रेमी युगल के पारस्परिक मिलन और ससर्ग के साधारण, *उल्लासपूर्ण और कामुकतापूर्ण चित्र अकित मिलेंगे। अंतिम प्रकार के चित्रो मे अश्लीलता* की मात्रा अधिक मिलेगी।

शभु-वाटिका मे शिव पूजन के लिए गई हुई लीलावती के प्रथम रूप-दर्शन से माधवानल मुग्ध होकर जैसे नशे मे आ जाता है और उसके द्वारा बजाई गई वीणा का नाद सुन लीलावती उन्मत्त एव कामातुर हो जाती है। इसी प्रकार कामसेन की राजसभा मे माधव और कदला भी एक दूसरे के रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ नृत्य, सगीत आदि कलाओ तथा तद्-विषयक शास्त्र ज्ञान पर भी रीझते दिखाये गए हैं। इस प्रथम दर्शन-जन्य अनुराग को कवि ने सपर्क-साहचर्य द्वारा पोषित किया है। विष्णुदास की पाठशाला मे माधव और लीलावती साथ-साथ अध्ययन करते हैं, दोनो को साहचर्य के शत्-शत अवसर मिलते हैं। इन प्रणयपूर्ण सपर्कों के आधिक्य के कारण दोनो ने एक दूसरे के साथ अपने जीवन का सौदा कर डाला। दोनो को किसी और की बातें अच्छी नही लगती, किसी काम मे मन नही लगता—दोनो बाग मे मिल लेते थे, तडाग पर मिल लेते थे, एकान्त मे मिल लेते थे और अगले दिन मिलने और रसविनोद करने की मन्त्रणा कर लिया करते थे, वीणा और सितार लेकर जब-तब सगीत रस मे डूब भी लेते थे। उनके प्रेम-पूर्ण वार्तालाप विशेषत विद्याध्ययन समाप्ति के पूर्व तथा उनका राजा गोविन्दचन्द के ताल के समीपवर्ती उद्यान मे मिलन विशेष मार्मिक हैं क्योंकि *यह मिलन काफी अर्से के बाद होता है*—दोनो एक दूसरे को हृदय से लगा लेते हैं—

> सुख के आंसू उमडे न रहैं। मुख ते भर लाज न बात कहैं॥
> थल एक दुरो तहाँ बैठ गए। सुमुखी तिय के कर पान दए॥
> भय लाजन बाल न बोल सकै। चित की चित बाहर ह्वै झलकै॥

हृदय की इतनी उत्कठाएँ और मिलन-सुख का अपार उल्लास वास्तविक मिलन की वेला मे कैसा सकुचित हो गया है! जो कुछ चित के अन्दर है वह झलक ही रहा है, फूटने

नही पा रहा है। कदला और माधव के प्रेम विवर्धन मिलन प्रसगो का आधिक्य प्रस्तुत काव्य मे नही है क्योंकि सपूर्ण काव्य मे सम्पर्क की अपेक्षा वियोग के अवसर ही अधिक हैं, काव्य का मूल वर्ण्य भी विरह ही है, मिलन नही। फिर भी जिन कतिपय अवसरों पर मिलन-सम्पर्क दिखाया गया है वे इस प्रकार हैं—माधव और कंदला की नाद-शास्त्र सम्बन्धी चर्चा, कामसेन की सभा मे माधव और कदला का पुनर्मिलन, माधव और कंदला के पारिवारिक जीवन की वह झाँकी जिसमे माधव को लीलावती के लिए चिंतित देख स्वय कंदला भी चिंतित हो जाती है (इस स्थल पर कदला के उन्नत चरित्र का भी पता चलता है)। बोधा की सभोग वर्णना का यह तीसरा सोपान भी देखने योग्य है जिसमें ऐंद्रिक तृप्ति अथवा शारीरिक सुखोपभोग का कवि ने खूब खुल कर वर्णन किया है। बोधा की प्रेम-दृष्टि एक दम अकुंठ थी, हृदय मे कुछ रोक रखना उनकी प्रकृति मे न था—जो अदर था वही बाहर भी। उन्होंने कहा है कि ससार मे और जिस अमृत की बात लोग कहते हैं वह सब झूठी है, असली अमृत तो तरुणी के समर्ग मे है। नवला के किन-किन अंगों में अमृत का निवास है बोधा ने यह भी बतलाया है। उनके मत में तो तरुणी से इश्क का मजा जिसने नही पाया उसका मनुष्य जन्म ही बेकार गया। कामकेलि अथवा स्थूल सभोग के वर्णन प्रबन्ध में चार बार आए हैं जिनमें एक का सम्बन्ध तो माधव और लीलावती के संभोग से है तथा शेष तीन का माधव और कंदला के सभोग से। जितनी ऐहिकता, अदलीलता और कामुकता से आपूर सभोग-शृगार का वर्णन बोधा ने किया है उतना आमुष्मिकता से पूर्ण वर्णन हिन्दी के अन्य किसी प्रतिष्ठित कवि ने नहीं किया है। इस वृत्ति के कारण बोधा की प्रतिष्ठा को आघात भी पहुँचा है। उनके सम्भोग-वर्णन की तीन स्थितियाँ हैं। एक तो तैयारी की स्थिति है, भोग के सारे साजसमाज—पर्यंङ्क, पुष्पहार, शृगारसज्जा आदि एकत्र किये गए हैं दूसरी स्थिति है, वास्तविक सम्भोग की जिसमे अनेक प्रकार की रतियाँ दिखलाई गई हैं—स्पर्श, सघर्षण, मर्दन, आलिगन, प्रस्वेद, कंप, वैपथु आदि। ये चित्र पर्याप्त गत्यात्मक हैं तीसरी और अन्तिम स्थिति है रतिजन्य शिथिलता की जिसका वर्णन कवि ने उत्साहपूर्वक किया है और जो सम्भोग की समूची वर्णना को पूर्णता प्रदान करने वाला है। व्यजना-प्रवीण कवियो ने इस क्षेत्र में पर्याप्त कौशल से काम लिया है। संकेत और व्यंजना के सहारे वे अपनी बात भी कह गए हैं और अपना यश भी अक्लक रख सके हैं पर बोधा इन वर्णनों मे जी खोलकर प्रवृत्त हुए हैं।

वियोग अथवा विरह-व्यजना द्वारा अपने प्रेम की अभिव्यक्ति तो इस प्रबन्ध का मूल-मन्तव्य ही है। प्रबन्धगत होने के कारण इस विरह वर्णन में और भी गम्भीरता आ गई है, वह मात्र कवि के दिल का गुबार ही नहीं है अन्तर की प्रीति और प्रतीति भी है। माधव और कदला के वृत्त मे बोधा के निजी जीवन का भी प्रतिबिम्ब कुछ-कुछ देखा जा सकता है इसी कारण इसमे जो प्रेम वर्णित है उसमे भावनात्मक तीव्रता और गहराई मिलती है। इस प्रबन्ध मे प्रेम के दो कथानक हैं—माधव-लीलावती-प्रेम की कथा तथा माधव-कदला-प्रेम की कथा। वैसे तो माधव की प्रथम प्रणयिनी लीलावती है परन्तु उसकी प्रमुख प्रणयिनी कामकदला ही कही जायगी। नया-नया वियोग बहुत ही सुकुमार हुआ करता है, उसमें क्षणिक वियोग और तनिक सी ठेस भी असह्य हो जाया करती है। पात्र का आँखों मे

ओझल होना भी माधव और लीलावती के लिए अतिशय बेचैनी का कारण हो जाता है। इस प्रबन्ध में प्रेम का स्वरूप सर्वत्र सम है—'दोनो ओर प्रेम पलता है।' अध्ययनकाल की समाप्ति के बाद जब माधव और लीलावती का अवश्यभावी वियोग होता है तभी लीलावती बेतरह बेचैन हो उठती है, वह अपनी सुमुखी नाम की सखी से कहती है—

जो तैं मोहि मिलावत प्यारी। तो मैं जियत नहीं इहि वारी॥

सुमुखी जब उसके पिता की कराल प्रकृति का स्मरण दिलाती है तो तरह-तरह से वह एक ही बात कहती है जिससे उसके लगन की दृढ़ता और प्रेम की अनन्यता का पता चलता है। उसे बाधाओं या संकटो की लेशमात्र भी परवाह नहीं, इश्क के पथ पर पाँव देकर अब वह पीछे हटनेवाली नहीं—

होनहार जो अजहूँ होही। खंगधार किमि काटहु मोही॥
मर किन जाउँ प्रीति नहिं छोड़ौं। नेकी बदी सीस पर ओढ़ौं॥

वह कहती है कि सभी जानते हैं कि प्रेम करने से दुख होता है परन्तु इससे क्या कोई प्रेम करना छोड़ देता है। उधर अध्ययन अवधि की समाप्ति पर माधव भी लीला से वियुक्त हो सघन और अछेह विरह के गर्त में गिरता है। बोधा ने विरहियों की काम-दशाओं का वर्णन काव्यशास्त्रीय पद्धति पर नहीं किया है। जो स्वच्छन्दता, हार्दिकता और प्रवाह उनकी विरह वर्णना में लक्षित होता है वह रीति की उँगली पकड़कर चलने वालों की कविता में सम्भव ही नहीं। उनकी विरह वर्णना पर फारसी शैली के विरह वर्णन तथा सूफी भावना अथवा प्रेमादर्शों का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव पड़ा था पर सूफी रंग में वे पूर्णत रँग नहीं गये थे। इश्क हकीकी की उन्हें परवाह न थी, वह तो मजाजी इश्क के कायल थे। पहले प्रकार के इश्क को वे दूसरे प्रकार के इश्क के लिए अवहेलना कर गए हैं। प्रेमियों की विरह व्यथा एक दूसरे तक पहुँचाने के लिए पत्र और दूतों का सहारा लिया गया है। एक तरफ लीलावती अपने हृदय का सारा प्रेम पत्र में उड़ेल देती है तथा दूती उसका सन्देश माधव को पहुँचाते हुए लीलावती की दशा का निवेदन करती है। दूसरी तरफ माधव भी दूती द्वारा अपनी बेचैनी बड़े मार्मिक शब्दों में कदला तक प्रेषित करता है। विरहिणी या विरही अपने मित्र, सखाओं, सखियों आदि से तथा उन्माद की दशा में प्रकृति के जड़ पदार्थों मेघ, पुष्प, वृक्ष, तथा शुक आदि से भी अपनी विरह की पीड़ा कहकर अपना जी हल्का करते हुए पाये जाते हैं। माधव के पुहुपावती को छोड़कर चले जाने के बाद तो लीलावती का विरह अपार हो जाता है, वह समझ नहीं पाती कि क्या करे, प्रेम और काम के नशे में चूर उसका विरह हृदय में समाता नहीं। इसी प्रकार विरह के कितने ही प्रसंग कथा में आये हैं और अन्त तक आते गये हैं। बांधोगढ में मिले सुवा से माधव का विरह निवेदन, तालाब के तट पर खड़ी एक अपरिचित रमणी का माधव के प्रति सहानुभूति प्रकट करना, सावन भादो ऐसे विरहोत्तेजक महीनों का आना, विरही माधव का विधाता को कोसना और लाख-लाख अभिलाषाओं से भर उठना आदि वर्णित हुआ है। बाँधोगढ से चलकर माधव का कामदगिरि पहुँचना, राम की मूर्ति के समक्ष अपना विरह निवेदन करना, वहाँ से मन्दाकिनी तट पर पहुँचना, बार बार विरह से पीड़ित हो माधव का बिसूरना,

यमुना के तटवर्ती नगर के 'इश्कबाग' में माधव का प्रवेश करना और वाटिका के प्रत्येक वृक्ष और पशु-पक्षी से अपनी प्रिया का समाचार पूछना आदि विरहोन्माद की स्थितियाँ वर्णित हुई हैं। ये सारे वर्णन एक से एक मार्मिक हैं—

बहुत द्रुमन सौं सुन न हो सुमन नहिन छबिदार।
कही यार मेरी लख्यो तो छबि अजब बहार॥
बिटपन अपनो दरद सुनावै। जब चलि छाह किन्ही की पावै॥

उसे प्रत्येक रमणीक प्राकृतिक पदार्थ में अपनी प्रिया का ही भ्रम होने लगता है, उन्माद की इस काम-दशा में विरही का वस्तु-बोध, आत्म बोध काल बोध सब कुछ जाता रहा है, रह गई है बस एक चीज—प्रिया! जिसके ध्यान में वह निरन्तर लीन रहता है। धीरे-धीरे माधव और लीलावती का वियोग हुए एक वर्ष का समय बीत जाता है, उधर लीलावती भी माधव के विरह में बेतरह विकल दिखाई गई है। उसके विरह वर्णन के लिए कवि ने बारहमासा वर्णन-शैली का सहारा लिया है तथा वर्ष के एक-एक महीने में लक्षित होने वाली ऋतु एवं प्रकृति की विशेषता के सन्दर्भ में लीलावती की उत्तरोत्तर उद्दीप्त होने वाली विरह व्यथा का वर्णन किया है। माधव और कामकंदला के प्रेम कथानक में विरह के प्रसंगों की कोई कमी नहीं, कंदला से भेंट होने के अनन्तर राजदण्ड के कारण माधव कंदला से जब विदा लेता है उसी समय से विरह का वर्णन आरम्भ हो जाता है और ग्रन्थ के अन्त तक चला चलता है। इस वर्णन के अन्तर्गत कवि ने एक सुकुमार वृत्तियों का प्रकाशन देखा जा सकता है—माधव के चले जाने पर कंदला का अनुताप, वैद्यों द्वारा भी उसका उपचार न हो सकना, उसके दुःख से उसकी सहेलियों की मनोव्यथा, सुवे से कंदला का माधव के प्रति उपालम्भ आदि वर्णनों में हम वियोग-व्यथा का जीता-जागता रूप देख सकते हैं। इधर माधव भी-दर दर की खाक छानता हुआ कंदला के विरह से पीड़ित होता फिरता है। वियोग में उसकी दशा कुछ कम शोचनीय नहीं। सुवा के प्रति उसके आत्मदशा निवेदन सम्बन्धी वचन, कंदला से मिलन की प्रतीक्षा, उसकी प्राप्ति के लिए किये गये उद्योग तथा सहे गये दुःख आदि के वर्णनों में नायक पक्ष की विरहाकुलता का खासा अच्छा निदर्शन हुआ है।

काव्यकोटि—इस प्रकार पूरा काव्य ही विरह की आवेगपूर्ण भावनाओं से ओत-प्रोत है। प्रश्न उठता है कि यह प्रबन्ध काव्य की किस कोटि में रखा जाय। महाकाव्य इसे कह नहीं सकते क्योंकि इसका उद्देश्य कुछ बहुत महत् नहीं और न व्यापक और विशाल इसकी आधारभूमि ही है, चरित्रों में भी विशाल जगत और जीवन को प्रभावित कर समुन्नत करने की क्षमता नहीं और इसे खण्डकाव्य कहना भी उचित नहीं जैसा कि एकाध विद्वानों ने कहा है[1] क्योंकि यह किसी के जीवन का खण्ड चित्र नहीं प्रस्तुत करता और न संकीर्ण सीमा में लिखा ही गया है। दीर्घकाल तक इसकी कथा का प्रसार है और पात्रों के जीवन का वृत्त भी कुछ विस्तृत है तथा रचनाशैली में वर्णनप्रियता और महाकाव्योचित

[1] डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' : 'संस्कृत साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव'

विस्तार भी है। कथा भी खण्डकाव्य के लिये अपेक्षित कथा से पर्याप्त वृहद है और कथा का ट्रीटमेन्ट, उसका विधान खण्डकाव्य से कहीं अधिक बड़े पैमाने पर हुआ है। ऐसी दशा में इसे हम महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की रचना—एकार्थ-काव्य या प्रबन्धकाव्य—कहेंगे जिसमें किसी एक उद्देश्य विशेष को लेकर विस्तृत कथा का बधान किया जाता है। कथा के बधान में तो महाकाव्यात्मकता है अर्थात् चरित्रों पर विशद रूप से प्रकाश डाला गया है, वर्णन-सवाद आदि की बहुलता है तथा भावों का सूक्ष्म और विस्तृत प्रकाशन है किन्तु उद्देश्य में खण्डकाव्य जैसी सकीर्णता है।

आलम और बोधा के माधवानल-कामकदला प्रबन्ध तुलनात्मक अध्ययन

आकार और विभाजन क्रम—सबसे पहली बात जो एक ही वृत्त को लेकर लिखे गये आलम और बोधा के प्रबन्धों में मिलती है वह है ग्रन्थ के आकार का अन्तर। बोधा का ग्रन्थ आलम की अपेक्षा आकार में बड़ा है। दूसरी बात यह ध्यान देने की है कि आलम के प्रबन्ध में १३ खण्ड हैं और बोधा के प्रबन्ध में ६, फिर भी १३ खण्डों वाला प्रबन्ध ६ खण्डों वाले प्रबन्ध से बड़ा नहीं है। खण्डों के नाम भी एक से नहीं हैं जैसा कि निम्नलिखित विवरण से पता चलेगा —

आलम के प्रबन्ध का खण्ड क्रम	बोधा के प्रबन्ध का खण्ड-क्रम
(१) प्रथम खण्ड (नाम नहीं दिया है)	(१) शाप खड
(२) माधव कामकदला वियोग खड	(२) बाल खड
(३) माधव विरह वर्णन खड	(३) अरण्य खड
(४) विक्रम सहायता खड	(४) कामावती खड
(५) कदला प्रेम-परीक्षा खड	(५) उज्जयिनी खड
(६) माधव प्रेम-परीक्षा खड	(६) युद्ध खड
(७) विक्रम चिन्तारोहण खड	(७) शृङ्गार खड
(८) बैताल खड	(८) बनदेश खड
(९) राजावैद्य खड	(९) ज्ञान खड
(१०) कदला सदेश खड	
(११) दूत खड	
(१२) युद्ध खड	
(१३) माधव कदला-मिलन खड	

जैसा कि खण्डों के नामकरण से ही स्पष्ट है कथा के खण्डों का नामकरण दोनों ने अपने-अपने ढग से किया है। बोधा के प्रबन्ध की जो प्रति मिलती है उसमें अन्तिम दो खण्ड (बन देश खण्ड और ज्ञान खण्ड) नहीं हैं। उपलब्ध अश ३१ छोटे-छोटे उप-खण्डों में विभक्त है जिन्हें तरग कहा गया है। बोधा के प्रबन्ध का नाम 'विरह-वारीश' है अत उपखण्डों की 'तरग' सज्ञा साभिप्राय है। आलम के प्रबन्ध में तरग आदि का विभाजन नहीं है। उनके तो अनेक खण्ड मिलकर आकार में बोधा के एक खड तो दूर एक तरग के बराबर हैं। किन्तु आकार-प्रकार के ही आधार पर हम किसी ग्रन्थ को बड़ा और किसी को

छोटा नहीं कह सकते। ये खण्ड संख्या में चाहे ६ हो या १३ इन खण्डों का नाम हटा लेने से प्रबन्ध योजना मे कोई फर्क नही पड़ता। खण्डों के ये नाम तो क्रमिक रूप से आने वाले प्रसगो का सूचन भर करते हैं। दोहा-चौपाई शैली मे लिखित प्रबन्धो के खण्ड एक दूसरे से यों भी असम्बद्ध नहीं हो सकते। वे एक के बाद एक शृङ्खला की कड़ियों की भाँति जुड़ते चले जाते हैं।

प्रेरणा और आधार—आलम और बोधा दोनों के प्रबन्ध प्रेम के ही प्रबन्ध हैं और संयोग की बात है कि दोनो स्वच्छन्द मति वाले कवि थे तथा दोनो ने एक ही कथा को काव्य-बद्ध किया है। दोनों प्रेमी जीव थे और प्रेम का महत्व प्रतिपादन दोनों का ही लक्ष्य था फिर भी आलम की अपेक्षा प्रेम की चोट या संवेदना बोधा में अधिक तीव्र थी। आलम स्वस्थ प्रकृति से माधवानल प्रबन्ध की रचना मे प्रवृत्त हुए थे, बोधा विरह-सागर की लहरों मे डूबते उतराते काव्य की रचना कर रहे थे। बोधा प्रेमोन्मत्त और विरहोद्विग्न स्थिति में काव्य रचना कर रहे थे, आलम स्वस्थ और संयत भाव से अपनी लेखनी चला रहे थे—

जिन चोखी चाखी नहीं ते किन पावै चोज।
बोधा चाहै सो बकै मतवारे की मौज॥
पूरी लगी डगी फिर नाहीं। सुरत लेश महबूबा माहीं॥
बिछुरन परी महाजन कावा। तब विरही यह ग्रंथ बनावा॥ (बोधा)

बोधा तीव्र भावावेग की स्थिति मे लिख रहे थे। वे क्या लिख रहे थे। इसका उन्हें होश न था। वे यह भी नहीं चाहते थे कि लोग उनकी रचना पढकर उसमे कोई गम्भीर अर्थ ढूँढने का प्रयास करें। वे तो बस अपने हृदय की व्यथा को लिपिबद्ध करके अपना जी हल्का कर रहे थे, अपने मन की मौज में जो जी में आता सो बक रहे थे, कुछ 'कवित्त रचना' नहीं कर रहे थे, बहुत ही मुक्त हृदय से और बड़ी निश्छलता के साथ उन्होंने यह बात कही है। उधर आलम को पूरा होश था कि वे क्या कर रहे हैं। वे सोच-समझकर वियोग की कथा या कविता लिख रहे थे। किस समय लिख रहे थे, किस आधार पर लिख रहे थे इसकी उन्हें पूरी चेतना थी। उन्होंने लिखा है—

सस नौ से इक्यावनुवं आइ। करौं कथा अब बोलौं गाहि॥
कहौं बात सुनौं सब लोग। कथा क्या सिंगार वियोग॥
कछु अपनी कछु परकृति चोरौं। जथा सकति करि अच्छर जोरौं॥

आलम ने लिखा है कि माधव और कामकन्दला के प्रेम की कथा मैंने संस्कृत में सुनी तथा उसे 'चौपही' छन्द में भाषाबद्ध की। अपने प्रबन्ध के दूसरे तरंग में बोधा ने भी कहा है कि मैं वह कथा कह रहा हूँ जिसे कालिदास ने बड़ी रुचि के साथ गाया है, जिसे सिंहासन-बत्तीसी में पुतलियों ने राजा भोज से कहा है और जिसे बैताल ने पिंगल को सुनाया है। इस प्रकार दोनों ने संस्कृत के आधारों की चर्चा की है। यह कथा प्राकृत में भी लिखी गई है। पर उसकी चर्चा दोनो ने नहीं की है। सम्भव है आलम और बोधा ने संस्कृत मे प्राप्त माधवानल आख्यान सुने ही हों, पढ़े न हों और उसी श्रुति के आधार पर काव्य लिख डाला हो। कम से कम आलम ने तो माधवानल की कथा को पढने नहीं वरन् सुनने की ही

बात कही है और एक बार नहीं दो-दो बार। कथारम्भ में उन्होंने लिखा है—"कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी, भाषा बाँधि चौपही जोरी॥" ग्रन्थान्त में भी वे बतलाते हैं कि पहले हमने यह कथा सुनी बाद में इसे चौपाई छंदों में बाँध दिया—कथा चौपही आलम कीन्हीं। पहिले कथा श्रवन सुनि लीन्हीं॥" दूसरी कथा इन लोगों ने क्यों नहीं काव्यबद्ध की, इसी को क्यों ग्रहण किया ? इसका उत्तर यही है कि प्रेमाभाव या प्रेम की पीड़ा की व्यंजना के लिए प्रस्तुत कथा उनकी दृष्टि में सबसे अधिक उपयुक्त थी।

कथा आरम्भ करने की पद्धति—आलम ने कथा का आरम्भ परब्रह्म की वन्दना से किया है फिर समसामयिक दिल्ली सम्राट अकबर की थोड़ी प्रशस्ति की है तथा आगरे के राजा महामति टोडरमल का भी उल्लेख किया है इसके बाद ग्रन्थारम्भ का समय बताते हुए वस्तु निर्देश किया है, कथा के आधार का संकेत किया है और कथा शुरू कर दी है। बोधा ने ग्रन्थ के आरम्भ में क्रमश: गणेश, श्री कृष्ण, शिव और सूर्यदेव की वन्दना की है फिर वस्तु-निर्देश और इस काव्य के लिखने का कारण बतलाया है। इसके बाद उन्होंने अपने आश्रयदाता का थोड़ा परिचय दिया है और थोड़ा प्रकाश अपने जीवन वृत्त पर भी डाला है। उन्होंने बताया है कि सुभान के विरह में तड़पते हुए सुभान की ही इच्छा से उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ प्रश्नोत्तर शैली या सवाद शैली में लिखा गया है। सुभान इस प्रकार के प्रश्न करती है—प्रीति की रीति क्या है ? प्रीति के कौन-कौन से विधान हैं ? परम प्रीति किसकी होती है—निज पति की, उपपति की या गणक की ? बोधा इन्हीं प्रश्नों का समाधान करते हुए आदर्श प्रेमी-युगल माधव और कन्दला की कथा कह चलते हैं। इस प्रकार कथा आरम्भ करने के ढग मे आलम पर सूफी शैली का प्रभाव है, बोधा भारतीय पद्धति से ग्रंथ लिखते हैं। वस्तु-निर्देश कथारम्भ में दोनों ने किया है पर प्रश्नोत्तर या सवाद-शैली का आश्रय आलम ने नहीं लिया है। आगे चलकर बोधा कथा के आधार का आलम की अपेक्षा अधिक स्पष्ट उल्लेख करते हैं। इसके बाद इश्क हकीकी की चर्चा कर बोधा भी सूफी प्रभाव का प्रमाण उपस्थित करते हैं पर कथारम्भ शैली में सूफी मसनवियों की छाप उन पर नहीं है।

कथावस्तु में अन्तर—आलम की कथा तो यहीं से आरम्भ होती है कि पुहुपावती नाम का एक नगर था जहाँ राजा गोपीचन्द राज्य करता था, उसके राज्य में माधवानल नाम का एक वैरागी ब्राह्मण रहता था परन्तु बोधा की कथा में माधवानल के पूर्व जन्म का भी वृत्त दिया गया है जिसमें कृष्ण और गोपियों के प्रेम, गोपियों के विरह, कामदेव द्वारा गोपियों का पीड़ित किया जाना, गोपियों का कुपित हो कामदेव को कलियुग में स्त्री-वियोगी हो जगह-जगह तड़पने का शाप, फलत: कलियुग में पुहुपावती नामक नगरी में विद्याप्रकाश नामक ब्राह्मण के घर माधव नामक पुत्र के रूप में कामदेव के जन्म लेने की कथा दी गई है। उधर कामदेव की स्त्री रति कलियुग में रेवातट स्थित प्रभावती नगरी के राजा रुक्मराय के यहाँ कन्दला नामक कन्या के रूप में पैदा हुई, ज्योतिषी द्वारा उसमें गणिका के लक्षण बताए जाने पर राजा रुक्म द्वारा उसका नदी में बहा दिया जाना, गणिकाओं के गुरु एक गूजर के हाथ उसका पालित होना तथा सुर-गति-ताल-नृत्य-गीत में प्रवीण हो पुहुपावती के राजा के महल में सम्मानपूर्ण स्थान पाने आदि का कवि ने वर्णन किया है। माधव और

कन्दला के पूर्व जीवन के ये वृत्त आलम में नहीं मिलते। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने लिखा है कि सभा द्वारा १९२३-२६ की खोज में आलम कृत माधवानल कामकन्दला की जो बड़ी पोथी मिली है उसमें छोटी पोथी में आई कथा के आगे-पीछे और भी कुछ अवांतर या प्रासंगिक कथाओं का विधान किया गया है। काव्यारम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर इन्द्र की सभा का वर्णन है जिसमें जयंती नाम की अप्सरा उर्वशी की भाँति अभिशप्त होती है, वह शिला होकर वन में पड़ी रहती है। माधव अपने गुरु के लिए सामग्री लेने जाता है और शिला को देखता है। उसके द्वारा शिला का उद्धार होता है। माधव उसके साथ इन्द्र की सभा देखने की इच्छा करता है। जयंती उसके गुण पर रीझती है। वह पृथ्वी पर काम-कन्दला के रूप में अवतरित होती है।[1] यदि बड़ी पोथी प्रामाणिक भी हो तो भी पूर्वजन्म की कथाओं में पर्याप्त अन्तर है।

बोधा की कथा में आलम की अपेक्षा घटनाओं और प्रसंगों को अधिक विशद और सूक्ष्मरूप से वर्णित किया गया है। अनेक बातें तो उसमें ऐसी हैं जो आलम के प्रबन्ध में हैं ही नहीं। उदाहरण के लिए माधव और लीलावती के प्रेम की कथा आलम ने नहीं दी है। माधव और लीलावती के प्रेम का वृत्त भी साधारण और छोटा नहीं है। बोधा ने उसे पूरे विस्तार से वर्णित किया है, उन्होंने लीलावती के पूर्व जन्म की भी कथा दी है जिसके अनुसार द्वापर में बनारस के सुमन्त नामक कायस्थ की सर्व वेदशास्त्रों में पारंगत कन्या लीलावती का सुवेदी नामक अभिमानी पंडित को शास्त्रार्थ में परास्त करना, अहंकारी विप्र का लीलावती को शाप देना (कि उसके रचित ग्रन्थों का समाज में सम्मान न होगा तथा उसे अपने पति का वियोग सहन करना पड़ेगा), शिवजी की दीर्घकालीन उपासना के अनन्तर पुष्पावती नगरी में राजा गोविन्दचन्द के राजपुरोहित रघुदत्त के घर पैदा होने आदि का वर्णन किया गया है। इसके बाद बोधा ने पुहुपावती नगरी की शम्भुवाटिका में माधव और लीलावती के प्रथम पारस्परिक दर्शन के परिणामस्वरूप दोनों के हृदय में प्रेमोत्पत्ति, विष्णुदास की पाठशाला में दोनों का सह-अध्ययन और इसी क्रम में साहचर्य, दोनों का एक दूसरे को वरण करने का संकल्प, लीलावती के पिता का अवरोध स्वरूप होना, सखी सुमुखी की सहायता से राजा के ताल के समीपवर्ती उद्यान में भेंट, फिर लीलावती के भवन में दोनों की कामकेलि, नागरिकों द्वारा पुहुपावती नरेश से माधव को राज्य-निष्कासित करने की प्रार्थना के समय लीलावती का लज्जा त्याग कर राजा गोविन्दचन्द से माधव को निष्कासित न करने का आग्रह, राज्य छोड़ते समय माधव का लीलावती को यह संदेश देना कि वह द्वादश मास व्यतीत कर वापस लौट आवेगा, लीलावती के विरह में वन-वन तड़पते और भटकते हुए माधव का मेघों द्वारा लीलावती के पास सन्देश भेजना, उधर पुहुपावती का वियोग (बारहमासा), कामकन्दला की प्राप्ति के अनन्तर भी माधव का लीलावती का स्मरण करके रात्रि में तड़प-तड़प उठना, अन्तता विक्रम और कामसेन की सहायता से माधव और लीलावती का विधिवत और उत्साहपूर्वक विवाह और फिर सुख से जीवन-यापन आदि का पूरा वृतान्त दिया गया है। माधव-कन्दला प्रेम की आधिकारिक कथावस्तु के साथ-साथ काव्य में आद्यन्त चलने वाली यह प्रासंगिक कथा जिसे हम नाट्यशास्त्र की भाषा में 'पताका स्थानक' कह सकते हैं आलम के प्रबन्ध में है ही नहीं।

---

[1] भारतीय प्रेमाख्यान काव्य : पृष्ठ ४७१-७२।

इसी प्रकार दो तीन छोटी-छोटी उपकथाएँ या प्रासंगिक कथाएँ बोधा के ग्रन्थ मे और भी हैं जो आलम मे नहीं हैं। ये प्रसंगागत एक देशीय छोटे-छोटे वृत्त नाट्यशास्त्र की शब्दावली मे 'प्रकरी' नाम से अभिहित किये जा सकते हैं। ये छोटे-छोटे उपवृत्त भी मूल वृत्त या आधिकारिक कथा के उपकारक ही हैं परन्तु ये प्रबन्ध मे आदि से लेकर अन्त तक नहीं चल चलते वरन् बीच-बीच मे आकर मूल कथा का रसवर्धन करते हुए अपनी उपादेयता सिद्ध करते हैं और संचारी नामक रसावयव की तरह अपना कार्य सम्पन्न करने के अनन्तर शान्त हो जाते हैं। बोधा के प्रबन्ध म ऐसे प्रकरीस्थानक तीन हैं —

(१) पहली उपकथा एक बरई (तमोली) की है जो कामावती का रहनेवाला है, माधव का समवयस्क है तथा जो माधव के कामावती पहुँचने पर उसे अपना अतिथि और मित्र बना लेता है। कन्दला के रूप-गुण तथा प्रेम मे फँसकर माधव जब दो दिन का समय कन्दला के भवन मे व्यतीत करता है तब बरई को सच्चे मित्र की भांति माधव की चिन्ता होती है और वह उसे ढूँढता फिरता है। बारह दिन कन्दला के भवन मे सुख भोग करने के अनन्तर माधव बरई मित्र के घर लौटता है और राजा के कोप वाली कथा सुनाकर राज्य छोड़ने का प्रस्ताव करता है। बरई पहले तो दुःखी होता है पर इसी मे माधव का हित देख माधव को जाने देने के लिए राजी होता है। वैसे वह स्वयं देश निष्कासन मे माधव का साथ देने को उद्यत होता है परन्तु माधव लौटने का आश्वासन देकर बरई को कामावती मे ही रहने के लिये मजबूर करता है। बहुत तकलीफें झेलने और संघर्ष के बाद जब माधव का कन्दला से मिलन होता है तो माधव कन्दला के भवन मे जाकर रहने लगता है। संयोग के दिन जल्दी-जल्दी बीतने लगते हैं और माधव को जीवन क्या संसार मे कन्दला के सिवा कुछ नहीं सूझता है, इस पर एक दिन बरई ने यह मित्रोचित व्यंग्यपूर्ण संदेश माधव के पास भेजा कि काम निकल जाने पर अपने मित्र और सहायक को कौन पूछता है। माधव लज्जित हो तमोली के घर आता है, क्षमा याचना करता है और उसे कन्दला के यहाँ भी ले जाता है।

(२) दूसरी उपकथा तोते या सुवे की है जो माधव को सर्वप्रथम पुहुपावती से चलने के बाद बाँधोगढ मे मिलता है जिसे माधव अपनी लीलावती से प्रेम और विरह की कथा सुनाता है। वह शुक बड़ा सहानुभूतिशील है और माधव के दुःख मे उसका सहचर होकर उसके साथ-साथ कामावती आता है। कामावती मे माधव जब कन्दला के साथ सुख के दिन व्यतीत करता है तब सच्चे हितैषी की भाँति बरई के साथ साथ सुवा भी चिंतित होता है और माधव को ढूँढता है। कामावती नगरी को माधव जब छोड़कर निकलता है तो सुवा फिर उसका साथ देता है। कन्दला के प्रति माधव का असीम विरह देख सुवा उसे उज्जैन जाने की सलाह देता है। वहाँ की छवि और समृद्धि देख माधव मुग्ध हो जाता है परन्तु एक दिन जब तालाब के पास महेशमठ के समीप मृग-चर्म देखकर उसे अपनी प्रिया कामकन्दला की स्मृति सजग हो उठती है और विरह की वेदना तीव्र हो उठती है तथा वह अपनी प्रिया के जीवन-मरण का समाचार जानने के लिये आकुल हो उठता है तब सुवा उसका काम करने को उद्यत होता है। वह कन्दला की फुलवारी मे पहुँचकर माधव का संदेश कन्दला को देता है और कन्दला का कुशल क्षेम पूछता है। कन्दला उसकी बड़ी आवभगत करती है। शुक उसे

धैर्य धारण करने को कहता है और माधव को कन्दला का समाचार देता है, माधव को अत्यन्त सन्तप्त देख महेशगढ मे राजा से भेंट करने का सुझाव देता है। अन्त मे कन्दला के यहाँ जब माधव अपने मित्र अपने बरई को ले जाता है उसी समय सुवा भी वहाँ पहुँचता है।

(३) तीसरी उपकथा राजा विक्रम के एक राजभक्त, किशोरवय एवं अत्यन्त बुद्धिमान ब्राह्मण की है जो राजा विक्रम की चिता तैयार होते देख स्नान करके जल्दी से राजा की चिता पर चढ जाता है। वह राजा की जान बचाने के लिये ऐसा त्याग करता है। पूछने पर वह राजा विक्रम को बतलाता है कि महाराज, आज प्रात काल उठकर आपने मेरा मुँह देखा था तभी आपको ऐसा दोष लगा। अपना यह मुख मै चिता मे भस्म कर देना चाहता हूँ जिससे किसी को ऐसी विपत्ति न सहनी पड़े।

जो कथाएँ, प्रसग या घटनाएँ आलम और बोधा के प्रबन्धो मे समान रूप से मिलती हैं उनके विस्तारो अथवा ब्यौरो मे भी पर्याप्त अन्तर मिलता है उदाहरण के लिये.—

(१) आलम ने पुहुपावती नगरी मे राजा का नाम गोपीचन्द लिखा है बोधा ने गोविन्दचन्द।

(२) आलम ने माधव के पिता का नाम वगैरह कुछ नही दिया है परन्तु बोधा ने माधव के पिता विद्याप्रकाश को पुहुपावती नरेश राजा गोविन्दचन्द की सभा का ब्राह्मण बताया है और माधव के विष्णुदास पंडित की पाठशाला मे पढ़ने आदि का भी वृत्तान्त दिया है।

(३) आलम ने लिखा है कि माधव पुहुपावती नगरी मे नदी स्नान के अनन्तर जब राग छेडता है तब उस पर नगर की स्त्रियाँ मोहित होती है, जो स्त्री उसे जहाँ देखती है वहीं मुग्ध हो जाती है। बोधा ने लिखा है कि स्नान के अनन्तर सूर्य को अजलि अर्पित करते हुए उसकी छवि को देख नगर की स्त्रियाँ उस पर अनुरक्त हो जाती हैं, वे अपने पुकारते हुए पुत्रों और पतियो की बातें नही सुनती और उसके पीछे-पीछे चल पडती हैं। आलम ने अपने पति को भोजन परोसती हुई एक स्त्री के हाथ से थाल छूट जाने की घटना का जो विवरण दिया है वह बोधा मे नही है।

(४) बोधा का पुहुपावती नरेश अधिक विवेकवान जान पड़ता है, वह माधव ऐसे गुणी को देश से निकालने को तैयार नहीं होता। राजा-प्रजा, राजा-माधव आदि के बीच बोधा ने थोडी बातचीत भी कराई है जो आलम मे नही है। बोधा की कथा मे नगर वासियो के प्रबल विरोध करने पर भी पुहुपावती नरेश माधव को अपने मुंह से राज्य से निकल जाने की आज्ञा नहीं देता। इस पर सब मन्त्री मिलकर माधव के देश निकाले की सिफारिश करते हैं और इस आशय का एक पत्र स्वय माधव को देते हैं। माधव अपने प्रति प्रजा की तीव्र प्रतिक्रिया से भी अपरिचित नही है फलत. अपने को भाग्य के आधीन समझ स्वत: नगर छोड देता है।

(५) माधव का बाँदोगढ पहुँचना, वहाँ के नागरिकों का प्रेम और आतिथ्य, फिर कामदगिरि पहुँचना आदि प्रसग तथा बाँदोगढ, कामदगिरि और मन्दाकिनी तट की प्राकृतिक दृश्यावली के वर्णन बोधा मे मिलते है, आलम के प्रबन्ध मे नही। सच तो यह है कि

लीलावती और माधव की प्रेम-कथा मे सम्बन्धित सारे प्रसगो का आलम मे लोप हो गया है।

(६) कामावती पहुँचने पर नगरवासियो तथा वणिको मे उसके प्रति जो प्रेम और सद्‌भाव जगता है तथा एक बरई (तमोली) द्वारा माधव के आतिथ्य का जो वर्णन बोधा ने किया है वह आलम मे नही मिलता।

(७) कामसेन की सगीत-सभा मे चलने वाले सगीत के कार्यक्रम के सम्बन्ध मे आलम के माधवानल ने पौरिया से कहा था कि ७ और ४ के बीच जो तूरिया वाद्य बजा रहा है उसके दाहिने हाथ मे चार ही उँगलियाँ हैं इसलिए वह तार चूक जाता है और ताल भंग हो जाने के कारण सगीत के आनन्द मे बाधा पड रही है पर बोधा के माधवानल ने चोपदार से यह कहा था कि पूर्व की ओर मुँह करके मृदग बजाने वाले वादक का अँगूठा मोम का है इसी से ताल ठीक नही बैठ रहा है।

(८) राजा कामसेन की सभा मे कदला के तरह-तरह के नृत्य का तथा माधव के तरह-तरह के प्रभाव उत्पन्न करने वाले सगीत का जो वर्णन बोधा ने किया है वह अधिक विस्तृत है। माधव और कदला के पारस्परिक आकर्षण की बात भी बोधा ने अधिक खुल कर लिखी है। आलम के प्रबन्ध मे पहले माधव के सगीत का फिर कदला के नृत्य का वर्णन है। बोधा मे यह क्रम उलट गया है और कदला के अनुनय-विनय पर माधव ने पचम-राग गाया फिर हवाएँ चला देने वाले, मशालें बुझा देने वाले, दीपक प्रज्ज्वलित कर देने वाले तरह-तरह के राग सुनाये जो आलम मे नही मिलते। इसके बाद बोधा ने माधव और कदला के सगीत-कौशल की स्पर्धा भी दिखलाई है। माधव के राग से मेघ घुमड आये और अधकार छा गया, कदला ने सारग राग से मेघो को तितर-बितर कर दिया। इस पर प्रतिस्पर्धा मे भावित हो माधव ने ऐसा जादू भरा राग छेडा जिससे कदला विकल हो गई, उसका सारा सगीत-ज्ञान विस्मृत हो गया और वह थर-थर काँपने लगी। इससे राजा माधव पर क्रुद्ध हुआ और अपनी सभा में विघ्न उपस्थित करने के कारण उसने उसे राज्य से निकल जाने को कहा, यहाँ पर राजा और माधव मे जो थोडा-सा तर्क-वितर्क है वह भी आलम के वर्णन से भिन्न है। आलम का माधव राजा कामसेन से क्षुब्ध और अपमानित हो विदा लेता है पर बोधा का माधव कदला के कहने से विवाद नही बढाता बल्कि क्षमा याचना करता हुआ और आशीर्वाद देता हुआ सभा का त्याग करता है। आलम के कामसेन का क्रोध बोधा के कामसेन मे नही मिलता।

(९) माधव और कदला की कामकेलि का बोधा ने विशद और अत्यन्त अश्लील वर्णन किया है, आलम ने सक्षिप्त और साकेतिक वर्णन किया है। कदला के भवन मे माधव और कदला के सगीत-ज्ञान के आदान-प्रदान तथा कदला के नृत्य आदि की बात बोधा मे है, आलम मे नही।

(१०) आलम की कदला माधव को किसी भी प्रकार जाने नही देती जब तक कि एक सखी उसकी भुजा छुडाकर माधव को अलग नही कर देती पर बोधा की कदला को माधव सोती हुई स्थिति मे छोडकर चल देता है, हाँ एक पत्र अवश्य उसके प्रकोष्ठ मे छोड

जाता है। इसके बाद कदला का बोधाकृत विरह वर्णन आलमकृत विरह वर्णन से विस्तारों में भिन्न है।

(११) बोधा ने कोविन्दा नाम की कदला की एक सखी का उल्लेख किया है जिसे कदला के भवन में माधव का लिखकर छोड़ा हुआ पत्र मिलता है। वह कदला पर आसन्न विपत्ति की चिन्ता से मूर्छित हो जाती है। जैसे-तैसे अपने को सम्हाल कर वह पत्र में लिखित माधव का संदेश कदला को देती है कि वह प्राण त्याग न करे, माधव कुछ समय के अनन्तर उसने अवश्य मिलेगा। कदला को अत्यन्त दुखी जान कोविन्दा माधव से उसका मिलन कराने का संकल्प करती है और आश्वासन दिलाती है। कोविन्दा की चर्चा आलम में नहीं है।

(१२) इसी प्रकार उज्जैन में पद्मावती के माता चूड़ामणि पंडित के घर माधव के जाने की बात भी आलम में नहीं मिलती।

(१३) आलम का माधव महेश-मठ की दीवाल पर एक ही दोहा लिखता है परन्तु बोधा के माधव का दोहा मठ की दीवार पर पढ़कर राजा विक्रम भी उत्तर में एक दोहा लिख देते हैं। माधव ने इस उत्तर को पाकर अपनी दशा का संकेत फिर एक छंद में लिख कर दिया था।

(१४) आलम के प्रबन्ध में ज्ञानवती नाम की राजदासी विरही माधव का पता लगाती है परन्तु बोधा के ग्रंथ में एक बारवधू वीणा लेकर माधव का पता लगाती है।

(१५) राजा विक्रम के दरबार में माधव और विक्रम की जो वार्ता दोनों प्रबन्धों में कराई गई है उनमें भी कुछ उल्लेखनीय अन्तर मिलेंगे। उदाहरण के लिए बोधा के प्रबन्ध में राजा विक्रम स्पष्ट कहते हैं कि मैं अपने रनिवास की किसी भी सुन्दरी को तुम्हें समर्पित कर सकता हूँ यहाँ तक कि ग्वालियर का राज्य भी। आलम के विक्रम जब माधव की कदला के प्रति प्रेमनिष्ठा और उसके पांडित्य की परख कर लेते हैं तब कदला की प्राप्ति का उद्योग करते हैं परन्तु बोधा के राजा विक्रम माधव की, वचन पूरा करने की ललकार भरी बातें सुनकर कदला की प्राप्ति के लिये सचेष्ट होते हैं।

(१६) विरही के दुःख निवारण के लिये दृढ़संकल्प तथा अन्न-पान का त्याग किये हुए राजा विक्रम से माधव तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा आहार ग्रहण करने का आग्रह, कामावती नगरी से एक कोस पहले ही मदनावति की वाटिका में राजा विक्रम का डेरा डालना, माँ सामन्तों के साथ नगर की ओर बढ़ना, माधव द्वारा कामावती नगरी के विविध मार्गों तथा स्थानों से विक्रम का परिचय कराया जाना आदि जो बातें बोधा में हैं वे आलम में नहीं हैं।

(१७) आलम के प्रबन्ध में विक्रम पहली बार एक अपरिचित मनुष्य के रूप में कदला के भवन में जाता है और दूसरी बार वैद्य के रूप में। दूसरी बार वैद्य के रूप में आने पर विक्रम की कंदला की सखियों से, फिर कंदला से पर्याप्त बातचीत कराई गई है पर बोधा के प्रबन्ध में विक्रम सारी बातें पहली ही बार करते हैं और पहले बार ही वैद्य के रूप में आते हैं।

(१८) विक्रम से माधव की मृत्यु का समाचार पाकर जब कदला प्राण त्याग देती है तब आलम के विक्रम, कदला की सखियों को यह कहकर समझाते हैं कि इसे मरा मत समझो, इसे केवल मूर्च्छा आ गई है, पर बोधा के विक्रम यह कहकर कि मैं सात दिन का मुर्दा भी जिला सकता हूँ उन्हें आशा बँधाते हैं।

(१९) आलम के प्रबन्ध में पृथ्वी पर राजा विक्रम के जीतेजी जल मरने का समाचार पाकर देवलोक से विक्रम के मित्र बैताल के आने, राजा विक्रम के चिता पर चढ़ने का कारण जान लेने पर बैताल का व्याल-रक्षित सुधाकुण्ड से अमृत लाने, माधव को जीवित करने और राजा विक्रम के कनक-कलश में अमृत भरकर वैद्य के वेश में कदला के यहाँ जाने का वर्णन आया है। बोधा के प्रबन्ध में पृथ्वी का दृश्य देखकर स्वयं यमराज द्रवीभूत हो जाते हैं और वे सब काम सुधारने के लिए बैताल को भेजते हैं। बैताल शेष-सुत का आवाहन करते हैं तथा कारण जान लेने पर शेषसुत बैताल को दो बूँद अमृत देते हैं। उसमे से बैताल एक बूँद माधव के कंठ मे डालता है, विक्रम दूसरी बूँद कदला के कण्ठ में डालते हैं।

(२०) आलम के ग्रन्थ मे राजा विक्रम कदला की प्रेम निष्ठा की मरने से पहले ही परीक्षा ले चुकते हैं, उससे मीठे वचन बोलकर देखते हैं कि वह माधव की सच्ची प्रेमिका है या नहीं पर बोधा के प्रबन्ध मे विक्रम कदला को जीवनदान देने के अनन्तर उसके गले मे हाथ डालकर प्रेम की बातें करना चाहते हैं और इस प्रकार परखना चाहते हैं कि वह माधव की सच्ची प्रेमिका है या किसी से भी प्रेम जोड सकने वाली वारवनिता मात्र है। कदला अपने प्रेम का प्रमाण देने के लिए अपने हाथ पर अंगारा रख लेती है और कहती है कि आप अपने डेरे पर जाकर देखें तो माधव के हाथ मे छाला पडा मिलेगा। बोधा की कदला अपनी प्रेम-निष्ठा का दूसरा प्रमाण यह देती है कि राजा कामसेन ने भोग-भावना से भरकर जब मेरा स्पर्श किया तो उन्हें मूर्च्छा-सी आ गई। ये बातें आलम की कथा मे नहीं हैं।

(२१) आलम के प्रबन्ध मे कदला को माँगने के लिए राजा विक्रम श्रीपति नाम के एक दूत को भेजते हैं, बोधा के ग्रन्थ मे बैताल को ही दूतत्व के लिए भेजा जाता है।

(२२) युद्ध के वर्णन मे भी दोनो प्रबन्धो मे थोड़ा अन्तर है। आलम के प्रबन्ध मे दोनो पक्ष के वीरो अथवा सेनाओं के युद्ध का वर्णन है, किन्ही दो वीरो या व्यक्तियो का नही पर बोधा के प्रबन्ध में बताया गया है कि दोनों पक्षो का दिनभर भयंकर युद्ध होता रहा, किन्तु जय-पराजय का निश्चय जब न हो सका तो दोनो पक्षो ने यह निश्चय किया कि कामसेन की ओर से मेढामल्ल और विक्रम की ओर से रनजोर नाम के योद्धा ही लडें। इन्हीं की हार-जीत पर कामसेन और विक्रम की हार-जीत का फैसला होगा। कामसेन की पराजय पर भी दोनो पक्ष प्रेम और सद्भाव का परिचय देते हैं। आलम के प्रबन्ध मे पराजित कामसेन पश्चात्ताप करते नजर आते हैं।

(२३) आलम के काव्य मे कामसेन युद्ध के बाद कदला को लाकर विक्रम को सौंप देते हैं। विक्रम माधव को बुलवाते हैं। दोनो के मिलने से दोनों का सताप शान्त हो जाता है और राजा विक्रम उज्जैन लौट जाता है। बोधा के प्रबन्ध मे युद्ध मे ज्योंही विक्रम के

पक्ष की विजय हो जाती है, माधवानल वहाँ पहुँच जाता है। कामसेन के अनुरोध पर विक्रम और उसके पक्ष के लोग कामावती नगरी मे जाते हैं, वहाँ कामसेन उनका आतिथ्य करता है। विक्रम के कहने पर कामसेन कदला को सौंप देते हैं। भरी सभा मे माधव और कदला पारस्परिक आलिंगन द्वारा अपने मिलन का हर्ष व्यक्त करते हैं। इसके बाद माधव और कदला क्रमश: कामसेन और विक्रम की स्तुति करते हैं और उन्हे आशीर्वाद देते हैं। दोनो राजा, माधव को बनारस का राज्य उपहार मे देते हैं। इसके पश्चात माधव का कदला के भवन मे जाने और सभोग सुख प्राप्त करने का विवरण दिया गया है। ये बातें आलम के ग्रन्थ मे नही।

(२४) आलम का प्रबन्ध यहीं समाप्त हो जाता है। (इस सबंध में आलमकृत माधवानल प्रबन्ध की बडी पोथी—श्री बालकृष्णदास की हस्तलिखित प्रति के आधार पर डा० हरिकान्त श्रीवास्तव का कहना है कि आलम कृत कथा का अत यहीं नही हो जाता। माधव और कदला के मिलन के अनतर माधव के अनुरोध पर विक्रम उसके साथ पुष्पावती जाता है। पुहुपावती नरेश राजा गोविन्दचन्द अपने पुरोहित और माधव के पिता शकरदास को दूत बनाकर राजा विक्रम के पास भेजते है। शकरदास राजा विक्रम के आने का कारण पूछते हैं, राजा विक्रम शकर की उदासी का। इस पर शकरदास रो पडता है और अपने पुत्र माधव की वियुक्ति को अपने दु ख का कारण बतलाता है। विक्रम उसे सान्त्वना देते हैं और पुहुपावती से निर्वासित होने के बाद का माधव का सारा वृत्त बतलाते हैं। तथा माधव को नगर मे पहुँचा देना ही अपने आने का कारण बतलाते हैं। शकरदास-बोधा के प्रबन्ध मे आलम के पिता का नाम विद्याप्रकाश है—अत्यन्त हर्षित हो पुहुपावती नरेश को यह सूचना देता है और राजा गोविन्दचन्द आकर सत्कारपूर्वक माधव को नगर मे ले जाते हैं।[1] यदि उपर्युक्त पोथी का पाठ प्रामाणिक हो तो भी कथा का अन्त सर्वथा एक सा नहीं है। पर बोधा की कथा और भी आगे बढ़ती है जिसमे माधव को लीलावती की स्मृति सताती है, कदला पूर्ण सद्भाव के साथ अपने प्रिय के सुख के लिए लीलावती की प्राप्ति का उद्योग करती है। इस कार्य मे वह राजा विक्रम का और विक्रम कामसेन का सहयोग प्राप्त करते हैं। पुहुपावती नरेश गोविन्दचन्द इनका सहर्ष स्वागत करते हैं और उन्ही की प्रेरणा से माधव और लीलावती के पिता (क्रमश. विद्याप्रकाश और रघुवश) बड़ी धूमधाम से इन दोनों का विवाह कर देते हैं। कामसेन और विक्रम वर पक्ष की ओर से बारात मे शामिल होते हैं, नगर-वासियों को भी अपार प्रसन्नता होती है। लीलावती और कदला सुखपूर्वक माधव के साथ रहने लगती हैं। कामसेन और विक्रम अपने-अपने भवन को लौट जाते हैं।

निष्कर्ष और मूल्याकन—आलम और बोधा के माधवानल कामकदला नामक प्रबन्धो मे कथानक से सम्बन्धित जो सूक्ष्म अन्तर है उन पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। वर्णन, चरित्र चित्रण, सवाद, भाव-व्यजना आदि मे और भी अन्तर ढूंढे जा सकते हैं। वस्तु विधान सम्बन्धी समस्त प्रधान विभिन्नताओ के उपर्युक्त विस्तृत निदर्शन मे इन अन्य भिन्नताओ के सकेत मिलेंगे। उपर्युक्त विवेचन और अध्ययन से स्पष्ट है कि बोधा ने परवर्ती

---

[1] भारतीय प्रेमाख्यान काव्य पृ० ४७२।

कवि होते हुए भी आलम की नकल नही की है । नकल की प्रवृत्तियाँ भी स्वच्छन्द कवि की वृत्ति के विरुद्ध पडती हैं । एक ही प्रसिद्ध वृत्त को लेकर चलते हुए भी उसका वर्णन और निर्वाह दोनो कवियो ने सर्वथा अपने ढग से किया है । थोडा-बहुत अन्तर पात्रो के नाम मे भी आ गया है । उदाहरण के लिए जैसा कि हम ऊपर दिखा चुके हैं आलम के प्रबन्ध मे जहाँ संक्षिप्तता है कथा के कहने मे उद्देश्यनिष्ठता है, वस्तु वर्णनो, सवादो आदि को सतुलित रूप मे रक्खा गया है वहाँ बोधा कुछ मस्ती और निश्चिन्तता के साथ चलने वाले जीव हैं । वे रास्ते के दृश्यो का भी वर्णन करते हैं । ऋतुओ, महीनो और प्रकृति के चित्रण मे भी प्रवृत्त हुए हैं । ये वर्णन आलम मे नही हैं । अवान्तर कथाएँ भी आलम मे नही हैं । सबसे बडी बात जो दोनो प्रबन्धो मे एक बडा अन्तर उपस्थित करती है वह है, माधवानल की दो प्रेमिकाओ का होना । आलम ने माधव के एकनिष्ठ प्रेम का परिचय दिया है, बोधा ने आलम के समान प्रीति दो प्रेमिकाओ (कामकन्दला और लीलावती) के प्रति दिखलाई है जो उनकी प्रेम-भावना को हल्कापन प्रदान करती है, प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठता मे ही उसकी उच्चता और पवित्रता है । दो के प्रति माधव को समान रूप से आसक्त दिखाकर तथा उन दोनो को भी परस्पर सद्भावपूर्वक माधव से पूर्ण प्रेम करते हुए दिखाकर एकनिष्ठता की कमी पूरी करने की चेष्टा की गई है, पर वह साधारणत पाठको के गले उतरने वाली चीज नही । इस दृष्टि से आलम की रचना अधिक सफल है । इसमे सन्देह नही कि प्रेम की तडप, उद्विग्नता, तीव्रता आदि के निदर्शन मे बोधा आलम से पीछे नहीं रहे हैं तथा नाना वृत्तो, वर्णनो, सवादो आदि की योजना करते हुए वृहत्तर प्रबन्ध लिख गए हैं और उन्मुक्त प्रेम के गायन मे तो वे आलम को भी पीछे छोड गए हैं, किन्तु सन्तुलित रीति से रचना करते हुए एक अभीष्ट प्रभाव डालने में आलम पूर्ण सफल हैं । सूफी शैली के प्रेमाख्यानो का थोडा-बहुत प्रभाव दोनो पर है क्योंकि भावक्षेत्र मे जहाँ बोधा एक तरफ खुले तौर पर यह कहते पाए जाते हैं—'इश्क मजाजी मे जहाँ इश्क हकीकी खूब' वहाँ आलम भी बडी चतुरता से भारतीयता के आवरण मे इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते मिलते हैं—'ब्रह्मज्ञान पावै पुनि सोई । जिहि तन तेज नेह को होई ॥' आलम की कथा आरम्भ करने की पद्धति पर निश्चय ही सूफी मसनवी शैली के प्रेमाख्यानको का प्रभाव है, पर प्रबन्ध के अन्दर प्रेम का स्वरूप नितान्त भारतीय शैली का दिखलाया गया है । दोनो प्रबन्धो की कथा किसी आध्यात्मिक रूपक मे अध्यवसित नही हुई है ।

आलमकृत श्याम-सनेही

श्याम-सनेही आलम का एक दुर्लभ ग्रन्थ है जिसकी चर्चा भी हिन्दी के विद्वानो ने नहीं की थी । आज भी सारे भारतवर्ष मे इसकी प्रतियाँ दो ही तीन स्थानो पर मिलती हैं । आलम विरचित श्याम-सनेही की कथा और कुछ नही रुक्मिणी-हरण की ही प्रसिद्ध कथा है जिसमें कुन्दनपुर के भीष्मसेन की अत्यन्त रूपवती, कृष्णानुरागिनी कन्या रुक्मिणी का परिणय उसका उद्धत भ्राता रुक्म अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध अपने मित्र जरासंध की राय से चंदेरी नरेश शिशुपाल से करने का निश्चय करता है और तदनुसार विवाह की सारी तैयारी भी करता है, किन्तु सहेलियों के परामर्श से रुक्मिणी एक ब्राह्मण दूत के हाथ पत्र द्वारा द्वारावती श्री कृष्ण के पास अपनी दीन दशा का निवेदन करती है और अपना

प्रेम सन्देश भेजती है, जिसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण अविलम्ब कुन्दनपुरी आते हैं और रुक्मादि के शत-शत अवरोधों के होते हुए भी रुक्मिणी का हरण कर ले जाते हैं और इस प्रकार उस परम दुःखिनी तरुणी और उसके अत्यन्त खिन्न एवं विपन्न माता-पिता का उद्धार करते हैं।

वस्तु-विवेचन—ग्रन्थ के आरम्भ में पहले शिवजी की वन्दना है फिर निर्गुण निराकार निरंजन ब्रह्म की। आलम इसके पश्चात् श्याम-सनेही का स्मरण करते हैं, उनका विश्वास है कि वेदशास्त्रों द्वारा जो ब्रह्म अगम कहा गया है वह आर्तजन की पीड़ा देख सदा उनके निकट पहुँचता है। स्वयं रुक्मिणी की कथा इसका प्रमाण है। इसके बाद कथा प्रारम्भ होती है। कुन्दनपुर के राजा भीष्मसेन को दीर्घकालोपरान्त शिव और शक्ति की उपासना के परिणामस्वरूप चार पुत्र और एक कन्या की प्राप्ति होती है। कन्या रुक्मिणी सबसे छोटी थी, उसके खेलने, विद्याध्ययन और यौवनावस्था प्राप्त करने तक की कथा बड़ी क्षिप्रगति से चलती है। इसके आगे कथा की गति मंथर हो गई है, उसमें सभी आवश्यक वर्णन या चित्रण किए गए हैं। यहाँ कथा की गति मन्थरत्व दोष नहीं क्योंकि विविध अन्तरंग और बहिरंग वर्णन काव्य के लिए आवश्यक थे। सरल हृदय रुक्मिणी की अभिलाषाओं, पिता के वात्सल्य, गौरि मन्दिर, रुक्मिणी के विवाह की चिन्ता, सहेलियों की बातों द्वारा रुक्मिणी में कृष्ण-प्रेम का अंकुरित होना आदि बातें अच्छी तरह वर्णित हुई हैं। इसके पश्चात् एक दिन रुक्मिणी राम और सीता की कहानी सुनते-सुनते सो जाती है। रात गए वह स्वप्न देखती है कि उसकी पूजा से प्रसन्न हो गौरि उन्हें वरदान माँगने को कहती है। जब वह कृष्ण को वर रूप में अपने लिए माँगती है तो पार्वती कहती हैं कि तेरा काम्य तो पूर्व जन्म से ही तेरा साथी है। जब तुम जनक की कन्या थी तब तुम्हारा वर दशरथ के घर का दीपक था। इस जन्म में वह वसुदेव के घर का चन्द्रमा है। उसके साथ तो तेरा सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर से बँधा हुआ है, तू उसे पावेगी ही इसमें मेरी कोई बड़ाई नहीं है। तुम और कुछ वर माँगो। इस पर रुक्मिणी कहती है कि मेरी कोख से कामदेव का अवतार हो। स्वप्न की यह घटना रुक्मिणी के मन को निश्चिन्त दिया देती है और दृढ़ता प्रदान करती है। जिस कृष्ण के प्रति सखियों के बार-बार गुणानुवाद द्वारा प्रेम जागृत हुआ था, स्वप्न की यह घटना उसे अपूर्व रूप में पुष्ट कर देती है। इस स्वप्न-प्रदत्त दृढ़ता से ही रुक्मिणी आगे की कठिनाइयों का मजबूती से सामना करने में समर्थ होती है। इसीलिए यह स्वप्न दर्शन कथानक योजना में एक महत्वपूर्ण बात है। इस देश का ग्राम्यजन यों भी स्वप्न आदि की बातों का बड़ा विश्वासी रहा है, स्वप्न प्रसंग द्वारा लोक मानस में स्थिर विश्वासों को भी कवि ने कुशलतापूर्वक अंकित किया है।

राजा भीष्म का अपनी रानी, भाई-बन्धुओं और परामर्शदाताओं को बुलाकर रुक्मिणी के लिए वर निश्चित करने का प्रस्ताव विचारार्थ रखना राजा के पारिवारिक जीवन का एक मनोहर चित्र है। सभी सज्जन एकमत हो कृष्ण को उचित वर निश्चित करते हैं किन्तु रुक्म उनके सारे किये कराए पर पानी फेर देता है। रुक्म कोरा विरुद्ध मत मात्र नहीं प्रकट करता, वह सबको डाँट-फटकार देता है और किसी की बात को चलने नहीं देता। यहीं से कथा की धारा में विरोध या अवरोध की स्थिति आ जाती है। उधर रुक्म के

निर्णय के अनुसार चन्देरी नरेश शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने की इच्छा से लाव-लश्कर लेकर कुन्दनपुर पहुँच जाता है। इधर कुछ काल तक निश्चेष्टता सी छा जाती है। राजा भीष्मसेन, रानी और उनके हितैषी कुछ कर नहीं पाते, पण्डित और ज्योतिषी भी रुक्म की इच्छानुसार बातें करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कपिला गाय अब म्लेच्छ के वश में पड़कर ही रहेगी। यदि रुक्मिणी के अन्तःकरण की वेदना समझनेवाली सखियाँ और दासियाँ उसे ढाढ़स न बँधाती, युक्ति न सुझातीं तो सारा खेल बिगड़ा ही था। विषाद के सघन अन्धकार में उनके उद्योग ही प्रकाश की किरण का काम देते हैं। रुक्मिणी पत्र भेजती है, कृष्ण जब तक पत्र पाकर आने के लिए उत्साहित नहीं होते तब तक कथानक में घोर निराशा की स्थिति रहती है। अमंद सद पर छा-सा जाता है। कृष्ण का रुक्मिणी के उद्धार के लिए निश्चय करना कथा को फिर अभीष्ट दिशा की ओर मोड़ देता है। कृष्ण के जिन गुणों और शक्तियों का वर्णन कर-करके सखियों ने रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण का अनुराग जाग्रत किया था उनका विचार कर, कृष्ण की समृद्धि और सामर्थ्य देखकर रुक्मिणी के हृदय में विश्वास जगता है और पाठक कथानक की सुखद परिणति के प्रति आशावान हो उठता है। बड़ी कुशलता से पूर्ववर्ती निराशा के अन्धकार में कवि ने पहले भी एक आशा का संकेत किया था। वह था शिशुपाल की तैयारी और विवाह के लिए राजाओं की बारात सजाकर चलने के समय देवताओं का हँसना बतलाकर। शिशुपाल दूल्हा बनकर सिर पर मौर और छत्र धारण किये हुए जब चले उस समय कवि ने एकाध वाक्य में शिशुपाल का जरा मजाक भी उड़वा दिया है और फिर भविष्य के अनिश्चय की बात कहकर पाठक को अनिश्चय और असमंजस की स्थिति में डाल दिया है—

> सिव ब्रह्मा सुर मुनि मुसकाने। मिथ्या कौतिक देखि भुलाने॥
> चहुँ दिसि लोग बरात बखाने। करम चक्र गति कोउ न जाने॥

यहाँ आशा और कौतूहल दोनों का कवि ने कौशलपूर्वक संचार किया है। देवताओं की अर्थभरी मुस्कराहट एक अप्राकृतिक या आधिदैविक व्यापार है। कथानक के बीच इस प्रकार के व्यापारों की योजना से आस्थावान भारतीय के देवताओं के प्रति विश्वास का पता चलता है। इस दैवी संस्पर्श (Super-natural Touch) का प्रयोग कवि ने एकाध स्थान पर और भी किया है।

कृष्ण के रुक्मिणी उद्धार के लिए तत्पर होने मात्र से या देवताओं के मुस्करा देने भर से विरोध की स्थिति समाप्त नहीं हो जाती। इसमें संघर्ष बढ़ता है। वीर और अनुभवी पुरुष की भाँति कृष्ण भी पूरी सतर्कता बरतते हैं। यादवों की सबल वाहिनी और बलभद्र सरीखे योद्धा को साथ लेकर आते हैं। पवन के वेग वाला रथ, उत्तम आयुध, रुक्मिणी के उद्धार की रात्रि में ही योजना बनाना, प्रातःकाल लोगों को प्रभावित और आतंकित करने के साथ-साथ नगर और स्थान की भौगोलिक स्थिति (Topography) के अध्ययन के उद्देश्य से प्रातःकाल पर्यटन के बहाने कृष्ण का निकलना आदि अर्थगर्भित व्यापार हैं जिनकी कवि ने कुशलतापूर्वक योजना की है। विरोध की स्थिति कैसी उग्र हो जाती है और संघर्ष की सम्भावना कितनी तीव्र हो उठती है जब एक ही उद्देश्य से दो राजा एक तीसरे के राज्य में आ जाते हैं। एक आमन्त्रित है, दूसरा अनाहूत। एक प्रिय और सम्मान्य है, दूसरा अप्रिय,

शत्रुवत् और दण्डनीय । यहाँ संघर्ष की स्थिति उत्तरोत्तर तीव्र होकर चरमसीमा की ओर बढ़ती दिखाई देती है । कृष्ण के कुन्दनपुरी पहुँचने से शत्रु पक्ष (रुक्म के साथियों) में भय, क्षोभ और सतर्कता के भाव भर गये । विवाह को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए सैनिकों की सहायता से स्थान-स्थान की सुरक्षा का सुदृढ़ प्रबन्ध किया गया है । रुक्म के सभी वीर साथी राजे और सैनिक लोह कवचों तथा अस्त्र-शस्त्रों से लैस थे, किन्तु कुशल योद्धा और मेधावी श्रीकृष्ण ने सयोग का पूरा लाभ उठाया । जिस समय अतिथि लोग मध्याह्नकालीन जेवनार कर रहे थे, पूजनार्थ गई हुई रुक्मिणी को अपने रथ पर बिठलाकर वे ले चले । उनके रूप, शक्ति, पौरुष और व्यक्तित्व की दिव्यता लोग देखते रह गए—यह भी एक प्रकार का दैवी सस्पर्श है क्याक्रम मे अन्यथा अपने जाने हुए शत्रु को देखते हुए भी सतर्क वाहिनी स्तब्ध और निष्क्रिय क्यो खडी रहती ? रुक्मिणी हरण के इसी प्रसग मे कथा की चरम सीमा है । रुक्म एक बार अपनी सारी शक्ति लगा देता है, किन्तु कथा का पाठक 'यत्र कृष्णास्ततो जय.' की बात भली भाँति मन में धारण किये रहता है । रुक्म के पक्षधर वीर भारी सख्या मे आहत होते हैं और रुक्म पकड लिया जाता है, उसके हाथ-पैर बाँध दिये जाते हैं । यही फलागम की स्थिति है । कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारिका पहुँचते हैं और वहाँ सुखपूर्वक जीवन यापन करने लगते हैं ।

इस प्रकार कथा योजना बडी सुन्दर है, उसमे कोई बाधक तत्व बीच में नहीं आता । वर्णन, सवाद आदि के आधिक्य से कथा बोझिल नहीं होती । कवि उचित रफ्तार से कथा को उसके लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है । कथा मे आरम्भ, विरोध की स्थिति, संघर्ष, चरम सीमा और फलप्राप्ति का विधिवत् विधान हुआ है । कौतूहलादि के लिए इस काव्य में यों गु जाइश नहीं है कि यह एक सुविख्यात कथा है ।

वर्णन—जहाँ तक वर्णनो या वाह्य-दृश्य-चित्रण का प्रश्न है प्रस्तुत प्रबन्ध इनसे शून्य नहीं । जहाँ भी आवश्यकता पडी है कवि ने उचित रूप से वस्तुओं, दृश्यों, व्यक्तियों आदि का वर्णन किया है । रुक्मिणी के अवतार का रूप और सौंदर्य का, कृष्ण के रूप और उसके प्रभाव का, रुक्मिणी के वस्त्राभूषणो का, गौरिमन्दिर, उषाकाल, सूर्योदय, द्वारिकापुरी (द्वारिका के हाट, कृष्ण के महल, कृष्ण के मन्दिर-द्वार के ऐश्वर्य, आदि), कृष्ण के रथ, बारातियो के सानिध्य, आमोद-प्रमोद, युद्ध, कतिपय वैवाहिक सस्कारो आदि के वर्णन बड़े ही सरस और चित्रोपम हैं । इन वर्णनो से प्रबन्ध की श्री-वृद्धि हुई है । रुक्मिणी और कृष्ण के रूप तथा द्वारावती आदि के वर्णनो की चर्चा प्रस्तुत अध्याय के दूसरे खण्ड मे मिलेगी । प्रात काल के समय ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र लेकर जब द्वारिका पहुँचता है उस समय द्वारावती कैसी सुन्दर लगती है, सूर्योदय की छटा कैसी होती है, द्वारिकापुरी का वैभव कैसा है आदि बातों का कवि ने सोत्साह वर्णन किया है क्योंकि यह पुरी रुक्मिणी की ही नहीं, आलम के भी परम प्रिय और आराध्य कृष्ण की पुरी है । रुक्मिणी के उद्धार के लिए सन्नद्ध कृष्ण के रथ का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि काल रूप कालिया नाग के समान घोड़ा नर्तित है, रथ मणियो से जटित है, रथ के पहिये चक्राकार वज्र के समान मजबूत हैं, उसमें जुते हुए चपल सैंधव सिंह के समान शक्तिशाली हैं, जिनके कधो के घने बाल पख के समान लगते हैं । वे घोडे जब पूँछ उठाकर चलते हैं तो लगता है मानो उड़ रहे हैं, उनकी चचलता और गति की तीव्रता देखिये—

थरथराहि थिर ना रहहि, फरकन छाँह निहारि ।
आगे जाहिं तुरंगमा, पाछे रहै बयारि ॥

शिशुपाल के बरातियो के आतिथ्य—डेरे की, जल की, पान की, फल और पकवानो की उत्तम व्यवस्था थी, बरात कुछ स्वच्छन्द वातावरण मे ठहराई गई थी, अमराई मे अन्यथा भवनो की भी व्यवस्था सम्भव थी। बराती तरह-तरह की रुचि के लोग होते हैं फलत. वे आमोद-प्रमोद के नाना साधनो मे रत थे। जैसे ज्ञानी और पण्डित जन वाद-विवाद मे तन्मय थे, रसिक और कौतूहलप्रिय लोग कथा-कवित्तो मे आनन्द ले रहे थे, धर्म-वृत्ति वालो के लिए पौराणिक लोग पुराण-वाचन कर रहे थे, तमाशबीनो के लिये नाच और जादू के खेल चल रहे थे। कही मलार गाई जा रही थी, कही चौपड हो रहा था। इसी प्रकार बरात मे आये हुए हाथी और घोडे भी उत्तम व्यवस्था का सुख लूट रहे थे (परन्तु इन्हे यह पता न था कि यह सारा आमोद-प्रमोद आगे चलकर उनके प्राण का गाहक हो जायगा)। युद्ध का वर्णन भी कवि ने अपेक्षित विस्तार से किया है। बाणो का छूटना, वीरो का गिरना, कबन्धो (धड) का फडफड़ाना, चक्र-ससाग-गदा-छुरी-कटारी आदि का प्रयोग। दतवक्र-जरासघ आदि का अक्रूर, हलधर आदि से युद्ध करना। कृष्ण और बलराम द्वारा चक्र तथा हल-मूसल का प्रयोग, भीषण युद्ध-रव, रक्त प्रवाह और कृष्ण द्वारा रुक्म के रथ से बाँध दिये जाने का क्षिप्र वर्णन कवि ने किया है। विधिवत् विवाह की स्थिति तो आने नही पाई किन्तु द्वारिका पहुँचने पर वर के यहाँ जिस प्रकार का आतिथ्य, विनायक-पूजन, वर-वधू की क्रीडा आदि होती है कवि ने उसका थोडा-सा वर्णन किया है। अन्तिम वर्णन वर-वधू की प्रणय-रात्रि का है जिसमे रुक्मिणी की लज्जा, कम्प और थरथराहट का तथा प्रणय-केलि की तरगो का साकेतिक विवरण है। ये सारे वर्णन थोडे-थोडे मे ही सही मिलकर काफी हो जाते हैं, इनके कारण काव्य की श्री मे समृद्धि आई है और प्रबन्ध रोचक एव मनोग्राही हो उठा है।

सवाद—प्रस्तुत प्रबन्ध मे सवादों की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, सवाद आवश्यकतानुसार पिरोए गए हैं, ऊपर से जोडे हुए नही लगते। सवादो के छन्द भी कथात्मक छन्दो से पृथक नही हैं फलत जहाँ पात्रो की पारस्परिक बातचीत के अवसर आए हैं वहाँ पात्र स्वाभाविक रूप से ही एक दूसरे से अपनी बातें कहते सुनते पाए जाते हैं। कथन प्रतिकथन का यह विधान दो तीन स्थानों पर ही है। कई एक स्थानो पर तो केवल एक-पक्षीय वार्ता या कथन मिलता है प्रतिकथन नही रक्खा गया है। उदाहरण के लिए राजा भीष्मसेन का विप्र को विशेष रूप से कहना कि रुक्मिणी को पिता के समान वेद पढाओ और उसे सत, शील, पतिव्रत धर्म प्रतिष्ठित करने वाले ग्रन्थो का ही अध्ययन कराओ या लाडली रुक्मिणी की इच्छानुसार स्थापत्य-कला विशारदो से राजा भीष्मसेन का यह कहना कि अमुक-अमुक रीति से गौरि-मन्दिर का निर्माण करो। इसी प्रकार रुक्मिणी को यौवनावस्था मे पदार्पण करते देखकर माता का उसे उपदेश देना कि सयानी लडकियो को अपना व्यवहार बदल देना चाहिए तथा लज्जा और सकोच के साथ रहना चाहिए, कृष्ण को वर रूप में पाने के लिए रुक्मिणी की गौरी से प्रार्थना, एक बार सखियो द्वारा कृष्ण के प्रति रुचि उत्पन्न होने पर दूसरी बार कृष्ण से मिलने के ठीक पूर्व यह जान लेने पर कि माता-पिता ने रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से करना निश्चित किया है, रुक्म का मा को तथा औरो को फटकारना,

रुक्मिणी की ब्राह्मण से कृष्ण के पास पत्र पहुँचाने की विनय, ब्राह्मण की श्रीकृष्ण से प्रार्थना आदि सवाद एकपक्षीय ही हैं। इन स्थलों पर प्रतिकथन विशेष अपेक्षित भी नही। प्रतिकथनो को बचाकर कवि ने प्रबन्ध को अनावश्यक रूप से लम्बा होने से बचा लिया है। इसे भी कवि का प्रबन्ध-कौशल ही मानना पडेगा। कौन-सी चीज किस मात्रा मे प्रबन्ध मे रक्खी जानी चाहिए इस बात का आलम को अच्छा बोध था।

रुक्मिणी और उसकी सखियो की बातचीत दो स्थानों पर रक्खी गई है, एक तो उस समय जब नव-निर्मित गौरि मन्दिर मे पार्वती नियमित रूप से पूजन करने के लिए जाने लगती है। इस अवसर पर एक चतुर सखी कुछ तो हास-परिहास मे और कुछ साभिप्राय रुक्मिणी से कहती है कि "गौरी की पूजा करती हो तो मन का आचल पसार कर कुछ माँग लो, छूछी सेवा मत करो।" रुक्मिणी उत्तर देती है कि—"मैं तो अपनी मा का सुहाग और पिता का आरोग्य माँगूंगी।" सखी के कथन मे कितना अनुभव गर्भित है और रुक्मिणी के वाक्य मे कितना भोलापन है। सखी उसे समझाती है कि स्त्री का भाग्य उसके पति से बँधा रहता है माता और पिता को किस वस्तु की कमी है? अपनी पूजा को प्रेम की पूजा मे परिणत कर दो, द्वारावती के राजा कृष्ण को वर रूप मे माँगो। उसके बाद वह कृष्ण के गुणो का, शक्ति का, सौन्दर्य का, ऐश्वर्य का, यश का, सौकुमार्य आदि का विषद वर्णन कर चलती है। कृष्ण के मोहक व्यक्तित्व से अभिभूत हो रुक्मिणी उत्तर नही दे पाती। श्याम की मूर्ति को हृदय मे बसाकर वह उसके प्रेम से भर उठती है। सखियो और रुक्मिणी के बीच सवाद का दूसरा मौका आता है जब चदेरी नरेश की बारात आकर कुदनपुर की सीमा पर ठहरती है और उनके आमोद-प्रमोद के गान-वाद्य को सुनकर रुक्मिणी प्रश्न करती है कि यह भाझ और मृदग कहाँ बज रहा है? जब सखियाँ शिशुपाल का आगमन सूचित करती हैं और उसके कारण-रूप मे माता-पिता की इच्छा का निरादर करने वाले रुक्म की करतूतो की कहानी बतलाती हैं तो रुक्मिणी वज्राहत-सी हो जाती है। सखियाँ उसे ढाढस देती हैं और कृष्ण को पत्र लिखने का अमोघ सुझाव देती हैं। सखियो की इन बातो का सवाद की दृष्टि से चाहे महत्त्व न भी हो किन्तु कथानक का दिशा-निर्देश करने मे बडा हाथ है। उस समय का सक्षिप्त सवाद भी बडा रोचक है, जब स्वप्न मे कृष्ण-प्राप्ति का आश्वासन स्वयं पार्वती से पाकर रुक्मिणी अपनी माँ से समस्त कथा कह डालती है। बडे लाड के साथ वह अपने अन्तर्तम का रहस्य माँ से कहती है—

> तुम नित कहति किस्न की बाता। सुनि सुनि उनहिं मोर मनु राता॥
> जाकी भगति बालपनु होई। पूरब जनम संजोगी सोई॥

और माँ उसे कोई प्रोत्साहन न देकर उल्टे निरुत्साहित ही कर देती है—"अब इस बात को अपने तक ही रक्खो। स्वप्न मे भी कन्याएँ अपने वर की चर्चा नहीं किया करती। यदि रुक्म इस बात को सुन लेगा तो मठ को मिटा देगा और तुम्हे भी विष दे देगा। स्वप्न मे भी कन्याएँ वर को नहीं देखती तथा स्वप्न मे पाई हुई वस्तु को स्वप्न ही समझा करती हैं। कन्याएँ माता-पिता के वश मे रहा करती हैं और उत्तम कुल मे पाणिग्रहण करती हैं।" माँ के उक्त कथन मे मध्य-कालीन एव अर्वाचीन हिन्दू घरो के सस्कार झलक रहे हैं जहाँ

कन्या को विवाह-विषयक प्रसंग मे किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता नही दी जाती रही है। द्वारिका से लौटने पर ब्राह्मण और रुक्मिणी का संक्षिप्त कथनोपकथन भी उल्लेखनीय है जिसमे ब्राह्मण सक्षेप मे कृष्ण के सोत्साह आगमन की बात करता है, रुक्मिणी हर्षातिरेक मे सहसा विश्वास नही कर पाती, ब्राह्मण विश्वास दिलाता है तब वह उत्कण्ठापूर्वक कृष्ण का संदेश पूछती है और उनसे सम्बन्धित सारा विवरण जान लेना चाहती है। उसकी वाणी मे श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा व्यक्त हुई है और अतिशय दीनता भी। इस प्रकार ये छोटे-छोटे सवादात्मक स्थल प्रबन्ध मे नवीनता, ताजगी, सजीवता, चरित्रानुकूल भाव-विविधता आदि की सृष्टि करने मे सहायक हुए हैं। कथनोपकथनो से पात्रो की मनोवृत्तियो का भी निदर्शन हो सका है और इस प्रकार उनके चरित्रो का चित्रण भी। जैसा पहले कह चुके हैं सरल स्वाभाविक ढग से ही सवाद रक्खे गये हैं। इनकी अति नही है और न अत्यन्ताभाव ही है। ये कथा की धारा मे यथावश्यक रूप से समो दिये गये हैं।

मार्मिक स्थल—प्रबन्ध की योजना मे काव्यालोचक मार्मिक स्थलो की पहचान की बात करते आए हैं। प्रस्तुत कथा-काव्य में निम्नलिखित स्थल बडे मार्मिक हैं—(१) चदेरी नरेश शिशुपाल का विवाह के लिए आगमन जान लेने पर रुक्मिणी की दशा, (२) रुक्मिणी का कृष्ण के नाम पत्र जिसमे उसमे आत्मदशा का वेदनापूर्ण निवेदन किया है, (३) रुक्मिणी का पत्र पढकर कृष्ण की मनोदशा, (४) कृष्ण का संदेश प्राप्त होने तक रुक्मिणी की चिन्ता। हम देखते हैं कि इन कथा प्रसगो की मार्मिकता का कवि ने पूरी रसज्ञता और मार्मिकता से उद्घाटन किया है। कुन्दनपुर की सीमा पर अनभीष्ठ शिशुपाल के आगमन से रुक्मिणी को वज्र का सा आघात पहुँचता है। विधाता का यह परिहास उसे असह्य हो उठता है। हस की जगह भला काग कैसे शोभित हो सकता है? हरी-भरी रुक्मिणी दुःख से विवर्ण हो जाती है। *उसकी दशा जल के अभाव से ग्रस्त मीन सी हो जाती है—*

> हरित पीत भइ स्याम सनेही। ता मइ रही मीन हुइ देही॥
> तलफं तनक नीर के डारे। जियं न नेह नीर ते न्यारे॥
> पिउ पिउ प्रान अधार है, धार स्वात की एक।
> चात्रिग और न जिय धरहिं, सागर सरित अनेक॥

प्रवीण सखियाँ उसे समझाती हैं कि हमारी मत्र के समान एक बात सुन लो—यदि तुम्हारे कृष्ण तुम्हे न मिलें तो तुम अन्तिम उपचार के रूप मे अपने प्राण दे देना। हम सब और तुम्हारी माँ भी तुम्हारे बिना जीवित न रहेगी लेकिन मौत की घडी आने में अभी सोलह पहर समय शेष है। शीघ्रगामी दूत के हाथों अपनी दशा का निवेदन करते हुए कृष्ण को पत्र भेजो, अपना चैतन्य कायम रक्खो और श्रीकृष्ण तुम्हे उसी प्रकार मिलेंगे जैसे "दमयन्ती को नल मिले,—सीता को श्री राम।" सखी की बातो से प्रेरित हो रुक्मिणी श्रीकृष्ण को पत्र लिखती है। पत्र क्या है जैसे उसकी अन्तर्व्यथा का मूर्त्त रूप ही हो। वह अपने को कृष्ण की दासियों की दासी बतलाती है, कृष्ण के पूर्व जन्मो के गुणो का स्मरण दिलाती है, उन्हे पाने के लिए अपनी पूजा-अर्चा का कथन कहती है और बताती है कि किस प्रकार स्वय पार्वती ने उसे विश्वास दिलाया था। जिस दिन से उन्होने मुझे आशा बँधाई है मेरे प्राण तुम्हारे चरणो के निकट ही रहते हैं—

डारी मन की डोरि, गाडे गहियहु साजना।
छोड़हु प्रीति न तोरि, तन जिमि गुड़िया डोर भइ।।

माता-पिता की इच्छा के विपरीत रुक्म के आचरण और शिशुपाल के बारात ले आने की सारी कथा उसने लिख दी। वह कहती है—हे स्वामी! तुम दूर समुद्र के पास बसते हो, यहाँ शत्रु मृत्यु के समान निकट आ गया है। यदि आप रक्षा करें तो करें अन्यथा मुझे मौत का ही आसरा है। ऐसी मार्मिक वाक्यावली भला किसके हृदय को द्रवीभूत न करेगी—

विसहर काल कंठ ढिग आयो। गारुड़ सागर तीर बतायो।।
कंठ प्रान रसना लौं नामहिं। पथिक बसेर करैं विश्रामहि।।
धाइ धाइ अधरन ठहराहीं। दिज फिरि आवत लौं फिरि जाई।।

वह कहती है—प्रिय कृष्ण के आने की अवधि का आधार दे दे कर मैं अपने प्राणों को किसी प्रकार रोके हुए हूँ अन्यथा प्राण तो विसर्जित होने के लिए बार-बार अधरों तक आ जाते हैं। इधर अश्रु भी अनवरत बरसते हैं, हे प्रिय! अविलम्ब आने की कृपा करो, गज-मोचन की कथा सुनकर मुझे आपकी कृपा का भरोसा हो गया है। अपना सारा दुःख मैं लिख नहीं सकती क्योंकि समय कम है, व्यथा की कथा अनन्त है—

अलप लिखो पत्री है सोई। बहुत लिखौं तो पोथी होई।।
यह दुख अलप बहुत करि जानहु। अंक अंक पोथी करि जानहु।।

मेरे कातर प्राण रसना पर आकर ठहरे हुए हैं, रसना जब आपका नाम रटते-रटते थक गई तो जीव और हाथ को लेखनी उठानी पड़ी। हे नाथ! अब विलम्ब मत कीजिएगा, पहले गौरी के मन्दिर में पधारिएगा वहाँ मुझे शरण में लेकर फिर शत्रु से निपटियेगा। वह समय बताइये जब मुझे आपके दर्शन होंगे, उस समय तक मेरे लिये एक-एक पल एक-एक वर्ष-सा बीतेगा। मैं लज्जा छोड़कर आपसे ढिठाई कर रही हूँ, उसका बुरा मत मानिएगा।

ऐसे हृदयद्रावक पत्र को पढ़कर कृष्ण भी द्रवीभूत हो उठते हैं। पुरातन प्रीतिरीतियों का उन्हें स्मरण हो आता है, बार-बार पत्र पढ़ते हैं और उसे हृदय से लगाते हैं (यहाँ प्रेम का समत्व देखा जा सकता है)। स्मृति के जल से सिंचित होते ही हृदय में पुरातन प्रीति की ज्वाला भभक उठती है जैसे चूने की अग्नि—

विरह बुझानी सुरति जल, सींचत उठी सु लागि।
प्रीति पुरातन प्रज्वली, ज्यों चूने की आगि।।

वियोग का पत्र पढ़कर पुलक-प्रस्वेद से कृष्ण का हृदय भीग गया। रुक्मिणी के स्मरण और उसके दुःख की कथा से कृष्ण के हृदय में ऐसी वेदना हुई जैसे कलेजे में बरछी की अनी धँसकर पीड़ा पहुँचाती है—

आखिन देखे आखर जेते। होयँ पैठि पंजर जिन्हि रेते।।
शिथिल हस्त धीरज नहिं धरई। पत्री छूटि छूटि भुइ परई।।
व्याकुल जनि विसहर विस चढ़ई। छाती धरै की पाती पढ़ई।।
होय तरकर नैनन्ह जल ररवत। कागद भो कासी कर करवत।।

जे मुख आवहिं आखर खरे। रोम रोम सर हुइ संचरे ॥
पढी न जाई वियोगिन चीरो। हीये सकेल सास भइ भीरी ॥

पत्र पढकर कृष्ण की आँखें लाल हो आईं, अश्रुपात होने लगा, हृदय भर आया, प्रेम उमड़ने लगा। रुक्मिणी की व्यथा सहस्रगुनी होकर कृष्ण को व्यापी। विरह के जिस विषैले दश ने रुक्मिणी को डसा था उसका विष कृष्ण पर चढ गया। ऐसी ही हृदयद्रावक दशा का कवि ने सविस्तार वर्णन किया है। पत्र पढने पर कृष्ण की प्रेम-द्रवित स्थिति का बड़ा ही जीवन्त चित्रण कवि कर गया है। कृष्ण की यह प्रेम विह्वलता उन्हें कर्मोद्यत कर देती है।

उधर कृष्ण के आने तक रुक्मिणी चिन्तित रहती है। उसके मन मे भी तरह-तरह के भाव उठते रहते हैं—ब्राह्मण पहुँचा या नही, कही उसे कुछ हो तो नही गया, यदि समय पर कृष्ण नही आये तब तो मेरी भस्म भी किसी को न मिलेगी। एक-एक पल वह झेल रही थी और मरने का उपाय सोच रही थी। कथा की दृष्टि से इस छोटे से काव्य मे ये ही विशेष मार्मिक प्रसग हैं जिनका कवि ने पर्याप्त मनोयोग एव सहृदयता से वर्णन किया है। पाठक इन प्रसगो को पढ-पढकर हृदय की मुक्तावस्था या रसदशा तक बार-बार पहुँचता है।

चरित्र चित्रण और मनोविश्लेषण—मध्ययुग का प्रबन्धकार कवि प्रबन्ध रचना करते समय प्रबन्ध या कथा तत्व को ही विशेष महत्व दिया करता था। आलम की प्रस्तुत रचना मे भी चरित्रादि का चित्रण तो हुआ है पर चरित्र तत्व को अतिशय प्रमुखता प्राप्त नही हो सकी है फिर भी चरित्रो की रेखाएँ उभरी हुई हैं और हम प्रकृति भेद से उन्हे पहचान सकते हैं।

पुरुष पात्रो मे कृष्ण और रुक्म (क्रमश नायक और खलनायक) के चरित्र महत्वपूर्ण हैं, भीष्मसेन और शिशुपाल के गौण। कृष्ण तो मनुष्य के रूप मे आचरण करने वाले साक्षात ईश्वर ही हैं। उनके ईश्वरत्व का सकेत कवि ने स्थान-स्थान पर किया है। उदाहरण के लिय द्वारावती वर्णन के प्रसग मे, सखियो द्वारा उनकी गुणावली वर्णन के प्रसग मे, पार्वती और रुक्मिणी के बीच होने वाले वार्तालाप के सदर्भ मे, रथ पर चढकर कुन्दनपुरी आते समय, कुन्दनपुरी मे पहुँचने पर जब लोग उन्हे देखते हैं उस समय तथा जब सशस्त्र और सजग सेना के बीच से वे रुक्मिणी को उठा ले जाते हैं उस समय, किन्तु पात्रो का यह दैवी स्वरूप आज हमे विशेष प्रभावित नही करता। कृष्ण का जो मानव सुलभ स्वरूप है वही हमारे अन्त करण का स्पर्श करता है, इस दृष्टि से हम उनमे नाना मानवीय गुणो की भी प्रतिष्ठा पाते हैं। उदाहरण के लिए रुक्मिणी का पत्र पढने के अनन्तर श्रीकृष्ण की जो मनोदशा चित्रित की गई है वह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक रीति से उनके स्नेही स्वरूप को उभार कर सामने ला देती है। जिस विस्तार और त्वरा के साथ कवि ने कृष्ण के हृदय मे उठने वाले भावो के ज्वार का चित्रण किया है—कुन्दनपुरी के ब्राह्मण के आगमन की बात सुनते ही उनकी उत्सुकता, अधीरता, प्रणय-भावोद्रेक, स्मृति, रोमाच, प्रस्वेद, अश्रुपात, मनोगत चाचल्य, शूलवत पीडा, चित्त की बेचैनी, अतर्दाह, श्वासोच्छ्वास आदि का जो उद्वेगमय स्वरूप कवि ने चित्रित किया है—उसे देखकर कृष्ण के प्रेमी हृदय का पता चलता

है। कृष्ण का प्रेमी स्वरूप इतनी सघनता और तीव्रता के साथ बहुत कम दिखलाया गया है। उन्हें अपने प्रेम करने वाले की पीड़ा असह्य हो उठती है, वे बिना सोच-विचार किये केवल भावों की प्रेरणा से ही रुक्मिणी के उद्धार के लिए उद्यत हो जाते हैं। जहाँ उनका अन्तर्वास नाना स्थलों पर अत्यन्त सम्मोहक दिखलाया गया है वहीं वीरता में वे रुक्म, जरासंध, शिशुपाल और दन्तवक्र जैसे दैत्यों के भी दाँत खट्टे करते पाये जाते हैं। रुक्म खलनायक है जो कथा के फलागम में भीषण बाधा है। वह बहुत ही उद्दण्ड, निर्भीक, स्वेच्छाचारी, माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना करने वाला, उनका अपमान करने वाला, दुःशील, उद्धत, क्रोधी, अपव्ययी, आमोद-प्रमोद में लिप्त, असमय बातें करने वाला, लोगों से भय दिखाकर काम लेने वाला, मित्रों को माता-पिता से अधिक मानने वाला, निर्विचार कार्य करने वाला प्राणी है। अपने दुष्कृत्य के लिए जब वह उचित दण्ड पाता है—पराजय और रथ से बाँध दिया जाना—तब कहीं जाकर उसे लज्जा आती है। भीष्मसेन कुन्दनपुर के राजा और रुक्मिणी के पिता हैं। वे अत्यन्त सरल प्रकृति वाले, कृष्ण भक्त, अपनी संतति के प्रति अतिशय वात्सल्य भाव रखने वाले, उदार, सहिष्णु, क्षमाशील और अतिथि-परायण व्यक्ति हैं। शिशुपाल छिछली मनोवृत्ति वाला, अपनी बुद्धि से काम न लेने वाला, जरा-सी बात में फूल उठने वाला, विवेकहीन व्यक्ति है। इसी से तो सुख की राशि लूटने के लिए जाकर वह दुःख और संताप के ढेर बटोर लाता है।

स्त्री पात्रों में रुक्मिणी काव्य की नायिका है। सती पार्वती की भक्त और लज्जावती, सुशील, माता पिता को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझने वाली अबोध कन्या है। उसके चरित्र में हम विकास होते हुए भी देखते हैं—शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके लक्ष्मी-सी रूपवती रुक्मिणी सरस्वती-सी ज्ञानवती हो जाती है, भोली-भाली रुक्मिणी को हम कृष्ण की अनन्य अनुरागिनी के रूप में विकसित होते देखते हैं। वह माता पिता की आज्ञानुवर्तिनी गौरि में विश्वास करने वाली, विनम्र, सहृदय, प्रिय के प्रति निष्ठावान तरुणी है। इसके व्यक्तित्व के चित्रण में कवि ने प्रचुर मनोविश्लेषण-शक्ति का परिचय दिया है—ब्राह्मण के द्वारावती से लौटने में विलम्ब होने पर उसकी जो उत्कण्ठा और विकलता दिखाई गयी है वह इस तथ्य का सबसे सुन्दर उदाहरण है। सखी द्वारा कृष्ण की वार्ता जब वह पहली बार सुनती है उस अवसर पर भी उसकी मनोभावनाओं का चित्र पूर्णतः मनोविज्ञान सम्मत है। ब्राह्मण के लौटने के बाद से कृष्ण के रथ पर बैठने तक की अवधि के बीच के रुक्मिणी के सारे चित्र अथवा ब्यौरे अतिशय मनोवैज्ञानिक हैं। संकल्प-विकल्प पूर्ण उसकी जो मानसिक स्थिति इस सन्दर्भ में चित्रित हुई है वह देखने योग्य है। अत-अंत तक उसकी दीन मनोदशा के चित्र अत्यन्त सप्राण हैं। रुक्मिणी की माँ मूर्तिमती मध्ययुगीन हिन्दू गृहिणी है जो अपनी कन्या की मनोवाछाओं को दमित करके रखने में विश्वास करती है, पुत्र की भी फटकार चुप-चाप सहन कर लेती है, लज्जा और संकोच की मध्यकालीन मर्यादाओं में अपनी कन्या को बँधे रहने की सीख देती है—

> माई देखि आँगनि जनि डोलहि। पितावचन सुनि ऊंच न बोलहि॥
> रुकुम देखि उबरी दुरि जाहू। राजहि देखत लाजन लाहू॥
> भोर उठहु तारन की छाहीं। चेरी सहस संग मिलि जाहीं॥

सूधी दिस्टि भुमि संग जाही । खरग धार जिमि मारग प्राही ॥
चौदहु ते घूंघट करि लेही । तै कन्या कुल पहरो देही ॥

उसकी इन बातो से हम उसका भीरु और दबा हुआ सत्रस्त-सा व्यक्तित्व देखते हैं, रूढि और परम्परागत ढग का अविकसित व्यक्तित्व । इस प्रकार इन दो-चार रेखाओ मे ही मां का चरित्र अकित हो उठा है, उसके सोचने का ढग भारत के एक अपढ वर्ग की स्त्री जाति की मनोभावनाओं को व्यक्त करता है और वह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है । सखियाँ अनेक हैं अत स्पष्ट ही उनका कोई एक चित्र सामने नही आता फिर भी वे बडी विदग्ध हैं । जो सखी रुक्मिणी मे कृष्ण का अनुराग जगाती है वह तो बडी अनुभवी और चतुर है तथा अपनी प्रिय सहेली रुक्मिणी की सच्ची हितैषिणी भी । उसे मन्त्र-सी बात कहकर कि शिशुपाल को ही यदि पति रूप मे स्वीकार करना पडे तो मर जाना भला परन्तु मरने के पूर्व कृष्ण को पत्र भेजने का जो उपाय बताती है उसकी सूझ-बूझ बेजोड है । इन सहेलियो मे बडी आत्मीयता है, बडा सद्भाव है ।

एक दो प्रसग और भी हैं जहाँ पात्रो का मनोविज्ञान देखने योग्य है जैसे रुक्म के भय से पडितो और ज्योतिषियो का यह न कह सकना कि रुक्मिणी और शिशुपाल के विवाह का योग ठीक नही, उनमे सदा अनबन रहेगी । द्वारिका मे कृष्ण के महल के द्वारपाल का उपेक्षा और अपमान की दृष्टि से कुन्दनपुर के ब्राह्मण की ओर देखना भी बडा अर्थगर्भित है तथा औरो को हीन भाव से देखने की उसकी वृत्ति द्योतित करता है । कृष्ण के कुन्दनपुर पहुँचने पर कोई कहता है कि राजा भीष्मसेन ने निमत्रण देकर उन्हें बुलाया है, कोई कहता है कि वे स्वेच्छा से कौतुक देखने के लिए आये हैं । कोई कहता है कि वे राजाओ से बदला लेने के लिए आये हैं, कोई कहता है कि वे कलह अवश्य करेंगे । रुक्म क्रुद्ध होकर कहता है कि एक कृष्ण के आने से क्या होता है, कहो तो उन्हे सारी सेना सहित अकेले ही घेर लूँ । कुब्र ने कहा—मनुष्य को आत्मश्लाघा से विरत ही रहना चाहिये और अपने को छोटा ही समझना चाहिये । यहाँ हर वाक्य अलग-अलग व्यक्तियो के चरित्र को तो व्यक्त कर ही रहा है, समूह की मनोवृत्ति को भी अच्छी तरह घोषित कर रहा है और इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि व्यष्टि ही नही समष्टि का चित्र प्रस्तुत करने मे भी पूर्णत सफल है । समूह का चित्र प्रस्तुत करने का एक मौका वह भी है जब कृष्ण रुक्मिणी-हरण करके चल देते हैं और लोग हाथ उठा-उठाकर चिल्लाते हैं, भोजन छोड-छोडकर भागते हैं तथा मारो-मारो, पकडो-पकडो बोलते हुए पीछा करते हैं । यह चित्र भी अत्यन्त सजीव है ।

काव्य-कोटि और रचना का उद्देश्य—रुक्मिणी के उद्धार की कथा को ही लेकर यह काव्य मूलत चलता है । रुक्मिणी और कृष्ण के विशद जीवन का खण्ड-वृत्त या एकदेशीय कथा लेकर चलने के कारण यह काव्य 'खण्ड-काव्य' कहा जायगा । थोडी-सी प्रारम्भिक बातें कुन्दनपुर की और पुत्र तथा कन्या के जन्म आदि की, केवल प्रस्तुत वृत्त को पूर्णता देने की दृष्टि से रखी गई हैं, इसमें न तो अवान्तर कथाएँ हैं और न पात्रो के दीर्घकालीन जीवन का पूरा विवरण ही इसमे है । रुक्मिणी के कृष्णानुराग और कृष्ण के हृद्गत प्रेम का प्रदर्शन ही मुख्य है जो एक घटना के चित्रण द्वारा सम्पन्न हो गया है और प्रणयी युगल का मिलन होते ही काव्य भी समाप्त हो जाता है । एक छोटे से उद्देश्य को लेकर चलने के कारण यह खण्ड-

चतुर्थ अध्याय

रीति-स्वच्छन्द काव्य का अध्ययन : कला पक्ष

१. स्वच्छन्द धारा के कवियों का कला विषयक दृष्टिकोण

२. भाषा का स्वरूप

३. अलंकार योजना

४. छन्द विधान

*

१

स्वच्छन्द धारा के कवियों का कला-विषयक दृष्टिकोण

स्वच्छन्द धारा के कवि समसामयिक काव्य-परपराओं से परिचित थे इसमें सदेह नही, क्योकि किसी सीमा तक वे भी उन प्रभावों को लिए हुए चल रहे थे, फिर भी उन्होंने अपनी अलग काव्य-लोक बनाई इसमे सदेह नही। कुछ कवियों ने तो बहुत स्पष्ट रूप से ही परम्परागत काव्य से अपने काव्य-मार्ग की भिन्नता सूचित की है जैसे घनआनन्द और ठाकुर, जिन्होंने कह दिया है कि और लोग तो कवित्त रचते है किन्तु मेरे कवित्त तो मुझे ही रचायित करते चलते हैं अर्थात् रीतिबद्ध कवि औरों के तोष के लिए लिखते थे जिसके कारण उनकी कविता मे कारीगरी, चमत्कार, प्रदर्शन आदि के तत्व उभर कर आ गए हैं जबकि इसके विपरीत रीतिमुक्त कवि आत्मतोष के लिए, अपना जी हल्का करने के लिए कविता लिखा करते थे—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत' कहकर घनआनन्द ने स्पष्ट ही परम्परागत कवियो और काव्य से अपना मार्ग-भेद सूचित किया था। यह बात घनआनन्द के युग के काव्य-मर्मज्ञो ने स्वीकार भी की थी। ब्रजनाथ ने घनआनन्द की प्रशस्ति मे जो कुछ कहा है उससे भी यही प्रमाणित होता है कि घनआनन्द सरीखे कवियो की कविता समसामयिक कविता के मेल मे न थी। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि घनआनन्द परम्परागत शैली के कवियो से भिन्न स्वच्छन्द प्रकृति और पद्धति के कवि थे और यह परम्परा-स्वातन्त्र्य ही उनका भेदक गुण है जो उनके भावलोक मे तो देखा ही जाता है, भाषा शैली, अथवा शिल्प पक्ष मे भी लक्षित होता है और इसी कारण उनके तथा अन्यान्य स्वच्छन्दमति कवियो के काव्य मे चित्त-वित्त-हारिणी शक्ति भरी हुई है। मन-प्राण से घनआनन्द के कवित्तो पर मुग्ध प्रशस्तिकार लिखता है कि घनआनन्द द्वारा बरसाया गया एक-एक वर्ण (अक्षर) स्वाति-जल के समान है जो छन्दो की शुक्तियो (सीपियो) मे पडकर मोतियो के समान प्रेम की आभा झलकाता दिखाई देता है। ये सुन्दर मोती सहज ही हाथ आने वाले नही—इनका सौंदर्य भी सहज गम्य नही, वह विशेष दृष्टि यत्न और साधना-सापेक्ष है। ये कवित्त के मोती चित्त के डोरे मे पिरो रखने लायक हैं और ऐसी सुन्दर पानिप-

भरी कवित्त-मुक्ताओं का हार कठ का हार ही बनने के योग्य है (कण्ठस्थ रखने योग्य है) उसकी इससे अतिरिक्त दूसरी न तो शोभा ही है और न सार्थकता।

यह ठीक ही कहा गया है कि घनआनन्द के काव्य मे सुन्दर, विमल और बहुत से अर्थ भरे हुए हैं। प्रशस्तिकार यह भी कहता है कि घनआनन्द के काव्य के सौंदर्य के मूल उत्स तक सहज ही, एक बार के ही पारायण से नहीं पहुँचा जा सकता, बहुत यत्न से ही वह सौंदर्य हाथ लगता है। ऐसी 'परम सुढार' अनोखे सांचे मे ढली हुई एक सी नवीन सुन्दर, सुगढ और अनूठी वाणी वाली कविता मौक्तिक-आभ ही है, हर तरफ से चमकती हुई—पानीदार और अर्थवती। ब्रजनाथ ने एक बात और कही है घनआनन्द की वाणी (भाषा) का बखान बुद्धिजीवी (हृदयहीन) नही कर सकते इसलिए कोरे बौद्धिक जीवो या बुद्धि व्यवसायियो के लिए घनआनन्द की कविता ऐसी ही है जैसे गधे को दाख (अंगूर) चखाना। नेह की चोट खाया हुआ, हिय आखिन प्रेम की पीर तका हुआ और चाह के रग में भीगे हुए हृदयवाला जीव ही घनआनन्द की कविता के गूढ भेद को जान सकता है, जो ऐसा नही वह (पशु) उनकी वाणी के मर्म को क्या जान सकता है, बखानना तो बहुत दूर की बात है। इन्ही गुणो के कारण घनआनन्द की कविता ऐसी है कि जो उसका थोडा-सा भी रस पा जाता है उसे पढे विना नहीं रहता। ठाकुर ने भी इसी प्रकार अपने युग के कवियो से अपना स्पष्ट प्रस्थान-भेद सूचित किया है। उनके स्वर मे तो थोडी ललकार भी है। उन्होंने कहा है कि प्रमागत शैली की कविता को तो मैं कविता ही नहीं समझता जो ढेले के समान सभा के बीच मे लुढका दी जाती है तथा जिसमे बस वही पिटी पिटाई उपमाओ मीन, मृग, खजनादि को झोंक दिया जाता है। स्वच्छन्द धारा के अन्य कवियो ने इतने स्पष्ट रूप से अपना मतव्य नही प्रस्तुत किया है किन्तु उनकी काव्य सृष्टि के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे विना नहीं रह सकते कि ये सभी कवि काव्य-शिल्प के सम्बन्ध में लगभग एक-सी दृष्टि रखते थे और बहुत कुछ समान आदर्शों को लेकर चल रहे थे।

रसखान की कला-विषयक दृष्टि

भक्त भावापन्न और परमप्रेमी रसखान ने अपनी काव्य दृष्टि के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कहा है परन्तु उनके काव्य का अन्तदर्शन उनकी कला सम्बन्धिनी धारणा का थोडा बहुत उद्घाटन अवश्य कर देता है। काव्य के कला पक्ष का उनमे न तो ह्रास ही मिलता है और न उसका अभाव ही, प्रत्युत् अनेक दृष्टियों से तो उनके काव्य मे सौन्दर्य का असाधारण विधान भी देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए उनकी भाषा की सफाई और प्रवाह को लिया जा सकता है, उनके शब्द-ग्रहण एवं भाषा-प्रयोग विषयक आदर्श को लिया जा सकता है। वे प्रयासहीन भाषा-प्रयोग के कायल थे। भावानुभूति की भगिमा से ही भाषा की भगिमा प्रसूत होनी चाहिए। इसी प्रकार व्यक्तित्व के ही अनुरूप भाषा भी होनी चाहिये। प्रचलित शब्दो और प्रयोगों का नया विधान, सस्कृत, फारसी, अरबी, बुन्देली, राजस्थानी शब्दों, प्राचीन शब्दावली, साहित्यिक परम्परा आदि नाना स्रोतो से वे शब्द-सग्रह करने के पक्ष मे थे। इस प्रकार शब्दो के ग्रहण मे उदारता, तद्भव शब्दों के प्रयोग पर बल पाण्डित्य प्रदर्शन से दूर सामासिक पदावली का अभाव आदि उनके भाषा सम्बन्धी आदर्श थे तथा ये आदर्श स्वच्छन्द कवि के अनुरूप ही थे। भाषा प्रयोग के सम्बन्ध मे उनकी उदार दृष्टि तरह-तरह के विधानों

से भाषा को समृद्धि दिलाने की ओर ले गई थी। प्रयोग वैशिष्ट्य शब्दों के नितात निजी अथवा वैयक्तिक प्रयोग जिसके द्वारा भाषा मे विशेष सामर्थ्य आई है और व्यजकता पैदा हुई तथा मर्मस्पर्शिता भी उनकी भाषा के प्रधान गुण हैं। भाषा मे स्वच्छता, सरसता, प्रवाह प्रयोगों को ही मुहावरे के समान सशक्त बनाने की चेष्टा उनकी भाषा विधान की अन्य विशेषताएँ हैं। प्राचीन भाषाओं के शब्दों को तत्सम नही वरन् तद्भव रूप मे ही ग्रहण कर वे उसे ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप ही रखना चाहते थे। अपनी भाषा को अधिकाधिक व्यजना-क्षम और सरस बनाने के पक्ष मे वे थे।

रसखान अलकारो की सायास योजना के कायल नही थे, वे साधन को साधन के रूप में ही रहने देना चाहते थे। उनके लिए कथ्य महत्त्वपूर्ण था कथन शैली नहीं। अपनी बात को अपने सहज ढग से ही कहने मे उनका विश्वास था। वे अभिव्यक्ति की मनोरमता, कथ्य की महत्ता और कथनकर्त्ता की अनुभूति की सचाई से ही सभव मानते थे। अभिव्यक्ति व्यक्तित्व की प्रकाशिका हुआ करती है इसलिए व्यक्तित्व ही अभिव्यक्ति विधि का नियमन करने वाली वस्तु है, कोई रीति का ग्रन्थ स्वच्छन्द कवि की शैली का निर्णायक नही हो सकता। अलकार रसखान तथा बहुतेरे स्वच्छन्द कवियो मे जब अनिवार्य और अपरिहार्य ही गये है तभी व्यवहृत हुए हैं और ऐसे अलकार जो चमत्कारमूलक नही हैं वरन् भावोत्कर्ष-कारक हैं। अनपेक्षित रूप मे प्रयुक्त अलकार रसखान की दृष्टि मे अनावश्यक ऐश्वर्य थे जिनसे सहज ही बचा जा सकता है। रसखान की सरल प्रकृति इन ऐश्वर्यों और सुकुमारताओं को ओढ नही पाती थी। सीधी-सी बात और सीधी-सी अभिव्यजना ही उनका काव्यादर्श था। बिना अभिव्यक्ति की अनिवार्यता के उनमे अलकृति नही मिलेगी। यही बात बोधा, ठाकुर आदि मे भी देखी जाती है किन्तु इनकी दृष्टि मे अलकार से रहित होने का अर्थ यह नही मान लेना चाहिए कि सौंदर्य के साधनों से इनका विरोध था।

छन्द आदि के क्षेत्र मे रसखान ने कुछ प्रचलित छन्दो को ही स्वीकार किया है तथा उनके सूक्ष्म नियमो की अवहेलना कर दी है जिससे यह पता चलता है कि भावो के वाहकों में स्वच्छता और लयात्मकता ही विशेष अपेक्षित तत्व हैं। वाहनों की प्रचुरता अथवा उसकी छोटी-छोटी बातो के पचडे मे पडना वे ठीक नही समझते थे।

आलम की कला-विषयक दृष्टि

आलम भी भाषा की पेचीदगी और वक्रता मे विश्वास नही रखते थे किन्तु उनमें रसखान की सादगी और उनकी-सी भाषा की धारावाहिकता नही मिलती। सभवत वे मध्यममार्गी थे, वे काव्य मे कला-पक्ष को थोडा महत्त्व अवश्य देते थे पर वह महत्त्व निश्चय ही अत्यधिक न था। कलात्मकता उनके समीप भावात्मकता से कम महत्त्व रखती थी। वे काव्य के शैली अथवा प्रसाधन पक्ष की उपेक्षा नही करते थे वरन् उसके सजाने सवारने में विश्वास करते थे। उन्होंने अपनी भाषा-शैली के लिये उतने ही अलकार ग्रहण किये जितना उनकी कविता-कामिनी वहन कर सकती थी, अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधन उनके लिये त्यक्त थे, परन्तु काव्य की बहिरग शोभा के सवर्धन की ओर उनकी निश्चित अभिरुचि थी इसमें संदेह नहीं। इस दृष्टि से स्वच्छन्दमति कवियो मे आलम और द्विजदेव पर रीति की छाप कुछ अधिक थी ऐसा मानना पडेगा। काव्य रचना के क्षेत्र मे उनका पथ कदाचित समन्वय का पथ था।

न भाव आहत हो न भाषा के सौन्दर्य को आंच आये यही उनका प्रयत्न था और इसी सतुलन के निर्वाह मे उनके काव्य-सौन्दर्य का मर्म निहित समझना चाहिये।

शब्दो के विशिष्ट प्रयोगो अथवा विशिष्ट प्रकार के शब्दो के प्रयोगो आदि के द्वारा वे भाषा मे सौन्दर्य लाने वाले कवि थे तथा अपनी भाषा-शैली को वैशिष्ट्य प्रदान करने मे विश्वास करते थे। रीति-स्वच्छन्द धारा के सभी कवियों मे यह बात देखी जा सकती है। उनकी भाषा-शैली मे उनका एक निजीपन मिलेगा। रसखान, घनआनन्द, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव सभी अपनी भाषा-शैली विषयक वैशिष्ट्य के कारण पहचाने जा सकते हैं। रीति-बद्ध कवियो की दीर्घ सूची मे इस शैलीगत वैशिष्ट्य वाले कवि गिनती के मिलेंगे। भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे आलम भी ब्रजभाषा के निजी स्वरूप की सुरक्षा मे विश्वास रखने वाले कवि थे। सस्कृत अथवा अरबी, फारसी के बाहुल्य मे ब्रजभाषा का स्वरूप ही बदल देने की प्रवृत्ति उनमे न थी। विविध भाषाओ के ज्ञान के कारण उनकी भाषा पचमेल खिचड़ी नही बनने पाई है। रसखान के ही समान उनकी भाषा भी सस्कृत, फारसी आदि के शब्दो को तद्भव रूप मे ही लेकर चली है। अपनी काव्य-भाषा की प्रकृति और प्रवृत्ति की सुरक्षा को उन्होंने कवि का प्रमुख धर्म माना था। अपनी भाषा मे अन्यान्य बोलियों के शब्दो को ग्रहण करने की उदारता, मुहावरो और कहावतो का प्रयोग, चित्रमत्ता और नादात्मकता का विधान, माधुर्य का समावेश और सुन्दर उक्तियो का प्रयोग करते हुए उन्होंने काव्य के कलापक्ष को कुछ निखरे हुए रूप मे उपस्थित करने की चेष्टा की है।

आलम स्वच्छन्दधारा के अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक अलकार-प्रिय थे। अनुप्रास, यमक आदि के द्वारा भाषा मे नाद-सौन्दर्य, लालित्य आदि के सृजन मे उनका विश्वास था, तथा प्रसगानुकूल अर्थालकारो की योजना द्वारा भावों को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना भी उन्हें आता था। किसी सीमा तक आलम काव्य-रीतियो से भी आबद्ध थे। अलकारवादी न होते हुए भी अलकारों की महत्ता और उपयोगिता मे उनका विश्वास था। छन्द के क्षेत्र मे हम उन्हे किन्ही नवीन छन्दो की ओर आकृष्ट हुआ नही पाते, हाँ प्रबन्ध रचना करते हुए उन्होंने अवश्य दोहा, चौपाई शैली ग्रहण की है। उनका असाधारण भाषाधिकार इस बात से प्रमाणित होता है कि उन्होने ब्रज के साथ-साथ अवधी के प्रयोग मे भी बडी माहिरी प्रदर्शित की है। इस प्रकार वे कवि की भाषा-सामर्थ्य मे विश्वास रखने वाले कवि थे। प्रबन्ध रचना मे उनकी दृष्टि सरल और सहज शैली के विधान पर थी तथा प्रबन्ध योजना में वे प्रबन्ध के सभी तत्वो के सतुलित विनियोग मे विश्वास रखते थे। यह सतुलन उनके उभय कथा-काव्यों मे असाधारण सौष्ठव प्रतिष्ठित करने मे सहायक हुआ है। वर्णनो के लिये तो अलकारो की उपयुक्तता आलम ने भी स्वीकार की है। वर्णन की कुशलता के बिना सफल प्रबन्ध-काव्य नही लिखे जा सकते। छन्द-योजना के सम्बन्ध मे आलम विशेष सतर्क नहीं पाये जाते।

घनआनन्द की कला-विषयक दृष्टि

धनआनन्द की कुछ उक्तियो को लेकर सुधी विवेचको ने उनकी काव्य-दृष्टि का सधान किया है। इसमे तो सन्देह नहीं कि उनकी वे उक्तियाँ उनकी काव्य-दृष्टि का उद्-घाटन अवश्य करती हैं परन्तु वे उक्तियाँ साकेतिक ही हैं। जहाँ उन्होंने कविता द्वारा आत्म-

निर्माण की बात कही है वहाँ उन्होंने यह तो बहुत स्पष्ट कह ही दिया है कि कविता हृदय की वस्तु है, हृदय से उत्पन्न होती है और रचयिता के व्यक्तित्व का अंग होती है। जो कविता मन का वचन से मेल नहीं कराती वह कविता नहीं, जो भीतर होना चाहिये वही बाहर—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत' कह कर उन्होंने लोक की कविता से अपनी कविता का प्रवृत्ति-भेद स्पष्ट सूचित किया है। सच्ची कविता की निष्पत्ति वे हृदय की रीझ और पीडा से मानते हैं जैसा कि उनके 'तीछन ईछन बान बखान सों' वाले कवित्त से स्पष्ट है। जिस काव्य मे प्राणों की तृषा व्यक्त न हुई हो वह मर्म को क्या छू सकती है। जिसके हृदय मे किसी के लिये दर्द नहीं वह क्या कविता लिखेगा! इसी प्रकार उनका विश्वास है कि बुद्धि का जो व्यवसायी है उससे कविता का कोई सरोकार नहीं। हृदय-पक्ष ही काव्य का प्राण-तत्व है, रीझ ही काव्यक्षेत्र मे पटरानी है, बुद्धि और कल्पना उसकी दासी मात्र—'रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।' यह सब होते हुए भी उनकी कविता भाषा प्रवीणों के ही पल्ले पडने वाली चीज है। अनुभूति की भंगिमा के कारण उनकी भाषा शैली मे भी भंगिमा आ गई है। वे काव्यगत इसी भंगिमा के कायल थे और सीधी उक्तियो मे कदाचित कवित्त का अधिवास न मानते थे परन्तु हृदय-रस से सिक्त जो उक्तियाँ न हो उनमे उनकी दृष्टि मे कोई कवित्व न होता था। ऐसी हृदय-रस से सपृक्त उक्तियो को समझने की क्षमता भी किसी सहृदय मे ही हो सकती है, साधारण लोगो मे नहीं। ब्रजनाथ ने इसी बात को इस प्रकार कहा है—

(क) जग की कविताई के धोखें रहैं, ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी॥
समझै कविता घनआनन्द की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी॥
(ख) जोग-वियोग की रीति मे कोबिद, भावना-भेद-स्वरूप कों ठानै।
भाषा-प्रबीन, सुछन्द-सदा रहे सो घन जी के कवित्त बखानै॥

घनआनन्द ने भी अपने काव्यादर्श को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि हृदय के भवन मे मौन का घूंघट डालकर उनकी बात (उक्ति अथवा वाणी) रूपी दुलहिन बैठी रहती है अर्थात उनकी कविता या उसकी उक्तियाँ ढकी हुई सलज्ज तरुणी के समान है उनके समस्त अर्थ सहज प्रकट नहीं है। उस उक्ति अथवा कविता रूपी दुलहिन को मृदु और मंजु पदार्थों अर्थात् शब्दो और अर्थों के अलकारो द्वारा सजाया गया है। वह रसमयी कविता शब्दो और अर्थो की अलकृति से परिवेष्टित है। अभिप्राय यह है कि उनके काव्य की रसमयी साधना मे शब्दो और अर्थों के अलकार सहायक उपकरण का काम करते हैं। साधन मात्र रहते हैं, साध्य नहीं बन जाते। रसना रूपी सखी कान की गली से हृदय रूपी भवन में चित की उस सैया पर सुजान को पधराती है अर्थात ले जाती है। सखी सुचित के अंक मे काव्य रूपी दुलहिन शोभित होती है और अपनी चरितार्थता प्राप्त करते हैं। कविता रूपी दुलहिन का रसिक कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता, वह तो कोई सुजान, सहृदय और प्रवीण ही हो सकता है जो उसकी समस्त भाव-भंगिमाओं को पूर्णत मनोगत कर सकता है—

उर-भौन मे मौन को घूंघट कै दुरि बैठी विराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषण सो सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।

रसना-श्रली कान गली मधि ह्वै पधरावति ले चित्त-सेज ठनी।
घनग्रानन्द बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी॥

भाषा के वैशिष्ट्य को, उसकी लाक्षणिक और व्यंजक शक्ति के विकास को घनआनन्द महत्त्व देते थे, अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करना उनकी भी नीति थी तथा भाव छंदादि की आवश्यकतानुसार शब्दों को लोच, सकोच, वक्रता, विस्तार आदि प्रदान करने में वे नहीं हिचकते थे। फिर भी भाषा का एक निश्चित स्वरूप होना चाहिए और एक सांचे मे उसे ढली हुई होना चाहिये ऐसा उनका विश्वास था, परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भाषा को अनुभूति प्रेरित होना चाहिए। अनावश्यक शब्दों का समावेश न वे करते थे और न पसन्द ही करते थे। शब्दों के साथ थोड़ा-बहुत खेल करना भी उन्हें आता था और वह उनकी दृष्टि में अधिक बुरा न था। पर इस प्रवृत्ति के कारण से अनेक दुर्बोध छन्द भी लिख गए हैं। शब्दों का, पदों का, उक्तियों का नितान्त निजी प्रयोग उनमें देखा जा सकता है। इस गुण के कारण भाषा मे शक्ति और वैशिष्ट्य का विकास होता है। कहावतों और मुहावरों का भी उनकी दृष्टि मे कम महत्त्व न था।

अलकारो के प्रयोग के सम्बन्ध मे भी घनआनन्द की मूल नीति सहजता की नीति थी। उनका स्वाभाविक रूप मे ही प्रयोग किया जाना चाहिए। भावावेश की लपेट मे ही आई हुई आलकारिकता सच्ची आलकारिकता होती है जो रस का उपकारक होती है। अनावश्यक रूप से अलंकारों की भरती तो काव्य मे वे नही करते पाए जाते किन्तु अनुभूति की बाहुलता ने उनकी अभिव्यक्ति को अवक्र नही रहने दिया है। उनकी शैली मे अनुभूति-प्रेरित अलंकृति और भंगिमा आई है और वह परम्परागत काव्यालकरण से कुछ भिन्न है। उसमें नए-नए पथों पर चलने का प्रयास है और यही प्रतिभाशाली कवि के लिए अभीष्ट स्थिति है। स्वय काव्य को निजी अनुभूति की उपज होना चाहिये, अननुभूत सत्य के कथन मे सच्ची काव्यात्मकता सम्भव नही। अलकृति घनआनन्द के स्वभाव या व्यक्तित्व का अग होकर आई है उदाहरण के लिए वैषम्य-मूलक जितना सौंदर्य उनके काव्य मे मिलेगा उनके जीवनगत वैषम्य का ही बिंब माना जाना चाहिए। नई सूझबूझ भी अनुभव, ज्ञान और अनुभूति सापेक्ष ही हुआ करती है। पिष्टपेषण सच्चे कवि का धर्म नही, उससे बचने मे ही उसकी महत्ता है।

छन्दविधान के क्षेत्र मे घनआनन्द ने यों तो सवैये ही अधिक लिखे हैं किन्तु पद, कवित्त, दोहा, चौपाई आदि अन्यान्य कितने ही छन्दों का व्यवहार कर नाना प्रकार के प्रयोगों की ओर उन्होंने अपनी अभिरुचि दिखाई है तथा बहुछन्दात्मकता पर बल दिया है। रीति कवियो के ही समान निश्चित छन्दों तक अपने को सीमित रखकर अन्यान्य छन्दों की ओर भी मुक्त रूप से अग्रसर होने का उन्होंने सकेत किया है। विविध छन्दों के व्यवहार से भावप्रकाशनार्थ उनके स्वच्छन्द गति ग्रहण करने की सूचना मिलती है।

बोधा की कला-विधायक दृष्टि

बोधा अनलंकृत अभिव्यक्ति के कवि हैं। वे सादी प्रवाहपूर्ण और झूमने वाली भाषा और अभिव्यक्ति का आदर्श सामने रखकर चले थे। अनुभूति की प्रेरणा से अभिव्यक्ति जिस शब्दावली और शैली मे फूट पड़ती है वही उनकी शैली हो जाती है। अर्थात् सहजता और

अपने प्रति सचाई ही उनकी शैली की दो मान्य विशेषताएँ हैं। शैली में जहाँ प्रयत्न दिखाई दिया वहीं भोंडापन आया। बोधा की दृष्टि में निर्व्याज और अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही सर्वश्रेष्ठ होती है। वे शब्द की लक्षणा और व्यंजना शक्तियों की अपेक्षा अभिधा पर ही अधिक विश्वास रखने वाले कवि और दिल की बात दिल तक पहुँचाने के लिए सीधे सच्चे ढंग का सहारा लेकर चले हैं। भाषा में तथा वर्ण विधान में यदि थोड़ी संगीतात्मकता हो तो अधिक श्रेयस्कर है। भाषा में देशी-विदेशी शब्दों का समावेश उनकी नीति में था। उनकी दृष्टि शुद्धता के फेर में न थी। अवधी, खड़ी बोली, बुन्देली, पंजाबी सभी प्रकार के शब्द उनकी भाषा में आये हैं तथा अपने व्यक्तित्व के अनुरूप वे कभी-कभी शब्दों और अभिव्यक्तियों को रूप दिया करते थे। दो टूक बात कहना उन्हें बहुत पसन्द था। शब्दालंकारों की उन्हें परवाह न थी और अर्थालंकार को उपयोगिता की दृष्टि से ही वे व्यवहार में लाते थे पर बहुत कम। उनके काव्य का शैली पक्ष उनके भाव-पक्ष के उपकारक के रूप में ही नियोजित मिलेगा। सच तो यह है कि बोधा ऐसे मतवाले कवि थे जो अपने मन की मौज में जो चाहते थे कह जाते थे। क्या कहा, कैसे कहा इसकी उन्हें परवाह न थी। 'बोधा चाहे जो बकै मतवारे की मौज'। इसलिए भाषा और शैली-शिल्प पर उनका एक प्रकार से ध्यान ही न था। इसी कारण अधिक मिश्रित भाषा और शब्द-विकृति आदि के दोष उनमें देखे जा सकते हैं। भाषा की एकरूपता, गठन आदि के प्रति उनका कोई ध्यान न था, जिससे यही प्रतीत होता है कि शैली-पक्ष को वे कोई महत्त्व न देते थे। ऐसी काव्य-दृष्टि भी उनके स्वच्छन्दमति होने की ही द्योतिका है।

छन्द-विधान की दिशा में वह प्रबन्ध रचना में नाना प्रकार के छन्दों के प्रयोग का आदर्श लेकर चले हैं, किन्तु मुक्तक रचना करते हुए वे कवित्त-सवैयों को ही अधिक महत्त्व देते हैं। छन्दों में भी वे लयात्मक सौंदर्य पर विशेष ध्यान देते हैं। मात्राएँ गिनना और गणों को बिठाना उन्हें नहीं रुचता था। हृदय की उमंग के स्वच्छन्दवर्त्ती होने के कारण काव्य के साधन पक्ष पर उनका विशेष ध्यान था। रस-रीति और काव्य परम्परा का ज्ञान उन्हें न था ऐसा नहीं कहा जा सकता, परन्तु उनसे वे बच कर अवश्य चलने वाले जीव थे। यही बात न्यूनाधिक परिमाण में सभी कवियों के लिए सच है। भावुकता और तीव्र अनुभूति एवं उसकी सचाई को वे काव्य-शिल्प की सबसे बड़ी शक्ति समझते थे। परम्परागत काव्य-रीतियों से मुक्ति को वे काव्य-रचना के लिए अधिक श्रेयस्कर समझते थे।

ठाकुर की कला-विषयक दृष्टि

ठाकुर की रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि वे प्रकृति से मुक्त एवं स्वच्छन्द थे तथा काव्यरचना के क्षेत्र में भी वे पिटे-पिटाए मार्ग को छोड़कर ही चलना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि रीतिकालीन कवियों की अनेकानेक दशाब्दियों से चली आती हुई परंपरा की लीक पीटी जाय, वे नहीं चाहते थे कि काव्य-विभूति को खुशामद पसंद राजा महाराजाओं के चरणों पर लुंठित होने दिया जाय, वे नहीं चाहते थे कि रीति के सँकरे पथों पर ही सँभल-सँभल कर चरण निक्षेप किया जाय और वे नहीं चाहते थे कि कवि की सौन्दर्य-भावना केवल सीखे सिखाए या लिखे-लिखाए सादृश्य विधानों अथवा सौंदर्यादर्शों पर

अवलंबित रहे। वे अनुकरणजीवी कवियों पर रुष्ट जान पड़ते थे क्योंकि उन्होंने ऐसे यत्र-निर्मित कवियों की भर्त्सना या अवमानना भी किंचित रोष के साथ की है—

सीख लीन्हो मीन मृग खंजन कमलनैन,
सीख लीन्हों यश श्रौ प्रताप को कहानो है।
सीख लीन्हो कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि,
सीख लीन्हो मेरु श्रौ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बडी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय जाय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है॥

और यह सचमुच उस काल के कवियों के लिए स्वस्थ मार्ग-दर्शन था। जहाँ घिरे हुए विषय-दीवारों के बीच कविता कामिनी का नृत्य होता था, सौंदर्य की एक ही सी झाँकियाँ यत्किंचित परिवर्तन के साथ सभी कवि दिखाते आते थे, अनावश्यक रूप से अलंकार, छंद आदि पर साधारण अशास्त्रीय ग्रथों के ढेर लग रहे थे, लक्षणों का अनुधावन करते हुए उदाहरण प्रस्तुत करने मे ही लोग कवि-कर्म की सफलता समझ बैठे थे, वहाँ इस प्रकार का नवीनतावादी संकेत एक बड़ी ही सुन्दर, स्वस्थ एव महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसका सद्प्रभाव निश्चय ही ठाकुर कवि की समसामयिक एव अनुवर्तिनी कवि प्रतिभाओं पर पडा। यह प्रभाव अत्यंत व्यापक पडा हो ऐसा मैं नही कहता, किन्तु जिन सीमाओं के अन्दर पडा उसमे वह बड़ा ही स्वस्थ और लाभकारी रहा। अधिक दिन नही बीतने पाये कि ब्रज-काव्य की परंपरा मे भारतेन्दु ऐसा स्वच्छन्द प्रकृति का कविरत्न भाषा-काव्य-व्योम मे प्रदीप्त हो उठा। ठाकुर ने भाषा और संस्कृत-काव्य का थोडा बहुत अनुशीलन किया था, किन्तु उनकी दृष्टि बडी तीक्ष्ण और प्राजल थी। उन्होंने हिन्दी काव्य की गति-विधि का निरीक्षण किया था ऐसा हमे उनकी रचनाओं के देखने से ज्ञात होता है। रीतिकाल की कविता के दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट करने वाले घनआनद के बाद वे ही थे और उसका काव्योचित रीति मे खडन भी उन्होंने किया। उनकी रचना स्वय उन दोषों से बचकर चलने का प्रयत्न है। तुलसीदास के काव्य के संबंध मे उन्होंने जो मत व्यक्त किया है उससे भी उनकी काव्य-दृष्टि का पता चलता है—

ठाकुर कहत धन्य तुलसी तिहारी बानी,
अकह कहानी रस सानी सरसत है।
चंद-सी चमेली सी गिरा सी गगधार कैसी,
मघा मेघमई रामजस बरसत है॥

कविजनोचित भावुकता के साथ हमे ठाकुर मे एक कुशल समालोचक की भी शक्ति दिखाई पडती है। कवियों और उनकी कविता की आलोचना करते हुए ही हम उन्हे नहीं देखते वरन काव्य-रचना के आदर्श का प्रतिपादन करते हुए भी हम उन्हें पाते हैं—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहे तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै॥

ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राज सभा में बड़प्पन पावै ।
पण्डित लोक प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै ॥

हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थानीय समीक्षा गुरु आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल भी ठाकुर की प्रगल्भ आलोचनात्मक उक्तियों से अत्यन्त प्रभावित हुए थे तथा उनका भी काव्यादर्श ठाकुर के ही काव्यादर्श के मेल में था। ठाकुर कवि के अनुसार "कविता में ऐसी चित्तहारिणी शक्ति होनी चाहिए जिससे लोक के पण्डितों और प्रवीणों का मन मुग्ध हो जाय।" काव्य की श्रेष्ठता का निर्धारक ठाकुर द्वारा प्रतिपादित यह मानदण्ड हमें काव्य के अत्यन्त मान्य रस सिद्धान्त के ही समीप ले आता है। रीतिकाल में केशव और भूषण ऐसे अनेक अलंकार-प्रिय एवं चमत्कार-वादी कवि हो गए थे जिन्होंने भ्रमवश काव्य का जीवन-तत्व अलंकार-चमत्कार, वक्रोक्ति अथवा रीति मान रक्खा था किन्तु ठाकुर ने एक बार भ्रमजाल में उलझे हुए कवियों को काव्य का स्वस्थ एवं प्रकृत पथ दिखलाया तथा अपने द्वारा निर्धारित काव्यादर्श में काव्य के समस्त अंगों को उनका उचित स्थान दिया। 'जोई चित्त हरै' कहकर ठाकुर हमें पण्डितराज जगन्नाथ 'की रमणीयता' और विश्वनाथ आचार्य की 'रसात्मकता' का ध्यान दिलाते है। प्राणतत्व तो उन्होंने यही रस बतलाया किन्तु काव्य की रूप-सज्जा की शैलियों एवं विधियों को दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। उन्होंने कहा कि काव्य की शब्दावली अथवा पदावली में मोतियों की माला के समान मनोहारिता होनी चाहिए तथा लय, छंद एवं शब्द मैत्री (तुक अच्छर जोरि) का भी बराबर ध्यान रखना चाहिए। कहने की शैली में नवीनता (बात अनूठी बनाइ सुनावै) होनी चाहिए तथा काव्य का विषय प्रमुख रूप में प्रेम के पथ का अनुधावन और हरिकथा कथन ही होना चाहिए। इस प्रकार कविवर ठाकुर की काव्य-रचना के आदर्श ऊँचे थे, स्वस्थ और प्रकृत धरातल पर थे, वे किन्हीं पूर्वाग्रहों से आच्छन्न न थे। रीतिकाल के कवि में ऐसी विचारशैली का उद्भव और उसका व्यवहार कोई साधारण बात न थी, इसीलिए ठाकुर रीतिकाल के सैकड़ों कवियों के बीच अपना विशिष्ट स्थान रखते है, रखेंगे। ठाकुर की कविता में पवित्रता है, हल्कापन कहीं नहीं। प्रेम की भावगाढ़ विवृति में कहीं भी वासना की दुर्गन्धि नहीं। नई-नई वाक्य प्रणालियों में मन की प्रीति विवेचन हुई है। उनकी भी कथन-रीतियाँ और अचलभगी भावानुभूति से ही प्रेरित है।

ठाकुर भी सहज, अकृत्रिम किन्तु सुन्दर, माधुर्यपूर्ण, प्रवाहमयी भाषा को ही काव्यो-पयुक्त मानते थे। भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों पर उनका ध्यान अधिक था जो भाषा में नई जान डाल देने वाली शक्तियाँ हैं। जिस भाषा में हृदय को बेध देने वाली शक्ति न हो प्रभाव की क्षमता न हो वह उनकी दृष्टि में व्यर्थ है। शब्द-ग्रहण की दिशा में भी वे अन्य स्वच्छन्द कर्त्ताओं के ही समान उदार दृष्टि रखते थे। आयासपूर्ण शब्द स्थापना में उनका विश्वास न था। वाग्वैदग्ध्य, निश्छलता, प्रभविष्णुता आदि उनकी शैली के गुण उनके व्यक्तित्व के प्रकाशक है। उनके व्यक्तित्व से छनकर आने वाली उनकी अनूठी उक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं।

अलंकार योजना की भरमार अथवा उनके चमत्कार पर बल देने में उनका विश्वास न था। वे भी बहुत कुछ अलंकार-निरपेक्ष काव्य-रचना के पक्ष में थे। आवश्यकता पड़ने पर ही अलंकारों का वे उपयोग करते थे। अलंकारों का उन्हें कोई मोह न था और इनकार

आग्रह तो बिलकुल ही न था। झूठमूठ अलकारो की झडी लगाना तो वे काव्य के लिये अपकारक माना करते थे। भावोत्कर्षक्षम औपम्यमूलक अलकारो का ही उन्होंने थोडा उपयोग किया है। ठाकुर ने प्रचलित कवित्त-सवैयो का ग्रहण किया, अन्य शैलियो अथवा छदो की ओर वे गये ही नही इससे भी उनकी सरलता और सादगी ही सूचित होती है। सिद्ध शैली को छोड नये-नये छन्दो की ओर मात्र दौडने के लिए दौडना उन्हें पसन्द न था। इससे उनकी प्रौढ काव्य-दृष्टि का भी पता चलता है।

द्विजदेव की कला-विषयक दृष्टि

द्विजदेव मे कला की चेतना अन्य कवियो की अपेक्षा कुछ अधिक थी और इस दृष्टि से वे आलम के अधिक निकट हैं। रीति की छाप भी उन पर कुछ अधिक थी यद्यपि नाना रूपो मे उन्होने उससे अपना प्रस्थान-भेद सूचित किया है। वे अपनी भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करने के अभिलाषी थे और इस दृष्टि से उन्होंने भाषा-सौन्दर्य के संवर्धक अनेक उपकरणो की विनियोजना अपने काव्य मे की थी जैसे नाद सौंदर्य, अभिव्यक्ति-सज्जा, कुछ अलकरण, लचीले एव व्यजक शब्दो का प्रयोग, शब्दो के निजी प्रयोग, निजी अभिव्यक्तियाँ, भाषा की स्वच्छता अथवा उसका परिमार्जन आदि। कोमलता, माधुर्य, चित्रमत्ता आदि कलात्मक उपकरणो पर भी उनकी दृष्टि थी, परन्तु इस सब के बावजूद भी वे रीति के घेरे मे बँधने नही पाए। रीति की उगली पकडकर ये नही चले, वरन विषयवस्तु, वर्णनपद्धति आदि मे स्वच्छदता का पूरा-पूरा प्रमाण दिया है। मुहावरेदानी इसमे जैसी है स्वच्छद प्रवृत्ति के अन्य कवियो मे वैसी बहुत कम है। उनके शब्द-चयन मे भी एक वैशिष्ट्य मिलेगा तथा सस्कृत, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दो के लिए उनकी भाषा का भडार खुला था। वे शुद्धतावादिनी सकीर्ण दृष्टि नही रखते थे तथा भाषा की शक्ति की अभिवृद्धि का आदर्श लेकर चलने वाले थे। भाषा को सौष्ठव प्रदान करने के प्रति उनका विशेष ध्यान था। अभिव्यजना को भी वे मार्मिक ही बनाए रखना चाहते थे। अधिकाधिक उक्तियाँ स्वाभाविक, सरस और अर्थगर्भित हो इस पर ही उनका ध्यान बराबर रहता है। इस प्रकार काव्य-सबधी स्वस्थ आदर्श लेकर चलने मे उनका विश्वास था।

अभिव्यक्ति की आवश्यकतानुसार उन्होंने अलकारो का भी विधान किया है तथा एक सीमा तक अलकारो मे काव्य मे आने वाली सजावट की पूर्ति अपनी भाषा और शब्द विधान द्वारा की। अलकारो को वे रसोत्कर्ष के सहायक रूप मे ही मानते थे इसमे अधिक महत्त्व उन्हें उन्होंने नही दिया है। प्रकृति-चित्रण की स्वच्छद आलबन शैली का ग्रहण कर उन्होंने अपनी स्वच्छद वृत्ति का पूरा-पूरा आभास कराया है और हृदय की मुक्ति का पता दिया है। उनका भी विश्वास था कि सहज स्वाभाविक अभिव्यक्तियों एवं कथनों की सरसता मात्र अलकृत प्रयोगो मे कहाँ? यदि हो सके तो सारी अलकृति का समूचा सौंदर्य सुन्दर भाषा और व्यंजक पदावली मे ही उतार दिया जाना चाहिए, उनकी निजी भाषा और पद-विन्यास इस तथ्य के साक्षी हैं। उन्होंने भी आयासपूर्वक अलकारो का विधान नहीं किया है। उनकी रीति-निरपेक्ष स्वच्छद शैली की रचनाओं को देखकर उन्हें अलकृत चमत्कारो में विश्वास रखने वाला कवि नही कहा जा सकता और न यही कहा जा सकता है कि उनके काव्य का कलापक्ष कमजोर है। काव्य के कलापक्ष के विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारण

उनकी भाषा है। विपुल परिमाण मे उसमे आए हुए उनके विशेष प्रयोग हैं जिन्होंने उनकी पदावली को अत्युत्कृष्ट बना दिया है। भाषा की सुष्ठुता एक प्रकार से उनके काव्य-शिल्प की जान है। द्विजदेव अलकारो के विधान मे नई सूझ-बूझ के कायल थे तथा उनके प्रयोग में नूतन पद्धतियो का आविष्करण एव उपयोग करते चलते थे। रूपकादि के प्रयोग मे तरह-तरह की नवीनता उन्होंने सृष्ट की है तथा अलकारो से काव्य को अधिकाधिक सरस बनाने का काम लिया है। परम्परा की लीक पीटना उन्हे कैसे पसन्द हो सकता था। नये रग-ढग की अलकार-योजना की ओर भी उनकी प्रवृत्ति देखी जा सकती है। ये सारी बातें ही मिलकर उनके काव्यादर्श का निर्धारण करती हैं।

छद-विधान के क्षेत्र मे अन्यान्य छदो की ओर अग्रसर होते हुए भी सिद्ध छदों कवित्त-सवैया को अपनाने मे ही उनका विश्वास था।

२

भाषा का स्वरूप

रसखान की भाषा

प्रणय की मधुर भावानुभूतियों के चितेरे होने के कारण रसखान की कविता का भावपक्ष विशेष मधुर और सरस है, किन्तु कलापक्ष शून्य नहीं रहने पाया है। उनका यह अभिव्यक्ति पक्ष उनके भावपक्ष की अपेक्षा अधिक सबल न सही, किन्तु सक्षम और उत्कर्षपूर्ण अवश्य है। जहाँ तक भाषा का सवाल है वह टकसाली या स्टैंडर्ड ब्रजभाषा है। उसमें समर्थ भाषा के समस्त आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। रसखान की भाषा का स्वरूप सरल, प्रसाद-गुण पूर्ण और व्यावहारिक है। उनकी शब्दावली पर्याप्त लचीली और व्यंजक है, शब्द प्रयोग मधुर और अर्थगर्भित है। भाषा आयास-साधित नहीं, भाव प्रेरित है। उसमें वक्रता या भंगिमा अनायास आ गई है। भाषा सुगठित, प्रवाहपूर्ण और साभिप्राय है, शब्द अपने स्थान पर ठीक बैठे हुए हैं। रसखान की भाषा में ब्रज का प्रौढ़ और समृद्ध रूप देखा जा सकता है। वह विशिष्ट शब्दों, प्रयोगों, मुहावरों और लोकोक्तियों की संपदा से भरपूर है। रसखान की भाषा में चलती हुई या व्यावहारिक ब्रजभाषा का सौन्दर्य तो है ही, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से भी अनूठी व्यंजकता, लालित्य, माधुर्य और प्रयोग-सौन्दर्य द्रष्टव्य है। वह सामान्य दृष्टि से देखने पर तो मोहक और सरस तथा हृदय-स्पर्शिणी है ही, सूक्ष्मतापूर्वक देखने पर भी कम आकर्षक नहीं। उसमें भाषा के व्यावहारिक एवं साहित्यिक सौन्दर्य का मणिकांचन संयोग है। पद-पद पर उसमें छवि, वक्रता, आभा, मसृणता, व्यंजना, लचीलापन मिलेगा और मोटी दृष्टि से देखने पर भी प्रवाह और सरसता के साथ चित्रात्मकता एवं भावद्योतन के सम्पूर्ण सामर्थ्य का दर्शन होता है। जिन साधनों का प्रयोग उन्होंने किया है वह दिखाने के लिए उनकी भाषा के सौन्दर्य के विधायक तत्वों का कुछ सूक्ष्म परिदर्शन यहाँ कराया जा रहा है। उनकी भाषा में अनेक अप्रचलित शब्द एवं प्रयोग हैं, प्रचलित प्रयोगों का अभिनव

विधान है। शब्दों का सौन्दर्य अलग देखिए, प्रयोगों का अलग, उनमें अच्छी मुहावरेदानी है जैसी घनआनन्द में और अच्छा लोकोक्ति विधान है जैसा ठाकुर में। अनेक सुन्दर उक्तियाँ (सूक्तियाँ) भरी पड़ी हैं जिनमें कितनी तो लोकोक्तियों के टक्कर की हैं। शब्दों में लचीलापन पैदा किया गया है जो व्रजभाषा की अपनी खासियत है और जिसका आश्रय लेकर व्रजभाषा के कवियों ने व्रज को और भी माधुर्य प्रदान किया है। रसखान व्रजभाषा के माधुर्य के संवर्धक कवि हैं। भाषा की नाड़ी का उन्हें अच्छा ज्ञान था। कृत्रिम तथा अरुचिकर भाषा उन्होंने कहीं नहीं लिखी, इसके विपरीत भाषा के परम सम्मोहक स्वरूप को वे उपस्थित कर सके हैं जो साधारण और विशेष सभी को आनन्द देने वाला है।

अल्पप्रयुक्त और नवप्रयुक्त शब्द—रसखान की भाषा का स्वरूप निर्धारण करने में ऐसे शब्दों का भी हाथ है जो ताजे और नये हैं, अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित हैं। उदाहरण के लिये—अनुजानी, बागर, मकारन, घनेरो, तगा (तागा या धागा), बगर (घर), गनसी (गणश्री), चौकी (माला के बीच का बड़ा आभूषण), गिरिसैल (हिमालय), टाक (नोक), टटकार (तत्काल), कुलहासु, गोहन (साथ), दिन होनी (दिन दिन होनहार), सिढ़ी, नहीन (नहीं), धरहाई, मोडो (बालक), मेव (लुटेरा), सकाइ (सकोचपूर्वक), सी (सीत्कार), ख्वारी (अपमान), सकसैं (सकट), झमाकान, उपरैना, हलबोल, रोर (शोर), वटा (गेंद), दगरें (शीघ्र), बिगोइ (नष्ट करके), चहूँकित, अपचाल, गाडरू (वैद्य), बकोटती, मीरखान, मवासी (गढ़पति), सेक (सिंचन) इत्यादिक। नए शब्द भाषा के भण्डार के सवर्धक होते हैं और अल्पप्रचलित शब्द भाषा की शक्ति को बल देने वाले। कुछ शब्द ग्रामीणता लिये हुये भी हैं और कुछ शब्दों का रूप कुछ बदला हुआ मिलेगा किन्तु ये सारी बातें व्रज की प्रकृति के अनुरूप भी हैं और अनुकूल भी। इनसे रसखान की भाषा बलवती ही हुई है। नाना स्रोतों से शब्द-सग्रह की वृत्ति रखने के कारण और भाषा को आवश्यकतानुरूप रूपायित करने के कारण रसखान की शब्दावली या उनका शब्द-भण्डार अच्छा है और भाषा-ज्ञान और प्रयोग-शक्ति भी बढ़िया है।

तद्भव शब्द—भाषा के क्षेत्र में रसखान तद्भव शब्दावली का आदर्श लेकर चलने वाले हैं। पाडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति से दूर वे देशज और प्रचलित शब्दावली से ही काम लेने में विश्वास करते हैं, यदि फारसी-अरबी से शब्द ग्रहण करेंगे तो भी सरल और चलते हुए तथा उसे भी व्रज की प्रकृति के अनुरूप ढालकर ही वे उनका व्यवहार करेंगे जैसे—खास, मौज, तमासो, स्याव, गहर, बाह, मिया, पूव, महबूब, गदर, साहबी, बादसा, ताजी, जाबाजी आदि। इसी आदर्श का अनुसरण सस्कृत शब्दों के प्रयोग में भी किया गया है। सस्कृत शब्दावली का अधिक ग्रहण सिद्धान्त-निरूपण के कारण 'प्रेम-वाटिका' में विशेष मिलता है जैसे सारूप्य, वचनामृत, गुनत्रय, मात्सर्य, जोवन, शुद्ध, सूक्ष्म, भिन्न, कचन, मविसेह, सर्वस्व, भल्प, विद्या, विस्वास, मरम, सुति, पुरान, आगम, स्मृतिहि, निश्चय, मरजाद, जदपि आदि।

असामासिक पदावली—रसखान की भाषा में सामासिक पदावली का अभाव है। छोटे-छोटे शब्दों का अलग-अलग व्यवहार हुआ है, अपवाद-स्वरूप ही समुक्त शब्दावली या सामासिक पदों का प्रयोग मिलेगा जैसे 'स्वभावगुनरूत' या 'मधुकर-निकर', 'मोहरि-चरन-

जुग-पदुमपराग' आदि। सयुक्त शब्दावली का प्रयोग कम होने से हर शब्द का अपना सौन्दर्य और माधुर्य लक्षित होता है।

क्रियापद—रसखान की भाषा मे कभी-कभी मे, तो (था), हो ही, भेती (होती), होसैं (होता), ऐसे असामान्य क्रियापद या अवधी की अहै ऐसी क्रिया भी देखने को मिल जायगी तथा 'नन्दनन्दन ने' ऐसा खडीबोली का प्रयोग भी मिल जायगा। एक जगह 'जमायो कर्यो' ऐसी दुहरी क्रिया प्रयुक्त हुई है।

मिश्रितभाषा—बागन, उचाइबो ऐसे एक दो बघेली शब्द और बिचिबो, तचिबो, होइगी, जायगी, पायगी, रई, देखवी, लाज लई ऐसे बुन्देली प्रभावसूचक शब्द भी मिलते हैं। राजस्थानी का कु और वीरगाथाकालीन अपभ्रंश शैली के शब्द पटक्कनि, लटक्कनि, लकुट्टनि, मुकुट्टनि, उघुट्टनि, चच्छु, गनत, गयरव्व, माभ्र, मभार आदि भी देखे जा सकते हैं। ये उदाहरण रसखान के भाषागत स्वरूप और आदर्श पर प्रकाश डालने वाले हैं। उनका शब्द-भाडार विविध दशाओ से आने वाले शब्दो, शब्द-रूपो और प्रयोगो के लिये खुला था। इस दिशा मे स्वच्छन्द कवि के अनुरूप ही वे उदार आदर्श को लेकर चले हैं।

लोच—शब्दो को बढाकर या अधिक लचीला बनाकर प्रयुक्त करने की जो प्रवृत्ति आगे घनआनन्द मे देखी जाती है उसका उदभावन रसखान ऐसे भाषा प्रयोक्ता पहले ही कर चुके थे। उदाहरण के लिये—मेरियै, वे रेयै, तैसिये, बिनोकियैगी, दोहनियाँ, अलबेलियँ, बिललाइगो, बडरारे, पावरिया, डावरिया, गडी ही रहै, अखियानि, नहीन, एतोहूँ, एकऊ, पथिको, सुधियौ आदि।

शब्द विकृति—तुक, लय अथवा छन्द के आग्रह से उन्हें कुछ शब्दो को विकृत रूप मे प्रस्तुत करना पडा है। यदि इनका परिहार वे कर सके होते तो अधिक अच्छा था। शब्दो के विकृत रूप इस प्रकार हैं—पैया (पाया हुआ), बिधस (विध्वस), लख (लाख), मनी (मणि), नवीनो (नवीन), करीर (करील), कातिग (कार्तिक), पाम (पाँव), अछी (अच्छी)।

तुक और अनुप्रास के आग्रह के कारण इस प्रकार की शब्दावली का विधान हुआ है—पावरिया, डावरिया, धहरैं, भहरैं, रुवौहो, भरौहो, भिगरौहो, सावरौरो, चहचही, रुहरुही, महमही, गाउ, लेउ, केतिक, एतिक, भलकैयत, तुलैयत, ललचैयत।

पद-विधान या विशेष प्रयोग—व्यजक पद-प्रयोगो या शब्दो के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा रसखान ने भावाभिव्यजन को अधिकाधिक समर्थ बनाया है। एक तो ब्रजभाषा में स्वभावत ऐसा सौन्दर्य, लोच और काव्यात्मक सरसता है कि हर प्रयोग जमा हुआ-सा या मुहावरे-सा लचीला और व्यजक हुआ करता है उस पर रसखान ने अपनी विशिष्ट पद योजना या शब्दो के प्रयोग द्वारा उसे और भी अधिक व्यजक बना दिया है। ऐसे प्रयोग देखिए—परयौ तन रूप को घेरो, नैनन में-विहसी है, उसमताहि जरी तन-सी, बाँकी मरोर गही भृकुटीन, टाक सी लाक, गु जाके कहूँ उर बात न भेंटी, कै किनारौ, कुलवानि की मेड़ लसी, तान कु पीहै, कुलकानि हियोनजि भाजति है, भूठि सी मारै, अंसुवानी रहै, लाज विदा करि दीनी, बरनीन के बान बिधो चित जाहीं, भागति भूख न भूखन भावै, पाग मरोरनि में उरभावै, मुसकान भरी अखिया, हासनि जाति मरी, डोरि लियो मन चोरि लियो चित,

हस बोलि तिहारो है मोल हमारो, पैंडे परैगी, मुसकानि चुभी,ई पद हाम के पानि परे हैं, सम्हार गई, कुल को पुल टूट्यो, बैरिन सवाइ, नैसुक वै रस भीजन दे हो, अइलात कहा हो, सांस भरी, ओहन की चकडोर भई, घतिया उर बीच अडी ही रहै आदि। इस प्रकार के व्यंजक और अर्थ भरे प्रयोगों के कारण रसखान की भाषा बड़ी समर्थ हो उठी है। उसमे स्थान-स्थान पर गहरा अर्थ ध्वनन, मर्मस्पर्शिता, आन्तरिकता आ गई है, भाषा रसमचार-क्षम भावोद्रेक कारिणी और पढ़ने योग्य हो गई है। इस प्रकार के व्यजक प्रयोगों के वैशिष्ट्य द्वारा भाषा मे असाधारण सौन्दर्य निष्पन्न हो सका है। इनके कारण उनकी भाषा मे सरल-स्वाभाविक गति, लचीलापन, प्रयोग-पटुता, प्रगल्भ मुहावरेदानी, भाषा की चित्रमत्ता आदि गुण आ गए हैं। उनकी प्रयोग सम्बन्धी विशिष्टता का प्रभाव घनआनन्द पर भी पड़ा था। इसके कारण उनकी भाषा मे एक निजत्व आ गया है।

कूट प्रयोग—एक दो जगह कूट काव्यो-सा शब्द-विधान भी देखने को मिलता है, यथा 'विधु सागर रस इन्दु सुभ बरस सरस रसखानि' जिसका अभिप्राय हुआ सवत १६७१। दूसरा उदाहरण है—'मन लीनो प्यारे चितै पै छटाक नहि देत। यहै कहा पाटी पढ़ो दल को पीछो लेत॥' इसमे मन छटाक और दल को पीछो शब्दों मे अर्थ-काठिन्य की प्रतीति होती है जैसा कि कूट-काव्य मे देखा जाता है। यह बात केवल परम्परानुसरण या क्षणिक मनोरंजन की वृत्ति के परिणामस्वरूप उनके काव्य मे आई है।

मुहावरेदानी—मुहावरे भी एक प्रकार के शब्द प्रयोग ही हैं जो अपनी असाधारण व्यंजकता के कारण समाज मे प्रचलित हो जाते हैं, उनमे अर्थवत्ता भी विशेष होती है। रसखान मे मुहावरेदानी अच्छे परिमाण मे और सुन्दर रूप मे देखी जा सकती है। वैसे तो ऊपर के विशिष्ट प्रयोगो मे से अनेक प्रयोगो मे मुहावरो के समान ही शक्ति और प्राणवत्ता है फिर भी लोक मे प्रचलित मुहावरो का व्यवहार रसखान मे कम नहीं, उदाहरण के लिये—कान्ह भए बस बासुरी के, सु कौन मट्ट जु लट्ट नहि कीनो, पलक ओट नहि सहि सको, नक छेदि कै कौड़ी पिराइ कै देती, गाल बजावत, औंधि भइ हग बावन की, भूलि गई तन की सुधि सातो, बाज सनेह की डाडी, चख चारि भए, मूढ चढ़े, दिखावत आँखि, पसारत हाथ, लागिहै डीठि, कानिनि दै अगुरी रहिबो आदि। ये मुहावरे रसखान की भाषा को सरस, आस्वादनीय, भावगर्भित और हृदयस्पर्शी बना देते हैं।

सूक्ति-विधान—बामुहावरा भाषा और सुन्दर प्रयोगो के कारण 'रसखान की भाषा मे जगह-जगह उक्ति सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, पद-पद पर उनकी भाषा-पदावली-प्रयोग-सौन्दर्य और सूक्ति-विधान आपको मोहित करता चलेगा'। ये सूक्तियां जगह-जगह लोकोक्ति के समान सुगठित और अर्थवान हो उठी हैं—

(क) कारे बिसारे को चाहे उतार्‌यो अरे विष बावरे राख लगाइ कै।
(ख) एकहि मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहि हाट बिकैहैं।
(ग) कौटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारों।
(घ) तकि मार्ग धरौ रपटाय नहीं वह चारो सो डारि फदावत है।
(ङ) बावरी जो पै कलक लग्यो तो निसक ह्वै क्यों नहीं अक लगावत।

(च) मो रसखानि लिखी विधिना मम भारि कै आपु बनी हौं अहेरी।

(छ) ना करिबे पर वारे हैं पान कहा करिहैं अब हां करिबे पर।

इन तथा अन्य सदृश्य उक्तियों के सौंदर्य की व्याख्या का अवकाश यहां कहां! इनमें अशेष अर्थ-सौन्दर्य और व्यंजकता निहित है, ये उक्तियाँ अपने सौन्दर्य और अर्थवत्ता में लोकोक्तियों से कम नहीं। उनके छन्दों के अन्तिम चरण प्राय ऐसे ही बन पड़े हैं। कई-कई छन्द तो पूरे के पूरे सूक्तियों के उदाहरण रूप में दिये जा सकते हैं।[3]

लोकोक्ति—रसखान ने लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत कम किया है किन्तु उनकी स्वतन्त्र उक्तियाँ ही अपने सौन्दर्य और अर्थगर्भत्व के कारण लोकोक्तियों के समान लगती हैं। लोकोक्ति लोक प्रचलित उक्ति को कहते हैं। रसखान की लोकोक्तियां इस प्रकार हैं—

(क) करियै उपाय बास डारियै कटाय, नाहि,
उपजैगो बास नाहि बाजै फेरि बांसुरी।

(ख) जो कहूँ बैठारिहौ न पारिहौ रवाब माहि,
नौन को गौन लोहे आदो हू न लादो हौ।

आलम की भाषा

आलम की भाषा में उनका अपनापन झलकता है और यह चीज़ कवि की श्रेष्ठता का एक प्रबल प्रमाण है। आलम की भाषा में न अधिक संस्कृत शब्दों का प्रयोग है और न अरबी-फारसी का ही विशेष प्रयोग हुआ है पर इन भाषाओं के शब्द उनमें मिलते अवश्य हैं। वे भाषा और शब्द विधान के महत्त्व से परिचित थे तथा उन्होंने भाषा के प्रयोग में संयम और समन्वय-बुद्धि से काम लिया है। उनकी भाषा दोनों अतिवादों से बचकर चली है। एक शब्द में उनकी भाषा को तद्भव-प्रधान कहा जाता है। संस्कृत के शब्द अपने मूल या तत्सम रूप में कम मिलते हैं। तद्भव रूप में बहुत अधिक अरबी फारसी के शब्द सामान्यत नहीं मिलते या बहुत कम मिलते हैं, परन्तु इन भाषाओं से उनकी अभिज्ञता देखनी हो तो उनके रेखतों पर दृष्टि डालनी पड़ेगी जहाँ इस प्रकार के शब्दों का जमघट मिलेगा—हिलाक (मृत्यु), फिराक (नगारा), महबूब (प्रिय), जौक (मजा), चिराक, आशनाई, परवाना, आमिक, इश्क-महरम (प्रेम का मर्म जानने वाला), पुरनूर, स्वारी, गुमान, दाग, साबित, मादक (मर्च्छा), हादक (सच्चा वैद्य), निवाजि, दिलदार, काहल (परेशान), अबताली (अदल-बदल करने वाला हाकिम), दरयाव, गिरदाब (भँवर), वकमाइ, तकमीर आदि। यहाँ भी अनेक शब्द अपने तद्भव रूप में ही आये हैं जिससे यह पता चलता है कि आलम भाषा की कठिनता और दुरूहता की ओर नहीं जाते थे, वे उसके सरल स्वरूप को ही अंगीकार करके चलने वाले थे। फिर भी उनकी रचना में ऐसे छन्द देखे जा सकते हैं जिनमें जहाँ-तहाँ भाषा की सफाई का अभाव है।

देशज शब्द—आलम की भाषा में अन्य बोलियों के शब्द भी मिलते हैं जैसे पंजाबी अंच (आंच), भोजपुरी रावरो (आपका), बुन्देलखण्डी रये, ऐन, ठ्ये, दये, कहिवी आदि।

---

3 रसखानि ग्रन्थावली (स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) : सुजान रसखानि : छन्द ८, दानलीला : छन्द १, ११।

विशेष शब्द—उनकी कविता मे कुछ ऐसे शब्द और प्रयोग हैं जो उनके युग की कविता मे सामान्यत नही मिलते यथा—वमतु (वमन करता है), भी (भीति), अधिक-आधियो, धोरे (निकट), पछीन, विलपति, ग्रकत (परस्पर प्रेम दृष्टि से देखना), मुचिकै, छाहर अकल-बिकल, तराइल (तरल), मुगाय (सदेह करके), परोइ लीजे (गाग लीजिये), फेरफन्द (छलछपट), मुकुराये (छिटके हुए), छाुनन (विचार करते हुए), उकासु (छुट्टी), तमिल (क्रुद्ध)। इन प्रयोगो से आलम की भाषा का भडार जरूर भरा है।

लोच—अपनी भाषा को मोहक और विशेष रूप मे लचीली बनाने के लिये आलम ने इस प्रकार के शब्दो का व्यवहार किया है—छगन-मगन, सोहावनीयै, चपलाऊ, मारियै, बादरऊ, समीरहु, तिरियाऊ, मोतियौ, अनजैनमही, कान्हर, बिन्दुली गुकुलेसहि आदि। आऊ, इयै, अऊ, अहु, इयो, ही, अर, उली, वा, अहि, आगी, अरौ, आनु आदि देशी प्रत्ययों के योग से शब्दो मे जो लचीला-पन आया है वह आलम की भाषा मे सरसता का सचार करने वाला है। इनके सहारे छन्द की सीमा मे शब्द सिमट और फैल सके हैं।

विशेष क्रियापद—आलम द्वारा प्रयुक्त ध्यान देने योग्य कुछ विशेष क्रियापद इस प्रकार हैं। कीजें, जीजें, दीजें, जोजियतु, लीजियतु, भवेंगे बवेंगे, तवेंगे, खाइबो, आइबो आदि। ये और थी के लिये किये गये हैं और हो के प्रयोग तो ठेठ ब्रज के ही हैं।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ—इनका प्रयोग आलम मे कम मिलता है। ठाकुर तो लोकोक्तियो के सिद्ध प्रयोक्ता थे, आलम ने यदि भाषा की शक्ति के वर्धक इन दो औषधियो का सेवन किया होता तो उनकी भाषा मे और भी आब आई होती। उनकी भाषा में मिलने वाले मुहावरे इस प्रकार हैं—डीठि लाई, डीठि दई, ब्याह को बिहान, जी के लाले पडना, अबेर-सवेर, रक का धन आदि। एक स्थल पर 'रतिपति अगिनि' का प्रयाग 'कमाग्नि' के लिये किया गया है जो भाषा के कूट-प्रयोग सा लगता है।

चित्रमत्ता—चित्र खडा करने की शक्ति आलम मे अधिक तो नही दिखाई देती पर जहाँ-तहाँ एक दो पक्तियो मे वे वर्ण्य का स्वरूप मूर्त्त कर सके हैं इसमे सन्देह नहीं—

(क) टूटि आई भौहैं मुरि चढी हैं उचौहैं
नैना मैन मद माते पलकन चपलई है।
कटि गई छंटि पै सिमटि आई छाती ठौर,
छौर तें सवारी देह और कछु भई है॥

(ख) आलम कहै हो घरी घरी अटा चढि जाय,
चाहै चहूँ ओर पाछे राखे नैना मोरि कै।
नेकु चलै बितै छाह ऊभी ह्वै कै ऊभी बाँह,
बार बार अगराय आगुरिनु जोरि कै॥

नाद-सौन्दर्य—आलम ने अपनी भाषा मे नाद-सौन्दर्य के सृजन पर विशेष ध्यान दिया है जिसमे उसमे जगह-जगह अनुरणनात्मकता आ गई है। इस दृष्टि से उनके नादात्मक प्रयोग, निश्चय ही अत्यन्त कर्ण-मधुर है और काव्य की मनोहरता के वर्धक। यह भी आलम की शब्द-योजना या भाषा-विधान का एक उत्कृष्ट और शक्तिशाली अग है। देखिए—

(क) सुदिन सुदिन दिन ता दिन गनोंगी माई,
जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलिहैं।

(ख) निभुकनि रैनि झुकी बादरऊ झुकि आये,
देख्यो कहो झिल्लिनि की झाँई झहनाति है।

(ग) मंडित पान प्रचड प्रखंडिन संधि सिलीमुख दंडि कुदंडन
'आलम' लै अवनी कवनी चल्यो आवतु राम अडडन डंडन॥

(घ) समीर मद मद केलि कद दोप दद यों,
अनन्द नन्दनद के विराजे हस नंदनी।

द्वित्त वर्णों का प्रयोग—अनेकानेक स्थानो पर आलम ने एक ही वर्ण का दुहरा प्रयोग किया है जैसा कि वीरगाथाकालीन काव्य में वीर भावोन्मेष के लिये किया जाता रहा है। आलम का कौशल इस दिशा में यह है कि शृंगार अथवा प्रेम की सम्मोहक व्यजना उन्होंने इस वीरगाथात्मक पद्धति से की है। इसे भाषा-सौन्दर्य-सृष्टि के क्षेत्र में आलम की देन माना जा सकता है। शब्दो को उछालकर प्रयोग करने की इस पद्धति से शृंगार-भाव न केवल अनाहत ही रहा है बल्कि उलटा उत्कर्ष प्राप्त कर गया है। उदाहरण के लिये देखिए—

(क) *प्रात समै सिथिल्लन सु दरि अग रही बसि आलसताई।*

(ख) अजहूँ रही मौन अनम्मनि ह्वै मन ही मन सोचहिं नैन नये।

(ग) नील नगप्पर इदुवधू घनसार गिरिप्पर विद्रुम बेलि ज्यों।

(घ) माधव जू मधुमास मधुब्बन राधिका सों करि केलि मुचे ते।

द्वित्त वर्णों वाले शब्दो के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—जगम्मग, तिलकद्द ति, मृगम्मद, अवरप्पुट, कुचप्पर, इकत्तन, कलवत्तन, नद्यत्तन, जटितम्मनि, मुद्दित उद्दित, मरिम्मरि, सरब्बसु, सरद्द, दुविच्च, विज्जुल, वज्जल, विटप्प आदि।

कहीं-कहीं शब्दों के विपर्यय से ही भाषा में सौन्दर्य सृजन हो गया है—

आलम आन न सैन लखे पिय को चितु तीय, तिया चितु पी सों।

उक्ति-सौन्दर्य—आलम की भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण गुण है *उक्तियों का सौन्दर्य* जो प्रायः छन्दो के अन्तिम चरणों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये—

(क) रूप गुन आगरी तू नागरी तैं आगे ह्वै कै,
तैं जु डग भरी डगमग्यो मन हरी को।

(ख) तनक में वेग ऐसो मद हू को नाहीं माई,
जैसे वेग नैननि मे नेहु आइ जातु है॥

(ग) कर परसत कु'भिलात कलेवर वाको,
वाही तो है एही लाल फूल की सी नाजुकी॥

(घ) सुखी तुम कान्ह हो जु आन की न चिन्ता,
हम, देखेहु दुखित अनदेखेहु दुखित हैं॥

भाषागत दोष—आलम की भाषा में अनेक अप्रचलित शब्द घुस आये हैं यथा—ढलाहेली, बकुटनि (जुगल), कनैलो (कन्हैया), चलौंडा (तिलक), सोच (सोच), सीम्प्री (पूरी

हुई), कोरी (वलियाँ), अवसेरि (इन्तजार करना), गहिली (बावली), औनें (बदले में), रूँगे (थोड़ा-थोड़ा माँगकर), मड्हो (मकान), मालरी (भाकर), उदवस (उजड़ा हुआ), चेंदुआ (चिड़िया का बच्चा), पटबीजन (जुगनू), पाडुकि, छट्ठ, फोक, मोगि, इ डुरी, बाम्हू (बिना) मड्हागद, पुढपौरि, नार्याहि, करोरी (तहसीलदार), बेमा (निशाना) आदि। ऐसे शब्दों के प्रयोग से दुरूहता और अप्रासादिकता आती है।

भरती के शब्द या अक्षर—अनेक स्थलों पर आलम ने 'सु' या 'जु' ऐसे भरती के वर्णों का प्रयोग किया है जो निरर्थक और पाद-पूर्ति के लिये ही लाये गये हैं जैसे—सुकरत, सुसयानी, सुरीतो, सुलनु, जुमोरें आदि। कहीं-कहीं एक ही छन्द में अनेक बार इस तरह के भरती के शब्द आये हैं जो काव्यास्वाद के विघातक हैं जैसे—

राति सिसिराति न सिराति सु सुरतिहीन,
सारद बदनि सु सलाई अति मैनरी।

अशुद्ध प्रयोग या शब्द-विकृति—आलम ने बहुत से शब्दों की विकृति कर दी है यथा अनेक के लिए अनेग, रटी के लिए रढी, जर्जर के लिए जाजर, पत्ता के लिए पतौआ, फफोला के लिये फफोट, क्षीण के लिए खार्गं, प्रकृति के लिए परकृत, रक्तोत्पल के लिए रतोपल, रश्मियों के लिए रसमें, चरण के लिए चर्णं, स्फुलिंग के लिए फुनिंग, तभी के लिए तमई, आयु के लिये आऊ, कमलनि के लिए कौलनि, नृत्य के लिए निर्त्त आदि। ऐसे अशुद्ध या विकृत शब्द-प्रयोग काव्य के लिये दूषित और अप्रीतिकर हैं। आलमताई, ऊगमपाई ऐसे भद्दे प्रयोग भी उनकी कविता में मिले हैं जिनसे उनकी भाषा का स्वरूप कुछ मलिन हो गया है।

इसी प्रकार अनावश्यक रूप में अनेकानेक शब्दों को उकारान्त करके आलम ने उनका स्वरूप विकृत कर दिया है, यह बात भी काव्य-रसास्वाद के लिए विघातक सिद्ध हुई है। उदाहरण के लिये—आगु, बढतु, समातु, रसु, मचलातु, गातु, हिलातु, मतु, सुभायनु, आमरतु, सजनु, अनतु, चन्दनु, घरु, डरु, पनु, बासु आदि। इन कारणों से आलम को भाषा का असाधारण और श्रेष्ठ प्रयोक्ता नहीं माना जा सकता जिनका भाषा पर पूर्ण अधिकार हुआ करता है। उनके अनेकानेक छंदों में तो भाव तक अस्पष्ट रह गया है—

(क) तरुनी अरुनी रचि प्राची दिसा कवि "आलम" उप्पमा ये जु ठये।
तम नास को भार महीप चड़्यौ तवुआ तकि तानि उतंग दये।।

(ख) तिय भाल जगम्मग ह्वैं बिंदुली अलकैं सुवियानन ऊपर आर्छे।
भ्रातत है प्रविसे ससि सगम भानु छप्यो सुरभानु के पार्छे।।

इन अवतरणों में भाव भाषा के दुर्भेद्य आवरण में छिप जाते हैं और प्रयत्न करने पर भी शीघ्र अनावृत नहीं होते "मौनी" और "छौआ" ऐसे अकाव्योपयुक्त और ग्राम्यत्व दोषपूर्ण शब्द भी इसी सन्दर्भ में स्मरण दिलाने योग्य हैं।

प्रबन्ध ग्रन्थों में भाषा का स्वरूप—आलम का माधवानल प्रबन्ध अवधी भाषा में लिखा गया है। उसकी शब्दावली सरल और अकृत्रिम है तथा लेखन शैली में कथात्मकता और वर्णनात्मकता के गुण प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। कवि की भाषा वही है जो दोहा-

उपयुक्त रही है अर्थात् अवधी। 'श्यामसनेही' खण्डकाव्य भी इसी
। उनकी अवधी मे कृष्णायन की-सी संस्कृतनिष्ठता नही है और न
संस्कार। उनकी भाषा स्वरूप की दृष्टि से जायसी के अधिक निकट
है। [illegible] ही उसमे प्राचुर्य है, संस्कृत की तत्सम शब्दावली अपवादस्वरूप ही मिलेगी। संस्कृत के शब्दो का उनकी भाषा मे अभाव नही, परन्तु वे अधिकतर तद्भव रूप मे या अवधी भाषा की प्रकृति के अनुरूप ढले हुए मिलेंगे। यह एक रोचक तथ्य है कि *कविता लिखते हुए मुक्तक रचनाओ मे तो आलम ने ब्रजभाषा को ग्रहण किया है परन्तु प्रबन्ध* ग्रन्थो मे वे अवधी का ग्रहण करते पाये जाते हैं। कारण स्पष्ट है, कवि ने प्रबन्ध के लिये जब अवधी के छन्द लिये तो भाषा भी वही से ग्रहण करली। जायसी, तुलसी तथा सूफी प्रेमाख्यानो के रचयिता यह मार्ग दिखा गए थे।

क्रियापद ही भाषा की नाडी हुआ करते हैं और इस दृष्टि से आलम की भाषा का अवधीपन यदि देखना हो तो इन क्रियापदो को देखिए जिनका व्यवहार माधवानल प्रबन्ध मे मिलता है—खाइ, आइ, रहई, कहई, परही, रहही, आवइ, चलावइ, लीन्ही, दीन्ही, चीन्ही, रोवै, गोवै, लगावै, आवै, कहा, दहा, लगायो, पठायो, करई, धरई, फिरावहि, दिखावहि, तोरहि, जोरहि, गयऊ, भयऊ, परी, भरी, जानहु, पठावहु, लावा, चलावा, चोरी, जोरी, गैहो, वर्जेहो, लैही, देही, उगिलहि, बोलहि, मावहि आदि। अपवादस्वरूप कुछ ऐसे भी क्रियापद मिल जायेंगे जो ब्रज के हैं—करन, धरत, लीजै, कीजै, होइ, जोइ, आयो, कीनो आदि परन्तु इनका कारण प्रधानत तो यही है कि उस युग मे अवधी से भी अधिक साहित्यिक व्यवहार की भाषा ब्रज थी। स्वय आलम जिसमे प्रशस्त रूप से रचना कर रहे थे, उस ब्रजभाषा के कतिपय क्रियापदो का उनकी अवधी मे आ मिलना अस्वाभाविक नही। दूसरे ये थोडे से क्रियापद मिलकर भी आलम की भाषा के मूलरूप को न तो बदल ही पाते हैं और न अलग रहकर खटकने वाले होते है। माही, जाही, नीयर, इमि, किमि, कोही, भुवाला, चिहुर, ठाऊँ, मोही, उजियारा, बसीठा, दीठा, चौपही, रीती आदि शब्द प्रबन्ध की भाषा का अवधीपन ही सूचित करते हैं। इस प्रकार स्वच्छन्द धारा मे आलम ही ऐसे कवि हैं जो तुलसी के समान दो भाषाओ मे समर्थ काव्य की रचना कर सके हैं। यह भाषाधिकार अपने आप मे कोई साधारण उपलब्धि नही। उनकी अवधी का स्वरूप सामान्यत सरल और अकृत्रिम है, परिष्कार और सम्भ्रान्त या नागरिक रुचि की अपेक्षा वह जगह-जगह अनगढ़ और ग्रामीण रुचि के अधिक मेल मे है। 'श्यामसनेही' की भाषा सरल, साधारण और व्यावहारिक है किन्तु इसमे स्थान-स्थान पर अवश्य कुछ अच्छे काव्यात्मक स्थल हैं।

घनआनद की भाषा

घनआनद के कवित्तो के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ की दृष्टि मे घनआनद की भाषा के मुख्य गुण इस प्रकार हैं—कांति, गाम्भीर्य और विविध प्रकार की अर्थमत्ता, साधना-सापेक्षता, सुन्दरता, स्वच्छता, एकरूपता या साँचे मे ढला हुआ होना, सुघडता, अनूठापन और गूढता। उनकी इस प्रकार की भाषा को तथा उसके सौन्दर्य को वही समझ सकता है जो 'भाषा-प्रवीन' हो, बार-बार उनकी कविता पढता हो और उसके मर्म को समझने मे

यत्नशील हो, बुद्धिजीवी या हृदयहीन न हो बल्कि सहृदय हो और हृदय की आँखो से जिसने प्रेम को देखा समझा हो, प्रेम के रग मे स्वत भीगा हुआ हो।

घनआनन्द की भाषा रीतिकाल के अन्य कवियो की भाषा से पृथक है। यह भेद उनकी कथन-विधि अथवा शैली को देखने मे और भी स्पष्ट हो जाता है। वे भाषा के प्रयोग मे असाधारण रूप मे पटु थे। शब्दो मे नयी-नयी व्यजनाएँ भरना, सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहरे से गहरे भावो को शब्दो मे गूँथ करना वे भलीभाँति जानते थे। आवश्यकता के अनुसार शब्दो मे वे लोच, सकोच, विस्तार, वक्रता आदि भी पैदा कर सकते थे। फिर उनकी भाषा कोरी साहित्यिक भाषा भी नही है, उसमें व्रज प्रान्त के प्रयोग भी मिलते हैं।

भाषा का स्वरूप—*उनकी भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ व्रज के* लोक-प्रयुक्त स्वरूप का माधुर्य लिये हुए है। साथ ही उनके निजी व्यक्तित्व का सौन्दर्य, बाकपन माधुर्य आदि भी उसमे समा गया है। व्रजप्रदेश में बहुत काल रहने के कारण उनकी भाषा पर ठेठ व्रजभाषा का भी प्रभाव पडा है। नितान्त निजी भाषा का प्रयोग उनमें मिलता है जैसा किसी भी दूसरे कवि मे नही मिलता। व्रजभाषा के उच्चतम प्रयोक्ताओ मे उनका नाम लेना पडेगा। भाषा सम्बन्धी इसी वैशिष्ट्य के कारण उनकी भाषा की या शैली की कोई नकल नही कर सका है। उनकी भाषा मे सस्कृत फारसी आदि भाषाओ के शब्द तत्सम रूप मे बहुत कम आए हैं, वे उनकी भाषा शैली के साँचे मे ही ढले हुए मिलेंगे। भाषा उनकी भी तद्भव शब्दो से बनी है तथा उसी में उसकी विशिष्टता भी है। सच तो *यह है कि उनकी भाषा म इतना निजीपन है कि हृदय मे उनके जैसी तडप पैदा* किये बिना उनकी जैसी भाषा की भगिमा लाई ही नही जा सकती।

व्रजभाषा का ठेठ रूप—ठेठ व्रज के शब्द भी उनकी रचनाओ मे मिलते हैं, तथा बहुत से नये शब्द भी उन्होने प्रयुक्त किये हैं जिनका प्रवेश उनके पूर्ववर्ती व्रजभाषा काव्य मे नही हुआ था या कम हुआ था जैसे औंडो (गहरी), आवम (भाप), उदेग (उद्वेग), सहारि (सहारे से), भभक (ज्वाला), दुहेली (दुखपूर्ण), बावरो (व्याकुल), हेलो (खेल करने वाले), भोयो (भिगोया हुआ), सौंज (सामग्री), चुहल (विनोद), सट्यौ (चुक गया), बगरा (बवडर), बिमार्यौ (विपरीत), अपचार्यौ (मनमानी), ढेल (ढेला), गुरभनि (गाढ), अगिलाई (अग्निदाह), तेह (क्रोध) आदि। इन ठेठ शब्दो से उनकी भाषा समर्थ हुई है।

नये और अप्रचलित शब्द—ऐसे भी बहुत से शब्द उन्होने व्यवहृत किये हैं जिनका प्रयोग अन्य कवियो ने नही किया है, ये नवीन शब्द उनकी भाषा मे असाधारण शक्ति और व्यजकता पैदा कर सके हैं—अगेट, सौनि (कुन्दन का लालवर्ण), अरुवाई,खगे(लीन हो जाता है), अखिल (अपरिचित), उभिन्न (ग्राम्य शब्द), उठ (उठान), गरेठा (टेढी), घनीन, हेहा (बाहु), रयो (लीन हो गया), गादरी (शिथिल), चाड (उत्कण्ठा), ओटपाय (उपद्रव), कौंवरे (कोमल), ऊक (लूक), बिरचें (विमुख होना), राचनि (रग आना), हट्तार (सिलसिला टकटकी, हठपूर्वक देखने का तार) गहर (गहराई), निरैठी (मस्त), चिजी (समझना), इकौने (अकेले), तवै (तपना), ढवा (धंधा), अतन-अनात (कामदेव का अलातचक्र), निसरक, मिट्टी (मृदुल, मृदु), उपराई (उपरान्त), बहीर (सेना का सामान), उतीहू (उत्साह),

करौटनि, सरौटनि, खोही (पत्तों की छतरी), सकेरै (सकेलें), मरक (खिचाव), अभूनो (आग) सवादिलो (स्वादिष्ट) आदि।

शब्द-स्थापना—घनआनन्द की शब्द-स्थापना भी ऐसी सुन्दर है कि कोई शब्द इधर-उधर नहीं किया जा सकता। भाषा की नाड़ी की ऐसी सुन्दर पहचान उन्हें थी। शब्दों को छन्द के अनुकूल रूप देकर वे कविता के चरणों में इस प्रकार बाँध दिया करते थे *मानो वही उनकी निश्चित जगह हो, वे वहाँ से भाव को बिगाड़े बिना* इधर-उधर नहीं किये जा सकते। कवित सवैयों में तो ये गुण विशेष मिलेगा।

शब्द-क्रीड़ा—घनआनन्द बड़े शब्द-प्रेमी कवि थे। रीति से सर्वथा स्वच्छन्द होते हुए भी उन्हें शब्दों से खेल करना काफी पसन्द था, उसके कारण उनकी रचना में एक नयी कारीगरी या भंगिमा आ गई है। उनकी शब्द-क्रीड़ा मात्र श्लेष, यमक, अनुप्रासादि अलंकारों के कटघरे में बन्द होने वाली चीज़ नहीं है। एक ही शब्द को तोड़-मरोड़ कर तरह-तरह से उसका प्रयोग करना, एक ही छन्द में बार-बार प्रयोग करना, अर्थ की नई-नई ध्वनियाँ ध्वनित करना और कभी-कभी पूरा छन्द उन्हीं शब्दों की क्रीड़ा द्वारा लिख डालना ये सारी बातें उनकी शब्द-क्रीड़ा में मिलती हैं। छन्द मानो खेल-खेल में ही बन गया हो। शब्दों का खेल घनआनन्द में बहुत है पर वे उसके द्वारा बड़ी गहरी भाव-व्यंजना कर जाते हैं ये बहुत बड़ी बात है। उनके कुछ निश्चित शब्द हैं जिन पर वे बार-बार खेल करते पाये जाते हैं—सनेह, मोही, गुन, बाँधना, जान, सुजान, खुलना, उघरना, रीझना, बूझना, आनदघन आदि।[1] उदाहरण के लिये एक छन्द देखिये—

> रीझ तिहारी न बूझि परै अहो बूझनि हैं क्यों रीझत काहें।
> बूझि के रीझन हो जु सुजान रिसौं बिन बूझ की रीझ सराहें॥
> रीझ न बूझौ तऊ मन रीझत बूझि न रीझे हूँ और निबाहें।
> सोचनि जूझन मूझन ज्यों घनआनन्द रीझ यौं बूझहि चाहें॥

प्रयोग-सौन्दर्य—घनआनन्द के शब्द-प्रयोग जगह-जगह क्या सर्वत्र बड़े अनूठे हैं जिन पर मुग्ध होकर घनआनन्द की कविता के मर्मज्ञ आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि घनआनन्द जी अपनी कविता को ऐसे-ऐसे पथों से ले जाने का साहस कर सके हैं जिन पर जाने में आज के कवि भी झिझक सकते हैं। उदाहरण के लिये शरीर के अंगों को लेकर उन्होंने बड़ी सुन्दर उक्तियाँ की हैं विशेष रूप से आँखों के सम्बन्ध में उनकी उक्तियाँ देखने योग्य हैं—आँखिन के उर, दृग-हायनि, कृपावान मधि नैन, फिरी दृग रावरे रूप की दोही। इसी प्रकार कुछ अन्य प्रयोग देखिये—रीझि के पानि, लाज में लपेटी हुई चितवन, छके हुए दृग, आसुनि औसर गारति, बिसास-दगानि-दगी, मिलाप की बास खिलें, नींद की सम्पति, आँखों का हृदय, सुनादर्श की सधमी, अकुलानि-छुरी, धीर गिलें, भाषा के ऐसे सर्वथा नये प्रयोगों के विधान से उनकी असाधारण भाषा-सामर्थ्य का पता चलता है, सचमुच भाषा के

---

[1] सुजानहित' छन्द ३२६, ३३१, ३४५, ३६६, ३७०, ३७७, ४२६, ४४३, ४४५, ६६, २२७, ४२६, ४४४, ७५।

जिन नये पथों पर वे गये हैं उन पथों का अनुसंधान अब भी शेष है, उनके जैसी स्वच्छन्द अभिव्यक्तियाँ करने वाले कवि उनके पहले और बाद में बहुत कम देखे गये। उनके प्रयोगों के वैशिष्ट्य की दृष्टि से उनकी उक्तियाँ देखने योग्य हैं।

लोच—कभी-कभी घनआनन्द ने 'लगियै रहै' या 'अनोखियै'ऐसे प्रयोगों के द्वारा शब्दों को कुछ खींच कर या टेढ़ाकर उनमें नया जीवन और नया अर्थ प्रतिष्ठित किया है। कभी-कभी मात्रा बिठाने के लिये शब्दों की असाधारण संधियाँ भी की हैं जैसे यौऽब, जौऽब, तौऽब (यौं+अब+, जौ+अब, तौ+अब)। ऐसा करने से छन्दों में मात्रा या लय सम्बन्धी दोष नहीं आने पाये हैं।

उक्ति-सौन्दर्य—घनआनन्द की उक्तियों की जो भंगिमा है वह और कहीं नहीं मिलती। उनके समस्त काव्य में एक-से-एक सुन्दर और श्रेष्ठ उक्तियाँ भरी पड़ी हैं, उनमें जो नवीनता और भाव-व्यंजकता है वह साधारण-तया सुलभ नहीं। उदाहरण के लिये देखिये—

(क) हँसि बोलन में छवि फूलन की बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।
(ख) अंग-अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।
(ग) घनआनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसै।
(घ) घुरि आस की पास उसास—मरैं जु परी सु मरैं हू कहा छुटि है।
(ङ) अलबेली सुजान के पायनि-पानि परयौ न टरयौ मन मेरो भवा।
(च) ऐसो कछु बानि चाह-बावरे हगनि परी,
दरस सुजान लालसाई लागियै रहै।
(छ) उत ऊतर-पाय लगी मिहदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै।
(ज) भावते के रस रूपहि सोंचि लै, भीजें भरयौ उर कैं कजरौटी।
(झ) बारनि भौंरकुमार भजैं, मुहुपावलि हास-विलासहिं पूजति।

घनआनन्द के बहुत सारे प्रयोगों अथवा उक्तियों का सौंदर्य तो कोरे विरोध पर ही आश्रित है तथा ऐसे प्रयोगों का सौन्दर्य असाधारण है यथा—

(क) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह-मिठास ठगी।
(ख) बूड़ि-बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनन्द यौं,
जीव सुरझौ जाय ज्यौं-ज्यौं भीजत सरबरी।
(ग) आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयो बु करी नहि लौटनि।
(घ) आरस जाग्यौ है कैसें सोई है कृपा-दरद।
(ङ) निरधार अधार दै धार मंझार दई गहि बाहँ न बोरियै जू।
(च) प्यास भरी बरसै तरसै मुख देखन को अखियाँ दुखहाई।
(छ) बारिद सराय सों दवाग्नि दवति देखी,
बिरह् दवागिनि तें नैना झर कै रहै।
(ज) पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी सों लागति आँखिन देखी।

वैदग्ध्य अथवा विरोध घनआनन्द की भावधारा अथवा अन्त सत्ता का ही नहीं उनकी भाषा अभिव्यक्ति का भी अपरिहार्य अंग हो गया था इसी कारण उनका संपूर्ण काव्य

विशेषत. सुजान प्रेम का व्यंजक प्रत्येक छन्द इस वैषम्य की अन्तर्व्याप्तिनि भावना से ओतप्रोत है, उनकी हर उक्ति में वैषम्य की भंगिमा किसी न किसी रूप में समा गई है। यह वैषम्य उनके तन, मन, प्राण का अभिन्न तत्व हो गया है, हर कथन किसी न किसी प्रकार का विरोध भाव या वैपरीत्य लिये आता है। विपरीतता बात-बात रूपों में मुखर हो उठी है और विदग्ध समीक्षकों को कहना पड़ा है कि जिस कृति में कहीं भी विरोध की प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है तथा अर्थगत विरोध ही नहीं विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शब्द विरोध भी कहीं कहीं दिखाई देता है।[१] हम तो इससे भी आगे जाकर यह कहना चाहते हैं कि शब्द और अर्थगत विरोधों के अतिरिक्त भी कितने अन्य प्रकार के विरोध या विरोधाभास इनकी कविता में लक्षित किये जा सकते हैं और शब्द-विरोध कहीं-कहीं पद-पद पर देखा जा सकता है। वस्तुत. यह विरोध और विपरीतता कवि के जीवन में इतनी परिव्याप्त थी कि विषमतारहित उक्ति-विधान उनके लिए सम्भव ही न था। नाना प्रकार के विरोध-मूलक कथनों के मूल उत्स तथा उनके सौंदर्य की समस्त भंगिमाओं का उद्घाटन अपने आप में एक स्वतन्त्र और महत्वपूर्ण कार्य है। भाषा के अनूठे प्रयोग और सौंदर्य तथा उनकी शैली की आसाधारण भंगिमा के उदाहरण स्वरूप यहाँ पर एक ही छन्द देना पर्याप्त होगा—

> उर-भौन में मौन को घूंघट के दुरि बैठी बिराजति बात-बनी।
> मृदु मंजु पदारथ भूषन सो सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
> रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
> घनआनन्द बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी॥

भाषा की सामासिकता—संक्षेप में अधिक कहने की वृत्ति के कारण घनआनन्द ने भाषा के सामासिक रूप को अंगीकार किया है। उनके अधिकांश छन्दों में सामासिक पद मिल जायेंगे और कभी-कभी तो काफी बड़े-बड़े समास भी देखे जा सकते हैं यथा—

> रूप-गुन-मद-उनमद नेह-सेह-भरे,
> छल-बल आतुरी चटक-चातुरी पढ़ें।
> मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करें,
> सौंचे घनआनन्द खुले संकोच सों मढ़े॥

द्वयर्थकता—कवि ने शब्दों का ऐसा सुन्दर विधान किया है कि पूरा छन्द कृष्ण-विरह से सम्बन्धित होने हुए भी ब्रह्म-विरह की ध्वनि देता पाया जाता है। इसी प्रकार कृष्ण-विरह होते हुए भी सुजान-विरह तथा सुजान-विरह होते हुए भी कृष्ण-विरह का भाव देता पाया जाता है। ऐसे छन्द संख्या में अनेक हैं।[२]

भाषा-शैली की क्लिष्टता—घनआनन्द के कुछ छन्दों में क्लिष्टता अथवा दुरूहता भी आ गई है क्योंकि भाषा किसी नये पथ में होकर गई है, भावना एकदम नये ढंग से व्यक्त की गई

---

[१] घनआनन्द ग्रन्थावली वाङ्मुख, पृ० ५०-५१।

[२] सुजानहित : छन्द ४१६, १६५, ६१, २०७, २८०, २६५, २८६, ६८, १२८, १४०, २७०, २७८, ३४६, ४६१, २६६, ४२, ४४, ३६१, २७०।

है । यह बात उनकी कविता में कभी-कभी दोष का रूप भी धारण कर लेती है। अनेक छन्द इसी अतिवैयक्तिक भाषा प्रयोग के कारण दुरूह और दुर्बोध हो गये हैं।[1]

कहावतें और मुहावरे—कहावतों और मुहावरों से भी घनआनन्द की भाषा सजीव हुई है। कहावतों की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग घनआनन्द ने अधिक किया है। यों कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से ठाकुर अद्वितीय हैं। घनआनन्द द्वारा प्रयुक्त कहावत ही इस प्रकार है—

> सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावत जू,
> काहू कलपाइ है सु कैसे कलपाइ है।

इसी प्रकार विष घोलना, छाये रहना, हाथों हारना, पाटी पढ़ना आदि मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी साधनों के प्रयोग के कारण घनआनद की भाषा सप्राण, अर्थ की शक्ति से सपन्न और विशिष्ट हो गई है।

बोधा की भाषा

बोधा सच्चे अर्थ में रीति-काल के स्वच्छन्द कवि हैं उनकी अभिव्यक्तियाँ जूठी नहीं बल्कि वे सर्वथा अनूठी हैं। उनका अनूठापन अनुभूति-प्रेरित होने के कारण है। वे सुविचारित और गढ़ी हुई भाषा लिखने में विश्वास नहीं करते थे इसी कारण उनकी भाषा में प्रवाह, अलकरण में प्रयासहीनता, और प्रभाव में तीक्ष्णता है। 'इश्कनामा' में तो बोधा की भाषा एकदम निरलकृत है, ऐसा कहीं जान नहीं पड़ता कि उन्होंने प्रयत्नपूर्वक भाषा लिखी है। उसमें अभिधा का आनद है। दिल की बात दिल तक पहुँचाने के लिए जिस सीधे सच्चे ढग की आवश्यकता होती है वही ढग बोधा ने अपनाया है। उनकी भाषा शैली पर उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है। फारसी शब्दों प्रयोगों और शैली का बोधा पर पर्याप्त प्रभाव है। कहीं कहीं ऐसे शब्दों और प्रयोगों के कारण उनकी भाषा कुछ-कुछ दुर्बोध हो चली है फिर भी उनकी भाषा-शैली के वैशिष्ट्य से इनकार नहीं किया जा सकता।

फारसी शब्द—बोधा की भाषा में इस प्रकार के अरबी फारसी शब्द आ मिले हैं—कुलुफ (ताला), जुलुफ, महबूब, महिरम, नफा, तमासा, दरकार, मगरूरी, इश्क, शक, दिलमाहिर, कजाकी, गुमानी, दिलदार, हकीकति, अख्त्यार, रजा, तका, बका, खूबी, खिलबित, हुबूबी, रकाने, बेपर्द, दरद, दरियाव, दिलसूर, मजा, आशिक, मस्ताने, दिवाने मनसूबो, अरज, माहिरवा।

बुंदेलखंडी शब्द—बोधा की भाषा में इस प्रकार कुछ बुंदेलखण्डी शब्द भी मिलते हैं—मरबी, जरबी, परबी, करबी, यो (था), दई, धारिसि, लारसि, न तो आदि।

मुहावरे—बोधा के मुहावरों के प्रयोग इस प्रकार हैं—दुनियाँ सब मास की जोम चलावत, छोड़े बने नहिं ओढ़ते आवत, बज कै करिहै, पाऊँ परो, जीरन जामा की पीर, ताल के घाट न बाट कुआँ की आदि।

प्रयोग-सौंदर्य—बोधा के कुछ प्रयोगों में सहज अभिव्यक्ति का सौन्दर्य दर्शनीय है—

[1] सुजानहित छन्द १६२, १६३।

(क) कवि बोधा कहे में सवाद कहा, को हमारी कहो पुनि मानवु हैं।
(ख) बाल रमे मधुमास. छको, यह, कवेलिया पापिनि पीसई डारति।
(ग) काहू सों का कहिबो सुनिबो कवि बोधा कहे में कहा गुन पावत।

कुछ स्थलों में लाक्षणिक प्रयोगों का सौन्दर्य भी देखिये—

(क) बोधा सुनीति निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तो प्रीति के पैंडे परै जनि कोऊ॥

(ख) बिछुरे दरद न होत, खर कूकर सूकरन कों।
हंस मयूर कपोत, सुघर नरन बिछुरन कठिन॥

शब्द प्रयोग—बोधा की भाषा में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो अन्य कवियों में नहीं मिलता–गथ, कुसागरे, टई, फदेतो, कबहूँक, दिलन्दर, अगोटी, अंगेजु, अजमेजि, दापन, रजनेरी, सचकें, टिलिहै, रहे आदि। इनमें से अनेक शब्द अर्थ व्यंजना की दृष्टि से असमर्थ हैं तथा काव्य में अप्रासादिकता लाने वाले हैं। अनेक शब्दों का अजीब विकृत प्रयोग मिलेगा–अरुभै, अयोगिया (अयोग्य), भोगिया (भोगपूर्ण), किसा (किस्सा), बकबाध, मायक (मार), धका, गिलो (निगलना), सकनी (सकीर्ण) आदि। ऐसे प्रयोगों से आने वाली अप्रासादिकता देखिये—

करि प्रेम नहो की बटा करबो पतवारो प्रतीति कै लै भिलिहैं।
पुनि दूर बिसाल अरावो अहो जलजन्तुन के मुख में झिलि हैं॥

सूक्तियाँ—बोधा की भाषा में अनेकानेक स्वरचित सूक्तियाँ भी मिलती हैं जिनसे उनके अच्छे काव्याभ्यास और अनुभव की गहराई दोनों का पता चलता है। उदाहरण के लिए—

(क) विष खाइ मरे कै गिरै गिरि तैं दगादार तें यारी कभी न करै।
(ख) गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करि काहू सो का कहिये।
(ग) दुख ठौर सबै बिधि और रचे सुख ठौर अकेली सरोज मुखी।
(घ) एकहि ठौर अनेक मुसकिल यारी के प्यारी सों प्रीति निबाहिबो।

इस प्रकार बोधा की भाषा में सहजता है, सीधापन है और कवि का निजत्व है। उसमें अनावश्यक अलंकरण नहीं है और न उसका लोभ है। यमक, अनुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति आदि के प्रति उन्होंने कोई मोह नहीं दिखाया है। यही बात उनकी शैली के बारे में भी है।

ठाकुर की भाषा

ठाकुर की काव्य-भाषा ब्रजभाषा तो है ही किन्तु उसमें बुंदेलखंडी के प्रचलित शब्दों और प्रयोगों के बाहुल्य से एक विशिष्टता आ गई है। उनके काव्य में एक ओर जहाँ भाव-सौन्दर्य और माधुर्य का आकर्षण है वहीं भाषा की सुन्दरता, माधुर्य और प्रवाह का भी। उनकी भाषा अकृत्रिम और निर्व्याज है, उसे गढ़ने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी है। बुंदेली की अभिव्यंजना शक्ति से संवलित हो उनकी भाषा में मार्मिक प्रभविष्णुता आ गई है। भाषा प्रयोग के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यावहारिक था तथा वे भाषा की

स्वच्छता आदि की दृष्टि से ब्रजभाषा के उत्कृष्ट प्रयोक्ताओ मे गिने जाते हैं। उन्होने सभी प्रकार के शब्दो का स्वागत किया जिससे उनकी भाषा मे शक्ति आई। उनकी भाषा को प्रवाह, माधुर्य और सजीवता का मूर्त रूप ही समझना चाहिए। भाषा प्रयोग के सम्बन्ध मे उनकी नीति उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन करने वाली है, उनका हँसमुख-स्वभाव, निश्छलता और वचनविदग्धता आदि गुण उनकी भाषा से भी टपकते जान पडते हैं।

संस्कृत शब्द—संस्कृत के कितने ही शब्द उनकी रचना मे आए हैं पर अधिकांश शब्द तत्सम रूप मे न होकर तद्भव रूप मे प्रयुक्त हुए हैं, बानगी के लिए देखिए—परोजन (प्रयोजन), जाम (ग्राम), जूह (यूथ) गभुवार (गर्भातु), गस्यो (ग्रसन), गाठ (ग्रंथि), औषद (औषधि), किरवान (कृपाण) निन्नय (निर्णय) आदि।

फारसी-अरबी शब्द—फारसी और अरबी के भी कुछ शब्द जिनमे से अनेक दुरूह और अप्रचलित भी हैं ठाकुर की कविता मे प्रयुक्त हुए हैं। हैफ (अफसोस), कैफ (नशा) आदि अरबी शब्द तथा होस (हविस), रौस (रविश अर्थात चाल या व्यवहार), रुख (मशा), तबीब (वैद्य), शौक, साहजी आदि फारसी शब्द उनकी रचना में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं पूरा का पूरा छंद ही ऐसे शब्दो से भरा हुआ मिलेगा।

बुन्देलखण्डी शब्द एव प्रयोग—ठाकुर की भाषा के मोहक और सरस होने का एक रहस्य वे बुन्देलखण्डी शब्द और प्रयोग हैं जिनके कारण उसमे देशी भगिमा आ गई है। बुन्देलखडी उनकी मातृभाषा थी इसलिए बुन्देलखण्डी शब्द और मुहावरे ही नही क्रियापद भी उनकी भाषा मे आ गये हैं। बुन्देली शब्दो के उदाहरण इस प्रकार हैं—थिगरी (चिथडा या पैबद), उलक (बडप्पन), नइया (नही), ऊमर (गूलर), सहिया (कीडा), चक्करा (बडा), ऊसइ, (वैसे ही, यो ही), लौद (फूली की मुलायम छडी) ऐंड (घमड), चफाना (टेढा करना), चौवर (चौलटी, चार रेखाए), वोदर (छडी), धिनाची (जलपात्र), पावने, ल्यावनें, बरावने, लगावने, परखावने, नहिया, पहिया, बहिया, महिया, दैबो, लैबो, दीबो, लीबो, कीबो, जीबो, हिलिबो, मिलिबो, वसो, बिदारो, चहियत, रहियत, कहियत, सइयत, पढिनइयत, जइयत, बिसरइयत, पैयत, डरैयत, बिलैयत, बितैयत, पावतो, घालिबो, निबाहिबो, बई, गवाइबो, लीजतु, दीजतु, कीजतु आदि। बुन्देलखडी प्रयोगो के उदाहरण हैं—हरि होने वही जो तुम्हे करने हैं, डरे रहे, घरे रहे, परी तो, गाहने हैं आदि। इस प्रकार के सैकडो शब्दो और प्रयोगो से ठाकुर की ब्रजभाषा बुन्देलखडी-प्रधान हो गई है और उसमें सजीव जन-भाषा की जीवनी-शक्ति प्रतिष्ठित हो गई है।

मुहावरे—मुहावरो के प्रयोग भी उनकी भाषा मे यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं जो उनकी भाषा की व्यजना-शक्ति के अभिवर्धक हैं जैसे दूर के ढोल सुहावने, उमर को सहिया (गूलर का कीड़ा), बीसबिसे (निश्चय), लोल को टीको (कलक का टीका) आदि।

लोकोक्तियाँ—मुहावरो की अपेक्षा लोकोक्तियों के प्रयोग मे ठाकुर अत्यधिक प्रवीण जान पडते हैं। लोकोक्तियो की उनमें वैसी ही प्रमुखता है जैसी घनआनद मे विरोधाभास की। भाषा को प्राणवान, अभिव्यक्ति को सबल और भावसवेदन को प्रकर्ष बनाने मे ठाकुर की लोकोक्तियाँ सबसे बडा साधन रही हैं। उनके कुछ छन्द तो जैसे लोकोक्तियो से ही बने हुए

हैं, ऐसे छन्दो की प्राणवत्ता और अर्थगर्भिता असाधारण है। कई एक तो उनकी उक्तियाँ ही ऐसी बन पडी हैं जो लोकोक्तियों-सी जान पडती हैं। उनकी लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं—

(क) या जग मे फिर जीबो कहा जब आगुरी लोग उठावन लागी।
(ख) जो विष खाय सो प्राण तजे गुड खाय सो काहे न कान छेदावै।
(ग) खाई कछू गराई कछू हरि गोपी गुलाम की गाजरें कीनी।
(घ) अब रहे न रहे यही समयो बहती नदी पांव पखार ले री।
(ङ) मीर बडे-बडे जाल बहे तह ठोलिये पार लगावत को है।
(च) मूसर चोट की भीति कहा बजि कै जब मूंड दियो ओखरी मे।
(छ) ह्वं है नहीं मुरगा जेहि गाव भटू तिहि गाव का भोर न ह्वं है।
(ज) दूध की मावो उजागर बीर मु हाई में मांखिन देखत खाई।
(झ) माया मिली नहि राम मिले दुबिधा मे गए सजनी सुन दोऊ।
(ञ) बिन आपने पायं बिवाई भये कोऊ पीर पराई न जानत है।

द्विजदेव की भाषा

द्विजदेव की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, उसमें लालित्य, लोच, प्रवाह, व्यजना शक्ति आदि के साथ-साथ कवि का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है। वैसे वे रहने वाले अवधी क्षेत्र के थे और उनकी मातृभाषा अवधी ही थी किन्तु उन्होंने बडी सुन्दर और टकसाली ब्रजभाषा लिखी है। उनकी भाषा भद्दे प्रयोगो के कारण भोडी और विकृत नही होने पाई है। उसमें सानुप्रासिकता, नाद-सौन्दर्य, अलकृति आदि के कारण एक गरिमा और कलात्मकता भी आ गई है किन्तु भाषा की कलात्मकता उनकी भाव-व्यजना के मार्ग मे बाधक नहीं रही है। द्विजदेव ने सुन्दर, साभिप्राय, लचीले और व्यजनापूर्ण शब्दो और पदों के नितान्त निजी प्रयोगो द्वारा भाषा को स्वच्छता प्रदान की है, उसके परिमार्जन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनकी भाषा मे प्राजलता है, वह प्रवाहपूर्ण और जगह-जगह चित्रात्मकता और अनुरणनात्मकता के गुणो से परिपूर्ण है। प्रकृति के सौन्दर्य तथा प्रेम और शृङ्गार वर्णन के कारण उनकी भाषा मे कोमलता मधुरता, आदि तत्व ही प्रधान रूप से प्रतिष्ठित हैं। भाषा के अत्यन्त निजी प्रयोग और मुहावरेदानी ने उनकी भाषा को अत्यन्त प्राणवान बनाया है। उनके शब्द-प्रयोग एव पद-विन्यास का वैशिष्ट्य उनकी भाषा की सुन्दरता का मूल कारण है। ऐसे लचीले, देशी, ब्रजी शब्दो और प्रयोगो की उसमें भरमार है जिनसे प्रयोग-सौन्दर्य तो लक्षित होता ही है अर्थव्यजना भी सरस और अत्यन्त काव्योपयोगी हो उठी है। स्वच्छन्द कवियों की भाषा का निजीपन सर्वत्र देखने योग्य है। वे सभी भाषा की दृष्टि से भी ब्रज काव्य-सपदा के उत्कर्षक और उद्धारक रहे हैं। मुहावरेदानी के लिए द्विजदेव का भाषाधिकार मानना पडेगा, पद-पद पर मुहावरे या मुहावरों से ही शब्द-प्रयोग या पद देखने को मिलते हैं। यह बात उनकी ब्रजभाषा की प्रकृति के अक्षय ज्ञान के साथ-साथ उस भाषा के साहित्य से कवि के प्रगाढ परिचय की भी सूचना देता है क्योंकि बिना ब्रज-भाषा-काव्य मे आचूड निमग्नमग्न हुए भाषा-सबधिनी ऐसी सिद्धि सभव ही नहीं।

विशेष शब्द—वैसे तो द्विजदेव की भाषा मे एक से एक सुन्दर शब्द मिलेंगे किन्तु यहाँ ऐसे शब्दो की एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है जिन्हें हम कवि द्वारा प्रयुक्त विशेष शब्द कह सकते हैं तथा जिनसे हम कवि के शब्द चयन के सम्बन्ध मे जान सकते हैं। ब्रज-काव्य परंपरा मे अति प्रचलित शब्द इस सूची मे शामिल नहीं हैं—सूही, चोखे, समताई, मलैज, दिखवारन, ओखे (ओछा, तुच्छ), इलीक, अनूदय, मुरैली, तिरछायन, मिलापी, हारन (खेद), छवान (बैर की एडी), अपीच (सुदर या और भी), अगोती (अगलौती, पेशगी), पत्यारो (पंक्ति), रोहे (मोहित करती हैं), गहबीले (चटक, गरबीले), मजेज (फारसी मजा का अपभ्रंश), ठाह-दून (गंभीर), कोरन-वतून (कलाबत्तू की किनारी), लरको (झुक गए), चुनी (पद्मरागमणि) तम्बा, गजगौहर (गजमुक्ता), खाम (शांत, चुप), मुखागर (स्पष्ट), करहाट (कमल की जड या उसके भीतर की छतरी), टटकी (ताजी), सूत (मेखला), कँउक (कई), दाम (दीप्ति), गुफ, वेनु (वास वृक्ष), भूँमरि (हाथ से हाथ मिलाकर समूहबद्ध नृत्य), करिश्‍ा (कमर), समी (डरी), ममरी (हर्ष की कपकपी) परेग (बडे लोहे का काटा), ससे (संशय), सुनैसन, कितत (किस दिशा के अंत मे), अजुगति, उमाचो, घुरेटत, छोतन (छत)। इन शब्दो से कवि के शब्द-चयन और उसकी भाषा-स्वरूप सम्बन्धिनी दृष्टि का पता चलता है। यह सूची बहुत बडी की जा सकती है, इसमे द्विजदेव के व्यापक शब्द-ज्ञान एव भंडार का पता चलता है। सस्कृत और ब्रज के अतिरिक्त अवधी, बुंदेली आदि अन्य देशज शब्दो का भी उन्होने प्रयोग किया है।

सस्कृत शब्दावली—द्विजदेव की भाषा मे सस्कृत के तत्सम् शब्द इस प्रकार हैं—बिम्ब, रूप, अनंग, अष्टसिद्धि, मण्डन, भुवन, अल्प, अगना, रति, मनोज, मनोरथ, अभिसार, श्रम-सीकर, कटक, अगराग, चद्रिका, आगत, स्वागत, मनोभव, परिमल, नदन, कुजगृह, नाभि आदि। सस्कृत के अति सरल और प्रचलित शब्दो के प्रयोग मे ही द्विजदेव जी प्रवृत्त हुए हैं जिससे ब्रजभाषा का अपना स्वरूप सुरक्षित रह सका है। ब्रजभाषा की नब्ज पहचानने वाले सभी कवियो मे विशेषत स्वच्छन्दधारा के कवियों मे यही प्रवृत्ति देखी जायेगी। संस्कृत के शब्द तद्भव रूप मे प्रचुर परिमाण मे व्यवहृत हुए हैं—सुखमा, सोक, कदना, असोक, ईस, बिनोद, केसरी, किसोर, बिभव, अरबिन्द, सोथि, छबि, दीपति, छन, सुम, सोभ, तुमीर, जाचक, सातुकी, सिखी, प्रवेस। सिगार, बिथा, सर्म, जुगति, चन्द, गुपाल, प्रान, पीतम, कालिकी, निलाज, बिदेस, जुबा, बै, बैस, गिरीस, ससी, आतम, मीत, बिभूति, बिसास, सोते आदि।

ठेठ ब्रज के शब्द—जो कवि ब्रज भाषा का ज्ञान साहित्य की परपरा से ही प्राप्त करते रहे हैं उनमे सूर, घनआनद, नददास ऐसे कवियो मे पाये जाने वाले ब्रज के ठेठ शब्दो का व्यवहार बहुत कम मिलता है। द्विजदेव भी ऐसे ही कवि थे, जिन्हें ब्रज प्रदेश मे रहने का सुयोग प्राप्त न हुआ था फिर भी उनकी भाषा मे ब्रज प्रात के अनेक ठेठ शब्दो का व्यवहार मिलता है जैसे नैसुक, पनोवन, चुचात, भवै, गोवैं, सनाको, अपोच, ओछे, छवान, भाजौई, हूँक, तिहारे, निपट, मेल्यो, उनयो, नामी, छाम, वसीठिन, सघाती आदि।

अन्य बोलियो के शब्द—द्विजदेव अवधी की ठेठ प्रयोग-भूमि के अधिवासी थे। फलतः यत्र-तत्र कुछ अवधी शब्दो का प्रयोग उनकी भाषा मे स्वयमेव हो गया है परन्तु उन्होंने

परिमार्जित व्रजभाषा का प्रयोग किया इसमे उनकी व्रज भाषा पर अवधी का कोई गहरा रग नही चढने पाया है। भाषा के अच्छे प्रयोक्ता ही ऐसा कर सकते हैं कि दूसरे की जनपदी बोली मे काव्य-रचना करें और अपनी जनपदी बोली की छाप उस पर न पडने दें। उनकी भाषा मे मिलने वाले अवधी शब्द हैं—राखौ, लायक, मोहि, माह, तीनिहूं, याके, दुनहूँन, ग्रंसुवान, राखत, जाहि आदि। इसी प्रकार कुछ बुदेली शब्द भी देखे जा सकते हैं जैसे—कीवौ, लीवौ, दीवौ, लई, दई, वई, इती, एती आदि।

विदेशी या फारसी शब्द—द्विजदेव जी के फारसी-अरबी के ज्ञाता होने का भी पता चलता है। उनके काव्य मे प्रयुक्त फारसी शब्द विशेषत कठिन और अप्रचलित शब्द इस तथ्य की एक सीमा तक पुष्ट करते हैं उदाहरण के लिए—मराल, असवार, अफसोस, होस, हरजनि, यारी, आब, जवाब, नसा, मौज साहिबी, हवाले, गुमान, फते, परदा, दगा, माफ़, कसूर आदि तो प्रचलित शब्द हैं किन्तु परमार, मजेज, कोरन-कनून, तदूरल, मुदाम (सदैव) माहताव, हरौल, सबीह आदि अप्रचलित शब्द भी उनमे दिखाई देते हैं। फारसी शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध मे द्विजदेव के दो स्पष्ट सिद्धात थे एक तो बिना आवश्यकता के ऐसे शब्दो का प्रयोग न करना दूसरे उन्हें व्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप ढाल कर ही व्यवहार मे ले आना। वे अन्य भाषाओ के शब्दों के ग्रहण द्वारा व्रजभाषा की सामर्थ्य का विकास करना चाहते थे, साथ ही व्रज भाषा के स्वरूप को भी अनाहत रखना चाहते थे।

शब्द प्रयोग सम्बन्धी विशेषताएँ—इन नाना प्रकार के शब्दो के प्रयोगो को देखने से उनके शब्दो के व्यवहार की कुछ मुख्य प्रवृत्तियों का पता चलता है (१) कवि ने अनेक प्राचीन शब्दों का व्यवहार किया है जो विशेष अच्छे नही जैसे मेव, पेखें आदि। (२) कुछ एकदम नये या अप्रचलित शब्दों का व्यवहार किया है जैसे अगोती (अगलौती, पेशगी), पत्यारी (पक्ति) रोहैं (मोहित करती हैं), भनायक आदि। (३) कवि ने ठेठ व्रज के कुछ शब्दो का भी व्यवहार किया है। (४) कुछ शब्द अपने देशीपन के कारण अत्यन्त सुन्दर बन पडे हैं और अत्यन्त काव्योपयोगी हो गये हैं जैसे घुमरें, छरा, ढरारी, मलेज, सूही, झूकन, गुच्छ आदि। (५) कुछ अपशब्दों का भी व्यवहार कवि ने किया है जिनके माध्यम से विरहिणी के क्षोभ की बडी सटीक व्यजना सभव हो सकी है जैसे—ववैलिया कुचालिनि, बावरी, बकवादिनि, बजमारी, कसाइन, दुखहाई, कूर, कुचाली, खल, बिसासिनि, निलाज, पातकी, बैरिन आदि। ये शब्द छन्दो में असाधारण सरसता के विधायक हुए हैं क्योंकि इन कटूक्तियो और अपशब्दो के मूल मे प्रेम का ही सरस एव प्रगाढ भाव विद्यमान है। (६) जगह-जगह कवि ने शब्दो को विस्तृत एव सकुचित करके इस रूप मे उनका प्रयोग किया है कि उनके उच्चारण मे तो रमणीयता आई ही है, भाषा के लचीलेपन की भी प्रत्यक्ष प्रतीति होने लगी है जैसे वापिकाऊ, चलीऐ, करतारई, जहाँ-ई-नहाँ, दई-सो-दई, कितौऊ, अपुरबई, घने-ई-घने, तिहारेई, मनमोहनऊ, वकूक, भावें ना, भवावें ना, ढुंक आदि। इसके मूल में जहाँ भाषा को सरस और श्रुतिमधुर बनाने का भाव विद्यमान है वहीं छन्द की मात्रा या वर्ण सम्बन्धिनी आवश्यकता भी कारण स्वरूप है। (७) कुछ स्थलों पर छद के अनुरोध से शब्द रूपों की विकृति भी दिखाई पडती है जो श्लाघनीय नहीं कही जा सकती जैसे—छत्र के लिए छातन, पल के लिए पला, निंदित करने या फीका कर देने के लिए नींदे आदि।

क्रिया पद—ब्रजभाषा मे क्रिया-रूपो की स्थिरता नही है। एक ही क्रिया के अनेक रूप मिलते हैं। विशेष बात यह है कि अनेक साधारण शब्दों सज्ञा आदि द्वारा भी क्रियाएँ बनाई जा सकती हैं। क्रिया पदो के जो विविध अथवा नाना रूप हमे मिलते हैं उनके कुछ उदाहरण देखिये—दिपै, होती ही, बिलोती, बिथुरै, बीती (चित्रित क्रिया) फैकि, चोरत, मुलैहै पवन लगैगो, हत्यो, भो, नजिकात हैं, अधिकाने, गह्योई परै, दीजनु, जीबो करै, ठेलति, मुरझाई हुती, हुव (अपभ्रंश कालीन प्रयोग हुआ के अर्थ मे), पुरै (आई), बरौनै, पठौते, चली ती, लागती जोहै, गोवैं, वे गई, मूपो, पसरिगे चौयतो आदि।

सामासिकता—यद्यपि समास की प्रवृत्ति ब्रज भाषा मे विशेष नही है फिर भी शृंगार-लतिका के सपादित संस्करण मे द्विजदेव की ब्रजभाषा का रूप पर्याप्त सामासिक मिलता है उदाहरण के लिए—प्रेम-पय-पूरि, विविध-लीला-ललित, चित-कमलासनैं, पग-सीस-दान-मान, व्याज-कज्जल-कलित असुवान, सीरो-धीर-सुरभि-समीर, गध-भार, बिरव-बिजैं-कग्खा, विष-बेलि-सी, मनमोहन-मीत-मनोज, ललित-लवग-लतिकान, ग्वाल-जाल आदि।

अनुरणनात्मकता—स्वच्छन्द कवि होते हुए भी द्विजदेव जी भाषा सौंदर्य के हिमायती थे और इस दिशा मे वे कुछ सजग भी थे इसी कारण भाषा की उपर्युक्त विशेषताओ के साथ साथ उसमे अच्छी सानुप्रासिकता भी मिलती है जो सर्वत्र देखी जा सकती है। उससे सम्बन्धित विशेषता होती है नाद सौन्दर्य की जिसके प्रति भी द्विजदेव का विशेष ध्यान रहा है। काव्य मे वर्ण या शब्द योजना के सहारे वर्ण्य वस्तु का ही ध्वनि चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा अनुरणनात्मकता कहलाती है। नाद-प्रभाव द्वारा वर्ण्य की इस प्रकार प्रतीति कराई गई है—

(क) घूघुरित घूरि घुरवान की सु छाई नभ,
जलधर धारा धग परसन लागी री।

(ख) उमड़ि घुमड़ि घन छडत अखड धार,
अति ही प्रचड पौन झूकन बहतु है।
"द्विजदेव" सपा की कुलाहल चहूंधा भम,
सैल तें जलाहल को ज्रोम उमहतु है॥

(ग) एरी मेरी बीर! धीर का बिधि धरैगो हियो,
चातकी चबाइनि की चोखी चरजनि मैं।
मेचक रजनि मैं, कदब-लरजनि मैं,
सुमेध-गरजनि मैं, तड़ित तरजनि मैं॥

ऐसे अनुरणनात्मक वर्णों एव शब्द विधानो से काव्य मे विशेष सरसता और सगीतात्मक सौन्दर्य की सृष्टि हो जाती है, भाषा का सौन्दर्य देखने योग्य हो जाता है, कविता अधिक आस्वादनीय हो जाती है, उसका प्रभाव बढ जाता है, द्विजदेव मे यह कौशल पर्याप्त था।

चित्रात्मकता—वस्तु के यथातथ्य चित्रण की ओर कवि मे जितनी प्रवृत्ति होगी, वस्तु निरीक्षण की उसमे जितनी क्षमता होगी, वर्ण्य को प्रस्तुत करने की कवि मे जितनी सामर्थ्य होगी उसी के अनुरूप कवि वर्ण्य का सफल असफल या अर्ध सफल चित्र प्रस्तुत कर सकेगा। द्विजदेव मे वर्ण्य को मूर्तित करने की शक्ति प्रचुर परिमाण मे थी—

(क) ज्यौं ज्यौं उतै कछु लाड़ली के उन पंकज-पाइन जात झंवा छ्वै।
नाक मरोरि, सकोरि कै भौंह, सुत्यौं-त्यौं रहे हरि आखिन सौं ज्वै॥

(ख) होत लटू तब-हौंतव लाल, जम्हांन कों प्यारो जवै जब चाहैं।
वाह दे सोस, उमाह दे नैनन, पाँह दे ओट, पनाह दै नाहैं॥

(ग) सुनि बात इतो मुख नाइनि के, अति-सूधो-सयानपनें सों पगी।
मुख मोरि उतै मुसुक्यानी तिया, इत, नाइनि हू मुसुक्यान लगी॥

इस प्रकार के और भी कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[1] इन छन्दों में जो चित्र अंकित हुए हैं वे मन पर उतर आने वाले हैं। ऐसे छन्दों मे कहीं तो प्रणयिनी के रूप का चित्र है, कहीं उसकी गति का, कहीं उसकी प्रणय क्रीडा का, कहीं उसके स्नानोत्तर चन्द्रमा को अर्घ्य देने का, कही साज शृंगार का, कहीं सहज बातचीत करने का आदि। इसी प्रकार पावसमहीप की सेना के घेरा डालने का, या पावस की उमड-घुमड कर झूमती गति-शीलता का।

मुहावरेदानी—द्विजदेव की भाषा में मुहावरों का सुन्दर और अत्यन्त अधिक प्रयोग हुआ है जिसके कारण हम मुहावरेदानी को उनकी भाषा की एक प्रधान प्रवृत्ति भी ठहरा सकते हैं। यह प्रवृत्ति इस हद तक बढी हुई है कि कवि के बहुतेरे प्रयोग अथवा शब्द-समूह मुहावरों से ही प्रतीत होते हैं, ऐसे प्रयोगों मे से हम कुछ मुहावरे ही यहाँ दे रहे है—भाग्य का उदय होना, दाव चूकना, अवसर हाथ आना, पलक लगना, रिस ठानना, राई-नमक उतारना, मुँह जोहना, पाले पड़ना, चित्र लिखी सी रहना, बिना दाम बिक जाना, हाथ पसारना, सपने की सपति, अपना मुह लिये रह जाना आदि। ये मुहावरे अंतरतम के भावों को बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त कर सके हैं, इनके कारण भाषा में रवानी, स्वाभाविकता और प्राणवत्ता आ गई है।

कवि के विशेष प्रयोग—इन्हीं मुहावरों के ही वजन पर कवि के कितने ही स्वरचित प्रयोग देखे जा सकते हैं, इनमें भी मुहावरों के ही समान जीवन-शक्ति और अर्थगर्भिता है। यह कवि की निजी सामर्थ्य तीव्र भावानुभूति और भाषाधिकार पर निर्भर करता है कि वह अपनी भाषा को कितनी अर्थमत्ता और व्यंजना शक्ति प्रदान कर सकता है। द्विजदेव इस दिशा मे विशेष रूप से आगे बढे हुए हैं—काहू-काहू भाँति, घरयो छिनि है कछु कनटगात, अनद के आँसू वरोंसहि, भ्रम सर्वे सरमाई समी के, दूति रस-वैन निचोवे, तारे लगें अति फोकें, आधि अधिकानी, मो अखियान में लोनी गई लगि, इक माखन चोर के जोर लई, देहरि नाखि चले वे लला, तेह-तरेरे, सयानपने सौं पगी, पानिप भरोई तन, दैसे ही सगुन फेरि मनसिज चाप भौं, ऊँचो के मुजान, भरि अचल लियाई लाज, जुन्हाई की धार सी धावनि आदि। ये प्रयोग मुहावरे न होते हुए भी अपने वैशिष्ट्य के कारण मुहावरों के ही समान जानदार बन बढे हैं। इनके माध्यम से मनर्जगत और बहिर्जगत की शत-शत भावनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण संभव हो सका। इन प्रयोगों मे कवि की निजता, भाषा सौष्ठव के प्रति जागरूकता, भाषा मर्मज्ञता, गहरी अर्थवत्ता आदि का पता चलता है।

---

[1] शृङ्गारलतिका-सौरभ: छन्द ८०, ९०, ११६, ११३, २०१, १२६, ६६, १११, २३।

लोकोक्तियाँ और सूक्तियाँ—उक्तियों का सौन्दर्य भी द्विजदेव में असाधारण है, उनकी बहुत सी सूक्तियाँ अर्थव्यंजकता में लोकोक्तियों के समान ही बन पड़ी हैं उदाहरण के लिए—

(क) ऊपर ही कछु राग लपेटे, अहो उर-अंतर के अति कारे।
(ख) दिन द्वैक मैं पैहै सकेलि सबै, फल बेलि बई जो अगारन की।
(ग) हरे भरे बिमल सुधा से सरवर माँहि,
सग मिसरी के बिष-घोरि उमहृतु हौ।
(घ) ह्वै कै सुधा-धाम काम-बिष कौं बगारे मूढ़,
ह्हवै कै द्विजराज काज करत कसाई को।
(ङ) जग देति दया करि ईस जोई, सोई कौंछ पसारि गह्यौई परै।
(च) पीहै घटी रस को लो लला' अरु धाइ सहै परवार विचारो।

अनेक उक्तियों का सौन्दर्य घनआनद के ही समान विरोध पर आश्रित है, इनमें अतिशय अर्थवत्ता है और भावगत शक्तिमत्ता भी। इन सब की अर्थ व्यंजकता स्वयं में विशद अनुशीलन का विषय है। टकसाली और सब प्रकार से समर्थ भाषा-प्रयोक्ताओं में द्विजदेव का नाम सदा लिया जायगा।

३
अलंकार-योजना

रसखान की अलंकार-योजना

रसखान के काव्य में अलकारों का प्रयोग तो मिलता है किन्तु वे प्रकृत्या अनलंकृत अभिव्यक्ति के कवि हैं। अभिव्यक्ति विधान में अलकार ऐसे तत्व हैं जो स्वयमेव आ जाते हैं। कभी साम्य स्थापन करना ही पड़ता है, कहीं रूपारोप या भावारोप अनिवार्य हो जाता है, कहीं एक के सौन्दर्य के समक्ष दूसरे के सौन्दर्यापकर्ष की प्रतीति करानी ही पड़ती है, कहीं स्थितिगत साम्य का निदर्शन आवश्यक हो जाता है फलस्वरूप उपमा, रूपक, प्रतीप, उत्प्रेक्षादि अलकारों का अपने आप विधान हो जाया करता है किन्तु सजग भाव से अलकृति रसखान के काव्य में हुई हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। रसखान-काव्य में जो अलकारिता है उसका कारण व्रजभाषा काव्य की परम्परा के परिचय और बोध में मानना होगा। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने व्रजभाषा में ऐसी टकसाली रचना बिना परपराबोध के कैसे कर ली होगी? उनका कथ्य महत्वपूर्ण है इसी से उनकी अभिव्यक्ति मनोरम है। रसखान की शैली, कथन-विधि या वर्णन-पद्धति अवक्र है। यह सरलता उनके निर्मल और सरल व्यक्तित्व का सूचक है। इसी प्रकृतिगत सरलता के कारण उनके काव्य का शैली-पक्ष भी सरल और प्राय अनलकृत रह गया है। जो अलकृति है वह अनिवार्य और अपरिहार्य है क्योंकि भाव का उन्मेष तथा मनोगत अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य और प्रचलित अभिव्यक्ति-विधानों की मुखापेक्षी हुआ करती हैं। घुमा फिरा कर या व्याज से या किसी की ओट में कुछ कहना रसखान को आता नहीं इसलिए काव्य में कृत्रिमता के विधायक उपादान रसखान की काव्य-प्रकृति से परे हैं। छंद पर छंद पढ़ते चले जाइये उनकी सरल वर्णन शैली और मोहक वर्ण्य विषय ही अपनी निसर्गजात सरसता के कारण आपको मुग्ध करते चलेंगे। अलकृत विधानों के प्राचुर्य का अभाव आपको खलेगा ही नहीं। कदाचित् रसखान इन्हें काव्य के लिए अनावश्यक ऐश्वर्य समझा करते थे। उनकी सरल प्रकृति इन ऐश्वर्यों और सुकुमारताओं को ओट नहीं पाती थी। सीधी-सी बात और सीधी-सी अभि-

व्यंजना ही उनका काव्यादर्श था। उनके भक्तिपरक छंदों में उनकी शैली का परम स्वाभाविक और निरलंकृत रूप दिखाई देता है। यमक, अनुप्रासादि अलंकार आये हैं तो भावों की लपेट में अन्यथा उनकी प्रगाढ़ अनुरक्ति और भक्ति-भावना के उन्मेष ने भाषालंकृति के लिए अवकाश ही नहीं मिलने दिया है। इसी प्रकार कृष्ण की लीलाओं, क्रीडाओं या विविध प्रेम प्रसंगों के वर्णन में भी आलंकारिकता को तिलांजलि दे दी गई है। पूर्वराग, प्रणय-क्रीडायें, प्रणय प्रसंगों के वर्णन प्राय अनलंकृत ही हैं। घरहाइनों की चुगलियाँ, ग्राम का ग्राम, मनोगत स्नेह के वर्णन प्राय निरलंकृत हैं। इनमें अलंकृति बिना अभिव्यक्ति की अनिवार्यता के नहीं ही मिलेगी।

रसखान का वक्तव्य और वर्ण्य ही इतना सम्मोहक है कि सज्जाशील इतर प्रसाधनों के उपयोग की उन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ती। 'दान-लीला' नामक छोटी-सी रचना में, कथनोपकथन-विधान के ही कारण किसी अलंकरण की आवश्यकता नहीं पड़ी है। रसखान में वर्णनात्मक स्थलों पर ही अलंकारों का प्रयोग किया है जो प्राय सुन्दर बन पड़ा है उदाहरण के लिए राधिका की रूप-छटा, सुकुमारता, कृष्ण की रूप माधुरी आदि के वर्णन के अवसर पर आवश्यकतानुसार अलंकारों का उपयोग हुआ है।

शब्दालंकार—शब्दालंकारों में रसखान ने यमक और अनुप्रास का प्रयोग अधिक किया है, जगह-जगह तो वे रुचिपूर्वक यमक के प्रयोग में प्रवृत्त हुए हैं तथा वीप्सा के भी अनेक प्रयोग उनमें मिलते हैं। अनेक बार रसखान की रचना में शुद्ध यमक के अभाव में यमकाभासात्मक पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं। ये शब्दावृत्तियाँ अर्थान्तर रहित हैं फिर भी इनसे भाषा में सौन्दर्य आ गया है। अनेक बार आवर्तित शब्द एक अपर शब्द का अंश होकर आया है।

अर्थालंकार—अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। ये तथा अन्य प्रधानता से प्रयुक्त अलंकार अधिकतर साम्यमूलक ही हैं जैसे उदाहरण, प्रतीप, दृष्टान्त, व्यतिरेक, रूपकातिशयोक्ति आदि। रसखान ने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए ही किया है। अलंकरण की अतिशयता और चमत्कार-बहुल रचना से विरत रहने वाले कवि को सामान्यत साम्य-विधान का ही सहारा लेना पड़ता है। उपमा के पूर्णोपमा, लुप्तोपमा आदि भेद उनकी रचना में आसानी से ढूंढ़े जा सकते हैं। रसखान की उपमाएँ विविध प्रकार की हैं और वर्णित भाव या वस्तु के सौन्दर्य को बढ़ाने वाली भी। ये उपमाएं जीवन और प्रकृति से गृहीत हुई हैं। जैसे रोगा, विष, धनुष, चित्र, बरछी, बाण, लोहा, दर्पण आदि। प्रकृति से कमल, हाथी, बिच्छू, चन्द्रमा, मीन, दामिनी, सागर आदि उपमाएँ ली गई हैं। पौराणिक उपमान के रूप में कामदेव बार-बार ले आये गये हैं। प्रेम वाटिका में रसखान ने सिद्धान्त कथन के लिए अनेक बार मालोपमा का प्रयोग किया है—कोउ याहि फाँसी कहत, कोऊ कहत तरवार। नेजा, भाला तीर, कोऊ कहत अनोखो ढार॥ रसखान ने रूपकों का प्रयोग भी अधिक किया है विशेषत निरंग-रूपकों का, इससे यह पता चलता है कि अलंकार उन्हें साधन रूप में ही स्वीकार थे। यदि वे सांग-रूपकों के व्यापक विधान में प्रवृत्त होते तो बात दूसरी थी क्योंकि सांग-रूपकों की योजना में जो कवि लिप्त होता है उसे भावप्रवाह को थोड़ी बहुत

तिलांजलि देनी ही पड़ती है। रसखान इसके लिए तैयार न थे। उनका एक परंपरित रूपक दृष्टान्त अलंकार का अंग बनकर आया है—

> द्वैरद को रद खैंचि लियौ रसखानि हिये महँ लाइ बिचार सौं।
> लीनो कुठौर लगी लखि तोरि कलंक तमाल तें कीरति डार सौं॥

यह रूपक अपनी नवीनता और औचित्य के कारण अद्वितीय है। रूपक अनूठा इस-लिए है क्योंकि कलंक और तमाल तथा कीर्ति और डाल को एक अथवा समान बतलाने की प्रथा नहीं है और परंपरित इसलिए कि एक रूपक के अभाव में दूसरा रूपक व्यर्थ हो जाने वाला है, वे अन्योन्याश्रित हैं। रसखान की रचनाओं में प्रयुक्त रूपक अनायास ही आ गए हैं। मन, वचन, प्रेम, नेत्र, रूप, प्राण आदि के लिए क्रमशः सागर, अमृत, फांस, बाण, सिंधु, पक्षी आदि के रूपक प्रयुक्त किये गये हैं जो यथावसर हृदय से सहज ही निकल आए हैं। इनमें कवि के कौशल की कोई बात नहीं है, ये भाव को अधिक सशक्त रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं। सांगरूपकों में चोहटा, मेघ, चन्द्रमा, वाटिका, वर्षा और सर्वांग रूपक मिलते हैं जो मूलवर्ती भाव और आशय की दृष्टि से तो अवश्य रूपक हैं किन्तु कलात्मक या शास्त्रीय दृष्टि से सदोष हैं क्योंकि उनका ठीक निर्वाह नहीं हो सका है। सरल और सहज शैली के कवि होने के कारण रसखान में वस्तूत्प्रेक्षाओं का ही विधान अधिक हुआ है तथा उनसे वस्तुचित्रण में सहायता प्राप्त हुई है। रसखान द्वारा व्यवहृत दृष्टान्त, प्रतीप, व्यतिरेक, उदाहरण, संदेह, रूपकातिशयोक्ति, कारकदीपक, देहरीदीपक आदि अलंकार उनके भावावेग में ही लिपटे चले आए हैं। आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति में जो सहजात मनोहरता होती है वही रसखान के अलंकार विधान में मिलेगी, आरोपित वक्रता या अलंकरण उनमें नहीं। रसखान आदि स्वच्छन्द कवियों के अलंकार-प्रयोगों के ढेर-ढेर उदाहरणों को प्रस्तुत कर सकना यहाँ सम्भव नहीं, इसलिए बानगी के तौर पर एक-एक उदाहरण ही दिये जा रहे हैं—

> अनुप्रास—छैल छबीलो छटा छहराइ कै कौतुक कोटि दिखाई रह्यो।
> यमक—पै सिगरे ब्रज के हरि हौं हरि हो कै हरे हियरा हरि लीने।
> उपमा—माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै।
> पूर्णोपमा—दमकै रवि कुंडल दामिनि से।
> रूपक—लटको लट मो दृग मीनन सों बनसी जिय वा नट को अटको।
> उत्प्रेक्षा—छोड़ै नहीं छिनहूं रसखानि सु लागी फिरै द्रुम सों जनु बेली।
> दृष्टान्त—तब हूं रसखानि सुजान अली नलिनी दल बूंद पड़ी ही रहै।
> जिय की नहिं जानन हौं सजनी रजनी अंसुवान लड़ी ही रहै॥
> प्रतीप—संपति सों सकुचाइ कुबेरहि, रूप सों दीनी चिनौती अनंगहि।
> व्यतिरेक—मोहन सुंदर आनन चंद तें कुंजनि देख्यौ मैं स्याम सिरोमन।
> उदाहरण—उन्हीं बिन ज्यौं जलहीन ह्वै मीन सी आंखि मेरी अंसुवानी रहैं।
> संदेह—जानियै न आली यह छोहरा जसोमति को,
> बांसुरी बजाइ गौ कि विष बगराइ गौ।

रूपकातिशयोक्ति—वा रस में रसखान पगी रति रंग जगी अँखियाँ अनुमानै।
चंद पै बिंब औ बिंब पै कैरव पै मुकतान प्रमानै।।

कारक-दीपक—कोऊ रहीं पुतरी सी खरी, कोउ घाट डरी, कोउ बाट परी कूं।

देहरी-दीपक—देखें बने न बनें कहतें।

आलम की अलकार-योजना

आलम ने अपने काव्य के भाषा और भाव दोनो पक्षो को आलकारिक रमणीयता प्रदान करने की पूरी चेष्टा की है।

शब्दालकार—आलम अनुप्रास के बडे प्रेमी थे, इनका प्रयोग उन्होंने पद-पद पर किया है। इसके प्रयोग मे वे कुछ सचेष्ट भी प्रतीत होते हैं तथा कालान्तर मे उनकी अनुप्रास-विधान सम्बन्धिनी सचेष्टा उनकी काव्य-भाषा की प्रकृति बन गई प्रतीत होती है। यमक से भी उन्हे पर्याप्त मोह था, अर्थान्तर के साथ शब्दावृत्ति मे उन्हें पर्याप्त रस आता था।

अर्थालकार—अर्थालकारो मे उत्प्रेक्षा आलम को विशेष प्रिय था जिसका प्रयोग उन्होने अधिकाश शृगारिक प्रसगो पर किया है। अश्लील या उत्तान शृङ्गार के वर्णन मे तो ये उत्प्रेक्षाएँ अतिशृगारिकता का आवरण बन कर आई हैं। इसमे सदेह नहीं कि उत्प्रेक्षाए अत्यन्त उपयुक्त और प्रसगानुकूल हैं तथा कवि की अच्छी औपम्य दृष्टि की सूचना देने वाली हैं। इनमें उच्चकोटि का साम्य विधान मिलेगा तथा अपने प्रयोग-कौशल से कवि ने पुरानी उत्प्रेक्षाओ को भी नए रूप म उपस्थित किया है। उपमा और उदाहरण भी युक्ति-युक्त रमणीय और भावोत्कर्षक बन पडे है। भावुकता प्रेरित उपमाओ मे सहृदयता का उच्च सौंदर्य देखा जा सकता है। इसी प्रकार दृष्टान्त, व्यतिरेक आदि अन्यान्य अलकारो का भी आलम ने अच्छा उपयोग किया है। उनके आलकारिक प्रयोगो को देखने से पता चलता है कि उनकी अलकार योजना पूर्णत प्रौढ और उत्कृष्ट थी। उनसे उनके काव्य की शोभा मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। वे अलकार-प्राण कवि न होते हुए भी अलकारों की महत्ता और उपयोगिता मे विश्वास करते थे तथा उनकी अलकृति उनके काव्य-गौरव की सवर्धक हुई है—

अनुप्रास—अछरा ते आछी आछे चरचु छवि छोरनि लौं,
आछी आछो काछी आगी उरज अछूत री।

यमक—अनगु दहलु याकों अगन सहत दुख,
अगनहिं सौरी करौ अगनहि जाइ कै।

उत्प्रेक्षा—काम केलि बेलि सी अकेली कुज धाम खरी,
बदन की आभा जनु फूलतु कमल है।

उपमा—चदन चढ़ाए चद चादनी सी छाइ रही,
चन्द्रमा सो मुख छवि, हासी चद्रिका सो है।

उदाहरण—असुवनि भीजै औ पसीजै त्यों त्यों छीजै बाल,
सोने ऐसी लोनी देह लोन ज्यों गरति है।

दृष्टांत—कर पल्लव रज्जत सौं दृगकोरनि रेख रचै पति अंजन की।
तिखनी दल मंजुल कंज की मैन लै बंधु सवारत खंजन की॥

रूपक—अधर सुरंग भूमि नृपति अनंग आगे,
नृत्य करै बेसर को मोती नृत्य कारी है।

रूपकातिशयोक्ति—बदन बिलोकि साथ सुधा को बिबुध करे,
कुमुदिनि फूली जानि कुमुद कोबंधु है।
चपा, सिंह, सारस, करिनि, कोकिला, कदलि,
बीजु, बिब लीने सबही को मन बन्धु है॥

अतिशयोक्ति—कानन मे जाय नेकु आनन उघारि देत,
ताकी झार फूली डार डारि तें मुखानी हैं।
बारि में जो बोरयो तनु लागति ज्यों कुमोन,
बारिज की बेलें ते बिलोके बरी जानी हैं॥

व्यतिरेक—जावक लगाए पाऊँ पावक तें गोरी है।
प्रतीप—तेरोई मुखार बिन्दु निन्दै अरविन्दै प्यारी,
उपमा को कहै ऐसो कौन जिय में खगै।
अनन्वय—आलम के प्रभु वाकें पटतर दीजै कौन,
तेरे चित बसी वहै वाके मन गड़ी है।
उल्लेख—ससि है चकोरनि कों मोरनि कों बोल-माल,
मृगनि कों नादमई सुन्दरी सुजान है।
संदेह—चारु तमाल प्रसून लता किधौं स्याम घटा संग बिज्जुल गोरी।
वीप्सा—बेर बेर फेरि फेरि गोद लै लै घोरि घोरि,
टेरि टेरि गावै गुन गोकुल की ललना।
कारक-दीपक—डोलति बोलति चितवति मुसकाति जाति,
रूप की निकाई छबि औरै औरै भाँति है।

प्रबन्ध-काव्यों में अलंकार-योजना—अपने प्रबन्ध में आलम जब वर्णनों में प्रवृत्त हुए हैं तब उन्होंने अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। उनके वर्णन अलंकृत शैली में ही प्रस्तुत किये गये हैं फिर भी उनकी शैली ऋजु और सरल ही रही आयी। ये अलंकृतियाँ केवल वर्ण्य का उत्कर्ष दिखाकर काव्य को सरस और प्रभावशाली बनाने के लिये नियोजित हैं। माधवानल प्रबन्ध के आलंकारिक प्रयोग इस प्रकार हैं—

काहे गोरिख फिरहि अकेला। अब संग लाइ करहु मोहि चेला॥
मैं भइ घूघल तू सूरज मेरा। तू चंदा हौं भई चकोरा॥
उत्प्रेक्षा—बैठि कंदला माधव पासा। सूर संग जनु चंद प्रकासा॥
रूपकातिशयोक्ति—कंवल प्रवेस भंवर जो किया। कौन अकोर सकल रस लिया॥
भँवर बास रस लेइ कै भोर रहे लपटाइ। सूर तेज तें कुमुदनी रही
अनिहि कुम्हिलाइ॥

स्यामसनेही प्रबन्ध मे सरस, मधुर और भावपूर्ण उपमाएँ तथा उत्प्रेक्षाएँ देखी जा

सकती हैं। उसकी अधिकाश अलंकार योजनाएं भाव प्रेरित हैं तथा रम्य है—

प्रतीप—जिहि मदिर सतत उजियारे। अस न होइ सौ दीपक बारे॥

रूपक—सुख सनेह कुल वर्तिका, दरसन जोति अनूप। दुहूँ पच्छ उजियर करै, बस सु दीपक रूप॥

उत्प्रेक्षा—विमल चद मपुट तें उतरी। जानहु सुर पूजन की पुतरी॥

घनआनन्द की अलंकार-योजना

घनआनन्द की अधिकाश कविता सरल, निरलकृत और भावावेशपूर्ण शैली में लिखी गई है जिसके अन्तर्गत उनका विशाल पद-साहित्य तथा लगभग तीन दर्जन छोटी-छोटी कृतियाँ सम्मिलित हैं। इनमे कही-कही अलकार तो मिलेंगे परन्तु वे सहज साधारण ढग से अनायास ही चले आये हैं। अभिव्यक्त भाव की भगिमा उन्हे अपने साथ लेती चली आई है। परन्तु इसके साथ ही साथ काव्य-जगत में उनकी प्रतिष्ठा का जो प्रधान आधार है 'सुजानहित' उसमे अलकरण की कमी नही। उसमें कवि ने आवश्यकतानुसार नाना प्रकार के अलकारो की योजना की है किन्तु वह सारी अलकारी योजना है भावाभिव्यक्ति का साधन ही, साध्य का पद उसे नही प्रदान किया गया है। दूसरी बात यह है कि यह आलकारिकता परम्परायुक्त आलकारिकता से भिन्न है, यह भावों की लपेट में आई हुई है। भावो की आवेश-शीलता उनकी शैली अथवा अलकरण की भगिमा का कारण रही है सीधी-साधी बातें, सीधे-साधे ढग से कही जा सकती हैं परन्तु अन्तर की नाना भाव भगिमाएँ बिना वचन-वक्रता अथवा अभिव्यक्ति में वक्रता लाए कैसे निवेदित की जा सकती हैं। इसीलिए कहना पड़ेगा कि घनआनन्द के काव्य मे जो अलकार-विधान हैं वह रीतिबद्धो के समान आरोपित नही वरन् अन्त-प्रसूत, उनके स्वभाव का अग-स्वरूप और व्यक्तित्व का निदर्शक है।

व्यक्तिनिष्ठ काव्य रचना एव अलकृति के कारण घनआनद के अलकार प्रयोगों मे बड़ी ताजगी और नवीनता है, वह स्वय मे उनके काव्य का एक अच्छा आकर्षण है। प्रयोग वैचित्र्य, कथन वक्रता, अभिव्यक्ति-वैशिष्ट्य घनआनन्द की एक स्वभावगत प्रवृत्ति-सी प्रतीत होती है। किसी भी बात को सीधे-सादे ढग से रख देना उन्हें अभीष्ट नहीं। उनका प्रत्येक छद किसी न किसी प्रकार का बाकपन लिए हुए मिलेगा परन्तु जो बात इन्हें अपने युग के क्रमागत शैली के कवियो से पृथक कर देती है वह है संवेदना और प्रेरणा की भिन्नता। घनआनद के काव्य रचना की प्रेरक शक्ति न तो राज्याश्रय या राज-प्रेरणा है न किसी का प्रशस्तिगान, न किन्ही लक्षणो को दृष्टि मे रखकर उदाहरण प्रस्तुत करना। घनआनद की अलकार-प्रियता या वक्रोक्ति-प्रेम बहुत कुछ स्वभावगत है। एक बात यह भी है कि अनुभूति जब गहरी होती है, व्यक्ति कुछ भावुक और प्रगल्भ होता है तो अभिव्यक्ति भी ऋजु और सरल न होकर यत्किंचित वक्र हो जाती है। यह वक्रता फिर काव्य की शोभा बन जाती है। भावो को नये-नये पथ से ले जाते हुए कवि ने जिस नवीनता और कला के उन्मेष का परिचय दिया है वह साधारणत सुलभ नही। प्रभूत परिमाण मे ब्रजभाषा मे काव्य-सृष्टि हो चुकी थी फिर भी नये उपमानो के विधान में, नई कल्पनाओं की सृष्टि मे घनआनद

रीतिमुक्त और रीतिबद्ध ही नहीं समूचे मध्य-युगीन कवियों में खोजे मिले जायेंगे। कल्पना और आलंकारिता के क्षेत्र में उनकी सी नई सूझ-बूझ वाला कवि दूसरा नहीं दिखाई देता। यह नवीन कल्पना और कला की उड़ान, भावोन्मेष तथा कवि-प्रतिभा-सापेक्ष हुआ करती है घनआनंद में ये दोनों तत्व प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। शैली की इसी अविवेचनिकता के कारण घनआनंद की शैली में काव्य-रचना तो दूर परवर्ती युग में उनकी नकल भी कोई नहीं कर सका है।

विरोधाभास—विरोधाभास घनआनंद का सबसे प्रिय अलंकार है तथा इस संबंध में तो यहाँ तक कहा गया है और ठीक कहा गया है कि जिस कृति में यह अलंकार न मिले उसे बेखटके इनकी कृतियों से पृथक किया जा सकता है। इससे एक अर्थ स्पष्ट हो जाना चाहिए कि उक्ति-वैषम्य उनकी प्रकृति में ही उत्पन्न चीज है, बिना उनकी प्रकृति का अंग हुए विरोधाभास उनकी दीर्घकाल-व्यापिनी काव्य-साधना में आद्यंत किस प्रकार आ सकता था? स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिन आलंकारिक सौंदर्य की सृष्टि की है उसका मूल तत्त्व उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है जो विषमता का कोष था। जीवन विषम परिस्थितियों और मन स्थितियों का केन्द्र हो गया था इसीलिए अपने प्रेम को बिना वाक्चित्र के, बिना स्थिति-वैषम्य के निदर्शन के, और कुछ नहीं तो बिना शाब्द विरोध के वे व्यक्त ही नहीं कर पाते थे। यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलंकारिक सौन्दर्य-चेतना का केन्द्रबिंदु हो गया है। अन्य अलंकार इसी केन्द्रीय सौंदर्यात्मक धर्म के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते दिखेंगे :—

(क) बारिद सहाय सों दवागिनि दबति देखी,
बिरह-दवागिनि तें नैना झर कै रहे।

(ख) पौन सो जागनि आगि सुनी ही पै पानी सों लागति आँखिन देखी।

(ग) इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन में तुम्हें दौरि अरीं।

(घ) आनद के घन ही सुजान कान औति कहीं,
आरस जग्यौ है क्यैं सोई है छुवा-ढरक।

(ङ) हौं घनआनद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही।

(च) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी।

(छ) प्यास भरी बरसें तरसें मुख देखन कौं अँखियां दुखहाई।

(ज) झूठ की सचाई छाक्यो त्यों हित कचाई पाक्यो।

(झ) उजरनि बसी है हमारो अँखियानि देखो,
सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हो।

रूपक—रूपक घनआनन्द का दूसरा प्रिय अलंकार है। उन्होंने एक से एक बढ़े कितने ही साग रूपक प्रस्तुत किये हैं जो अनुभूति की भंगिमा से सम्पृक्त हो अतिशय सरस बन पड़े हैं। एक वैराग्य-परक छन्द में कवि ने किस असाधारण कौशल से जड़-जीव को उद्बुद्ध किया है—बाल्यावस्था की संध्या तो तूने हँसकर खेल कर गँवा दी और यौवन की रात्रि विषय की मदिरा पीकर और सोकर गँवा दी। अरे जड़-चातक (जीव)! आनंदघन को छोड़

संसार के धुएँ को ही तू मेघ समझे हुए था। अब भी तो जग। देखता क्यों नहीं कि केशों की ओर से सवेरा हो रहा है—

> लरिकाई-प्रदोष मैं खेल खयौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ।
> बहुरौं करि पान विषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ॥
> तजि कै रसमै घनआनद को जग-धुंध सों धालिक-नेम लयौ।
> जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किति, केसनि ओर तें भोर भयौ॥

ऐसी बाँकी अभिव्यक्ति रीतिबद्ध कवि नहीं प्रस्तुत कर सके हैं। इसमें जो अनुभूति है और जो अभिव्यक्ति है उन दोनों के सामजस्य में ही इस छद का वास्तविक सौन्दर्य निहित है। इसी प्रकार रूप के जल में मन का विहार करने के लिए जाने का रूपक भी अभिनव सूझ-बूझ का निदर्शक है—

> पानिप अनूप रूप जल कों निहारि मन,
> गयो हो बिहार करिबे कैं चाय ढरिकै।
> परयौ जाय रगनि की तरल तरगनि मे,
> अति ही अपार ताहि कैसें सकै तरि कै।
> धीर-तीर सूझत कहू न घनआनद यौं,
> बिबस बिचारो चक्यौ बीच ही हहरि कै।
> लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
> बूडिबे तें बच्यो को सिवार कों पकरि कै॥

अपनी नवीनता के कारण वचनों के आसव का रूपक भी देखने योग्य है—

> कठ-काच-घटी तें बचन चोखो आसव ले,
> अधर-पियालें पूरि राखति सहेत है।
> रूप-मतवारी घनआनद सुजान प्यारी,
> कानंनि ह्वं प्राननि पिवाय पोवें चेत है।

अपने चित्त को सुजान के हाथ का बीन बतलाकर कवि ने अपनी प्रेमार्पित मनोदशा की कैसी सुन्दर व्यजना की है—

> जान प्रवीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भरयो नित राजै।
> सो सुर सांच कहू नहि छाँडत ज्यौं ही बजावै लियें मन बराजै।
> भावती मींड मरोर दियें घनआनद सौगुने रग सों गाजै।
> प्यार सों तार सु ऐंचि कै तोरत क्यों, सुघराइये लावत लाजै॥

इसी प्रकार के एक से एक सुन्दर साग-रूपक घनआनन्द में देखे जा सकते हैं—जिन छंदों में उन्होंने अपनी लालसाओं को मेहदी, प्रिय की प्रीति-रीति के कारण उसे वधिक, दृष्टि को बैठक (जिसमे नित्य सावन ही बना रहा है), हृदय को प्रेम पत्र, विरहिणी को वर्षा ऋतु में तुरई की बेल, मन को पारद, जीव को गुडी, तन को फाग का सुहागपूर्ण राग, रूप को खिलाडी या जुआड़ी, रूप को राशी, नेत्रों को चाँदनी रात का चोर, राधा के यौवन-विलास को वसंत, वियोग को अक्षयबट का बीज आदि कहा गया है उनमें कवि की नई

बीजुरी को बधु किधौं दुख ही को सिंधु है,
कि महामोह-अंध दड अतन-अलात को।
असंगति—नैनन में लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीव धीर होत लोटपोट है।
तद्गुण—दसनि दमक फैलि हियें मोती माल होति।
विभावना—विरह समीर की झकोरन अधीर नेह,
नीर भींज्यो जीव तऊ गुडी लौं उड्यो रहै।
उदाहरण—मोसो तुम्हें सुनो जान-कृपानिधि नेह निबाहिबो यो छबि पावै।
ज्यों अपनी रुचि राचि कुबेर सुरकहि लै निज अक बसावै।।
यथासंख्या—बिछुरें मिले मीन पतग दसा, कहा मो जिय की गति को परसै।
अर्थान्तरन्यास—मोंहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आंहि,
कहा कछु चदहि चकोरन की कमी है।
अपन्हुति—जारत अग अनग की आचनि, जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।

उपर्युक्त उदाहरणों से विदित होगा कि घनआनन्द की शैली ही निराली थी। जहाँ उनमें हम असाधारण भावुकता के दर्शन करते हैं वहीं उनके काव्य के कला-पक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं। रह-रह कर रूपकों का ठाठ खड़ा करना, हर छंद में विरोध का निदर्शन करना और सहज ही अपनी भाव-भंगिमा और भाषा-कौशल द्वारा सुन्दर से सुन्दर अलकार-प्रयोग करना उनके काव्य-शिल्प का एक प्रधान गुण है। उनकी शैली में जो अलंकार है वह उनके व्यक्तित्व से ही प्रसूत है। अलकारों के नितांत वैयक्तिक प्रयोग सूझ की मार्मिकता के साथ साथ नवीनता और अनोखापन उन्हें ब्रजभाषा के अद्वितीय शिल्पकारों की श्रेणी में बिठा देते हैं।

बोधा की अलकार-योजना

बोधा के इश्कनामा में तो अलकारों को ढूंढना पड़ता है। बोधा की कला उनकी सहज भाव-व्यंजना थी न कि कोई अलकारिक कौशल, इसका यह अर्थ तो नहीं कि बोधा ने अलकारों से रहित काव्य लिखने का सकल्प कर लिया था। परतु इससे उनकी मनोभूमि का अवश्य पता चलता है। इश्कनामा में कोई उल्लेखनीय शब्दालंकार नहीं मिलते, हाँ कुछ सादृश्यमूलक अर्थालंकार, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उदाहरण, प्रतीप, अपन्हुति, अन्योक्ति आदि अवश्य मिल जाते हैं—

उपमा—तिरछी तरवारि लौं हैं तिरछे दृग।
उत्प्रेक्षा—भाल मे रोरी की बेंदी लसी है ससी में लसौ मनो बीर बहूटी।
रूपक—प्रेम की पाती प्रतीति कुंडी दृढ़ताई के घोटन घोटि बनाव।
मैन मजेजन सो रगरै चितचाह को पानी घनो सरसावै।
बोधा कटाक्षन की मिरचैं दिल साफी सनेह कटोरे हिलावै।
मो दिल होइ खुसी तबही जब रग में भावती भग पिआवै।।
अपन्हुति—लखि बेनी जटा न बिभूति मलै सिर गग नहीं श्रमबुंद चुयें।
अन्योक्ति—मालती एक बिना भ्रमरी इतै कोऊ न जानत पीर हमारी।

विरह्-वारीश मे अलंकार-योजना—आलम की ही भाँति बोधा ने भी वर्णनात्मक थलों पर ही अलकारों का अधिक प्रयोग किया है विशेषतः रूप-वर्णन के प्रसग मे । अन्य थलो पर अलकारो का प्रयोग न के बराबर है । सौदर्याङ्कन के लिये उन्होने अलकार विधान का विशेष उपयोग किया है । उनके अलकार साहश्य मूलक ही अधिक हैं जो प्रस्तुत के सौन्दर्य को प्रभावशाली रीति से हृदयगम कराने मे सहायक हुए है । शब्दालकारो मे अनु-प्रास से अधिक प्रिय अलकार बोधा को दूसरा न था । श्लेष या शुद्ध चमत्कार वाले अलं-कारो से वे दूर थे । हृदय की भावलहरियों को स्वच्छन्द ढग से तरगित होने देने मे ही उनकी असली कला थी । यमक जहाँ आ गया है आ गया है, उसके प्रति कोई मोह न था । अर्थालकारो के प्रयोग मे औपम्य-दृष्टि प्रधान होने की बात हम कह चुके है । बोधा की वर्णन शैली मे उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रधान स्थान था तथा अन्य अर्थालकारो की अपेक्षा उन्होने प्रतीप, रूपक, मालोपमा का अधिक प्रयोग किया है । एकावली भी बोधा का एक प्रिय अलकार प्रतीत होता है क्योंकि इसका प्रयोग उन्होने अनेक बार किया है । इसमे पदों के ग्रहण और त्याग के क्रम से सब पद जजीर की कड़ियों की तरह परस्पर जुड़े होते हैं । इन्ही विशेषताओ से उनका आलकारिक कौशल समृद्ध है । सक्षेप मे यह कि अलकार बोधा के लिए साध्य बिलकुल न था, साधन मात्र था और साधन भी कोई बहुत बडा न था । उनके काव्य को सौन्दर्य देने वाले और महत्त्वपूर्ण बनाने वाले अनेक उपकरणो मे से एक उपकरण अलकार भी था । विरह्-वारीश मे आए अलकारो पर एक दृष्टि डालिए—

अनुप्रास—बोधा नये नये मन नये लखि चैत चमू की ध्वजा फहराते ।
यमक—दृगमृग एक रीति सो बखाने बे तो,
कानन बिहारी येऊ कानन बिहारी हैं ।
उपमा—कनकलता से बनिक बाहु बिय अगुरी चम्पकली सी ।
उत्प्रेक्षा—गुजामाल लाल लाल के उर मैं दरसत ताकी ।
जनु उफनालि हिये मोहन के रति वृषभानु सुता की ॥
मालोपमा—कारे अनियारे बडवारे रतनारे दृग प्यारे ।
अलि खजन मृग मीन कमल दल पानिप जलसुतवारे ॥
प्रतीप—चपक, कमल, चद्रिका झूठी रग पर वारो सोनो ।
व्यतिरेक—नित प्रति नई कला को धरि शशि तेरे मुख सो जोरै ।
सम न होय धुनो लौं सज फिर कुहू रैन लौं फोरै ॥
उदाहरण—डाढ़ी लसत सुढार लाल की जैसी गोल सुपारी ।
रूपक—परि गइ प्रीति भवर मे जाजर नाव ।
इहि बिरिया मोहि केवट पार लगाव ॥
संदेह—कामिनी कामदा प्यारी तिया अये लीलावती है कि तू मृगनैनी ।
भ्रात्यापन्हुति—चिबुक न तेरो बीर अमृत की धार बिधि,
चद्रमा के धोखे मुखचन्द्र छेदि डार्‌यो है ।
एकावली—जो नरदेह देह दे स्वामी । तौ सनेह जिन देय बिरानी ॥
जो सनेह करनी बस देही । तौ जिन बिछुरैं मीत सनेही ।
जो कदापि बिछुरैं मनभावन । तौ जिय जाय चला तेहि दावन ॥

ठाकुर की अलंकार-योजना

अलकारो के प्रयोग की दृष्टि से ठाकुर की कविता निरलङ्कृत है। अलकार-विधान की ओर उनकी कोई विशेष रुचि नही मिलती, उनके एक से एक सुन्दर छन्द पढते चले जाइए किन्तु आलकारिक चमत्करण की उपलब्धि उनकी रचना म आप को बहुत कम होगी। उनकी बातें जरूर अनूठी होती हैं जिसे वे बडी युक्ति से कहते है—'बात अनूठी बनाई सुनावै' किन्तु उनके ये कथन थोडी भी कृत्रिमता का आभास नही देते। वे उनके व्यक्तित्व से छनकर आये हुए कथन हैं। उनकी युक्तियां भी ऐसी वक्रता लिये हुए होती है जो अलकार निरपेक्ष कही जा सकती हैं। उनकी वचनभगी विरोधाभास पर भी आश्रित नही, वह बहुत कुछ सिद्धान्त-कथनो, नीत्योक्तियो, सामान्य उदाहरणो, जगत की गति के निरूपण आदि के रूप मे होती हैं। उनकी सरसता अलकाराश्रित नहीं, ऐसी रचनाएँ हिन्दी कवियो मे ढूढने से ही मिलेंगी जिनमे भाषा का सौन्दर्य स्वतन्त्र और अलकार निरपेक्ष हो। अलकारो का महत्व देना ठाकुर के काव्यादर्श के विपरीत था, वे अलकारो मे बोझिल काव्य-रचना के हिमायती न थे। उन्होने सरल, सहज काव्य रचना मे ही अपने आपको सिद्ध किया था। यमक ऐसे अनि-प्रचलित अलकार भी सामान्यत उनकी रचना म नही आये हैं। वीप्सा का प्रयोग ठाकुर ने अवश्य किया है जो भाव पर बल देने मात्र के लिये किया जाने वाला एक आवृत्तिमूलक अलकार है। इस प्रकार का शब्दावृत्ति सम्बन्धी चमत्कार उस समय देखने मे आता है जब वे लिखते हैं—

> दौरीं लै गुलाल ब्रजबाल चार्‌यो ओरन तें,
> होरी लाल होरी लाल होरी लाल होरी है।

परन्तु शब्दालकारो मे ठाकुर उलझे नहीं हैं, उनमे वे उलझते भी क्या जब उन्हें अर्थालकारों के प्रति भी कोई आकर्षण न था। उनके द्वारा प्रयुक्त अर्थालकार मुख्यतया सादृश्य-निरूपक हैं और भावोत्कर्षण विधायक भी। इन औपम्यमूलक अलकारो मे रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, उदाहरण, अतिशयोक्ति आदि ही जब तब देखने को मिलते हैं उदाहरण के लिये—

रूपक—मन मेरो मतग भयौ मदमत्त सु माया-समुद्र मे आन धस्यो है।
उत्प्रेक्षा—पानिन मे तिय आनन यों दिपै चद चढ़ो मनो कंज की नालको॥
अतिशयोक्ति—दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अगुरीन के पोरन छाले परे॥
सन्देह—काम कृपाण कि डोरी लिये चपला फिरै मेघन मापति सी।
उदाहरण—तन को तरसाइबो कौने बदो मन तो मिलिगो पै मिलै जल जैसो॥
उपमा—सजि सूहे दुकूलन बिज्जु छटा सी अटान चढी घटा जोवती हैं।

द्विजदेव की अलंकार-योजना

अलकार-विधान की दृष्टि से द्विजदेव की रचनाओ को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—अलकार निरपेक्ष, अलकार सापेक्ष। पहले वर्ग की रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें भाव-व्यजना ही प्रधान है, अलकार केवल जहाँ तहाँ व्यजना की अनिवार्य आवश्यकता के कारण आ गए हैं उदाहरण के लिये प्रकृति चित्रण विषयक छन्दो मे अलकरण कम है। यद्यपि ब्रजभाषा काव्य का वर्णनात्मक अश प्राय अलकृत शैली मे ही लिखा गया है परन्तु स्वच्छन्द

वृत्ति के कवि होने के कारण द्विजदेव ने प्रकृति-चित्रण के परिपाटी विहित मानो को ठुकरा दिया है और वर्णन की स्वच्छन्द पद्धति तथा भावोन्मेष और प्रकृति के प्रति अपने रागात्मक सम्बन्ध का परिचय दिया है। दूसरी बात यह है कि उनकी शैली के निर्माण में उनकी भाषा और शब्द-प्रयोगों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है इसलिये भी अलकारो का प्रयोग अधिक नहीं होने पाया है। दूसरे प्रकार की रचनाओं में जिनमें अलकारो का अधिक प्रयोग मिलता है रीति शैली की छाप देखी जाती है। ऐसे छन्दों में प्राय रमणी के रूप का वर्णन, अग-सौन्दर्य वर्णन आदि मिलेगा। शृ गार-लतिका के दूसरे और तीसरे सुमनों में इस प्रकार के छन्द विशेष मिलेंगे। ऐसे छन्दो की सख्या भी पर्याप्त है तथा उनमें उत्तम कोटि का आलं-कारिक सौन्दर्य देखा जा सकता है। यदि उनकी इस प्रकार की रचनाओं का गंभीरता-पूर्वक अध्ययन किया जाय तो उसमे अलकार-विधान सम्बन्धी अनेक उपलब्धियों, नूतन पद्धतियों और कवि की प्रखर सूक्ष-बूझ का पता चल सकेगा। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, भ्रातिमान, प्रतीप, मुद्रा, व्यतिरेक, काव्यलिंग, वीप्सा, यमक और अनुप्रास उनके अधिक प्रिय अलकार जान पड़ते हैं।

अर्थालंकार—द्विजदेव के अर्थालकारो में प्रधान उपमा अलकार पर जब हम विचार करते हैं तो देखते हैं कि द्विजदेव ने उपमाए तो प्रायः पुरानी ही ग्रहण की हैं परन्तु उनका प्रयोग अपने ढग से किया है जैसे कृष्ण की उपमा श्यामल मेघ से, राधिका की बिजली से तथा दोनों की चन्द्रमा और चकोर से, उनकी कान्ति की तुलना बिजली से सोने से, चादनी से, नेत्रों की उपमा अरविंद से सारस से चकोर से, प्रिय और प्रिया के मुख की उपमा चन्द्रमा से कमल से। ये सब प्रसिद्ध और परम्परागत उपमान हैं। इसी प्रकार वियोगिनी के शरीर की उपमा अवाँ या कुम्हार की भट्ठी से और विरहिणी की दृष्टि में फूले हुए किंशुकों (पलाशों) की उपमा ज्वाल-जाल से करना भी कोई नई बात नहीं है, किन्तु इनमें से हर प्रयोग को देखने से यही पता पड़ेगा कि कवि ने इनका प्रयोग अपने ढग से किया है जिसमे पर्याप्त नवीनता है। आखिर किसी वर्ण्य अथवा उपमेय के लिये चुना गया कोई अवर्ण्य या उपमान रोज रोज तो बदला तो नहीं जाता। उपमान सतत बदलते रहते हैं किन्तु सतत चलते भी रहते हैं। अच्छे उपमान युग-युग तक चलेंगे। इस प्रकार एक बात तो यह हुई कि द्विजदेव ने उपमा के प्रयोग में परपरा प्राप्त उपमानो का सुन्दर और निजी ढग से प्रयोग किया है दूसरे उनकी कुछ उपमाए अपेक्षाकृत नई भी हैं अथवा ऐसी जिनका प्रयोग कवियों ने कम किया है, जैसे नायक या नायिका के मुख की उपमा गुलाब से, शरीर की उपमा गुलाब की पत्ती से, सुकुमार प्रेमिका की तुलना गुलाब की कली से। इसी प्रकार हग को दोपहरी के फूल (बधूक) के समान बतलाना, गुलाल के उड़ने को घटा ठहराना, विरह में वायु को अग्नि का वास-स्थान बतलाना तथा राधा-कृष्ण के आकस्मिक किन्तु क्षणिक मिलन को दो बिजलियों के एकत्र होने के समान कहना कवि का उपमानों की अल्पप्रयुक्त भूमि में प्रवेश करना सूचित करता है। तीसरी विशेष बात यह है कि द्विजदेव ने कुछ ऐसी उपमाओं का प्रयोग किया जो अन्य कवियों में मिलती ही नहीं उदाहरण के लिये वृक्षो को स्वागतार्थ पुष्पाञ्जलि-बद्ध मनुष्यों के समान वर्णन करना, समीर को परिचारक बतलाना, मन को बावले आदमी या मजरित आम्रवृक्ष सा कहना और वियोग में झुलसते हुए शरीर को तन्दूर सा वर्णित करना कवि की नवीन औपम्य-शोधिनी दृष्टि का परिचायक है। ये

उपमाएं बड़ी प्रभावशालिनी हैं, इसी प्रकार विरहिणी के लिये कोयल के मधुर बोल में मिलने वाली घातक तीक्ष्णता की व्यंजना के लिये सचान (बाज पक्षी) की मिसाल सामने लाना भी कवि की सूक्ष्म औपम्य-दृष्टि का निदर्शक है। यहां पर भाव की तीव्रता दिखलाने के लिये अनुरूप उपमान योजना देखने लायक है। एक बात जो इन उपमानों के संबंध में कहना आवश्यक है वह यह कि ये उपमायें काव्य की सरसता को उत्कर्ष प्रदान करने वाली हैं। ये उपमाएं इतनी अधिक भी नहीं हैं कि कविता उनके बोझ से चलने में असमर्थ हो। दूसरी बात यह है कि कवि उपमा के सभी अंगों को एकत्र करने के फेर में नहीं पड़ा है। साम्य के विधान द्वारा भावोत्कर्ष लाने के लिये उपमा के दो-तीन अंगों से भी काम चला लिया गया है, उसकी खाना पूरी कवि का अभिप्रेत न थी। इस प्रकार अधिकांश उपमाएं लुप्तोपमा ही हैं पूर्णोपमाएँ कम ही हैं। रूपक का प्रयोग करते हुए कवि ने छोटे-छोटे निरंग रूपकों का ही व्यवहार अधिक किया है। कुछ रूपक तो बड़े सुन्दर हैं और पर्याप्त नवीन भी, उदाहरण के लिये मान को मधुकर बतलाना बड़ा ही साभिप्राय है, आंसुओं के व्याज मान का भ्रमर बन कर भाग जाना सादृश्य योजना का अत्यंत सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार काम की ज्योति, विष की बल्लरी, दुख को सोता कहना, कर को पल्लव, दुख को फंदा, जल को दुर्ग, चित्त को कमलासन, प्राण को पक्षी, वाणी को अमृत, चितवन को फांसी के फंदे का रूपक देना पर्याप्त सुन्दर और काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। कल्पना के ये आरोप भावों को सजाने वाले और उन्हें तीव्रता प्रदान कर रसास्वाद कराने में सहायक हुए हैं। उपरि-कथित रूपकों में सब के सब तो नए नहीं है पर हां अल्पप्रयुक्त अवश्य हैं। परंपरा प्राप्त रूपक इस प्रकार हैं—अलि-बारन, आननचन्द, नैनचकोर, दृग-अंबुज, विरहा-झार, नैन-मलिन्दन, चित्त-चकोरन बैन-सुधा आदि। द्विजदेव ने बड़े रूपक जिनमें व्यापक रूप में उपमानों का आरोप किया जाता है बहुत कम रखे हैं। बड़े रूपक बांधने में भावपक्ष को यदि न संभाला गया तो कविता चमत्कार की पिटारी से अधिक कुछ नहीं रह जाती। भावपक्ष को कोई आघात न पहुँचने पावे इसी विचार से द्विजदेव ने सागरूपक बहुत कम बांधे हैं। बंधान भी परिपूर्ण नहीं है।[1] चार चार-चरणों में बंधे उनके सांग रूपक उतने अच्छे नहीं जितना एक ही चरण में प्रस्तुत अधोलिखित सांग रूपक—

> बाहन मनोरथ, उमाहैं संगवारी सखी,
> मैन-मद सुभट, मशाल मुखचंद री॥

द्विजदेव के रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग भी देखने योग्य हैं, यह अत्यंत गौरव, गरिमा-पूर्ण अलंकार माना जाता है तथा इसका प्रयोग कुछ सरल नहीं हुआ करता है। इसमें प्रसिद्ध उपमानों के ही आधार पर उपमेय का सूचन किया जाता है। प्रतीप का प्रयोग भी बहुत हुआ है। इस अलंकार में उपमेय उपमान हो जाता है और उपमान उपमेय, साथ ही जहां उपमेय और उपमान में किसी एक के द्वारा दूसरे का निरादर किया जाता है वहां भी प्रतीप अलंकार ही होता है। द्विजदेव के प्रतीप के सभी प्रयोग प्रायः दूसरे प्रकार के ही हैं। प्रतीप का प्रयोग प्रायः रूप, शोभा, अंग-प्रत्यंग, आभूषणादि के वर्णन के निमित्त किया

---

[1] शृंगार-लतिका-सौरभ : छन्द ६६, ११, १६, १४२

गया है। द्विजदेव के अल्प-प्रयुक्त अलंकार हैं—उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, समासोक्ति, दृष्टांत आदि।

नये रंग-ढंग के अलंकार—द्विजदेव ने कुछ ऐसे सादृश्यों का विधान किया है जो एक तो सूक्ष्मतर कल्पनाशक्ति-सापेक्ष हैं दूसरे जिनके लिये परम्परा की लीक से हटना भी आवश्यक है उदाहरण के लिये ये प्रयोग देखिये—मनोरथ के रथ की सवारी करना, जुन्हाई की धारा का बहना, अभिलाष के समुद्र का सन्तरण करना, अबीर की चादनी से नेत्रों का बन्द हो जाना, काम कन्या के समान उमग में आना, आनद के अमृत में पगना आदि। इनमें जो सूक्ष्मता, कोमलता, मधुरता और सरसता है वह द्विजदेव की कविता में नई आभा पैदा करने वाली है। स्वच्छन्द वृत्ति के कवि बराबर ऐसी सूक्ष्म और अशरीरी उपमाएँ लाते गये हैं।

चमत्कार—आंशिक रूप में रीति की छाप रखने के कारण द्विजदेव की रचना में जहाँ तहाँ कोरे चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। जो कहीं-कहीं तो कुछ शब्दों तक ही सीमित है और कहीं कहीं समूचे छन्द में व्याप्त है यथा—

(क) दुरि दीपसिखान मैं बैठी सुतो, छबि दीप-सिखान की छीनि रही।
(ख) हारसिंगार की यौविन मैं सु तौ हारसिंगार के फूल सी फूली।
(ग) वे बस भव सदाई रहैं, इनकै न है जन्त्र, न मंत्र, न है मुनि।
वे डसि भाजति एक ही बार, इन्हैं नहिं तोप विनाहिं डसे पुनि।
भेद चबाइन सौं औ भुजंगन सौं 'द्विजदेव' रहैं घौं कितो गुनि।
आँखिन देखि डसैं वे कहूँ, सखि ! ए भित हीं डसैं कानन सौं सुनि॥

इस प्रकार द्विजदेव के काव्य में जहाँ-तहाँ रीति कवियों वाली चमत्कार-अभिलाषिणी वृत्ति छाई हुई है। सतोष का विषय है कि ऐसे छन्दों की संख्या अधिक नहीं है।

द्विजदेव के आलकारिक प्रयोगों के कुछ उदाहरण देखिये—

उपमा—सखि मूलि हुती अपनी अब लौं, ब्रजराज गुलाब से आज बने।
रूपक—बिसरी सिगरी सुधि ता छिन तें, कुछु ऐसिऐ डीठि की फासी घली।
नया प्रयोग—लहि बीर अबीर की चादनी नैननहू अरविन्द की रीति लई।
अतिशयोक्ति—ऐसे मैं आनि कहू 'द्विजदेव' बसंत-बयारि कहीं तितहीं हवै।
बात-की-बात में बौरी तिया अरु पीत हूँ पाती परी कर सों च्वै॥
रूपकातिशयोक्ति—दीन्हें जानि बराइ बुधि कछुक आगिले गात।
चढ़ि पहार असि-धार-पथ, को भौंरहि तरि जात॥
भ्रांतिमान—द्विजदेव जू सारद चन्द्रिका जानि, चकोर चहूँ परखेई रहैं॥
प्रतीप—सी तन कौं तन की लखिऐ, तौ कहा दुति कुंदन, चंद, मसाल में॥
मुद्रा—बलवीर कहाइ के कान्ह तुम्हैं, अबलान कौं दुख न देत बनै।
व्यतिरेक—'द्विजदेव' दोऊ पग वा तिय के, अरविन्दन हूँ तें अनूप ठये।

४

छंद-विधान

रसखान का छद-विधान

रसखान चाहते तो अपने युग के अन्य भक्तो के समान गीति काव्य की रचना कर सकते थे किन्तु उन्होने युग के शृङ्गारी कवियो की स्वीकृति शैली कवित्त-सवैया का ग्रहण कर प्रेमी कवियो का साथ दिया। उनका मुख्य छद सवैया ही है। अपवाद रूप मे एक पद भी उनके नाम पर मिलता है। सिद्धान्त कथन के लिए उन्होने दोहा शैली तथा प्रेम और भक्ति भावो की व्यजना के लिए सवैया और कवित्त चुना। उनके छद प्राय निर्दोष और प्रवाहपूर्ण हैं मात्रा और वर्णो की न्यूनाधिकता सम्बन्धी दोषो से वह प्राय मुक्त है।

सवैया—सवैया एक वर्णिक वृत्त है जिसमे गणो का निश्चित विधान हुआ करता है। कुछ लोगो ने सवैया का मात्राओ की दृष्टि से विचार किया है परन्तु इसका विचार गणात्मक वर्णिक वृत्त के रूप मे ही अधिक होता है। रसखान ने मत्तगयद, दुर्मिल, किरीट, मदिरा सवैयो का प्रयोग किया है। मत्तगयद का प्रयोग सबमे अधिक हुआ है।

मत्तगयन्द सवैया—इसे मालती या इन्द्रव भी कहा जाता है—इसमे ७ भगण (SII) और २ गुरु (SS) रहते हैं यथा—

S II S II S I I S II S I I S II S II SS
या लकु टी अरु कामरि या पर राज ति हू पुर को तजि डारौं

S I I S II S II S I S S I I S II S I I S S
वैन व ही उन को गुन गाइ औ कान व ही उन बैन सो सानी

दुर्मिल सवैया—इसे चद्रकला भी कहते हैं—इसमे ८ सगण (IIS) होते हैं। वर्णो का विधान मत्तगयद से उल्टा समझिये। उदाहरण लीजिये—

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I I I I S I I S
उनहीं के सने हन सा नी रहैं उन ही के जु ने ह दिवा नी रहैं

किरीट सवैया—इसमें ८ भगण (ऽ।।) होते हैं, उदाहरण के लिए—

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।
मानुष हौं तो व ही रस खानि ब सौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वार नें

मदिरा सवैया—इसे मालिनी, उमा और दिवा भी कहते हैं—इसमें ७ भगण (ऽ।।) और एक गुरु (ऽ) होता यथा—

ऽ। ।ऽ ।। ऽ।। ऽ ।। ऽ। । ऽ ।। ऽ।।ऽ
मेरो सु नो मति आइ अ सी उहां जौनो ग सी हरि गावत है

कवित्त—कवित्तों का प्रयोग रसखान में अपेक्षाकृत कम मिलता है। यह एक वर्णिक वृत्त है। इसमें गणो का विधान नहीं होता। इसके प्रत्येक चरण में ३१ वर्ण होते हैं और १६, १५ पर यति हुआ करती है। इसमें अंत का वर्ण गुरु होता है, शेष के लिए गुरु-लघु का नियम नहीं है। कवित्त को ही मनहर, मनहरण और घनाक्षरी भी कहते हैं। इस छंद के व्यवहार के सम्बन्ध में आचार्य भानु ने लिखा है कि 'कवित्त रचने के विषय में साधारण नियम यह है कि ८, ८, ८, ७ वर्णों का प्रयोग हो। यथा सम्भव इन्हीं में पाद पूर्ण होते जावें। यदि यह न हो सके तो १६ और १५ पर अवश्य ही पद पूर्ण हों। कवित्त में लय ही मुख्य है।[1] 'कवित्त अथवा घनाक्षरी के और भी भेद हैं जैसे जलहरण (३२ वर्ण) देव घनाक्षरी (३३ वर्ण) रूप घनाक्षरी (३२ वर्ण) आदि। रसखान के सभी कवित्त ३१ वर्णों के ही हैं फलतः वे मनहरण कवित्त ही कहे जायेंगे यथा—

(क) कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,
१६
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
१५
(ख) कहकही बैरी मंजुडार सहकार हो पै,
१६
चहचहो चुहल चहकित अलीन को।
१५

किन्तु अनेक कवित्तो मे वर्णविधान सदोष है, उदाहरण के लिए देखिए

(क) अंत ते न आयो याही गावरे को जायो,
१४
माई बापरे जिवायो प्याइ दूध बारे बारे को।
१७
(ख) ऐरी तोहूं पहचानौं वृषमान हूं कों जानौं,
१८
नेकु, काहू की न संका मानौं हौं अहीर ऐसो हौं।
१५

---

१ छंद प्रभाकर—पृ० २०३

उत्तम कवित्तो मे वर्ण विधान के नियम का पालन आवश्यक है, रसखान इस क्रम का निर्वाह सर्वत्र नही कर सके हैं। यही बात हम सवैयो मे भी पाते हैं, अनेक बार दीर्घ-वर्णों को ह्रस्व के रूप में पढना पडता है और दो मात्रा वाला अक्षर एक मात्रा वाले अक्षर के समान उच्चारित करना पडता है।

दोहा और सोरठा—सुजान रसखानि में दोहे बहुत कम हैं, हाँ प्रेम-वाटिका केवल दोहो मे अवश्य लिखी गई है। यह एक सीधा-सा मात्रिक छद है जिसके विषम चरणो मे १३ और समचरणो मे ११ मात्राए होती हैं। इसकी लय बहुत सरल होती है और थोडे से अभ्यास से छद को सिद्ध किया जा सकता है। रसखान ने कुछ सोरठे भी लिखे हैं। सोरठा दोहे का उल्टा हुआ करता है अर्थात् विषम चरणो मे ११ और समचरणो मे १३ मात्राएँ रखता है। इन छदो का प्रयोग रसखान ने साधारणत ठीक किया है, उदाहरण के लिए देखिये—दोहा—

> १३ ११
> प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
> १३ ११
> जो आवत यहि ढिग बहुरि, जात नाहिं रसखान॥

सोरठा—

> ११, १३
> देख्यौ रूप अपार, मोहन सुदर स्याम को।
> ११, १३
> वह ब्रजराज कुमार, हिय जिय नैननि मैं बस्यौ॥

इन छन्दों मे भी गुरु मात्राओ को लघु और लघु को जहाँ-तहाँ गुरु करके पढना पढेगा। रसखान की दृष्टि काव्य में कला पक्ष की ओर विशेष न थी। वे प्रेम और भक्ति मे डूबे रहने वाले जीव थे, पिंगल-शास्त्र के सूक्ष्मतम नियमो के अनुसरण का उन्हे कहाँ अवकाश था और आवश्यकता भी क्या थी। इसी कारण सूक्ष्म बातो मे दोष या कमी पाई जा सकती है फिर भी मोटे तौर से उन्होने पिंगल के नियमो का अनुसरण किया है और बहुत भद्दी गलतियाँ प्राय. नही होने पाई हैं। इस सन्दर्भ मे हमे ध्यान रखना चाहिए कि वे स्वच्छन्द-कर्त्ता थे, रीति की बारीकियो मे जाना उन्हें अभीष्ट न था।

आलम का छंद-विधान

आलम के छद विधान मे सेनापति, पद्माकर आदि के समान सिद्धि तो नही मिली है फिर भी उन्होने कवित्त और सवैयो का ही विशेष प्रयोग अपनी मुक्तक रचनाओं मे किया है। अपवाद-स्वरूप दो छप्पय भी उन्होने लिखे हैं। छप्पय सम-मात्रिक छद है, यह दो छदो रोला और उल्लाला के योग से बनता है। इसके आदि मे चार पद रोला के और अन्त मे दो पद उल्लाला के होते हैं। २६ या २८ मात्रा वाला कोई भी उल्लाला रखा जा सकता है। आलम ने २८ मात्रा वाले उल्लाले रखे हैं। रोला के प्रत्येक चरण मे ११, १३ के विराम से २४ मात्राएं होती हैं। उल्लाला के विषम चरणो मे १५ और समचरणो मे १३ मात्राएँ होती हैं। आलम के दोनो छप्पय निर्दोष हैं।

इसे किशोर या कुंडला भी कहते हैं। आलम के कुछ सवैये ऐसे भी हैं, जिनमें उपर्युक्त किन्हीं दो भेदों का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। यह मिश्रण सवैयों की गति का अवरोधक हुआ है। इसमें उनके छंद विधान में जीवन शक्ति नहीं आ सकी है। इसके अतिरिक्त उनके छंदों में लघु को गुरु और गुरु को लघु करके पढ़ना पड़ता है। इससे भी छंद के सौन्दर्य को क्षति पहुँची है। अनेक स्थानों पर अरुचिकर तुक भी बिठाये गए हैं जैसे मुकि, हुकि, जुकि, भुकि, दिसा की, विसा की तिसा की, निसा की, मुचे ते, सुचे ते, छ्वे ते, छ्वे ते। इस प्रकार आलम का छंद-विधान बहुत कुछ उत्कृष्ट कोटि का नहीं कहा जा सकता।

प्रबन्ध ग्रन्थों में छन्द-योजना—आलम कृत माधवानल प्रबन्ध दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया है। चौपाइयों के बाद आने वाले दोहे अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर और सुगठित बन पड़े हैं, अनेक बार ऐसा लगता है जैसे ऊपर की पाँचों अर्धालियों का सारा तत्व निचोड़ कर दोहों में भर दिया गया हो। चौपाइयाँ मात्रा आदि की दृष्टि से कितने ही स्थलों पर सदोष हैं जिसका एक कारण शुद्ध पाठ का अभाव भी हो सकता है। चौपाइयों की संख्या का क्रम भी नियमित नहीं है। मोटे तौर से कवि ने पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहे का क्रम रक्खा है परन्तु इस क्रम के कितने ही अपवाद प्रस्तुत किये जा सकते हैं उदाहरण के लिए दोहा ६० के पहले २ ही चौपाइयाँ हैं, दोहा ८६, ६१, ११० और ११ के पहले ४ ही चौपाइयाँ हैं तथा दोहा ५८ के पहले ६ और दोहा १७८ के पहले ७ चौपाइयाँ भी रखी गई हैं। प्रामाणिक पाठ के अभाव के साथ-साथ इस बात की भी संभावना है कि कवि ने ५ या ७ या ४ का कोई निश्चित क्रम रखना आवश्यक न समझा हो और एक भाव या वर्ण्य-जहाँ अपेक्षित पूर्ति हो जाती थी वहाँ वे दोहा लगा दिया करते थे फिर भी अधिकांश दोहों के पूर्व आने वाली चौपाइयों की संख्या ५ ही मिलेगी।

श्याम-सनेही खण्ड काव्य सरल वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। दोहा-चौपाई छंदों के प्रयोग के कारण इसकी कथा की धारा निर्विघ्न चलती रहती है। ग्रन्थारम्भ में एकाध छप्पय और भुजंगप्रयात छंद रखे गये हैं।

घनआनन्द का छंद-विधान

रचना शैली अथवा छंद विधान की दृष्टि से घनआनन्द का काव्य ६ भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) कवित्त-सवैया शैली जिसमें घनआनंद का सुजान प्रेम प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। कवित्व स्वच्छन्दता और निरंकुश भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यही उनकी प्रधान शैली है। इस शैली की रचनाओं के बीच दोहा, सोरठा, छप्पय आदि छंद भी मिलेंगे पर वे महत्त्व की दृष्टि से नगण्य हैं और संख्या में भी अत्यल्प।

(२) दोहा या चौपाई शैली जिसमें उन्होंने व्रजभूमि या व्रजेश की महिमा का गायन किया है और कृष्ण की लीलाओं का आख्यान भी। इस शैली की रचनाएँ संक्षिप्त किन्तु संख्या में अनेक हैं। इनमें दोहा या चौपाई छंद ही व्यवहृत हुए हैं, जायसी या तुलसी या आलम की शैली पर एक निश्चित क्रम से दोहा और चौपाई छंद नहीं रखे गये हैं। ये रचनाएँ भी छंद विधान भेद से ३ प्रकार की है:—(१) वे रचनाएँ जिनमें केवल दोहा छंद

प्रयुक्त हुआ है जैसे प्रेम-सरोवर, व्रज-विलास, परमहंसवंशावली। (२) वे रचनाएँ जिनमें केवल चौपाई छंदों का प्रयोग किया गया है जैसे प्रीति-पावस, नाम-माधुरी, गिरिपूजन, भावना-प्रकाश, धाम-चमत्कार, व्रज-स्वरूप, गोकुल-चरित्र, प्रेम पहेली, रसनायश, व्रजप्रसाद, मुरलिकामोद। (३) वे रचनाएँ जिनमें दोहा-चौपाई दोनों छंदों का प्रयोग हुआ है। ऐसी कृतियों के भी दो उपवर्ग किये जा सकते हैं—प्रथम में दोहा प्रधान रचनाएँ आयेंगी जैसे कृष्ण-कौमुदी (७४ दो० ६ चौ०); द्वितीय उपवर्ग में चौपाई प्रधान रचनाएँ आयेंगी उदाहरण के लिए यमुनायश (१० चौ० १ दो०) सरसवसंत (५६ चौ० १३ दो०) अनुभवचंद्रिका (५२ चौ० ३ दो०) रंगबधाई (५० चौ० ३ दोहा) प्रेम-पद्धति (१०८ चौ० ३५ दो०) वृषभानुपुरसुषमावर्णन (४० चौ० १ दोहा) गोकुलगीत (२१ चौ० २ दो०) विचारसार (८६ चौ० २ दो०) प्रियाप्रसाद (६५ चौ० २५ दो०) व्रजव्यवहार (२११ चौ० २६ दो०) गिरिगाथा (५२ चौ० ४ दो०)।

(३) तीसरी शैली भक्तों की आत्माभिव्यक्ति-परक एवं भक्तिभाव-मूलक पद शैली है जिसमें घनआनन्द की पदावली आयेगी जिसके अन्तर्गत १०५७ पद संग्रहीत हैं।

(४) चौथी शैली उन रचनाओं की है जिसमें फारसी शैली से प्रभावित छंद ही प्रमुख रूप से प्राप्य हैं। ये कृतियाँ हैं वियोग-वेलि और इश्कलता। इनकी भाषा पर पंजाबी प्रभाव है। वियोग-वेलि में एक ही तर्ज के छंद हैं पर इश्कलता में दोहे, अरल्ल, मांझ और निसानी छंद हैं।

(५) पाँचवाँ भाग ऐसी रचनाओं का है जिनमें उपर्युक्त चारों विभागों के समान शैली सम्बन्धिनी विशेषता तो कोई नहीं है परन्तु वे उपर्युक्त पद्धतियों में से किसी में भी अन्तर्भूत न हो सकने के कारण एक पृथक वर्ग में रखी जा रही हैं। इस प्रकार की रचनाएँ हैं—कृपाकंद (कवित्त, सवैया, पद, सोरठा, दोहा, छप्पय) प्रेम-पत्रिका (प्लवंग, कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा) दानघटा (सवैया, दोहा), वृन्दावनमुद्रा (चौपाई, दोहा, कवित्त) प्रकीर्णक (कवित्त, सवैया, छप्पय, चौपाई, बरवै, महाबरवै, छंद,—फारसी शैली प्रयुक्त, सोरठा, दोहा, त्रिभंगी)।

(६) एक और भी वर्ग है ऐसी कृतियों का जिनमें सर्वथा नए छंदों का प्रयोग हुआ है। ये कृतियाँ संक्षिप्त हैं तथा एक ही छंद में लिखी गई हैं—गोकुल विनोद, मनोरथ मंजरी।

परिमाण की दृष्टि से घनआनन्द का साहित्य प्रचुर है और उनमें प्रयुक्त छंदों की विविधता भी पर्याप्त है जिससे यह सूचित होता है कि घनआनन्द रीतिबद्ध कवियों के समान केवल दो चार छंदों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते थे वरन् जब जी में आता था नये और अपने युग में सामान्यतया अप्रचलित छन्दों को भी ग्रहण कर काव्य-रचना किया करते थे। यह छंद वैशिष्ट्य उनकी भावप्रकाशनार्थ स्वच्छन्द गति ग्रहण लेने का ही सूचक है। उनके भाव हर छन्द में अनाहत और अबाध रूप से व्यक्त हुए हैं, नये छन्द का ग्रहण उनकी भावधारा का अवरोधक नहीं हुआ है। इससे यह तो स्पष्ट ही हो जाना चाहिये कि उनमें भावना पक्ष प्रधान था और हर छन्द में जिसका भी प्रयोग उन्होंने किया है उनका प्रेम, उनकी निष्ठा अक्षत रूप से झलकती है। परन्तु इस सबके बावजूद भी यह कहना पड़ेगा कि

कला और सौन्दर्य की दृष्टि से घनआनन्द का जो उत्कर्ष उनके कवित्त सवैयो मे (विशेषत सुजानहित मे) लक्षित होता है वह किसी अन्य रचना मे नही ।

बोधा का छंद-विधान

इश्कनामा मे प्रयुक्त बोधा के छन्दो मे पर्याप्त प्रवाह है, उनको काव्य रचना का अच्छा अभ्यास था और उनकी लय-चेतना सम्यक रूप मे परिपूर्ण थी । इश्कनामा मे प्रयुक्त छन्द हैं—दोहा, बरवै, सोरठा, कवित्त और सवैया । एक अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुआ है जिसका नाम ही 'छन्द' दिया गया है, उसकी शैली इस प्रकार है—

कनहदार अनियारो आछो खुसी करै दिल खूबी सो।
खिलबित खिनखिन खूबी वारो राखै इश्क हवूबी सों।।

इस छन्द मे अरबी फारसी शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है जिसके कारण छन्द मे थोडी भाव सम्बन्धिनी दुरूहता आ गई है । छन्द शीर्षक के अन्तर्गत प्रयुक्त सभी छन्द एक से ही नहीं हैं । उनमे से कोई तो 'ताटक' छन्द है (जिसके प्रत्येक चरण मे ३० मात्राएँ होती हैं, १६ और १४ पर यति और चरणान्त मे मगण होता है ।) कोई छन्द 'वीर या आल्हा' है (जिसमे ३१ मात्राएँ हैं तथा १६ और १५ पर विराम तथा अन्त में गुरु और लघु वर्ण आए हैं) और कोई छन्द 'सरसी' का उदाहरण है (जिसमे १६, ११ के विराम से हर चरण मे २७ मात्राएँ हैं तथा अन्त मे गुरु और लघु वर्ण आए हैं), ये सभी सममात्रिक छन्द हैं ।

बरवै, सोरठे और दोहे जो इश्कनामा मे आए हैं वे अर्धसम व मात्रिक छन्द हैं । दोहा और सोरठा तो चरणो के हेर-फेर से एक ही छन्द है । बरवै के विषम चरणो मे १२ और सम चरणो में ७ मात्राएँ होती हैं जैसे—

१२ ७
प्रीति करै कमलनि कसि, तनु मनु पीस ।
१२ ७
तब कस चढ़े न मितवा, सिव के सीस ।।

इश्कनामा मे कवित्त छन्द का उदाहरण एक ही है—'हिलिमिलि जानै तासो हिलि-मिलि लीजै आप आदि । यह वर्ण-वृत्त है तथा दण्डक के अत्यन्त प्रचलित रूप मनहरण का उदाहरण है जिसके प्रत्येक चरण मे १६, १५ के विराम से ३१ अक्षर होते हैं और अन्त में कम से कम एक गुरु वर्ण अवश्य रहता है ।

सवैये का प्रयोग इश्कनामा मे खूब है, प्रेम और वियोग के वर्णन में अत्यन्त प्रचलित और सफल छन्द भी है। बोधा ने मुख्य रूप से दुर्मिल और मत्तगयद सवैयो का प्रयोग किया है ।

दुर्मिल सवैया (८ सगण)—

।। S । । S । । S ।। S । । S ।। S । । S ।। S
अति छी न मृना ल के ता रहु ते ते हि ऊपर पा व दे आ वनो है

मत्तगयद सवैया (७ भगण+२ गुरु)—

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S
एक सु भान के आनन पैं कुर बान ज हा लगि रूप ज हा को।

इस छन्द को मालती या इन्द्रव भी कहते हैं। बोधा छन्द-शास्त्र के पण्डित न थे किंतु फिर भी सामान्यतया उनके छन्द विशेषकर सवैये बड़े मनोहारी बन पड़े हैं। यह अवश्य है कि जब तब उनके सवैयों मे गुरु को लघु और लघु को गुरु पढ़ना पड़ता है, उसका मूल कारण यही है कि हृदय की उमंग के वे स्वच्छन्द कवि थे तथा काव्य के साधन पक्ष से सम्बन्धित बातों पर उनकी दृष्टि अधिक न थी फिर भी उनका छन्द-विधान सामान्यतया सुन्दर है।

विरह वारीश में छन्द-विधान—बोधा के प्रबन्ध ग्रन्थ का छन्द-विधान देखने योग्य है। अपने माधवानल प्रबन्ध में उन्होंने एक नया मार्ग पकड़ा है। उन्होंने विरह-वारीश 'छन्दान्तर शैली' में लिखा है और पद-पद पर छन्द बदलते गये हैं। उत्तरोत्तर तरंगों मे वे ऐसे छन्दों का विधान करते चले हैं जिनका प्रयोग पूर्ववर्ती तरंगों मे नहीं हुआ है। नये-नये छन्दों के प्रयोग को देखकर उनके छन्द-विषयक ज्ञान पर आश्चर्य होता है। उन्होंने बहुत से अल्पप्रचलित तथा अप्रचलित छन्दों को उठाकर अपने प्रबन्ध मे प्रयुक्त किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं—दोहा, चौपाई, सोरठा कवित्त, कुण्डलिया, छप्पय, चौपैया, पद्धरी, पद्धटिका, पधारिका, त्रोटक, दण्डक, पद्धरिका, गीतिका हरिगीतिका, भुजगप्रयात, समुत, पद्धार, पँगाम, दोधक, सधारक, दुमिला, पधरिया, छप्पदा, मोतीदाम, सुमुखी, तोटक, बिलावल, भूलना, छप्पद, मोटका, रेखता, तोमर, छपदा, अरिल्ल, भुजगी, गाथा, बरवा, चुमिला, एला, प्रवीन, विजाप, मार्वोसमुत, सारग, चौवाहिया, रूमाल, प्रमाणिका। इनमे से कुछ छन्द बहुत अधिक प्रयुक्त हुए हैं, कुछ अपेक्षाकृत कम और कुछ बहुत ही कम जिससे उनकी रुचि पर प्रकाश पड़ता है। दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, दण्डक, सवैया, मोतीदाम, सुमुखी, छप्पय उनके प्रिय छन्द हैं। बोधा के छन्द विधान की सबसे बड़ी विशेषता तो यही है कि बहुछन्दात्मकता ने उनकी कथा की गति को न तो भग ही किया है और न विकृत। इसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि बोधा के हृदय मे जो प्रेम-वेदना का भाव प्रधान रूप से विद्यमान था और जो उनके काव्य का मूल वक्तव्य भी है उससे उनकी दृष्टि कभी भी इधर-उधर नही हटी है। ये छन्द सभी प्रकार के है—मात्रिक, वर्णिक, गणात्मक, अगणात्मक, सम, अर्धसम और विषम। प्रामाणिक पाठ के अभाव में उनके छन्दों के लय, मात्रा, वर्ण, यति आदि से सम्बन्धित दोषों के सम्बन्ध मे कुछ कहना उचित नही।

ठाकुर का छन्द-विधान

ठाकुर ने केवल दो छन्दों का व्यवहार किया है—कवित्त और सवैया। ठाकुर के सवैये उनके कवित्तों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बन पड़े हैं और लयात्मक सौन्दर्य से वे मतिराम, घनआनद आदि किसी के सवैयों से हीन नहीं कहे जा सकते। ठाकुर ने अधिक प्रचलित ढंग के सवैयों मत्तगयद और दुर्मिल को ही ग्रहण किया है। दोनों की लय बड़ी मृदु और मथर होती है तथा भावों को ये छन्द बड़ी ही आसानी से वहन करते हैं। इसमें भी मत्तगयद सवैये का व्यवहार अधिक हुआ है। दोनों प्रकार के सवैयों के उदाहरण देखिए—

मत्तगयन्द सवैया—(७ भगण + २ गुरु)

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S
भूसर चोट को मौनि क हा व जि के अब मूड दि यो ओख री में

दुर्मिल सवैया—(८ सगण)

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I S S
अब रं है न रं है यहो समयो बहती नदी पा व पखा र लै री

इन दोनो सवैयों मे वर्णों का विधान एक दूसरे के विपरीत सा होता है। इनके साथ ही साथ अन्य प्रकार के भी कुछ सवैयों का व्यवहार वे कर गए हैं। उदाहरण के लिये देखिए—

किरीट सवैया—(८ भगण)

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I
राधिका स्याम ल से पल का पर का पर जाति क ही छवि हाल की

सुन्दरी सवैया—(८ सगण + १ गुरु)

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S
तन को तरसा इबो कौ ने बधो मन तो मिलिगो पै मिले जल जै सो

इस प्रकार ठाकुर में सवैयो के और भी प्रकार तो मिल जायेंगे परन्तु मत्तगयन्द का ही प्रयोग उन्होंने अधिक किया है। वर्णों का विधान सर्वथा निर्दोष नहीं कहीं जा सकता क्योंकि अनेकानेक वर्णों को अशुद्ध करके भी पढना पड़ता है—ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व। शुद्ध छन्द-रचना की दृष्टि से यह बात दोष ही मानी जायगी पर स्वच्छन्द-वृत्ति के कवि छन्द-विधान की ऐसी बारीकियों तक नहीं गए हैं। यदि वे सजग और कोरे कलाकार होते तो अवश्य ऐसा कुछ करते।

जहाँ तक कवित्तो का सवाल है ठाकुर ने ३१ वर्णों वाले कवित्त का ही व्यवहार किया है जिन्हें हम मनहरण कवित्त कहते हैं। ३२, ३३ वर्णों वाले कवित्त व्यवहृत नहीं हुए हैं। मनहरण घनाक्षरी में यति का जो क्रम है ठाकुर ने उसका भी यथासम्भव पालन किया है अर्थात् वर्णों का विधान करते हुए वे क्रमश ८, ७, ८ और ७ पर यति देते गए हैं यथा—

मीरजादे पीरजादे, असल अमीरजादे,
 ८ ८
साहब फकीरजादे, जादे आप खो रहे।
 ८ ७

इस क्रम के पालन मे जहाँ तहाँ व्याघात भी पहुँचा है यथा—

होरी लै, गुलाल ब्रज बाल, चारयौ ओरन तै,
 १० ६
होरी लाल होरी लाल होरी, लाल होरी है।
 ८ ७

सब मिलाकर यह तो कहना ही पड़ेगा कि ठाकुर के छंदों में प्रवाह बहुत अच्छा है भले ही उन्होंने केवल दो छदों का ही विधान क्यों न किया हो।

द्विजदेव का छंद-विधान

शृंगार काल में प्रचुरता से प्रयुक्त और प्रचलित कवित्त-सवैया ही द्विजदेव के भी प्रमुख छंद रहे हैं। कविता के वाहन के रूप में ये छद इतने प्रिय हो चले थे कि सामान्यतः कवि अन्य छदों की ओर जाते ही न थे। यही हाल दोहे का भी था। द्विजदेव की शृंगार-लतिका में कवित्त, सवैया, दोहा, छप्पय, भुजंगप्रयात, नाराच, सोरठा और रोला छंद मिलते हैं।

कवित्त—कवित्त छद को दण्डक या घनाक्षरी भी कहते हैं। दण्डक कहने का प्रयोजन यह है कि इसका प्रत्येक चरण इतना लंबा होता है कि उसका उच्चारण करने में मनुष्यों की साम भर जाती है। द्विजदेव ने दण्डक या घनाक्षरी के चार भेदों का प्रयोग किया है और ये सभी गणमुक्त शैली के दण्डक हैं— मनहरन, रूपघनाक्षरी, जलहरण, कलाधर। इन सभी के प्रयोगाधिक्य का तारतम्य भी यही है। कलाधर के उदाहरण एक दो ही हैं, जलहरण रूप घनाक्षरी की अपेक्षा और रूपघनाक्षरी मनहरण की अपेक्षा कम प्रयुक्त हुए हैं। मनहरण दण्डक का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है जिसमें ३१ वर्ण रहते हैं। द्विजदेव के कवित्तों में भी यति का क्रम सर्वत्र एक-सा नहीं है अर्थात् उनके सभी छदों में १६, १५ का नियम तो पालित हुआ है परन्तु ८, ८, ८, ७ का क्रम हर छद में नहीं मिलेगा।[1] रूप घनाक्षरी में १६, १६ के विराम से ३२ वर्ण होते हैं। हर चरण के अंतिम दो वर्ण गुरु लघु अवश्य होते हैं। यति का क्रम ८, ८, ८, ८ हुआ करता है। द्विजदेव के रूपघनाक्षरी छदों में भी वही मिलेगी अर्थात १६, १६ का क्रम तो मिलेगा परन्तु यति का क्रम भिन्न भी हो सकता है।[2] जलहरण में ३२ वर्ण होते हैं और ८, ८, ९, ७ पर यति रहती है। चरणांत में दो लघु होते हैं। द्विजदेव के जलहरण छदों में भी वही बात मिलती है जो पूर्वोल्लिखित छदों के संबंध में कह आये हैं।[3] कलाधर कवित्त में गुरु लघु के क्रम से (अर्थात एक वर्ण गुरु फिर एक वर्ण लघु और इसी प्रकार आगे भी) कुल ३१ वर्ण होते हैं, चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है। द्विजदेव की संपूर्ण रचना में एक ही कलाधर घनाक्षरी उपलब्ध होती हैं। उसमें वर्णों की संख्या तो अवश्य ६१ है तथा अंतिम वर्ण गुरु है परन्तु गुरु लघु के क्रम से वर्णों का नियमित विधान नहीं मिलता।[4] अब हर प्रकार के कवित्त छद के एक एक उदाहरण लीजिये—

मनहरन—

> वा दिन गई तो ब्रज देखन करील बन,
> कूक में जु परी आइ बंसी के अन्यासुरी॥ (१६, १५)

---

[1] शृंगार-लतिका-सौरभ : छद ६५, २१२, २१६

[2] वही : छंद १६१,१०

[3] वही : छद १६६, १८६

[4] वही : छद ५०

रूपघनाक्षरी—

अंग अंग रागनि सौं सौने-सी भई है दुति,
फूले घने पादप मे ए हैं पारिजात वन॥ (१६, १६)

जलहरन—

सीस फूल सरकि सुहावने ललाट-लाग्यौ,
लाम्बी लटें लरकि परी हैं कटि छाम पर॥ (१६, १६)

कलाधर—

जैसी कछु कीन्हीं द्विजदेव की बिनै के बस,
कीन्हीं अब सोई द्विजदेव चित चाहैं तें॥ (१६, १५)

इस प्रकार शृंगारलतिका मे व्यवहृत सभी प्रकार की घनाक्षरियो के स्थूल लक्षण तो ठीक हैं परन्तु सूक्ष्म नियमो का पालन उनमे नही हो सका है इसे हम रीति की स्वच्छन्दता तो नही कह सकते परन्तु छंद के क्षेत्र मे यत्किंचित मुक्ति का प्रयास अवश्य कह सकते हैं।

द्विजदेव ने पाच प्रकार के सवैयो का व्यवहार किया है—मत्तगयंद, दुर्मिला, किरीट, सुन्दरी और अरसात। इन छंदो के अधिक और कम प्रयोग का भी यही क्रम है।

मत्तगयंद सवैया या चन्द्रकला (७ भगण + २ गुरु)

S ।। S ।। S। । S
जा दिन तें सुधि आई हिऐं,
।। S।। S।। S। S S।।
नित बाढ़तें देखी उ छाहि की सोती।

दुर्मिला सवैया (८ सगण)—

। । S ।। S ।। S। । S ।। S।। S । ।S ।। S
सखि का मन आ बल मैं न नितैं फिरैं का मन ता ल तमा लन मे

किरीट सवैया (८ सगण)—

S। । S।। S ।। S।। S।। S ।। S ।। S।।
सौंधे स मीरन को सर दार म लिन्द को मन सा फल दायक।

सुन्दरी सवैया (८ सगण + १ गुरु)

।। S।। S ।।S ।। S ।। S।। S।। S।। SS
बिथु रें घनौं घा रें परी छिति मे तिन्हें देखति ह्वै नहिए कछु भोती।

अरसात सवैया (७ भगण + १ रगण)

S।। S।। ।।। S।। S।। S।। S।। S।S
आजु म ईं तौ क लिंदजा पै लखि कुंज स मानि क लोलति ही बर्यौं।

इन सभी छंदों में गण सबधी विचार और गुरु लघु का क्रम नियमानुसार ही रखा गया है किन्तु जहाँ तहाँ गुरु को लघु और लघु को गुरु करके पढना पड़ता है जो निर्दोष नहीं। द्विजदेव के दोहो तथा सोरठो के सबध मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ये तो अति प्रचलित छंद हैं। रोला छंद में ११, १३ के विराम से २४ मात्राएँ होती हैं। द्विजदेव का रोला छंद देखिये—

बन गिरि-उपवन जाइ, कबहुँ बहु भांतिन खेलहिं।
११ , १३

छप्पय (रोला + उल्लाला २८ मात्राओं का)—इन दोनों के योग से छप्पय छंद बनता है। द्विजदेव के छप्पय से दोनों छदों की प्रथम पंक्तियां दी जा रही हैं—

एकै ह्वै बिबि रूप, राधिका-स्याम कहावैं।
११ , १३

द्विजदेव मानहूं भुवन में, अष्ट सिद्धि दाता बिदिन।
१५ , १३

भुजंग प्रयात (चार यगण)—

। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
सबै फूल फूलं फबैं चा रु सो है भवै भौं र भूले भले चित्त मोहैं।।

नाराच-(प्रत्येक चरण मे लघु गुरु क्रम से १६ वर्ण)—

। ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ । ऽ
कहूं कहूं बनीं ठनीं लसैं सुवापिका घनी।

छद प्रयोग की दिशा में मूलत मुक्तक रचनाकार होते हुए भी द्विजदेव ने रोला, भुजग-प्रयात, नाराच आदि छदो का भी प्रयोग किया है। इन छंदों का प्रयोग केवल रुचि परिवर्तन और हाथ की आजमाइश के लिए किया जान पड़ता है, नए छदो की ओर जाने की रुचि भी इसमे लक्षित होती है। इन छदो के व्यवहार मे शिथिलता भी नहीं मिलती और न नियम भग ही परन्तु फिर भी काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से ये छद द्विजदेव के कवित्त-सवैयो के समक्ष नहीं ठहर सकते।

पचम अध्याय

फारसी काव्य-परपरा और रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा पर उसका प्रभाव

१ फारस या ईरान मे फारसी काव्य की परंपरा

२. भारत मे फारसी काव्य की परंपरा

३. रीति-स्वच्छन्द , काव्यधारा पर फारसी-काव्य का प्रभाव

४. फारसी काव्य और रीति-स्वच्छन्द काव्य की समान भावभूमि

*

फारसी काव्य परंपरा और रीति-स्वच्छंद काव्यधारा पर उसका प्रभाव

हिन्दी के अनेकानेक विद्वानो ने रीति-स्वच्छद-काव्यधारा मे वर्णित प्रेम-भावना, प्रेम विषमता, विरह की तीव्र चेतना आदि को लक्षित कर इस बात का सकेत किया है कि इस काव्यधारा पर फारसी काव्य मे वर्णित प्रेम-भावना या वेदना-विवृति का प्रभाव है। दूसरे यह भी कहा गया है कि इन कवियो ने प्रेमवेदना या प्रेम की तडप फारसी सूफी शायरो के 'प्रेम की पीर' से ग्रहण की है। अतिशयोक्तियो तथा अभिव्यक्ति-पक्ष को भी लेकर यही बात कही गई है। इन्ही सकेतित तथ्यो की व्यापक गवेषणा के उद्देश्य से यहाँ फारसी काव्य परपरा का विस्तार से अध्ययन किया गया है तथा उस पर परम्परा-ज्ञान के आलोक मे उसके प्रभाव की खोज की गई है। यह अध्ययन चार खण्डो मे विभक्त है।

१

फारस या ईरान में फारसी काव्य की परंपरा

(ईसा की ६ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक)

फारसी भाषा का मूल या आरम्भ बहुत प्राचीन बताया जाता है। भाषा वैज्ञानिक ३००० वर्ष पूर्व इसका स्रोत बतलाते हैं। किसी समय इसकी व्याप्ति का क्षेत्र बहुत बड़ा था किन्तु अब यह भाषा ईरान, अफगानिस्तान और ताजिकिस्तान (मध्य एशिया) मे बोली जाती है।[1] फारस या पर्शिया साइरस और डेरियस ऐसे विश्व-प्रसिद्ध बादशाहो का देश रहा है। फारस या पर्शिया नाम की उत्पत्ति फारस या ईरान के दक्षिण पश्चिम स्थित परस (Paras) नामक एक प्रान्त से हुई जिसे ग्रीक 'पर्सिस' और अरबवासी 'फार्स' कहा करते थे। यह सयोग की बात है कि पर्शिया की भाषा फारसी कहलाई। वस्तुत पर्शिया के लोग अपने

[1] फारसी साहित्य की रूपरेखा—डा० अली असग़र हिक्मत, पृ० २३

देश को ईरान कहते है (जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से आयने या आर्य शब्द के काफी निकट है) और अपनी भाषा को ईरानी। 'फारस' या 'फारसी' शब्द (Persia या Persian) अरब आदि विदेशी लोगों द्वारा ईरान के लिए प्रयुक्त हुए जिससे यह बात विदित होती है कि ईरानी जाति अथवा बोली पर विदेशी प्रभाव काफी पुराने समय से ही पडने लगा था। 'परस या फार्स' प्रान्त का महत्व विशेष इस कारण हुआ क्योंकि इस प्रान्त मे व्यवहृत बोली ही फारसी भाषा के निर्माण का मूलाधार बनी। पर्शिया या फारस के दो महान वंश अकेमीनियन (Achaemenians) और इनके आठ सौ वर्षो के बाद सासानी (Sasanians) लोग इसी प्रान्त मे रहने वाले थे तथा फारस के इतिहास और साहित्य के निर्माण मे उनका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विशेष ध्यान देने की बात तो यह है कि 'फार्स' या 'परस' के छोटे से प्रान्त के नाम पर समूचे ईरान का नाम फारस पड गया और उसकी भाषा भी फारसी कहलाने लगी। इसी फारसी भाषा का बड़ा शानदार इतिहास है और यहाँ के लोगों के बौद्धिक अभ्युदय की कहानी अतिशय आह्लादक एवं आकर्षक है। मानवी चिंता और संस्कृति के विकास मे इनका योगदान सचमुच गौरवपूर्ण है।

ईरानी भाषा अपने विकास की विभिन्न स्थितियों मे अवेस्ता, प्राचीन फारसी, मध्य फारसी (पहलवी, पाजेन्द, पारसी, हुज या हुजवरेश) और आधुनिक फारसी कहलाई। आधुनिक फारसी जिसका अविकृत अथवा शास्त्रीय नाम ईरानी (अर्थात् ईरान की भाषा है) मे ७ वी शताब्दी से (जबसे कि अरबों ने फारस विजय किया था) आज तक कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ है। इसका कारण सम्भवत यह है कि देश में इस काल तक आते-आते जातीय भाषा स्थिरता प्राप्त कर चुका था और अरबों के प्रबल एवं व्यापक प्रभाव के परिणाम स्वरूप फारसी या ईरानी भाषा मे अरबी शब्दों का बाहुल्य हो चला था।[1]

ईसा की ७वीं शताब्दी के मध्य मे अरबवासी कुरान को सीने से लगाए हुए किसी समय के प्रतिष्ठित और शक्तिशाली सासानी साम्राज्य को रौंदते चले जा रहे थे। उन्होंने उस साहित्य का नाम निशान तक मिटा डाला जिसके पीछे एक हजार वर्षों का विविध एवं परिवर्तन पूर्ण इतिहास छिपा था। इस्लाम-पूर्व सासानी अथवा ईरानी संस्कृति के जो थोड़े से नगण्य अवशेष चट्टानों की लिखावटों या भोजपत्रों या पाटियों के रूप मे रह गए थे और जिसका असाधारण परिश्रम से अपूर्ण रूप मे पुनरुद्धार हुआ उसकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। यहाँ पर ईरान के राष्ट्रीय साहित्य के प्रथम पुनर्जन्म से लेकर उसकी पूर्ण परिपक्वता तक की कहानी कही जा रही है जो ६ वी शताब्दी के प्रारम्भ से शुरू होकर १५ वीं शताब्दी के अन्त तक चलती है।[2]

प्रारम्भिक युग—फारसी शायरी अनिवार्य रूप से शाहंशाहों और शाहजादों से सम्बद्ध रही है यदि शाहों द्वारा इसे आश्रय न प्राप्त होता तो उसका जैसा विकास हुआ है वैसा विकास कभी सम्भव न था। प्रारम्भिक युग (१ वी श. ई. शती) मे जब फारस के लोग अरबों की राजनीतिक स्वतंत्रता से मुक्ति का प्रयत्न कर रहे थे फारसी भाषा भी अरबी प्रभाव से मुक्त

---

[1] Introduction to Persian Literature : Abdullah Anwar Beg, पृ० १

[2] Classical Persian Literature : A. J. Arberry, देखिए Introduction, पृ० ७

होकर जातीय विशेषताओं के साथ विकसित होने का प्रयत्न कर रही थी। अरबी के डेढ सौ वर्षों के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप इस युग की फारसी, अरबी प्रभाव से सर्वथा मुक्त तो न हो पाई थी किन्तु इसमे सदेह नही कि वह अब वैसी अरबी-बहुला न रह गई थी और विदेशीपन उसमे से बहुत कुछ दूर हो गया था। इस समय तक पहलवी एक मृत भाषा हो चुकी थी। फारसी ने अरबी का स्थान लिया जिससे कसीदा, गजल आदि अरबी छद ज्यो के त्यो ले लिये गये।

ताहिरीद और सफ्फारीद शासन काल—अनेक विद्वानो का मत है कि बहरामगुर फारसी का पहला शायर था। ताहिरीद और सफ्फारीद राजवशो के शासन काल (८२०-६०० ई०) के प्राप्त अल्प प्रमाणो के आधार पर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नवी शताब्दी के मध्य मे फारसी की एक सुन्दर और प्रभावपूर्ण काव्यात्मक शैली का विकास हो चुका था। बदधीस के हनजला नामक एक शायर की रचनाओ के नमूने मिलते हैं जिससे पता चलता है कि अरबी के शब्द इस नवविकसित फारसी शैली से सर्वथा लुप्त नही होने पाए थे।

सामानिद शाहो के शासन काल—(८७५-६६६ ई०) मे फारसी कविता अपनी बाल्यावस्था से निकलकर तरुणाई मे पहुँच गई थी। कवि-वृत्त-सग्रहो मे इस युग के कितने ही कवियो का विवरण मिलता है किंतु उनकी रचनाओ के बहुत थोडे से ही नमूने अब मिलते हैं। शेष अतीत के गर्भ मे सदा के लिए लुप्त हो गये हैं। उनमे से सर्वश्रेष्ठ कवि रूदाकी था। रूदाकी के काव्य मे भावोत्तेजन की असाधारण क्षमता थी। उसने एक बार अपनी रचना द्वारा विदेश मे डेरा डाले हुए अपने आश्रयदाता को घर की मीठी याद दिला-कर लौट पडने के लिए बाध्य कर दिया था। उसकी रचना परिमाण मे विपुल थी। अब भी उसका जो अश अवशिष्ट है उससे सिद्ध होता है कि रूदाकी अपनी भाषा का प्रथम महाकवि था। प्रणय, मदिरा आदि पर उसकी कविताएँ देखने योग्य हैं। अपने जीवन काल के अत मे उसे राजदण्ड मिला जिससे उसे दुखी जीवन व्यतीत करना पडा। इस तथ्य की छाया उसकी रचनाओ को भी करुण बना गई है। सामानिद दरबार के कवियो में तीन विशेष उल्लेखनीय है—बलख के अबू शकूर, अबुलहसन शहीद और मार्व के किसाई। अबू शकूर मसनवी शैली मे लिखने वाले प्रथम कवि हैं। बलख के शहीद अरबी और फारसी के उत्तम शायर थे, वे दार्शनिक भी थे। पर्याप्त ज्ञानार्जन के अनतर उन्हे ससार का इलम हुआ। किसाई धार्मिक काव्य के अग्रणी कहे जाते हैं। प्रकृति के सौन्दर्य पर उनकी रचनाएँ अनूठी हैं। उनमे अच्छी सगीतात्मकता है। जीवन की सासारिकता और नाटकीयता पर उन्होने हृदय विदारक कविताएँ लिखी है। १० वी शताब्दी मे शाह अबू मसूर के आश्रय मे फिरदौसी नाम का एक शायर हुआ जिसने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक अपना ससार प्रसिद्ध शाहनामा लिखा। जब इसे लेकर वह अपने युग के ज्ञान विज्ञान के सबसे महान सरक्षक महमूद गजनी के दरबार मे पहुँचा तो ग्रथ की महत्ता स अनभिज्ञ महमूद ने इतना छोटा पुरस्कार उसे प्रदान किया जो उसके लिए बहुत ही अपमानजनक था। फिरदौसी बडी आशाएँ लेकर गया था किन्तु उसके श्रम और स्वेद की इस सृष्टि का जब ऐसा स्वागत हुआ तो उसका दिल टूट गया। वृद्धावस्था मे उसे राज्याश्रय के लिए जगह-जगह भटकना पडा। अत समय मे लौटकर वह अपने निवास स्थान तूस पहुँच गया जहाँ १०२० ई० के आसपास उसकी मृत्यु

हुई। साठ हजार छन्दों में लिखे गये शाहनामे में फारस और उसके महान वीरों की विशद प्रशस्ति वर्णित हुई है। बहुत बाद में महमूद गजनी को इस ग्रंथ का महत्व अवगत हुआ। फिरदौसी की महत्ता की जानकारी होने पर महमूद ने सहस्रों दीनारों और उपहारों के रूप में उसका पुरस्कार तूस भेज दिया। कहा जाता है कि एक ओर से दीनारों और उपहारों की सजी हुई बारात तूस जा रही थी और दूसरी ओर तूस से फिरदौसी का जनाजा निकल रहा था।

गजनवी और प्रारम्भिक सालजुकों का शासन काल—यद्यपि सुलतान महमूद गजनवी अपने साम्राज्य के विस्तार द्वारा दूर-दूर तक इस्लाम का ही झंडा फहराता रहा और सुदूर भारत के एक बड़े भूभाग पर उसने अधिकार पा लिया था फिर भी प्रतिभाशाली और विद्वानों का वह सदा आदर करता था। वह उनमें सपर्क स्थापित करता तथा साहित्य और ज्ञान की चर्चा किया करता था। वह कवियों को अतिशय उदारतापूर्वक दान, सम्मान और उपहार भेंट किया करता था जिसमें वे अपने बड़े-बड़े अरबी फारसी ग्रन्थों में उसके नाम और काम की अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में प्रशंसा किया करते और उसकी शोहरत को दूर-दूर तक पहुँचाया करते थे। कहा जाता है कि उसके शाही अभियानों में उसके घुड़सवार सैनिकों के दल के साथ ४०० शायर भी चला करते थे और इन कवियों की सेना के अधिनायक अनसूरी रहा करते थे। अन्य सभी शायर अनसूरी के महत्व को स्वीकार करते थे और उन्हें अपना उस्ताद मानते थे। सुलतान के राजदरबार में अनसूरी को सहचर और राजकवि का सम्मिलित सम्मान प्राप्त था। वे सुलतान की युद्ध यात्राओं और वीरतापूर्ण कृत्यों का अलकृत शैली में सुन्दर और सजीव चित्रण करते चलते थे। अन्त में महमूद ने उन्हें अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित कर दिया और उसके राज्य में कोई भी कवि अनसूरी की सहमति या स्वीकृति के बिना उसके राजदरबार में सम्मान नहीं प्राप्त कर सकता था। अनसूरी की मृत्यु संभवतः १०५० ई० में हुई। इस समय तक महमूद, मसूद, मुहम्मद और मौदूद सभी गजनवी शासक दिवगत हो गए थे। महमूद सुलतान के समय की फारसी शायरी पर विदेशी प्रभाव के लिए अधिक अवकाश था क्योंकि गजनी अरबी ज्ञान-विज्ञान के लिए इस युग में बुखारा से भी बड़ा केन्द्र हो गया था। इस समय के फारसी लेखकों की भाषा में अरबी शब्दावली का व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक होने लगा था। अनसूरी की शैली में आत्यन्तिक अलंकारिकता के दर्शन होते हैं। अनसूरी के साथ जिन अन्य तीन कवियों के नाम लिये जाते हैं वे हैं फर्रुखी, मीनूचहरी और असादी। अनसूरी के शिष्यों में फर्रुखी सबसे अधिक प्रतिभाशाली था। उसने बहुत से कसीदे और उच्चकोटि की वर्णनात्मक कविताएँ लिखी हैं। लौकिक शृंगार की कविता लिखने और प्राकृतिक दृश्यावली के मनोहर चित्रण में उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। मीनूचहरी अनसूरी का अनन्य प्रशंसक था। महमूद के समय में अनेकानेक वैज्ञानिक, दार्शनिक और इतिहास-लेखक हो गए हैं। सूफी धर्म और दर्शन पर अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ इसी युग में लिखे गए हैं। अनसारी ने सूफी मत पर गद्य-ग्रन्थ लिखने के अतिरिक्त पद्यबद्ध प्रार्थनाएँ भी लिखी हैं। इसी समय १००३ ई० के आसपास नासिरेखुसरो का जन्म हुआ। कठिनाइयों का जीवन व्यतीत करने वाले खुसरो द्वारा लिखित साहित्य मात्रा में प्रभूत है। इनके सबोधन गीतों (Odes) और कसीदों में एकदम भिन्न विषयों का निरूपण हुआ

है उदाहरण के लिए ईश्वर की एकता और ज्ञान, धार्मिक जीवन, पवित्र आचरण, सद्ज्ञान और सत्कर्म की प्रशसा आदि। ऐसे विषयो पर ये अधिक मात्र मे लिखा करते थे जबकि इनके पूर्ववर्ती अपने कसीदो मे शाहो और राजकुमारो की प्रशसा किया करते थे। ये भी फारसी के महान कवियो मे गिने जाते हैं। खुसरो की शायरी का शिल्प या कलागत वैशिष्ट्य भी असाधारण था। शब्द-कौशल, भाषा की विशुद्धता और लयात्मक या छदात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से और किसी की रचना इतनी सुन्दर नहीं बन पडी है। इसलामी दर्शन की दृष्टि से भी नासिरेखुसरो की रचना बडी महत्वपूर्ण है। अबुसईद और बाबाताहिर इसी काल के सूफी शायर हैं। ताहिर की रचनाओ मे ग्रामीणता के सौन्दर्य का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है। उनकी भाषा मे ग्रामीण शब्दावली का माधुर्य देखने योग्य है।

मध्यकालीन सालजुकों का शासन काल—१२ वी शताब्दी का युग फारस मे कसीदो के लिए स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस युग मे शाब्दिक चाटुकारिता का पेशा अपने चरम उत्कर्ष पर था। सामानिद शासनकाल मे जो शाब्दिक चाटुकारिता रूदाकी द्वारा आरम्भ की गई तो अनसूरी और उसके शिष्यो ने जिसे गजनवी काल मे इतना लाभप्रद पाया था वह इस युग मे आरप अर्सलान, मलिकशाह बरकियारुक और सबसे अधिक सजर के शासन काल मे और भी अधिक उन्नत हुई। छोटे-छोटे शाही खानदान बडे-बडे शाहो से इस बात में स्पर्धा करने लगे कि उनके दरबार मे कितने अधिक श्रेष्ठ और कुशल शब्द-शिल्पी तथा चारण आश्रय पाते हैं। उधर शब्द-कौशल का ऐसा सम्मान होते देख दूर-दूर से यहाँ तक कि लाहौर तक के चाटुकार कवि फारस के शाहो के दरबार मे खिच-खिच कर आने लगे। कतरान इब्न महमूद (मृ० १०७२) ने पश्चिमोत्तर फारस के सालजुक शाहो की अच्छी प्रशस्तियाँ लिखी है। उसकी शैली मे असाधारण अलकारिकता और चमक-दमक है साथ ही वह वर्णनात्मक शैली के प्रयोग मे भी विशेष दक्ष है। १०४२ ई० के प्रसिद्ध भूकम्प मे विध्वस्त तबरीज नामक स्थान का उसके द्वारा किया गया वर्णन बहुत ही मार्मिक एव चित्रात्मक है। सालजुक काल के गुरगानी नाम के एक शायर हो गए हैं जिन्होने सरल शैली मे बडी भावमयी रचनाएँ की हैं। "वीस-उ-रामीन" नामक इन्होंने एक रोमाचक महाकाव्य लिखा। इसी समय लाहौर में एक अत्यन्त प्रतिभाशाली और महत्वपूर्ण कवि हुए मसूद-सद-सलमान (१०४७-११२१ ई०)। दुर्भाग्यवश दो बार दीर्घकाल तक इन्हे बन्दीगृह का जीवन व्यतीत करना पडा जिसके कारण इनकी काव्यधारा मे करुणा भर गई है। इन्होंने शाहो की प्रशस्ति के कसीदे लिखने छोडकर ईश्वरीय भावना विषयक काव्य लिखे। जेल में लिखी अपनी रचनाओ की मार्मिकता और टूटे हुए दिल के हृदयस्पर्शी गुबारो के कारण मसूद कभी भुलाए नही जा सकते। मसूद का समसामयिक और लाहौर का ही रहने वाला अबुल फरज रुनी भी भाषा का धनी शायर था निशापुर के सलजुक अमीर सुग्तानशाह के राजकवि अबूबक्र अजराकी (मृ० ११८६) ने भी अच्छी कविता की है। उमर खैयाम भी इसी युग मे हुए। उनके लिए कविता एक पेशा न होकर आनद का साधन थी। रुबाइयों के अतिरिक्त उसने नौरोजनामा भी लिखा जिसमे शराब की उत्पत्ति की बडी मोहक कथा लिखी है।

यह न समझना चाहिये कि हलकापन और दरबारदारी या चाटुकारिता ही १२वीं शताब्दी के कवियो का एकमात्र पेशा था। बाबा ताहिर और अबू सईद रहस्यवादी

काव्य-रचना का मार्ग दिखा गये थे। गजनी के आदमसनाई ने पहला सूफी महाकाव्य "हदीक्त-अल-हकीका" ११३१ ई० में लिखा। सनाई द्वारा लिखित साहित्य परिमाण मे प्रचुर है। उसके दीवान मे कितने ही सबोधनगीत (odes) गीत (lyrics) और चतुष्पदिया (quatrains) मिलते हैं। अपने सबोधन-गीतों मे स्टाइल या शैली की दृष्टि से सनाई नासिरे खुसरो के समीप पहुँच जाते है। एक ऊँचे धरातल से सनाई एक ओर जहाँ अल्लाह की शान का वर्णन करते है और उसके प्रति भक्ति और निष्ठा के भाव प्रदर्शित करते हैं वही वे अपने युग की विकृतियों पर भी कुटाराघात करते है जिसके बीच उन्हे जीवन यापन करना पडा था तथा वे दुष्टो से कहते हैं कि अपने पापो का प्रायश्चित्त करो इसके पूर्व कि तुम ईश्वरीय कोप के भाजन बनो। सनाई के मोहक गीत फारसी गीतिकारो के अग्रदूत कहे जा सकते है। "हदीकत-अल-हकीका" उसकी सबसे बडी और आकाक्षापूर्ण कृति है। यह फारसी मे लिखा गया प्रथम सूफी महाकाव्य है जो आगे चलकर अत्तार और रूमी ऐसे महान् शायरो का पथ प्रदर्शक बना। सनाई को अपनी रचना की श्रेष्ठता और उसके अमरत्व के सबध मे कोई सदेह न था। इस ग्रथ में दी हुई अनेक कथाएँ बडी रोचक हैं। इनके बाद बहराम शाह गजनवी के आश्रय में नस्र अल्लाह नाम के शायर हुए। इनकी रचना का प्रामाणिक पाठ आज उपलब्ध नही। इन्होने "कलीला उ दिमना" (सभवतः कालिया दमन) नामक ग्रथ लिखा।

पांच सालजुक कालीन कवि—इस सदर्भ मे उन पाँच प्रमुख कवियो के सम्बन्ध मे कुछ अपेक्षाकृत विस्तार से कहना आवश्यक है जो मध्य सालजुक काल मे काव्य रचना करते रहे। इनमे से तीन कसीदा लेखक और दो महाकाव्यो के रचयिता थे। ये सभी अपनी कला के माहिर थे और इन सभी मे ऊँचे दर्जे की मौलिकता थी। उत्तम साहित्य रचना के इस युग मे ये पाँच कवि निश्चय ही अपना अद्वितीय स्थान रखते थे। मुइज्जी इनमे से प्रथम हैं। इनका जीवनकाल १०४९ से ११४८ ई० है। मलिकशाह ने इनके पिता के अनुरोध पर इन्हे अपना आश्रित कवि बनाया किन्तु मलिकशाह की अपेक्षा उसके पोते ने मुइज्जी का अधिक सम्मान किया जब वह १०९६ ई० मे खुरासान का शासक नियुक्त हुआ। आलोचकों ने मुइज्जी को बडा प्रभावशाली कवि बताया है जिसकी रचना मे असाधारण चमक-दमक है। वह कसीदा लेखकों मे सर्वश्रेष्ठ था और कवित्वशक्ति की दृष्टि से अर्थात् शैली, भाषा, माधुर्य, भाव और अभिव्यक्ति की कातिमत्ता की दृष्टि से फारसी भाषा के श्रेष्ठ कलाकारो मे परिगणित किया जाता है। भाषाधिकार और प्रवाह मे उसकी बराबरी के कवि अनेक नहीं हैं। उसकी शैली मे, जो एक आलकारिक सज्जा और कृत्रिमता है वह सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, उसके उन प्रसिद्ध शोक गीतो (elegies) मे भी जो निजाममुलमुल्क और मलिकशाह की मृत्यु पर उसने लिखी हैं। अतिशय अलकृति उस युग की प्रधान और प्रिय शैली थी। अनवरी सगीत, तर्क, धर्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष (फलित और गणित) आदि विषयों के ज्ञाता होने के साथ-साथ मधुर रचना शैली, प्रत्युत्पन्नमतित्व और प्रशस्ति कला प्रवीण अथवा चाटुकारिता की अच्छी शक्ति रखने के कारण सुलतान सजर की सभा के कवि हो गये थे। अनवरी शाही दरबार मे पूर्णतः सफल रहा क्योंकि वह जानता था कि चाटुकारिता कवि-जीवन और सम्मान के लिए अपरिहार्य है किन्तु अन्त करण मे वह इस बात पर क्षुब्ध रहता था कि प्रतिभा को शक्तिशाली

की मनोकाक्षा पर आश्रित रहना पडता है। इसीलिए शाहो और राजकुमारो की छत्रछाया मे एक दीर्घअवधि तक रहने के बावजूद भी सच्चे कलाकार की सचाई और कलानिष्ठा उसमे अक्षुण्ण रही। सन् ११५७ मे सजर की मृत्यु के बाद एक बार उसकी भविष्यवाणी गलत निकल गई (उसने एक दिन विशेष को तूफान आने की भविष्य वाणी की किन्तु उस दिन सुबह से शाम तक आसमान निरभ्र ही रहा) जिसके फलस्वरूप उसकी प्रतिष्ठा को गहरी ठेस लगी और उसकी विद्वत्ता तथा कवित्व प्रतिभा दोनो सदेह की दृष्टि से देखे जाने लगे। जीवन के अन्तिम वर्ष उसने अध्ययन मे ही व्यतीत किये। ११९० ई० के आसपास उसकी मृत्यु हुई। आनवरी जबरदस्त लेखक था। उसकी कृतियाँ मात्र अलकरण से ओत-प्रोत न थी जो कि उस युग की सामान्य प्रवृत्ति थी, उसकी कृतियो मे गभीर पाडित्य के साथ साथ दुरूहता के भी दर्शन होते हैं। उसकी कुछ रचनाएँ तो व्याख्या के बिना समझी भी नही जा सकती फलस्वरूप उन्हे दूसरी भाषाओ मे अनूदित करना भी असभव-सा है। किन्तु उसकी बहुत सारी भावना-प्रधान कविताएँ सुबोध भी हैं। उधर पश्चिमोत्तर फारस मे अनवरी से भी अधिक दुर्बोध (अस्पष्ट या रहस्यात्मक) काव्य रचना करने वाला एक अन्य शायर खाकानी एक साधारण शाह के आश्रय मे काव्य-रचना कर रहा था। वह शेरवाशाह के दरबार मे अधिक समय तक न रह सका क्योकि छोटे-छोटे दरबारो के क्षुद्र कलहो की तह मे छिपी हुई क्षुद्र मनोवृत्तियो की दुनियाँ उसके लिये अत्यन्त सकीर्ण हो उठी थी। उसने मक्का की यात्रा की जिसके परिणामस्वरूप उसने एक लम्बी रचना 'तोहफात अलइराकें' लिखी जिसमे उसने परम्परागत रीति से उन नगरो और भूखण्डो का वर्णन किया है जिनसे होकर उसे गुजरना पडा। अपनी इस रचना मे उसने अपनी खुशामद करने वालो और सम्बन्धियो का वर्णन किया है। आत्म-प्रशस्ति मे भी खाकानी पीछे न थे। मक्का से ११५७ ई० मे लौटने पर अन्य कवियो ने ऐसा षडयन्त्र किया कि शेरवाशाह ने उसे शाबीरान के किले मे कैद करा दिया। बदीगृह के कठोर जीवन मे भी उन्होने दुःख भरे भाव अत्यन्त अलकारिक शैली मे व्यक्त किये हैं। कालान्तर मे खाकानी मुक्त हुए किन्तु अपनी पत्नी और नौजवान बेटे की मृत्यु का शोक उन्हे सहना पडा। उनकी मृत्यु पर इन्होंने जो दो शोकगीत लिखे हैं उनमे भावो की असाधारण सचाई के दर्शन होते है और अभिव्यक्ति भी आलकारिक कृत्रिमता से अपेक्षाकृत मुक्त है। ऐसे एक नये आश्रयदाता की खोज मे जो कि सम्पन्न भी हो और स्थिर बुद्धि वाला भी इन्हे जो परिश्रम करना पडा उसका सविस्तार वर्णन इनके दीवान मे मिलता है। ऐसा आश्रयदाता पाने के लिये वे ईसाइयत को भी अगीकार करने के लिये तैयार था। ११८५ ई० मे उसकी मृत्यु हुई। निजामी का व्यक्तित्व विश्व के महान कवियो मे गिना जाता है। फारसी साहित्य मे वही ऐसा शायर है जो फिरदौसी के समकक्ष ठहर सकता हैं। ११४० ई० मे उसका जन्म हुआ। बचपन मे ही अनाथ होकर उसने धर्म की शरण ली। उसमे कवि प्रतिभा थी फलत उसने पहले सनाई के हदीकत-अल्-हकीका की शैली पर ११७६ ई० मे 'मखजन अल असरार' लिखा जो दाउद के पुत्र बहराम शाह को समर्पित किया गया। इसका आरम्भ खुदा की प्रशसा और पूजा, पैगम्बर मुहम्मद की प्रशसा, बहराम शाह की प्रशस्ति से किया गया है, फिर ग्रन्थ रचना के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात कवि ने अपना

वक्तव्य २० सवादो के माध्यम से प्रस्तुत किया है जो नाना कथाओ द्वारा उदाहृत किया गया है। निजामी की रचनाओ की दुरूहता या अस्पष्टता परपरागत नही है। उसकी कल्पनाएँ एवं रूपक काव्याभिरुचि एव विवेक सापेक्ष हैं। मखजन-अल-असरार मे अतिम विषय जो वर्णित हुआ है वह है दुष्टता और बदमाशी जो उसके जमाने मे सिधाई और सचाई पर विजयिनी हुआ करती थी इस बात पर कवि ने बहुत शोक प्रकट किया है। उसकी इस धार्मिक रचना का उचित सम्मान न हुआ जिससे उसे बेहद निराशा हुई किन्तु फिर भी उसने अपना कवि-कर्म नही छोड़ा वरन कवि-कर्म द्वारा ही जीविकोपार्जन का निश्चय किया। अब उसने फिरदौसी द्वारा उठाए गये वीर एव शृगार प्रधान कथानको को अपनी काव्य-रचना का आधार बनाया और खुसरो-ओ शीरी (११८० ई०), लैला-ओ-मजनू (११८८ ई०) ऐसे ग्रन्थ लिखे। इनमे फारस और अरब के प्रसिद्ध प्रेमियो की रोमाचक कथाएँ वर्णित हैं। एक ग्रथ मे प्रसिद्ध सासानी बादशाह खुसरो परवेज और उसकी प्रेमिका शीरी की प्रेम-कथा एक हजार छदो मे वर्णित है जिसमे खुसरो के प्रतिद्वन्दी या रकीब फरहाद की करुण मृत्यु का वर्णन हुआ है। दूसरे ग्रन्थ मे प्राचीन फारस की कथा छोड कर प्राचीन अरब के प्रसिद्ध प्रेमियो लैला और मजनू की मुहब्बत के दास्तान का वर्णन हुआ है। निजामी का चौथा लघु प्रबन्ध इस्कदर नामा है जिसमे अलेकजेंडर महान की 'जीवन के स्रोत की खोज' की मध्ययुगीन कथा बडी ही गम्भीरता से वर्णित हुई है। इसके लिखने मे निजामी ने फिरदौसी का ऋण स्वीकार किया है। इस कृति मे इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि एक अच्छे शासक को प्रौढ परामर्श दाता की महती आवश्यकता हुआ करती है जिनके बिना वह अपना कार्य उचित ढग से नही चला सकता। ११९८ ई० म निजामी ने 'हफ्त पैकर' नामक अपनी श्रेष्ठतम रचना लिखी। इसमे बहराम गुरु नामक बादशाह की सारी जीवन कथा कही गई है। इससे विविध देशो की सुदरियो से उसके प्रेम का वर्णन हुआ है। बहराम गुरू के शिकार खेलने और वीरतापूर्ण कृत्यो के वर्णन बडे सजीव और चित्रात्मक हैं। इन 'पज गज' (पाच खजानों) के अतिरिक्त भी निजामी ने बहुत से गीत (या सबोधन गीत odes) लिखे हैं जिनमें उच्च कोटि का काव्यरस प्राप्त होता है। वृद्धावस्था पर भी निजामी ने व्यग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं जिनमे अनुभूतियो की दुर्लभ सचाई है। यह बात ध्यान देने की है कि जब 'मखजन-अल-असरार' द्वारा निजामी का अभिप्राय सिद्ध न हो सका तो वे धार्मिक काव्य-रचना से विरत हो गये। इसके विपरीत उसका समसामयिक अत्तार अपने जीवन भर सनाई के ही पदचिन्हो पर चलता रहा और रहस्यवादी इतिवृत्तो को लेकर आश्चर्योद्रेक रचनाएँ लिखता रहा जिनमे असाधारण विविधता और भावात्मक समृद्धि के दर्शन होते हैं। इनका जन्म १११८ ई० के आसपास और मृत्यु ११९३ से १२३४ के बीच मानी जाती है। इनकी कृतियो की सख्या के सम्बन्ध मे भी बडा मतभेद है (कोई १४४ कोई ६६ और कोई १२ बतलाता है) इनके ९ ग्रथ इस समय उपलब्ध हैं जिनमे एक विशालकाय गद्य-ग्रन्थ भी है। अत्तार की सबसे प्रसिद्ध रचना है 'मनतीक-अल-तयर'। यह एक रूपक है। इसमे बताया गया है कि किस प्रकार से हूपो के नेतृत्व मे तमाम चिडिया सीमुर्ग की खोज मे निकली जिसे वे अपना राजा बनाना चाहती थी। यह कथा आत्मा की परमात्मा से मिलन की प्राप्ति के प्रयत्नो का द्योतन करती है। 'इलाहीनामा' मे बताया

गया है कि किस प्रकार एक बादशाह ने अपने छः बेटों को एक-एक कर बुलाया और उनसे पूछा कि उनकी सर्वप्रिय अभिलाषा या कामना क्या है ? अंत में उसे कहना पड़ा कि तुम्हारा ध्यान भौतिक सुखों पर केन्द्रित है किन्तु सच्चा सुख आत्मिक सुखों की खोज में हुआ करता है जो शाश्वत हुआ करता है। 'मुसीबतनामा' का भी मूल कथ्य यही है। इसमें मुहम्मद की उस प्रसिद्ध कथा को आधार बनाया गया है जिसमें मुहम्मद रात्रि की वह पहाड़ी चढ़ाई कर रहे थे जिसके द्वारा वे ईश्वर के निकट पहुँच सके थे। यह पहाड़ी चढ़ाई वस्तुतः एक आध्यात्मिक ऊर्ध्वगामिता थी। अत्तार ने सात हजार छंदों में यह कथा कही है। इन तीनों रचनाओं में एक मूल कथा कही गई है जिसके इर्द-गिर्द कितनी ही घटनाएँ और उदाहरण चक्कर काटते मिलते हैं। अपने 'असरारनामा' में अत्तार सनाई के 'हदीकत-अल-हकीका' की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। इसी 'असरारनामा' से प्रेरणा प्राप्त कर जलाल+अल+दीन रूमी ने अपनी प्रसिद्ध मसनवी लिखी जो 'मसनवी-ए-+मसनवी, कहलाती है। 'असरार नामा' तोते और दर्पन की कथा को लेकर लिखी गई है। रूमी ने इस आख्यान को अत्तार में ही ग्रहण किया है और दर्पण को रहस्यवादी के आध्यात्मिक शिक्षक का रूप दिया है। कुछ विद्वानों ने 'खुसरोनामा', 'मुख्तार नामा' 'पण्डनामा' तथा दस हजार गीतों और सबोधन गीतों (Lyrics and odes—) का एक दीवान भी अत्तार का लिखा बतलाया है। दीवान के अनेकानेक गीतों में असाधारण मौलिकता है जिसमें रूमी पर उसके प्रभाव का स्पष्ट पता चलता है। अत्तार ने मुसलमान सतों और रहस्यवादियों के जीवनवृत्त और उनकी महत्त्वपूर्ण उक्तियों का सग्रह अपने गद्य ग्रन्थ 'तदकिरात-अल-औलिया' में किया है। प्राचीन सूफीमत की जानकारी और अध्ययन के लिये यह एक आकार-ग्रन्थ है। अत्तार साफ़ और पुराने तर्ज की फारसी लिखते थे जिसमें समकालीन कवियों की शैली की तड़कभड़क न थी बल्कि एक शान्त और सहज शालीनता एवं गरिमा थी उनकी शैली में जो उनके वक्तव्य वस्तु के ही अनुरूप थी। मगोल आक्रामकों द्वारा १२३० ई० में निशापुर में अत्तार मारे गये। अत्तार का जीवन काल राजनैतिक दृष्टि से असाधारण हलचलों का जमाना रहा किन्तु इससे अत्तार की आध्यात्मिक प्रकृति अज्ञात और अनाहत रही। पूर्वी और रक्त पिपासु आक्रामकों द्वारा फारसी साम्राज्य के पतन का दृश्य इन्होंने अपनी आँखों देखा था फिर भी आध्यात्मिक आकांक्षाओं में इनकी अशेष निष्ठा थी। इनकी कृतियाँ सालजुक और मगोल शासनकाल को मिलाने वाली हैं। शीराज के सादी का जन्म ११८४ में हुआ। इनका 'बोस्तान' जिसे 'सादीनामा' भी कहते हैं १२५७ ई० में अबूबक्र इब्नसद को अर्पित किया गया था। इसमें न्याय, सुशासन, दयालुता, सत्कर्म, धरायणता लौकिक और आध्यात्मिक प्रेम, नम्रता, प्रणति, सतोष तथा इस प्रकार के अंतःकरण के अन्यान्य उदात्त गुणों पर सुन्दर छंद लिखे गये हैं। उपदेशात्मक काव्य (Didactic poetry) की दृष्टि से सादी को नासिरे खुसरो, सनाई और अत्तार का श्रेष्ठ उत्तराधिकार प्राप्त था किन्तु सादी इस दिशा में सबसे आगे बढ़ गये थे। इनकी शैली में एक अनोखी सादगी, प्रवहशीलता और प्रियता थी। बोस्तान के बहुत से छंद मुहावरे और उदाहरण के रूप में सर्वसाधारण में प्रचलित हैं। लोकनीति तथा व्यावहारिक ज्ञान की बातें उसमें बड़े सुन्दर ढंग से सजोई हुई हैं। कथा कहने की भी उनकी असाधारण शैली है। फिरदौसी के शाहनामा और रूमी की मसनवी के बाद सादी का बोस्तान और गुलिस्तान

फारसी की सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ हैं। इन ग्रन्थो मे सादी ने अपने जीवन का प्रभूत अनुभव ज्ञान भर दिया है। प्रकृति की सर्वाधिक समृद्धि को देखते हुए सादी ने एक बार सारी रात गुलाबो की एक मदिर बगीचो मे बितादी। वासन्ती निशा थी, मधु और मद से उन्मत्त वातावरण था। बस इसी वातावरण ने उन्हें अपनी प्रसिद्ध रचना 'गुलिस्तान' लिखने को मजबूर कर दिया। सादी के 'पडनामा' मे सुन्दर आदर्श वाक्य पाये जाते हैं। उसमे सत्य-परायणता, निष्पक्ष न्याय, दुखियो के प्रति दयालुता और नीति वाक्यो का साहस-पूर्ण प्रतिपादन हुआ है। चाटुकारितापूर्ण रचनाओ तथा राजनैतिक हलचलो के युग मे ऐसी बातें कहना बडे हिम्मत का काम था। सादी ने न्यायपूर्ण रीति से शासन चलाने का साहसपूर्ण परामर्श अपने आश्रयदाताओं को दिया था। सादी एक महान गीतिकार कवि (Lyric poet) थे। अब तक गीतो के लिखने की ओर लोगों का ध्यान उतना न था जितना सबोधनात्मक कविताएँ (odes) लिखने की ओर तथा इसी प्रकार की रचनाएँ विशेष रूप से सम्मानित होती थी। सादी ने गीतिकाव्यों (Lyrics) की ओर विशेष ध्यान दिया और उसे लोकप्रियता प्रदान की। सादी के समय मे गीति काव्य मानवो भावनाओ विशेषत शृङ्गारिक मनोभावों की अभिव्यक्ति के प्रधान माध्यम के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका था। गीतियो की रचना द्वारा सादी ने हाफिज के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। हाफिज ही सादी से एक मात्र श्रेष्ठतर गीति-कार था। सादी के गीतों मे शिल्प सबधी पूर्णता है, शैली की सहजता और प्रवाहशीलता है, एक प्रसन्न औपचारिकता है और जब तब उदात्त वृत्तियो का सच्चा सस्पर्श है। रूमी का जन्म बलख मे १२०७ ई० मे हुआ और मृत्यु १२७३ मे। उनका जीवन रहस्यात्मक अथवा आध्यात्मिक अनुभूतियों से परिपूर्ण था। वे एक साधु का सा भक्ति एव निष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे फलस्वरूप उनके विषय मे अनेक अप्राकृतिक एव अघटित घटनाएँ बतलाई जाती हैं। वे सभी धर्मों और जातियो के प्रति समान रूप से सद्भाव रखते थे क्योकि उन्हें ससार के सत्य का साक्षात्कार हो चुका था और उनके हृदय मे मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम-भाव विकसित हो चुका था। यद्यपि उन्हे उनके जीवन काल मे अनेक बुरी बातें अपने विषय मे सुननी पडी और अनेक प्रहार सहने पडे किन्तु उन्होंने किसी को भी कडी बात नही कही तथा उदारता और सद्भाव के साथ उन्हें सही मार्ग पर ले आने की चेष्टा करते थे। यद्यपि रूम के बादशाह और शहजादे उनके प्रति कृपा और सम्मान का भाव रखते थे और उनके अपने वर्ग के लोग उनका समर्ग पाने को लालायित रहते थे किन्तु रूमी अपना सारा समय गरज-मद लोगो की सेवा मे बिताया करते थे। उनके अधिकाश शिष्य और भक्त समाज की निचली श्रेणी के ही थे। रूमी अत्यन्त विनम्र और सकोची स्वभाव के थे, वे अपनी उदारता को और अपने उपकारो की प्रशस्ति नहीं चाहते थे। असाधारण विद्वान होते हुए भी अपनी विद्वत्ता का घमड उन्हे न था। ससार के महान सतो, फकीरों और ईश्वर भक्तो तथा मानव जाति के अनन्य सेवको एव पथ-प्रदर्शको मे गिने जाते हैं। इस प्रकार पहले तो रूमी असाधारण समर्पण, भक्ति और निष्ठा वाले रहस्यवादी थे जो सदा परमात्मा के प्रेम मे डूबे रहते थे और उसमे मिलने की अखड लालसा से परिपूर्ण थे, इसके बाद वे ससार के एक महान उपदेशक थे जो अपने शब्दों और कार्यो द्वारा ससार को परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बतलाया करते थे। उनकी कविता उनके इस आध्यात्मिक जोश की उपज थी जिसमे परमात्मा सत्ता पर उनकी मुग्ध आत्मा की अभिव्यक्ति मिलती है।

उनकी कविता उनके हृदयगत भावों का आयासहीन प्रवाह है इसीलिये उनकी रचनाओं में शिल्प और कला-विषयक अशुद्धियाँ बतलाई गई हैं। कहा जाता है कि मौलाना रूमी के मकान में एक खंभा था। जब वे ईश्वरीय प्रेम के समुद्र में डूब जाते थे तो उस खंभे को पकड़ कर उसके चारों तरफ घूमने लगते थे। अपनी इसी विमुग्ध दशा में वे छंदों की रचना करते जाते थे तथा लोग उन्हें लिपिबद्ध करते चलते थे इसीलिए उनके संबोधन गीतों और चौपदों (Odes and quatrains) में जो उनके 'दीवाने-शम्स-तबरेज़' में संगृहीत हैं आयासहीन कवित्व और भावाभिभोर चित्त के दर्शन होते हैं। लगता है जैसे कवि 'इलहाम' की स्थिति में हो। रूमी का प्रसिद्ध रहस्यात्मक महाकाव्य 'मसनवी-ये-मसनवी' जिन परिस्थितियों में लिखी गई उसका विवरण देते हुए अफलाकी नामक फारसी विद्वान ने बतलाया है कि हुसामुद्दीन को जब पता चला कि रूमी के शिष्य सनाई के 'ईलाहीनामा' और अत्तार के 'मन्तिक़ुत्तैयर' और 'नसीब-नामा' पढ़ने में विशेष अभिरुचि रखते हैं तो उसने रूमी से प्रस्ताव किया कि वे यदि इलाहीनामा की शैली और 'मन्तिकुत तयर' के छंदों में काव्य रचना करें तो उनके शिष्य औरों की चीज़ पढ़ना छोड़ देंगे और सिर्फ रूमी के ग्रंथ का पारायण किया करेंगे। रूमी ने तुरन्त अपनी अर्ध-लिखित मसनवी निकाली और कहा कि ठीक ऐसी ही रचना लिखने का आदेश परमात्मा हमें कुछ दिन पहले दे चुके हैं और हमने उस तर्ज़ की चीज़ इतनी तैयार भी कर दी है। परमात्मा ने इस प्रकार मेरे साथियों की दिली ख्वाहिश से मुझे पहले ही आगाह कर रखा है। रूमी के तीन गद्य-ग्रन्थ भी बताए जाते हैं जिनमें हम इन्हें धर्म और दर्शन से संबंधित सहस्रों विषयों पर अपना मत व्यक्त करते हुए पाते हैं जिसे वह नाना कथाओं और आप्त वचनों द्वारा प्रमाणित करता चलता है किन्तु रूमी की शाश्वत महिमा का प्रधान आधार उसके काव्य-ग्रन्थ दीवान और मसनवी हैं। दीवान की हर कविता के अंत में रूमी का नाम अंकित है। तबरेज़ के 'शम्स अल-दीन' को रूमी पूर्णमनुष्य और ईश्वर का ही प्रतिरूप मानकर उनसे प्यार करते थे और इस प्रेम को ईश्वर-प्रेम से भिन्न न समझते थे। अपने उद्‌गारों को निरन्तर व्यक्त करते रहने के कारण रूमी शैली की स्वच्छता और उत्कृष्टता पर ध्यान नहीं दे सके हैं और भावाभिवृत्ति में ही आनंद को बचा सके हैं। सूफी होने के कारण उनका विषय क्षेत्र भी परिमित है किन्तु अपने क्षेत्र के बहुमूल्य नये विषयों की ओर उन्होंने पहली बार ध्यान आकृष्ट किया है। अन्य सूफियों के समान रूमी ने शांति, पवित्रता, दयालुता, त्याग, प्रेम, धार्मिकता आदि रूढ़िगत विषयों तक ही अपने को नहीं सीमित रखा है। उनकी भावावेगशील रचना में भाव, विचार और भाषा की दुनियाँ एक अनूठी ताजगी लिये हुए है। उनकी विमुग्ध आत्मा से नई उपमाएँ, नए प्रतीक और नये बिंब फूट पड़े हैं जब उन्होंने शक्तिशाली और प्रामाणिक दिव्य अनुभूतियों को वाणी दी है। अपने प्रेम-नृत्य में यह रहस्यवादी अपने आप को वृत्ताकार नृत्य करते हुए नक्षत्रों के साथ एकाकार समझता है। रूमी की 'मसनवी-ये-मसनवी' में तमाम धर्मों की जड़ों की जड़ देखी जा सकती है। आत्मा-परमात्मा के मिलन के गुह्यतम रहस्य, सच्चा न्याय, ईश्वरीय विधान, दिव्य चेतना का नाद आदि सब कुछ इसमें उद्घाटित हुआ है। यह एक महान कथात्मक ग्रन्थ है। कुरान और उसके भाष्य में पैगंबर के विषय में कथित रूढ़ियों से तथा अन्यान्य महान संतों और फकीरों की जीवनियों से इन्होंने गल्प-दान कथानें ग्रहण की हैं किन्तु इस तरह से अपने रंग में रंग दिया है कि उनमें आश्चर्य-जनक नवीनता आ गई है इसीलिए

कहा गया है कि रूमी ने उधार काफी लिया है किन्तु ऋण उन पर बहुत कम है। सामान्य बोलचाल की भाषा से रूमी ने शब्द और प्रयोग ग्रहण किये हैं जो परपरागत एवं समसामायिक फारसी काव्यधारा के लिये एक दम नई बात थी जिसके फलस्वरूप उनकी अभिव्यक्ति मे एक अभिनव जीवतता आ गई है। भाव प्रेरित एव दिव्यानुभूति स्पदित काव्य जिस भी ऊँचाई तक पहुँच सकता है, सफलता और महत्ता के उस शिखर तक उनका काव्य पहुँच गया है। अकेले यही बात उन्हें सूफी शायरो का मुकुट-मणि घोषित करने के लिये पर्याप्त है। विदग्धता का ऐसा व्यापक शाश्वत और व्यामोहक दिग्दर्शन और कहाँ मिल सकता है। इसके अतिरिक्त व्यग परिहास और करुणा की कैसी लुभावनी काव्य संपदा उनकी रचनाओ मे बिखरी हुई है। रूमी ने जिस वस्तु का स्पर्श किया है वे उसका मूलगुण अवश्य उद्घाटित कर सके हैं।

१३वीं शताब्दी के अन्य कवि—इसलाम की सरजमीन पर मगोल आक्रमण के कारण १३वीं शताब्दी असाधारण कठिनाइयों की शताब्दी रही है फिर भी यह इसलाम के श्रेष्ठतम साहित्यिक युगो मे से रही है। जिस शताब्दी मे मगोल आक्रमणकारियो ने इतनी विध्वंस लीला की, जिस शताब्दी ने अब्बासीद खलीफाओ की समाप्ति का दृश्य देखा और जिस शताब्दी मे अधिकाश फारस और बग़दाद बरबाद और वीरान हो गये वही शताब्दी सघन, बौद्धिक, साहित्य सबधी एव कलात्मक क्रियाशीलता की भी शताब्दी थी। इस युग के कुछ महान कवियो की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अब इस शताब्दी के पाँच अन्य कवियों की चर्चा की जायगी जो इस युग के वर्णित कवियो की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण अवश्य थे किन्तु किसी दूसरी शताब्दी मे अपने युग के श्रेष्ठतम रचयिता सिद्ध होते। **शम्स–ए–क़ैस** १३वीं शताब्दी का प्रसिद्ध छद-शास्त्री है जिसने 'चतुष्पदी' या 'चौपदे' (Quatrain) का आविष्कार किया। अपने 'अल मुअज्म' नाम ग्रन्थ मे उसने रादूयानी और वतवात की अपेक्षा छदशास्त्र का अधिक अच्छा विवेचन किया है। इसमे छदालकारो की विस्तृत व्याख्या ही नहीं है अपितु उदाहरण भी विशदता से प्रस्तुत किये गये हैं। एक अध्याय में विशेष प्रकार के छदो की व्याख्या करने वाले रेखा-चित्र भी दिये गये हैं जिनके द्वारा छंद वृक्ष या पक्षी की आकृति मे समझाए गये हैं। इसे हम 'चित्र-काव्य' कह सकते हैं। इस पुस्तक का वैज्ञानिक महत्त्व इतना है कि फारसी छद शास्त्र का कोई भी अध्येता इस ग्रन्थ की उपेक्षा नहीं कर सकता। इनके बाद इसफहान के **कमाल-अल-दीन-इसमाईल** का नाम आता है जिसे लोग व्यग और परिहास में 'खल्लाक-अल-मआनी' (creator of ideas) भी कहा करते थे क्योंकि अल्फाज़ और मआनी ही दो तत्व हैं जिनसे कविता बनती है। शाहों की खुशामद करने का तरीका कमाल ने एक अच्छे उस्ताद से सीखा था किन्तु इस क्षेत्र मे उसे निराशा ही नसीब हुई क्योंकि दीर्घ-काल तक दरबारों मे भटकते रहने के बाद वह घर लौटा और चग़ताई कृत जनहत्या मे मारा गया। शाहो और राजकुमारो के प्रति उसकी सबोधनात्मक कविताओं में एक प्रकार के साहस के दर्शन होते हैं जो उस युग मे दुर्लभ थे। उसने रुक्न-अल-दीन सईद इब्न मसूद शाह के प्रति एक रचना मे कहा है कि 'जितना लगाव अपने दिल का तुम खुदा से बतलाते हो उतना ही लगाव यदि तुम्हारी जबान का तुम्हारे दिल से होता तो सारी खुशियाँ तुम्हारे पैरों पर लोटतीं।' उसे अन्त मे यहाँ तक कहना पड़ा है कि 'मैंने आँखें घुमाकर चारो तरफ देखा है और विचार भी किया है पर मुझे सारी दुनिया मे कवि के पेशे से बुरा पेशा दूसरा नहीं

दिखाई दिया।' उसकी यही विचारधारा और उग्रता उसके पतन का कारण बनी। इसफहान लौटने पर उसने कविता छोड दी और दरवेशो की सी जिन्दगी अख्तियार कर ली थी। क्षुद्र राजाओ की प्रशसा म लिखे गये गजलो और कसीदो मे वह आनद कहाँ जो कमाल द्वारा लिखित प्रेम की रुबाइयों मे मिलता है। कमाल का एक ही विषय है प्रेम की पीर और प्रेम की अदम्य प्यास अथवा लालसा जो मौत पर भी विजय प्राप्त करती है। कमाल के हृदय का सारा इतिहास उसके काव्य मे चित्रित है। उसके रुबाइयातो से पता चलता है कि उसका प्रेम दुखद एव दुखान्त था, उसका प्रेम पात्र अत्यत क्रूर और भूठा था जिसके फलस्वरुप निराश होना पडा और जब इसफहान छोडकर और भग्नहृदय कमाल का इसफहान छोडकर वह टूटे हुए दिल मे जाने लगा तो उन पुरुषो ने जिन्हे उसने सहायता पहुँचाई थी और वे स्त्रियाँ जिन्हे उसने प्यार किया था उसका मजाक उडा रहे थे। नज्म-अल-दीन-दाया एक सूफी थे और वे भी मगोल आक्रमण के शिकार हुए। इनके शिष्यो ने इनसे प्रार्थना की कि ये सूफी रहस्यवाद पर ऐसी पुस्तक लिखें जो आकार मे छोटी किन्तु अर्थ वत्ता मे महान हो जिसमे सृष्टि के आदि और अत, प्रेम पथ की शुरुआत और उसकी यात्रा की परिसमाप्ति, आशिक (प्रेमी, बन्दा या जीव) की माशूक (प्रिय, खुदा या परमात्मा) के खोज और उसके उद्देश्य आदि विषयो पर ऐसा प्रकाश डाला गया हो जो इस मार्ग के नये पथिक और पुराने अभ्यासी दोनो के लिए प्रिय और उपयुक्त हो। दाया ऐसे राज्य मे जाने को उत्सुक थे जहाँ खुदा के सच्चे बदे रहते हो। रुम (फारस का) एक ऐसा ही राज्य था जहाँ शाह शिहाब-अल-दीन सुहरावर्दी ने इनका स्वागत किया। सालजुक शासक कैकुबाद प्रथम ने भी पूरी सहृदयता और उदारता से इनका स्वागत-सम्मान किया। इनके ग्रन्थ का नाम 'मिरसाद-अल-इबाद' है जिसमें सृष्टि-रचना के क्रम, आत्मा के स्तर अथवा उसकी श्रेणियाँ, सूफी मतानुसार मनुष्य की उत्पत्ति, आदम और होवा की कथा आदि दी गई हैं। इस ग्रन्थ मे वर्णित विषयो की सख्या बहुत बडी है तथा रहस्यानुभूति की परमआह्लादमयी स्थिति मे जो विविध रग के प्रकाश दिखाई देते है उनका बहुत ही रोचक वर्णन हुआ है। नसीर-अल-दीन तुसी के लिखे अनेक धार्मिक एव दार्शनिक ग्रन्थ बताए जाते हैं जिनमे इसमाइली दर्शन का विवेचन हुआ है। इनमे 'तसव्वुरात' सबसे महत्त्वपूर्ण है। उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति 'अखलाक-ए-नासीरी' इस्माइली राज्याश्रय मे लिखी गई। इन दोनो ग्रथो मे मनुष्य सृष्टि की पशु सृष्टि पर श्रेष्ठता का सागोपाग विवेचन हुआ है। दूसरी रचना को फारसी नीतिशास्त्र का श्रेष्ठतम एव अतिशय विद्वत्तापूर्ण ग्रथ कहा जाता है। समसामयिक राजनीति मे भी तुसी ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। अपने जीवन के उत्तर काल मे वह मगोल बादशाहो के राज्याश्रय मे भी रहा। अपने युग का वह बडा जबरदस्त लेखक था जिसने अरबी मे ही १०० से अधिक ग्रथ लिखे और विविध विषयो पर अपनी लेखनी चलाई। व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता देते हुए वह राजनीति मे 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै' वाली नीति का अनुसरण करता था। सूफीमत पर 'औसाफ' उसकी मानी हुई रचना है। १३ वी शताब्दी का अन्तिम महत्वपूर्ण कवि ईराकी है जिसमे उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा थी और सूफी रहस्यवादी जीवन के प्रति असदिग्ध निष्ठा भी। उसका जीवन घनघोर हलचलो और तूफानो के बीच व्यतीत हुआ। वे इस्लामी साम्राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमते रहे। कलन्दरो की एक टोली के साथ ये भारत आये और यहाँ २५ वर्ष तक रहे। मुलतान,

मक्का, रूम, काहिरा, दमिश्क जहां-जहां भी ये गये छोटे-बड़े सबने इनका बड़ा सम्मान किया। इनकी जीवन गाथा विचित्र घटनाओं का रोचक भंडार है। इन्होंने विपुल संख्या में भावप्रवण, मधुर और सुगेय गीत लिखे। प्रेम इनके काव्य का भी प्रधान तत्व था। इनके प्रेम गीतों का एक 'दीवान' और रहस्यात्मक प्रेम की एक लम्बी रचना 'उश्शाक्नामा' ये दो ग्रन्थ मिलते हैं।

मंगोल आक्रमण के बाद—अमीर खुसरो का जन्म १२५३ ई० में भारतवर्ष में गंगा-तट के पतिआली नामक एक गाँव में हुआ था। अमीरखुसरो की नैसर्गिक प्रतिभा के पोषण के लिये इस समय बलबन हिन्दुस्तान की राजधानी में राज्य कर रहा था (१२६५-८७ ई०)। खुसरो ८ वर्ष की आयु से ही अच्छी कविता करने लगे थे। कुछ समय तक ये बलबन के साथ रहे और बाद में उसके पुत्र मुहम्मद खान के पास चले गये जो मुलतान का शासक था। वहाँ ये पांच वर्ष तक रहे, इसके बाद सन् १२८५ में मंगोलों का वह भीषण आक्रमण हुआ जिसमें मुहम्मदखान मारा गया और खुसरो स्वयं कैद हो गये। बड़ी मुश्किलों से अपने दुख की गाथा कहने के लिये अमीर खुसरो मंगोलों के हाथ से छूट सके थे और लौटकर अपनी विधुरा मां के दर्शन कर सके थे। मंगोल आक्रमण की भीषणता और उसके परिणामों की वीभत्स भयंकरता का बड़ा ही दारुण चित्र खुसरो ने अंकित किया है। उसने प्राण बचाकर घोर दुरवस्था के साथ अपने भागने का भी विवरण दिया है। जब कैकुबाद दिल्ली के तख्त पर बैठा तो एक बार फिर खुसरो के भाग्य का सितारा बलन्द हुआ। नासिर-अल-दीन बुग़राखान के दिल्ली पर आक्रमण तथा कैकुबाद के प्रतिरोध और फलस्वरूप संधि का अति-शयोक्ति पूर्ण वर्णन खुसरो की 'किरान-अल-सदाए' में देखा जा सकता है। इस ग्रंथ में उक्त घटना का कवि द्वारा देखा हुआ हाल वर्णित है। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक ग़ज़ल रखी गई है जो उस अध्याय में वर्णित घटनावली पर कवि के व्यक्तिगत भावों, आशा-निराशाओं को व्यक्त करती है। इस कृति में इस प्रकार महाकाव्यत्व एवं गीतात्मकता का अपूर्व सामंजस्य हुआ है और अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण यह रचना फारसी साहित्य में समादृत हुई है। ३६ वर्ष की आयु में अमीर खुसरो शीर्षस्थ कवि (poet-laureate) घोषित हुए किन्तु उनके कवित्व का रसास्वादन करने के लिये कैकुबाद जीवित न रहा। अब अमीर खुसरो 'भारत का तोता' (parrot of India) कहलाने लगे और १३२५ ई० अर्थात् अपनी मृत्यु तक एक के बाद दूसरे सुलतान का राज्याश्रय पाते रहे तथा उसकी और अपनी पूर्ण तुष्टि करते हुए काव्य-रचना में संलग्न रहे। दीर्घकाल तक पूर्ण सुख और शांति के साथ काव्य-रचना में संलग्न रहने के कारण ये प्रभूत परिमाण में हर प्रकार और शैली की कविता की सृष्टि कर सके। चार अन्य ऐतिहासिक वर्णनात्मक काव्य इन्होंने लिखे—१. मिफ्ताह अल्फतूह २. आशिक ३. नुह सिपिह और ४ तुग़लकनामा। इन लम्बी रचनाओं के अतिरिक्त अमीर खुसरो ने निजामी के 'खमसा' के अनुकरण पर पांच और वर्णनात्मक प्रबन्ध लिखे। ये सब १२९९ ई० से १३०२ के बीच लिखे गए। किन्तु खुसरो का समूचा कृतित्व इतना ही नहीं है। और शायर एक दीवान लिखकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं किन्तु अमीर खुसरो ने पाँच दीवान लिखे जो क्रमशः १२७३, १२८५, १२९४, १३१६, और १३२३ के आसपास लिखे गए। कहा जाता है कि खुसरो ने ४ लाख छन्दों की रचना की है। बहुत बड़े परिमाण में इन्होंने हिन्दी में भी रचनाएँ की और ३ ग्रन्थ भी लिखे। खुसरो भारत में पैदा हुए

फारसी के सबसे महान शायर हैं । हम्द अल्लाह मुस्तौफी (ज० १२८२) गियास-अल-दीन मुहम्मद के दरबार के कवि थे । इन्होंने लगभग १० वर्षों के परिश्रम के अनन्तर शाहनामा की ७५,००० छन्दों में पूर्ति की है (१३३५ ई०) । अपने पितामह (जिन्होंने कजवीन पर मंगोल आक्रमण का लोमहर्षक दृश्य अपनी आँखों से देखा था) द्वारा कथित मंगोल आक्रमण विवरण के आधार पर कजवीन में मंगोलों द्वारा की गई जनहत्या का दारुण दृश्य प्रस्तुत किया है । 'जफरनामा', गियास अल-दीन मुहम्मद को समर्पित, 'तारीखे गुजदा' जिसमें सृष्टि के आदि से १३२९ ई० तक की मुगल सृष्टि का वर्णन किया गया है और 'नजात-अल कुलूब' जिसमें जल और स्थल सृष्टि की आश्चर्योद्रेचक विशेषताओं का वर्णन किया गया है—ये तीन इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं । केन्द्रीय इल-खानीद शासन के पतन के अनन्तर फारस में एक बार फिर बरबादी और अव्यवस्था का जमाना आया । चंगेजखाँ और हुलाकू के आक्रमणों से ध्वस्त फारस साम्राज्य फिर से सुसंगठित भी न हो पाया था कि तैमूरलंग नामक एक नए दैत्य का उसे साक्षात्कार करना पड़ा । जाकानी इस युग के एक अप्रतिम व्यंग्यकार कवि (satirist) थे । ये कजविन नगर के बाशिन्दा थे किन्तु वहाँ के निवासियों की मूर्खता से चिढ़कर शीराज आ गए थे जिसके प्रति उनके हृदय में अच्छा लगाव था । यह घटना शेख अबू-ईशाक-इञ्जू के समय की है जिनकी मृत्यु १३५७ ई० में हुई । इन्होंने गम्भीर तर्ज की चीजें लिखना छोड़ व्यंग्य को अपना अस्त्र बनाया । आर्थिक ऋण से ये बहुत परेशान रहे और १३७१ ई० में इनकी मृत्यु हो गई । जाकानी ने किसी समय ऊँची प्रतिष्ठा भी सम्भव है हासिल की हो । उनका 'मूश-ओ-गुरबा' ९४ दोहों का एक विचित्र सबोधन गीत है जो सारी फारसी शायरी में बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसमें बिल्लो और चूहे की कथा के व्याज से किसी समसामयिक राजनीतिक घटना का वर्णन किया गया है । जाकानी ने अपने बहुत से कसीदे और संबोधन गीत शाह अबू-ईशाक-इञ्जू को समर्पित किये हैं । 'अखलाक अल अशराफ', 'तारिफात' और 'रिसालये दिलगुशा' इनकी रचनाएँ हैं । इनमें पहली रचना एक पैरोडी है, दूसरी नीति-कथनों का संग्रह और तीसरी रोचक एवं हास्योत्तेजक तथा जहाँ-तहाँ अश्लील चुटकुलों का संकलन है । उसकी लिखी गजलें बहुत थोड़ी संख्या में हैं किन्तु उनमें जो सौंदर्य और नवीनता है उसकी छाप युग के शायरों पर अवश्य पड़ी होगी । उसकी गजलें बहुत छोटी होती थी । ईराकी के 'उश्शाक नामा' के आधार पर जाकानी ने भी शाह अबू ईशाक के लिए अपना 'उश्शाक नामा' १३५० ई० में लिखा जिसमें न केवल नाम ही ईराकी से ग्रहण किया गया है वरन् प्रबन्ध के बीच-बीच में गजल रखने की शैली भी वहीं से ली गई है किन्तु ईराकी ने जहाँ रहस्यात्मक प्रेम को अपना प्रधान वर्ण्य बनाया है जाकानी ने लौकिक एवं वासनात्मक प्रेम को । इसमें बताया गया है कि कवि किसी खूबसूरत प्राणी के इश्क में पड़ गया है । यह पता नहीं कि वह मर्द है या औरत । पहले तो वह खतों द्वारा अपनी मुहब्बत का इजहार करता है जिन्हें माशूक घृणापूर्वक वापस कर देता है बाद में इनके मुहब्बत को थोड़ा बढ़ावा मिलता है और मिलने की घड़ी आती है लेकिन अन्त में दोनों का ऐसा वियोग होता है कि मिलने की लेशमात्र भी सम्भावना नहीं रहती ।

१४ वीं शताब्दी के कुछ कवि—मंगोल आक्रमण के उत्तरवर्ती महान शायर हाफिज की चर्चा हम कुछ बाद में करेंगे । यहाँ १४ वीं सदी के पाँच कवियों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है जिनकी साहित्यिक कृतियाँ इस व्यथित और अव्यवस्थित युग की विविध

प्रवृत्तियों का द्योतन एवं प्रतिनिधित्व है। तबरेज के महमूद शाबिस्तरी अपनी साधुता और ईश्वर-ज्ञान के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गए हैं। इनकी मृत्यु इनके जन्म स्थान तबरेज में ही हुई। इनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'गुलशनेराज' है जो प्रश्नोत्तरों के रूप में १००८ दोहों (Couplets) में लिखी गई। यह रचना हरात के अमीर हुसैनी की प्रेरणा से लिखी गई और इसमें विविध रहस्यवादी विषयों का निरूपण किया गया है। रुहुल-अल-दीन औहादी का जन्म मरागा में ११७० ई० में हुआ। ये रहस्यवादी कवि औहाद-अल-दीन किरमानी के शिष्य थे और उन्हीं के नाम पर इन्होंने अपना साहित्यिक नामकरण किया। इनमें सांसारिक आकांक्षाएँ भी थीं जिसके फलस्वरूप इन्होंने अबूसईद और उसके मंत्री गियाथ-अलदीन (गियासुद्दीन) की प्रतिष्ठा में कसीदे लिखे और वजीह-अलदीन शाह यूसुफ को १३०६ ई० में लिखी 'मन्तिक-अल-उश्शाक' नामक मसनवी समर्पित की। इनकी प्रशस्ति परक रचनाओं का अपेक्षित सम्मान न हुआ जिससे इन्हें बड़ी निराशा हुई। इनकी अन्य रचनाओं में जो महान नैतिक आदर्श भरे हुए हैं उनकी महत्ता अस्वीकार नहीं की जा सकती। 'जाम-ए-जाम' इनकी प्रसिद्धतम रचना है (१३३२ ई०) जो गियाथ-अल दीन को समर्पित की गई थी। इस रचना के लिखने में कवि की मंशा और उसकी प्रकृति का पता ग्रन्थ में वर्णित विविध विषयों से भली भाँति लग जाता है। यह रचना सामाजिक एवं आध्यात्मिक विषयों का विचित्र संग्रह है। औहादी की कवित्व शक्ति साधारण बतलाई जाती है। इब्न यामीन संभवतः तुर्किस्तान में १२८६ ई० में पैदा हुए थे। इन्होंने अपने पिता अमीर यामीन-अल दीन से काव्य रचना का संस्कार और शिक्षण प्राप्त किया था जो स्वतः एक अच्छे कवि थे। उन्हीं के कारण ये खुरासान के शाहों के यहाँ सम्मानित होते रहे। अपने आश्रयदाता के साथ युद्ध करते हुए युद्धभूमि में इनकी रचनाओं का विशाल संग्रह खो गया। इनके शाह की मृत्यु हो गई और ये बंदी बना लिए गए। इन्होंने बुद्धिमानीपूर्वक अपने विजेता का प्रशस्तिगान प्रारम्भ कर दिया। इनकी मृत्यु १३६८ ई० में हुई। जीवन के अंतिम २५ वर्षों में इन्होंने पर्याप्त रचनाएँ लिखीं (लगभग ५००० छंद) इनके गजल और लंबी कविताएँ (कसीदे) परमोत्कृष्ट कोटि के नहीं हैं फिर भी इनकी नीतिमूलक रचनाओं का फारसी साहित्य में अच्छा स्थान है। इब्नयामीन में विवेक, बुद्धिमत्ता, परिहास वृत्ति प्रचुर परिमाण में थी। वे शराब पीने और मित्रों के साथ हास-परिहास पूर्वक जीवन का आनंद लेने में विश्वास करते थे। इन्हें अपनी सामर्थ्य और काव्य-प्रतिभा पर अखंड विश्वास था और इनके साहित्यिक कृतित्व में यदि कोई दोष है तो उसकी जिम्मेदारी ये अपने ऊपर नहीं समझते वरन् परिस्थितियों को उसका दोषी ठहराते हैं। अच्छे व्यंग्यकारों और सूक्तिकारों (Epigrammatists) में इनका नाम लिया जाता है। इनकी बहुत सारी रचनाओं में संतोष और धैर्य पर बल दिया गया है। ख्वाजू अपने युग के निश्चय ही एक अप्रतिम कवि थे जिन्होंने प्रभूत परिमाण में काव्य-रचना की है। किरमान में १२८१ ई० में इनका जन्म हुआ। औहादी के समान इन्होंने भी पहले अबू सईद और गियाथ-अल-दीन के दरबार में अपना भाग्य अजमाया। इलखानिद साम्राज्य के अव्यवस्थित एवं विभक्त हो जाने के बाद ये एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे शाही दरबार में टक्कर मारते फिरे। इनके प्रधान संरक्षक थे मुबारिज-अल-दीन मुहम्मद और अमीर अबू-ईशाक-इन्जू। संभवतः अबूईशाक के संरक्षण-काल में १३५२ ई० में इनकी मृत्यु हुई। दरबारी कारबार से समय निकालकर ये दार्शनिक

चिंतन और रहस्यात्मक काव्य-रचना मे भी प्रवृत्त हो लेते थे। इनके आध्यात्मिक गुरु अता-अल-दौला समनानी थे। कहा जाता है कि ख्वाजू के दीवान मे २०,००० छद थे जिनमे गजलें, गीत और चौपदे सम्मिलित थे किन्तु अब उनमे इतनी रचनाएँ नही मिलती। कहा जाता है कि उनके गीतो मे सनाई, अत्तार, रूमी और सादी का प्रभाव लक्षित होता है। निजामी के 'खमसा' के अनुकरण पर इन्होने भी पाँच वर्णनात्मक प्रबंध लिखे —(१) हुमाय ओ-हुमायूँ (१३३२ ई०) जिसमे शाहजादा हुमाय और चीन की राजकुमारी हुमायूँ की प्रेम-कथा वर्णित है (२) नौरोज ओ गुल (१३४१ ई०)—इसमे खुरासान की एक राजकुमारी तथा रूम की राजकुमारी की प्रेम कथा दी हुई है (३) कमालनामा (१३४३ ई०) धार्मिक ग्रन्थ (४) रौदत-अल-अनवार (१३४२ ई०) निजामी के मखजान-अल-असरार के ही समान प्रश्नोत्तर रूप मे लिखित धार्मिक ग्रन्थ है (५) पाँचवे खमसे के बारे मे अनिश्चितता है। कुछ लोग इसका नाम मफातीह-अल-कुलूब बतलाते हैं और कुछ लोग गौहरनामा। जमाल-अल-दीन सलमान जिन्हे सलमाने साव जी कहते हैं साव नामक एक सुन्दर नगर के रहने वाले थे। १३०० ई० मे ये पैदा हुए और बडे होकर पहल तो राजकर्मचारी बने किन्तु कविता की ओर प्रवृत्ति होने के कारण कसीदा-लेखक का पेशा इन्होने अख्तियार कर लिया। पहले इन्होने अबू सईद और गियाथ-अल-दीन मुहम्मद के दरबार मे काव्य-लेखन किया क्योकि इनके निधन पर इनके मार्मिक शोकगीत मिलते हैं किन्तु अपने जीवन का अधिकाश भाग इन्होने बगदाद के जलाइरीद दरबार मे व्यतीत किया। कसीदा लेखक के रूप मे ये अनवरी के टक्कर के कहे जाते हैं। इन्होने पूर्ववर्ती कसीदा लेखको के साहित्य का गभीर अनुशीलन किया था। नये भावो की व्यजना और कठिन छदो के प्रयोग मे इनकी सिद्धहस्तता स्वीकार की गई है। परपरागत काव्य विषय को नये तर्ज से प्रस्तुत करने मे ये माहिर थे और इनके इसी गुण पर इन्हे पर्याप्त धन और सम्मान मिला होगा। सलमान के दो वर्णनात्मक प्रबंध 'फिराकनामा' और 'जमशीद-उ-रव्वरशीद' तथा गीतो और चौपदो (Quatrains) का एक अच्छा सग्रह उपलब्ध है। इनके गीतो मे असाधारण माधुर्य और गरिमा की उपलब्धि होती है। उनमे लौकिक प्रेम की अदम्य ललक और त्यागमयी निष्ठा के दर्शन होते है। सलमान पर हाफिज का प्रभाव देखा जा सकता है।

हाफिज का जन्म १३२६ ई० मे शीराज मे हुआ था। बचपन से ही ये बडे होनहार थे। इनके दीवान मे अनेक रचनाएँ शाहअबूईशाक इजू और उसके वजीर किवाम-अल-दीन हसन की प्रशस्ति मे लिखी गई मिलती हैं। बाद मे ये मुबारिज-अल-दीन के वजीर बुरहान-अल-दीन फतह अल्लाह के आश्रय मे रहे किन्तु इनका भाग्योदय तब हुआ जब मुबारिज-अल-दीन के उदारचेता पुत्र शाहशुजा का इन्हे आश्रय मिला। इनके दीर्घ किन्तु अशान्त शासन काल मे हाफिज की कवि-प्रतिभा का सम्यक विकास हुआ। इन्होने मुजफ्फरीद शाहो के पतन और तैमूर के भयानक आक्रमण का दृश्य अपनी आँखो से देखा था। हाफिज को अपने जीवन काल मे ही अच्छी ख्याति प्राप्त हो गई थी—बगदाद, खुरासान, अजरबैजान, भारत तुर्की, मेसोपोटेमिया ऐसे दूर-दूर स्थानों मे भी इनकी प्रसिद्धि हो चली थी और ये दूर-दूर के बादशाहो द्वारा आमंत्रित होते थे। इनकी पक्तियाँ कवियो, बादशाहो और विद्वानों द्वारा बराबर उद्धृत की जाया करती थीं। शताब्दियों तक ये फारसी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार कवि

माने जाते रहे हैं। उच्चकोटि की संवेदनशीलता से सम्पन्न और सुकुमार हृदय वाला यह कवि ऐसे उथल-पुथल और भीषण रक्तपात के युग में भी अपनी कविजनोचित कल्पनाशीलता को किस प्रकार सुरक्षित रख सका यह बड़े आश्चर्य की बात है। हाफिज़ ने अपनी आँखों से शाहों की हत्या, घरों की बरबादी, शहरों के विध्वंस आदि के नृशंस दृश्यों को देखा था फिर भी वे अपनी आन्तरिक या आध्यात्मिक स्थिरता से च्युत नहीं हुए थे। उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ते नहीं पाया था। यह रहस्यात्मक स्थैर्य और चित्त की शांति उनके कसीदों में देखी जा सकती है। वे चाटुकार प्रशस्तिकारों में न थे और झूठी अतिशयोक्ति पद्धति का अनुसरण करने वाले भी न थे। वे बादशाहों को भी यह बताकर सचेत किया करते थे कि मृत्यु हर व्यक्ति के सिर पर चढ़ती है और भाग्य किसी को नहीं छोड़ता राजा हो चाहे रंक। रहस्यात्मक चेतना इनमें अपनी पूर्णता को पहुँच गई थी। सनाई, अत्तार, रूमी, सादी ऐसे महान शायर जिस प्रेम मार्ग पर इतना कुछ कह गये थे उसी विषय पर हाफिज़ ने भावना की इतनी गहराई और अभिव्यंजना की इतनी ऊँचाई से कहा है कि इनका कथ्य अपने आप में बेजोड़ हो गया है। जिन विषयों पर औरों ने विस्तृत प्रबंधों के माध्यम से बहुत कुछ कहा है इन्होंने उन्हीं विषयों पर गीतों के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर मधुर ढंग से बहुत कुछ कह दिया है। उस रहस्य के प्रति वे ऐसा तादात्म्य स्थापित कर चुके थे कि इनकी हर एक गजल या गीत उस महान अनुभूति को अनिवार्य रूप से प्रकट करती पाई जाती है। यही हाफिज़ की शायरी की एक अत्यन्त प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। हाफिज़ का वास्तविक अधिकार गीतों में है। उनके रहस्यवादी गीत जहाँ अभिव्यक्ति के चरम उत्कर्ष पर पहुँच सके हैं वहाँ उनमें एक असाधारण सौन्दर्य और सादगी है। छोटे से शब्दों में वे सशक्त और सूक्ष्म दोनों प्रकार के भाव व्यक्त करने की सामर्थ्य रखते हैं। माधुर्य और सादगी के अतिरिक्त उनके गीतों में जो भावना की सच्चाई है वह बड़ी मोहक है। हर गीत गायक के हृदय से सीधे निकलता जान पड़ता है। हर गीत कवि के गहनतम अंतरंग की अभिव्यक्ति है। अत्तार, रूमी, सादी, ख्वाजू आदि पूर्ववर्तियों से बहुत कुछ ग्रहण करने पर भी उनकी शैली अपनी है और उनके शब्दों में नई आभा है। यदि औरों की अपेक्षा उनकी कविता अधिक आदृत है तो उसका कारण उनके गीतों की आध्यात्मिकता, रहस्यात्मकता, मधुरता, प्रवाह और सशक्तता में है। हाफिज़ अपनी इस शक्ति से परिचित थे। अपनी प्रशस्त प्रतिभा, आध्यात्मिक सूक्ष्मता, भाषाधिकार, सूक्ष्मचिंतन, रहस्यानुभूति और आध्यात्मिक रहस्यों की जानकारी के फलस्वरूप भाषा शैली और अभिव्यक्ति का एक ऐसा स्वतन्त्र रूप वे विकसित कर सके थे कि फारसी साहित्य के जानकार उनकी शैली से ही उन्हें पहचान सकते हैं।

१५वीं शताब्दी के कवि—तीमूरीद शासकों के समय में काव्य के स्रोत वैसे ही प्रवाह से फूट पड़े जैसे कि पूर्ववर्ती युग में और १५वीं शती में भी फारसी के सात अमर कवियों में एक महाकवि पैदा हुआ जिसका नाम जामी है। जामी की चर्चा हम बाद में करेंगे। जामी के बाद तो फारसी काव्य स्वर्णयुग से छूटकर रजतयुग में पहुँच गया। काव्य के स्रोत जैसे सूख से गये। मुहम्मद शीरीं मग़रिबी (जन्म १३५० ई० मृत्यु १४०७ में) इसफहान में पैदा हुए और तबरेज में मरे। वे एक निष्ठावान सूफी मत के और उनकी कविता अन्सारी, बाबाताहिर, रूमी और हैराकी की परंपरा की है। जीवमात्र की एकता में इनका विश्वास

था, प्रत्यक्षानुभूति इनकी प्रेरणा थी और इनकी सभी रचनाओं में एकेश्वरवाद की मूल भावना मिलेगी। शीरज के मौलाना अबू-ईशाक-हल्लाज एक भिन्न प्रकार की रचना करते थे। ये फार्स के शासक तैमूर के प्रपौत्र इसकन्दर के प्रिय व्यक्ति थे। ये एक साधारण कपास कातने वाले व्यक्ति थे किन्तु अपनी तीव्र बुद्धि और पैरोडी बनाने की अद्भुत क्षमता से राजसम्मान का दुर्लभ अवसर पा सके थे। इनकी रचनाएं मनोरजक हैं और कभी कभी बड़े बड़े कवियों की रचनाओं की भोंडी नकल के रूप में हैं। भोजन या खाद्य सामग्री सबंधी कविताओं के 'दीवाने अतीमा' के अतिरिक्त 'चावल और रोटी की बातों पर' भी इनका एक प्रबंध लिखा बताया जाता है। ये अपना नाम बुशाक रखते थे, मृत्यु १४२५ के आसपास हुई। इनकी हल्की रचनाएं गंभीर पाठकों के चित्तविनोदन का कार्य करती हैं। एक अन्य प्रसिद्ध कवि और महान् सत हो गये हैं निमत अल्लाह वली जिनके नाम से फारस में आज भी दरवेशों का एक निमत-अल्लाही सप्रदाय चल रहा है। अलप्पो में १३३० ई० में इनका जन्म हुआ और शियाओं के पाचवें इमाम मुहम्मद बाकिर की गद्दी पर ये बैठे। शतायु होकर १४३१ में दिवगत हुए। उनका मकबरा आज भी एक तीर्थ स्थान माना जाता है। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेकानेक शाहों का प्रशसा और सम्मानपूर्ण राज्याश्रय प्राप्त किया था। सूफी मत से सबधित विविध विषयों पर इनके लिखे ४०० प्रबंध बताए जाते हैं जिनमें से लगभग १०० तो उपलब्ध हैं। ये प्रबन्ध बहुत छोटे छोटे हैं और सामान्य तथा प्राचीन सूफी आचार्यों के कथनों की व्याख्या रूप में हैं। इनके गीतों का बड़ा दीवान अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान है जिसमें सच्चा काव्यत्व मिलता है क्योंकि वहाँ भावानुभूतियों का सच्चा दर्शन होता है। कुछ निमत अल्लाह का सबंध सफाविद शाहों से विशेष रहा। एक अन्य सूफी शायर हो गये हैं कासिम-ए-अनवर जो तब्रेज के निकट १३५६ ई० में पैदा हुए। इन्होंने बड़ी यात्राएं की, गिलान में विशेषकर और बाद में निशापुर में रहे। आगे चलकर ये हरात में भी रहे। इनका जीवन कठिनाइयों से पूर्ण था। १४३३ में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने दो गद्य प्रबंधों तथा सादी के बोस्तान का सारांश तैयार करने के अतिरिक्त प्रचुर परिमाण में मौलिक काव्य रचना की है। इनकी कविता मध्यम श्रेणी की बताई जाती है और उसमें मगरिबी के समान रहस्यात्मक प्रवृत्ति मिलती है। इस युग में तुरशीज (निशापुर) के जिले के कतीबी एक अच्छे शायर हो गये हैं। पहले ईरान के तैमूरीद शासकों के साथ इन्होंने अपने भाग्य की आजमाइश की किन्तु वहाँ अपेक्षित सफलता न मिलने पर ये शीरवा, फिर अजरबैजान फिर इसफहान गये पर कहीं भी इन्हें तसल्ली न मिली। आखिर में इन्होंने कसीदालेखन छोड़ सूफी चिन्तन की ओर अपने को प्रवृत्त किया। उनका साहित्य सृजन परिमाण में प्रचुर है। प्रारंभिक वर्षों में उन्होंने अनेक रोमाचक प्रेम के वर्णनात्मक प्रबंध लिखे जिनमें असाधारण छद कौशल के दर्शन होते हैं। इन्होंने गीत और गज़ल भी लिखे। निज़ामी के समान ये भी खमसा तैयार करने की आकाक्षा रखते थे किन्तु पूरी न कर सके। हरात के आरिफी एक ही छोटी रचना 'गूयओ-चौगान' के कारण अमर हो गये हैं। यह रचना १५ दिनों में ही लिखी गई थी जिसमें एक रहस्यवादी का जीवन चौगान (Polo) का खेल बताया गया है।

जामी—प्राचीन फारसी साहित्य में जामी ही अंतिम महाकवि कहे जाते हैं। इनका जन्म सन् १४१४ और मृत्यु १४९२ ई० में हुई। हरात में जामी ने समस्त इसलामी ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं का पांडित्य अर्जित किया था जिसके कारण ये कुरान की साधि-

कार व्याख्या कर सके थे और मुहम्मद की परम्पराओं, पैगम्बर का जीवनवृत्त, अरबी व्याकरण, अलकार और छद, सगीत आदि पर ग्रन्थ-रचना कर सके थे। वे फारसी के परम अधीत कवियों मे गिने जाते हैं। अपने प्रारम्भिक निवास-स्थान जाम में मक्का की यात्रा के लिये जाते हुए नक्शबदी सत ख्वाजा मुहम्मद पारसा से इनकी आकस्मिक मुलाकात हुई। इन सत के पवित्र जीवन का इनके व्यक्तित्व पर स्थायी प्रभाव पडा। अपने जीवन काल में ही ये महान कवि और लेखक के रूप मे प्रसिद्ध हो गये थे। अनेकानेक शाह इनका सम्मान करने को लालायित रहते थे और उनमे इस बात के लिये परस्पर स्पर्धा हुआ करती थी। १४५२ ई० मे जामी ने 'हिलयाए-हुलाल' मिर्जा अबुल कासिम बाबर को समर्पित किया, इन्होंने तीमूरीद साम्राज्य के शासक मिर्जा अबू सईद की प्रशसा मे छद-रचना की, तीसरे सुल्तान हुसैन बायकरा ने इनके साथ पत्र-व्यवहार किया और अपने ग्रथ 'मजालिस-अल-उश्शाक' मे इनकी प्रशसा की है जिसके फलस्वरूप जामी ने अपने 'बहारिस्तान' तथा विभिन्न वर्णनात्मक प्रबन्धों और गजलो मे इनका स्तवन एव स्मरण किया है और चौथे मीर अली शीर नवाई से भी इनका अच्छा सम्पर्क था। अनेक विदेशी शाह भी इन्हे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जामी के लिखे ४५ ग्रथ बताए जाते हैं। 'नफहात-अल-उन्स' मे मुस्लिम सतो की जीवनी सकलित है, ईराकी के 'लमआत' पर इनका भाष्य मिलता है और सादी के गुलिस्तान की अनुकृति पर इन्होने 'बहारिस्तान' लिखा। गद्य-साहित्य मे भी इनका योगदान अपूर्व है किन्तु अपनी शायरी द्वारा इन्होंने कितने परवर्तियों का मान फीका कर दिया है। परम्परागत काव्य-परम्परा (Classical tradition) मे सबसे बाद आने के कारण स्वभावत इनके पास नई काव्य-सामग्री का अभाव था। अतीत के जो महान शायर लिख गए उसमे जोडने के लिए कोई विशेष चीज न थी। जामी की रचनाएँ इस बात का अक्षय प्रमाण हैं कि उन्होंने अनवरी और खाकानी, सादी और हाफिज, निजामी और अमीर खुसरो आदि सभी महान शायरो की वाणी का अत्यन्त गहन अनुशीलन किया था। इन्ही विविध प्रतिभाओं की विशेषताओं का इन्होंने ऐसा सुन्दर सामजस्य अपनी कविता में किया था कि उसके द्वारा ये एक निजी शैली का आविष्कार कर सके थे जिसमें असाधारण प्रवाह और आभा मिलती है। उसमे रहस्यात्मक भाव और भाषा का सौंदर्य सर्वोपरि है। इनके गजलों और गीतों के ३ पृथक सग्रह मिलते हैं—फातिहात-अल-शबाब, वासितात-अल-इक्द, खातिमात-अल-हयात। जामी के 'कुल्लियात' मे उनके पुराने गीतों और मुक्तकों का सग्रह हुआ है। जामी अनवरी और हाफिज की नकल मात्र कर लेने से सतुष्ट न थे, उन्होंने निजामी के समान विशद काव्य-रचना का भी सकल्प किया और परिणामस्वरूप पाच की बजाय सात वर्णनात्मक प्रबन्धों (idylls या short epiecs) की रचना की जिसे 'हफ्त औरग' (सात सिंहासन) कहा जाता है। ये सात प्रबन्ध हैं—१ सिलसिलात-अल-दहाब २ सलामान ओ-अबसाल ३ तोहफात-अल-अहरार ४. सुबहत-अल-अबरार ५ यूसुफ-ओ-जुलेखा ६ लैला-ओ-मजनू ७ सिर्दनामा-ए-इसकन्दरी। जामी की मृत्यु से फारसी काव्य के स्वर्ण-युग की समाप्ति हो जाती है और साहित्य के इतिहास मे १६ वी शताब्दी मे एक रजत युग आ जाता है। इस बीच और इससे कुछ पहले फारसी की दरबारी शायरी की परम्परा भारत मे भी प्रमाणित हुई एव विकासशील भी रही जिसका सक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत सदर्भ मे अनपेक्षित न होगा।

२

भारत में फारसी काव्य की परम्परा

भारत और ईरान पड़ोसी देश रहे हैं जिसके कारण उनमे अत्यंत प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक सम्बन्ध विद्यमान रहे हैं। संस्कृत और पर्शियन भाषाएँ एक ही भाषा परिवार की हैं। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार ऋगवेद और जेन्दावेस्ता मे भाषागत सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। यह बात भी ऐतिहासिकों के बीच प्रसिद्ध ही है कि मध्य एशिया के किसी एक ही केन्द्र से आर्यजाति भारत, ईरान आदि देशों को गई। किसी समय मे मध्य एशिया मे फारसी भाषा और संस्कृत का ही बोलबाला था। फलस्वरूप जो जातियाँ भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के दर्रों से होकर आई वे अपनी फारसी या फारसी बहुला भाषा भी अपने साथ ले आई। इसका प्रभाव भारत की भाषा और संस्कृति पर पड़े बिना न रहा। इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व भी पर्शिया वालों का भारतवासियों से नजदीकी रिश्ता रहा है। उत्तर-पश्चिम भारत का बहुत बड़ा भाग एक जमाने मे फारसी साम्राज्य का अंग रहा है जिसमे हेरात, कंधार और गंधार शामिल थे। सासानी शासन के पहले पर्शिया के बादशाहों का पश्चिमी पंजाब, सिन्ध और बलूचिस्तान तक अधिकार और प्रभाव था। अकेमीनियन युग मे जब पर्शियन साम्राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था पर्शिया के महान शासक डेरियस ने अपने एक प्रधान अधिकारी को भारत के मार्ग का समुद्री पता लगाने का आदेश दिया था। इसी परिणाम-स्वरूप सिन्ध की विजय हुई तथा पंजाब और अफगानिस्तान के कुछ भाग पर्शियन साम्राज्य के अंग बना लिये गये थे। फारस के पराक्रमी शाहों की सेना मे भारतीय धनुर्धरों के होने का उल्लेख मिलता है। जब चंद्रगुप्त मौर्य ने प्रथम भारतीय साम्राज्य की नींव डाली तो उन्हें फारस के गौरवपूर्ण अकेमीनियन साम्राज्य के अनेक उपयोगी तथ्यों और संस्थाओं का सहारा लेना पड़ा। उस युग के समागत शिष्टाचार में फारसी तौर-तरीकों की झलक देखी जा सकती है। सासानियों ने अपनी सेना मे भारतीय सैनिकों को भरती किया था और ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी मे उत्तर भारत के कुशानवंशी राजाओं से उनके अच्छे और मित्रता के सम्बन्ध थे जो राजनैतिक, व्यावसायिक और सांस्कृतिक सभी स्तरों पर चल रहे थे। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि पंजाब के

जाट पर्शिया की सेना के अंग बनकर जरवशासियों से लड़े थे इसके अतिरिक्त यह भी पता चलता है कि खुरासान में हजारों पर्शियन परिवारों को पर्शिया के राजा अफ्रासियाब के आदेश से देश छोड़ कर भागना पड़ा था वे भाग कर पंजाब आये थे तथा लाहौर, मुल्तान और दिल्ली के पास बस गये थे। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि फारसवालों के स्थायी रूप से भारत में बस जाने, उनके वंश की वृद्धि तथा फारस वाले अन्य नवागन्तुकों के कारण फारसवासियों की बहुत बड़ी बस्ती वाला एक नगर ही बस गया था। फारस और भारत के ऐतिहासिक सम्बन्ध का यह सबसे ज्वलंत प्रमाण है। इस सबके फलस्वरूप भारतीय भूमि में फारसी-संस्कृति का बीजारोपण निश्चित रूप से हो गया। इससे इस तथ्य का भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि क्यों फारसी भाषा की भारत में इतनी गौरवपूर्ण उन्नति हुई जो शताब्दियों तक अक्षुण्ण रही यहाँ तक कि फारस में फारसी की जो उन्नति हुई उसकी तुलना में भारत में फारसी भाषा कुछ कम समृद्ध न रही। फारस के विद्वान और बादशाह भी भारतीय ग्रन्थों में अच्छी रुचि रखते थे। संस्कृत की प्रसिद्ध कथा कालियादमन के प्रति पर्शिया के शाह अनुशीरवां की इतनी रुचि थी कि उसने विपुल धनराशि देकर बर्जेवेह-इब्न-अजहर नामक एक हकीम, दार्शनिक तथा संस्कृत और फारसी विद्वान को भारत भेजा और उसने उक्त ग्रन्थ तथा संस्कृत और हिन्दी के अन्यान्य ग्रन्थों का अनुवाद फारसी या पहलवी में करके उसे अपने बादशाह को सुलभ कराया। इससे प्रसन्न हो बादशाह अनुशीरवां ने बर्जेवेह को खूब धन और जायदाद दिया तथा सम्मान में उसके सिर पर अपना ताज तक उतार कर रख दिया। इस प्रकार भारत और ईरान का रिश्ता केवल ऊपरी, सतही या औपचारिक नहीं है। धीरे-धीरे आगे चलकर भारत और पर्शिया की महान जनता के बीच जो रिश्ते कायम हुए उनके कारण एक दूसरे की संस्कृति, भाषा और रहन-सहन के प्रति एक स्वाभाविक सद्भाव का विकास हुआ।

पर्शियन संस्कृति का मूल केन्द्र खुरासान था जिसके शासक ताहिरीद वंश के लोग थे। ताहिरीद वंश की समाप्ति के साथ-साथ ही भारत में फारसी भाषा का प्रवेश माना जाना चाहिए। यद्यपि खुरासान में फारसी कविता का उस समय विशेष प्रचार प्रसार न था फिर भी ताहिरीद शासक फारसी कविता का अरबी कविता से कम सम्मान न करते थे। ताहिरीदों के शासन की समाप्ति (२६० हिजरी) के बाद सफारीद वंश का शासन लगभग ३१ वर्षों तक रहा। उसके बाद पर्शिया के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सुसंस्कृत सामानीद वंश का शासन हुआ। सामानीद शासकों में अच्छी साहित्यिक अभिरुचि थी। उन्होंने ज्ञान-विज्ञान, कला, साहित्य आदि के संग्रह, सृजन और संवर्धन में योग दिया। दूसरी भाषाओं संस्कृत, अरबी आदि ग्रंथों के अनुवाद हुए उदाहरण के लिए कालियादमन और तारीख तावरी आदि के। इस युग में अनेक महत्त्वपूर्ण फारसी शायर पैदा हुए जैसे अबू अब्दुल्ला फराल्वी, मुरादी, शहीद बलखी, इदाकी और स्त्री कवयित्री बसरा की राबिया आदि। अनेक महत्त्वपूर्ण दीवान तथा फिरदौसी का प्रसिद्ध महाकाव्य शाहनामा इसी युग में लिख गए।

गजनवी काल : भारत में फारसी भाषा, साहित्य और संस्कृत का प्रवेश

इसके बाद गजनवी वंश शासन का उत्तराधिकारी बना। गजनवियों के साथ फारसी साहित्य, सभ्यता और काव्याभिरुचि आदि का भारत में सीधा प्रवेश हुआ जो नवीन भूमि

तथा आवास का अनुकूल वातावरण पाकर यहाँ जम गई और क्रमश विकसित भी होने लगी। फारसी साहित्य की यह कलम भारत की जमीन मे बहुत अच्छी तरह लगी और बहुत से आलोचको का तो यहाँ तक कहना है कि भारत मे होने वाली फारसी शायरी फारस मे लिखी जाने वाली फारसी शायरी से किसी भी माने मे कम नही। गजनवियो के शासन-काल मे सामानीदो की सस्कृति, अभिरुचि और प्रवृत्तियो का साहित्य मे पूरा-पूरा प्रतिबिम्ब मिलता है। गजनवी वश वाले भारत मे अरबी प्रभाव से मुक्त फारसी भाषा और साहित्य लिये हुए आए। भारत मे मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास मे खुरासान और गजनी के बादशाह महमूद गजनवी का नाम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। उमी के फतेह के झडे के तले फारसी भाषा का भारतवर्ष मे निश्चित प्रवेश हुआ। फारसी जबान को भारत मे पूर्ण स्थायित्व प्राप्त हो गया और देश की भाषाओ और साहित्यो मे फारसी भाषा और साहित्य का नाम आदर से लिया जाने लगा। महमूद के जीवनकाल मे ही पजाब मे फारसी का अच्छा विकास हुआ। हिजरी सन की चौथी शताब्दी के अन्त मे महमूद गजनवी अपनी सेना लेकर आया। हिन्दुस्तान के लोगो मे इस नयी फारसी जबान का प्रवेश कराने मे उसके अभियानो एव भारत विजय का विशेष प्रभाव था तथा उसके विद्वानो के सरक्षण की वृत्ति के कारण फारसी को भारत के अनुकूल वातावरण मे विशेष प्रोत्साहन और स्थायित्व प्राप्त हुआ। फारसी भाषा यहाँ पर खूब फैली और फूली। पजाब विजय के अनन्तर हिन्दू राजाओ और जनता मे उसका सावका हुआ। प्रशासनिक कार्यो मे तथा व्यक्तिगत मुलाकातो मे जब उसे हिन्दू नरेशो एव जनता से सम्पर्क स्थापित करना पडता था, सम्पर्क स्थापना का माध्यम विजेता की भाषा होने के कारण स्वभावत फारसी ही होती थी जो मुसलमान और गैर-मुसलमान दोनो को स्वीकार थी। इस तथ्य की पुष्टि के लिये एक दो उदाहरण आवश्यक हैं। लाहौर के राजा आनन्दपाल की महमूद गजनवी से एक सधि हुई। थानेश्वर पर महमूद के आक्रमण का एक ही सुगम मार्ग था और वह था आनन्दपाल की राजसीमा से होकर। महमूद की इच्छानुसार आनन्दपाल ने एक विश्वस्त पदाधिकारी के रूप मे अपने भाई को ही २००० घुडसवारो की सेना के साथ भेज दिया था। इन लोगो ने महमूद की सेना का मार्गदर्शन किया जब तक कि सुलतान महमूद गजनवी को समूची सेना उसके राज्य से होकर निकल नही गई। महमूद गजनवी के आदेशानुसार आनन्दपाल के राज्य की फसलो और जनता को लेशमात्र भी क्षति नही पहुँचने पाई। इस कार्य मे कहते है कि एक वर्ष का समय लगा। आनन्दपाल ने भी ५००० सैनको तथा ३००० वणिको को महमूद के सेना की सेवा और सहायता के लिये भेजा था। ये वणिक या दूकानदार मिट्टी के बर्तन, गल्ला, कपडे, भेड, घी, शक्कर, दूध, अखरोट आदि विविध वस्तुएँ मुसलिम सैनिक शिविरो तक पहुँचाया करते थे। कहने का आशय यह है कि पर्शियन सेना के साथ भारतवर्ष के जनसाधारण के इस सम्पर्क के कारण यहाँ के लोगो ने फारसी के कुछ शब्द तथा फारस वालो के तौर तरीके सीख लिये हो अथवा उनसे परिचित हो गये हो तो कोई आश्चर्य की बात नही। इसी प्रकार पर्शिया के सैनिको ने भी भारत की बोलियो तथा सभ्यता का भी कुछ प्रारभिक ज्ञान अवश्य प्राप्त किया होगा। इस जन-सम्पर्क द्वारा पारस्परिक आदान-प्रदान अच्छी तरह सभव हुआ होगा। इसी प्रकार एक बार महमूद अपने साथ वीर हिन्दू सैनिको की कई टुकडियो को गजनी ले गया था। उनके साथ उसका व्यवहार अत्यन्त दयालुता एव उदारता से पूर्ण था।

योग्य और अनुभवी हिन्दू सरदार इन टुकडियो के सचालक होते थे। ऐसे कितने ही सरदारों और राजपूत सैनिको का विवरण मिलता है जिन्होने बडी स्वामिभक्ति के साथ ग़जनवी शाहो की सेवा की तथा उनके राज्य विस्तार के लिये लडते हुए अपने प्राणो की बलि चढा दी। इसी समय की बात है कि प्रसिद्ध सत और योद्धा सईद सालार मसूद गाजी जो कि एक नौजवान ब्रह्मचारी था और ग़जनवी खानदान का प्रधान व्यक्ति था महमूद ग़जनवी के समय भारत मे आया था वह फारसी सिपाहियों की सेना के साथ कन्नौज की ओर बढा तथा गगा पार कर वह अवध तक पहुँच गया। सरहिन्द, कूल, मथुरा और आगरा मे उसका थोडा प्रतिरोध हुआ किन्तु वह अपने अनुयायियो के मूर्तिपूजा के विध्वस और पृथ्वी पर अल्लाह के साम्राज्य के प्रसार के आवेश मे इन सारे अवरोधो को पार करता हुआ बहराइच तक आ पहुँचा। यहाँ तक आते-आते उस नौजवान गाजी की सैन्यशक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई क्योकि यात्रा बहुत लम्बी और कठिन थी। ये लोग यहाँ अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण दशा में पहुँचे थे—थके-मादे, बेबस और लाचार। कन्नौज, गोंड और बहराइच के राजाओ की सम्मिलित सेना के साथ इन लोगों को भीषण लडाई लडनी पडी। १७ घन्टे की घमासान लडाई में नौजवान सत गाजी का प्राणान्त हुआ। हिन्दू वर्ष के अनुसार ज्येष्ठ मास के प्रथम सप्ताह मे उसकी मृत्यु तिथि पर तब से आज तक बहराइच मे उसकी दरगाह पर उर्स का मेला लगता है। उसकी शहादत और विवाह के नाम पर यहाँ प्रतिवर्ष रविवार के दिन मेला लगता है यद्यपि वह आजीवन अविवाहित ही रहा। उसके मकबरे के प्रति मुसलमानो तथा गैर मुसलमानो के दिलों मे बडी इज्जत है तथा पास पडोस के रदौली, सत्रिख, बनारस और जौनपुर आदि समीपवर्ती नगरों से विवाह की बारातें सम्मान प्रदर्शनार्थ यहाँ आती हैं। हजारो लोग प्रतिवर्ष यहाँ फातिहा का समारोह देखने और अपने दुखो के निवारणार्थ उस सत से आशीर्वाद माँगने के लिये आते हैं। उत्तरी भारत मे होने वाले सबसे बडे उर्सों मे यहाँ का उर्स माना जाता है। सत गाजी की लाहौर से बहराइच तक की यात्रा का सास्कृतिक प्रभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सत के सैनिक और अनुयायी जो फारस के परम विद्वान थे अपने नेता की मृत्यु के बाद वहीं बस गए और सेना के लोग भी छिन्न-भिन्न होकर अवध के जिलों में बँट गए जहाँ उनके उत्तराधिकारी आज भी मौजूद हैं। उनके अवध मे स्थायी रूप से बस जाने के कारण फारसी-सस्कृति और भाषा का प्रवेश अवध प्रान्त मे दूर दूर तक गाव-गाव मे हो गया। भारत के इस भूभाग के लोगों की सस्कृति और साहित्यिक अभिरुचि पर फारसी सस्कृति और अभिरुचि का अच्छा खासा असर पडा। सईद सालार के सभी अनुगामी पारसीदा थे जो अवध के जिलो मे जहाँ-तहाँ बस गए थे इस कारण फारसी के शब्द और तौर-तरीके अवध के जिलो के अन्तराल तक प्रवेश कर गये। यही कारण है कि कुछ समय बाद इस प्रान्त की हिन्दू जनता मे फारसी भाषा और साहित्य की अभिरुचि जागृत हुई और ग़जनवी शासन की समाप्ति के लगभग १०० वर्ष पश्चात् यहाँ के लोग फारसी लिखने और बोलने लगे।

महमूद ग़जनवी और उसके वशवालो के भारत अभियान का दूसरा परिणाम और भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसका सम्बन्ध भारत मे फारसी के विकास और प्रचार मे है। फारसी काव्य के प्रति एक तो महमूद ग़जनवी स्वत. परिष्कृत रुचि रखता था और फारसी

के कवियो और विद्वानो का आदर करता था। कहा जाता है कि उसकी यात्राओ मे फारसी के लगभग ४०० विद्वान और शायर उसके साथ चला करते थे इसलिए यह असभव था कि भारतवासियो पर फारसी भाषा, साहित्य, सस्कृति और विचारधारा का प्रभाव न पडता। फारसी के इन विद्वानों की उपस्थिति के साथ-साथ शायरो को दिये जाने वाले पुरस्कार आदि का भारत मे फारसी के विकास पर अच्छा प्रभाव पड रहा था। यहाँ के लोगो का ध्यान फारसी जबान, साहित्य, रीति-नीति, सस्कृति और फारसीवासियों की ओर पूर्णत- आकृष्ट हो रहा था। पूर्व मे फारसी सस्कृति का एकमात्र केन्द्र गजनवी दरबार ही था। फारस मे पैदा होने वाले शायर गजनी और लाहौर की ओर आकृष्ट होते थे जो फारसी शासन के फारसी और भारतीय केन्द्र थे। इसका अर्थ यह हुआ कि गजनी और लाहौर के बीच मे सारे शहर फारसी सस्कृति के प्रभाव मे थे। फारस के बडे से बडे प्रसिद्ध विद्वानो और शायरो ने पजाब पार किया और महमूद तथा सईद सालार मसूर गाजी के झण्डे के नीचे अवध तक पहुँच गये और ये लोग जहाँ गए वहाँ की भाषा और सभ्यता पर इन्होने अपना व्यापक प्रभाव डाला। महमूद के सभा कवियो मे अन्सूरी अस्जदी, असादी, फार्सी, फिरदौसी, मीनूशहरी और गजाइरी सबसे प्रमुख थे। ये शायर भारतीय वातावरण से भी अच्छी तरह प्रभावित हुए। इनके कसीदे ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमे युद्ध के दृश्यो, महमूद तथा उसके उत्तराधिकारियो के आक्रमणो एव युद्ध यात्राओ का वृत्तान्त अत्यन्त सजीवता के साथ वर्णित हुआ है। गजनवी शासनकाल मे लगभग समूचा पजाब ही फारस के साम्राज्य का अग हो गया था। इसी कारण महमूद के जीवन-काल मे ही पहला पर्शियन दरबार लाहौर मे लगा। पर्शिया के नवाबो या सामन्तो के अतिरिक्त नागरिक और सैनिक पदाधिकारी, सिपाही तथा गजनी और खुरासान के कितने ही विद्वान नागरिक इस भारतीय राजधानी (लाहौर) के आस-पास आकर बस गए। हिन्दुस्तान की जनता अनेक स्फुट फारसी प्रयोगो से परिचित हो गई थी। यह परिचय सुबुक्तगीन के समय से ही हो चला था किन्तु महमूद ने इतने लाव लश्कर और फारसवासियो के साथ आकर अपना साम्राज्य यहाँ जमा लिया तब फारसी ज्ञान-विज्ञान को अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला जिसके परिणामस्वरूप पजाब और उत्तरप्रदेश के इलाको के लोग फारसी भाषा और फारसवासियो के जीवन के तौर-तरीको से पूर्णत अवगत हो गए। महमूद की मृत्यु के बाद तो गजनी की अपेक्षा लाहौर ही फारसी शासन का केन्द्र हो गया। स्वय महमूद प्रशासनिक आवश्यकताओ के कारण वर्ष का अधिकाश भाग यहीं व्यतीत करता था। यह प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि गजनी दरबार की काव्याभिरुचि खुरसान या अन्यत्र की फारसी काव्याभिरुचि से किसी भी प्रकार कम न थी। कदाचित इसी कारण हिजरी सन् ४२६ मे गजनवी बादशाहो ने लाहौर को ही अपने साम्राज्य का केन्द्र घोषित किया। इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं कि भारत के फारसी शायर अपने फारस के सहयोगियों के ही समान सुन्दर रचनाएँ किया करते थे। इस सम्बन्ध मे अबू अब्दुल्ला अलकती और हमीदुद्दीन मसूद शालेकोब का नाम लिया जा सकता है जो लाहौर मे रहते थे। इसी समय फारसी के एक प्रकाण्ड विद्वान् अबू नस्र फारसी भी आकर लाहौर मे बस गए। उन्होने एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जो शताब्दियो तक पूर्व मे फारसी और अरबी सस्कृतियो का केन्द्र रहा। पर्याप्त राजकीय सरक्षण और आर्थिक

सहायता प्राप्त कर यह विश्वविद्यालय खूब समृद्ध हुआ जिसमें हिन्दुस्तान के तमाम भागों से विद्यार्थी आते थे तथा काशघर, बुखारा, समरकन्द, खुरासान, ग़जनी और हिरात तक से छात्र ज्ञानार्जन के लिए आया करते थे। इस विश्वविद्यालय के कारण भी उत्तर भारत में फारसी के प्रचार और प्रसार में विशेष सहायता मिली। इस विश्वविद्यालय से अधिकतर तो मुसलमानों ने ही लाभ उठाया किन्तु उनके बाद हिन्दुओं का ही नम्बर रहा। फारसी की प्राथमिक शालाएँ तो हिजरी की छठी शताब्दी में लाहौर और मुलतान के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सड़क और बाजार में खुल गई थीं। परिणामस्वरूप हर जाति और धर्म के लोग फारसी सीख रहे थे। पंजाब के हिन्दू सरदारों या रईस पहले व्यक्ति थे जिन्हें गजनवी शाहों का राज्याश्रय मिला तथा जिन्हें राज्य के महत्त्वपूर्ण नागरिक एवं सैनिक ओहदे मिले। इन हिन्दुओं ने फारसी भाषा ही नहीं सीखी बल्कि फारसी काव्य और साहित्य के प्रति अभिरुचि भी जागृत की। इसका एक कारण और भी था कि कितने ही सुसंस्कृत परशियन परिवार बराबर पंजाब के नगरों में आ-आकर बसते रहे। ग़जनीवंशी का शासन लगभग २०० वर्षों तक चला (३८७ हिजरी से ५८२ तक)। अबुल फरज रूनी, मसूद सद सलमान ऐसे महान् शायर सुलतान मसूद और उसके पुत्र इब्राहीम के राज्यकाल में पैदा हुए। इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में कितने ही कसीदे लिखे हैं। महमूद गजनवी की प्रशस्ति में भी कितने ही कसीदे लिखे गए यहाँ तक कि जब कभी वह युद्ध करता या कोई किला जीतता या कोई मुसीबत पार करता शायर उसकी वीरता और उत्साह को काव्यबद्ध कर दिया करते थे। वीरों को अपनी वीरता के वर्णन सुनकर और भी उत्साह होता था। दूर-दूर के शायर भी ऐसे प्रसंगों को लेकर महमूद की वीरता का वर्णन करते और उसकी तुलना जमशेद, कैखुसरो और अनुशीरवां ऐसे फारस के प्राचीन सम्राटों से किया करते थे, अनेक शायरों ने उसे सिकन्दर से भी बढ़कर कहा। इस प्रकार सुलतान के कृपापात्र बनने के उद्देश्य से और अपने को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से शायरों ने एक से एक बढ़कर रचनाएँ की। कसीदों के अतिरिक्त महाकाव्य या मसनवियां भी लिखी गई तथा भावों के नये नये क्षेत्र सामने लाये गये।

महमूद ग़ज़नवी ने अपने राज्य में एक पत्राचार विभाग कायम किया था जिसमें फारसी के योग्य व्यक्तियों को दबीर के रूप में रक्खा गया था। यह विभाग भारत में और बाहर भी फारसी साम्राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा का कारण था। इस विभाग का काम फारसी भाषा में एक ओर तो विविध विभागाध्यक्षों को प्रशासकीय नीति सम्बन्धी आदेश जारी करना था और दूसरी ओर विदेशों से पत्राचार करना था। हिन्दुस्तान में फारसी जबान के प्रति रुचि जाग्रत करने में यह विभाग भी कम सहायक न सिद्ध हुआ। फारसी गद्य के अच्छे लेखक और फारसी काव्य में रुचि रखने वाले लोग ही प्रायः इस विभाग में नियुक्ति पाते थे। फलस्वरूप जनता में फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने की होड़ सी लग गई। हर एक योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति इस विभाग में नियुक्ति का इच्छुक होने लगा। महमूद की साहित्याभिरुचि इतिहास-प्रसिद्ध बात है। शाही अजायबघर और अकादमी जो उसने ग़जनी में स्थापित की थी वे इस युग का इतिहास सामने लाती हैं और वे महमूद के विद्याप्रेम के अक्षय प्रमाण हैं। उसने फारसी में भारत की राष्ट्रीय

भाषा होने की योग्यता पैदा की, फारसी के विकास और प्रसार मे यह उसका सबसे बडा योगदान था।

महमूद गजनवी की साहित्यिक अभिरुचि उसके उत्तराधिकारियो मे भी पाई जाती है। इसका प्रथम प्रमाण तो वह शोकगीत ही है जो उसके पुत्र सुलतान मुहम्मद ने अपने पिता की मृत्यु पर लिखी थी। मुहम्मद सुलतान के उत्तराधिकारियो मे सुलतान जहीरुद्दीन अब्राहीम बिन मसूद का नाम आता है क्योंकि उसके सभा कवियो मे अबुल फरज रूनी नाम का प्रसिद्ध कवि हो गया है जो समसामयिक फारस साम्राज्य मे अपने युग का शीर्षस्थ कवि माना जाता था। खुरासान मे उसकी बराबरी का दूसरा कवि न था। अबुलफरज रूनी का जन्म पजाब मे ही लाहौर के आस-पास हुआ था, उसने अपनी प्रतिभा से क्रमागत फारसी साहित्य को एक नया मोड दिया था। उसकी कल्पना शक्ति और शैली की धाक फारस और भारत के विद्वानो ने मान ली है। बडे से बडे फारसी शायरो ने इस भारतीय फारसी शायर की रचनाओ को आदर्श ग्रन्थ के रूप मे स्वीकार किया है। भारत के लिये ये गर्व की बात है कि लाहौर ने एक ऐसे शायर को जन्म दिया जिसका स्वय अनवरी अनुकरण करता था किन्तु इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं जब हम विचार करते है कि किस प्रकार पजाब से फारस तक का समूचा भू-भाग एक ही सम्पूर्ण क्षेत्र था जहाँ महमूद के अभ्युदय काल मे एकमात्र फारसी सस्कृति का ही साम्राज्य था। वास्तव मे गजनवी शासन काल मे गजनी और लाहौर के बीच के सारे भौगोलिक भेदभाव समाप्त हो गये थे। यह सास्कृतिक एकता गजनवी शासन के बाद समाप्त हो गई हो ऐसी बात नहीं वरन् वह भारत मे मुग़लो के प्रमुख काल तक अक्षुण्ण रही। इस समूचे युग मे फारसी कविता और ज्ञान का केन्द्र तीन बार ईरान से हटकर भारत आया—एक बार गजनवी शासन मे, दूसरी बार खिलजी शासनकाल मे और तीसरी बार मुगल काल मे।

फारस से सुसस्कृत फारसी परिवारो का बडी सख्याओं मे जो भारत आगमन हुआ और दीर्घकाल तक फारसी सभ्यता और सस्कृति जो भारत के प्रातो मे विशेषत पजाब मे स्थिर हो गई उसका भाषा और शिक्षा के क्षेत्र मे गहरा और व्यापक प्रभाव पडा। यहाँ के लोगों की साहित्यिक अभिरुचि सपूर्णत फारसी प्रभाव से आक्रान्त हो चली, फलस्वरूप पजाब मे फारसी के शायरो मे ऐसी परम्परा-सी चल पडी कि जिनकी प्रशसा स्वय फारस देश के शायरो को भी करनी पडी तथा पजाब के फारसी शायर सभी दृष्टियो से फारस के शायरो के समान ही सुन्दर रचनाएँ करने लगे।

गोरी बादशाहो का युग

गोरी बादशाहो के समय मे भी अनेक कवि और गद्य-लेखक हुए। हिन्दुस्तान मे गोरीवश का पहला बादशाह शिहाबुद्दीन गोरी था। उसने अपने भाई गोर के शासक गियासुद्दीन की सहायता से अन्तिम गजनवी बादशाह खुसरो मलिक को ५८० हिजरी मे पराधीन कर ५८२ हिजरी मे लाहौर पर कब्जा कर लिया। शिहाबुद्दीन ने सारे पजाब को अपने अधिकार मे कर लिया और दिल्ली मे अपना दरबार लगाया। उसके दरबार के दो कवि अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये हैं—रुकनुद्दीन हमजा जो कि अपने स्वामी के राज्य के प्रधान सचिव भी थे। शिहाबुद्दीन ने अजमेर के राजा पिथौरा को जो पत्र भेजा था वह इन्हीं हमजा

महोदय का लिखा हुआ था। दूसरे थे शिहाबुद्दीन एलियास मुहम्मद रशीद, इनका उपनाम शिहाब था। शिहाबुद्दीन गोरी के दरबार के दो शायर और थे मरगाह के नासुरी और बलख के काजी हमीद। शिहाबुद्दीन के समय में खुरासान से फारस की सेना के साथ अनेक फारसी के विद्वान भी आये। सेना और विद्वानों के इस भारत आगमन से महमूद के समय में स्थापित सांस्कृतिक सम्पर्क की कड़ी जुड़ती चली गई। शिहाबुद्दीन के दरबार के अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वानों में इमाम फखरुद्दीन राजी की प्रतिष्ठा असाधारण थी। राजा और प्रजा सभी के बीच उसका बड़ा सम्मान था। युद्ध के समय भी राजी का शिविर बादशाह के शिविर के समीप ही लगता था। राजी का सप्ताह में एक दिन प्रवचन हुआ करता था जिसे सभी सैनिक, राजा और उसके सभासद तथा आम जनता सभी सुनते थे। राजी का प्रवचन गजनी और भारत दोनों जगह होता था। शिहाबुद्दीन के साथ इमाम राजी कभी कभी महीनों और वर्षों तक भारत में रहता था। उसके फारसी में होने वाले प्रवचन सैकड़ों और हजारों की संख्या में भारत के साधारण जन सुना करते थे। इनसे भी सर्वसाधारण में फारसी के ज्ञान, प्रचार और लोक में साहित्यिक जागृति में कम सहायता न मिली। कवियों और कल्पनशील प्राणियों को फारसी में लिखने की प्रेरणा भी मिली। कभी-कभी जगत की नश्वरता और पारस्परिक सद्भाव की आवश्यकता पर उसके प्रवचन इतने मार्मिक होते थे कि स्वयं शाह मुहम्मदगोरी भी द्रवीभूत हो जाता था।

इस युग की एक अन्य महान घटना है फारस से कुछ विद्वान सूफियों का भारत आगमन। इन लोगों ने भारत में आकर अपने आध्यात्मिक उपदेश दिये तथा सर्वसाधारण में अपनी रहस्यवादी भावनाओं का प्रचार किया। यह धर्ममत प्रचार मुख्यतः फारसी और गौणतः स्थानीय प्राकृत में किया जाता था। इस समय भारत में सर्वत्र विशेषतः पंजाब और राजपूताने में मूर्तिपूजा का व्यापक प्रचार था। सम्पन्न मंदिरों में *मूर्तियों की सोन्माद पूजा* होती थी। मूर्तियों की अखंड और अपराजेय ईश्वरीय शक्ति में लोग विश्वास रखने लगे थे। उन्होंने सच्चे ब्रह्म को जानने और पहचानने की चेष्टा न की। धर्म और समाज की जब ऐसी दशा थी उस समय हिजरी सन ५५६ के आरम्भ में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती फारस से हिन्दोस्तान आये। वे राय पिथौरा की राजधानी अजमेर में बस गये और सूफीमत की शिक्षा का यहीं पर एक पीठ भी उन्होंने खोल दिया जिसका प्रभाव राजपूताना एवं उसके बाहर भी सभी धर्म और जाति के लोगों पर पड़ा। संभव है और भी सूफी पहले आये हों किन्तु जहाँ तक हम जानते हैं उत्तर भारत में सूफी मत की ज्योति सर्व प्रथम ख्वाजा मुईनुद्दीन ने ही जलाई थी। ये भारत में अपने कितने ही अनुयायियों को लेकर लाहौर आये जहाँ वे कुछ दिन रहकर मुलतान चले गये। अपने प्रधान साथी ख्वाजा कुतुबुद्दीन को उन्होंने दिल्ली जाकर अपने मत का प्रचार करने को कहा। मुलतान पहुँचकर ख्वाजा मुईनुद्दीन ने ५ वर्ष तक संस्कृत और स्थानीय प्राकृत का अध्ययन किया जिससे वे सूफी मत को सफलतापूर्वक सर्वसाधारण तक पहुँचा सकें। इसके बाद वे दिल्ली आये तथा अपने खलीफा को नये आदेश देकर वे अजमेर पहुँचे। यह अछूती भूमि थी जहाँ किसी ने पहले इस प्रकार के धर्म का प्रचार न किया था। उन्हें असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु वे हारे नहीं। चारों तरफ हिन्दू राजे थे जो ऐसे किसी धर्ममत के प्रचार के विरुद्ध थे किन्तु अपनी

कृपालुता और मतसुलभ सात्विक प्रकृति के कारण ख्वाजा दिन-दिन जनता मे अधिकाधिक प्रिय और पूज्य हो रहे थे। जो भी अजमेर आता उनका दर्शन अवश्य करता और उनके पवित्र जीवन से प्रभावित होता। लोग उनकी बातें इज्जत से सुनते और मानते। उनके पास से उदास और निराश होकर शायद ही कोई लौटा हो इसीलिए वे 'गरीब नवाज' कहे जाते थे। उनके जीवन का आदर्श वाक्य यही था कि दरवेश वह है जो पास आने वाले को निराश नही करता। मुहम्मद गोरी के भारतीय साम्राज्य के उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीन ने एक विद्वान सूफी सत सईद हसन मशहदी को अजमेर मे अपना आमिल (एजेन्ट) नियुक्त किया। वह ख्वाजा का बड़ा प्रशसक था। उसकी सहायता से ख्वाजा को अपने मत का सम्पूर्ण राजपूताने एव मध्यवर्ती भारत मे प्रचार करने का अच्छा सुयोग मिला। देश के दूर-दूर से लोग आने लगे और उनके धर्मानुयायी बनने लगे। ६७ वर्ष की आयु मे ६३६३ हिजरी मे ख्वाजा की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु तिथि पर प्रतिवर्ष अजमेर मे उर्स होती है। भारतीय जनता मे उसे अपने सत स्वभाव, त्याग और मानव सेवा के कारण अत्यधिक ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त हुई। उसकी मृत्यु के बाद भी लाखो लोग अपनी मुरादें लेकर उसके मजार पर प्रति वर्ष आते हैं और उनकी इच्छाएँ पूरी होती हैं। लोगो को इच्छानुसार पुत्र लाभ, धन लाभ, स्वास्थ्य लाभ आदि होता है। सतानोपलब्धि पर महान् सम्राट अकबर भी आगरे से पैदल अजमेर गया था और ख्वाजा की समाधि पर अपनी श्रद्धा के फूल चढाये थे। ख्वाजा के पास अच्छी कवित्व शक्ति थी जो भारत के नवीन वातावरण मे स्फुरित हुई। उसने गजनवी काल के शायरो की तरह पुरस्कार प्राप्ति के लिए प्रशस्तिमूलक कसीदे या महाकाव्य नही लिखे। उसकी गजलो और कसीदो मे ईश्वरीय प्रेम भरा हुआ है। उसकी रचनाओ का स्वर सम-सामयिक फारसी शायरी से भिन्न है। उसने ७००० से अधिक बेत लिखे लेकिन दुर्भाग्य से बहुत कम रचनाएँ अब उपलब्ध है। उनसे पता चलता है कि भारत मे सूफी शायरी का विकास किस प्रकार हुआ। ख्वाजा मुईनुद्दीन अपने युग का सबसे बडा गीतकार कवि था, उसका काव्य आध्यात्मिक भावो के सौन्दर्य और आवेगपूर्ण भावाभिव्यक्ति मे परिपूर्ण है। उसके छन्दो मे एक पवित्र गम्भीरता और प्रसन्नता है। उसमे ईश्वरीय प्रेम की झलक है। सूफी वर्ग के गजल लिखने वाले फारसी कवियों— सादी, खुसरो, हसन, हाफिज, जामी आदि मे उसकी कविता हाफिज से मिलती-जुलती है किन्तु ख्वाजा मुईनुद्दीन की कविता मे शराब, सराय, साकी, प्रेमपात्र आदि प्रथम दृष्टि मे ही दिव्य या दैवी प्रतीत होते हैं। इन शब्दो का वहाँ भौतिक अर्थ ही नही है। ख्वाजा की रचनाएँ महान् आध्यात्मिक सत्य, ईश्वरीय प्रेम और दिव्यता की बोधक है। ख्वाजा आदि से अन्त तक सूफी रहे और उनका जीवन एकदम पवित्र था। उनके आध्यात्मिक रूपक एकदम स्पष्ट हैं। वे सासारिक प्रेम के गीत नही गाते जिनमे पीडा है, प्रताडना है, कामुकता है बरन् वे पवित्र अमिश्रित ईश्वरीय प्रेम की अभि-व्यक्ति करते हैं जिसे पढकर पाठक ईश्वरीय प्रेम मे तन्मय हो जाता है। वे किसी शाह के समक्ष पुरस्कार के लिए नही झुके, उन्होंने कोई प्रशस्तिमूलक रचना नही की। वे अत्यन्त गरिमापूर्ण और गौरवशाली काव्य शैली के स्रष्टा थे। शिहाबुद्दीन गोरी फारसी शायरी और पाडित्य का बडा भारी आश्रयदाता था। ख्वाजा ने उसकी प्रशस्ति मे भी कोई काव्य नही लिखा इससे ख्वाजा की महत्ता जानी जा सकती है।

गुलामवंश का अभ्युदय

शिहाबुद्दीन गोरी के जीवनकाल में ही गुलामवंश काफी सशक्त हो गया था। जब सुलतान शिहाबुद्दीन गोरी ५८६ हिजरी में हटकर गजनी चला गया था। उसने अपने एक प्रिय गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को अपने भारतीय साम्राज्य का अधिपति और सिपहसालार बना दिया था। कुतुबुद्दीन ने अपने साम्राज्य को न केवल सुदृढ़ ही रक्खा वरन् विस्तृत भी किया। दिल्ली और मेरठ भी उसके हाथ में आ गये थे। ६०० हिजरी में शिहाबुद्दीन एक बार फिर सत्कर विद्रोह को शांत करने के लिए लाहौर आया। उसके साथ फारसी के विद्वान् बहुत बड़ी संख्या में भारत आये। ये लोग तूस, नीशापुर, गोर और गजनी से आए थे जो फारस के विद्वानों और शायरों की नगरी थी। कुछ लोग धार्मिक आवेश के कारण आए जब कि और लोग सुलतान के कृपापात्र होने, उसके साथ का लाभ उठाने और युद्ध में पाये हुए माल से मालामाल होकर घर लौटने या सुविधा होने पर भारत में ही शांति-पूर्वक बस जाने की गरज से आए थे। इस बात से निश्चित ही फारसी भाषा और काव्या-भिरुचि का हिन्दुस्तान की जनता में वही स्तर बना रहा जो कि महमूद गज़नवी के समय में था। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसकी सभा के सरदारों और सामन्तों ने एकमत से कुतुबुद्दीन ऐबक को उत्तराधिकारी स्वीकार किया और ६०२ हिजरी में उसे लाहौर के सिंहासन पर आसीन कर दिया। उन्होंने अपने स्वामी के समय की सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवित रक्खा। वे फारसी विद्वानों और शायरों को उदारतापूर्वक पुरस्कार देते थे और कभी-कभी एक ही छन्द पर एक लाख रुपये तक का पुरस्कार दे डालते थे। उसके उत्तरा-धिकारियों में साहित्यिक संरक्षण की दृष्टि से विशेषत फारसी शायरी को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से सुलतान शमसुद्दीन इल्तुतमिश जिन्हें लोग प्राय अल्तमश कहा करते थे, सुल-तान बहराम शाह, सुलतान अलाउद्दीन, सुलतान मुईनुद्दीन कैकुबाद और ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ बलबनों के नाम उल्लेखनीय है। यह दिखाया हो जा चुका है कि मुसलमान बादशाहों द्वारा फारसी काव्य और साहित्य को जो संरक्षण और प्रोत्साहन प्रदान किया गया उसके कारण फारस, बुखारा और कैस्पियन सागर के पार के प्रदेशों से फारसी के विद्वान् और शायर हिन्दुस्तान आते थे। साहित्यिक समृद्धि की वही परिस्थिति जो गज़नवी और गौरी शासन-काल में बनी हुई थी गुलाम शासनकाल में भी अक्षुण्ण रही। अल्तमश के शासन-काल में जो विद्वान और शायर फारस से हिन्दुस्तान आये उन्हें भारत में बेहतर राज्य-संरक्षण, सम्मान और साहित्यिक अभिरुचि का आकर्षण था। ऐसे लोगों में खुरासान के नासिरी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वे सुलतान अल्तमश की प्रशस्ति में एक बड़ा शानदार क़सीदा लिखकर लाये थे उसे सुनकर सुलतान के साथ-साथ सारी सभा मुग्ध हो गई। क़सीदे में ५३ पंक्तियां थी फलस्वरूप सुलतान ने ५३ हज़ार सिक्के उन्हें इनाम में दिये। एक और प्रसिद्ध शायर अमीर रूहानी समरकंदी बुखारा से ६२२ हिजरी में भारतवर्ष आये। उन्होंने अपनी महा-काव्यात्मक रचनाओं और क़सीदों में सुलतान अल्तमश की जो प्रशंसा की है उसी के कारण उनका शायर के रूप में महत्व स्वीकार किया गया। अल्तमश द्वारा बिहार प्रान्त की कथा रतनभूर और माडू के किलों की विजय (जो क्रमश हिजरी सन् ६२२, ६२३ और ६२४ में हुई) का जो वर्णन उन्होंने किया उसके लिए सुलतान ने उन्हें प्रचुर मात्रा में पुरस्कार दिया।

उनकी ये रचनाएँ ऐतिहासिक एव काव्यात्मक दोनो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। सुलतान अल्तमश के समय के तीसरे प्रसिद्ध शायर दिल्ली निवासी ताजुद्दीन दबीर थे। उसने अल्तमश की विजयों के स्मारक के रूप मे कई कविताएँ लिखी। ६३० हिजरी मे जब सुल्तान अल्तमश ने ग्वालियर के किले पर घेरा डाल दिया था तब उस घटना का वर्णन दबीर ने लिखकर सुनाया था। औरो की अपेक्षा दबीर की रुबाई पर सुलतान ने चादी के सिक्को से भरे सात थैलो का पुरस्कार दबीर को दिया था और उसकी रुबाई को लाल सगमरमर पर खुदवाकर किले के प्रधान द्वार पर लगवा दिया था। ताजुद्दीन की प्रभावशाली और कान्तिपूर्ण रचनाओ की, जो उसने अल्तमश के उत्तराधिकारी फीरुज शाह की प्रशस्ति मे लिखी हैं, चर्चा इतिहासकारो ने भी की है। अल्तमश के बाद उसका पुत्र रुकनुद्दीन फीरुज शाह की उपाधि से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल का सबसे प्रसिद्ध शायर बदायूँ का शिहाबुद्दीन मेहमरा था जिसके कसीदे फारखी, खाकानी, अनवरी आदि पर्शिया के अग्रणी कवियो के कसीदो से टक्कर लेते थे। मेहमरा के कसीदे फारसी शायरी की कला मे भारतीय प्रतिभा की उपलब्धियों के ज्वलत प्रमाण हैं। नैतिक और आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण कितने ही कसीदे भाव के सौन्दर्य और उच्चता मे, अभिव्यक्ति की आवेगपूर्णता एवं गरिमा मे बेजोड हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उरफी ने भारत आने पर अपने कसीदो मे मेहमरा की शैली एव विचारावली का अनुसरण किया था। मेहमरा चरित्रवान एव भौतिक उपलब्धियो की ओर अनाकृष्ट रहने वाला प्राणी था फलत वह बादशाहो के सामने पैसे के लिए झुकता नही था। ईश्वर और पैगम्बर की प्रशस्ति मे मेहरा के कसीदे देखने योग्य हैं। फ़ीरूजशाह के बाद उसकी बहन रजिया सुलताना ६३४ हिजरी मे दिल्ली के तख्त पर बैठी। अपने अल्प शासनकाल मे नागरिक झगडो के कारण साहित्य को प्रेरणा और विकास देने का उसे अवसर न मिला। फिर भी विद्वान् और कवि उसका दरबार घेरे ही रहते थे। यह दरबारदारी ही फारसी सस्कृति के प्रचार और विकास मे निश्चित योग देने वाला कारण थी। अब फारसी सस्कृति भारत की आत्मा मे ही समा रही थी। रजिया सुलताना के बाद एक-एक करके तीन शासक हुए, उनका जल्दी ही पतन हो गया। अन्त मे ६४४ हिजरी मे अल्तमश का पुत्र नासिरुद्दीन महमूद शासन का उत्तराधिकारी बना। उसके राज्यकाल में फारसी शायरी को अच्छा सरक्षण मिला और ऐतिहासिक साहित्य की विशेष प्रगति हुई। उसके राज्यारोहण पर शायरों ने बधाई के गीत गाए और खुतबा पढे गये। प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'तबाकात नासीरी' जिसमे प्रभूत ऐतिहासिक सामग्री भरी हुई है इसी के समय मे लिखी गई जिसके लेखक हिन्दुस्तान के महान् काजी अबू उमर बिन मुहम्मद अल मिनहाजसिराज जोजजानी थे। समसामयिक स्थिति पर भी इस ग्रन्थ से बहुत प्रकाश पडता है। इसी समय के महान् प्रतिभाशाली शायर अमीर फकरुद्दीन "अमीद नौनकी" जिन्हे "मलिक-उल-कलाम" की उपाधि प्राप्त थी भी हुए। ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कसीदा लिखने वालो मे थे। इनके कसीदो मे अनवरी और खाकानी ऐसे प्रसिद्ध फारसी कसीदाकारो की सी शान और गरिमा मिलती है। अपने अन्तिम दिनो मे वे कसीदे लिखना छोडकर सूफी हो गये थे। उन्होंने ईश्वर और पैगम्बर की प्रशसा मे गीत गाये हैं और सतोष एव ईश्वरीय प्रेम पर कविता की हैं।

गोरी और गुलाम शासनकाल मे लिखी गई फारसी शायरी मे ऐतिहासिक सामग्री

विशेष मिलेगी। अधिकांश आश्रित शायर अपने शाहो या सामन्तो या सरदारो के साथ ही साथ रहते थे, उनकी यात्राओ और युद्धों में साथ जाते थे। वे युद्धो मे भाग भी लेते थे और युद्ध सम्बन्धी वर्णन तथा अपने पक्षवालों की वीरता का वर्णन कर करके लोगो का मनोरजन करते थे। इसके अतिरिक्त फारसी शायर ऐतिहासिक तिथि-परक रुबाइया (Chronogrammatic quatrains) भी लिखते थे और इसमे आनन्द का अनुभव करते थे। ऐसी रुबाइयो मे घटनाओ की तिथिया दी जाती थी। ऐसी रचनाओं का भी लोगो ने स्वागत किया क्योंकि सक्षेप मे सच-सच बात कहने में जो अपील होती है वह इनमे थी। भारतीय राजदरबारो मे फारसी शायरी का यह नया और विशेष तर्ज देखने में आया जो कि फारस में नहीं था। लाहौर और दिल्ली में रहने वाले इस युग के बहुत से शायर सूफी मत से प्रभावित थे और सचमुच बडे ऊँचे स्तर की कविता लिख रहे थे। चमत्कार और चातुर्य प्रधान तथा शिल्प-सौन्दर्य मे विन्यस्त तथा शान-प्रदर्शनात्मक कसीदे भी गुलामवशी शासनकाल मे ही लिखे जाने लगे।

खिलजी, तुग़लक और गुलामवंश के अन्तिम तीन शासकों : सुल्तान मुईजुद्दीन, कैकुबाद और बलबनों के शासनकाल मे फारसी साहित्य

यह युग भारत मे फारसी साहित्य के इतिहास मे एक स्वर्णिम पृष्ठ जोड देता है। इस युग मे अनेक शायर, गद्य लेखक और इतिहासकार पैदा हुए जिनका महत्त्व तत्कालीन एव उत्तरवर्ती फारस (तथा फारसी विद्वानों) ने स्वीकार किया है। इनमे से निम्नलिखित ५ विभूतियाँ सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं—(१) अमीर खुसरो (२) ख्वाजाहसन संजारी (३) ज़ियाउद्दीन बरनी (४) बद्रेचाच और (५) काज़ी जहीर देहलवी। हिन्दुस्तान के फारसी शायरों मे खुसरो का नाम प्रधान है। उनमे फारसी की मुहावरेदानी का स्वाद देखने योग्य है जिसके कारण भारत की फारसी और भारतीय फारसी मे कोई भेद नही रह गया है। फारस के कठोरतम आलोचक को भी शायर के रूप मे खुसरो की महत्ता स्वीकार करनी पडी है। वे ही भारत के ऐसे सौभाग्यशाली फारसी शायर हैं जिनके खिलाफ कोई मुँह नहीं खोल सका है। उन्होंने ग़ज़ल और मसनवी शैली को चुना और उनकी रचना शैली या रचनाशिल्प में पर्याप्त सुधार भी किया। उनके ग़ज़लो मे अनुस्यूत करुणा (Pathos) और मसनवी का प्रवाह और जहाँ तहाँ मधुर और स्वाभाविक भाषा-शैली मे एक विशेष आकर्षण है जो उन्हें अन्य शायरो से पृथक करता है। उनके ग़ज़लो का माधुर्य और उनमे प्राप्य हृदय की हृदय से बातचीत का प्रभाव रुदाकी और सादी में ही देखा जा सकता है दूसरो मे नहीं। इसके अतिरिक्त खुसरो ने अपने छन्दो मे विशेष सगीतात्मकता भर दी है। खुसरो स्वय भी सगीतज्ञ थे और भारतीय सितार के आविष्कर्ता भी जिसके कारण फारसी ग़ज़लों का मिठास द्विगुणित रूप मे बढ गया है और वे सूफियो मे विशेष लोकप्रिय भी हुईं। खुसरो का साहित्य ४-५ लाख पक्तियों का कहा जाता है जिसमे उनकी गद्य रचनाएँ भी शामिल हैं। उनके लिखे ९२ मौलिक ग्रन्थ हैं जिनमे से कुछ ग्रन्थ तो ऐसे हैं कि मुगलकालीन भारत में जिनसे बढकर दूसरे ग्रन्थ लिखे ही नहीं जा सके। उनके खमसे मे ५ मसनवियाँ हैं जो सम्भवत निज़ामी के खमसे के जोड पर लिखी गई हैं। इन्हें खुसरो ने सुलतान अलाउद्दीन खिलजी को भेंट किया था। उसने पुरस्कार रूप मे इन्हें १००० टका प्रतिमास की आजीवन वृत्ति प्रदान की।

खुसरो की काव्य-प्रतिभा पर भारतीय एवं फारसी विद्वानो, शायरो और इतिहासकारो ने एक मत से एक ही राय दी है। उनके आध्यात्मिक गुरु दिल्ली के शेख निजामुद्दीन औलिया थे। सुलतान गयासुद्दीन बलबन के बेटे मुल्तान के शासक मुहम्मद सुलतान शहीद ने अमीर खुसरो को 'अमीर-उश शुअरा' की उपाधि से विभूषित किया था। अमीर खुसरो खानेशहीद, मलिक अमीरअली 'हातिमखान' अवध के आमिल (शासक) खानेजहाँ, मुलतान फिरजशाह और अलाउद्दीन खिलजी के आश्रय मे रहे और इन्होने इन सबकी प्रशस्ति मे कसीदे लिखे। अनेक आश्रयदाताओ को अपनी मसनवियाँ समर्पित की। इन्हे अमीर, अमीर-उश-शुअरा, तर्कुल्लाह, मलिक-उन-नुदमा, खातिम-उल-कलाम आदि उपाधियाँ मिली। कुछ लोग इन्हे तूतियेहिन्द और सुलतान-उश-शुअरा भी कहते थे। खुसरो जिसके दरबार मे रहे लोग उनकी नई गजलें सुनने के लिये बेकरार रहते थे फलस्वरूप उन्हे अमीरो, रईसो और अपने आश्रयदाता के तोष के लिए नित्य नई गजलें तैयार करनी पडती थी। ऐसी स्थिति कदाचित् ही किसी दूसरे फारसी शायर की रही हो। खुसरो की हिन्दी रचनाएँ भी परिमाण मे प्रचुर कही जाती है। इस जमाने के एक दूसरे महान् शायर थे ख्वाजा हसन सजारी देहलवी। ये अमीर खुसरो से उम्र में १ साल बडे थे। हसन गजल लिखने मे खुसरो मे बढकर थे। उसके गजलो की करुणा, आकर्षण शक्ति और प्रभाव खुसरो मे भी नही मिलती। इन्होने शेख निजामुद्दीन औलिया के कथना एव जीवन वृत्त पर गद्य लिखा तथा सुलतान मुहम्मद खानेशहीद की मृत्यु पर गद्य मे मर्सिया लिखा जो परम्परागत क्रम से भिन्न वस्तु थी। सम्भवत खुसरो के पद्यबद्ध मर्सिये की अद्वितीयता के कारण इन्होने ऐसा किया। इन्होने अपनी गद्यशैली को पद्य के समान मार्मिक बनाया। ये अपने जीवन के उत्तरकाल मे शेख निजामुद्दीन औलिया के शिष्य होने के बाद से सूफियो का-सा पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे थे। इसके पूर्व ये खूब शराब पिया करते थे और निर्बन्ध जीवन व्यतीत करते थे। बाद मे उन्होने दरबारो से अपना नाता तोड लिया था और शराब पीना छोडकर आत्मा की शुद्धि के लिए धार्मिक सत्सग किया करते थे।

गुलाम वश के शासनकाल मे विशेषकर सुलतान मुईजुद्दीन कैकुबाद और बलबनो के समय मे फारसी असाधारण रूप से लोकप्रिय हुई। फारसी के प्रति लोकरुचि बढ रही थी तथा उच्चतम से लेकर निम्नतम स्तर के लोग फारसी भाषा मे रुचि ले रहे थे। जनरुचि की यह स्थिति थी कि कव्वाल, पेशेवर गायक, सगीतज्ञ और नाचने वाली लडकियाँ सभी फारसी शायरी मे रुचि लेते थे और अपने समय के ही प्रसिद्ध शायरो सादी, खुसरो, ख्वाजा-हसन आदि के गजल उन्हे कण्ठस्थ थे जिसे वे हर घर और हर महफिल मे गाते और सुनाते थे। इनकी गजलें इनके जबान पर ऐसी चढी कि ये लोग मौका पडने पर खुद भी उसी तर्ज की गजले बना लिया करते थे। सक्षेप मे यह कि सारा वातावरण ही फारसीमय हो गया था।

मुगल शासनकाल

मुगल साम्राज्य का प्रारम्भिक काल हलचलो और अव्यवस्था का काल था। भारत आगमन के चार ही वर्ष बाद बाबर की मृत्यु हो गई। उसके बेटे हुमायूँ को चौतरफा दिक्कतो का सामना करना पडा। हुमायूँ की मृत्यु के बाद १४ वर्ष का अकबर गद्दी पर बैठा। मुगल

साम्राज्य का इस प्रकार वास्तविक आरम्भ १५५६ ई० में अकबर के सिंहासनारोहण से होता है। इस समय से भारत में सुख और शांति का एक लम्बा युग शुरू होता है जिसमें कला और साहित्य की अधिकाधिक समृद्धि होती है। अकबर पहला मुगल बादशाह था जिसका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ था और जिसका सारा जीवन हिन्दुस्तानियों के बीच बीता। वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि का था और इतिहास, साहित्य, संगीत और ललित कलाओं में अच्छी रुचि रखता था। इस रुचि का विकास सभा के शायरों और विद्वानों के बीच हुआ था। फारसी के विद्वान् उसे उच्चकोटि के ग्रन्थ पढ़-पढ़कर सुनाते जिन्हें वह बड़े चाव से सुनता और सुनते हुए न थमता। उसका दरबार फारसी ज्ञान और सहित्य का अच्छा केन्द्र हो गया था। दीवाने हाफिज और जलालुद्दीन रूमी की मसनवी के महत्त्वपूर्ण अंश उसे कंठस्थ थे जिन्हें वह आराम करते समय गुनगुनाया करता था। वह स्वयं भी फारसी में काव्य रचना किया करता था यद्यपि उसने विधिवत विद्याध्ययन नहीं किया था। वह समय-समय पर फारसी के प्रसिद्ध शायरों की रचनाएँ सुनाया करता था। अपने पिता के ही समान उसके पास आलोचक की अच्छी अन्तरदृष्टि थी फलस्वरूप वह अपने कवियों और साहित्यिकों को समय-समय पर कुछ सुन्दर सुझाव देता रहता था। 'भाषा' के प्रति अकबर विशेष रुचि रखता था। अकबर की हिन्दी में बातचीत और रचनाओं का उल्लेख तत्कालीन लेखकों ने किया है। हिन्दुओं से निकट सम्पर्क रखने के कारण उसकी हिन्दी के प्रति अभिरुचि स्वाभाविक थी। वह हिन्दी के गीतों और भाषणों को अथक भाव से सुना करता था। हिन्दी गीतों को सुनकर वह मुग्ध हो जाया करता था। लोक में हिन्दी फारसी मिश्रित भाषा चल रही थी। अबुलफजल ने कहा भी है कि हिन्दी और फारसी शायरी लिखने में अकबर की विशेष रुचि थी। उसकी हिन्दी फारसी-मिश्रित होती थी जिसे उर्दू कहा जा सकता है। उसने हिन्दी गायकों को बड़ा प्रोत्साहन दिया जिसके कारण फारसी में संस्कृत और हिन्दी की ताजगी आई। कितने ही संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थों का उसके जमाने में फारसी में अनुवाद हुआ उदाहरण के लिये —(१) रज्मनामा (महाभारत का अनुवाद) (२) अयारदानिश (३) लीलावती (४) रामायन (वाल्मीकि कृत) (५) सिंहासन बत्तीसी (हिन्दी) (६) अथर्ववेद (७) नलदमन (८) तारीखे कृशनजी (९) तारीखे कश्मीर (१०) भगवद्गीता (११) जोगवाशिष्ठ (१२) किशन जोशी (१३) हरिवंश (१४) महेश महानन्द आदि। इससे पता चलता है कि धार्मिक संत और मुसलमान किस प्रकार विविध प्रकार के संस्कृत हिन्दी ग्रन्थों का अनुवाद कर रहे थे और किस प्रकार हिन्दी जबान और साहित्य मुसलमानों की रुचि पर चढ़ रहे थे ठीक उसी प्रकार जैसे हिन्दी भाषा और साहित्य पर फारसी का रंग चढ़ रहा था और किस प्रकार अकबरी शासन में साहित्य की वास्तविक और व्यापक रुचि जाग्रत हो गई थी। अकबर के शासन काल में होने वाले विविध विषयों के विद्वानों की सूची बड़ी लम्बी है जिनमें कवि, इतिहास, लेखक, कैलीग्रेफिस्ट, दार्शनिक, धर्मतत्वज्ञ तथा साहित्यिक आदि आते हैं। इन लोगों में साथ ही साथ प्रशासनिक योग्यता भी मिलती है। इनके अतिरिक्त अनेक हकीम, चित्रकार, गायक और विविध प्रकार के कलाकार थे। इस युग के प्रथम श्रेणी के कवि थे फैजी, नाजीरी, उरफी, मलिक, कूमी, जुहुरी, गिजाली, सूरदास, तुलसीदास और अब्दुल रहीम खानखाना। द्वितीय श्रेणी के कवि थे हयाती गिलानी, हुज्नी इस्फहानी, मीर अब्दुल हाय मशहदी, सनाई मशहदी, निशानी, शकीबी इसफहानी, बैरमखाँ, माहवी, मायली

हीरावी, रफीए काशी, सैराफी कश्मीरी, गैरती शीराजी, करारी गिलानी, सजर काशी, बाबा तालिब इस्फहानी, कासिम अरसलान मशहदी और केसरदास। इस युग के प्रसिद्ध इतिहासकार थे—अबुलफजल, बदायुनी, फरिश्ता, निजामुद्दीन अहमद, नूरुलहक, अमीन अहमद राजी आदि।

फैजी अकबरी दरबार का श्रेष्ठतम शायर था और अपने समय का अरबी, फारसी और संस्कृत का सर्वोत्कृष्ट विद्वान् था। शैली के अधिकार, काव्य-कौशल और भावो की उच्चता तथा सुन्दरता की दृष्टि से खुसरो के बाद फैजी के मुकाबले का दूसरा शायर नहीं हुआ। फारसी दरबारो के शायरो ने भी उसकी महत्ता स्वीकार कर उसे फारसी भाषा के प्रथम श्रेणी के कवियो मे गिना है। वह असाधारण विद्वान् था। उसकी विद्वत्ता उसकी शायरी से बढकर थी। अकबर ने उसे मलिक-उश-शुअरा की उपाधि दी थी। उसने १०१ ग्रन्थ लिखे थे। उसने कई मसनवियाँ लिखी और वह जहाँगीर का भी शिक्षक रहा। उसकी गद्यशैली बडी शानदार कही जाती है। वह यूनानी दवाओं का भी बडा भारी हकीम था। उसके पास दर्शन, सगीत, गणित-ज्योतिष, गणित, कविता, हकीमी, इतिहास और धार्मिक साहित्य सम्बन्धी ४६०० बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ थी। फैजी की मसनवी और रुबाइयाँ, मर्सिये और गजल बडे मार्मिक हैं। उनमें एक गरिमा और गहराई है जो साधारणत गजल मे नहीं मिलती। उसकी रचनाएँ उसके पाण्डित्य के बोझ से बोझिल हैं। उसकी शैली सरलता और प्रेम भाव की सामान्य अभिव्यक्ति से ही तुष्ट न थी। फैजी असाधारण रूप से तीक्ष्ण-बुद्धि-सम्पन्न था, भारत और फारस मे उसके आशुकवित्व और प्रत्युत्पन्नमतित्व की धाक थी। धार्मिक मामलो मे उसकी राय ही अकबर को सबसे अधिक मान्य थी तथा अपने भाई अबुलफजल के समान फैजी का भी अकबर पर काफी प्रभाव था। नाजीरी हाफिज की शैली पर सूफी ढग की रचनाएँ किया करता था। खानखाना की काव्यगुणज्ञता और उदार सरक्षण से आकृष्ट हो नाजीरी कशान (फारस) से भारत आए थे और खानखाना के दरबार मे रहने लगे। भारत मे अनीसी, शकीबी, और उरफी तथा दक्न के बीजापुर दरबार के मलिक कूमी और जहूरी आदि समसामयिको से उसकी प्रतिद्वन्द्विता थी। अकबर के समय का वह प्रधान गजल लिखने वाला शायर था। फारस के साईब और भारत के अर्वाचीन कालीन गालिब ऐसे शायरो ने नाजीरी की गीत रचना मे धाक स्वीकार की है। अन्तिम काल मे उसकी रचना सूफी मत से अत्यन्त प्रभावित रही। बाद मे वह जहाँगीर के दरबार मे गया जहाँ उसका विशेष सम्मान हुआ। शैली की मिठास और शब्दो के नाद सौन्दर्य मे वह विलक्षण था। उसके मर्सियो की करुणा अप्रतिम है। विचार, भावना और मनोगत प्रवृत्तियो की दृष्टि से वह दूसरा हाफिज है। दिव्य या ईश्वरीय प्रेम की लगभग वही झलक जो हाफिज मे है नाजीरी मे भी देखी जा सकती है। वे एक बडी सीमा तक हाफिज का आदर्श लेकर चले हैं। उरफी शीराज के रहने वाले थे। वहीं उन्होंने कवि के रूप मे अपना जीवन आरम्भ किया। भारत आने पर पहले वे फैजी की प्रसिद्धि सुनकर उन्ही के पास गए। बाद मे वे हाकिम अबुल फतह के आश्रय मे गए और उसकी मृत्यु के बाद खानखाना के साथ रहने लगे। जिसके पास रहे उसी की प्रशस्ति मे कसीदे कहे। कसीदे और गजल म इन्होने वैशिष्ट्य प्राप्त किया। खानखाना के आश्रय मे तथा आगरे के काव्यमय वातावरण मे उरफी की शायरी विशेष विकसित हुई। जहूरी ने खुरासान मे अपने

युवावस्था का प्रारम्भिक भाग व्याकरण, साहित्य, छन्दशास्त्र आदि का उत्तमोत्तम ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत किया। कवित्व की ओर उनकी स्वाभाविक रुझान थी। यज्द (ईराक), शीराज आदि में काफी समय रहने के बाद ये भारत आए और अहमदनगर के बुरहान निजामशाह की सभा में रहने लगे। इसके बाद बीजापुर के शाह के यहाँ पहुँचे। बीजापुर के सभाकवि मलिक कुमी और फैजी से इनकी मित्रता हो गई। जहूरी की आकर्षक शैली की बड़े-बड़े शायरों और विद्वानों ने प्रशंसा की है और कहा है कि परम्परागत फारसी गद्य और पद्य शैली में जहूरी ने नई जान डाल दी है। लोकदृष्टि में उसने रूढ़िगत फारसी शायर का मान सम्मान ऊँचा किया। उसकी अलंकृत गद्यशैली का कमाल देखने योग्य है, उसकी उपमाएँ और रूपक दर्शनीय हैं। साकीनामा और कुल्लियात उसके काव्यग्रन्थ हैं। कुल्लियात में कसीदे, मसनवी और रुबाइयाँ हैं। प्राचीन भावों को उन्होंने असाधारण नवीनता से प्रस्तुत किया है। उसकी गजलों में भी अपार सौन्दर्य और माधुर्य मिलता है। जहूरी की रचनाएँ कल्पनाश्रित हुआ करती थी और आलंकारिकता के कारण आकर्षक। वह संतोषी प्रकृति का था और फैजी तथा खानखाना के मुगल दरबार में आने के आमन्त्रणों के बावजूद भी उसने दक्न नहीं छोड़ा। अब्दुर्रहीम खानखाना अपने युग का महान् साहित्य संरक्षक था। अपने समसामयिक फारस, हिन्दुस्तान, मध्य-एशिया, और तुर्की के शासकों में फारसी कला और साहित्य को प्रेम, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करने वालों में वह अकबर से भी बढ़कर था। फारसी शायर फारसी शाहों के सामने उसकी साहित्यिक कद्रदानी की प्रशंसा किया करते थे। फारसी भाषा के शायर के रूप में वह अनेक पेशेवर दरबारी कवियों से बढ़कर था और 'रहीम' नाम से प्रवाहपूर्ण कविता लिखता था। वह फारसी, अर्बी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में छन्द रचना करता था। वह तुलसीदास का मित्र था और उनकी कविता का प्रशंसक भी। अकबर ने उसका लालन पालन किया (उसके पिता बैरमखाँ की मृत्यु पर) और ऊँची से ऊँची शिक्षा दी। उसने अकबर की अतिशय सेवा की और उसकी मृत्यु के अनन्तर २० वर्षों तक जहाँगीर की भी सेवा में रहा। जब तक भारत में फारसी शायरी जीवित रहेगी उसका नाम चलेगा। बदायूनी, अबुलफज्ल, उरफी, नाजीरी आदि कितने समसामयिक विद्वानों एवं शायरों ने उसकी प्रशंसा की है। वह संस्कृत का भी योग्य विद्वान् था और हिंदी का भी लोकप्रिय कवि जिसके छन्दों का हृदय पर सीधा प्रभाव पड़ा करता था।

भारतीय और फारसी लेखन शैली तत्वतः एक थी। उनके आदर्श एक ही थे। उनमें भाषा की अलंकारिकता, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि तत्व समान थे। यह सदा से फारस का सौभाग्य रहा है कि वह भारतीय फारसी शायरों और विद्वानों को प्रेरणा प्रदान करे जिससे भारतीय राजदरबारों में साहित्यिक अभिरुचि का स्तर कभी गिरने नहीं पाया। यदि फारसी विद्वान समय समय पर निरन्तर भारत न आते रहते तो निश्चय ही भारत में फारसी शायरी का स्तर निम्नतर हो जाता। गद्य की शैली भी फारस में जैसी थी लगभग वैसी ही भारत में भी। कालान्तर में फारसी शायरों के प्रति मुगल शासकों की उदारता कम हो गई परिणामस्वरूप विद्वानों का फारस से भारत आगमन भी कम हो गया। यह एक कारण था जिससे फारसी साहित्य का स्तर धीरे-धीरे भारत में क्षीण हो गया। क्षीणमान संरक्षण के कारण भारतीय फारसी शायरों को फारस के फारसी शायरों और विद्वानों का

वैसा साहित्यिक सत्संग भी सुलभ न रहा। फलतः वे वहाँ की नवीनतम साहित्यिक प्रवृत्तियों, शैलियों और स्तर से अपरिचित रहे।

अधिकांश मुगल बादशाह विशेषतः बाबर (१५२६-३० ई०) जहाँगीर (१६०५-२८ ई०) मुअज्जमशाह (१६८७ ई०) जहाँदारशाह (१७१२-१३ ई०) मुहम्मदशाह (१७१६-४८ ई०) अहमदशाह (१७४८-५४ ई०) आलमगीर द्वितीय (१७५४-५६ ई०) शाहआलम (१७५६-१८०६ ई०) और बहादुरशाह द्वितीय (१८३७-५७ ई०) कवि और विद्वान थे। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ फारसी और हिन्दी के कवियों और विद्वानों के उदार आश्रयदाता थे।

इस युग में फारसी ही राजदरबार की भाषा थी। यह वह युग था जब कि भारत में फारसी का अध्ययन और चलन इतने उत्साह से था जितने उत्साह से स्वयं फारस में भी नहीं था। भारतवर्ष में ऐसे कितने ही प्रसिद्ध इतिहासकार, अनुवादक, दार्शनिक, कवि, कोषकार और धार्मिक नेता हो गए हैं—हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के जो स्वच्छन्दतापूर्वक और बड़े अधिकार के साथ फारसी में लिखा करते थे। अकबर के समय से लेकर लगभग २०० वर्षों तक फारसी साहित्य की रचना में संसार में भारतवर्ष सबसे आगे था, गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से। स्वयं फारस भी भारत की तुलना में फीका पड़ गया था। अधिकतर शासक, नवाब और सरदार या सामन्त अपने पास फारसी शायरों के अतिरिक्त हिन्दू राजकवि भी रक्खा करते थे जो उनकी प्रशंसा के छन्द लिखते थे और अवकाश के क्षणों में उनका मनोरंजन करते थे। हिन्दी कवि अपनी रचनाओं को आश्रयदाताओं के लिए अधिकाधिक सुबोध बनाने के उद्देश्य से अधिकाधिक फारसी अरबी शब्दों और भावों का समावेश अपनी रचनाओं में किया करते थे। शासन और शिक्षा में तो केवल फारसी ही व्यवहृत होती थी। समस्त प्रशासकीय विवरण और पत्राचार फारसी में ही किये जाते थे और हिन्दू तथा मुसलमान सभी वार्षिक विवरण लेखक और इतिहासकार देश में घूम-घूमकर अपने विवरण फारसी में ही लिखा करते थे। अकबर के माल या खजाना मंत्री टोडरमल के पहले सभी रिकार्ड हिन्दी में रक्खे जाते थे। उसने उन्हें फारसी में तैयार करने का आदेश दिया। उसने इस प्रकार सभी लिपियों, मुंशियों और पदाधिकारियों को जिसमें उसके स्वधर्मावलम्बी भी शामिल थे राजदरबार की भाषा फारसी सीखने को बाध्य किया। इसके फलस्वरूप हिन्दुओं को फारसी लिखने और पढ़ने का अभ्यास करना पड़ा जिसकी उन्हें इसके पहले जरूरत नहीं पड़ी थी। हिन्दुओं और उनकी भाषा पर इस आदेश का सीधा और गहरा असर पड़ा क्योंकि अब हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ मकतबों और मदरसों में जाकर फारसी पढ़नी पड़ी। इसके परिणामस्वरूप आगरा और अवध के कायस्थों तथा पंजाब दिल्ली और आगरा के खत्रियों का एक वर्ग ही ऐसा बन गया जो पुश्त दर पुश्त फारसी शिक्षा और संस्कृति में ही पलता चला गया। इन लोगों ने हिन्दी पर विशेषतः बोलचाल की हिन्दी पर फारसी का प्रभाव बढ़ाने में बहुत सहायता पहुँचाई। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में तो हमें फारसी के हिन्दू शिक्षक भी मिलने लगते हैं।

फारसी प्रभाव की व्याप्ति के और भी अनेक कारण थे—(१) राजमहलों और हरमों में हिन्दू स्त्रियाँ और मुसलमान शाहजादियाँ अपनी अपनी भाषाओं का स्वतन्त्रता-

पूर्वक आदान-प्रदान किया करती थीं। राजमहलों के बाहर उच्च पदाधिकारी एवं सैनिक अधिकारी और सिपाही फारसी शब्दों और प्रयोगों का व्यवहार छावनियों के समीपवर्ती बाजारों में किया करते थे। उधर वणिक वर्ग भी विक्रेता ग्राहकों को अपनी ओर अधिकाधिक आकृष्ट करने के उद्देश्य से फारसी शब्दों की ज्यादा से ज्यादा व्यवहार करते थे। इससे सम्बन्धों की घनिष्टता और निकटता की अच्छी सम्भावना थी। (२) हिन्दू और मुस्लिम राज्यों में सन्देश भेजने और पत्र-व्यवहार की भाषा फारसी ही थी। (३) विजेता वर्ग की तथा एक विशिष्ट एवं भिन्न संस्कृति और स्तर के लोगों की भाषा होने के कारण लोग फारसी शब्दों के व्यवहार में किसी सीमा तक प्रसन्नता का अनुभव करते थे। फारसी एक मधुर भाषा भी थी तथा दिल्ली के आसपास की भाषा खड़ी, खुरदुरी तथा अविकसित भी थी। इसके अलावा लोग बतौर फैशन के या उन्नत होने की भावना से भी फारसी सीखते थे तथा एक नए जबान के आकर्षण और प्रलोभन में अपनी पुरानी भाषा की उपेक्षा भी करने लगे थे। (४) मुगल, टार्टर, फारसी तथा अन्य मुस्लिम जातियों के लोग अपने साथ नई-नई कलाएँ, हुनर, पेशे, हस्तकौशल ले आए जिन्हें सीखने के लिए स्थानीय लोगों को इन शिल्पों से सम्बन्धित विदेशी शब्दों को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेना पड़ा। (५) धर्म परिवर्तन का क्रम भी चालू था और मुसलमान, फकीर, दरवेश और सूफी इस्लाम के प्रचार में सक्रिय भाग ले रहे थे। समस्त हिन्दी प्रान्तों में धर्म प्रचार के अधिकाधिक केन्द्र स्थापित किये जा चुके थे।

मोटे तौर पर औरंगजेब के शासन के मध्यकाल से लेकर फारस और भारत के सम्बन्धों की समाप्ति के आभासकाल तक का युग 'जड़ता का काल' (Stagnation period) कहा जा सकता है। लेकिन शैली सही मार्ग से च्युत तो नहीं होने पाई थी किन्तु शब्दार्थों की छोटी-छोटी चमत्कृतियों की ओर लोग जाने का प्रयत्न अवश्य करने लगे थे। इस काल के गद्य में भी अतिशय आलंकारिकता, सुदीर्घ वाक्यावली, प्रदर्शन प्रवृत्ति आदि के दर्शन होते हैं। ये सारे प्रभाव समसामयिक हिन्दी-काव्य पर पड़े इसमें सन्देह नहीं।

३

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा पर फारसी काव्य का प्रभाव

अनेक विद्वानो ने हिन्दी के मध्ययुगीन काव्य पर सामान्यत और रीतिकालीन शृ गारकाव्य पर विशेषत, फारसी शायरी के प्रभाव की बात कही है। बात यह है कि हिन्दी साहित्य का मध्यकाल मुगलशासन काल के समानान्तर चलता है। मुगल बादशाहो के उत्कर्ष और पराभव के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के भक्ति और रीतियुग सम्बद्ध हैं। ये मुगल बादशाह राजनीतिक तथा सास्कृतिक परम्पराओ की दृष्टि से जहां फारस अथवा ईरान की परम्पराओं का पोषण करते चल रहे थे वहीं स्थानीय प्रभावो और परिस्थितियो से भी सामञ्जस्य स्थापित करते चल रहे थे। फारसी से आने वाले राजदूत तथा पण्डित अन्य देशो से आगत व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक सम्मान के पात्र थे।[1] मुगल राजदरबार मे अरबी-फारसी के बडे-बडे विद्वान् उपस्थित रहा करते थे और भारतीय भाषाओं के भी अनेकानेक पण्डित विद्यमान रहते थे, उदाहरण के लिये अकबर के ही दरबार मे बहुत बडी संख्या मे कवियों का जमघट जमा रहता था। करनेश, दुरसा होलराय, कुम्भनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान आदि कवि उसके दरबार मे आया-जाया करते थे और उसके सम्पर्क मे थे। चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरण, सूरदास, मदनमोहन, मनोहर कवि राजा, टोडरमल आदि उसके दरबार के स्थायीवृत्ति पाने वाले कवि थे। नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गग, रहीम आदि अकबरी दरबार के प्रतिष्ठित हिन्दी कवि थे। किशन, राजा बीरबल, गगाधर आदि अन्य विदग्ध व्यक्ति भी अकबरी दरबार की शोभा थे। जहांगीर के दरबार के पुहकर (रसरतन के रचयिता) और केशव मिश्र तथा शाहजहां दरबार के सुन्दर, कुलपति मिश्र, चिन्तामणि, कवीन्द्र आचार्य आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हो गये

---

[1] History of Shahjahan of Dehli—Dr. Banarasi Prasad Srivastava, page 245

हैं। उत्तरवर्ती मुगल बादशाहों से आश्रित हिन्दी कवियों में बाबा लालदास, चन्द्रभान, देव और त्रिपाठी बन्धुओं के नाम उल्लेखनीय हैं। फारसी के आश्रित कवियों की संख्या तो बहुत बड़ी है। एक ही व्यक्ति जब फारसी और हिन्दी दोनों काव्य रचना करता था जब हिन्दी कवि फारसी शायरों के सीधे सम्पर्क में आते थे तब एक का दूसरे पर असर पड़ना बिलकुल स्वाभाविक था और अनिवार्य भी। भाषा-कवि फारसी शायरों के सम्पर्क में थे फलतः वे अपनी रचनाओं द्वारा फारसी कवियों को प्रभावित करते और उनकी रचनाओं द्वारा स्वतः प्रभावित होते चलते थे। यही क्रम छोटे-छोटे शाहों और नवाबों अमीरों और उमराओं की सभाओं में भी था। शाहजहाँ के समय तक फारसी प्रभाव यहाँ की काव्य-सृष्टि पर प्रधान रूप से पड़ता रहा क्योंकि यहाँ के फारसी के पंडितों का फारस के विद्वानों और शायरों से पूरा सम्पर्क बना हुआ था। औरंगजेब के शासनकाल में यह सम्पर्क क्षीण हो गया तथा उत्तर में उर्दू का कुलपति से विकास हुआ जो अब तक दक्षिण में ही विविध रूप में विकसित हो रही थी। राजदरबार की भाषा होने के कारण मुगल शासन काल में फारसी को विशेष प्रोत्साहन मिला जिसके फलस्वरूप इस भाषा में प्रचुर परिमाण में साहित्य लिखा गया। शाहजहाँ के समय में फारसी साहित्य रचना की दो पद्धतियाँ विकसित हो चुकी थीं। एक शुद्ध फारसी शैली जो फारस से आये हुए या वहीं की कलापरम्परा के हाकिमों द्वारा विशेष पसंद की गई। दूसरी शैली थी भारतीय फारसी शैली जिसमें भारतीय शैली की छाप थी क्योंकि फारसी भाषा भारत में आकर स्थिरता प्राप्त कर चुकी थी और अपने समुचित व्यापक वातावरण से असम्पृक्त रहना उसके लिये सम्भव न था उसमें भारतीय भाव और विचार आने लगे तथा उसका वर्ण्य और वक्तव्य भी धीरे-धीरे भारतीय हो चला। फलस्वरूप उसकी एक विशिष्ट शैली और प्रवृत्ति विकसित हो चली। इस शैली का इसलिये अधिक विकास हुआ क्योंकि राजदरबारों में यह विशेष प्रचलित और प्रतिष्ठित हुई। इस शैली के प्रतिनिधि थे अबुलफजल और अनुयायी थे अब्दुल हमीद लाहौरी मुहम्मद वारिस, चन्द्रभान और मुहम्मद साहिल। एक बात जो विशेष दर्शनीय है वह यह कि पूर्ववर्ती शताब्दियों में तथा ईसा की १७ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में बहुत बड़ी संख्या में फारसी शायर भारत आते रहे। अकबर के ही समय से मुगल दरबार में फारसी, संस्कृत तथा देशी भाषाओं के कवियों और विद्वानों का जमघट लगा रहता था। मुगल दरबार की प्रधान भाषा फारसी थी। फारसी की जो शैली इस युग की दरबारी शायरों से विकसित हुई हिन्दी की दरबारी कविता उससे प्रभावित हुए बिना न रही। एक तो भारतीय फारसी शैली की अलंकार-ग्राह्य आलंकारिकता, चमत्कारपूर्ण शब्दाडंबर आदि का रीतियुग में विशेष रूप से ग्रहण हुआ दूसरे दर्शाभिमान की 'कसीदा' वाली शैली प्रकारान्तर से रीतिकालीन कवियों ने अंगीकार कर ली। शाहजहाँ के समय में फारसी शायरों की शायरी का स्तर कुछ हल्का हो चला था। मौलिक प्रतिभा, श्रेष्ठ साहित्य के उदात्त तत्व और विचारशीलता उनमें कम हो गई थी। चमत्कारपूर्ण शब्द-योजना, अभिव्यंजना-कौशल तक ही प्रायः उनकी कला सीमित रहती थी। मौलिक प्रतिभा के अभाव में उन्होंने फारसी की परम्परा शैली की रचनाओं की अनुकृति-मात्र की। फारसी गजलों में गुलोबुलबुल, शीरीं फरहाद, लैला मजनूं आदि का ही वर्णन हुआ। आत्म-प्रशंसा-प्रिय शाहजहाँ की प्रशस्ति में कसीदे खूब लिखे जाते थे और प्रसन्न होकर वह उन्हें स्वर्ण और रजत राशि का पुरस्कार दिया करता था।

लोग शाह या राजकुमार की वर्षगांठ, विभिन्न पर्वों तथा उत्सवों के अवसरों, सिंहासना-रोहण, पुत्रजन्म आदि प्रसंगों की प्रतीक्षा किया करते थे। फारसी के साथ-साथ संस्कृत और हिन्दी के कवि तथा विद्वान भी ऐसे अवसरों पर पुरस्कृत हुआ करते थे। इस प्रकार की परिस्थिति और प्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी कवियों पर पड़ना स्वाभाविक था। लगभग ऐसा ही वातावरण इस युग के अन्यान्य छोटे-मोटे दरबारों में भी था। संस्कृत और हिन्दी के अनेकानेक कवि एवं विद्वान मुगल दरबारों में आश्रित कवि के रूप में सम्मानित हुए। शाहजहाँ ने एक ओर जहाँ मुगल रंगीनियों में अपने दरबार को रंग देना चाहा वहीं दूसरी ओर सम्भवतः अकबरी परम्परा और भावी युवराज दारा की सहिष्णु नीति के परिणाम स्वरूप उसने भारतीय कलाविदों को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रसंग में सुन्दरदास, चिन्तामणि, निर्णयसिन्धु के रचयिता कमलाकर भट्ट और ऋग्वेद के व्याख्याता कवीन्द्राचार्य के नाम उल्लेखनीय हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य पंडितराज जगन्नाथ तथा ज्योतिषाचार्य *सिद्धान्त एवं वेदाङ्गराज और हिन्दू विचारों के साथ व्याख्याता एवं आचार्य मित्र मिश्र* शाहजहाँ के युग के कवि और पंडित थे।[1]

शृंगार काल का काव्य फारसी की स्पर्धा में लिखा गया काव्य है

मुगल दरबार में एक विशेष प्रकार का दरबारी साहित्य फारसी भाषा में लिखा गया जिसका गहरा प्रभाव हिन्दी के समसामयिक काव्य साहित्य पर पड़ा। वह इस रूप में कि जीवन के व्यापक तथ्यों, वस्तुओं और व्यापारों की ओर हिन्दी कवियों की दृष्टि न जाकर 'राजप्रशस्ति' और 'शृंगारवर्णन' तक ही सीमित रह गई दूसरे जिस प्रकार समसामयिक भारतीय फारसी काव्य परम्परा ने फारसी की प्राचीन परम्पराओं से काव्य की प्रेरणा ग्रहण की उसी प्रकार हिन्दी कवियों के समक्ष संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा थी। उन्होंने उसी का अनुकरण करना शुरू किया। डा० सावित्री सिन्हा ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि प्रदर्शन तथा शृंगार प्रधान जीवन दर्शन की अभि-व्यक्ति के लिये किसी परम्परा का अवलम्बन आवश्यक था, क्योंकि शून्य वर्तमान अतीत का सहारा लेकर आगे बढ़ता है। मुगलदरबार तथा उसके प्रभाव से सामन्तीय संरक्षण में जो हिन्दी कविता पल्लवित हुई उसे फारसी की स्पर्धा में रखे जाने योग्य तत्वों का अनुशीलन अपने देश की साहित्यिक परम्पराओं में करना पड़ा। गजल शृंगारिकता, गुलोबुलबुल, शीरीं फरहाद और लैला मजनूं की साहसिक प्रेम की परम्परा भारत में नहीं थी। भारतीय नायक के आदर्श राम और कृष्ण थे और नायिकाओं की सीता तथा राधा। राधा के परकीया रूप में भी मांसलता और चांचल्य की अपेक्षा भावना और मार्दव अधिक था। फारसी काव्य की विला-समयी नायिकाओं की तुलना में नायिका-भेद की श्रेणियों में बद्ध नारी सौंदर्य को ही रखा जा सकता था। इसी प्रकार कसीदा स्पर्धा में हिन्दी में राजस्तुति का महत्व बढ़ने लगा। व्यक्तिवादी राजतंत्र में राज दरबार की रुचि का प्रभाव तत्कालीन साहित्य, कला जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्पष्ट लक्षित हो रहा था।[2] शैलीगत अलंकरण और प्रदर्शन की प्रवृत्ति

---

[1] हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : षष्ठ भाग, पृ० ४-५

[2] हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : षष्ठ भाग, पृ० ५-६

का उल्लेख और उनके कारणो की विवेचना तो पहले ही की जा चुकी है जिससे यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि आयाससाध्य अलकरण, चमत्कार-प्रदर्शन, शब्दाडबर और राज-प्रशस्ति-प्रधान काव्य के आधिक्य का कारण एक बडी सीमा तक फारसी काव्य की तत्का-लीन शैली और वातावरण ही है ।

एक अन्य तथ्य जिसे लक्ष्यकर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने फारसी प्रभाव का सकेत किया है वह है रीतिबद्ध और स्वच्छन्द उभय प्रकार के काव्यो मे प्राप्य 'खडिता की उक्तियों' की अधिकता तथा एक सीमा तक तत्कालीन काव्य मे प्राप्य नायिका भेद की कविता का कारण भी फारसी की प्रतिस्पर्धा ही थी । वे लिखते है 'बात यह है कि जो कवि दरबारी थे, उन्होने तो उर्दू या फारसी की काव्य-रचना के रकीबो और माशूको के जोड तोड मे खडिता को दरबार मे पेश किया । भारतीय परम्परा मे उन्हे खडिता की उक्ति ही उससे मेल खाने वाली दिखाई पडी । स्वच्छन्द कवियो ने इनका ग्रहण इसी से किया कि प्रेम वैषम्य के लिये उन्हे भी भारतीय काव्य पद्धति मे यही बात अनुकूल दिखाई पडी । फारसी ढग का प्रेम वे (रसखान, आलम, ठाकुर, घनानन्द आदि) देशी प्रणाली के अभिमानी होकर दिखा नही सकते थे, प्रेम की गभीरता पर भी तो उनकी दृष्टि आरम्भ से ही थी, अत. रीतिबद्ध कवियों का यही काव्यार्थ उन्हें सुभीते का जान पडा ।'[1]

फारस की विदेशी कविता राज दरबारो मे विशेष सम्मानित हुई ही, जनसाधारण मे भी उसके प्रति कुछ रुचि जगी और लोगो के हृदय मे आकर्षण पैदा हुआ क्योकि उसमे एक नवीनता थी और वह अधिकारी वर्ग की भाषा थी । मुगल बादशाहो के दरबार मे फारसी शायर तो हुआ ही करते थे हिन्दी और सस्कृत के विद्वान और कवि भी सम्मानित पदो की शोभा बढाया करते थे । राजदरबारो मे जिस प्रकार की शृगारी शायरी फारसी कवियो के द्वारा सुनाई जाती थी उसकी बराबरी पर पहुँचने के लिये हिन्दी के कवियो को भी मुक्तक शृगारी रचनाएँ लिखनी पडती थी । कविता के इन अखाडो मे प्रतिस्पर्धा की भावना स्वाभाविक थी । किसी भी भाषा का कवि अपनी भाषा को नीचा नही देख सकता था और अन्य भाषा की हेकडी नही सह सकता था । इस कारण बहुत सारी रचनाएँ जोड तोड पर लिखी गई । इस जोड तोड की भावना ने तथा राजदरबार की शृगारी कविता के वातावरण मे हिन्दी कवियो को नायक-नायिका-भेद की ओर अग्रसर होने को बाध्य किया । परम्परा के अनुकूल अन्य कोई विषय उनके पास न था । नायक-नायिका-भेद तो वैसे नाट्यशास्त्रीय विषय है किन्तु इस दरबारी प्रतिस्पर्धा के कारण वह नाट्यशास्त्र से हटाकर स्वतन्त्र विषय के रूप मे ग्रहीत हुआ और कवि पृथक-पृथक नायिकाओ को लेकर काव्य रचना मे प्रवृत्त हुए । हिन्दी मे नायिका-भेद विषयक काव्य के विकास का कारण एक बडी सीमा तक मुसलमानी दरबारदारी कही जा सकती है । प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तो सस्कृत मे नायक-नायिका-भेद के काव्य की अधिकता का काल भी मुसलमानी शासन-काल ही बताया है ।[2]

---

[1] घनआनन्द ग्रथावली : वाङ्मुख, पृ० ४७

[2] शृंगारकाल, पृ० ३८०

हिन्दी की श्रृंगारी कविता मे परकीया प्रेम की परंपरा नही थी। सपत्नीक-भाव का रचनाए अवश्य थी जिसमे ईर्ष्या-अमर्ष, डाट-फटकार, मान आदि की व्यजना हुआ करती थी किन्तु परकीया और गणिका प्रेम का चलन न था। प्रबंध और मुक्तक दोनो प्रकार के काव्यो मे यही बात मिलेगी किन्तु यह फारसी साहित्य के संपर्क का परिणाम है कि हिन्दी मे भी परकीया प्रेम का वर्णन विशदता से होने लगा। एक माशूक के अनेक रकीब तथा माशूक की प्राप्ति के लिये अनंत कष्टो के सहन की जैसी प्रणाली फारसी काव्य मे वर्णित है उसकी बराबरी की चीज हिन्दी के कवि दरबारी महफिलो मे तभी प्रस्तुत कर सकते थे जब वे नायक-नायिका-भेद के मनोरम, रंगीले और हृदयग्राही प्रसगो को अपने काव्य का विषय बनाते। देशी परंपरा की दूसरी कोई चीज उसकी बराबरी पर नही रखी जा सकती थी। हिन्दी के कवि भी फारसी शायरी के जोड की चीज प्रस्तुत कर सकते है यही भावना नायिका-भेद की रचनाओ को प्रस्तुत करने के मूल मे थी। रीति काल के स्वच्छंद कवियो मे विरह वर्णन की अधिकता और प्रेम की विषमता का जो विस्तार मिलता है उसका कारण भी फारसी काव्य मे ही ढूंढा जा सकता है। रीति-स्वच्छंद कवि रीतिबद्ध कवियो के समान मुगलदरबारों के दगल मे नही पडे फिर भी समसामयिक प्रभाव उन पर स्पष्ट ही है।

सूफी प्रभाव—स्वच्छंद कवियो मे पाई जाने वाली विरह की प्रधानता का कारण फारसी काव्य की वेदना-विवृति और सूफियो के 'प्रेम की पीर' मे देखा गया है। स्वच्छंद कवियो का लौकिक प्रेम फारसी के कवियो की वेदना की अभिव्यक्ति से प्रभावित है और उनके काव्य मे जो विरह की अधिकता का वर्णन है वह भी फारसी शायरी की व्यथा-निवेदन शैली से प्रभावित है और जिस प्रकार अलौकिक सत्ता के इश्क मे फारस के सूफियो ने प्रेम की पीर का वर्णन किया है उसी प्रकार स्वच्छंद कवियो ने भी गोपियो की कृष्ण के प्रति विरहपूर्ण पुकार का वर्णन किया है। कृष्णभक्ति मे गोपियो की विरह दशा वाले प्रसंग इन कवियो ने रुचिपूर्वक उठाये क्योंकि उसके माध्यम मे ये अपनी निजी प्रेम व्यथा और विरह दशा के निवेदन मे सफल हुए। परन्तु सगुण का सहारा लेने के कारण इनमे रहस्य भावना (रहस्यवाद) का प्रसार न हो सका। सूफियो की शायरी मे वर्णित 'प्रेम की पीर' का प्रभाव हिन्दी काव्य पर व्यापक रूप से पडा—हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानो पर तो पड़ा ही निर्गुण सतो और कृष्णभक्त कवियो पर भी पड़ा। सूफियो की प्रेम भावना की मूल विशेषता लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुँचना, इश्क मजाजी द्वारा इश्क हकीकी की उपलब्धि के सिद्धान्त घनआनन्द, रसखान और बोधा मे देखे जा सकते हैं। बोधा ने तो साफ ही लिखा है कि 'इश्क मजाजी मे जहा इश्क हकीकी खूब' किन्तु रसखान और घन-आनन्द ने इसे दूसरे तरीके से कहा है। रसखान ने कहा है कि सासारिक प्रेम के बिना ईश्वरीय प्रेम का आनन्द नही आता। घनआनन्द ने कहा है कि ईश्वरीय प्रेमानन्द की एक चचल लहर से समग्र विश्व प्रेम-परिपूर्ण हो रहा है और उसी प्रेम तरग के एक कण से घनआनन्द के हृदय मे सुजान के प्रति इतना प्रगाढ अनुराग आ गया है। वे लोग कहते हैं—

(क) आनंद अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
के वह विषयानंद के ब्रह्मानंद बखान॥ (रसखान)

(ख) ताकी कोऊ तरल तरंग सम छूट्यौकन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोइ घनग्रानद सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥ (घनआनन्द)

डा० बच्चनसिंह ने भी कहा है कि स्वच्छन्द काव्य परम्परा को अपना रूप निर्मित करने मे सूफियो की 'प्रेम की पीर' से काफी बल मिला।[1] उसके कारण रीति-स्वच्छन्द कवियों की कविता मे एक नई तड़प पैदा हुई जो घनआनन्द की ऐसी रचनाओं मे देखी जा सकती है।

ग्रतर ह्वौ किधौ ग्रत रहौ द्दग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
ग्रागि जरौ ग्रकि पानि परौ ग्रब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जौ घनग्रानद ऐसी रुची तौ कहा बस है ग्रहौ प्रानिनि पीरौं।
पाऊँ कहा हरि हाय तुम्हें धरनी में धसौं कि ग्रकासहि चीरौं॥

स्पष्ट ही यह रहस्यात्मक प्रवृत्ति की झनक जहाँ तहाँ सूफी भावना और फारसी साहित्य की प्रेरणा से ही इन कवियो म आई है।

परिस्थिति और आदर्श-साम्य

फारसी और स्वच्छन्द धारा के कवियों के जीवन मे, उनके जीवन की परिस्थितियो और आदतो मे अनेक बार आश्चर्यजनक साम्य मिलता है। जीवनगत स्थितियो और आदर्शों की समानता भी एक से उद्गारो और भावो के जनन का कारण हो सकती है। एक सी परिस्थिति और मनस्थिति मे पडा हुआ व्यक्ति अपने हृदय की एक सी अभिव्यक्ति भी करे तो आश्चर्य नही। उदाहरण के लिए अत्तार और रसखान के जीवन की परिस्थितियाँ बहुत कुछ एक सी थीं। अत्तार उस युग मे रह रहे थे जब फारस या ईरान मगोल आक्राताओं के प्रहारो का शिकार हो रहा था। भीषण हलचलो के उस विग्रहकाल मे भी यह प्रसिद्ध सूफी कवि अपना मानसिक सतुलन बनाए रहा। इधर प्रसिद्ध ही है कि साहबी के लिए जो गदर दिल्ली मे हुआ उसके साक्षात दर्शक होते हुए भी रसखान अपने मन का सतुलन बनाए रहे। खून खराबे के वातावरण के बीच भी ये कवि अपने कर्त्तव्य से अविचलित रहे। इसफहान के कमाल-अल-दीन-इसमाईल और घनआनन्द के जीवनगत परिस्थितियो का साम्य भी कम आश्चर्यजनक नही। कमाल की रुबाइयो से पता चलता है कि उसका प्रेम दुखद एव दुखात था, उसका प्रेममात्र उसके प्रति अत्यन्त क्रूर और झूठा था जिसके फलस्वरूप निराश और भग्न हृदय कमाल को इसफहान छोडना पडा और जब इसफहान छोडकर टूटे हुए दिल से वह जाने लगा तो उन पुरुषो ने जिन्हे उसने सहायता पहुँचाई थी और वे स्त्रियाँ जिन्हें उसने प्यार किया था उसका मजाक उडा रहे थे। इसी कारण से जो टीस, कसक या वेदना कमाल की रुबाइयो मे मिलती है उसमे बडा दर्द है और बडा सम्मोहन भी। कमाल का एक ही विषय है प्रेम की पीर और प्रेम की अदम्य तृषा जो मौत पर भी विजय प्राप्त करती है। कमाल के हृदय का सारा इतिहास उसके काव्य मे बिंबित है। बिलकुल यही

---

[1] रीतिकालीन कवियो की प्रेमव्यजना : पृ० २८८

हाल घनआनन्द का है। क्रूर प्रिय से प्रेम कर ही घनआनन्द को प्रेम का पपीहा बनना पडा था और विरह तथा मिलन लालसा के भावों से उनका काव्य भी ओत-प्रोत है। आश्चर्य की बात तो यह है कि नगाल भी घनआनन्द के ही मगाल मगोल आक्रामकों द्वारा की गई जनहत्या मे मारे गए। नज्म-अल-दीन दया नाम के सूफी शायर भी मगोल आक्रमण के ही शिकार हुए थे। फारसी के महान् और विश्वविख्यात शायर सादी के 'गुलिस्ता' और 'द्विजदेव' की 'शृङ्गार बत्तीसी' लगभग एक सी परिस्थिति मे लिखी गई चीजें हैं। महाराज मानसिंह एक बार चित्तविनोदनार्थ उपवन मे जाकर रहने लगे। बसन्त की ऋतु मे उन्होने पुष्पो का जो विकास देखा उनकी श्री और सुरभि का जो प्रसार देखा उसे देखते हुए उन्होने बहुत दिन वही काट दिये। उनके इस प्रकृति शोभा के प्रति अनुराग से प्रेरित बहुत सी रचनाएँ शृगारलतिका मे भी मिलेंगी। शृगार बत्तीसी प्रकृति के बीच रहकर लिखी गई चीज है। गुलिस्ता के लिखने की प्रेरणा भी सादी को एक पुष्पोद्यान से ही मिली जब वे बसत के उन्मत्त पुष्पो का मभार देख रहे थे और उन्हे समस्त वासती निशा उसी सुरभि-मदिर उद्यान मे काट देनी पडी थी।[1] यह परिस्थितिगत साम्य इनके काव्यो मे भावगत साम्य प्रस्तुत करने की सभावना से गर्भित तो है ही वैसे निश्चित प्रभावो की घोषणा कर सकना सभव नही है।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा पर फारसी काव्यपरम्परा के प्रभाव का एक और कारण है वह यह कि ये सभी स्वच्छन्द शृङ्गारी कवि न्यूनाधिक रूप से फारसी वातावरण मे रहे और फारसी भाषा और शायरी का ज्ञान तो निश्चय ही सभी को था। रसखान, आलम, घनआनन्द तो फारसी के वातावरण मे ही पले और बढ़े तथा ठाकुर और द्विजदेव फारसी के जानकार ही थे। रह गये बोधा, उन पर तो फारसी की रगत सबसे ज्यादा है जो किसी किसी की राय मे बाजारूपन तक पहुँच गई है।

आलम पर फारसी प्रभाव

अकबर के समय मे आलम ऐसे पढे लिखे व्यक्ति को फारसी की जानकारी न होती यह कैसे सभव था! आलम जन्म से ब्राह्मण रहे हो परन्तु जिस मुसलमानी वातावरण मे उन्हें रहना पडा वह फारसीमय था। ये मुसलमान हो गये थे यह बात उनके फारसी ज्ञान को और भी पुष्ट करने वाला प्रमाण है। इतना ही नहीं यदि इन्हे फारसी भाषा और काव्य परम्परा का अच्छा ज्ञान रहा हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। शेख न रही कोई अन्य 'यवनी नवनीतकोमलागी' रही हो इन्होने मुसलमान बनना तो स्वीकार ही कर लिया था और फिर 'शेख' भी कहलाने लगे थे। मुसलमानो मे 'शेख' विशिष्ट अर्थात व्यक्ति ही कहे जाते हैं फिर ये तो 'शेख आलम' ही नही 'शेख साई' तक पुकारे जाते थे। अपने समाज मे इन्हे अच्छी मर्यादा हासिल थी। हिन्दी विद्वानों ने भी इन्हे फारसी का ज्ञाता कहा है। लाला भगवानदीन ने फारसी भाषा और साहित्य विषयक इनके अच्छे ज्ञान का होना स्वीकार किया है।[2] इनके रेखतो से यह बात प्रमाणित भी होती है।[3] रेखता आरम्भ मे मुगलदरबार की

---

[1] Classical Persian Literature

[2] आलम केलि : जीवन वृत्त, पृ० ६

[3] आलम केलि . छन्द सख्या, २६९-२७२

भाषा थी फलत. उसमे रचना करने वाला फारसी-अरबी प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता था। फलस्वरूप यह फारसी प्रभाव आलम के काव्य के बहिरंग (भाषा पक्ष) ही नहीं अन्तरंग (स्पिरिट) पर जहाँ-तहाँ देखा जा सकता है। आलम पर सूफी शायरी का प्रभाव भी स्वीकार किया गया है और उनमे सूफी परम्परा के प्रेम की पीर का होना माना गया है। डा० जगदीश गुप्त लिखते हैं कि इनके अनेक मुक्तक ऐसे हैं जिनमे भावात्मक तीव्रता कथन की अतिशयता के साथ मिलकर सूफी काव्य की प्रवृत्ति का आभास देती है। यह तत्व ब्रजभाषा के रीतिमुक्त अन्य प्रेमी कवियो मे भी उपलब्ध होता है।[1] आलम के माधवानल कामकंदला को लक्ष्यकर किसी-किसी ने तो आलम को सूफी तक कह दिया है। श्री उदयशंकर शास्त्री ने अपने एक शोध निबंध मे बतलाया है कि आलम रचित माधवानल कामकंदला मे जिस प्रकार प्रेम की अटूट चर्चा की गई है और ग्रंथारम्भ मे जिस प्रकार परब्रह्म (करतार) की वदना, फिर मुहम्मद साहब की, फिर उनके चार खलीफाओं की और फिर अपने गुरु (सैयद मुहम्मदशाह) की वदना की है, उसके बाद शाहेवक्त अकबर और आश्रयदाता टोडरमल का उल्लेख किया है तथा ग्रंथारभ से पूर्व उसकी विषयवस्तु और पद्धति का सकेत किया है वह सब मसनवी पद्धति की चीज है। श्री शास्त्री ने तो आलम के जन्मजात मुसलमान होने की ही सभावना व्यक्त की है।[2] इन तथ्यो से आलम पर फारसी शायरी और काव्यपरपरा के प्रभाव की बात और भी पुष्ट हो जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी यह बात स्वीकार की है कि 'कहीं-कहीं फारसी की शैली के रस बाधक भाव भी इनमे मिलते हैं'।[3]

रसखान पर फारसी प्रभाव

रसखान जन्म से ही मुसलमान थे और फारसी उनकी मातृभाषा थी फिर वे सहृदय रसज्ञ थे और काव्य परम्पराओ के भी ज्ञाता। यह कहा ही गया है कि श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढकर उनका मन श्री कृष्ण और वृन्दावन की ओर आकृष्ट हुआ फलस्वरूप यह स्वाभाविक था कि फारसी भाषा, शैली और सहजा उनकी अपनी चीज रही हो परन्तु यह प्रभाव उनमे कृष्ण प्रेम और वृन्दावन के भक्तिपूर्ण वातावरण के कारण बहुत प्रत्यक्ष नही होने पाया है फिर भी जगह-जगह इसकी झलक देखी जा सकती है। जैसे उनकी इस प्रकार की उक्तियो मे जहाँ वे कहते हैं कि प्रेम-प्रेम तो सब कोई कहते हैं परन्तु उसे सरल समझ लेना भूल होगी। प्रेम का फदा बहुत कठिन होता है, उसमे प्राणो की अकथनीय तडपन सहनी पडती है। वेदना मे सास भर चलती रहती है किन्तु प्राण नहीं निकलने पाते। इस प्रेम के पास या पदे मे पडकर जो मर जाता है वही अमर हो जाता है। इस प्रेम के मर्म को जो जान लेता है वही प्रेम के फास की मृत्यु के लिये मचल उठता है तथा इसी प्रकार और भी—

---

१ रीतिकाव्य संग्रह, पृ० ३३५ और ३३७

२ हिन्दी अनुशीलन - धीरेन्द्र वर्मा, विशेषांक, पृ० ४५८

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०४

कोउ याहि फांसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर कोउ, कहत अनोखी ढार॥
पै एतोहू हम सुन्यो, प्रेम अजूबो खेल।
जाबाजी बाजी जहा, दिल का दिल से मेल॥
सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहू।
पै याके बदले बिहसि, वाह वाह ही लेहू॥
अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहू जह एक मे, मन मिलाइ महबूब॥

घनआनंद पर फारसी प्रभाव

घनआनद के काव्य पर फारसी भाषा, काव्य और वातावरण तीनो का काफी प्रभाव पडा है और यह प्रभाव उनकी भाषाशैली और वक्तव्य तीनो पर लक्षित किया जा सकता है। फारसी शासको की भाषा थी। मुहम्मदशाह रगीले के दरबार का वातावरण उसी भाषा और सस्कृति से ओतप्रोत था। ये उनके मीरमुशी या खासकलम थे फिर तो इनके तौर तरीके, तहजीब, भाषा, बोलचाल सभी पर फारसीपन का प्रभाव स्वाभाविक था। फारसी शब्दावली का प्रयोग यो तो उनकी सभी कृतियो मे थोडा बहुत मिलता है किन्तु इस दृष्टि से उनकी 'इश्कलता' दर्शनीय है जिसमे व्यवहृत फारसी शब्दो के उदाहरण इस प्रकार है—जानी, दिलजान, हुस्न, आसिक, चरम, यार, खूबी, निशानी, महबूब, चिमन, बेदरद, करद (छुरा), बेपीर, जहर, तकसीर (चूक, अपराध), मगरूरी, हजूरी, सराबी, गरीब, अरज, जिगर, पाक, बेनिसाफ (बिनासाफ), दिलदार, तलब, इलम खुसी, सहर, कहर, करेजें, तीर, अजूब, खूनी, तलफत, जुलम, मगजदार, बेपरवाही, जाहर, चमक, नोक, नजर, नसा, कसीसें (खिंचना) आदि। घनआनन्द के समस्त काव्य मे यो फारसी शब्दावली परिमाण मे अधिक नही फिर भी फारसी काव्य की प्रवृत्तियो की छाप इनकी रचना शैली पर बहुत स्पष्ट है। फारसी की शैली का प्रभाव दिखलाने के लिये 'इश्कलता' के साथ साथ 'वियोग बेलि' का भी नाम लेना पडेगा जहाँ शैली का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और जैसा कि फारसी शब्दो के प्रयोग के सम्बन्ध मे कहा गया है फारसी शैली की अभिव्यक्ति भी इन्ही दो कृतियो तक सीमित नही है, सभी कृतियो मे लक्षित की जा सकती है। वियोग बेलि व्रजभाषा मे लिखित होने पर भी फारसी छन्द मे लिखी गई है।[1] कुछ पंक्तिया देखिये—

रगीले हो छबीले हो रसीले। न जू अपनीन सो हूजै गसीले॥
तुम्हें बिन क्यों जियें तुम ही बिचारौ। बचें कैसें कहौ तुम ही जु मारौ॥
लगौ नीके सबै बिधि प्रान सगी। तिहारी मीन हैं प्यारे तरगी॥
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे। हमारे हौ हमारे हौ हमारे॥
चढाई मूड अब पायनि परेंगी। कहौ जोई अजू सोई करेंगी॥
तिहारो ह्वै कछू क्यौंहू जियेंगी। विरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियेंगी॥

[1] डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : रीतिकालीन कविता एव शृगार रस का विवेचन, पृ० ३८७

छबीले छैल तुमकों पीर काकी। विथा की कथा तें छतियां जु पाकी॥
सजीवन सावरे कब धौं टरौगे। मरैं साधा विरह बाधा हरौगे॥ (वियोगबेलि)

यहां कृष्ण को रगीले, छबीले और रसीले कहने में फारसी शैली की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार फटे हुए या विरह मे घायल हृदय का सोया (सिला) जाना, विरह की कथाओं से छाती का पक जाना आदि फारसी प्रभाव ही समझना चाहिये। फारसी मे प्रेम या विरह का वर्णन करते हुए जिस प्रकार की अत्युक्तिपूर्ण शैली का प्रयोग किया जाता है वैसा ही घनआनन्द ने भी किया है। बिजली के समान माशूक की झलक भी न मिलना, विरही के छुरे से हृदय का क्षत-विक्षत होना, कलेजे का मास खोद खोद कर निकालना, दिल मे जहर घोलना आदि का वर्णन फारसी शायरी का ही प्रभाव है क्योंकि भारतीय काव्य परम्परा मे प्रेम-व्यथा का ऐसा जुगुप्सा जनक चित्रण नहीं किया जाता—'फारसी की शायरी मे माशूक की याद में कभी दिल मे आग लगाई जाती है, कभी जिगर के टुकडे किये जाते हैं, कभी कलेजे की फिरचें निकाली जाती हैं।'* प्रेम की व्यजना मे इस प्रकार के कथन घनआनन्द मे खूब मिलेंगे—

(क) घूटें घटा चहुधा घिरि ज्यौं गहि काटै करेजो कलापिन कूकें।
(ख) कारी कूर कोकिला। कहाँ को बैर काढ़ति री
  कूकि कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।
(ग) बिछुरें क्नि साति मिले हूं न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी।
(घ) पाती मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहि,
  काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल हैं। (सुजान हित)
(ङ) नैन-कटारी जालिम-उर पर ने दारा झुक मारी है।
  महर-लहर ब्रजचद यार दी जिद असाडी क्यारी है। (इश्कलता)
(च) सुघराई सान सौं सुधारि मनि ग्नि कमि,
  कर ही मे लिये निमदार फिरत हैं।
 तेरे नैन सुभट चुहट चोट लागे धीर,
  गिरिघर धीरता कै निरचा करत हैं॥

यह बात कही जा चुकी है कि घनआनन्द मुहम्मदशाह रगीले के मीर मुशी (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण और मुगल रहन सहन, आचार विचार और सभ्यता की छाप का पडना स्वाभाविक था। घनआनन्द के विरह वर्णन में दरबारी रग ढग की झलक स्पष्ट है। उसमे कहीं महदान का वर्णन किया गया है तो कहीं बीगा की भीड का। इसी प्रकार सौंडी, टौंडी आदि शब्दों के व्यवहार भी मुसलमानी दरबार के वातावरण का सूचन करते हैं—

(क) आनद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।
(ख) मादिक रूप रगीले सुजान को पान कियें छिन कौ न छकै को।
 भूल कों सौंपि तर्क जु सबै सुधि शाहू को कानि कनौडत कैं को॥

---

* रीतिकालीन कविता एवं शृगार रस का विवेचन, पृ० ३८७

(ग) जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच है लौंडी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी॥

(सुजानहित)

फारसी में सूफी दर्शन और विचारधारा से सम्बन्धित काव्य प्रचुर परिमाण में लिखा गया है जहाँ मजाजी इश्क (लौकिक प्रेम) के सहारे हकीकी इश्क प्रभुप्रेम (अलौकिक प्रेम) की साधना की गई है। घनआनन्द का सारा जीवन इसी शैली की प्रेम-भावना का सुन्दर दृष्टान्त है, सुजान वेश्या के प्रेम ने उन्हें भगवान कृष्ण का परम अनुरागी भक्त बना दिया था। इन्होंने 'इश्कलता' में ब्रजचन्द से इश्क करने की बात कही है और सूफियों के समान प्रेम की पीर का महत्व बतलाते हुए उसका वर्णन किया है—

लगा इश्क ब्रजचंद सूं, अदर अधिक अनूप। तब हौं इश्कलता रची, आनंदघन सुख रूप॥
संजोगी हैं इश्क सें, इश्क-वियोगी खूब। आनंदघन चस्मों मदा, लग्या रहै महबूब॥
पल पल प्रीति बढ़ाय हुवा बेदरद है। आसिक उर पर जान चलाई करद है।
घनी हुई महबूब सु मरम न खोलिये। आनंद जीवन ज्यान दया कर बोलिये॥
क्यों चितचोर किसोर हुवा बे पीर है। भौंह कमाने तान चलाया तीर है।
अब कहा हौं लेत भद ये लाडिले। आनंद जीवन ज्यान सुचित के चाहिले॥

(इश्कलता)

यहाँ पर माशूक और बेदरद होना, किशोर वय का (कमसिन) होना, उसके आँखों के तीर से कवि का घायल होना, आशिक के हृदय पर दिलजान द्वारा छुरे का प्रहार किया जाना आदि वाले शुद्ध फारसी प्रभाव हैं। यहाँ पर शैली तो शैली वर्ण्य भी फारसी प्रभाव में ओतप्रोत हैं। आशिक-माशूक के तर्ज की ऐसी चर्चा घनआनन्द की कृतियों में जगह-जगह और बार-बार देखी जा सकती है। बार बार उन्होंने कृष्ण को अपना 'यार' बतलाया है—'सज्जन सलौना यार नंद दा मोहना' और उन्हें मजनू के समान ठहराया है और 'दिलजानी' कहकर सम्बोधित किया है। फारसी रंग ढंग की आशिकी की चरम परिणति इस प्रकार की पंक्तियों में देखी जा सकती है—

दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तनमाला है।
रत्ति-दिहाड़े तलब तुसाडी अवकल इनम उड़ाया है।
मैं नूं ध्यान आन नहिं जानी तू घन-कुंज बिहारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥
रहो खुसी महबूब नंद दे मनभाने तित जावो जू।
कदी कदी घनआनंद जानी इन गलियन भी आवो जू।
आस लगी अँखियाँ नूं मांगे दीजै झाकी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥ (इश्कलता)

'इश्कलता' तो एक ऐसी रचना है जिसमें पद पद पर फारसीपन की भरमार है किन्तु उनकी टकसाली रचनाओं में भी जो 'प्रेम की पीर' आदि से अन्त तक विद्यमान है उसमें भी फारसी के सूफी शायरों की प्रेम-पीड़ा की झलक या छाया है। ब्रजभाषा को फारसीपन

शैली में लिखी रचनाओं में यह प्रभाव उतना स्पष्ट नहीं है फिर भी जगह-जगह वह झलक मारती बराबर देखी जा सकती है—

(क) अंतर-आंच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हू कहूं सु घरै नहीं थ्यावस ।।

(ख) अधिक बधिक तें सुजान ! रीति रावरी है,
कपट-चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा विषम दया-छुरी ।। (सुजान हित)

यहाँ पर वियोग की ज्वाला में साँसों का तप्त हो जाना और आवेगों की भाप में अंगों का उबलने लगना और पश्चात्ताप की ऊमस में जीव का तड़पना तथा कृष्ण को बहेलिया बतलाकर पक्षी अर्थात् स्वयं का विद्ध होना, पंखों का उखाड़ दिया जाना और उनकी दया की छुरी में अपने अधमरे होने आदि का जो जुगुप्साजनक व्यापार है वह और कुछ नहीं फारसी रंगत का ही परिणाम है। भारतीय परम्परा के प्रेम वर्णन में वीभत्स व्यापारों की योजना नहीं की जाती किन्तु फारसी शायर वियोग वेदना का निदर्शन करते हुए विरही की आँखों से आँसुओं की जगह खून के बहने का वर्णन करते हैं और इसी प्रकार के दृश्य सामने लाते हैं। इसी परम्परा का अनुगमन करते हुए जायसी, कुतबन, मंझन आदि को इस प्रकार की पंक्तियाँ लिखनी पड़ी थी—

रकत कै आंसु परहिं भुइ टूटी। रेंगि चलीं जस बीर बहूटी ।।
पंचम विरह पंचसर मारै। रकत रोइ सगरौं बन ढारै ।।
बूडि उठे सब तरिवर-पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता ।।
हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भई सब तांति।
रोम रोम सो धुनि उठै कहौं बिथा केहि भाँति ।।

विरह की पीड़ा दिखलाते हुए इस शैली का व्यवहार घनआनन्द में बराबर देखा जा सकता है—

(क) पानी मधि, छाती-छत लिखि न लिखाए जाँहि,
कानी लैं विरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आगुरी बहकि तहाँ पागुरी किन्नकि होती
ताती रातो दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।

(ख) विरहा-रवि सों घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इक लौ छतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मे टपकैं बरुनी निहि ओलतियाँ ।। (सुजान हित)

वीभत्सता और अतिशयोक्ति के सम्मिश्रण से जो एक विचित्र सा आस्वाद काव्य में निष्पन्न होता है भारतीय काव्य परम्परा में वह चीज प्रेमवर्णन के क्षेत्र में विदेशी प्रभाव ही मानी जायगी। किन्तु इनके प्रयोग अत्यन्त अधिक नहीं हैं और नहीं इनके चक्कर में घनआनन्द की निजी पीड़ा ही घुटकर रह गई है। अपनी भावाभिव्यंजना के लिए जो भी शैली संस्कार रूप में कवि को प्राप्त हुई है उसी का उसने व्यवहार किया है। अभिव्यक्ति के लिए वह शैली की खोज करने नहीं गया है।

घनआनन्द जी फारसी वातावरण की उपज थे फलस्वरूप उन्हे फारसी का ज्ञान तो था ही और उपर्युक्त प्रभाव उनकी फारसी परम्परा मे अभिज्ञता के परिचायक हैं। 'विहार-उडीसा रिसर्च जरनल' के आधार पर पता चला है कि घनआनन्द न एक फारसी मसनवी भी लिखी थी किन्तु वह उपलब्ध नही है।[1] यदि उसका पता चल सकता तो घनआनन्द के फारसी परम्परा के साथ घनिष्टतम सबध का अचूक प्रमाण उपस्थित किया जा सकता था क्योंकि मसनवी लेखन की परम्परा फारसी की अपनी चीज है और उसकी कितनी और कैसी समृद्धि ईरान मे हुई है यह हम फारस मे फारसी काव्य की परम्परा का विवरण देते हुए पहले ही दिखा आए हैं।

ठाकुर पर फारसी प्रभाव

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'फारसी काव्यधारा से परिचय होने के कारण इनकी रचना मे कभी-कभी अनुभय-निष्ठ ऐकान्तिक पेम व्यजना भी मिलती है।[2] ऐसा लिखते हुए उनका ध्यान ठाकुर के उस छद की ओर रहा होगा जिसमें ठाकुर ने यह लिखा है कि वह निरमोहिनी भले ही मुझसे प्रेम न करती हो किन्तु इतना तो वह अवश्य जानती होगी कि ठाकुर उसा के लिये उसकी गली से होकर आया जाया करते हैं—

(क) वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेत न ठानति ह्वैहै।
बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वैहै।
ठाकुर या मनको परतीति है, जो पै सनेह न मानति ह्वैहै।
आवत हैं नित मेरे लिये, इतनो तो विशेष कै जानति ह्वैहै॥

(ख) बरुनीन मैं नैन झुकं उझकं मनो खजन मीन के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अगुरीन के पोरन छाले परे।
कवि ठाकुर काहू सो का कहिये निज प्रीति किये के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हें देखिबे के अब लाले परे॥

बोधा पर फारसी प्रभाव

बोधा की भाषा पर फारसी प्रभाव पर्याप्त परिमाण मे लक्षित होता है और विद्वानो को स्वीकार करना पडा है कि विदेशी शब्दो के अधिक प्रयोग के कारण इनकी भाषा प्राजल नहीं रह गई है। इनकी भाषा के दो रूप दिखाई देते हैं एक मे तो ब्रजभाषा का परम्परागत रूप लक्षित होता है दूसरी मे अरबी फारसी की शब्दावली की बहुलता है। व्याकरण की अशुद्धियाँ होते हुए भी भाषा चलती हुई और मुहावरेदार है। दूसरे प्रकार की भाषा मे जो रचनाएँ लिखी गई हैं उनमे आशिकी रगढग बहुत है। बोधा का स्वच्छद काव्य समसामयिक नये फारसी रगढग को लेकर चला है और समीक्षको ने उनके काव्य पर बाजारू रगत का विशेष प्रभाव लक्षित किया है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि जैसे कुछ रीतिबद्ध रचना करने वाले फारसी की बाजारू प्रेम पद्धति से प्रभावित हुए वैसे ही रीतिमुक्त बोधा भी। इनकी ब्रजभाषा की रचनाएँ विशेष अनुभूतिपूर्ण और मार्मिक

[1] घनआनन्द ग्रन्थावली वाङ्मुख, पृ० ७४
[2] हिंदी साहित्य, पृ० ३४८-५०

हैं, किन्तु चलती भाषा के खड़े रूप की रचनाएँ कुछ प्रखर हैं और आशिकी रंगढंग लिये हुए हैं।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है कि 'नेजे', 'कटारी' और 'कुर्बान' वाली बाजारी ढंग की रचना भी इन्होंने कहीं-कहीं लिखी है।[2] डा० जगदीश गुप्त ने भी लिखा है कि 'ब्राह्मण होने के नाते वे संस्कृत के ज्ञाता थे ही, किन्तु उनके काव्य पर उनके फारसी ज्ञान का विशेष प्रभाव है, मुख्यतया शब्दावली के क्षेत्र में। कहीं-कहीं प्रेम भाव की अभिव्यक्ति का स्तर काफी हलका हो गया है, जैसे फारसी परम्परा के काव्य में।'[3] जहाँ फारसी प्रभाव के कारण इस प्रकार की भाषा शैली का व्यवहार हुआ है वहाँ भावपक्ष भी पतित हो गया है और प्रेम वर्णन में बाजारूपन की गंध आने लगी है, उदाहरण के लिये उनका यह छंद देखिए—

> एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
> कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसकाहट ताको।
> सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
> जान मिलै तौ जहान मिलै, नहिं जान मिलै तौ जहान कहाँ को॥

बोधा के निम्नलिखित छन्द को लक्ष्य करके मिश्रबन्धुओं को यहाँ तक लिखना पड़ा है कि 'इस छन्द से अधिक शोहदापन मिलना कठिन है।'[4] छंद देखिये—

> कंपत गात सवात बतात है सांकरी खोरि निसा अँधियारी।
> पातहू के खरके धरके डर लाग रहै सुकुमारी।
> बीच में बोधा रचै रस रीति मनो लग जोति चुवयो तिहि बारी।
> यों दुरि केलि करै जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी॥

बोधा की शायरी पर फारसी रंगढंग का प्रभाव दिखलाने के लिये उनकी आशिकाना तर्ज की रचनाओं के प्रसिद्ध संग्रह 'इश्कनामा' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना अनुचित न होगा—

> (क) कुनहदार अनियारो आछो खुसी करै दिल खूबी सों।
> खिलबिन खिन खिन खूबी वारो राखै इश्क हबूबी सों॥
> (ख) पहिचानै प्रेम रवानै जे बेपरद दरद दरियाव हिलै।
> नगहर दिखाने आखिर या दिलचूर प्रेम को पंथ पिलै।
> (ग) महिरम जान मास हम बेचो नेह नसा टहराइ।
> सो आसिक को देन न पावै मजा न दिल को पाइ॥

फारसी प्रधान शब्दावली के प्रयोग से ये पंक्तियाँ दुरूह हो उठी हैं। बोधा के जीवनवृत्त सम्बन्धी प्रकरण में यह बात कही हो जा चुकी है कि बोधा को फारसी भाषा का ज्ञान था और राज्याश्रित कवि होने के कारण फारसी शायरी से उनका परिचय असम्भव नहीं

---

[1] वाङ्मय विमर्श, पृ० २०४-५
[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४२
[3] रीतिकाव्य संग्रह, पृ० ३६६
[4] मिश्रबंधु विनोद: द्वितीय भाग, पृ० ८२६

४

फारसी काव्य और रीति-स्वच्छन्द काव्य की समान भावभूमि

अब भाव साम्य सम्बन्धी कुछ तथ्यों, प्रसगों और उदाहरणों को लेकर हम यह देखने दिखाने की चेष्टा करेंगे कि किस प्रकार फारसी और रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा की काव्य भूमियाँ एक दूसरे के सन्निकट रही हैं या आ गई हैं। ईसा की बारहवीं शताब्दी मे होने वाले उमरखैयाम का कहना था कि कविता उसके लिए एक पेशा नही वरन् आनद का साधन है। फारसी के इस शायर का काव्य विषयक यह आदर्श स्वच्छद धारा के कवियो के काव्यादर्श से कितना मिलता जुलता है। रीति काल के रीतिबद्ध कवि राजाओं और आश्रयदाताओं की प्रशस्ति मे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर रहे थे तथा पाण्डित्य प्रदर्शन और चमत्कार दिग्दर्शन के लिए कवि प्रतिभा का नियोजन कर रहे थे। इसी युग के घन-आनन्द, ठाकुर, बोधा आदि रीतिमुक्त कवियो ने काव्य रचना के इस चालू मार्ग को छोड़ उसे उसका स्वाभाविक रूप और आदर्श प्रदान किया। काव्य अर्थ-साधन और चमत्कार-प्रदर्शन के ओछे उद्देश्यो को लेकर चले, यह कोई वांछनीय स्थिति न होगी। वह हृदय के आनन्द-करुणा, सुख-दुख, हर्ष-विषाद को व्यक्त करे, कर्ता और आस्वादयिता के हृदय को मुग्ध करे, कवि और पाठक दोनों को आनदित और आह्लादित करे, यही स्थिति स्पृहणीय हो सकती है। घनआनन्द, ठाकुर आदि ने कविता को उसके इसी स्पृहणीय मार्ग पर लगाया। उनके जमाने के लोग कवित्त बनाने मे लगे हुए थे पर उनका काव्य तो स्वय उन्ही का निर्माण (परिशोधन, आह्लादन) कर रहा था—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत। (घनआनंद)

ठाकुर ने भी प्रकारातर से यही बात अन्य कवियो पर आक्षेप करते हुए कही थी—

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है। (ठाकुर)

स्वच्छन्द धारा के कवियों के ये आदर्श फारसी शायर उमर खैयाम की काव्य-भावना के नितात मेल मे है । उमर खैयाम ने लौकिक प्रेम मे सुराही, सुरा, साकी और प्याला में जीवन का चरम प्राप्य घोषित किया था। रीति स्वच्छन्द कवि भी प्रधानत लौकिक प्रेम के ही उमगपूर्ण गायक थे। फारसी के शायरो मे सूफीसिद्धान्तो का विशेष चलन था। सनाई, अत्तार, रूमी, सादी, हाफिज आदि सभी महान शायर इसी मत के मानने वाले थे। इनके अतिरिक्त भी शत-शत फारसी शायरों मे सूफी रहस्यवाद और प्रेम की पीर तथा प्रेम-तत्व की प्रधानता का उत्साहपूर्वक वर्णन मिलता है। स्वच्छद धारा के कवियो मे यथा घन-आनन्द, बोधा और रसखान मे सूफी भावना की झलक मिलती जिसकी व्याख्या विस्तार-पूर्वक अन्यत्र की गई है। प्रेम भावना का प्राधान्य और 'पीर' या 'विरह' वर्णन की अधिकता से रीति स्वच्छन्द काव्य भी वैसे ही ओतप्रोत है जैसे फारसी का काव्य। प्रिय की खोज में जो तड़प यहाँ है वहाँ वहाँ भी किन्तु फारसी शायरी मे सूफी पद्धति की रचनाओं मे जैसी जैसी धार्मिकता, पवित्रता और आध्यात्मिकता है उसका इन स्वच्छन्द कवियो मे एकान्त अभाव है उदाहरण के लिये ये स्वच्छद कवि आत्मज्ञान तथा सासारिक आकर्षणों के त्याग की बात नही करते जैसा कि फारसी के शायर करते पाये जाते हैं[1] न उनकी दृष्टि अपने युग की ओर है और न पाप पुण्य की ओर। न वे अपने जमाने की बुराइयों की चर्चा करते हुए असंतोष व्यक्त करते पाये जाते हैं और न सद् और असद् का निर्णय कर मतों और सूफियों की भांति दुष्टो को ईश्वरीय कोप से आगाह करते पाए जाते है। उनकी दृष्टि शुद्ध सासारिक है, अपनी ओर है, एक दम व्यक्तिनिष्ठ है। सासारिक प्रेम ही उनका प्रतिपाद्य और परम काम्य है। वे ससार के ही प्रेम मे उन्मत्त रहने वाले हैं। ससार का सौंदर्य ही अभी उनके लिए काफी है। रसखान, घनआनन्द आदि ने जो प्रेम को ईश्वरोन्मुख कर दिया है वह स्वच्छन्द कवि की मूल वृत्ति नही है। उनकी तड़प अपनी लौकिक प्रेमिका के लिए है उदाहरण के लिए घनआनन्द की सुजान के लिए, बोधा की सुभान के लिए, ठाकुर की अज्ञात सुनारिन के लिए आदि। वे फारसी सूफियो की भांति इश्क हकीकी के लिए तड़पते नही पाये जाते[2]। सूफी सिद्धान्तो और आदर्शों का सांकेतिक उल्लेख उन्होंने भले ही किया हो किन्तु उनका प्रतिपादन और अनुसरण रीति-स्वच्छन्द कवियों मे नहीं। इसके लिए तो हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों का अवलोकन करना पड़ेगा। ये स्वच्छन्द प्रेमी आत्माओं द्वारा परमात्मा की खोज का वृत्तात नही प्रस्तुत करते और न पक्षियों द्वारा किसी सीमुर्ग की खोज या मुहम्मद साहब के आध्यात्मिक पर्वतारोहण या तोते और आइने (मीना) के दृष्टान्तो द्वारा आध्यात्मिक आशयों तथा सूफी रहस्यवाद का प्रतिपादन करते नही पाये जाते जैसा कि अत्तार ने अपने मंसनवीक—अल-नयर, मुसीबत-नामा, असरार-नामा आदि में किया है[3]। हिन्दी के स्वच्छन्दता वादी कवियों का प्रिय लौकिक होता है और वे किसी अमरद पर नही मरते पाए जाते। उनकी एक प्रेमिका होती है जिस पर वे सर्वतोभावेन रीझे हुए होते हैं। वे उसी के लिए जीते और मरते है। ऐसा इसलिए करते हैं

---

१ देखिए नासिरे खुसरो की कविता Classical Persian Literature, पृ० ६७-६८

२ देखिए अनसारी की कविता, वही, पृ० ६४-६५

३ वही, पृ० १३२-३३

कि यही उन्हे भाता है और यही उनका स्वभाव हो गया है। उसके लिए जो प्रेम और व्यथा इनमे है वह फारसी के सूफी शायरो की किसी सीमा तक देन कही जा सकती है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए आपको फारसी काव्य की भावभूमि की ओर ले चलना आवश्यक है।

फारसी शायरी में प्रेम का आलबन अलौकिक परमात्मा भी है और लौकिक जीव भी। वे खुदा या अल्लाह के विरह मे भी बेतरह तडपते पाए जाते हैं और किसी खूबसूरत नौजवान या चचल बाला पर भी मचलते पाए जाते हैं। इन शायरो ने कभी खुदा को, कभी सासारिक प्रिय को और कभी दोना को वरण किया है और उसके लिए तडपे हैं। फारसी मे सूफियाना रग ढग की बडी ही समृद्ध परम्परा है और इस पद्धति के शायरो ने ईश्वरीय अथवा दैवी प्रेम के ऐसे उन्मादक और प्राणो को मथ देने वाले चित्र प्रस्तुत किए हैं जैसे अन्य भाषाओं के रहस्यवादी काव्यों मे मिलना मुश्किल है। ऐसा उन्मेषशील काव्य साधारणत भी सुलभ नहीं। कवि अह्लाद-विह्वल दशा मे उस दिव्य प्रिय के आगमन का वर्णन करता है जिसके लिए वह इतने समय तक प्रतीक्षा करता रहा है। वह कहता है—हमारा प्रिय ऐसा चन्द्रमा है जैसा इस गगन मडल ने कभी नही देखा। उसकी आंखो मे खुमारी है, पता नहीं वह जगता है या स्वप्न मग्न है, जब पहले मैंने इस मधुर हृदय को अपना मित्र बनाया मेरे दिल मे उसकी शराब ने आग लगादी और मेरी नसो मे स्फूर्ति आ गई और जब उसकी मूर्ति मेरी आंखो मे छा गई तो मुझे एक आवाज सुनाई दी—ओ पगले! ओ शराब! तूने बहुत अच्छा किया[1]। दिव्य प्रेम के उन्माद या नशे मे प्रेमी अपने आप को बिलकुल भूल जाता है। मधुर सुगधित वायु लगता है उसके प्रिय की गली से होकर आती है और समूची सृष्टि उस प्रिय की सुगधित सास से ही आपूर प्रतीत होती है। कवि उस सुरभि मे बेहोश हो जाता है। चूकि यह उन्माद परम प्रिय के कारण हैं इसलिए उसे यह देखने की भी आवश्यकता नही कि वह अच्छा है या बुरा। इस प्रेम मे यदि व्यथा भी है तो यह प्रिय है क्योंकि वह प्रिय की दी हुई है या उसकी ओर से वह व्यथा का ज्वार आता है[2]। घनआनन्द ने भी ऐसा ही भाव इसी उदाहरण के माध्यम मे व्यक्त किया है—

> तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसाहि लै सान चढावत।
> प्रानिन प्यास, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप बढावत।
> यों घन आनद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत।
> लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत। (घनआनंद)

जैसा ऊपर कह आये हैं ईश्वरीय प्रेम या सूफी मत वाद से प्रभावित फारसी काव्य का स्वच्छद शैली के कवियो पर उतना प्रभाव नही पडा किन्तु उनके प्रेम की पीर अवश्य इन कवियो मे झलकती है, साथ ही साथ फारसी का जो लौकिक शृङ्गार काव्य है उसमे जिस प्रकार की शृङ्गार भावना और प्रेमाभिव्यक्ति पाई जाती है उसकी छाप भी इन रीति स्वच्छन्द कवियो पर थोडी बहुत देखी जा सकती है। फारसी के शृङ्गारी कवि किसी खूब-

---

१ देखिये रूमी की कविता Classical Persian Literature, पृ० २३३
२ देखिये मुईन की कविता Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ ३०३-४

सूरत नौजवान या अस्थिर चित्त वाली किशोरी के प्रेम में पागल पाये जाते हैं।[1] उनके हृदय में प्रिय के रूप की प्यास होती है, उसका रूप देखने के लिए वे स्वर्ग तक की अवहेलना कर सकते हैं।[2] यही भाव स्वच्छन्द प्रेमियों ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

(क) एक सुभान के आनन पै कुरवान जहां लगि रूप जहां को।
　　कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसकाहट ताको। (बोधा)

(ख) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं।
　　कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं॥ (रसखान)

(ग) पै रसखानि वही मेरो साधन और त्रिलोक रहौ कि नसावौ। (रसखान)

प्रिय के रूप पर ये शायर सौ जान से निसार हैं। उसके गुलाबी गालों पर, वेले के समान उज्ज्वल हाथों पर वे बुखारा और समरकन्द का सारा वैभव निछावर करने को तैयार हैं। इसी प्रकार वे शीराज की तुर्की कुमारिका के कपोलों पर जो तिल है उसके लिए वे बुखारा और समरकंद के साथ-साथ अपना दिल भी मोल में देने के लिए तैयार हैं। ये भाव हाफिज के हैं।[3] अमीर खुसरो ने भी अपनी प्रभावात्मक शैली में अपने खूबसूरत माशूक के रूप सौंदर्य की बेहतरीन व्यंजना की है। वे कहते हैं—मेरी इतस्ततः विचरण करने वाली आंखों ने तुझसे बेहतर रूप नहीं देखा है। यह रूप धरती का है या आसमान का? मैंने दुनिया में एक से एक सुन्दर रूपसियों को देखा है लेकिन तू तो कुछ और ही है। हर व्यक्ति तेरा शिकार है, हर हृदय तेरे सौन्दर्य की धारा में बहता है। तेरी नरगिसी आंखें तेरी मूर्ति का उपासक बना देती हैं। खुदा के नाम पर मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ तू मुझ अपरिचित पर रहम कर।[4]

रूपवान या रूपवती के प्रति दूसरा भाव जो प्रधान रूप से प्राप्य है वह यह है कि ऐसे रूप के प्रति जिसके प्राणों में तृषा न हो उसका जन्म और जीवन ही व्यर्थ है। यह भावना प्रणयी के मार्ग को निश्चित दिशा देती है और यह जाकानी के शब्दों में कहने लगता है कि प्रिया की घुंघराली अलकों में जो हृदय बंधा नहीं उसका होना न होना बराबर है। ऐसे सौन्दर्य के प्रति पागल हो जाने में जो आनन्द और जीवन स्वाद है वह बुद्धि के द्वारा विचार और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करने में नहीं। बुद्धि से नाता तोड़ दो क्योंकि जिंदादिल लोग बुद्धि को कुछ समझते ही नहीं।[5] यही भाव घनआनन्द में भी बड़ी खूबसूरती से आया है—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के बिना मनुष्य नाम के लिए ही मनुष्य है अन्यथा उसके हृदय की तो सारी दुनियाँ ही उजड़ी हुई है। प्रेम की वेदी पर लोक परलोक दोनों ही निछावर हैं और प्रेमी

---

[1] Classical Persian Literature, पृ २६६

[2] देखिये ख्वाजा हसन सजरी देहलवी की कविता Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० ४५२-५३

[3] Classical Persian Literature, पृ० ३५३

[4] वही, पृ० २७६

[5] देखिये जाकानी की कविता

इस तथ्य से भली भाँति परिचित रहता है[1]। प्रेम के बिना हज करना या काबा पहुँचना भी कोई अर्थ नही रखता।[2] स्वच्छन्द धारा के एक कवि ने इसी स्वर में कहा है कि—

लोक की भीति औ सोच प्रलोक को प्रीति के ऊपर वारिये दोऊ। (बोधा)

फारसी शायर बार बार इस भाव पर जोर देते पाये जाते हैं। ख्वाजा हसन सजरी देहलवी ने कहा है कि नवीन वसंत ऋतु के समान यह सौंदर्य और यह रूप संसार का साक्षात स्वर्ग है। मैं आज इस स्वर्गिक सुषमा के साथ हूँ, मुझे आने वाले कल की क्या परवाह! दोनों लोक (लोक परलोक) बरबाद हो जाँय मेरी बला से। जब मेरा प्रेमाधार हृद है मुझे किसी का क्या डर? यहा प्रेम का साम्राज्य है और बुद्धि निष्कासित कर दी गई है।[3] घनआनन्द की इसी आशय की पंक्ति फिर याद आती है—'*रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।*' प्रेम में रीझ का हृदय ही राज्याभिषिक्त होता है, बुद्धि को सम्मान नही दिया जाता, उसे नीचे स्थान पर ही रहना पड़ता है। प्रेमी मनोलोक का यह सत्य प्रेमशील कवियों ने बड़ी विलक्षणता से लक्षित किया है। प्रसिद्ध फारसी शायर फैजी लिखते हैं कि प्रेमोन्मत्त प्राणी का धर्म नही पूछा जाता उसकी जात नही जाची जाती, उसके द्वारा अर्जित ज्ञान या पांडित्य का पता नही लगाया जाता क्योंकि वह तो सारी पोथियों को आग लगा चुका रहता है।[4] पोथियों के पढ़ने से पण्डित न बनने की बात कबीर भी कह गये हैं क्योंकि वे भी प्रेम रस का मधुर स्वाद ले चुके थे। स्वच्छंद वृत्ति के रसखान ने इस भाव को यों प्रस्तुत किया है—

> सास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलवी कुरान।
> जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियौ रसखान॥

प्रेमी के लिए प्रेम या इश्क स्वतः एक मजहब है जो सब धर्मों से बड़ा है, सर्वोपरि है।[5] नाजिरी का यह मत उरफी मे इस प्रकार व्यक्त हुआ है। उरफी कहते हैं प्रेम के पुष्पोद्यान मे हर कदम पवित्र कर्बला है।[6] अपनी प्रेम सबंधिनी रचना में बिहारी ने इस भाव को बेहद खूबसूरती से जाहिर किया है—

> तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग।
> जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयाग॥ (बिहारी)

जो प्रेम इसानी जिन्दगी मे इतनी अहमियत रखता है वह कांटों का भी रास्ता है, वह कुर्बानी चाहता है। उसके लिए जो तैयार न हो वह इस रास्ते पर कदम ही न रखे।

---

१ देखिये कासिम-ए-अनवर की कविता Classical Persian Literature, पृ० ४२२

२ देखिये ख्वाजा हसन सजरी देहलवी की कविता Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० ४५४-५५

३ देखिये ख्वाजा हसन सजरी देहलवी की कविता, वही, पृ० ४५६

४ देखिये फैजी की कविता A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court : Akbar, पृ० ५७

५ देखिये नाजीरी की कविता, वही, पृ० ८२

६ देखिये उरफी की कविता, वही, पृ० ११२

ये भाव फारसी शायरी और रीति स्वच्छंद कवियों में बराबर पाये जाते हैं। बोधा आदि ने पुकार-पुकार कर कहा है—

(क) प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है।
(ख) यह प्रेम को पंथ हलाहल है सु तौ वेद पुरानऊ गावत हैं।
पुनि आखिन देखी सरोजन लै नर सम्भु के सीस चढ़ावत हैं।
(ग) बोधा सुनीति निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तो प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ॥ (बोधा)

प्रेम के मार्ग में प्रिय की ओर से उदासीनता ही मिलेगी। सोच लो, इसके लिए तैयार हो तभी आओ वरना अच्छा है अभी से लौट जाओ। बहुत मुश्किल राह है। ये सारी चेतावनी देनी पड़ती है। यह बलिदानों का मार्ग है, अपने ही हाथ से अपनी गर्दन उतारकर रख देनी पड़ती है, बिना इस तैयारी के आना बेकार है।

प्रेमी परिणाम की चिंता नहीं करता। सादी के मत में प्रेमी को लापरवाह होना चाहिए, परिणामों के प्रति उसे उपेक्षापूर्ण वृत्ति रखनी चाहिए। प्रिय को जो पा लेता है उसका हृदय लोकापवादों के लिए मजबूत ढाल बन जाता है, उसे तुच्छ मनुष्यों की निन्दा का डर नहीं रहता। उसका प्रेम उसे ऐसी शक्ति देता है जो उसे लोक परलोक की अवहेलना करने की शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति साधारण मनुष्यों में नहीं आ सकती। उसे आगत और विगत कल की चिंता नहीं होती, वह अपने वर्तमान को ही साधता है।[1] लोक की निन्दा की परवाह मत करो यह भाव स्वच्छन्द कवियों ने इस प्रकार रक्खा है—

बोधा कहे को परेखो कहा दुनियां सब मास की जीभ चलावत।
जाहि करै जाके हितू ने दई वह छोड़े बनै नहिं ओढ़ने आवत॥ (बोधा)

आलम की गोपिका यह कहती पाई जाती है कि हमने तो कुल की लज्जा छोड़ दी, अब अगर कलंक लगे तो लगा करे—

आलम नैननि रीति यहै कुलकानि तजो पुत री मुह मे मसि। (आलम)

तुम्हारे लिए हम क्या-क्या व्यथा सह रही हैं और तुम्हें जरा भी हमारी परवाह नहीं—

जा दिन तै तुम चाहे लोग कहैं पीरो काहे,
पीरौ न जनैये पल पल जिय जरियै।
घूंघट की ओट आसू घूटिबो करत नैना,
उमगि उसांस की लौं धीरज यौं धरियै॥ (आलम)

लोक निंदा की उपेक्षा ठाकुर ने यह कहकर की है—

(क) मूसर चोट की भीति कहा जजि कै जब मूड दियो ओखरी में। (ठाकुर)
(ख) कवि ठाकुर नेह के नेजन की उर मैं अनी आन खगी सो खगी।
अब गांव रे नाव रे कोई धरो हम सावरे रंग रँगी सो रँगी॥ (ठाकुर)

---

[1] देखिये सादी के विचार

और रसखान ने इस प्रकार—

(क) ता दिन ते उन बैरिन को कहि कौन न बोल कु बोल सह्यो री।
तौ रसखानि सनेह लग्यौ, कोउ एक कह्यौ कोऊ लाख कह्यौ री॥ (रसखान)

(ख) रसखानि महावत रूप सलोने कौ मारग तै मन मोरत हैं।
यह काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज को तोरत हैं॥ (रसखान)

फारसी प्रणय काव्य का प्रेमी लोक लाज की तो अवहेलना करता ही है मृत्यु तक की परवाह नहीं करता। हर शख्स जो इस रास्ते में आता है अपना कलेजा अपने हाथ में लेकर आता है। समर्पित जीवन की बात वह सोचकर चलता है।[1] प्रेमी निर्भीक होता है, वह मौत से नहीं डरता। इस पथ का पथिक जाबाज होता है जान की बाजी लगा देने वाला। वह अच्छी तरह जानता है कि प्रेम मार्ग का पथिक अपने माशूक की पालकी तक जीवित दशा में नहीं पहुँचा करता, जब तक वह समुद्र में मरता नहीं वह किनारे नहीं लगता।[2] प्रेमी जानता है कि दुख ही उसका जीवन है, जब तक उसके शरीर में प्राण हैं व्यथा उसका साथ नहीं छोड़ने वाली। वह पारे की तरह होता है क्योंकि जब तक उसका प्राणान्त नहीं होता उसकी बेचैनी नहीं जाती।[3] उसे फारसी के शायर मौत का शिकार समझते आये हैं। नाजीरी ने कहा ही है कि प्रेमी जिधर भी देखे यातनामयी मृत्यु का ग्राम ही है। इस शहर (ससार) के मारे जाने लोगों (प्रेमियो) की कब्र की ओर देखो किस प्रकार उनकी आशाकाक्षाओं के ककाल वायु रूप हो गये हैं।[4] जो प्रिय की आँखों का शिकार होकर शहीद नहीं होता इस्लाम के अनुसार उसके लिए मरने पर दुआएँ नहीं की जाती।[5] प्रेम में मौत के लिए तैयार रहना, जान की बाजी लगा देना, आजीवन दुख का वरण करना, और यातनामयी मृत्यु झेलने के लिए तैयार रहना आदि बातें इतनी तीव्रता के साथ तो नहीं फिर भी निष्ठा-पूर्वक स्वच्छन्द धारा के कवियों ने कही हैं। इसी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति देखिए—

दीजे इनत सीठ सलोने सावरे। खून करें ये नैन हुए लडबावरे॥
खूनी कीमें जाय करेजें घाव है। आनद-जीवन जान न आन बचाव है॥
(घनआनंद)

प्रेम फास मैं फसि मरै, सोई जियै सदाहि।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहि।
कोउ याहि फासी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा, भाला, तीर कोउ, कहत अनोखी ढार।
पै एतोहू हम सुन्यौ, प्रेम अजूबो खेल।
जाबाजी बाजी जहाँ, दिल का दिल से मेल॥

---

१ देखिए उरफी की पक्तिया A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court - Akbar, पृ० ११३
२ देखिए फैजी की पक्तिया, वही, पृ० ५३
३ देखिए फैजी की पक्तिया, वही, पृ० ५६
४ देखिए नाजीरी की पक्तिया, वही, पृ० ८१
५ देखिए नाजीरी की पक्तिया, वही, पृ० ८४

सिर काटो, छेदो हियो, टूक टूक करि देहु।
पै याके बदले विहँसि, वाह वाह ही लेहु॥
(रसखानि : प्रेमवाटिका)

बोधा कहते हैं प्रेम के सामने मृत्यु क्या चीज है ? उसकी परवाह जो करे वह कैसा प्रेमी ?

कवि बोधा बजाइ कै प्रीति करै यह आत्मज्ञान हिये में धरै।
हम राम दोहाई न झूठी कहैं यह प्रीति सो मौत तरै पै तरै॥ (बोधा : इश्कनामा)

फारसी शायरी में प्रेम का समरूप नहीं वरन विषम रूप ही दिखाया गया है जिसमें एक पक्ष प्यार करता है, अपना सर्वस्व दे देता है दूसरा पक्ष उदासीन रहता है यही नहीं उपेक्षा भी करता है। यहाँ प्रेम एक पक्षीय है, वह सम नहीं विषम है। इस प्रेम-विषमता की बात फारसी शायरी में विशद रूप में वर्णित हुई है और प्रेम की यही एक पक्षीयता रीति-स्वच्छन्द कवियों ने भी प्रधान रूप से प्रतिपादित की है। स्पष्ट ही वे फारसी प्रेम वर्णन की इस शैली से प्रभावित हुए। फारसी से ही क्यों प्रभावित हुए इनके ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक कारणों की पृष्ठभूमि बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं, वह अन्यत्र दी जा चुकी है। फारसी शायर कहते हैं कि प्रेम की तो प्रथा ही यह है कि प्रिय हृदय हर ले और प्रेमी प्राण दे दे। ख्वाजा हसन सजरी ने जोर देकर कहा है कि प्रिय के लिए प्रेमी को प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिए, यही प्रेम की रीति है।[1] ये अन्यत्र अपने प्रिय को संबोधित करते हुए कहते हैं—ऐ दोस्त, तुम मेरी जिंदगी में तो आते नहीं इसलिए तुम्हें अपने आशिकों की हालात का क्या पता जो तुम्हारे इश्क में खोए हुए हैं। मेरे महबूब, मैं तो तेरी गली का कुत्ता हूँ, तू मुझे अपनी निर्ममता के पत्थर से क्यों मारता है, मेरे लिए तो दूसरा कोई द्वार भी नहीं है। इस प्रेम निष्ठा में नादिन ख्वाजा अपने आप से ही कहने लगते हैं—ऐ अक्लवद ख्वाजा, तू अपने दिल की होश कर! जिन लोगों के पास दिल ही नहीं है उनके दोषों को देखना कोई ठीक बात नहीं। मैंने तो अपना ध्यान एक बार फिर अपने खूबसूरत प्रिय की ओर केन्द्रित कर लिया है। धूल पड़े उस सिर पर जिसमें किसी के प्यार का दर्द नहीं उठता।[2] प्रेम की प्रगाढ़ निष्ठा ख्वाजा के मन को उदात्त बना देती है, वे प्रिय के दोष देखना छोड़ अपने ही दिल की अपनी राह पर अविचलित भाव से चले चलने की नसीहत देते हैं। स्वच्छंद धारा के कवियों ने बिलकुल इसी प्रकार के भाव सामने रखे हैं। घनआनन्द ने बारबार कहा है कि तुम अपने से न्यारे होकर जब हमारा दुख देखोगे तभी हमारी दशा का पता चलेगा—

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपने हू कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो संजोग बियोग धौं आहि, फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझ परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तें न्यारे॥ (सुजानहित)

---

[1] देखिये ख्वाजा हसन सजरी की कविता Pre Mughal Persian in Hindustan पृ० ४६१

[2] देखिये ख्वाजा हसन संजरी की कविता, वही, पृ० ४५३-५४

प्रेमी के भाग्य में ही याद करना और दुख झेलना लिखा होता है इसलिए प्रिय को दोष देना ठीक नहीं—

(क) इत बाट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू॥ (सुजानहित)

(ख) रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाइये। (घनआनद कवित्त)

(ग) सकट समूह मै विचारे घिरे घुटै सदा,
जानि न परत जान कैसे प्रान ऊबरे।
नेही दुखियान की यहै गति अनदघन,
चिंता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे॥ (सुजानहित)

ख्वाजा का अन्तिम भाव देव कवि ने बड़े सुन्दर ढग से वर्णित किया है—

राधा मोहन लाल को जिन्हें न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस तिनको आखिन खेह॥ (देव)

इस प्रकार ये शायर प्रिय या माशूक की क्रूरता के बावजूद भी अपनी प्रेम-निष्ठा कायम रखते है। वे न उनकी निष्ठुरता का परवाह करते हैं और न उन्हें दोष देते हैं। वे चाहे जितना भी दुख सहें और तिल-तिल कर मरें पर वे अपना इश्क नही छोड़ते। यह एक तरफा इश्क फारसी शायरो का बहुत प्रिय विषय रहा है। जाकानी ने अपनी सूफी मसनवी उश्शाकनामा (र० का० १३५० ई०) मे फारसी शायरी मे प्रचलित पद्धति की ही कथा लिखी है जिसमे असफल प्रणय का वर्णन हुआ है। शायर एक खूबसूरत महबूब (प्रिय) के प्रेम मे पडता है और उससे पत्र आदि के द्वारा अपना प्रेम सम्बन्ध जोड़ता है। पहले तो उसके प्रयत्नों को ठुकरा दिया जाता है परन्तु बाद मे उत्साहित किया जाता है। एक बार सुखद भेंट भी होती है किन्तु इसके बाद जब वे अलग होते है तो ऐसे कि फिर मिलने की कोई आशा नही रहती।[1] इसी प्रकार १३ वी शताब्दी के शायर जमाल अलदीन सलमान ने भी अपने सुन्दर गीतों मे इसी आशय के प्रेम का वर्णन किया है जिसमे एक ओर तो उद्दाम आसक्ति है और निश्चिन्त या निर्भीक निष्ठा है तथा दूसरी ओर क्रूर उपेक्षा।[2] प्रसिद्ध फारसी शायर जामी ने अत्यन्त दीन होकर अपनी समूची सत्ता को ही प्रिय पर अर्पित कर दिया है किंतु प्रिय इतना निर्मम है कि कुछ परवाह ही नहीं करता। वे कहते हैं—हे मेरे प्रिय, तेरे रूप से अधिक तो मेरा प्रेम ही मुझे मारे डालता है। मेरा शरीर तेरे ख्याल मे निष्प्राण हो जाता है। जब तुमसे मिलने का समय आएगा तब मैं बताऊँगा किस प्रकार तेरे वियोग मे मेरा दिल रक्त बहाता रहा है। उस मिलन वेला मे पहले मैं अपनी व्यथा किस प्रकार कह सकता हूँ। दुख के अतिरेक के कारण मेरी रसना मौन है। तुमने पूछा कि इस व्यथा की हालत मे मेरे दिल की क्या दशा है? मैं इसका उत्तर कैसे दूँ, मेरा दिल तो तुम्हारे ही पास है। देखो, अपना दामन हटा मत लेना वरना मेरा प्राणरक्त आवेग के

---

[1] Classical Persian Literature, पृ० २६६
[2] वही, पृ० ३२२-२३

साथ तुम्हारे चरणों पर वह चलेगा। जामी ने यह कहकर कि मैं तुम्हारे दरवाजे की रखवाली करने वाला कुत्ता हूँ अपना सिर तुम्हारे द्वार पर रख दिया है।[1] जामी अन्यत्र लिखते हैं—हे प्रिय, तू अपने प्रेम के बंदी की ओर नहीं देखता और नहीं देखना उस अपरिचित को जो तेरे दरवाजे पर पड़ा है। क्या तू भूल कर भी मेरे ऊपर दृष्टि न डालेगा जिसकी किसी और से मुहब्बत नहीं, न निकटता ही है। मेरे दुश्मनों की कही हुई बातों में न आ। मुझसे अधिक तेरा कोई मित्र नहीं। तुझे याद कर मेरा दिल तड़पता है और मेरे हृदय का रक्त मेरी आँखों में आ जाता है। मेरी हृदयहीनता तू कैसे सिद्ध कर सकेगा। मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरी व्यथा किस प्रकार तुम्हारे हृदय को द्रवित कर सकेगी जिसमें मुहब्बत और सचाई नाम के लिए भी नहीं है। फिर भी मेरी प्रार्थना है कि मुझे अपने दरवाजे से मत अलग करो, जो व्यथा मुझे होती है उससे तुम्हें क्या करना ? वह तो मुझे होती है न।[2] इस प्रकार नाना भावों और अन्त-व्यथाओं का निदर्शन करते हुए फारसी शायर प्रेम के एक तरफा होने की बात बराबर कहते पाये जाते हैं। यह प्रेम विषमता रीति-स्वच्छंदता कवियों में भी जो इतनी अधिकता से गोचर होती है उनका कारण यही फारसी प्रभाव ही है। बात यह है कि प्रेम की एक-पक्षीयता दिखलाने से प्रेमी हृदय के विशद चित्रण का सुभीता था। वियोग और अप्राप्ति में ही प्रेमी के प्रेम की प्रखरता का पता चलता है। विरह जितना ही तीव्र होता है प्रेम उतना ही रंग लाता है। भारतीय काव्यों में प्रेम के समत्व का ही विधान हुआ है। दोनों पक्ष प्रेम करते हैं और वियोग की स्थितियाँ आती हैं जिनमें दोनों पक्षों के हृदयों की व्यथा सामने लाई गई है। फारसी काव्यपरम्परा में आशिक मात्र के तड़पने की बात सिद्धान्त रूप में स्वीकृत हुई है, माशूक का काम है उपेक्षा करना, अपमान करना, ठुकराना आदि और आशिक होते हैं जो खुशी के साथ ये सब सहते हैं। इसी में वे आशिकाना जिन्दगी का सच्चा लुत्फ मानते हैं। इस इकतरफा मुहब्बत का वर्णन ठाकुर, बोधा और घनआनन्द में, विशेषकर घनआनन्द में विशद रूप में देखा जा सकता है। घनआनन्द का तो समस्त श्रेष्ठ साहित्य ही प्रेम वैषम्य की प्रौढ़ व्यंजना है।[3] यह विषमता उनके जीवन में ऐसी घुल गई है कि उनका अंतर्बाह्य सब कुछ उसमें ओतप्रोत हो उठा है। उनकी वाणी में भी वैषम्य या विरोध है, प्राणों में तो है ही। घनआनन्द के प्रेम वैषम्य पर अन्यत्र विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। स्वच्छंद कवियों में भी प्रेम की एकपक्षीयता दिखाने के उद्देश्य से केवल कुछ पंक्तियाँ संकेत रूप में दी जा रही है—

(क) मेरौ मन आली वा बिसासी बनमाली बिन
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कों। (घनआनंद)

(ख) मन जैसें कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसें सुजान हौ हौ।
इन प्रानिनि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ॥
(घनआनन्द)

---

[1] देखिये जामी की कविता Classical Persian Literature पृ० ४३६
[2] देखिये जामी की कविता, वही, पृ० ४३६
[3] देखिये घनानद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३४८

(ग) घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहा एक तें दूसरो आक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढे हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाक नहीं॥

(घनआनन्द)

(घ) वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वैहै।
ठाकुर या मन को परतीति है, जो पै सनेह न मानति ह्वैहै।
आवत हैं नित मेरे लिये, इतनो तो विशेष कै जानति ह्वैहै॥ (ठाकुर)

(ङ) जब ते बिछुरे कवि बोधा हितू तबते उर दाह थिरातो नहीं।
हम कौन सो पीर कहैं अपनो दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं॥ (बोधा)

(च) कलकानि न बोधा हमारी लखै इन्हैं आपनोई सुख भावतु है। (बोधा)

(छ) कवि बोधा कहे में सवाद कहा को हमारी कही पुनि मानतु है।
हमैं पूरो लगीकै अधूरी लगी यह जीव हमारोइ जानतु है॥ (बोधा)

अन्तिम बात जो प्रेमचित्रण मे फारसी काव्य के साथ साथ स्वच्छन्द काव्य मे भी समान रूप से द्रष्टव्य है वह है विरह की प्रधानता। वैसे तो हर भाषा के ही प्रेम काव्य मे विरह का महत्त्व स्वीकृत हुआ है किन्तु विरह की तड़पन फारसी शायरी मे अपने ढग से व्यक्त हुई है। रूमी ने लिखा है कि जब से मेरे सीने मे प्रेम की आग लगी है तब से मेरे हृदय में जो कुछ भी था उसी आग मे भस्म हो गया है।[१] यह अग्नि हृदय में और कुछ रहने नही देती। इस प्रेम मे प्राप्ति कुछ नही होती, देना ही देना होता है (जैसा कि घनआनद ने भी कहा है कि प्रियतम सुजान से प्रेम करके खो देना ही लाभ है और कुछ लाभ नही) तथा एक अग्नि है जिसमे सदा जलना पडता है, जिन्दगी मुश्किल हो गई है—

जियरा उड्यो सो डोलै हियरा धक्योई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयो जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तौ न लेखो, मोहि मारत परेखो महा,
जान घनानन्द पै खोइबो लहा लहौं॥ (घनआनद कवित्त)

खाकानी भी लिखते हैं कि प्रेमपथ पर अग्रसर बेचारे प्रेमी के सामने कोई विकल्प नही होता। यह मत कहो कि हर सागर का किनारा होता है क्योकि उसके विरह व्यथा के समुद्र का कोई भी किनारा नहीं। माशूक के केशो की अभिलाषा उसे बेचैन और भ्रमित किए रहती है। दुनियाँ का कोई भी अभागा मेरे समान विरह मे पागल न हुआ होगा।[२] विरह मे आशिक की बडी बुरी हालत दिखाई जाती है। उसकी आहों के ताप से उसके होठो पर हजारो छाले पड जाते हैं। विरही रूदन द्वारा अपने हृदय के घावों को भरता

---

[१] देखिये रूमी की कविता Classical Persian Literature, पृ० २२९

[२] देखिये खाकानी की कविता Classical Persian Literature, पृ० २६८

है और प्रिय के ध्यान द्वारा अपना दुख भूलता है।[1] फारसी शायरी का विरही एक देखने की चीज हुआ करता है। जिस रास्ते पर वह चलता है उसकी निगाह उसी पर गड़ी रहती है, उसकी बरौनियाँ गीली रहती हैं, उसके सीने में एक आग जलती रहती है, उसके कपड़े फटे रहते हैं, उसके बाल बिखरे रहते हैं, उसकी बरौनियों से गिरे हुए खून के कतरे उसके कपड़ों पर साफ दिखाई देते हैं, उसका सकोच जा चुका होता है, उसका मुँह खुला रहता है, देखिये वह अपने से ही बात करता रहता है और कितना निर्भीक है। वह अपने प्रिय की गली से लौटा है तथा और प्रेमियों ने उसे घेर लिया है।[2] विरही की ऐसी दारुण बाह्य दशा का चित्र तो रीति-स्वच्छन्द कवि नहीं दिखा सके हैं परन्तु अन्त-आतुर व्यथा पूरी तरह प्रकट हुई है जो बोधा और घनआनन्द में विशेषरूप से द्रष्टव्य है। वही विकलता, वही बेचैनी यहाँ भी है।

फारसी की शृंगारी कविता का वातावरण हिन्दी शृंगार काव्य के वातावरण से अवश्य भिन्न है जिसका कारण भौगोलिक और सामाजिक स्थितियों का अन्तर तो है ही ऐतिहासिक और साहित्यिक परम्पराओं की भिन्नता भी है। फारसी शायरी पढ़ते-पढ़ते हम लैला-मजनूँ, गुलाब-बुलबुल, मस्जिद और दरवेश, रेगिस्तान, काफिला, काफिले की घंटियाँ, झाड़ू, तोता, आइना, पालकी, सोने की दीवारें, गुलामों, घोड़ों, ऊँटों, दुशालों, मोतियों, साकी, प्याला, शराब, सराय, बादा, कब्र, अस्थिपंजर, आह, छाले, फफोले, घाव, कफन, कर्बला, फूलों के बगीचे आदि उपकरणों से शीघ्र ही परिचित हो जाते हैं। जहाँ तहाँ विरह और प्रेम आदि के वर्णन में अतिशयोक्तिपूर्ण पद्धति का अनुसरण करते हुए कवियों ने भले ही कुछ भावापहरण किया हो किन्तु यह विदेशी वातावरण निश्चय ही स्वच्छन्द तथा रीतिबद्ध कवि भी नहीं लाये हैं क्योंकि ये इस देश के कवि थे और स्वदेशी आदर्शों और परम्पराओं से एकदम विच्छिन्न हो पूर्णतः अनुकरण कर सकना न स्वाभाविक ही था, न उचित और न सम्भव।

साधारण प्रेम चित्रण और सूफियाना रहस्यात्मक प्रेमवर्णन दोनों में फारसी शायरों ने दर्पण, बिम्ब, सुरा, साकी, प्याला आदि के दृष्टान्त अधिक प्रस्तुत किये हैं। उनकी इस प्रकार की पंक्तियाँ देखने योग्य हैं जिनमें वे कहते हैं—

(क) साकी ने जो शराब प्याले में डाली वह एक आग थी जो उसने मेरे दिल में सुलगा दी।

—जमाल अलदीन सलमान[3]

(ख), यदि सहरा न होते तो सारे दिल रेगिस्तान होते, सूने और उजड़े, किन्तु यदि हमारी आखिरी सांस भी निकलती रहती और शराब का दर्शन हो जाय तो गये हुए प्राण भी वापस आ सकते हैं।

—हदावी[4]

---

[1] देखिये नाजीरी की कविता A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court : Akbar, पृ० ८३-८४

[2] देखिये नाजीरी की कविता, वही, पृ० ७६-७७

[3] Classical Persian Literature, पृ० ३२३

[4] वही, पृ० ३४

(ग) दिव्य प्रेम मे चूर व्यक्ति जो उस परम सुरभि को एक भी सास ले चुका होता है बिना सुराही और प्याले के खालिस शराब पीता है। —फैजी[1]

(घ) यह मत समझो कि तुम धूल हो और धूल की कोई कीमत नहीं। देखो कि तुम वह दर्पण हो सौन्दर्य जिसमे बिंबित होता है। —ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती[2]

(ङ) अपने आत्मा के दर्पण मे अपने प्रियतम का सौन्दर्य देखो। जब दिल के आइने मे उसके चेहरे की झलक आई मुझे ऐसा लगा कि मेरा शरीर और मेरी आत्मा सब कुछ वही है। प्याले मे शराब का वश स्थान है और कौन है वह साकी ? मुईन ! खामोश हो जाओ और अपनी सास रोक लो ये सब 'वही' है।

—ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती[3]

(च) जब साकी के रूप की खूबसूरत छाया शराब के प्याले मे पडती है तो खुदा का बदा भी सराय की तरफ मुह कर लेता है और शराबी हो जाता है।

—ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती[4]

(छ) जब शराब, प्याला और साकी बगल मे ही हो तो स्वाभाविक है कि मुझ पर नशा आ जाय। —ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती[5]

किन्तु ये दृष्टान्त स्वच्छद कवियो ने ग्रहण नही किये हैं।

फारसी के शृगारी शायरो ने भी तथा सूफी शायरो ने जिस प्रकार के रहस्यात्मक सकेत किये हैं उनकी भी हल्की छाया स्वच्छन्द वृत्ति के कवियो पर पडे बिना न रही। फारस मे सूफी काव्य की धारा बडी सबल और समर्थ रही है। उस धारा के शायरो ने प्राणोन्माद का, प्रेम का, व्यथा का जैसा जीवत चित्रण किया है वैसा कम कवि कर सके हैं। ईराकी अपने उश्शाकनामा मे लिखते हैं—उसके प्रेम मे ही मेरी आत्मा को विश्राम मिलता है उसके सौंदर्य का साक्षात ही मेरी हार्दिक अभिलाषा है। मेरे हृदय को उसने हर लिया है, मैं उसकी आकाँक्षा की शराब से मतवाला हो उठा हूँ और हालाकि मेरे अदर उसे देखने की उतावली है किन्तु उसे इसकी परवाह नही।[6] ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती कहते हैं—मैं उसकी (परमात्मा की) सौगध खाकर कहता हूँ कि मैं दोनो लोकों मे तब तक अपनी आख नही खोलूगा जब तक मैं पहले उसका सौंदर्य नही देख लेता। अपने अस्तित्व के वृक्ष के हर पत्ते से मैं प्रेम के उन्ही रहस्यो को सुनता हूँ जो उस वृक्ष ने मूसा से कहे थे। अगर मैं तेरे प्रेम की आग मे जल जाऊँ तो कोई आश्चर्य नही क्यो कि वह पहाड भी तो तेरी प्रभा के एक ही किरण से जल गया था। ऐ मुईन। प्रियतम का सौंदर्य बुद्धि की आखो से नही देखा जा

---

१ A History of Persian Language and Literatnure at the Mughal Court Akbar, पृ० ५७

२ Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० २६४

३ वही पृ० २६८-६६

४ Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० ३०६

५ वही, पृ० ३१७

६ देखिये ईराकी की पक्तियाँ Classical Persian Literature, पृ० २७१

सकता। लैला की खूबसूरती देखने के लिए मजनूं की आँखें चाहिए।[१] खुदा को देखने के लिए आँखों मे खुदाई रंग होना चाहिए। प्रेमी आंखों को जो दिखता है वह पथराई आंखों को कैसे दिखाई दे सकता है? एक जगह ख्वाजा ने लिखा है कि सौ परदों के पीछे से भी उसकी सुन्दरता हमें झलकती दिखाई देती है। वह दिन कितना खुशनसीब होगा जब वह रूप बिना परदे के दिखाई देगा।[२] इस संसार का एक एक जर्रा उसी की प्रभा से प्रकाशित है, हर कण मे उसी का सौंदर्य प्रतिफलित हो रहा है। उसके महान् अस्तित्व का प्रतिबिंब मेरी आत्मा के दर्पण में भी पड़ रहा है।[३] संसार के जर्रे जर्रे मे जो तड़प है वह उसी के विरह की तड़प है। जो उससे एकमेक हो जाता है वह खामोश हो जाता है।[४] प्रकृति के एक एक उपकरण को देखिये, समुद्र को देखिये सभी उस व्यथा से लहरें खा रहे हैं। वही लहर और थपेड़ा है जिसे खाकर घनआनंद चीख उठते हैं—

> अंतर ही किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं।
> आगि जरौं अकि पानी परौं, अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
> जौ घनआनंद ऐसी रुची, तौ कहा बसहै अहो प्रानिन पीरौं।
> पाऊं कहां हरि हाय तुम्हैं धरनी मैं धसौं कि अकासहि चीरौं॥ (सुजानहित)

वह तड़प एक ही है, वह व्यथा एक ही है। जो भाव घनआनंद की इन पंक्तियों में है—

> त्यौं बसरेनि के ऐन बसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
> मोसो तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निवाहिबौ यौं छबि पावै॥ (सुजानहित)

वही भाव ख्वाजा हसन संजरी के इस कथन मे है कि कण सूर्य के प्रति प्रेम में उन्मत्त होकर नाच रहा है और उसकी इस खुशी और प्रेमोन्माद को कोई जानता नहीं।[५]

इस प्रकार फारसी और रीति-स्वच्छंद काव्यधारा की भावभूमि किस सीमा तक एक है यह बात उभय काव्यधाराओं से काव्योदाहरणों द्वारा हमने दिखाने की चेष्टा की है। इसमें संदेह ही क्या है कि प्रेम की विरह की लौकिक अथवा इतर अनुभूतियों ने जहाँ तहाँ एक रूप होकर अपने को व्यक्त किया है। यह कैसे कहा जा सकता है कि अमुक कवि की अमुक पंक्ति से ही हिंदी की स्वच्छंद धारा के अमुक कवि की अमुक पंक्ति प्रभावित हुई है या उसी के अनुकरण पर बनी है। प्रभाव की राजनैतिक, ऐतिहासिक, भाषा और भावगत संभावनाओं की जो भूमिका हमने तैयार की है और समानान्तर भावों और पंक्तियों के जो उदाहरण हमने प्रस्तुत किये हैं वे निश्चय ही हमें इस तथ्य की ओर ले जाने वाले हैं कि हिन्दी के रीति-स्वच्छन्द कवि अपने प्रेम की उमंग मे फारसी के प्रेमी शायरों के निकट हैं, व उससे प्रभावित हुए हैं यह भी निश्चित है। उनकी भावानाएँ बहुत कुछ एक सी हैं जहाँ-

---

१ Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० २६५-६८

२ वही, पृ० ३०८-९

३ देखिये ख्वाजा की पंक्तियां, वही, पृ० ३११-१२

४ देखिये ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की कविता Pre Mughal Persian in Hindustan, पृ० ३१३

५ देखिये ख्वाजा हसन संजरी की कविता, वही, पृ० ४६१

लहा भाषा और वातावरण से ये कवि प्रभावित हैं। फारसी के जानकार वे थे ही ये विभिन्न कवियों के जीवन परिचय से भी प्रमाणित होता है। मुगल शासन और वातावरण के प्रगाढ़ सम्पर्क की बात निश्चित हो की जा चुकी है और इतने सारे समानान्तर भावों के प्रसंग और अवतरण भी सामने लाए गए हैं। जैसा मैंने पहले कहा है राई-रत्ती प्रभाव दिखला सकना और प्रमाणित कर सकना तो सम्भव नहीं किन्तु जो सामग्री यहाँ प्रस्तुत की गई है उसे देखते हुए इस निश्चित प्रभाव की व्यापक सम्भावना का खण्डन किया जा सकता है। यह अध्ययन की स्वतन्त्र दिशा है और मैं आशा करता हूँ कि अन्य अनुसंधित्सु इस दिशा में और भी आगे बढ़ेंगे।

उपसंहार

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे रीति युग की सम-सामायिक-राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एव साहित्यिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है। स्वच्छन्द वर्ताओं के असाधारण महत्त्व की स्वीकृति हो जाने के कारण ही रीति युग के अभिनव नामकरण एव रीतियुगीन काव्य के वर्गीकरण की भी समस्या सामने आई। इस समस्या पर सबसे अधिक समचेत एवं युक्तियुक्त रूप मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने विचार किया है। अन्य विद्वानों के विरुद्ध मतों के होते हुए भी मैं इस सम्बन्ध मे आचार्य मिश्र के मत को ही अधिक उपयुक्त समझता हूँ और इस सम्बन्ध मे भी मैंने अपने तर्क 'शृंगारकाल' नामकरण के पक्ष मे यथास्थान दिये हैं। यह नाम युग की काव्य प्रवृत्ति के आतर स्वरूप के बिल्कुल मेल मे है तथा वीर काल, भक्तिकाल आदि अन्य युग के नामों मे उसकी सगति भी अपेक्षाकृत अधिक समुचित रूप मे बैठ जाती है, इसी प्रकार समयुगीन काव्य के वर्गीकरण तथा अतर्विभाजन का मार्ग भी अधिक प्रशस्त हो जाता है। शृंगारकालीन काव्य की चर्चा करते हुए उस युग की जिन अन्य धाराओं को प्राय भुला दिया जाता है वे हैं वीरकाव्य, नीतिकाव्य, सतकाव्य, सूफीकाव्य, कृष्णकाव्य और रामकाव्य की धाराएँ जिनसे सबधित साहित्य गुण और परिमाण की दृष्टि से उपेक्षणीय कदापि नही कहा जा सकता। अपने अपने ढग से इन धाराओं के कवियों ने भी हिन्दी काव्य की श्रीवृद्धि की है। इन दिशाओं मे भी अन्यान्य विद्वानो ने थोड़ा बहुत कार्य किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध मे उक्त धाराओं की प्रवृत्तियों का बोध हो सके साथ ही स्वच्छन्द धारा की साहित्यिक पृष्ठभूमि भी निर्मित की जा सके। एक बात जो वीर और नीतिकाव्य की धाराओं के अतिरिक्त शेष सभी धाराओं में लक्षित होती है वह है न्यूनाधिक परिमाण मे शृंगारीवृत्ति अथवा माधुर्यभाव का समावेश। यह तथ्य भी इस युग की नई अभिधा 'शृंगारकाल' के ही पक्ष को पुष्ट करता है।

द्वितीय अध्याय में स्वतन्त्र रूप से स्वच्छन्द धारा मात्र का विश्लेषण किया गया है तथा हिन्दी की मध्ययुगीन रीति स्वच्छन्द काव्य प्रवृत्ति की विशेषताओं का सविस्तार उद्घाटन किया गया है। विभिन्न देशी एव विदेशी विद्वानों के मतो के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वच्छन्द धारा एक उदार, नवीन स्फूर्ति वाली, अभिनव दृष्टिमती सौंदर्य

के नये नये लोकों का सृजन करने वाली, प्राकृतिक जीवन की ओर अभिमुख और अग्रसर होने वाली, रूढ़ियों का ध्वंस करके चलने वाली, भावावेगमयी और संयमहीन काव्यप्रवृत्ति है जिसमें पूर्ववर्तिनी अथवा समसामयिक काव्य प्रवृत्ति के प्रति असंतोष और क्षोभ का भाव प्रधान हुआ करता है तथा रूढ़िबद्ध अथवा रीतिबद्ध (Classic) काव्य से उसमें तात्विक भेद लक्षित किया जा सकता है। यह अन्तर काव्य के प्रति मूलवर्ती दृष्टिकोण, परम्परामोह, जीवनादर्श, नवीनता के मोह, शैली आदि कितनी ही बातों में लक्षित किया जा सकता है। मध्ययुग के स्वच्छन्द कवि काव्य के सम्बन्ध में स्वयमेव सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण लेकर चल रहे थे जैसा कि घनआनन्द, ठाकुर आदि के वचनों से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। उनकी उक्तियों की अलंकार प्रेमी केशव, सेनापति आदि की उक्तियों की तुलना करने पर काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तर बहुत ही स्पष्ट रूप में प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी प्रकार भावावेग अथवा भावप्रवणता, आत्मपरक अभिव्यक्ति, परम्परा-राहित्य, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, चाटुकारिता की जगह स्वाभिमान, प्रबन्धों की ओर अभिरुचि, देशी एवं ग्राम्य व्यापारों, पर्वों एवं त्यौहारों तथा संस्कारों के प्रति मोह और आकर्षण आदि की विशेषताएँ उनके काव्य को परम्परा-समर्थित काव्य से सर्वथा पृथक घोषित करने वाली है। रीतियुग के कवियों का भी मूल वर्ण्य प्रेम ही है परन्तु उनका प्रेम सर्वथा स्वच्छन्द और बाधा-बन्धन रहित है, उसमें वृत्तियों का एक से एक उदात्त स्वरूप देखा जा सकता है तथा प्रेम के भव्य से भव्य स्वरूप एवं ऊँचे से ऊँचे आदर्श तक हम जा सकते हैं। प्रेम छिछला, ऐन्द्रिक व्यापार न रहकर स्वस्थ मानसिक तृषा का रूप लिए हुए मिलता है। उसमें भोग नहीं त्याग और अशेष रूप से आत्मसमर्पण की ऊँची वृत्तियाँ सामने आई हैं। प्राप्ति की अपेक्षा प्राप्ति की तड़प को महत्व बताया गया है। प्रेम भावना की प्रगाढ़ता के निदर्शन के लिए स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम वैषम्य की विशद चर्चा की है तथा इस प्रकार की भावना पर फारसी प्रेम काव्यों तथा सूफी प्रेम भावना का प्रभाव देखा गया है। स्वच्छन्द कर्ता के प्रणय वर्णन में संयोग की अपेक्षा वियोग का ही प्राधान्य एवं महत्व मिलेगा जिस पर थोड़ा बहुत सूफी और फारसी शैली की वेदना विवृत्ति का प्रभाव भी देखा जा सकता है। रीति स्वच्छन्द कवियों द्वारा वर्णित विरह कवियों की अपनी ही तड़प की मार्मिक अभिव्यजना है और इसीलिए उसमें रीतिबद्ध कवियों को सी नाप जोख या ऊहाएँ हैं। यदि हैं भी तो हार्दिकता से इतनी संपृक्त कि उनकी आभा ही दूसरी हो गई है तथा वे रीति बद्धों की उक्तियों के मेल में नहीं बिठाई जा सकतीं। संक्षेप में यह कि विरह का अत्यन्त प्रगाढ़ एवं आत्मपरक रूप इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। ये लौकिक प्रेम के गायक थे, इनमें रहस्यदर्शिता नहीं, अपवाद रूप से ही कहीं कहीं उसकी झलक देखी जा सकती है, भक्ति भी इसी प्रकार इनकी प्रधान वृत्ति न थी। ये मूलतः प्रेमी थे।

रीति स्वच्छन्द कवियों से मिलती जुलती काव्य-प्रवृत्ति अथवा काव्य-दृष्टि अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों की भी थी। समानान्तर काव्य-प्रवृत्ति होने के कारण उस पर भी विचार किया है तथा रीति युगीन स्वच्छन्द कर्ताओं से उनका मेल बिठाते हुए बताया है कि दोनों देशों के कवि ऐतिहासिक दृष्टि से लगभग एक से युग में रह रहे थे तथा उनका रचना काल भी बहुत कुछ एक था। जीवन और साहित्य की रूढ़ियों के प्रति दोनों का

विद्रोह था। दोनो देशो के कवि सामाजिक एव नैतिक दृष्टि से अध पतित युग मे पैदा हुए थे, प्रदर्शन एव कृत्रिमता से दोनो को अरुचि थी, दोनो ने दरबारदारी की ओछी प्रवृत्ति से कविता को मुक्त किया तथा उसे अधिक प्राकृतिक और स्वस्थ आधारभूमि पर प्रतिष्ठित किया। पुरातन की अनुकृति और शास्त्रीय कवियो द्वारा निर्धारित मानदण्डो को दोनो ने ठुकरा दिया। दोनो ने स्वानुभूति-प्रधान सहज शैली की कविताएं लिखीं और काव्य जगत मे अभिनव प्रकार के सौन्दर्य-लोक का सृजन किया। त्यक्त और उपेक्षित के प्रति दोनों की दृष्टि गई।

तृतीय अध्याय मे हमने प्रबन्ध मे अधिग्रहीत ६ कवियो के जीवनवृत्त एवं कृतियो की प्रामाणिकता आदि पर भी विचार किया है।[1] इस सदर्भ मे उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवियो के जीवन की रूपरेखा यथासभव प्रामाणिक रूप मे उपस्थित की गई है। प्राय: सभी कवियो के जीवनवृत्त, समय, कृतियो की प्रामाणिकता आदि के सम्बन्ध में मतभेद और द्विविधा रही है इस दिशा मे भी सुलभ सामग्री के आधार पर पर्याप्त विस्तार के साथ विचार किया गया है। रसखान दिल्ली के थे या पिहानी के सैयद इब्राहीम थे, किस गदर मे उन्होने दिल्ली छोडी, उनकी अनुरक्ति पहले किसके प्रति थी, कठी-माला-धारण प्रसंग क्या था आदि नई नई बातों पर भी विचार किया गया है। इसी प्रकार आलम दो थे या एक अथवा दो बोधाओ तथा तीन ठाकुरो मे से कौन से बोधा और ठाकुर हमारे अध्ययन के विषय हैं ऐसी कई बातो पर प्रकाश डाला गया है। आलम और शेख नाम के दो कवियो का होना भ्रामक है। घनआनद के नाम के भी कई कवि हो गये हैं, उनमे से अपने प्रेम की पीर के उमगी गायक कौन हैं? सुजान कौन थी, कैसी थी, उसके कारण घनआनद को किन किन लोकापवादो का शिकार होना पडा, घनआनद की मृत्यु किस आक्रमणकारी के हमले मे हुई आदि बातों पर भी सम्यक प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की सूक्ष्म किन्तु महत्त्वपूर्ण विवरण-सबन्धिनी बातो की चर्चा भी यथेष्ट विस्तार से की गई है। कवियो के सम्बन्ध मे प्राप्त किंवदतियो का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है क्योंकि जनश्रुतियाँ सर्वथा निराधार नहीं हुआ करती।

चतुर्थ अध्याय मे रीति स्वच्छन्द काव्य धारा के सभी प्रमुख कवियो के काव्य के भाव पक्ष का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो ७ बड़े बडे खडो मे विभक्त है। प्रथम खड मे हमने कवियो के मूल वक्तव्य प्रेम की चर्चा की है तथा इस सम्बन्ध मे कवियों की जो निजी दृष्टि रही है उसे विशेष महत्त्व दिया है क्योंकि उनका प्रेमवर्णन मानो उनके जीवन की अपनी ही प्रेम-तरग की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। उन्होंने प्रेम पर स्वत. भी विचार किया है परन्तु किसी शास्त्रीय ढग से नहीं। उन्होंने आनुभाविक आधार पर कहा है कि प्रेम कठिन है, वासनाहीन है, बिना प्रेम के जीवन और जगत व्यर्थ है, जीवन मे उससे महत्तर कुछ नहीं, उस राह पर चलने वाले को फिर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, प्रेम मे सब कुछ समर्पण करना पडता है, प्रेम महत्-तत्त्व की प्राप्ति का साधन है, प्रेम में स्थिरता और निर्वाह परम आवश्यक है, अनन्यता के बिना वह व्यर्थ है, प्रेम कुल

---

[1] यह अध्याय इस सस्करण मे नहीं दिया जा सका है।

जाति लोक आदि की मर्यादाओ को नही माना करता, इस पथ के पथिक को असह्य व्यथा सहने के लिए तैयार रहना चाहिए, निष्कपट होना चाहिए, व्यथा को पी जाना चाहिए, विरह की अग्नि मे अपने प्रेम को परिपक्व करना चाहिए, प्रेमी को निराभिमान होना चाहिए, प्रेम की निष्ठा मे शिकायो के लिए स्थान नही आदि। दूसरे खण्ड मे हमने स्वच्छन्द कवियो के प्रेम के आलबन-वर्णन पर विचार किया है तथा उनके निजी प्रेमालबनो जैसे सुजान, सुभान आदि अथवा लोक प्रसिद्ध प्रेमालबनो राधा, कृष्ण, गोपी, कामकदला, माधवानल, लीलावती, रुक्मिणी आदि क रूप, अगयष्टा, अग-प्रत्यग एव स्वभाव तथा आतरिक सौन्दर्य आदि के मनोग्राही वर्णन पर अत्यत विशद रूप मे प्रकाश डाला है तथा रूप के प्रभाव की जो अभिव्यजनाएँ हैं और उसके द्वारा रूप-सूचन की जो शैली है उसके आधार पर भी रूप-सौंदर्य के प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन किया गया है। रूप सौन्दर्य के चित्रण में कवियो का जो अभिनिवेश है और सौदर्यचित्रण का जो स्वरूप है उसे पर्याप्त सहृदयता के साथ उद्घाटित किया गया है। विभिन्न स्थितियो, अवसरो, प्रकरणो मे प्रेम के आलबनो को प्रस्तुत कर जो झाकी कवियो ने देखी, दिखाई है उसे सामने लाया गया है। तीसरे खण्ड में प्रेम अथवा शृगार रसोद्दीप्ति मे सहायक प्राकृतिक उपकरणों तथा प्रबन्धो मे आए हुए नगर आदि के वर्णनो पर विचार किया गया है। जिन जिन रूपो मे प्रकृति का चित्रण हुआ है उसकी विस्तृत विवेचना है और द्विजदेव के स्वच्छन्द रूप मे किए गए प्रकृतिवर्णनो की विशेष चर्चा हुई है वैसे जो बातें कही गई हैं वे सभी कवियो के काव्यो को लेकर ही कथित हुई हैं, यहाँ तथा समूचे प्रबन्ध मे। इसी सन्दर्भ मे घनआनन्द के ब्रजप्रेम अथवा ब्रजभूमि के वर्णनो पर प्रकाश डाला गया है तथा ठाकुर, द्विजदेव आदि के सास्कृतिक पर्वों (सावन को अगोरी तीज, अखती या वटपूजन) के आकर्षण एव बोधा-कृत वैवाहिक पद्धतियों एव समारोहो के वर्णन पर भी प्रकाश डाला गया है। चौथे खण्ड मे स्वच्छन्द कवियो की सयोग वर्णना के विस्तार दिये गए हैं, गोचारण, कुजक्रीडा, गोरस-याचन, वनक्रीडा, पनघट, रास, वशी, होली, प्रथममिलन आदि के सन्दर्भ मे राधा और गोपियो के साथ कृष्ण के प्रेम व्यापारो अथवा प्रणय केलियों की चर्चा की गई है। इसी प्रकार सम्भोग की ऐन्द्रिक वर्णनाओ पर भी विचार किया गया है जो न्यूनाधिक परिमाण मे सभी कवियो द्वारा कही गई हैं तथा जिसमे पूर्व सम्भोग, सम्भोग एव पर सम्भोग सभी स्थितियो का चित्रण किया गया है। सभोग की मुक्त एव अश्लील वर्णना मे बोधा सबसे आगे रहे हैं। सभोग की आकाक्षा का उद्दाम रूप जैसा बोधा मे मिलता है दूसरो मे नही। साथ ही साथ इसी खड मे प्रणय की सयोगावस्था के मानसिक पहलुओं का भी उद्घाटन किया गया है जिसके अतर्गत प्रेमी हृदय की ललक, अभिलाषा, रीझ, अनुरक्ति, उमडते हुए उल्लास, ससर्ग कामना, तृष्णा, आसक्त चित्त की विविध प्रकार की मनोदशाओं का सौंदर्य दिखाया गया है। प्रिय की शरारत और प्रणय चेष्टाओ (कक्डी मारने, मार्ग में आ भिडने या आँखों मे आँख डालकर देख लेने जैसी बातो) पर मुग्ध आसक्ति के, कृष्ण की चितवन से बेहाल हुई गोपिका के, व्यग मिश्रित पारस्परिक वचनावली के कभी कभी विगत सभोग की स्मृति के बडे ही मादक एव आह्लादकारी चित्रो की चर्चा की गई है। सयोग के ही अन्तर्गत खीझ, उपालभ, ज्योतिषी से भविष्य विचार, मदनधनी की हाट आदि कितने ही सरस प्रसगो की उद्भावना की गई है। पाचवें खड मे प्रेम की पीर के इन गायको

की विरह भावना अत्यन्त विस्तार से देखी, दिखाई गई है। प्रिय की स्मृति, रोग का उपचार, विरही अथवा विरहिणी की भीषण व्यथा, प्रिय की उपेक्षावृत्ति, प्रतीक्षा, विरह की कृशता, विरही के चतुर्दिक के वातावरण में ही विरह की व्याप्ति, ऋतुओं एवं प्राकृतिक उपकरणों द्वारा विरह की उद्दीप्ति, विरहियों के आत्मनिवेदन, क्षोभ, आसक्ति—जनित बेचैनी, अकथनीय स्मृति जनित, कामजनित, प्रिय की निष्ठुरताजनित अथवा प्रेम वैषम्य से उत्पन्न, नानाविध वेदनाओं की विशद चर्चा की गई है तथा यह दिखाया गया है कि किस प्रकार विरह प्रेम की दृढ़ता एवं एकनिष्ठता प्रदान करता है, विरह में लालसाएँ किस प्रकार दिन दूनी रात चौगुनी वर्धमान होती रहती हैं, किस प्रकार संदेश भेजे जाते हैं और उनका उत्तर नहीं आता किस प्रकार हताश विरही या विरहिणी प्रिय के गुणों का फिर भी गान करते रहते हैं आदि। कहीं कहीं इस प्रेम वर्णना पर सूफी अथवा फारसी रंग ढंग की झलक मिलती है। विरही कभी अपने विरह को अपने तक ही सीमित रखने की बात कहता पाया जाता है। उद्धव-गोपी प्रसंग को लेकर भी प्रायः सभी कवियों ने छंद लिखे हैं और अनेकानेक मनोहर एवं अभिनव भाव प्रस्तुत किये हैं। स्वच्छन्द कवि विरही अथवा विरहिणी की बाह्य दशा के चित्रण की अपेक्षा मनोदेश की स्थिति को देखने और दिखाने में प्रवृत्त हुए हैं जो इस काव्यधारा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय पक्ष है। स्वप्नमिलन, वियोग में संयोग आदि अन्य कितनी ही विरह वृत्तियों का और भी निदर्शन हुआ है। जगह जगह व्यंजनात्मक कथनों द्वारा असाधारण सौरस्य पैदा किया गया है। छठे खंड में धारा के कवियों में प्राप्य भक्ति भावना का उनकी भक्ति सम्बन्धिनी उदारता का, वैराग्य एवं रीति कथनों का तथा किन्हीं किन्हीं की जैसे घनआनन्द ऐसे कवि की भक्ति-पर्यवसित प्रीति का तथा उनकी साम्प्रदायिक भक्ति भावना का, उनकी भक्तिपरक रचनाओं के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जिसके अन्तर्गत ब्रज, यमुना, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना, मुरली, राधानाम, सती भाव की भक्ति आदि पर भी विचार किया गया है तथा कवियों की भक्ति भावना का भी विवेचन हुआ है। जगह जगह जगत की दशा, मानवी प्रवृत्तियों, मनुष्यता, मन को प्रबोध ऐसे विषयों पर लिखी गई रचनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। भक्ति के आलम्बन अधिकांश में राधाकृष्ण ही हैं परन्तु कवियों की दृष्टि इस क्षेत्र में सामान्यतः उदार ही रही है। सातवें खंड में आलम और बोधा के तीन प्रबन्धों माधवानल-कामकन्दला, विरहवारीश एवं श्यामसनेही का भी कथा, वस्तु विवेचन, वर्णन, संवाद, मार्मिक स्थल, रस एवं भाव, चरित्र चित्रण एवं मनोविज्ञान, रचना का उद्देश्य, काव्य कोटि आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा आलम और बोधा द्वारा एक ही कथा से सम्बन्धित प्रबन्धों का तुलनात्मक विवेचन भी किया गया है।

पंचम अध्याय में रीति स्वच्छन्द कर्त्ताओं के कलात्मक कृतित्व का संकलन करते हुए सर्व प्रथम उनके कला विषयक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। ये कवि भाषा और अभिव्यक्ति में निजी विशिष्टताएँ रखा करते थे और अनावश्यक अलंकरण से मुक्त सीधी किन्तु चुभने वाली भाषा शैली के प्रयोग के कायल थे। प्रत्येक कवि के कला सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए, भाषा, अलंकार एवं छंद-विचार के तीन पृथक पृथक खंडों में इनके काव्य के कला पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा शब्द प्रयोग, भाषा विषयक आदर्श तथा अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उनके योगदान का अन्वेषण किया गया है।

षष्ठ अध्याय मे फारसी काव्य की फारसदेशीय एव भारतीय परम्परा का इतिहास क्रम से सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा फारसी भाषा, साहित्य और संस्कृति के भारत आगमन की अत्यन्त रोचक कहानी कही गई है। इसी पृष्ठभूमि पर फारसी भाषा और साहित्य के भारत मे प्रसार एव समसामयिक भाषा काव्य पर पडने वाले उसके प्रभाव का विशेषत रीतिस्वच्छन्द कवियो के काव्य पर उनके प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है एव फारसी और रीति स्वच्छन्द कवियो की समान भावभूमियो का भी लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है।

रीति युग का काव्य आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व उपेक्षित सा था और हेय दृष्टि से भी देखा जाता था किन्तु आज वही विविध विद्वानो के श्रम और अनुसधान परक अध्ययनो द्वारा साहित्यिक गवेषणा का अत्युत्कृष्ट कार्यक्षेत्र बना हुआ है तथा दर्जनो अनुसधायक इस क्षेत्र मे कार्य कर चुके हैं और कर रहे हैं। रीतिबद्ध काव्य से सम्बन्धित अध्ययन तो प्रचुर परिमाण में हुए किन्तु रीतिमुक्त काव्यधारा पर अभी उतना कार्य नही हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन की मूलवर्तिनी दिशाओ अथवा विशिष्टाओ की ओर हम प्रबन्ध की प्रस्तावना मे सकेत कर चुके हैं। यहां निष्कर्ष रूप मे हम इतना ही कहना चाहते हैं कि रीतिबन्धन से स्वतन्त्र होकर प्रेम की तडप रखने वाले हमारे उमगी कवियो ने जैसे जैसे सुन्दर भाव प्रस्तुत किये हैं, जैसी जैसी मनोहर एव सुकुमार भावनाओं के सुमन कुसुमित किये हैं वे अपनी उपमा आप हैं। उनकी इस अनन्वयता का सौन्दर्य देखने के लिए और भावो के उच्छल स्रोत का आह्लाद उठाने के लिए मध्ययुगीन काव्य के रसज्ञ पाठक को इस धारा का अवगाहन करना होगा और एक बार जो उसके रस तक पहुँच जायगा वह उसे जी भर कर पिये बिना लौटेगा नही। यह तडप, यह आभा, यह आकर्षण और ऐसा आह्लाद इस काव्य मे इसलिए निष्पन्न हो सका है क्योंकि इस धारा के प्रत्येक कर्त्ता ने अपने मानव-रस का दान किया है। हृदय-रस के मुक्त प्रवाह से ही यह स्रोतस्विनी आपूर है। जो लोग रीतिबद्ध काव्य से रीतिमुक्त काव्य के सौन्दर्य को अभिन्न समझते हैं वे भ्रम मे हैं, उन्हें परम्परागत काव्यकारो से इन स्वच्छन्दमति काव्यकारो का भेद समझना होगा। इसके बिना वे स्वच्छन्द धारा के सौन्दर्य और आनन्द से वचित रहेगे। क्रमागत रीतिबन्धन युक्त काव्य के मानो को लेकर इस काव्य प्रवृत्ति का आकलन नही किया जा सकता। मूल्य, गुण, भाव, सौंदर्य सभी दृष्टियों से स्वच्छन्द कर्त्ताओ की रीतिबद्ध कर्त्ताओं से उपमा नही दी जा सकती, उनका व्यतिरेक मानना ही पडेगा। भावलोक के इस अभिनव क्षेत्र से अवगत होने के लिए इस क्षेत्र की असाधारण प्रतीत होने वाली विशेषताओ से अवगत होना ही पडेगा, लीक की आवाज सुनने वालो को स्वच्छन्द स्वरों के प्रति अपनी अभिरुचि विकसित करनी पडेगी तथा "चाह के अथाह प्रवाह" मे पडे बिना और "हिय आँखिन नेह की पीर" तके बिना "आप ही आप बिचच्छन" मानने की औंधी वृत्ति छोडनी ही पडेगी। सक्षेप मे यह कि दृष्टि की स्वच्छन्दता बिना स्वच्छन्दधारा के काव्यात्मक सौरभ्य और सौंदर्य को मनोगत नही किया जा सकता। वह रस और सौंदर्य की छलकती हुई धारा के सौन्दर्याह्लाद को मनोगत कर लेने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत प्रबन्ध प्रणीत हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

(क) अध्ययन के मूल आधार

	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१	आलम कृत आलम-केलि	सं० लाला भगवानदीन	प्र० उमाशंकर मेहता रामघाट, काशी	संवत् १९८३ सन् १९२६
२	आलम कृत माधवानल कामकदला (हिंदी प्रेमगाथा काव्य-संग्रह)	सं० गणेशप्रसाद द्विवेदी एवं गुलाबराय	हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग	सं० २०१० सन् १९५३
३	आलमकृत श्याम-सनेही (पाण्डुलिपि)	डा० भवानीशंकर याज्ञिक, शाहनजफ रोड, लखनऊ से प्राप्त		
४	आलम कृत सुदामा-चरित्र (पाण्डुलिपि)	डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त		
५	घनआनन्द-कवित्त	सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस		सं० २००९
६	घनआनंद ग्रंथावली	सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रसाद-परिषद की ओर से वाणीवितान, ब्रह्मनाल, बनारस—१	सं० २००७
७	ठाकुर-ठसक	सं० लाला भगवानदीन	सा० सेवक कार्यालय काशी	सं० १९८३ सन् १९२६
८	ठाकुर-शतक	सं० बाबू काशीप्रसाद	भारत जीवन प्रेस, बनारस	सं० १९६१ सन् १९०४
९	द्विजदेव कृत शृंगार-बत्तीसी	सं० त्रिलोकनारायण सिंह	मुद्रक-मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	सन् १८८५
१०	द्विजदेव कृत शृंगार लतिका	,, ,, ,,	,, ,, ,,	सन् १८८३

ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
११. द्विजदेव कृत शृंगार-लतिका-सौरभ	स० जवाहरलाल चतुर्वेदी	राजसदन, अयोध्या	सं० १९६३
१२ बोधा कृत इश्कनामा	नकछेदी तिवारी	मुद्रक-भारतजीवन प्रेस, काशी	सन् १८६३
१३ बोधा कृत विरह-वारीश या माधवानल कामकंदला चरित्र भाषा	स० गणेश प्रसाद	मुद्रक-मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	सन् १८६४
१४ रसखानि ग्रंथावली	स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाणीवितान ब्रह्मनाल, वाराणसी	सं० २०१६

(ख) हिन्दी ग्रंथ

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१. अकबरीदरबार के हिन्दी कवि	डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल	लखनऊ वि० वि०	सं० २००७
२ अलंकार पीयूष (भाग १, २)	डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	रामनारायणलाल, इलाहाबाद	सन् १९५४
३. अलंकार मंजरी	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	जगन्नाथप्रसाद शर्मा, मथुरा	सं० २००२
४. अलंकार मंजूषा	लाला भगवानदीन	रामनारायणलाल, इलाहाबाद	सं० १९६३
५ अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त	हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग	सं० २००४
६ आचार्य कवि केशवदास	कृष्णचन्द्र वर्मा	सा० प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली	सन् १९५७
७ आधुनिक साहित्य	नन्ददुलारे वाजपेयी	भारती भंडार, प्रयाग	सं० २००७
८ आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छंद धारा	डा० त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	सन् १९५६
९ आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य	डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	सं० २०१५
१० आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद, प्रयाग वि० वि०	सन् १९५२
११ ईरान के सूफी कवि	बांकेविहारी और कन्हैयालाल	भारती भंडार, इलाहाबाद	सं० १९९६ सन् १९३९

	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१२	उर्दू और उसका साहित्य	गोपीनाथ 'अमन'	राजकमल प्रकाशन, बंबई	
१३	उर्दू के हिंदू सेवक और उर्दू का इतिहास	सैयद कासिम अली	अनवार अहमदी प्रेस, इलाहाबाद	सन् १९४१
१४	उर्दू साहित्य का इतिहास	ब्रजरत्नदास	हिन्दी साहित्य कुटीर, हाथीगली, बनारस	स० २०११
१५	उर्दू साहित्य का इतिहास	डा० एजाज हुसैन	राजकमल प्रकाशन	सन् १९५७
१६	कबीर ग्रन्थावली	डा० श्यामसुंदरदास	ना० प्र० सभा, काशी	सन् १९४७
१७	कविता कौमुदी (भाग १)	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी मन्दिर, प्रयाग	स० १९९०
१८	कवितावली (तुलसी कृत)	टीकाकार-लाला भगवानदीन	रामनारायणलाल, इलाहाबाद	स० २००६
१९	कवित्त रत्नाकर (सेनापति कृत)	स० उमाशंकर शुक्ल	हिन्दी परिषद, प्रयाग वि० वि०	सन् १९४८
२०	कविप्रिया	केशवदास		
२१.	काव्य निर्णय (भिखारीदास)	टीकाकार-महावीरप्रसाद मालवीय	बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग	सन् १९३७
२२	घनआनन्द	ज्ञानवती त्रिवेदी		
२३	घनआनन्द	शंभुप्रसाद बहुगुणा	साहित्य भवन लि०, प्रयाग	
२४	घनआनन्द और आनन्दघन	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	प्रसाद परिषद, काशी	
२५	घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा	डा० मनोहरलाल गौड	ना० प्र० सभा, काशी	स० २०१५
२६	छन्द प्रभाकर	जगन्नाथप्रसाद 'भानु'	जगन्नाथ प्रेस बिलासपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित	स० १९९६ सन् १९३९
२७	जायसी ग्रन्थावली	स० रामचन्द्र शुक्ल	ना० प्र० सभा, काशी	स० २००३
२८.	तुलसी ग्रंथावली	स० रामचन्द्र शुक्ल, स० भगवानदीन, स० ब्रजरत्नदास	ना० प्र० सभा, काशी	स० २००४
२९	दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना	स० २०१५ सन् १९५९
३०	दरबारी संस्कृति और हिंदी मुक्तक	डा० त्रिभुवनसिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	सन् १९५८

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
३१. देव सुधा	सं० शुकदेवविहारी मिश्र	गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ	सं० २००५
३२. नव निवन्ध	परशुराम चतुर्वेदी	लोक सेवा प्रकाशन, बनारस	सन् १६५५
३३. नारदीय भक्ति सूत्र	हनुमानप्रसाद पोद्दार	गीता प्रेस, गोरखपुर	सं० २०१०
३४. पद्माकर पंचामृत	विश्वनाथप्रसाद मिश्र		
३५. पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	स० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल	व्रज साहित्य मडल मथुरा	सं० २०१०
३६. फारसी साहित्य की रूप-रेखा	डा० अलीअसगर हिकमत	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	सन् १६५७
३७ बिहारी	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाणी वितान, ब्रह्मनाल, बनारस-१	सं० २००७
३८ विहारी बोधिनी	टीकाकार-लाला भगवानदीन	साहित्य-सेवा सदन, चौखम्बा, बनारस-१	सं० २००३
३६. बिहारी रत्नाकर	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	ग्रथकार प्रकाशन, शिवाला, बनारस	सन् १६५१
४० भ्रमर-गीत-सार	स० रामचन्द्र शुक्ल	सा० सेवा सदन, काशी	स० २००६
४१. भागवत सम्प्रदाय	डा० बल्देव उपाध्याय	ना० प्र० सभा, काशी	स० २०१०
४२ भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास	डा० देवराज और डा० रामानन्द तिवारी	हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद	सन् १६५०
४३. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य	डा० हरिकान्त श्रीवास्तव	हि० प्र० पु०, वाराणसी	सन् १६५५
४४. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	सन् १६५६
४५. भूषण ग्रन्थावली	स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	सा० से० कार्यालय, काशी	सं० १६६३
४६. मतिराम ग्रंथावली	सं० कृष्णविहारी मिश्र	गंगा पुस्तकमाला लखनऊ	स० १६११ सन् १६३४
४७. मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी	सा० भवन लि०, प्रयाग	सन् १६५२
४८. मध्यकालीन शृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ	परशुराम चतुर्वेदी	सा० भवन लि०, प्रयाग	सन् १६६१
४६ मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	डा० श्याममनोहर पांडे	मित्र प्रकाशन, प्रयाग	
५० महाकवि घनानद	रामवाशिष्ठ	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	सन् १६५७

	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
५१	महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिंदी कविता मे अलकरण वृत्ति	डा० त्रिभुवनसिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	स० २०१७
५२	मिश्रबन्धु-विनोद (भाग १, २, ३)	मिश्रबन्धु	हिंदी ग्रथ प्रचारक मडली खण्डवा व प्रयाग	स० १९७०
५३	मुक्तक काव्य परपरा और विहारी	डा० रामसागर त्रिपाठी	अशोक प्रकाशक, दिल्ली	सन् १९६०
५४	रत्नाकर (भाग-१, २)	जगन्नाथदास रत्नाकर	ना० प्र० स०, काशी	स० २००३
५५	रसखान और उनका काव्य	चन्द्रशेखर पाण्डेय	हि० सा० स०, प्रयाग	स० २००८
५६	रसखान कविता-वली	रूपनारायण पाण्डेय	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	सन् १९३९
५७	रसखान और घन-आनन्द	अमीरसिंह	ना० प्र० सभा, काशी	सं० २००८
५८.	रसखान रत्नावली	कवि किंकर	भारतवासी प्रेस, इलाहाबाद	सन् १९४
५९	रसमजरी	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	जगन्नाथप्रसाद शर्मा, मथुरा	सं० २००४
६०	रस सिद्धात स्वरूप विश्लेषण	डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित	राजकमल प्र०, दिल्ली	सन् १९६०
६१	राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली	स० २०१४
६२	रामकथा का विकास	डा० कामिल बुल्के		
६३	राम-चरित-मानस	तुलसीदास	गीताप्रेस, गोरखपुर	स० २००९
६४.	रामचन्द्रिका (केशवदास)	स० लाला भगवानदीन	रामनारायणलाल, प्रयाग	स० २००४
६५	रामभक्ति मे रसिक सप्रदाय	डा० भगवतीप्रसाद सिंह	अवध साहित्य मदिर, बलरामपुर, गोंडा	स० २०१४
६६.	रामभक्ति शाखा	रामनिरंजन पांडेय	नवहिंद पब्लिकेशन्स, हैदराबाद	सन् १९६०
६७	रीतिकालीन कविता और शृंगार रस का विवेचन	डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	सरस्वती पुस्तक सदन, मोती कटरा, आगरा	स० २०१० सन् १९५३

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
६८. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना	डा० बच्चनसिंह	ना० प्र० सभा, काशी	सं० २०१५
६९. रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	सन् १९५३
७० रीतिकाव्य संग्रह	डा० जगदीश गुप्त	सा० भवन, प्रयाग	सन् १९६१
७१. रीति शृंगार	स० डा० नगेन्द्र	गौतम बुक डिपो, दिल्ली	सन् १९५४
७२. रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य	डा० सत्यदेव चौधरी	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद	सन् १९५९
७३. रूपक रहस्य	डा० श्यामसुंदर दास	इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग	सं० २००३
७४. रोमांटिक साहित्य शास्त्र	डा० देवराज उपाध्याय	आत्माराम एंड संस, दिल्ली	सन् १९५१
७५ वाङमय विमर्श	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	हि० सा० कुटीर, बनारस	सं० १९९९
७६ विन्ध्य साहित्य संकलन		सूचना एवं प्रसार विभाग विन्ध्य प्रदेश	सन् १९५३
७७ शायरी के नये दौर	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	सन् १९५८
७८. शायरी के नये मोड़	,, ,, ,,	,, ,, ,,	सन् १९५८
७९. शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	सन् १९२६
८०. शेर ओ शायरी	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	
८१. शेर ओ सुखन (भाग १, तथा २, ३, ४, ५)	,, ,, ,,	,, ,, ,,	सन् १९५१ तथा १९५८
८२ श्री चन्द्रावली नाटिका	स० कृष्णचन्द्र वर्मा	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा	सन् १९६१
८३. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य	डा० रामचन्द्र मिश्र	रणजीत प्रिन्टर्स एंड पब्लिशर्स, दिल्ली	सन् १९५९
८४ संस्कृत साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव	डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'		
८५. साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य सदन, झांसी	
८६. साहित्य प्रकाश	डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग	सन् १९३१
८७ सुजान रसखान	किशोरीलाल गोस्वामी	भारत जीवन प्रेस, काशी	
८८. सूफीमत और हिंदी साहित्य	डा० विमलकुमार जैन	आत्माराम एंड संस, दिल्ली	
९ सूफीमत : साधना और साहित्य	रामपूजन तिवारी		

	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
९०.	हिन्दी अलकार साहित्य	डा० ओम् प्रकाश	भारती सा० मदिर दिल्ली	सन् १९५६
९१.	हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	,, ,, ,, डा० भगीरथ मिश्र	,, ,, ,, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन	सं० २००५ और २०१५
९२	हिन्दी काव्यधारा मे प्रेम-प्रवाह	परशुराम चतुर्वेदी	किताब महल, इलाहाबाद	
९३	हिन्दी के कवि और काव्य (भाग ३)	गणेशप्रसाद द्विवेदी	हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग	सन् १९४१
९४	हिन्दी के मुसलमान कवियो का प्रेम काव्य	गुरुदेवप्रसाद वर्मा	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	सन् १९५७
९५	हिन्दी नीति काव्य	डा० भोलानाथ तिवारी	विनोद पु० मदिर-आगरा	सन् १९५८
९६	हिन्दी पर फारसी का प्रभाव	अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	हिन्दी सा० सम्मेलन, प्रयाग	सन् १९५६
९७	हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	पुस्तक भडार, लहरिया-सराय, दरभगा (विहार)	स० १९९७
९८	हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास	जितेन्द्रनाथ पाठक	ना० प्र० सभा, काशी	स० २०१५
९९	हिन्दी मूल और शाखा	श्यामविहारी विरागी तथा अविनाशचन्द्र	भारती भडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	सन् १९५५
१००	हिंदी रीति साहित्य	डा० भगीरथ मिश्र	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	सन् १९५६
१०१	हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)	स० डा० धीरेन्द्रवर्मा और डा० ब्रजेश्वर वर्मा	भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग	सन् १९५९
१०२	हिन्दी साहित्य	डा० रामरतन भटनागर	किताब महल, इलाहाबाद	सन् १९४८
१०३	हिन्दी साहित्य	डा० श्यामसुदर दास	इडियन प्रेस, प्रयाग	सन् १९५६
१०४	हिन्दी साहित्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	अतरचन्द्र कपूर एण्ड सस, दिल्ली	सन् १९५२
१०५	हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग २) - शृगार काल	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	स० २०१७
१०६.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	रामनारायणलाल, इलाहाबाद	सन् १९४८
१०७	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	ना० प्र० सभा, काशी	स० २०१४

	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
१०८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	रा० सा० रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद	सन् १९३१
१०९	हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	रामबहोरी शुक्ल और डा० भगीरथ मिश्र	हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद	सन् १९५६
११०.	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास : षष्ठ भाग	स० डा० नगेन्द्र	ना० प्र० सभा, काशी	सं० २०१५
१११	हिन्दी साहित्य की परम्परा	हंसराज अग्रवाल	ओरियंटल बुक डिपो, दिल्ली	
११२	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई	सन् १९४८
११३.	हिन्दी सूफी कवि और काव्य	डा० सरला शुक्ल	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	सं० २०१३

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ

1. A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court (Akbar)—Muhammad Abdul Ghani, 1929.
2. An Outline History of English Literature—W. H. Hudson, G Bell & Sons Ltd , London, 1955.
3. Classical Persian Literature—A. J. Arberry Ruskin House, George Allen & Unwin Ltd , Museum Street, London, 1958
4. History of Shahjahan of Delhi—Dr Banarsi Prasad Saxena, Central Book Depot, Allahabad, 1958
5. Introduction to Persian Literature—Abdullah Anwar Beg, Atma Ram & Sons, Lahore & Delhi, 1942.
6. Modern Persian History—M. Ishaque. Mr. Mohammad Israil, 159/B Dharmatala Street, Calcutta, 1943.
7. Persian Influence on Hindi—Dr. Hardev Bahri, Bharati Press Publications, Allahabad-2, 1960.
8. Pre-Mughal Persian in Hindustan—Muhammad Abdul Ghani, The Allahabad Law Journal Press, Allahabad, 1941.
9. The Making of Literature—R. A. Scott James, Secker & Warburg London, 1958

(घ) पत्र-पत्रिकाएँ

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी) वर्ष ५०, अंक १–२, वैशाख-श्रावण स० २००२

२ साहित्य समालोचक (लखनऊ) भाग ३, सख्या १, सन् १९२७, श्रावण सं० १९८४

३. हिन्दी अनुशीलन (भारतीय-हिन्दी-परिषद, प्रयाग) :—

(१) धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, वर्ष १३, अक १–२, सन् १९६०

(२) वर्ष ११, अंक ३ और ४